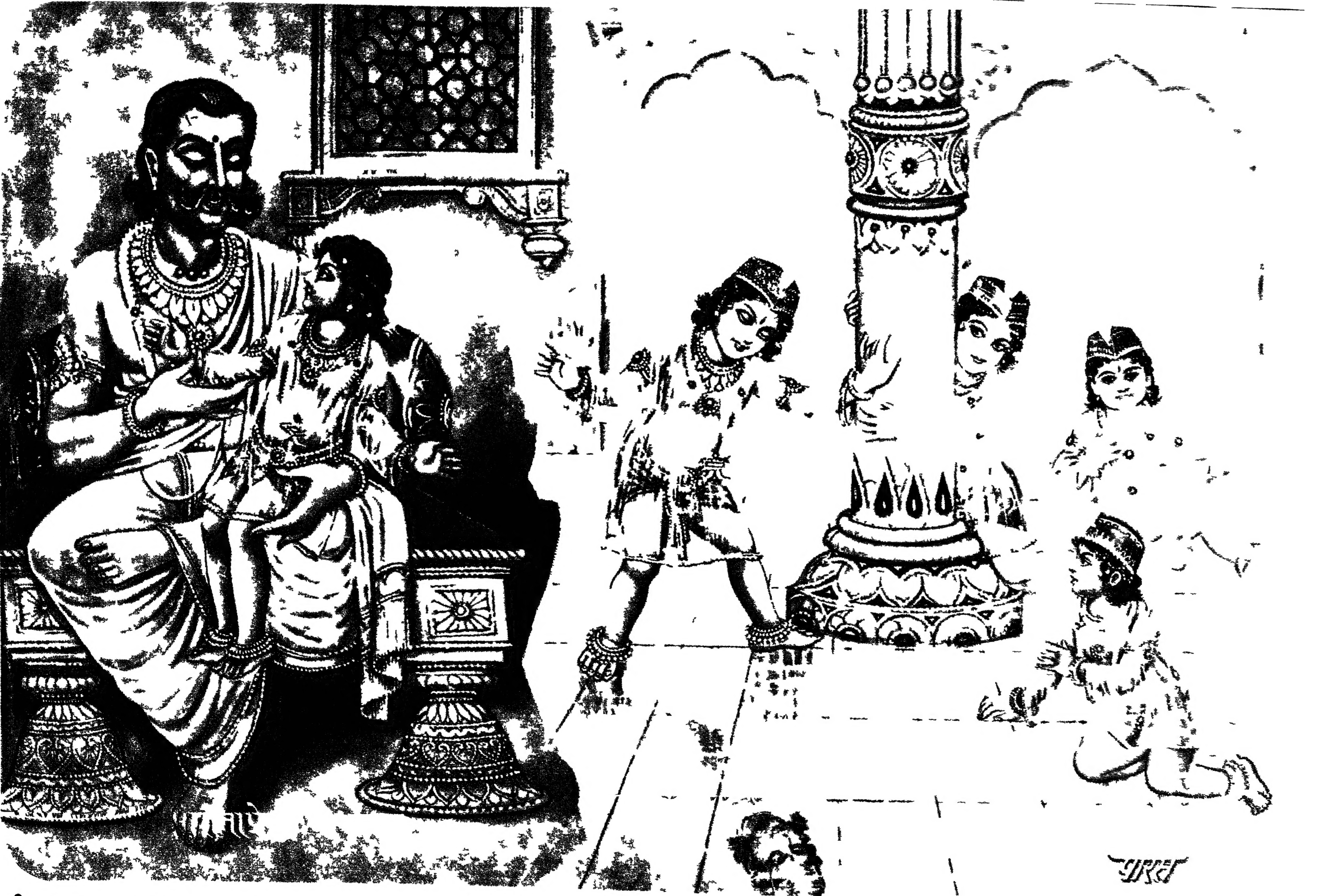
॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥ 74

हिन्दी अनुवादसहित





श्रीदशरथ-नन्दन Srī Daśarathanandana (The darling of Dasaratha)

क्रीडा-वेशमे आनन्दकन्द The blissful Lord in sport-costume



चारो भाई वर-वेशमे



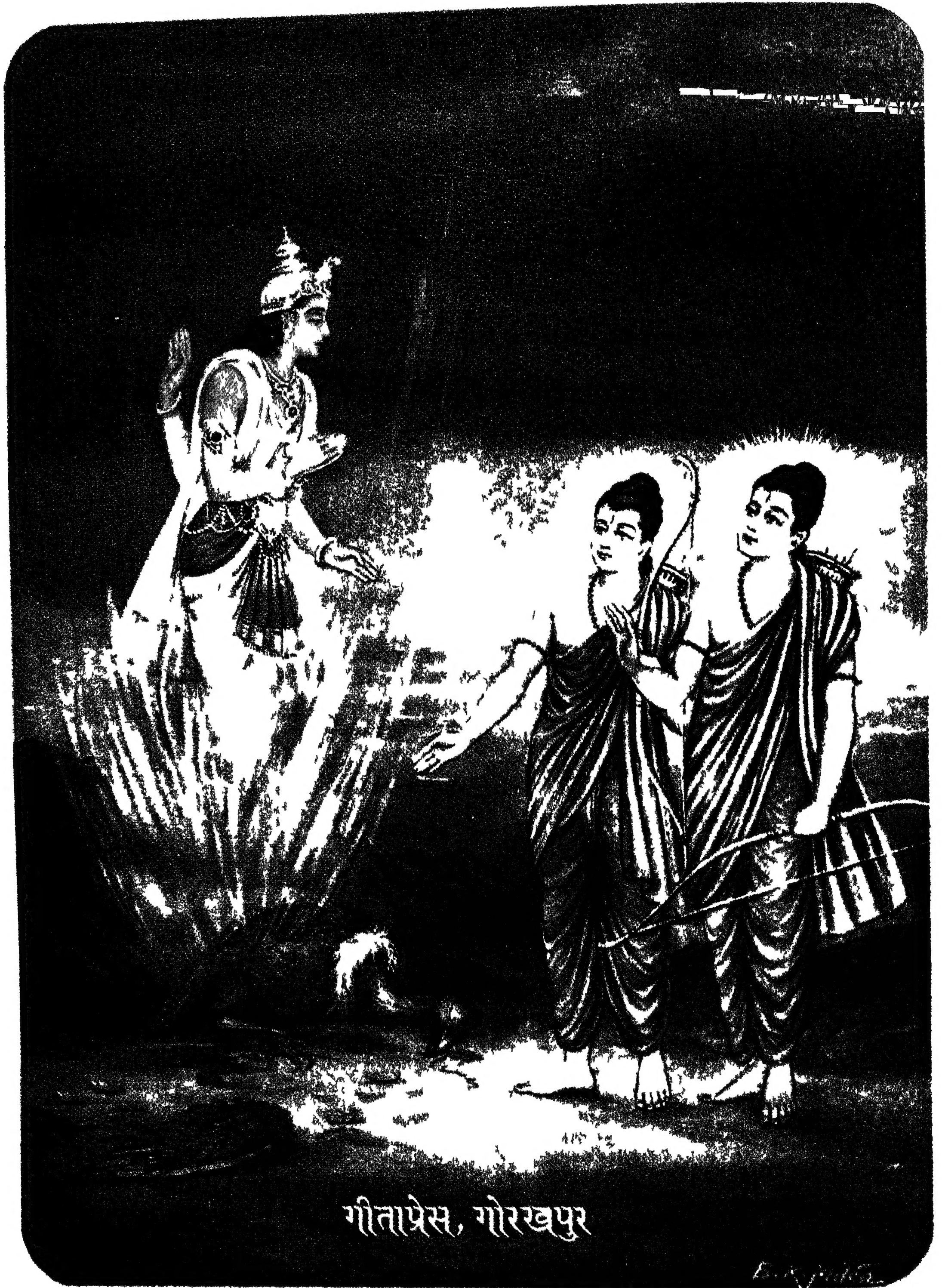
पादुका-दान

Sandals handed ovei



श्रीदशरथ-नन्दन Srī Dasarathanandana (The darling of Dasaratha)

क्रीडा-वेशमे आनन्दकन्द The blissful Lord in sport-



जटायुकी स्तुति

The Prayer by Jatāyu



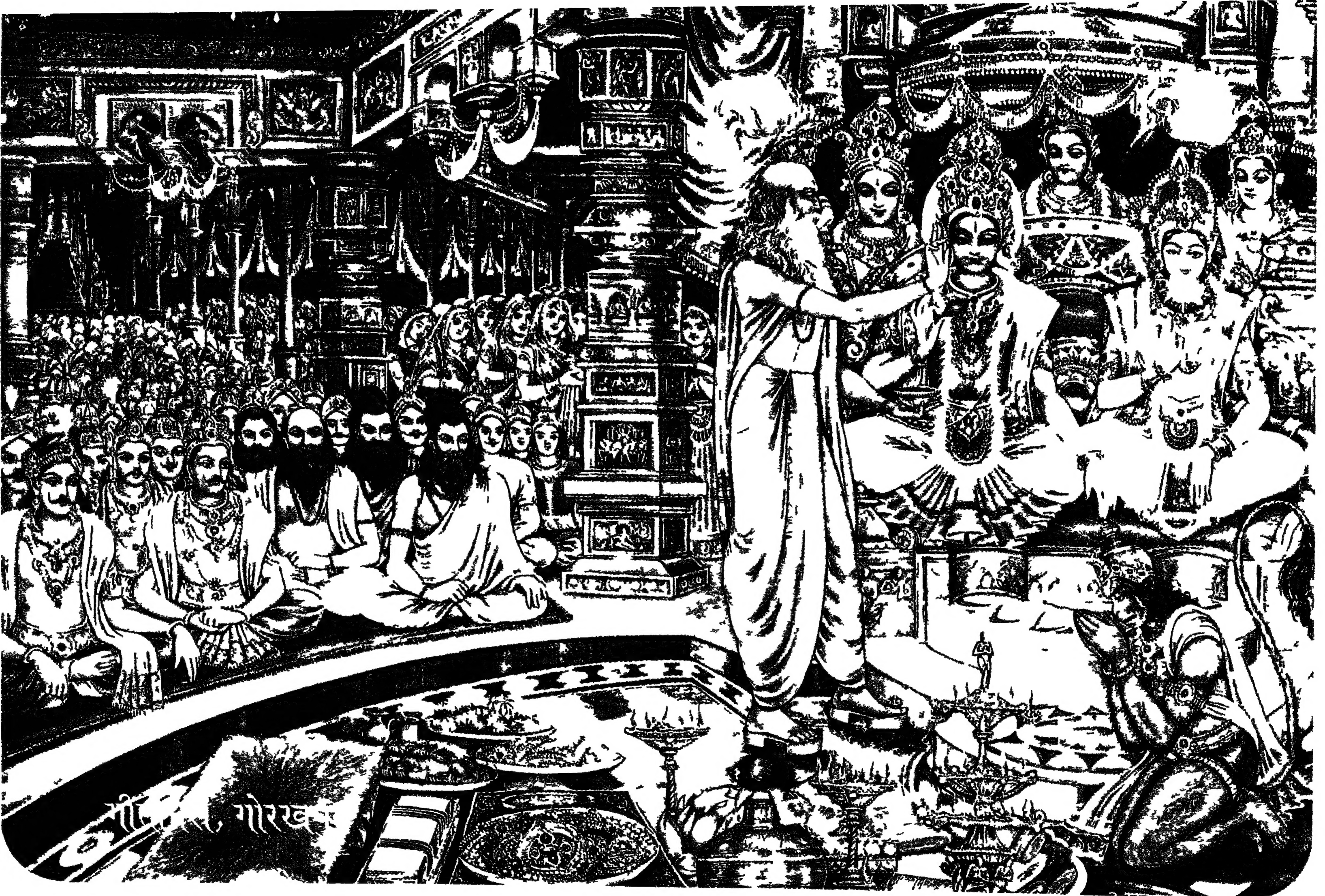
हनुमानजीकी प्रार्थना

The Prayer by Hanumāna



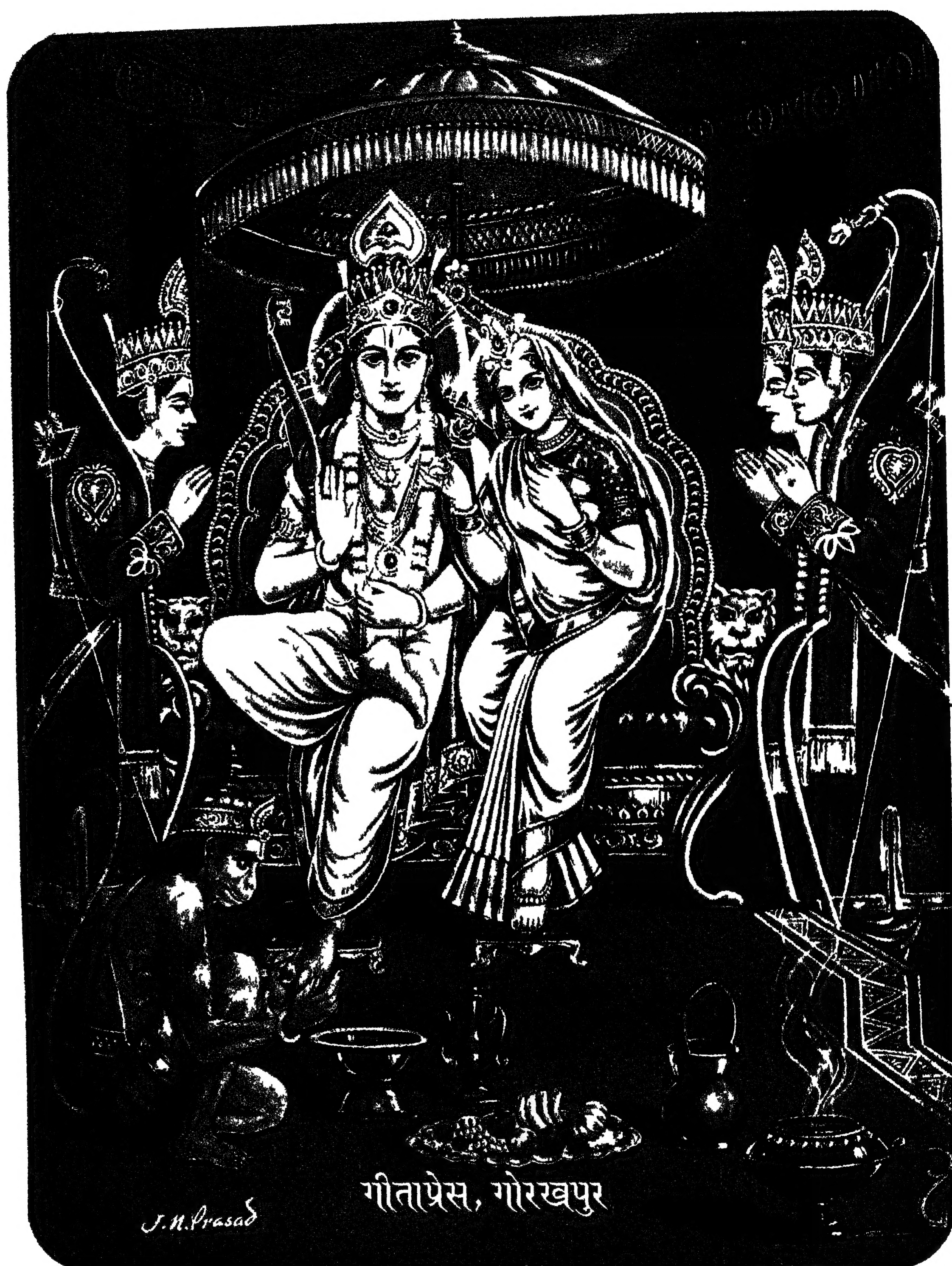
भूधराकार हनुमान

The mountainous Hanumāna



भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक

The coronation of Lord Rāma



श्रीरामदरबारकी झाँकी

Rāma's Court—A panoramic view

74

॥ ॐ ॥

अध्यात्मरामायण

हिन्दी-अनुवादसहित

आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकब्रह्म त-
द्रामो विष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञाय भूतेश्वर ।
उद्धृत्याखिलसारसङ्ग्रहमिद सङ्क्षेपत प्रस्फुट
श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राह प्रियायै भव ॥



अनुवादक—

(मुनिलाल)

प्रकाशक—गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

स० १९८९ से २०५७ तक	२,२३,२५०
स० २०५८ अट्ठाईसवाँ सस्करण	५,०००
	योग २,२८,२५०

मूल्य—पचास रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन (०५५१) ३३४७२१; फैक्स ३३६९९७
e-mail gitapres@ndf vsnl net in | visit us at www gitapress org

श्रीहरि

निवेदन

***

मूक करोति वाचाल पङ्गु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्दमाधवम्।।

भगवान्‌की लीलाका रहस्य कौन जान सकता है। बडे-बडे ऋषि, मुनि, महात्मा और सिद्धगण आजन्म उसीका मनन करते रहनेपर भी उसका पार नही पा सके। किन्तु वह इतनी दुर्विज्ञेय और गूढ होनेपर भी कितनी मधुर, मनमोहिनी और कल्याणमयी है। रसिकजन ससारके सभी भोगोको छोडकर अपनी आयुको एकमात्र उसीके अनुशीलनमे लगाकर अपनेको अत्यन्त बडभागी समझते है। वे उसकी माधुरीका आस्वादन करते-करते कभी नही अघाते। अन्य लौकिक एव पारलौकिक भोगोका पर्यवसान उनसे विरक्त हो जाने—अघा जानेमे होता है, किन्तु इस लोकोत्तर रससे इसके रसिकका चित्त कभी नही ऊबता। जिसका चित्त इससे ऊबने लगे, समझना चाहिये उसने इसका आस्वादन ही नही किया। इसीलिये रसिकचक्रचूडामणि श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजी कहते है—

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥

धन्य है वे महाभाग, जिन्हे उसके यथेष्ठ आस्वादनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भगवान्‌के उसी दुर्लभ गूढ रहस्यको, जिसका यथावत् समझना बडे-बडे मेधावी आचार्य और योगनिष्ठ यतियोके लिये भी अत्यन्त कठिन है और जिसे विभिन्नरूपसे ग्रहण करनेके कारण ही इस अनादि ससारमे अनादिकालसे अनन्त सम्प्रदायो और मतोकी प्रवृत्ति होती आयी है, मुझ-जैसे मन्दमतिको ठीक-ठीक समझ लेना कैसे सम्भव है? उसे समझनेके योग्य मेरे पास विद्या, बुद्धि, विवेक अथवा श्रद्धा आदि कोई भी तो सामग्री नही है। इस ओर मेरा प्रवृत्त होना भी बडी हॅसीकी बात है और प्रवृत्त होनेके अनन्तर जितनी भी सेवा मुझसे बनी है उसपर भी मुझे तो आश्चर्य है। मै इस बातको स्वय ही अनुभव करता हूँ कि इस अनधिकार चेष्टामे प्रवृत्त होकर मै विद्या और विद्वानोका अपराध कर रहा हूँ।

किन्तु, एक विचार है जो मुझे इन सकोच और आश्चर्य दोनोहीसे मुक्त कर देता है। हम पद-पदपर देखते है कि अपनी इच्छा न होनेपर भी हमे बलात् बहुत-से ऐसे कार्योमे लग जाना पडता है, जिनमे प्रवृत्त होनेकी पहले कभी आशा भी नही थी। इसका कारण यही है कि हमारी सारी प्रवृत्तियोका नियामक कोई और ही है, जो देहाभिमानके पर्देमे छिपा हुआ हमारे अन्त करणमे विराजमान है। हमारी सारी प्रवृत्तियॉ उस हृदयस्थित देवके ही इशारेपर नाचती रहती है। वस्तुत तो 'हमारी प्रवृत्तियॉ, हमारी चित्तवृत्तियॉ' ऐसा कहना और मानना भी अज्ञानवश परिच्छिन्न अहकारको स्वीकार करनेके ही कारण है। विज्ञान-विभावसुका विमल प्रकाश होनेपर अज्ञानान्धकारके नष्ट होते ही जब देहाभिमानरूप उलूक न जाने कहॉ लुक जाता है, तब कर्ता, कर्म और करणादिका कोई भेद नही रहता। फिर तो प्रवृत्ति, प्रवर्त्तक और प्रवर्त्य—सब कुछ एकमात्र वह अन्तर्यामी ही रहते है, जिनके यत्किञ्चित् कृपा-कटाक्षसे ही यह सम्पूर्ण प्रपञ्च भासित हो रहा है तथा जिनकी सत्ता पाकर ही यह सर्वथा असत् होनेपर भी, ध्रुव—सत्य बना हुआ है। अत हमारा सारा

प्रकाशक—गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

स० १९८९ से २०५७ तक	२,२३,२५०
स० २०५८ अट्ठाईसवाँ सस्करण	५,०००
	योग २,२८,२५०

मूल्य—पचास रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन · (०५५१) ३३४७२१; फैक्स ३३६९९७
e-mail gitapres@ndf vsnl net in | visit us at www gitapress org

श्रीहरि

निवेदन

***

मूक करोति वाचाल पङ्गु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्दमाधवम्।।

भगवान्‌की लीलाका रहस्य कौन जान सकता है। बडे-बडे ऋषि, मुनि, महात्मा और सिद्धगण आजन्म उसीका मनन करते रहनेपर भी उसका पार नही पा सके। किन्तु वह इतनी दुर्विज्ञेय और गूढ होनेपर भी कितनी मधुर, मनमोहिनी और कल्याणमयी है। रसिकजन ससारके सभी भोगोको छोडकर अपनी आयुको एकमात्र उसीके अनुशीलनमे लगाकर अपनेको अत्यन्त बडभागी समझते है। वे उसकी माधुरीका आस्वादन करते-करते कभी नही अघाते। अन्य लौकिक एव पारलौकिक भोगोका पर्यवसान उनसे विरक्त हो जाने—अघा जानेमे होता है, किन्तु इस लोकोत्तर रससे इसके रसिकका चित्त कभी नही ऊबता। जिसका चित्त इससे ऊबने लगे, समझना चाहिये उसने इसका आस्वादन ही नही किया। इसीलिये रसिकचक्रचूडामणि श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजी कहते है—

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥

धन्य है वे महाभाग, जिन्हे उसके यथेष्ठ आस्वादनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भगवान्‌के उसी दुर्लभ गूढ रहस्यको, जिसका यथावत् समझना बडे-बडे मेधावी आचार्य और योगनिष्ठ यतियोके लिये भी अत्यन्त कठिन है और जिसे विभिन्नरूपसे ग्रहण करनेके कारण ही इस अनादि ससारमे अनादिकालसे अनन्त सम्प्रदायो और मतोकी प्रवृत्ति होती आयी है, मुझ-जैसे मन्दमतिको ठीक-ठीक समझ लेना कैसे सम्भव है? उसे समझनेके योग्य मेरे पास विद्या, बुद्धि, विवेक अथवा श्रद्धा आदि कोई भी तो सामग्री नही है। इस ओर मेरा प्रवृत्त होना भी बडी हँसीकी बात है और प्रवृत्त होनेके अनन्तर जितनी भी सेवा मुझसे बनी है उसपर भी मुझे तो आश्चर्य है। मै इस बातको स्वय ही अनुभव करता हूँ कि इस अनधिकार चेष्टामे प्रवृत्त होकर मै विद्या और विद्वानोका अपराध कर रहा हूँ।

किन्तु, एक विचार है जो मुझे इन सकोच और आश्चर्य दोनोहीसे मुक्त कर देता है। हम पद-पदपर देखते है कि अपनी इच्छा न होनेपर भी हमे बलात् बहुत-से ऐसे कार्योमे लग जाना पडता है, जिनमे प्रवृत्त होनेकी पहले कभी आशा भी नही थी। इसका कारण यही है कि हमारी सारी प्रवृत्तियोका नियामक कोई और ही है, जो देहाभिमानके पर्देमे छिपा हुआ हमारे अन्त करणमे विराजमान है। हमारी सारी प्रवृत्तियॉ उस हृदयस्थित देवके ही इशारेपर नाचती रहती है। वस्तुत तो 'हमारी प्रवृत्तियॉ, हमारी चित्तवृत्तियॉ' ऐसा कहना और मानना भी अज्ञानवश परिच्छिन्न अहकारको स्वीकार करनेके ही कारण है। विज्ञान-विभावसुका विमल प्रकाश होनेपर अज्ञानान्धकारके नष्ट होते ही जब देहाभिमानरूप उलूक न जाने कहॉ लुक जाता है, तब कर्ता, कर्म और करणादिका कोई भेद नही रहता। फिर तो प्रवृत्ति, प्रवर्त्तक और प्रवर्त्य—सब कुछ एकमात्र वह अन्तर्यामी ही रहते है, जिनके यत्किञ्चित् कृपा-कटाक्षसे ही यह सम्पूर्ण प्रपञ्च भासित हो रहा है तथा जिनकी सत्ता पाकर ही यह सर्वथा असत् होनेपर भी, ध्रुव—सत्य बना हुआ है। अत हमारा सारा

सकोच और आश्चर्य तभीतक है जबतक हम सच्चे कर्ताको भूलकर तुच्छ देहाभिमानके सिरपर सारे कर्तृत्व-भोक्तृत्वका भार लाद देते है और उस देहाभिमानको देहाभिमान न समझकर अपना परमार्थस्वरूप मान बैठते है, नही तो जो लीलामय बिना किसी प्रयोजनके केवल लीलाके लिये ही इच्छामात्रसे इस अनन्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते है, जिनकी मायासे मोहित होकर हमारी इस हाड-मासके पञ्जरमे आत्मबुद्धि होती है और फिर इसीकी आसक्तिमे फॅसकर स्त्री-धन-धरती आदि महाघृणित और असार वस्तुओमे रमणीय-बुद्धि होती है तथा जिनके लेशमात्र कृपाकणसे यह अनन्त ब्रह्माण्ड बालूकी भीत हो जाता है, उन महामहिम सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वरके लिये क्या दुष्कर है? उनकी जैसी इच्छा होती है उसी ओर सबको प्रवृत्त होना पडता है और उनकी इच्छाके अनुसार ही उन्हे उसमे सफलता अथवा असफलता प्राप्त होती रहती है।

अस्तु, 'तोमार इच्छा पूर्ण हउक करुणामय स्वामी' इस बग-कहावतके अनुसार प्रभुने जो कार्य सौपा है उसे उन्हीका काम समझकर उन्हीके इङ्गितके अनुसार करते रहनेमे ही हमारा कल्याण है, और वास्तवमे हम करते भी ऐसा ही है, परन्तु ऐसा समझते नही। इसीलिये उसकी सफलता-असफलतामे हर्ष-शोकके शिकार होते है। प्रभु हमे ऐसा ही समझते रहनेकी शक्ति प्रदान करे।

श्रीमदध्यात्मरामायण कोई नवीन ग्रन्थ नही है, जिसके विषयमे कुछ विशेष कहनेकी आवश्यकता हो। यह परम पवित्र गाथा साक्षात् भगवान् शङ्करने अपनी प्रेयसी आदिशक्ति श्रीपार्वतीजीको सुनायी है। यह आख्यान ब्रह्माण्डपुराणके उत्तरखण्डके अन्तर्गत माना जाता है। अत इसके रचयिता महामुनि वेदव्यासजी ही है। इसमे परम रसायन रामचरितका वर्णन करते-करते पद-पदपर प्रसङ्ग उठाकर भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचार-सम्बन्धी दिव्य उपदेश दिये गये है। विविध विषयोका विवरण रहनेपर भी इसमे प्रधानता अध्यात्मतत्त्वके विवेचनकी ही है। इसीलिये यह 'अध्यात्मरामायण' कहलाता है। उपदेशभागके सिवा इसका कथाभाग भी कुछ कम महत्त्वका नही है। भगवान् श्रीराम मूर्तिमान् अध्यात्मतत्त्व है, उनके परमपावन चरित्रकी महिमाका कहॉतक वर्णन किया जाय? आजकल जिस श्रीरामचरितमानसमे अवगाहनकर करोडो नर-नारी अपनेको कृतकृत्य मान रहे है, उसके कथानकका आधार भी अधिकाशमे यही ग्रन्थ है। श्रीरामचरितमानसकी कथा जितनी अध्यात्मरामायणसे मिलती-जुलती है उतनी और किसीसे नही मिलती। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी इसीका प्रामाण्य सबसे अधिक स्वीकार किया है।

अबतक इस ग्रन्थके कई अनुवाद हो चुके है। चार-पॉच तो मेरे देखनेमे भी आये है। प्रस्तुत अनुवादमे श्रीवेकटेश्वर स्टीमप्रेसद्वारा प्रकाशित स्वर्गीय प० बलदेवप्रसादजी मित्र तथा स्वर्गीय प० रामेश्वरजी भट्टके अनुवादोसे सहायता ली गयी है। इसके लिये उक्त दोनो महानुभावोका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ। इस ग्रन्थरत्नका अनुवाद करनेका आदेश देकर गीताप्रेसने मुझे इसके अनुशीलनका अमूल्य अवसर दिया है और फिर उसीने इसका सशोधन कराकर इसे प्रकाशित करनेकी भी कृपा की है, इस उपकारके लिये मै सञ्चालकोका हृदयसे आभारी हूँ।

अन्तमे, जिन लीलामयके लीलाकटाक्षसे प्रेरित होकर यह लीला हुई है, उनकी यह लीला आदरपूर्वक उन्हींको समर्पित है। इसमे यदि कुछ अच्छा है तो उन्हीके कृपाकटाक्षका प्रसाद है और जो भूल है वह मेरी अहकारजनित धृष्टताका फल है। इत्यलम्।

विनीत—

अनुवादक

*****

॥ श्रीहरि ॥

विषय-सूची



ॐ

अध्यात्मरामायण



माहात्म्य



राम विश्वमय वन्दे राम वन्दे रघूद्वहम्। राम विप्रवर वन्दे राम श्यामाग्रज भजे॥
यस्य वागशुतश्च्यूत रम्य रामायणामृतम्। शैलजासेवित वन्दे त शिव सोमरूपिणम्॥
सच्चिदानन्दसदोह भक्तिभूतिविभूषणम्। पूर्णानन्दमह वन्दे सद्गुर शङ्कर स्वयम्॥
अज्ञानध्वान्तसहर्त्री ज्ञानालोकविलासिनी। चन्द्रचूडवचश्चन्द्रचन्द्रिकेय विराजते॥

अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये ।
मनोगिरा विदूराय दक्षिणामूर्तये नम ॥ १ ॥

सूत उवाच

कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया।
पर्यटन्सकलॉंल्लोकान् सत्यलोकमुपागमत्॥ २ ॥
तत्र दृष्ट्वा मूर्तिमद्भिश्छन्दोभि परिवेष्टितम्।
बालार्कप्रभया सम्यग्भासयन्त सभागृहम्॥ ३ ॥
मार्कण्डेयादिमुनिभि स्तूयमान मुहुर्मुहु ।
सर्वार्थगोचरज्ञान सरस्वत्या समन्वितम्॥ ४ ॥
चतुर्मुख जगन्नाथ भक्ताभीष्टफलप्रदम्।
प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या तुष्टाव मुनिपुङ्गव ॥ ५ ॥
सन्तुष्टस्त मुनिं प्राह स्वयम्भूर्वैष्णवोत्तमम्।
किं प्रष्टुकामस्त्वमसि तद्वदिष्यामि ते मुने॥ ६ ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत्।
त्वत्त श्रुत मया सर्व पूर्वमेव शुभाशुभम्॥ ७ ॥
इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्य सुरसत्तम।
तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो मयि॥ ८ ॥
प्राप्ते कलियुगे घोरे नरा पुण्यविवर्जिता ।
दुराचाररता सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखा ॥ ९ ॥
परापवादनिरता परद्रव्याभिलाषिण ।
परस्त्रीसक्तमनस परहिंसापरायणा ॥ १० ॥

जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे परे, त्रिगुणातीत, मलहीन, ज्ञानस्वरूप और मन, वाणी आदिके अविषय है उन दक्षिणामूर्ति भगवान् (सदाशिव) को नमस्कार है॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले—एक समय योगिराज नारदजी दूसरोपर कृपा करनेके लिये समस्त लोकोमे विचरते हुए सत्यलोकमे पहुँचे॥ २ ॥ वहाँ मूर्तिमान् वेदोसे घिरे हुए, अपनी बालसूर्यके समान प्रभासे सभाभवनको पूर्णतया देदीप्यमान् करते हुए, मार्कण्डेय आदि मुनिजनोसे बारम्बार स्तुति किये जाते हुए सम्पूर्ण पदार्थोका ज्ञान रखनेवाले और भक्तोको इच्छित फल देनेवाले सरस्वती-युक्त जगत्पति ब्रह्माजीको देखकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उन्हे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिभावसे स्तुति की॥ ३—५ ॥

तब स्वयम्भू ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर वैष्णवाग्रणी श्रीनारदजीसे कहा—"मुने! तुम क्या पूछना चाहते हो? मै तुमसे वह सब कहूँगा" ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर नारदजीने उनसे कहा, "हे देवश्रेष्ठ! शुभाशुभ कर्मोका वर्णन तो मै आपसे पहले ही सुन चुका हूँ। अब मुझे एक ही बात और सुननी है, यदि मुझपर आपकी कृपा है तो गोपनीय होनेपर भी वह सुनाइये॥ ७-८ ॥ अब घोर कलियुगके आनेपर मनुष्य पुण्यकर्म छोड देगे और सत्यभाषणसे विमुख होकर दुराचारमे प्रवृत्त हो जायॅगे॥ ९ ॥ वे दूसरोकी निन्दामे तत्पर रहेगे, दूसरोके धनकी इच्छा करेगे, परस्त्रीमे चित्त लगावेगे और परायी हिंसा करेगे॥ १० ॥

देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिका पशुबुद्धय ।
मातापितृकृतद्वेषा स्त्रीदेवा कामकिङ्करा ॥ ११ ॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविन ।
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिता ॥ १२ ॥
त्यक्तस्वजातिकर्माण प्रायश परवञ्चका ।
क्षत्रियाश्च तथा वैश्या स्वधर्मत्यागशीलिन ॥ १३ ॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचाररतत्परा ।
स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञानिर्भया ॥ १४ ॥
श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न सशय ।
एतेषा नष्टबुद्धीनां परलोक कथ भवेत् ॥ १५ ॥
इति चिन्ताकुल चित्त जायते मम सन्ततम् ।
लघूपायेन येनैषा परलोकगतिर्भवेत् ।
तमुपायमुपाख्याहि सर्व वेत्ति यतो भवान् ॥ १६ ॥
इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासन ।
साधु पृष्ट त्वया साधो वक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥ १७ ॥
पुरा त्रिपुरहन्तार पार्वती भक्तवत्सला ।
श्रीरामतत्त्व जिज्ञासु पप्रच्छ विनयान्विता ॥ १८ ॥
प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढ व्याख्यातवान् स्वयम् ।
पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ॥ १९ ॥
तत्पार्वती जगद्धात्री पूजयित्वा दिवानिशम् ।
आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम् ॥ २० ॥
प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्यदा ।
तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ २१ ॥
तावद्विजृम्भते पाप ब्रह्महत्यापुर सरम् ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २२ ॥
तावत्कलिमहोत्साहो नि शङ्क सम्प्रवर्तते ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २३ ॥
तावद्यमभटा शूरा सञ्चरिष्यन्ति निर्भया ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २४ ॥
तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ॥ २५ ॥
तावत्स्वरूप रामस्य दुर्बोध महतामपि ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २६ ॥

वे मूढ देहमे ही आत्मबुद्धिवाले और नास्तिक होगे, उनकी बुद्धि पशुओके समान होगी और वे कामके गुलाम होकर स्त्रीके भक्त और माता-पिताके द्रोही बनेगे ॥ ११ ॥ ब्राह्मणगण लोभरूपी ग्रहसे ग्रस्त और वेद बेचकर अपनी आजीविका चलानेवाले होगे, वे धनोपार्जनके लिये ही विद्याभ्यास करेगे और (विद्या तथा ब्राह्मणत्वके) मदसे उन्मत्त हो जायँगे ॥ १२ ॥ क्षत्रिय और वैश्यगण भो स्वधर्मको त्यागनेवाले तथा अपने जाति-कर्मोको छोडकर प्राय दूसरोको ठगनेवाले ही होगे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार जो शूद्र होगे वे भी ब्राह्मणोके आचारमे तत्पर हो जायँगे तथा स्त्रियाँ प्राय भ्रष्टाचारिणी और अपने पतिका अपमान करनेमे निडर होगी ॥ १४ ॥ निस्सन्देह वे अपने सास-ससुरोसे द्रोह करेगी। इन नष्ट-बुद्धियोका परलोक किस प्रकार सुधरेगा ? ॥ १५ ॥ इस चिन्तासे मेरा चित्त निरन्तर व्याकुल रहता है। जिस सुगम उपायसे इनका परलोक सुधर सकता हो वह आप मुझे बतलाइये क्योकि आप सभी कुछ जानते है'' ॥ १६ ॥

देवर्षि नारदजीके ये वचन सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले—''हे साधो ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। मैं उसे बतलाता हूँ, तुम श्रद्धापूर्वक सुनो ॥ १७ ॥ पूर्वकालमे भक्तवत्सला पार्वतीजीने श्रीराम-तत्त्वकी जिज्ञासासे त्रिपुर-विनाशक भगवान् शङ्करसे विनयपूर्वक प्रश्न किया था ॥ १८ ॥ तब अपनी प्रियासे श्रीमहादेवजीने जिस गूढ रहस्यका वर्णन किया था वह उत्तम पुराण अध्यात्मरामायणके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १९ ॥ अब जगज्जननी पार्वतीजी उसका पूजन कर रात-दिन उसीका मनन करती आत्मानन्दमे मग्न रहती है ॥ २० ॥ जिस समय प्राणियोके सौभाग्यसे उसका लोकमे प्रचार होगा उस समय उसके अध्ययनमात्रसे लोग शुभगति प्राप्त करेगे ॥ २१ ॥ ससारमें ब्रह्महत्यादि पाप तभीतक रहेंगे जबतक अध्यात्मरामायणका प्रादुर्भाव नही होगा ॥ २२ ॥ कलियुगका महान् उत्साह तभीतक नि शङ्क रहेगा जबतक ससारमे अध्यात्मरामायणका उदय न होगा ॥ २३ ॥ यमराजके शूरवीर दूत तभीतक निर्भय विचरते रहेगे जबतक जगत्मे अध्यात्मरामायण प्रकट नहीं होगा ॥ २४ ॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोमे परस्पर विवाद तभीतक रहेगा तथा महापुरुषोको भी भगवान् रामका स्वरूप तभीतक दुर्बोध रहेगा जबतक ससारमे अध्यात्म-रामायणका प्रकाश नही होगा ॥ २५-२६ ॥

अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् ।
फल वक्तु न शक्नोमि कात्स्न्येंन मुनिसत्तम ॥ २७ ॥
तथापि तस्य माहात्म्य वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ ।
शृणु चित्त समाधाय शिवेनोक्त पुरा मम ॥ २८ ॥
अध्यात्मरामायणत श्लोक श्लोकार्धमेव वा ।
य पठेद्भक्तिसयुक्त स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥ २९ ॥
यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधी ।
यथाशक्ति वदेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३० ॥
यो भक्त्यार्चयतेऽध्यात्मरामायणमतन्द्रित ।
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फल तस्य भवेन्मुने ॥ ३१ ॥
यदृच्छयापि योऽध्यात्मरामायणमनादरात् ।
अन्यत शृणुयान्मर्त्य सोऽपि मुच्येत पातकात् ॥ ३२ ॥
नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरत ।
सर्वदेवार्चनफल स प्राप्नोति न सशय ॥ ३३ ॥
लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषत ।
यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफल शृणु ॥ ३४ ॥
अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च ।
यत्फल दुर्लभ लोके तत्फल तस्य सम्भवेत् ॥ ३५ ॥
एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषित ।
यो रामभक्त सदसि व्याकरोति नरोत्तम ॥ ३६ ॥
तस्य पुण्यफल वक्ष्ये शृणु वैष्णवसत्तम ।
प्रत्यक्षर तु गायत्रीपुरश्चर्याफल भवेत् ॥ ३७ ॥
उपवासव्रत कृत्वा श्रीरामनवमीदिने ।
रात्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधी ।
य पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्य वदाम्यहम् ॥ ३८ ॥
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकश ।
आत्मतुल्य धन सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥ ३९ ॥
विप्रेभ्यो व्याससतुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते ।
तत्फल सम्भवेत्तस्य सत्य सत्य न सशय ॥ ४० ॥
यो गायते मुदाध्यात्मरामायणमहर्निशम् ।
आज्ञा तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमा ॥ ४१ ॥

"हे मुनिश्रेष्ठ ! मै अध्यात्मरामायणके कीर्तन और श्रवण आदिसे होनेवाले फलका पूर्णतया वर्णन नही कर सकता, तथापि हे अनघ ! मै तुम्हे उसका थोडा-सा माहात्म्य सुनाता हूँ। इसे पूर्वकालमे मुझसे शिवजीने कहा था, तुम सावधान होकर सुनो— ॥ २७-२८ ॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणका एक अथवा आधा श्लोक भी भक्ति-पूर्वक पढता है वह तत्क्षण पापमुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥ जो इस अध्यात्मरामायणको नित्यप्रति अनन्य बुद्धिसे भक्तिपूर्वक यथाशक्ति सुनाता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ३० ॥ हे मुने ! जो पुरुष आलस्य छोडकर भक्ति-भावसे प्रतिदिन अध्यात्मरामायणका पूजन करता है उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य दूसरोसे अनियमपूर्वक अनादरसे भी अध्यात्मरामायण श्रवण करता है वह भी पातकसे छूट जाता है ॥ ३२ ॥ जो कोई अध्यात्मरामायणके निकट जाकर उसे नमस्कार करता है वह समस्त देवताओकी पूजाका फल पाता है— इसमे सन्देह नही ॥ ३३ ॥

'जो पुरुष अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण पुस्तक लिखकर राम-भक्तोको देता है उसे जो पुण्य होता है उसका फल सुनो ॥ ३४ ॥ उसे वह फल मिलता है जो वेदोके पढनेसे और शास्त्रोकी व्याख्या करनेसे भी ससारमे दुर्लभ है ॥ ३५ ॥ जो नरश्रेष्ठ रामभक्त एकादशीको उपवास करके सभामे अध्यात्मरामायणकी व्याख्या करता है, हे वैष्णवश्रेष्ठ ! उसके पुण्यका फल बतलाता हूँ, सुनो। उसे एक-एक अक्षरके पढनेमे गायत्रीके पुरश्चरणका फल मिलता है ॥ ३६-३७ ॥ जो पुरुष रामनवमीके दिन निराहार रहकर और फिर रात्रिको जागरण कर अनन्य बुद्धिसे अध्यात्मरामायणको पढता या सुनता है, अब मै उसका पुण्य बतलाता हूँ ॥ ३८ ॥ कुरुक्षेत्रादि सम्पूर्ण पवित्र तीर्थोमे सर्वग्रस्त सूर्यग्रहणके समय अनेको बार व्यासजीके समान ब्राह्मणोको अपने बराबर धन देनेसे जो फल होता है उसे वही फल मिलता है, इसमे कोई सन्देह नही, यह सर्वथा सत्य है, सर्वथा सत्य है ॥ ३९-४० ॥ जो मनुष्य अहर्निश प्रसन्नचित्तसे अध्यात्मरामायणका गान करता है उसकी आज्ञाकी इन्द्रादि देवगण प्रतीक्षा किया करते है ॥ ४१ ॥

देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिका पशुबुद्धय ।
मातापितृकृतद्वेषा स्त्रीदेवा कामकिङ्करा ॥ ११ ॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविन ।
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिता ॥ १२ ॥
त्यक्तस्वजातिकर्माण प्रायश परवञ्चका ।
क्षत्रियाश्च तथा वैश्या स्वधर्मत्यागशीलिन ॥ १३ ॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचारतत्परा ।
स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भया ॥ १४ ॥
श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न सशय ।
एतेषा नष्टबुद्धीनां परलोक कथ भवेत् ॥ १५ ॥
इति चिन्ताकुल चित्त जायते मम सन्ततम् ।
लघूपायेन येनैषा परलोकगतिर्भवेत् ।
तमुपायमुपाख्याहि सर्व वेत्ति यतो भवान् ॥ १६ ॥
इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासन ।
साधु पृष्ट त्वया साधो वक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥ १७ ॥
पुरा त्रिपुरहन्तार पार्वती भक्तवत्सला ।
श्रीरामतत्त्व जिज्ञासु पप्रच्छ विनयान्विता ॥ १८ ॥
प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढ व्याख्यातवान् स्वयम् ।
पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ॥ १९ ॥
तत्पार्वती जगद्धात्री पूजयित्वा दिवानिशम् ।
आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम् ॥ २० ॥
प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्यदा ।
तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ २१ ॥
तावद्विजृम्भते पाप ब्रह्महत्यापुर सरम् ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २२ ॥
तावत्कलिर्महोत्साहो नि शङ्क सम्प्रवर्तते ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २३ ॥
तावद्यमभटा शूरा सञ्चरिष्यन्ति निर्भया ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २४ ॥
तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ॥ २५ ॥
तावत्स्वरूप रामस्य दुर्बोध महतामपि ।
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २६ ॥

वे मूढ देहमे ही आत्मबुद्धिवाले और नास्तिक होगे, उनकी बुद्धि पशुओके समान होगी और वे कामके गुलाम होकर स्त्रीके भक्त और माता-पिताके द्रोही बनेगे ॥ ११ ॥ ब्राह्मणगण लोभरूपी ग्रहसे ग्रस्त और वेद बेचकर अपनी आजीविका चलानेवाले होगे, वे धनोपार्जनके लिये ही विद्याभ्यास करेगे और (विद्या तथा ब्राह्मणत्वके) मदसे उन्मत्त हो जायँगे ॥ १२ ॥ क्षत्रिय और वैश्यगण भी स्वधर्मको त्यागनेवाले तथा अपने जाति-कर्मोको छोडकर प्राय दूसरोको ठगनेवाले ही होगे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार जो शूद्र होगे वे भी ब्राह्मणोके आचारमे तत्पर हो जायँगे तथा स्त्रियाँ प्राय भ्रष्टाचारिणी और अपने पतिका अपमान करनेमे निडर होगी ॥ १४ ॥ निस्सन्देह वे अपने सास-ससुरोसे द्रोह करेगी। इन नष्ट-बुद्धियोका परलोक किस प्रकार सुधरेगा ? ॥ १५ ॥ इस चिन्तासे मेरा चित्त निरन्तर व्याकुल रहता है। जिस सुगम उपायसे इनका परलोक सुधर सकता हो वह आप मुझे बतलाइये क्योकि आप सभी कुछ जानते है'' ॥ १६ ॥

देवर्षि नारदजीके ये वचन सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले—''हे साधो ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। मैं उसे बतलाता हूँ, तुम श्रद्धापूर्वक सुनो ॥ १७ ॥ पूर्वकालमे भक्तवत्सला पार्वतीजीने श्रीराम-तत्त्वकी जिज्ञासासे त्रिपुर-विनाशक भगवान् शङ्करसे विनयपूर्वक प्रश्न किया था ॥ १८ ॥ तब अपनी प्रियासे श्रीमहादेवजीने जिस गूढ रहस्यका वर्णन किया था वह उत्तम पुराण अध्यात्मरामायणके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १९ ॥ अब जगज्जननी पार्वतीजी उसका पूजन कर रात-दिन उसीका मनन करती आत्मानन्दमे मग्न रहती है ॥ २० ॥ जिस समय प्राणियोके सौभाग्यसे उसका लोकमें प्रचार होगा उस समय उसके अध्ययनमात्रसे लोग शुभगति प्राप्त करेगे ॥ २१ ॥ संसारमें ब्रह्महत्यादि पाप तभीतक रहेंगे जबतक अध्यात्मरामायणका प्रादुर्भाव नहीं होगा ॥ २२ ॥ कलियुगका महान् उत्साह तभीतक नि शङ्क रहेगा जबतक ससारमे अध्यात्मरामायणका उदय न होगा ॥ २३ ॥ यमराजके शूरवीर दूत तभीतक निर्भय विचरते रहेगे जबतक जगत्मे अध्यात्मरामायण प्रकट नहीं होगा ॥ २४ ॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोमे परस्पर विवाद तभीतक रहेगा तथा महापुरुषोको भी भगवान् रामका स्वरूप तभीतक दुर्बोध रहेगा जबतक ससारमे अध्यात्म-रामायणका प्रकाश नही होगा ॥ २५-२६ ॥

अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् ।
फल वक्तु न शक्नोमि कात्स्न्येंन मुनिसत्तम ॥ २७ ॥
तथापि तस्य माहात्म्य वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ ।
शृणु चित्त समाधाय शिवेनोक्त पुरा मम ॥ २८ ॥
अध्यात्मरामायणात श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ।
य पठेद्भक्तिसयुक्त स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥ २९ ॥
यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधी ।
यथाशक्ति वदेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३० ॥
यो भक्त्यार्चयतेऽध्यात्मरामायणमतन्द्रित ।
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फल तस्य भवेन्मुने ॥ ३१ ॥
यदृच्छयापि योऽध्यात्मरामायणमनादरात् ।
अन्यत शृणुयान्मर्त्य सोऽपि मुच्येत पातकात् ॥ ३२ ॥
नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरत ।
सर्वदेवार्चनफल स प्राप्नोति न सशय ॥ ३३ ॥
लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषत ।
यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफल शृणु ॥ ३४ ॥
अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च ।
यत्फल दुर्लभ लोके तत्फल तस्य सम्भवेत् ॥ ३५ ॥
एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषित ।
यो रामभक्त सदसि व्याकरोति नरोत्तम ॥ ३६ ॥
तस्य पुण्यफल वक्ष्ये शृणु वैष्णवसत्तम ।
प्रत्यक्षर तु गायत्रीपुरश्चर्याफल भवेत् ॥ ३७ ॥
उपवासव्रत कृत्वा श्रीरामनवमीदिने ।
रात्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधी ।
य पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्य वदाम्यहम् ॥ ३८ ॥
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकश ।
आत्मतुल्य धन सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥ ३९ ॥
विप्रेभ्यो व्यासतुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते ।
तत्फल सम्भवेत्तस्य सत्य सत्य न सशय ॥ ४० ॥
यो गायते मुदाध्यात्मरामायणमहर्निशम् ।
आज्ञा तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमा ॥ ४१ ॥

"हे मुनिश्रेष्ठ! मै अध्यात्मरामायणके कीर्तन और श्रवण आदिसे होनेवाले फलका पूर्णतया वर्णन नही कर सकता, तथापि हे अनघ! मै तुम्हे उसका थोडा-सा माहात्म्य सुनाता हूँ। इसे पूर्वकालमे मुझसे शिवजीने कहा था, तुम सावधान होकर सुनो— ॥ २७-२८ ॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणका एक अथवा आधा श्लोक भी भक्ति-पूर्वक पढता है वह तत्क्षण पापमुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥ जो इस अध्यात्मरामायणको नित्यप्रति अनन्य बुद्धिसे भक्तिपूर्वक यथाशक्ति सुनाता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ३० ॥ हे मुने! जो पुरुष आलस्य छोडकर भक्ति-भावसे प्रतिदिन अध्यात्मरामायणका पूजन करता है उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य दूसरोसे अनियमपूर्वक अनादरसे भी अध्यात्मरामायण श्रवण करता है वह भी पातकसे छूट जाता है ॥ ३२ ॥ जो कोई अध्यात्मरामायणके निकट जाकर उसे नमस्कार करता है वह समस्त देवताओकी पूजाका फल पाता है— इसमे सन्देह नही ॥ ३३ ॥

'जो पुरुष अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण पुस्तक लिखकर राम-भक्तोको देता है उसे जो पुण्य होता है उसका फल सुनो ॥ ३४ ॥ उसे वह फल मिलता है जो वेदोके पढनेसे और शास्त्रोकी व्याख्या करनेसे भी ससारमे दुर्लभ है ॥ ३५ ॥ जो नरश्रेष्ठ रामभक्त एकादशीको उपवास करके सभामे अध्यात्मरामायणकी व्याख्या करता है, हे वैष्णवश्रेष्ठ! उसके पुण्यका फल बतलाता हूँ, सुनो। उसे एक-एक अक्षरके पढनेमे गायत्रीके पुरश्चरणका फल मिलता है ॥ ३६-३७ ॥ जो पुरुष रामनवमीके दिन निराहार रहकर और फिर रात्रिको जागरण कर अनन्य बुद्धिसे अध्यात्मरामायणको पढता या सुनता है, अब मै उसका पुण्य बतलाता हूँ ॥ ३८ ॥ कुरुक्षेत्रादि सम्पूर्ण पवित्र तीर्थोंमे सर्वग्रस्त सूर्यग्रहणके समय अनेको बार व्यासजीके समान ब्राह्मणोको अपने बराबर धन देनेसे जो फल होता है उसे वही फल मिलता है, इसमे कोई सन्देह नही, यह सर्वथा सत्य है, सर्वथा सत्य है ॥ ३९-४० ॥ जो मनुष्य अहर्निश प्रसन्नचित्तसे अध्यात्मरामायणको गान करता है उसकी आज्ञाकी इन्द्रादि देवगण प्रतीक्षा किया करते है ॥ ४१ ॥

पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुव्रत ।
यद्यत्करोति तत्कर्म तत कोटिगुण भवेत् ॥ ४२ ॥

तत्र श्रीरामहृदय य पठेत्सुसमाहित ।
स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ॥ ४३ ॥

श्रीरामहृदय यस्तु हनूमत्प्रतिमान्तिके ।
त्रि पठेत्प्रत्यह मौनी स सर्वेप्सितभाग्भवेत् ॥ ४४ ॥

पठन् श्रीरामहृदय तुलस्यश्वत्थयोर्यदि ।
प्रत्यक्षर प्रकुर्वीत ब्रह्महत्यानिवर्तनम् ॥ ४५ ॥

श्रीरामगीतामाहात्म्य कृत्स्न जानाति शङ्कर ।
तदर्ध गिरिजा वेत्ति तदर्ध वेद्म्यह मुने ॥ ४६ ॥

तत्ते किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्न वक्तु न शक्यते ।
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

श्रीरामगीता यत्पाप न नाशयति नारद ।
तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ।
तन्न पश्याम्यह लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ॥ ४८ ॥

रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादिता मुदा ।
लक्ष्मणायार्पिता गीतासुधा पीत्वामरो भवेत् ॥ ४९ ॥

जमदग्निसुत पूर्व कार्तवीर्यवधेच्छया ।
धनुर्विद्यामभ्यसितु महेशस्यान्तिके वसन् ॥ ५० ॥

अधीयमाना पार्वत्या रामगीता प्रयत्नत ।
श्रुत्वा गृहीत्वाशु पठन्नारायणकलामगात् ॥ ५१ ॥

ब्रह्महत्यादिपापाना निष्कृतिं यदि वाञ्छति ।
रामगीता मासमात्र पठित्वा मुच्यते नर ॥ ५२ ॥

दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् ।
पाप यत्तत्कीर्तनेन रामगीता विनाशयेत् ॥ ५३ ॥

शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थसन्निधौ ।
यतीना पुरतस्तद्वद्रामगीता पठेत्तु य ॥ ५४ ॥

स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम् ॥ ५५ ॥

अध्यात्मरामायणका नित्यप्रति नियमपूर्वक पाठ करनेसे मनुष्य जो कुछ पुण्यकर्म करता है वह करोडगुना हो जाता है ॥ ४२ ॥

"इस (अध्यात्मरामायण) मेसे जो पुरुष खूब समाहित होकर श्रीरामहृदयका पाठ करता है वह ब्रह्म-हत्यारा भी हो तो भी तीन दिनमे ही पवित्र हो जाता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष हनुमान्जीकी प्रतिमाके समीप प्रतिदिन तीन बार मौन होकर श्रीरामहृदयका पाठ करता है वह समस्त इच्छित फल प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥ और यदि कोई पुरुष तुलसी या पीपलके निकट श्रीराम-हृदयका पाठ करे तो वह एक-एक अक्षरपर (अपनी) ब्रह्महत्या-(जैसे पापो) को दूर कर देता है ॥ ४५ ॥

"हे मुने ! श्रीरामगीताका माहात्म्य पूरा-पूरा तो श्रीमहादेवजी ही जानते है, उनसे आधा पार्वतीजी जानती है और उनसे आधा मै जानता हूँ ॥ ४६ ॥ सो उसे पूरा कह भी नही सकता, उसमेसे थोडा-सा तुम्हे सुनाता हूँ, जिसके जाननेमात्रसे चित्त तत्काल शुद्ध हो जाता है ॥ ४७ ॥ हे नारद ! जिस पापको श्रीरामगीताने नष्ट नही किया वह ससारमे कभी किसी तीर्थादिसे भी नष्ट नही हो सकता, मै सदा ढूँढनेपर भी उस पापको नही देख पाता अर्थात् ऐसा कोई पाप ही नही है जो श्रीरामगीतासे नष्ट नही होता ॥ ४८ ॥ जिस गीतामृतको भगवान् रामने उपनिषत्सागरका मन्थन कर निकाला और फिर बडी प्रसन्नतासे लक्ष्मणजीको दिया (मनुष्यको चाहिये कि) उसका पान करके अमर हो जाय ॥ ४९ ॥ पूर्वकालमे सहस्रार्जुनके वधकी इच्छासे जमदग्निनन्दन परशुरामजी धनुर्विद्याका अभ्यास करनेके लिये श्रीमहादेवजीके पास रहते थे ॥ ५० ॥ उस समय रामगीताका अध्ययन करती हुई पार्वतीजीसे इसे यत्नपूर्वक सुनकर और तुरत ही हृदयङ्गम कर इसका पाठ करते-करते वे श्रीनारायणके कलारूप हो गये ॥ ५१ ॥ यदि कोई पुरुष ब्रह्महत्या आदि घोर पापोसे मुक्त होना चाहे तो केवल एक मास रामगीताका पाठ करनेसे छूट सकता है ॥ ५२ ॥ बुरे दान, निषिद्ध भोजन और खोटी बोलचाल आदिसे जो पाप होता है उसे रामगीता पाठमात्रसे नष्ट कर देती है ॥ ५३ ॥ जो पुरुष शालग्राम-शिलाके आगे, तुलसी या पीपलके पास अथवा यतिजनोंके सामने रामगीताका पाठ करता है उसे वह फल मिलता है जो वाणीका भी विषय नही है ॥ ५४-५५ ॥

रामगीता पठन्भक्त्या य श्राद्धे भोजयेद् द्विजान् ।
तस्य ते पितर सर्वे यान्ति विष्णो पर पदम् ॥ ५६ ॥

एकादश्या निराहारो नियतो द्वादशीदिने ।
स्थित्वागस्त्यतरोर्मूले रामगीता पठेत्तु य ।
स एव राघव साक्षात्सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥ ५७ ॥

विना दान विना ध्यान विना तीर्थावगाहनम् ।
रामगीता नरोऽधीत्य तदनन्तफल लभेत् ॥ ५८ ॥

बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वत ।
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च ।
अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि ॥ ५९ ॥

अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय
माहात्म्यमेतदुदित कमलासनेन ।
य श्रद्धया पठति वा शृणुयात्स मर्त्य
प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमान ॥ ६० ॥

जो मनुष्य श्राद्धमे रामगीताका भक्तिपूर्वक पाठ करके ब्राह्मणोको भोजन कराता है उसके वे समस्त पितृगण भगवान् विष्णुके परम धामको जाते है ॥ ५६ ॥ जो पुरुष एकादशीके दिन निराहार और जितेन्द्रिय रहकर द्वादशीको अगस्त्य-वृक्षके नीचे बैठकर रामगीताका पाठ करता है वह साक्षात् रामरूप ही है, उसकी समस्त देवगण पूजा करते है ॥ ५७ ॥ रामगीताका पाठ करनेसे मनुष्य बिना किसी दान, ध्यान अथवा तीर्थ-स्नानके ही अक्षय फल पाता है ॥ ५८ ॥ हे नारद ! और अधिक क्या कहा जाय जो वास्तविक बात है वह सुन— श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास आदि सैकडो शास्त्र श्रीअध्यात्मरामायणकी एक तुच्छ कलाके समान भी नही है" ॥ ५९ ॥

यह अध्यात्मरामायणका माहात्म्य श्रीब्रह्माजीने मुनिराज नारदसे कहा है । इसे जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पढता या सुनता है वह देवताओसे पूजित होकर श्रीविष्णु-भगवान्का पद प्राप्त करता है ॥ ६० ॥



इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डेऽध्यात्मरामायणमाहात्म्य सम्पूर्णम् ।





ॐ

अध्यात्मरामायण

बालकाण्ड

प्रथम सर्ग

रामहृदय

य पृथ्वीभरवारणाय दिविजै
सप्रार्थितश्चिन्मय
सजात पृथिवीतले रविकुले
मायामनुष्योऽव्यय ।
निश्चक्र हतराक्षस पुनरगाद्
ब्रह्मत्वमाद्य स्थिरा
कीर्ति पापहरा विधाय जगता
त जानकीश भजे ॥ १ ॥

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेक
मायाश्रय विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।
आनन्दसान्द्रममल निजबोधरूप
सीतापतिं विदिततत्त्वमह नमामि ॥ २ ॥

पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतस
शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसज्ञित शुभम् ।
रामायण सर्वपुराणसमत
निर्धूतपापा हरिमेव यान्ति ते ॥ ३ ॥

अध्यात्मरामायणमेव नित्य
पठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम् ।
गवा सहस्रायुतकोटिदानात्
फल लभेद्य शृणुयात्स नित्यम् ॥ ४ ॥

पुरारिगिरिसभूता श्रीरामार्णवसङ्गता ।
अध्यात्मरामगङ्गेय पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

जिन चिन्मय अविनाशी प्रभुने पृथिवीका भार उतारनेके लिये देवताओकी प्रार्थनासे पृथिवीतलपर सूर्यवशमे माया-मानवरूपसे अवतार लिया और जो राक्षसोके समूहको मारकर तथा ससारमे अपनी पाप-विनाशिनी अविचल कीर्ति स्थापितकर पुन अपने आद्य ब्रह्मस्वरूपमे लीन हो गये, उन श्रीजानकीनाथका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण है, मायाके आश्रय होकर भी मायातीत है, अचिन्त्यस्वरूप है, आनन्दघन है, उपाधिकृत दोषोसे रहित है तथा स्वयप्रकाशस्वरूप है, उन तत्त्ववेत्ता श्रीसीतापतिको मै नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जो लोग इस सर्वपुराणसम्मत पवित्र अध्यात्म-रामायणका एकाग्रचित्तसे नित्य पाठ करते है और जो इसे सुनते हैं, वे पापरहित होकर श्रीहरिको ही प्राप्त करते है ॥ ३ ॥ यदि कोई ससार-बन्धनसे मुक्त होना चाहता हो तो वह अध्यात्मरामायणका ही नित्य पाठ करे। जो कोई मनुष्य इसका नित्य श्रवण करता है वह लाखो करोड गोदानका फल प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ श्रीशङ्कररूप पर्वतसे निकली हुई रामरूप समुद्रमे मिलनेवाली यह अध्यात्म-रामायणरूपिणी गङ्गा त्रिलोकीको पवित्र कर रही है ॥ ५ ॥

कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले
मन्दिरे रत्नपीठे
संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं
सेवितं सिद्धसंघैः ।
देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया
पार्वती भक्तिनम्रा
प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं
वाक्यमानन्दकन्दम् ॥ ६ ॥

एक समय कैलासपर्वतके शिखरपर सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान शुभ्र भवनमें रत्नसिंहासनपर ध्यानावस्थित बैठे हुए, सिद्ध-समूहसेवित, नित्यनिर्भय, सर्वपापहारी आनन्दकन्द देवदेव भगवान् त्रिनयनसे उनके वामाङ्कमें विराजमान श्रीगिरिराजकुमारी पार्वतीने भक्ति-भावसे नम्रतापूर्वक ये वाक्य कहे ॥ ६ ॥

पार्वत्युवाच

नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास
सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य
सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥ ७ ॥

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं
वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः ।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता
प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम् ॥ ८ ॥

ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्ति-
वैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत् ।
जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं
यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन ॥ ९ ॥

पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं
तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ।
श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे
भक्तिर्दृढा नौर्भवति प्रसिद्धा ॥ १० ॥

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय
नान्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित् ।
तथापि हृत्संशयबन्धनं मे
विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥ ११ ॥

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं
निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः
परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥ १२ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे देव ! हे जगन्निवास ! आपको नमस्कार है, आप सबके अन्तःकरणोंके साक्षी और परमेश्वर हैं। मैं आपसे श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌का सनातन तत्त्व पूछना चाहती हूँ, क्योंकि आप भी सनातन हैं ॥ ७ ॥ महानुभावलोग जो अत्यन्त गोपनीय विषय होता है तथा अन्य किसीसे कहनेयोग्य नहीं होता उसे भी अपने भक्तजनोंसे कह देते हैं। हे देव ! मैं भी आपकी भक्ता हूँ, मुझे आप अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये मैंने जो कुछ पूछा है वह वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं उस भक्ति और वैराग्यसे परिपूर्ण प्रकाशमय आत्मज्ञानका वर्णन आप विज्ञानसहित इस प्रकार स्वल्प शब्दोंमें कीजिये जिससे मैं स्त्री होनेपर भी आपके वचनोंको (सहज ही) समझ सकूँ ॥ ९ ॥ हे कमलनयन ! मैं एक परम गुह्य रहस्य आपसे और पूछती हूँ, कृपया आप पहले उसे ही वर्णन करें। यह तो प्रसिद्ध ही है कि अखिल-लोक-सार श्रीरामचन्द्रजीकी विशुद्ध भक्ति संसारसागरको तरनेके लिये सुदृढ नौका है ॥ १० ॥ संसारसे मुक्त होनेके लिये भक्ति ही प्रसिद्ध उपाय है उससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं है, तथापि आप अपने विशुद्ध वचनोंसे मेरे हृदयकी संशय-ग्रन्थिका छेदन कीजिये ॥ ११ ॥ प्रमादरहित सिद्धगण श्रीरामचन्द्रजीको परम, अद्वितीय, सबके आदिकारण और प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बतलाते हैं तथा वे अहर्निश उनका भजन करके परमपद भी प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

वदन्ति केचित्परमोऽपि राम
स्वाविद्यया सवृतमात्मसज्ञम् ।
जानाति नात्मानमत परेण
सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ॥ १३ ॥

यदि स्म जानाति कुतो विलाप
सीताकृतेऽनेन कृत परेण ।
जानाति नैव यदि केन सेव्य
समो हि सर्वैरपि जीवजातै ॥ १४ ॥

अत्रोत्तर कि विदित भवद्धि-
स्तद्ब्रूत मे सशयभेदि वाक्यम् ॥ १५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्व
यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम् ।
पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽह
वक्तु रहस्य परम निगूढम् ॥ १६ ॥

त्वयाद्य भक्त्या परिनोदितोऽह
वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तम ते ।
राम परात्मा प्रकृतेरनादि-
रानन्द एक पुरुषोत्तमो हि ॥ १७ ॥

स्वमायया कृत्स्नमिद हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो य ।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा
स्वमायया सृष्टमिद विचष्टे ॥ १८ ॥

जगन्ति नित्य परितो भ्रमन्ति
यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि ।
एतन्न जानन्ति विमूढचित्ता
स्वाविद्यया सवृतमानसा ये ॥ १९ ॥

स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे
स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये ।
ससारमेवानुसरन्ति ते वै
पुत्रादिसक्ता पुरुकर्मयुक्ता ॥ २० ॥

जानन्ति नैव हृदये स्थित वै
चामीकर कण्ठगत यथाज्ञा ।

परन्तु कोई-कोई कहते है कि राम परब्रह्म होनेपर भी अपनी मायासे आवृत हो जानेके कारण अपने आत्मस्वरूपको नही जानते थे। इसलिये अन्य (वसिष्ठादि) के उपदेशसे उन्होने आत्मतत्त्वको जाना ॥ १३ ॥ अत मै पूछती हूँ कि यदि वे आत्मतत्त्वको जानते थे, तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यो किया ? और यदि उन्हे आत्मज्ञान नही था तो वे अन्य सामान्य जीवोके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यो किया जाना चाहिये ? इस विषयमे आपका क्या विचार है सो ऐसे वाक्योमे कहिये जिससे मेरा सन्देह निवृत्त हो जाय ॥ १४-१५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवि ! तुम धन्य हो, तुम परमात्माकी परम भक्त हो, जो तुम्हे रामका तत्त्व जाननेकी इच्छा हुई है। इससे पूर्व, इस परमगूढ रहस्यका वर्णन करनेके लिये मुझसे और किसीने नही कहा ॥ १६ ॥ आज तुमने मुझसे भक्तिपूर्वक प्रश्न किया है इसलिये मै श्रीरघुनाथजीकी वन्दना कर तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी नि सन्देह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और पुरुषोत्तम है ॥ १७ ॥ जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप्त है तथा जो आत्मारूपसे सबके अन्त करणमे स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित कर रहे है ॥ १८ ॥ चुम्बकके निकट होनेसे जिस प्रकार जड लोहेमे गति उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार जिनकी सन्निधिमात्रसे यह विश्व सदा सब ओर भ्रमता रहता है उन परमात्मा रामको, जिनका हृदय आत्माके अज्ञानसे ढका हुआ है वे मूढजन नही जान सकते ॥ १९ ॥ वे मूढ उन मायातीत शुद्ध-बुद्ध परमात्मामे भी अपने अज्ञानको आरोपित करते हैं अर्थात् उन्हे भी अपने समान ही अज्ञानी मानते है, तथा सर्वदा वे स्त्री-पुत्रादिमे आसक्त रहनेवाले पामर जीव बहुत-से कर्मोमे लगे रहकर ससार-चक्रमे ही पडे रहते हैं ॥ २० ॥ वे अज्ञजन अपने गलेमे पडे हुए कण्ठेको न जाननेके समान अपने ही हृदयमे स्थित परमात्मा रामको नही जानते (इसीलिये उनमे अज्ञानादिका आरोप करते है)।

यथाप्रकाशो न तु विद्यते रवौ
ज्योति स्वभावे परमेश्वरे तथा ।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽ-
विद्या कथ स्यात्परत परात्मनि ॥ २१ ॥

यथा हि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिक
विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते ।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मन
कृत परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति ॥ २२ ॥

नाहो न रात्रि सवितुर्यथा भवेत्
प्रकाशरूपाव्यभिचारत क्वचित् ।
ज्ञान तथाज्ञानमिद द्वय हरौ
रामे कथ स्थास्यति शुद्धचिद्घने ॥ २३ ॥

तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे
विज्ञानरूपे हि न विद्यते तम ।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने
मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥ २४ ॥

अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् ।
सीतारामरुत्सूनुसवाद मोक्षसाधनम् ॥ २५ ॥

पुरा रामायणे रामो रावण देवकण्टकम् ।
हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम् ॥ २६ ॥

सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्या समन्वित ।
अयोध्यामगमद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृत ॥ २७ ॥

अभिषिक्त परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभि ।
सिहासने समासीन कोटिसूर्यसमप्रभ ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा तदा हनूमन्त प्राञ्जलि पुरत स्थितम् ।
कृतकार्यं निराकाङ्क्ष ज्ञानापेक्ष महामतिम् ॥ २९ ॥

राम सीतामुवाचेद ब्रूहि तत्त्व हनूमते ।
निष्कल्मषोऽय ज्ञानस्य पात्र नौ नित्यभक्तिमान् ॥ ३० ॥

तथेति जानकी प्राह तत्त्व रामस्य निश्चितम् ।
हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी ॥ ३१ ॥

रामं विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्त सत्तामात्रमगोचरम् ॥ ३२ ॥

वास्तवमे तो जिस प्रकार सूर्यमे कभी अन्धकार नही रहता उसी प्रकार प्रकृत्यादिसे अतीत, विशुद्ध-विज्ञानघन ज्योति स्वरूप, परमेश्वर परमात्मा राममे भी अविद्या नही रह सकती ॥ २१ ॥ और जिस प्रकार चक्कर लगाते समय मनुष्यको नेत्रोके घूमनेसे गृह आदि भी घूमते हुए प्रतीत होते है उसी प्रकार लोग अपने देह और इन्द्रियरूप कर्ताके किये हुए कर्मोका आत्मामे आरोप करके मोहित हो जाते है ॥ २२ ॥ प्रकाशरूपताका कभी व्यभिचार न होनेसे जिस प्रकार सूर्यमे रात-दिनका भेद नही होता—वह सर्वदा एक समान प्रकाशमान रहता है—उसी प्रकार शुद्धचेतनघन भगवान् राममे ज्ञान ओर अज्ञान दोनो कैसे रह सकते है ? ॥ २३ ॥ अतएव परानन्दस्वरूप विज्ञानघन अज्ञान-साक्षी कमलनयन भगवान् राममे अज्ञानका लेश भी नही है, क्योकि वे मायाके अधिष्ठान है इसलिये वह उन्हे मोहित नही कर सकती ॥ २४ ॥ हे पार्वति ! इस विषयमे मै तुम्हे सीता, राम और हनुमान्‌जीके मोक्षका साधनरूप सवाद सुनाता हूँ जो अत्यन्त गोपनीय और परम दुर्लभ है ॥ २५ ॥

पूर्वकालमे रामावतारके समय जब युद्धप्रिय श्रीरामचन्द्रजी देवताओके कण्टकरूप रावणको सन्तान, सेना और वाहनोके सहित युद्धमे मारकर सीता, सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित हनुमान् आदि वानरोसे घिरे हुए अयोध्यापुरीमे आये ॥ २६-२७ ॥ और वहाँ आकर राज्याभिषेक होनेपर वसिष्ठ आदि महात्माओसे घिरकर करोडो सूर्योंकी प्रभा धारण कर जब सिहासनपर विराजमान हुए ॥ २८ ॥ उस समय, जो सेवाके समस्त कार्य कर चुका है और उनका कोई बदला नही चाहता है ऐसे भोगेच्छारहित महामति हनुमान्‌जीको ज्ञानाभिलाषासे अपने सम्मुख हाथ जोडे खडे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीसे ऐसा कहा—"सीते ! यह हनुमान् हम दोनोमे अत्यन्त भक्ति रखता है, इसलिये यह निष्पाप है और ज्ञानका सुयोग्य पात्र है। अत तुम इसे मेरे तत्त्वका उपदेश करो" ॥ २९-३० ॥ तब लोक-विमोहिनी जनकनन्दिनी सीताजी श्रीरामचन्द्रजी-से 'बहुत अच्छा' कह शरणागत हनुमान्‌को भगवान् रामका निश्चित तत्त्व बताने लगी ॥ ३१ ॥

सीताजीने कहा—"वत्स हनुमन् ! तुम रामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो, ये नि सन्देह समस्त उपाधियोसे रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोके

आनन्द निर्मल शान्त निर्विकार निरञ्जनम् ।
सर्वव्यापिनमात्मान स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥ ३३ ॥

मा विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥ ३४ ॥

तत्सान्निध्यान्मया सृष्ट तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधै ।
अयोध्यानगरे जन्म रघुवशेऽतिनिर्मले ॥ ३५ ॥

विश्वामित्रसहायत्व मखसरक्षण तत ।
अहल्याशापशमन चापभङ्गो महेशितु ॥ ३६ ॥

मत्पाणिग्रहण पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षय ।
अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिक ॥ ३७ ॥

दण्डकारण्यगमन विराधवध एव च ।
मायामारीचमरण मायासीताहृतिस्तथा ॥ ३८ ॥

जटायुषो मोक्षलाभ कबन्धस्य तथैव च ।
शबर्या पूजन पश्चात्सुग्रीवेण समागम ॥ ३९ ॥

वालिनश्च वध पश्चात्सीतान्वेषणमेव च ।
सेतुबन्धश्च जलधौ लकायाश्च निरोधनम् ॥ ४० ॥

रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मन ।
विभीषणे राज्यदान पुष्पकेण मया सह ॥ ४१ ॥

अयोध्यागमन पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम् ।
एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ।

आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥ ४२ ॥

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।
आनन्दमूर्तिरचल परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति ॥ ४३ ॥

ततो राम स्वय प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ।
शृणु तत्त्व प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥ ४४ ॥

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।
प्रतिबिम्बाख्यमपर दृश्यते त्रिविध नम ॥ ४५ ॥

अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही है ॥ ३२-३३ ॥ और मुझे ससारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाली मूल-प्रकृति जानो। मै ही निरालस्य होकर इनकी सन्निधिमात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ ॥ ३४ ॥ तो भी इनकी सन्निधिमात्रसे की हुई मेरी रचनाको बुद्धिहीन लोग इनमे आरोपित कर लेते है। अतएव, अयोध्यापुरीमे अत्यन्त पवित्र रघुकुलमे इनका जन्म लेना ॥ ३५ ॥ फिर विश्वामित्रजीकी सहायता करना, उनके यज्ञकी रक्षा करना, अहल्याको शापमुक्त करना, श्रीमहादेवजीके धनुषको तोडना ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् मेरा पाणिग्रहण करना, परशुरामजीका गर्व-खण्डन करना तथा बारह वर्षतक मेरे साथ अयोध्यापुरीमे रहना ॥ ३७ ॥ फिर दण्डकारण्यमे जाना, विराधका वध करना, माया-मृगरूप मारीचका मारा जाना, मायामयी सीताका हरा जाना ॥ ३८ ॥ तदनन्तर जटायु और कबन्धका मुक्त होना, शबरीद्वारा भगवान्‌का पूजित होना और सुग्रीवसे मित्रता होना ॥ ३९ ॥ फिर बालिका वध करना, सीताजीकी खोज करना, समुद्रका पुल बँधवाना और लङ्कापुरीको घेर लेना ॥ ४० ॥ तथा पुत्रोके सहित दुरात्मा रावणको युद्धमे मारना एव विभीषणको लङ्काका राज्य देकर पुष्पक-विमानद्वारा मेरे साथ अयोध्या लौट आना, फिर श्रीरामजीका राज्यपदपर अभिषिक्त होना—इत्यादि समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही किये हुए है तो भी अज्ञानीलोग उन्हे इन निर्विकार सर्वात्मा भगवान् राममे आरोपित करते है ॥ ४१-४२ ॥ ये राम तो (वास्तवमे) न चलते है, न ठहरते है, न शोक करते है, न इच्छा करते है, न त्यागते है और न कोई अन्य क्रिया ही करते है। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन है, केवल मायाके गुणोसे व्याप्त होनेके कारण ही ये वैसे प्रतीत होते है" ॥ ४३ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सम्मुख खडे हुए पवनपुत्र हनुमान्‌से स्वय कहा—"मै तुम्हे आत्मा, अनात्मा और परमात्माका तत्त्व बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो ॥ ४४ ॥ जलाशयमे आकाशके तीन भेद स्पष्ट दिखायी देते है—एक महाकाश[1] दूसरा जलावच्छिन्न आकाश[2] और तीसरा प्रतिबिम्बाकाश[3]। जैसे आकाशके ये तीन बडे-बडे भेद दिखायी देते है ॥ ४५ ॥

१ जो सर्वत्र व्याप्त है। २ जो केवल जलाशयमे ही परिमित है। ३ जो जलमे प्रतिबिम्बित है।

बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥ ४६ ॥

साभासबुद्धेः कर्तृत्वमवच्छिन्नेऽविकारिणि ।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाबुधैः ॥ ४७ ॥

आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ।
अवच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥ ४८ ॥

अवच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥ ४९ ॥

ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ।
तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥ ५० ॥

एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥ ५१ ॥

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो
मयैव साक्षात्कथितं तवानघ ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया
दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥ ५२ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया ।
अतिगुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पापशोधनम् ॥ ५३ ॥

साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसंग्रहम् ।
यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ५४ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि ।
नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥ ५५ ॥

योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपर-
दारेषु नित्योद्यतो वा

उसी प्रकार चेतन भी तीन प्रकारका है—एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (जो बुद्धिमें व्याप्त है), दूसरा जो सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा जो बुद्धिमें प्रतिबिम्बित होता है—जिसको आभासचेतन कहते हैं ॥ ४६ ॥ इनमेंसे केवल आभासचेतनके सहित बुद्धिमें ही कर्तृत्व है अर्थात् चिदाभासके सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है। किन्तु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न, निर्विकार, साक्षी आत्मामें कर्तृत्व और जीवत्वका आरोप करते हैं अर्थात् उसे ही कर्त्ता-भोक्ता मान लेते हैं ॥ ४७ ॥ (हमने जिसे जीव कहा है उसमें) आभास-चेतन तो मिथ्या है (क्योंकि सभी आभास मिथ्या ही हुआ करते हैं), बुद्धि अविद्याका कार्य है और परब्रह्म परमात्मा वास्तवमें विच्छेदरहित है, अतः उसका विच्छेद भी विकल्पसे ही माना हुआ है ॥ ४८ ॥ (इसी प्रकार उपाधियोंका बाध करते हुए) साभास अहंरूप अवच्छिन्न चेतन (जीव) की 'तत्त्वमसि' (तू वह है) आदि महावाक्योंद्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ एकता बतलायी जाती है ॥ ४९ ॥ जब महावाक्यद्वारा (इस प्रकार) जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है उस समय अपने कार्योंसहित अविद्या नष्ट हो ही जाती है—इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ मेरा भक्त इस उपर्युक्त तत्त्वको समझकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होनेका पात्र हो जाता है पर जो लोग मेरी भक्तिको छोड़कर शास्त्ररूप गढ़ेमें पड़े भटकते रहते हैं उन्हें सौ जन्मतक भी न तो ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे अनघ! यह परम रहस्य मुझ आत्मस्वरूप रामका हृदय है, और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। यदि तुम्हें इन्द्रलोकके राज्यसे भी अधिक सम्मान मिले तो भी तुम इसे मेरी भक्तिसे हीन किसी दुष्ट पुरुषको मत सुनाना" ॥ ५२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि! मैंने तुम्हें यह अत्यन्त गोपनीय, हृदयहारी परम पवित्र और पापनाशक 'श्रीरामहृदय' सुनाया है ॥ ५३ ॥ यह समस्त वेदान्तका सार-संग्रह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीका कहा हुआ है। जो कोई इसे भक्तिपूर्वक सदा पढ़ता है वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ इसके पठनमात्रसे अनेक जन्मोंके सञ्चित ब्रह्महत्यादि समस्त पाप निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि श्रीरामके वचन ऐसे ही हैं ॥ ५५ ॥ जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट अतिशय पापी पराये धन और परस्त्रियोंमें सदा

स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो
योगिवृन्दापकारी ।
य सपूज्याभिराम पठति च हृदय
रामचन्द्रस्य भक्त्या
योगीन्द्रैरप्यलभ्य पदमिह लभते
सर्वदेवै स पूज्यम् ॥ ५६ ॥

प्रवृत्त रहनेवाला, चोर, ब्रह्म-हत्यारा, माता-पिताका वध करनेमे लगा हुआ और योगिजनोका अहित करनेवाला मनुष्य भी श्रीरामचन्द्रजीका पूजन कर इस रामहृदयका भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह समस्त देवताओके पूज्य उस परमपदको प्राप्त होता है जो योगिराजोको भी परम दुर्लभ है ॥ ५६ ॥



इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे बालकाण्डे श्रीरामहृदय नाम प्रथम सर्ग ॥ १ ॥



द्वितीय सर्ग

भारपीडिता पृथिवीका ब्रह्मादि देवताओके पास जाना और भगवान्का उनकी प्रार्थनासे प्रकट होकर उन्हे धैर्य बँधाना

पार्वत्युवाच

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगत्प्रभो ।
विच्छिन्नो मेऽतिसन्देहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ॥ १ ॥

त्वन्मुखाद्गलित रामतत्त्वामृतरसायनम् ।
पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ॥ २ ॥

श्रीरामस्य कथा त्वत्त श्रुता सक्षेपतो मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥

पार्वतीजी बोलीं—हे जगत्प्रभो ! आपकी कृपासे अनुगृहीत होकर मैं धन्य और कृतकृत्य हो गयी तथा मेरी कठिन सन्देहग्रन्थि टूट गयी ॥ १ ॥ हे देव ! आपके मुखसे चूते हुए भवभयहारी रामतत्त्वरूप अमृतमय रसायनका पान करते-करते मेरा मन तृप्त नही होता ॥ २ ॥ मैने आपके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सक्षेपसे सुनी। अब मै उसे स्पष्ट शब्दोमे विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतर महत् ।
अध्यात्मरामचरित रामेणोक्त पुरा मम ॥ ४ ॥

तदद्य कथयिष्यामि शृणु तापत्रयापहम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात् ।
प्राप्नोति परमामृद्धि दीर्घायु पुत्रसन्ततिम् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! सुनो, मे तुम्हे गुह्यसे भी गुह्य महान् अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ, जो पहले मुझे श्रीरामचन्द्रजीने ही सुनायी थी ॥ ४ ॥ अब मै तुम्हे वह तापत्रयहारी अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनो। जिसके सुननेसे जीव अज्ञानजन्य महाभयसे छूट जाता है और परम ऐश्वर्य, दीर्घ आयु तथा पुत्र-पौत्रादि प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

भूमिर्भारेण भग्ना दशवदनमुखाशेष-
रक्षोगणाना
धृत्वा गोरूपमादौ दिविजमुनिजनै
साकमब्जासनस्य ।
गत्वा लोक रुदन्ती व्यसनमुपगत
ब्रह्मणे प्राह सर्व
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदा-
वेदशेषात्मकत्वात् ॥ ६ ॥

एक बार रावण आदि राक्षसोके भारसे व्यथित हो पृथिवी गौका रूप धारण कर देवता और मुनिजनोके सहित श्रीब्रह्माजीके लोकको गयी। वहाँ पहुँचकर उसने रोते हुए, अपनेपर पडा हुआ सारा दु ख ब्रह्माजीसे कहा। तब ब्रह्माजीने एक मुहूर्ततक ध्यानस्थ हो अपने मनमे उसकी दु खनिवृत्तिका सम्पूर्ण उपाय जान लिया क्योकि वे सर्वान्तर्यामी हैं ॥ ६ ॥

तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्
ब्रह्माथ देवैर्वृतो
देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजर
सर्वज्ञमीश हरिम्।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदै
स्तोत्रै पुराणोद्भवै-
र्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलै-
रानन्दवाष्पैर्वृत ॥ ७ ॥

तत स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभ ।
आविरासीद्धरि प्राच्या दिशो व्यपनयस्तम ॥ ८ ॥

कथचिद्दृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम्।
इन्द्रनीलप्रतीकाश स्मितास्य पद्मलोचनम्॥ ९ ॥

किरीटहारकेयूरकुण्डलै कटकादिभि ।
विभ्राजमान श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम्॥ १० ॥

स्तुवद्भि सनकाद्यैश्च पार्षदै परिवेष्टितम्।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥ ११ ॥

स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च ।
श्रिया भूम्या च सहित गरुडोपरि सस्थितम्॥ १२ ॥

हर्षगद्गदया वाचा स्तोतु समुपचक्रमे ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्मि ते पद देव प्राणबुद्धीन्द्रियात्मभि ।
यच्चिन्त्यते कर्मपाशाद्धृदि नित्य मुमुक्षुभि ॥ १४ ॥

मायया गुणमय्या त्व सृजस्यवसि लुम्पसि ।
जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मन ॥ १५ ॥

तथा शुद्धिर्न दुष्टाना दानाध्ययनकर्मभि ।
शुद्धात्मता ते यशसि सदा भक्तिमता यथा ॥ १६ ॥

अतस्तवाङ्घ्रिर्मे दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये ।
सद्योऽन्तर्हृदये नित्य मुनिभि सात्वतैर्वृत ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् वहाँसे समस्त देवताओके सहित श्रीब्रह्माजी पृथिवीको साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये और वहाँ उन्होने अत्यन्त निर्मल आनन्दाश्रुओसे परिप्लुत हो अखिल-लोकान्तर्यामी, अजर, सर्वज्ञ, भगवान् हरिकी अति निर्मल भक्तियुक्त गद्गदवाणीसे श्रुतिसिद्ध विमल पदो और पुराणोक्त स्तोत्रोद्वारा स्तुति की॥ ७॥ तब सहस्रो देदीप्यमान सूर्योके समान प्रभाशाली भगवान् हरि (अपने तेजसे) सब दिशाओके अन्धकारको दूर करते हुए पूर्व-दिशामे प्रकट हुए॥ ८ ॥ पुण्यहीन पुरुषोके लिये अत्यन्त दुर्दर्शनीय भगवान् हरिको (उनके अमित तेजके कारण) ब्रह्माजीने भी बडी कठिनतासे देख पाया। इन्द्रनीलमणिके समान उनका तेजोमय श्याम वर्ण था, मुखपर मधुर मुसकान थी और कमलके समान विशाल और मनोहर नेत्र थे॥ ९ ॥ वे किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटक आदि आभूषणोसे सुशोभित तथा श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी प्रभासे युक्त थे॥ १० ॥ उन्हे स्तुति करते हुए सनकादि पार्षद चारो ओरसे घेरे हुए थ और उनकी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा वनमालासे अपूर्व शोभा हो रही थी॥ ११ ॥ वे सोनेके यज्ञोपवीत और पीताम्बरसे सुशोभित एव लक्ष्मी और भूमिके सहित गरुडपर विराजमान थ। (उनकी ऐसी दिव्य छविको देखकर) पितामह ब्रह्माजी हर्षसे गद्गदकण्ठ हो स्तुति करने लगे॥ १२-१३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! कर्मपाशसे मुक्त होनेके लिये मुमुक्षुजन अपने प्राण, बुद्धि इन्द्रिय और मनसे जिनका नित्य चिन्तन करते ह आपक उन चरणारविन्दोको मै नमस्कार करता हूँ॥ १४ ॥ आप अपनी त्रिगुणमयी मायाका आश्रय करके ही इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और लय करते हे, किन्तु ज्ञानानन्दस्वरूप आप इससे लिप्त नही होते॥ १५ ॥ हे भगवन्! आपके विमल यशमे सदा प्रेम रखनेवाले भक्तोका अन्त करण जैसा शुद्ध होता है वैसी शुद्धि मलिन अन्त करणवाले पुरुष दान और अध्ययन आदि शुभ कर्मोसे नही प्राप्त कर सकते॥ १६ ॥ अत भक्त मुनिजन जिनका निरन्तर अपने हृदयमे ध्यान करते है ऐसे आपके चरण-कमलोका आज मैने अपने अन्त करणके दोषोका तत्क्षण नाश करनेके लिये दर्शन किया है॥ १७ ॥

ब्रह्माद्यै स्वार्थसिद्ध्यर्थमस्माभि पूर्वसेवित ।
अपरोक्षानुभूत्यर्थ ज्ञानिभिर्हृदि भावित ॥ १८ ॥

तवाङ्घ्रिपूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो ।
स्पर्धते वक्षसि पद लब्ध्वापि श्री सपत्निवत् ॥ १९ ॥

अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्ति श्रियोऽधिका ।
भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ता सारवेदिन ॥ २० ॥

अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तु मे ।
ससारामयतप्तानां भेषज भक्तिरेव ते ॥ २१ ॥

इति ब्रुवन्त ब्रह्माण बभाषे भगवान् हरि ।
किं करोमीति त वेधा प्रत्युवाचातिहर्षित ॥ २२ ॥

भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् ।
राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पित ॥ २३ ॥

त्रिलोकीं लोकपालाश्च बाधते विश्वबाधक ।
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कल्पिता ।

अतस्त्व मानुषो भूत्वा जहि देवरिपु प्रभो ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच

कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे ॥ २५ ॥

याचित पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृत मया ।
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले ॥ २६ ॥

तस्याह पुत्रतामेत्य कौसल्याया शुभे दिने ।
चतुर्धात्मानमेवाह सृजामीतरयो पृथक् ॥ २७ ॥

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ।
उत्पत्स्यते तया सार्ध सर्वं सम्पादयाम्यहम् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघो कुले ॥ २९ ॥

यूय सृजध्व सर्वेऽपि वानरेष्वंशसम्भवान् ।
विष्णो सहाय कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले ॥ ३० ॥

आपके इन चरण-कमलोका पहले भी हम ब्रह्मा आदि देवगणने अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये सेवन किया है और ज्ञानी मुनिजनोने अपरोक्षानुभवके लिये अपने हृदयमे निरन्तर ध्यान किया है ॥ १८ ॥ हे विभो ! लक्ष्मीजी आपके वक्ष स्थलमे स्थान पाकर भी आपकी चरणपूजाके समय चढी हुई तुलसीकी मालासे सौतकी तरह डाह करती है ॥ १९ ॥ आपके चरण-कमलोमे प्रेम रखनेवाले भक्तोमे आपका प्रेम लक्ष्मीजीसे भी बढकर है। इसलिये आपके सारग्राही भक्तजन केवल आपकी भक्तिकी ही इच्छा करते है ॥ २० ॥ अतएव हे देव ! आपके चरण-कमलोमे मेरी सर्वदा भक्ति रहे, क्योकि ससार-रोगके रोगियोके लिये आपकी भक्ति ही एकमात्र औषध है ॥ २१ ॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मासे भगवान् हरिने कहा, "मै तुम्हारा क्या कार्य करूँ ?" तब ब्रह्माने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ २२ ॥ "भगवन् ! पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका पुत्र रावण राक्षसोका राजा है। वह मेरे वरके प्रभावसे अत्यन्त अभिमानी हो गया है ॥ २३ ॥ वह सम्पूर्ण विश्वका बाधक तीनो लोको और लोकपालोको पीडा पहुँचाता है। हे कल्याणरूप ! मैने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथ रखी है। इसलिये हे प्रभो ! आप मनुष्यरूप धारणकर उस देवशत्रुका वध कीजिये" ॥ २४ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैने कश्यपकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन्हे वर दिया था। उन्होने मुझसे पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेकी प्रार्थना की थी, तब मैने 'बहुत अच्छा' कह उसे स्वीकार कर लिया था। इस समय वे पृथ्वीपर राजा दशरथ होकर विद्यमान है ॥ २५-२६ ॥ उन्हीके यहाँ पुत्ररूपसे पृथक्-पृथक् चार अशोमे प्रकट होकर मै शुभ दिनोमे कौसल्याके और अन्य दो माताओके गर्भसे जन्म लूँगा ॥ २७ ॥ उसी समय मेरी योगमाया भी जनकजीके घरमे सीतारूपसे उत्पन्न होगी, उसको साथ लेकर मै तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा। ऐसा कह भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये, तब ब्रह्माजीने देवताओसे कहा ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु रघुकुलमे मनुष्य-रूपसे अवतार लेगे। तुमलोग भी सब अपने-अपने अशसे वानरवशमे पुत्र उत्पन्न करो तथा जबतक श्रीविष्णुभगवान्

तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्
ब्रह्माथ देवैर्वृतो
देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजरं
सर्वज्ञमीशं हरिम्।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदै
स्तोत्रै पुराणोद्भवै-
र्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलै-
रानन्दवाष्पैर्वृत ॥ ७ ॥

तत स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभ ।
आविरासीद्धरि प्राच्या दिशो व्यपनयस्तम ॥ ८ ॥

कथंचिद्दृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम् ।
इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम् ॥ ९ ॥

किरीटहारकेयूरकुण्डलै कटकादिभि ।
विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥ १० ॥

स्तुवद्भि सनकाद्यैश्च पार्षदै परिवेष्टितम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥ ११ ॥

स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च ।
श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम् ॥ १२ ॥

हर्षगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्मि ते पदं देव प्राणबुद्धीन्द्रियात्मभि ।
यच्चिन्त्यते कर्मपाशाद्धृदि नित्यं मुमुक्षुभि ॥ १४ ॥

मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि ।
जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मन ॥ १५ ॥

तथा शुद्धिर्न दुष्टाना दानाध्ययनकर्मभि ।
शुद्धात्मनां ते यशसि सदा भक्तिमता यथा ॥ १६ ॥

अतस्त्वाड्घ्रिर्मे दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये ।
सद्योऽन्तर्हृदये नित्यं मुनिभि सात्वतैर्वृत ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् वहाँसे समस्त देवताओंके सहित श्रीब्रह्माजी पृथिवीको साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये और वहाँ उन्होंने अत्यन्त निर्मल आनन्दाश्रुओंसे परिप्लुत हो अखिल-लोकान्तर्यामी, अजर सर्वज्ञ भगवान् हरिकी अति निर्मल भक्तियुक्त गद्गदवाणीसे श्रुतिसिद्ध विमल पदों और पुराणोक्त स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की ॥ ७ ॥ तब सहस्रों देदीप्यमान सूर्यके समान प्रभाशाली भगवान् हरि (अपने तेजसे) सब दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए पूर्व-दिशामें प्रकट हुए ॥ ८ ॥ पुण्यहीन पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुर्दर्शनीय भगवान् हरिको (उनके अमित तेजके कारण) ब्रह्माजीने भी बड़ी कठिनतासे देख पाया। इन्द्रनीलमणिके समान उनका तेजोमय श्याम वर्ण था, मुखपर मधुर मुसकान थी और कमलके समान विशाल और मनोहर नेत्र थे ॥ ९ ॥ वे किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटक आदि आभूषणोंसे सुशोभित तथा श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी प्रभासे युक्त थे ॥ १० ॥ उन्हें स्तुति करते हुए सनकादि पार्षद चारों ओरसे घेरे हुए थे और उनकी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा वनमालासे अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ ११ ॥ वे सोनेके यज्ञोपवीत और पीताम्बरसे सुशोभित एवं लक्ष्मी और भूमिके सहित गरुडपर विराजमान थे। (उनकी ऐसी दिव्य छविको देखकर) पितामह ब्रह्माजी हर्षसे गद्गदकण्ठ हो स्तुति करने लगे ॥ १२-१३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! कर्मपाशसे मुक्त होनेके लिये मुमुक्षुजन अपने प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और मनसे जिनका नित्य चिन्तन करते हैं आपके उन चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ आप अपनी त्रिगुणमयी मायाका आश्रय करके ही इस जगत्की उत्पत्ति, पालन और लय करते हैं, किन्तु ज्ञानानन्दस्वरूप आप इससे लिप्त नहीं होते ॥ १५ ॥ हे भगवन्! आपके विमल यशमें सदा प्रेम रखनेवाले भक्तोंका अन्तःकरण जैसा शुद्ध होता है वैसी शुद्धि मलिन अन्तःकरणवाले पुरुष दान और अध्ययन आदि शुभ कर्मोंसे नहीं प्राप्त कर सकते ॥ १६ ॥ अतः भक्त मुनिजन जिनका निरन्तर अपने हृदयमें ध्यान करते हैं ऐसे आपके चरण-कमलोंका आज मैंने अपने अन्तःकरणके दोषोंका तत्क्षण नाश करनेके लिये दर्शन किया है ॥ १७ ॥

ब्रह्माद्यै स्वार्थसिद्ध्यर्थमस्माभि पूर्वसेवित ।
अपरोक्षानुभूत्यर्थ ज्ञानिभिर्हृदि भावित ॥ १८ ॥

तवाङ्घ्रिपूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो ।
स्पर्धते वक्षसि पद लब्ध्वापि श्री सपत्निवत् ॥ १९ ॥

अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्ति श्रियोऽधिका ।
भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ता सारवेदिन ॥ २० ॥

अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तु मे ।
ससाररामयतप्ताना भेषज भक्तिरेव ते ॥ २१ ॥

इति ब्रुवन्त ब्रह्माण बभाषे भगवान् हरि ।
किं करोमीति त वेधा प्रत्युवाचातिहर्षित ॥ २२ ॥

भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् ।
राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पित ॥ २३ ॥

त्रिलोकीं लोकपालाश्च बाधते विश्वबाधक ।
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कल्पिता ।

अतस्त्व मानुषो भूत्वा जहि देवरिपु प्रभो ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच

कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे ॥ २५ ॥

याचित पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृत मया ।
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले ॥ २६ ॥

तस्याह पुत्रतामेत्य कौसल्याया शुभे दिने ।
चतुर्धात्मानमेवाह सृजामीतरयो पृथक् ॥ २७ ॥

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ।
उत्पत्स्यते तया सार्ध सर्वं सम्पादयाम्यहम् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघो कुले ॥ २९ ॥

यूय सृजध्व सर्वेऽपि वानरेष्वशसम्भवान् ।
विष्णो सहाय कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले ॥ ३० ॥

आपके इन चरण-कमलोका पहले भी हम ब्रह्मा आदि देवगणने अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये सेवन किया है और ज्ञानी मुनिजनोने अपरोक्षानुभवके लिये अपने हृदयमे निरन्तर ध्यान किया है ॥ १८ ॥ हे विभो ! लक्ष्मीजी आपके वक्ष स्थलमे स्थान पाकर भी आपकी चरणपूजाके समय चढी हुई तुलसीकी मालासे सौतकी तरह डाह करती है ॥ १९ ॥ आपके चरण-कमलोमे प्रेम रखनेवाले भक्तोमे आपका प्रेम लक्ष्मीजीसे भी बढकर है । इसलिये आपके सारग्राही भक्तजन केवल आपकी भक्तिकी ही इच्छा करते है ॥ २० ॥ अतएव हे देव ! आपके चरण-कमलोमे मेरी सर्वदा भक्ति रहे, क्योकि ससार-रोगके रोगियोके लिये आपकी भक्ति ही एकमात्र औषध है ॥ २१ ॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मासे भगवान् हरिने कहा, "मै तुम्हारा क्या कार्य करूँ ?" तब ब्रह्माने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ २२ ॥ "भगवन् ! पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका पुत्र रावण राक्षसोका राजा है । वह मेरे वरके प्रभावसे अत्यन्त अभिमानी हो गया है ॥ २३ ॥ वह सम्पूर्ण विश्वका बाधक तीनो लोको और लोकपालोको पीडा पहुँचाता है । हे कल्याणरूप ! मैने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथ रखी है । इसलिये हे प्रभो ! आप मनुष्यरूप धारणकर उस देवशत्रुका वध कीजिये" ॥ २४ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैने कश्यपकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन्हे वर दिया था । उन्होने मुझसे पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेकी प्रार्थना की थी, तब मैने 'बहुत अच्छा' कह उसे स्वीकार कर लिया था । इस समय वे पृथ्वीपर राजा दशरथ होकर विद्यमान है ॥ २५-२६ ॥ उन्हीके यहाँ पुत्ररूपसे पृथक्-पृथक् चार अशोमे प्रकट होकर मै शुभ दिनोमे कौसल्याके और अन्य दो माताओके गर्भसे जन्म लूँगा ॥ २७ ॥ उसी समय मेरी योगमाया भी जनकजीके घरमे सीतारूपसे उत्पन्न होगी, उसको साथ लेकर मै तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा । ऐसा कह भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये, तब ब्रह्माजीने देवताओसे कहा ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु रघुकुलमे मनुष्य-रूपसे अवतार लेगे । तुमलोग भी सब अपने-अपने अशसे वानरवशमे पुत्र उत्पन्न करो तथा जबतक श्रीविष्णुभगवान्

इति देवान्समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम्।
ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥ ३१ ॥

भूलोकमें रहें तबतक उनकी सहायता करते रहो ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार देवताओंको आज्ञा दे और पृथ्वीको ढाढस बँधा ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और वहाँ निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ३१ ॥

देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः
स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः।
महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः
प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम्॥ ३२ ॥

इधर समस्त देवगण पर्वत और वृक्षोंद्वारा लड़नेवाले महाबलवान् वानरोंका रूप धारणकर भगवान्‌की सहायताके लिये उनकी प्रतीक्षा करते हुए जहाँ-तहाँ रहने लगे ॥ ३२ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

★

तृतीय सर्ग

भगवान्‌का जन्म और बाललीला

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः।
अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ १ ॥

सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा।
वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत्॥ २ ॥

स्वामिन्पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः।
पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक बार सकललोकप्रसिद्ध सत्यपरायण श्रीमान् अयोध्यापति वीरवर महाराज दशरथने पुत्रके न होनेसे अत्यन्त दुःखित हो अपने कुलके आचार्य गुरुवर वसिष्ठजीको बुला उन्हें प्रणामकर इस प्रकार कहा ॥ १-२ ॥ "स्वामिन्! यह बताइये कि मेरे सर्वसुलक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र किस प्रकार हो सकते हैं? क्योंकि बिना पुत्रके यह सम्पूर्ण राज्य मुझे दुःखरूप हो रहा है" ॥ ३ ॥

ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव।
चत्वारः सत्त्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः ॥ ४ ॥

शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम्।
अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर॥ ५ ॥

तब राजा दशरथसे वसिष्ठजीने कहा—"तुम्हारे साक्षात् दूसरे लोकपालोंके समान अत्यन्त सामर्थ्यवान् चार पुत्र होंगे॥ ४ ॥ तुम शान्ताके पति तपोधन ऋष्यशृङ्ग*को बुलाकर शीघ्र ही हमें साथ लेकर पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान करो" ॥ ५ ॥

तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः।
यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥ ६ ॥

राजाने "बहुत अच्छा" कह मुनिवर ऋष्यशृङ्गको बुलाया और मन्त्रियोंके सहित पवित्र होकर निष्पाप मुनिजनोंकी सहायतासे यज्ञानुष्ठान आरम्भ किया ॥ ६ ॥

*ऋष्यशृङ्ग मुनिवर विभाण्डकके पुत्र थे। एक बार विभाण्डक मुनि एक कुण्डमें समाधि लगाये बैठे थे, उसी समय उधरसे उर्वशी अप्सरा निकली। उसे देखकर मुनिका वीर्य स्खलित हो गया। उसे जलके साथ एक मृगी पी गयी। उसीसे इनका जन्म हुआ। माताके समान इनके शिरपर भी शृङ्ग (सींग) होनेकी सम्भावना थी, इसलिये पिता विभाण्डकने इनका नाम ऋष्यशृङ्ग रखा। एक बार अङ्ग देशमें घोर अनावृष्टि हुई। उस समय मुनियोंने अङ्गनरेश रोमपादसे कहा, यदि बालब्रह्मचारी ऋष्यशृङ्गको यहाँ लाया जा सके तो वृष्टि हो। राजाके प्रयत्नसे वे आ गये। उनके अङ्गदेशमें आते ही पुष्कल वर्षा हो गयी। राजाने उनका ऐसा अद्भुत प्रभाव देखकर उन्हें अपनी कन्या शान्ता विवाह दी। कहीं-कहीं ऐसा भी कहा जाता है कि यह शान्ता महाराज दशरथकी पुत्री थी और इन्होंने इसे अपने मित्र रोमपादको गोद दे दिया था।

श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभ ।
पायस स्वर्णपात्रस्थ गृहीत्वोवाच हव्यवाट् ॥ ७ ॥

गृहाण पायस दिव्य पुत्रीय देवनिर्मितम् ।
लप्स्यसे परमात्मान पुत्रत्वेन न सशय ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा पायस दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनल ।
ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथ ॥ ९ ॥

वसिष्ठऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हवि ।
कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्धमर्ध प्रयत्नत ॥ १० ॥

तत सुमित्रा सप्राप्ता जगृघ्नु पौत्रिक चरुम् ।
कौसल्या तु स्वभागार्ध ददौ तस्यै मुदान्विता ॥ ११ ॥

कैकेयी च स्वभागार्ध ददौ प्रीतिसमन्विता ।
उपभुज्य चरु सर्वा स्त्रियो गर्भसमन्विता ॥ १२ ॥

देवता इव रेजुस्ता स्वभासा राजमन्दिरे ।
दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम् ॥ १३ ॥

मधुमासे सिते पक्षे नवम्या कर्कटे शुभे ।
पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ १४ ॥

मेष पूषणि सप्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले ।
आविरासीज्जगन्नाथ परमात्मा सनातन ॥ १५ ॥

नीलोत्पलदलश्याम पीतवासाश्चतुर्भुज ।
जलजारुणनेत्रान्त स्फुरत्कुण्डलमण्डित ॥ १६ ॥

सहस्रार्कप्रतीकाश किरीटी कुञ्चितालक ।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजित ॥ १७ ॥

अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिक ।
करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचन ।
श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषण ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा त परमात्मान कौसल्या विस्मयाकुला ।
हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ १९ ॥

यज्ञानुष्ठानके समय अग्निमे श्रद्धापूर्वक आहुति देनेपर तप्त सुवर्णके समान दीप्तिमान् हव्यवाहन भगवान् अग्नि एक स्वर्णपात्रमे पायस लेकर प्रकट हुए और बोले ॥ ७ ॥ "हे राजन्! यह देवताओकी बनायी हुई पुत्रप्रदायिनी दिव्य पायस (खीर) लो। इसके द्वारा तुम निस्सन्देह साक्षात् परमात्माको पुत्ररूपसे प्राप्त करोगे" ॥ ८ ॥

अग्निदेव ऐसा कहकर और वह खीर राजाको देकर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजाने सफलमनोरथ हो मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गकी चरण-वन्दना की और उन दोनोकी आज्ञासे बडी सावधानीके साथ वह हवि महारानी कौसल्या और कैकेयीमे आधी-आधी बाँट दी ॥ ९-१० ॥ तदनन्तर उस पुत्र देनेवाले चरुको लेनेकी इच्छासे सुमित्राजी भी वहाँ आ पहुँची। इसपर कौसल्याजीने प्रसन्नतापूर्वक अपने भागमेसे आधा उन्हे दे दिया ॥ ११ ॥ तथा कैकेयीने भी प्रीतिपूर्वक अपने भागमेसे आधा सुमित्राको दिया। इस प्रकार उस हविको खाकर सभी रानियाँ गर्भवती हो गयी ॥ १२ ॥

वे तीनो रानियाँ उस राजभवनमे अपनी कान्तिसे देवताओके समान शोभा पाने लगी। फिर दसवाँ महीना लगनेपर कौसल्याने एक अद्भुत बालकको जन्म दिया ॥ १३ ॥ चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी नवमीके दिन शुभ कर्क-लग्नमे पुनर्वसु-नक्षत्रके समय जब कि पाँच ग्रह उच्च स्थानमे तथा सूर्य मेषराशिपर थे तब (मध्याह्न-कालमे) सनातन परमात्मा जगन्नाथका आविर्भाव हुआ। उस समय आकाश दिव्य पुष्पोकी वर्षासे पूर्ण हो गया ॥ १४-१५ ॥ जो नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण हैं, पीताम्बर पहने हुए हैं और चार भुजाएँ धारण किये हैं तथा जिनके नेत्रोके भीतरका भाग अरुण कमलके समान शोभायमान है, कानोमें कान्तिमान् कुण्डल सुशोभित हैं ॥ १६ ॥ हजारो सूर्योंके समान जिनका प्रकाश है, जिनके सिरपर प्रकाशमान मुकुट और घुँघराली अलकें हैं, हाथोंमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म तथा गलेमे वैजयन्ती माला विराजमान है ॥ १७ ॥ जिनके मुख-कमलपर हृदयस्थ अनुग्रहरूप चन्द्रमाकी सूचना देनेवाली मुसकानरूप चन्द्रिका छिटक रही है, जिनके करुणा-रस-पूर्ण नयन कमलदलके समान विशाल हैं तथा जो श्रीवत्स, हार, केयूर और नूपुर आदि आभूषणोसे विभूषित है ॥ १८ ॥ पुत्ररूपसे प्रकट हुए उन परमात्माको देखकर कौसल्याने विस्मयसे व्याकुल हो, नेत्रोमे आनन्दाश्रु भर, हाथ जोडकर

कौसल्योवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।
परमात्माच्युतोऽनन्त पूर्णस्त्व पुरुषोत्तम ॥ २० ॥

वदन्त्यगोचर वाचा बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ।
त्वा वेदवादिन सत्तामात्र ज्ञानैकविग्रहम् ॥ २१ ॥

त्वमेव मायया विश्व सृजस्यवसि हसि च ।
सत्त्वादिगुणसयुक्तस्तुर्य एवामल सदा ॥ २२ ॥

करोषीव न कर्ता त्व गच्छसीव न गच्छसि ।
शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥ २३ ॥

अप्राणो ह्यमना शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत् ।
सम सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे ॥ २४ ॥

अज्ञानध्वान्तचित्ताना व्यक्त एव सुमेधसाम् ।
जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डा परमाणव ॥ २५ ॥

त्व ममोदरसम्भूत इति लोकान्विडम्बसे ।
भक्तेषु पारवश्य ते दृष्ट मेऽद्य रघूत्तम ॥ २६ ॥

ससारसागरे मग्ना पतिपुत्रधनादिषु ।
भ्रमामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता ॥ २७ ॥

देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे ।
आवृणोतु न मा माया तव विश्वविमोहिनी ॥ २८ ॥

उपसहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
दर्शयस्व महानन्दबालभाव सुकोमलम् ।
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कट तम ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यदिष्ट तवास्त्यम्ब तत्तद्भवतु नान्यथा ॥ ३० ॥

अह तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये ।
प्रार्थितो रावण हन्तु मानुषत्वमुपागत ॥ ३१ ॥

नमस्कार करते हुए कहा ॥ १९ ॥

श्रीकौसल्याजी बोलीं—हे देवदेव ! आपको नमस्कार है, हे शङ्ख-चक्र-गदाधर ! आप अच्युत और अनन्त परमात्मा है तथा सर्वत्र पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ॥ २० ॥ वेदवादीगण आपको मन और वाणी आदिके अविषय तथा इन्द्रियोसे अतीत सत्तामात्र और एकमात्र ज्ञानस्वरूप बतलाते हैं ॥ २१ ॥ आप ही अपनी मायासे सत्त्व, रज और तम—इन तीनो गुणोसे युक्त होकर इस विश्वकी रचना, पालन और सहार करते हैं तथापि वास्तवमें आप सदा निर्मल तुरीय पदमे स्थित हैं ॥ २२ ॥ आप कर्ता नहीं हैं तथापि करते-से प्रतीत होते है, चलते नहीं है फिर भी चलते-से मालूम पडते हैं, न सुनते हुए भी सुनते-से दिखायी देते है और न देखकर भी देखते हुए-से प्रतीत होते है ॥ २३ ॥ भगवती श्रुति भी कहती है कि आप "प्राण और मनसे रहित तथा शुद्ध" है। आप समस्त प्राणियोंमें समानभावसे स्थित है, तथापि जिनका अन्त करण अज्ञानान्धकारसे ढँका हुआ है उन्हे आप दिखायी नही देते, आपका साक्षात्कार सुबुद्धि पुरुषोको ही होता है। हे भगवन् ! आपके उदरमे अनेको ब्रह्माण्ड परमाणुओके समान दिखायी देते है तथापि "आपने मेरे पेटसे जन्म लिया" ऐसा जो आप लोगोमे प्रकट कर रहे है इससे मैंने आज आपकी भक्तवत्सलता देख ली ॥ २४—२६ ॥ हे प्रभो ! मै आपकी मायासे मोहित होकर ससार-सागरमे डूबी हुई पति, पुत्र और धन आदिके फेरमे पड रही थी, आज परम सौभाग्यवश आपके चरण-कमलोकी शरणमे आयी हूँ ॥ २७ ॥ हे देव ! आपकी यह मनोहर मूर्ति सदा मेरे हृदयमे विराजमान रहे और आपकी विश्वविमोहिनी माया मुझे न व्यापे ॥ २८ ॥ हे विश्वात्मन् ! अपने इस अलौकिक रूपका उपसहार कीजिये और परम आनन्द-दायक सुकोमल बालरूप धारण कीजिये जिसके अति सुखद आलिङ्गन और सम्भाषणादिसे मै घोर अज्ञानान्धकारको पार कर जाऊँगी ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे मात ! आप जो-जो चाहती है, वही हो, उसके विरुद्ध कुछ भी न हो। पूर्वकालमें मुझसे पृथिवीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माने प्रार्थना की थी, अत रावणादि निशाचरोको मारनेके लिये ही मैंने मनुष्यरूपसे अवतार लिया है ॥ ३०-३१ ॥

त्वया दशरथेनाह तपसाराधित पुरा ।
मत्पुत्रत्वाभिकाङ्क्षिण्या तथा कृतमनिन्दिते ॥ ३२ ॥

रूपमेतत्त्वया दृष्ट प्राक्तन तपस फलम् ।
मद्दर्शन विमोक्षाय कल्पते ह्यन्यदुर्लभम् ॥ ३३ ॥

संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि ।
स याति मम सारूप्य मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा मातर रामो बालो भूत्वा रुरोद ह ।
बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दर ॥ ३५ ॥

बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिललोकप ।
अथ राजा दशरथ श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् ।
आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥ ३६ ॥

रामं राजीवपत्राक्ष दृष्ट्वा हर्षाश्रुसप्लुत ।
गुरुणा जातकर्माणि कर्तव्यानि चकार स ॥ ३७ ॥

कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा ।
सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ ॥ ३८ ॥

तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ ।
सुवर्णानि च रत्नानि वासासि सुरभी शुभा ॥ ३९ ॥

यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे ।
तं गुरु प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥ ४० ॥

भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मण लक्षणान्वितम् ।
शत्रुघ्न शत्रुहन्तारमेव गुरुरभाषत ॥ ४१ ॥

लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च ।
द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारत ॥ ४२ ॥

हे अनिन्दिते। दशरथजीके सहित तुमने भी मुझे पुत्ररूपसे प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्या करते हुए मेरी आराधना की थी। उसीको मैने इस समय प्रकट होकर पूर्ण किया है ॥ ३२ ॥ तुमने अपनी पूर्व तपस्याके फलसे ही मेरा यह दिव्य रूप देखा है। मेरा दर्शन मोक्षपद देनेवाला होता है, पुण्यहीन जनोके लिये इसका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति हमारे इस सवादको पढेगा या सुनेगा वह मेरी सारूप्य मुक्ति (समानरूपता) प्राप्त करेगा और मरणकालमे उसे मेरी स्मृति बनी रहेगी ॥ ३४ ॥

मातासे इस प्रकार कह भगवान् बालरूप होकर रोने लगे। उनका बालरूप भी इन्द्रनीलमणिके समान श्यामवर्ण बडे-बडे नेत्रोवाला और अति सुन्दर था ॥ ३५ ॥ वह प्रभातकालीन बालसूर्यके समान अरुणज्योतिर्मय था। भगवान्ने अवतरित होकर उस सुमनोहर बालरूपसे सभी लोकपालोको परम आनन्दित कर दिया। तत्पश्चात् जब महाराज दशरथजीने पुत्रोत्पत्ति-रूप उत्सवका शुभ समाचार सुना तो वे मानो आनन्द-समुद्रमे डूब गये और गुरु वसिष्ठजीके साथ राजभवनमे आये ॥ ३६ ॥ वहाँ आकर कमलनयन रामको देखकर वे आनन्दाश्रुओसे पूर्ण हो गये और गुरुजीद्वारा उनके जातकर्म आदि आवश्यक सस्कार कराये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कमलनयनी कैकेयीसे भरतका जन्म हुआ और सुमित्रासे पूर्णचन्द्रके समान मुखवाले दो यमज बालक उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उस समय महाराज दशरथने अति उत्साहपूर्वक सहस्रो ग्राम, बहुत-सा सुवर्ण, अनेक रत्न, नाना प्रकारके वस्त्र और शुभलक्षणोवाली अनेको गौएँ ब्राह्मणोको दी ॥ ३९ ॥

विज्ञानके द्वारा अज्ञानके नष्ट हो जानेपर मुनिजन जिनमे रमण करते है अथवा जो अपनी सुन्दरतासे भक्त जनोके चित्तोको रमाते (आनन्दमय करते) हैं उनका नाम गुरु वसिष्ठजीने 'राम' रखा ॥ ४० ॥ इसी प्रकार गुरुजीने ससारका पोषण करनेवाला होनेसे दूसरे पुत्रका नाम 'भरत', समस्त सुलक्षणसम्पन्न होनेसे तीसरेका नाम 'लक्ष्मण' और शत्रुओंका घातक होनेसे चौथे पुत्रका नाम 'शत्रुघ्न' रखा ॥ ४१ ॥ कौसल्या और कैकेयीके दिये हुए पायसाशोके अनुसार लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके और शत्रुघ्नजी भरतजीके जोडीदार होकर रहने लगे ॥ ४२ ॥

रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन्बाललीलया।
रमयामास पितरौ चेष्टितैर्मुग्धभाषितै ॥ ४३ ॥

भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम्।
कण्ठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखाञ्चितम् ॥ ४४ ॥

कर्णयो स्वर्णसम्पन्नरत्नार्जुनसटालुकम्।
शिञ्जानमणिमञ्जीरकटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥ ४५ ॥

स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम्।
अङ्गणे रिङ्गमाण त तर्णकाननु सर्वत ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा।
भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत् ॥ ४७ ॥

आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया।
आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम् ॥ ४८ ॥

धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टु योगिमनोगतिम्।
प्रहसन्स्वयमायाति कर्दमाङ्कितपाणिना।
किञ्चिद् गृहीत्वा कवल पुनरेव पलायते ॥ ४९ ॥

कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती।
वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम् ॥ ५० ॥

अपूपान्मोदकान्कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा।
कर्णपूरांश्च विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम् ॥ ५१ ॥

गृहकृत्य तया त्यक्त तस्य चापल्यकारणात्।
एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके ॥ ५२ ॥

भोजन देहि मे मातर्न श्रुत कार्यसक्तया।
तत क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत्तदा ॥ ५३ ॥

शिक्यस्थ पातयामास गव्य च नवनीतकम्।
लक्ष्मणाय ददौ रामो भरताय यथाक्रमम् ॥ ५४ ॥

शत्रुघ्नाय ददौ पश्चाद्दधि दुग्ध तथैव च।
सूदेन कथिते मात्रे हास्य कृत्वा प्रधावति ॥ ५५ ॥

लक्ष्मणजीके साथ विचरते हुए श्रीरामचन्द्रजी अपनी बाललीलाओ, चेष्टाओ और भोली-भाली बातोसे माता-पिताको आनन्दित करने लगे ॥ ४३ ॥

जिसके ललाटपर मोतियोसे सजाया हुआ देदीप्यमान सुवर्णमय अश्वत्थपत्र (पीपलका पत्ता) तथा गलेमे रत्न और मणिसमूहके साथ बीच-बीचमे व्याघ्रनख सजाकर गूँथी हुई लडियाँ सुशोभित है ॥ ४४ ॥ कानोमे अर्जुनवृक्षके कच्चे फलोके समान रत्नजटित सुवर्णके आभूषण लटक रहे है, तथा जो झनकारते हुए मणिमय नूपुर, सुवर्णमेखला और बाजूबदसे विभूषित है ॥ ४५ ॥ उस इन्द्रनील-मणिकी-सी आभावाले तथा स्वल्प दाँतोसे युक्त मुसकाते हुए मुखवाले बालकको राजभवनके आँगनमे बछडेके पीछे-पीछे सब ओर बालगतिसे दौडते देख महाराज दशरथ और माता कौसल्या अति आनन्दित होते थे। जिस समय महाराज भोजन करने बैठते तो 'राम ! आ' ऐसा कह-कहकर अति हर्ष और प्रेमपूर्वक उन्हे बारम्बार बुलाते। जब खेलमे लगे रहनेके कारण वे न आते तो वे कौसल्यासे इसे पकड ला' ऐसा कहकर उन्हे लानेके लिये कहते। किन्तु जो योगिजनोके चित्तके एकमात्र आश्रय है ऐसे पुत्रको कौसल्याजी हँसकर दौडती हुई भी न पकड पाती। (उस समय माताको थकी देखकर) वे स्वय ही कीचमे सने हुए हाथोसे हँसते-हँसते वहाँ आ जाते और एक-आध ग्रास खाकर ही फिर भाग जाते ॥ ४६—४९ ॥ माता कौसल्या रामको भली प्रकार वस्त्राभूषण पहनाकर प्रतिमास नाना प्रकारकी मिठाई बनाकर उत्सव मनाया करती थी। और वर्षगाँठके दिन भी पूआ, लड्डू, जलेबी, कचौडी आदि विविध व्यञ्जन बनाकर उत्सव मनाती थी ॥ ५०-५१ ॥

रामकी चपलताके कारण कौसल्याने घरका काम करना छोड दिया था। एक दिन रामजी माताके पास गये ॥ ५२ ॥ और कहा—"माता ! मुझे कुछ खानेको दे।" किन्तु काममे लगी होनेसे माताने न सुना। तब क्रोधित होकर उन्होने डडेसे सब बर्तन फोड डाले ॥ ५३ ॥ तथा छीकेपर रखे हुए गोरस और माखनको गिरा लिया और उसे तथा वहाँ रखे हुए समस्त दूध-दहीको भी क्रमश लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको बाँट दिया। तब रसोइयेने जाकर माता कौसल्यासे कहा। वह हँसती हुई पकडनेको दौडी ॥ ५४-५५ ॥

आगता ता विलोक्याथ तत सर्वै पलायितम् ।
कौसल्या धावमानापि प्रस्खलन्ती पदे पदे ॥ ५६ ॥

रघुनाथ करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भामिनी ।
बालभाव समाश्रित्य मन्द मन्द रुरोद ह ॥ ५७ ॥

ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्य यत्नत ।
एवमानन्दसन्दोहजगदानन्दकारक ॥ ५८ ॥

मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती ।
अथ कालेन ते सर्वे कौमार प्रतिपेदिरे ॥ ५९ ॥

उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदा ।
धनुर्वेदे च निरता सर्वशास्त्रार्थवेदिन ॥ ६० ॥

बभूवुर्जगता नाथा लीलया नररूपिण ।
लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम् ॥ ६१ ॥

सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरत तथा ।
रामश्चापधरो नित्य तूणीबाणान्वित प्रभु ॥ ६२ ॥

अश्वारूढो वन याति मृगयायै सलक्ष्मण ।
हत्वा दुष्टमृगान्सर्वान्पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६३ ॥

प्रातरुत्थाय सुस्नात पितरावभिवाद्य च ।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वित ॥ ६४ ॥

बन्धुभि सहितो नित्य भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम् ।
धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च ॥ ६५ ॥

एव परात्मा मनुजावतारो
मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम् ।
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो
विचार्यमाणे न करोति किञ्चित् ॥ ६६ ॥

माताको आती देखकर वे सब बालक भाग गये। माता कौसल्या भी उनके पीछे दौडी, किन्तु वे पग-पगपर फिसलने लगी ॥ ५६ ॥ अन्तमे उन्होने रामको पकड लिया, किन्तु कहा कुछ भी नही। उस समय रामजी बालभावसे धीरे-धीरे रोने लगे ॥ ५७ ॥ तब उन सबको भयभीत देखकर माताने उन्हे बडे प्रेमसे हृदय लगाकर प्यार किया। इस प्रकार जगदानन्दकारक आनन्दघन भगवान् राम मायामय बालरूप धारणकर राजदम्पति दशरथ और कौसल्याको आनन्दित करने लगे। तदुपरान्त कुछ काल बीतनेपर उन चारो भाइयोने कौमार-अवस्थामे प्रवेश किया ॥ ५८-५९ ॥

तब वसिष्ठजीने उनका उपनयन-सस्कार किया और लीलासे ही नररूप धारण करनेवाले सम्पूर्ण लोकोके स्वामी (चारो भाई) समस्त शास्त्रोका मर्म जाननेवाले तथा धनुर्वेद आदि सम्पूर्ण विद्याओके पारगामी हो गये। उन सब भाइयोमे लक्ष्मणजी सेव्य-सेवकभावसे आदरपूर्वक सदा रामचन्द्रजीका अनुगमन करते थे और उसी प्रकार शत्रुघ्नजी सदा भरतजीकी सेवामे उपस्थित रहते थे। भगवान् राम नित्यप्रति लक्ष्मणजीके सहित धनुष, बाण और तरकस धारणकर घोडेपर सवार हो दुष्ट पशुओको मारनेके लिये वनको जाते और वहाँ उन सिह-व्याघ्रादिको मारकर उन सबकी बात पिताजीको निवेदन कर देते ॥ ६०—६३ ॥ प्रात काल उठकर स्नान करनेके अनन्तर वे माता-पिताको प्रणाम करते और फिर नम्रतापूर्वक नगर-निवासियोके समस्त कार्य करते ॥ ६४ ॥ फिर भाइयोसहित भोजन करके नित्यप्रति मुनिजनोंसे धर्मशास्त्रोका मर्म सुनते और स्वय भी उनकी व्याख्या करते ॥ ६५ ॥

इस प्रकार अविकारी और परिणामहीन परमात्माने मनुष्यावतार लेकर मनुष्योके आचरणका अनुगमन करते हुए समस्त कार्य किये, पर विचार करके देखा जाय तो वे कुछ भी नही करते ॥ ६६ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे बालकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

★

चतुर्थ सर्ग

विश्वामित्रजीका आगमन, राम और लक्ष्मणका उनके साथ जाना और ताटकाका वध करना

श्रीमहादेव उवाच

कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्या ज्वलनप्रभ ।
द्रष्टु राम परात्मान जात ज्ञात्वा स्वमायया ॥ १ ॥

दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु ।
वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ २ ॥

अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्जलिर्भक्तिनम्रधी ।
कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राह त्वदागमनकारणात् ॥ ३ ॥

त्वद्विधा यद्गृह यान्ति तत्रैवायान्ति सपद ।
यदर्थमागतोऽसि त्व ब्रूहि सत्य करोमि तत् ॥ ४ ॥

विश्वामित्रोऽपि त प्रीत प्रत्युवाच महामति ।
अह पर्वणि सप्राप्ते दृष्ट्वा यष्टु सुरान्पितॄन् ॥ ५ ॥

यदारभे तदा दैत्या विघ्न कुर्वन्ति नित्यश ।
मारीचश्च सुबाहुश्चापरे चानुचरास्तयो ॥ ६ ॥

अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठ राम प्रयच्छ मे ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा तव श्रेयो भविष्यति ॥ ७ ॥

वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयता यदि रोचते ।
पप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायण ॥ ८ ॥

किं करोमि गुरो राम त्यक्तु नोत्सहते मन ।
बहुवर्षसहस्रान्ते कष्टेनोत्पादिता सुता ॥ ९ ॥

चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषा रामोऽतिवल्लभ ।
रामस्त्वितो गच्छति चेन्न जीवामि कथञ्चन ॥ १० ॥

प्रत्याख्यातो यदि मुनि शाप दास्यत्यसशय ।
कथ श्रेयो भवेन्मह्यमसत्य चापि न स्पृशेत् ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक बार अग्निके समान तेजस्वी महर्षि विश्वामित्र परमात्माको अपनी ही मायासे रामरूपमे प्रकट हुए जान उनके दर्शन करनेके लिये अयोध्यापुरीमे आये ॥ १ ॥ उन्हे देखते ही महाराज दशरथ तुरत उठ खडे हुए और वसिष्ठजीके सहित आगे आकर उनका स्वागत किया और यथाविधि पूजन तथा अभिवादन कर राजाने भक्ति-विनम्र-चित्तसे हाथ जोडकर मुनिसे कहा—"हे मुनीन्द्र ! आपके शुभागमनसे आज मै कृतकृत्य हो गया ॥ २-३ ॥ जिस घरमे आप-जैसे महानुभाव पधारते है उसमे सभी सम्पत्तियाँ आ जाती है। अब आप यह बताइये कि आपका शुभागमन किसलिये हुआ है ? मै आपसे सत्य कहता हूँ, मै आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा" ॥ ४ ॥

तब महामति विश्वामित्रजीने उनसे कहा—"जब कभी पर्वकाल उपस्थित हुआ देखकर मै देव और पितृगणोके लिये यजन करना आरम्भ करता हूँ तो सदा ही मारीच, सुबाहु और उनके अन्यान्य अनुयायी दैत्यगण उसमे विघ्न डाल देते है ॥ ५-६ ॥ अतएव उनका वध करनेके लिये तुम अपने बडे पुत्र रामको भाई लक्ष्मणके सहित मुझे दो इससे तुम्हारा भी परम कल्याण होगा ॥ ७ ॥ इस विषयमे वसिष्ठजीसे सम्मति करके यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मुझे दोनो कुमारोको दे दो।" तब राजाने चिन्ताकुल होकर एकान्तमे गुरुजीसे पूछा ॥ ८ ॥ "हे गुरो ! सहस्रो वर्ष बीतनेपर बडे कष्टसे मुझे ये देवताओके सदृश चार पुत्र मिले है। इनमे राम मुझे बहुत ही प्रिय है, सो अब मै क्या करूँ ? मेरा चित्त तो रामको छोडनेके लिये तैयार नही है। यदि राम यहाँसे चला जायगा तो मै किसी प्रकार भी जी नही सकूँगा ॥ ९-१० ॥ परन्तु यदि मै सूखा जवाब दूँ तो यह निश्चय है कि मुनि मुझे शाप दे देगे। अत अब यह बताइये कि मेरा हित किस प्रकार हो और मैं असत्य-भाषणसे भी कैसे बचूँ ?" ॥ ११ ॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु राजन्देवगुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः ॥ १२ ॥

भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।
स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ ॥ १३ ॥

त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः ।
कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी ।
भवन्तौ तप उग्रं वै तेपाथे बहुवत्सरम् ॥ १४ ॥

अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ ।
तदा प्रसन्नो भगवान् वरदो भक्तवत्सलः ॥ १५ ॥

वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल ।
इति त्वया याचितोऽसौ भगवान्भूतभावनः ॥ १६ ॥

तथेत्युक्त्वाद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि ।
शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥

जातौ भरतशत्रुघ्नौ शङ्खचक्रे गदाभृतः ।
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥ १८ ॥

विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः ।
एतद्गुह्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन ॥ १९ ॥

अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाथ कौशिकम् ।
प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः ॥ २१ ॥

आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम् ।
आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥ २२ ॥

ततोऽतिहृष्टो भगवान्विश्वामित्रः प्रतापवान् ।
आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौ रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥

गृहीत्वा चापतूणीरबाणखड्गधरौ ययौ ।
किञ्चिद्देशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तितः ॥ २४ ॥

वसिष्ठजी बोले—राजन्! देवताओंसे भी गुप्त रखने योग्य बात सुनो, इसे किसी प्रकार प्रकट न होने देना चाहिये। ये राम मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् पुराणपुरुष परमात्मा ही (अपनी मायासे) इस रूपमें प्रकट हुए हैं॥ १२ ॥ हे अनघ! पूर्वकालमें पृथिवीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीने भगवान्‌से प्रार्थना की थी, उसे पूर्ण करनेके लिये उन परमेश्वरने तुम्हारे यहाँ कौसल्याके गर्भसे जन्म लिया है॥ १३ ॥ पूर्वजन्ममें तुम ब्रह्माजीके पुत्र प्रजापति कश्यप थे और यशस्विनी कौसल्या देवमाता अदिति थीं। उस समय तुम दोनोंने बहुत वर्षोंतक ग्राम्य-विषयोंसे रहित और एकमात्र भगवान् विष्णुकी पूजा तथा ध्यानमें तत्पर रहकर बड़ा उग्र तप किया। तब कालान्तरमें भक्तवत्सल वरदायक भगवान्‌ने तुम दोनोंपर प्रसन्न होकर कहा कि 'वर माँगो' तो तुमने (भगवान्‌से) यही माँगा कि 'हे निरञ्जन! आप हमारे पुत्र हों' तब भूतभावन भगवान्‌ने कहा कि 'ऐसा ही हो।' इसलिये वे ही विष्णुभगवान् इस समय रामरूपसे तुम्हारे पुत्र हुए हैं और (उनकी सेवा करनेके लिये) शेषजी लक्ष्मणके रूपमें प्रकट होकर उनके अनुयायी हुए हैं॥ १४—१७ ॥ भगवान् गदाधरके शङ्ख और चक्रने भरत और शत्रुघ्नके रूपसे अवतार लिया है तथा योगमाया जनकदुलारी सीताजी होकर प्रकट हुई है॥ १८ ॥ इस समय विश्वामित्रजी रामसे सीताका संयोग करानेके लिये ही आये हैं। राजन्! यह रहस्य अत्यन्त गुह्य है, इसे कभी प्रकाशित मत करना॥ १९ ॥ (अब सम्पूर्ण रहस्य तुमको मालूम हो गया है) इसलिये अब तुम प्रसन्नचित्तसे श्रीविश्वामित्रजीका सत्कार करके लक्ष्मीपति श्रीरघुनाथजीको लक्ष्मणसहित इनके साथ भेज दो॥ २० ॥

वसिष्ठजीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने उस समय अपनेको कृतकृत्य माना और प्रसन्नचित्तसे आदरपूर्वक 'हे राम! हे राम! हे लक्ष्मण!' ऐसा कहकर पुकारा तथा उन दोनों भाइयोंके आनेपर उन्हें हृदयसे लगाकर और सिर सूँघकर श्रीविश्वामित्रजीको सौंप दिया॥ २१-२२ ॥ तब अति प्रतापी भगवान् विश्वामित्रजीने उन्हें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर सम्मानित किया और फिर धनुष, तरकश, बाण एवं खड्ग आदिसे सुसज्जित होकर अपने पास आये हुए राम और लक्ष्मणको साथ लेकर वहाँसे चल पड़े। थोड़ी दूर जानेपर

ददौ बला चातिबला विद्ये द्वे देवनिर्मिते ।
ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते ॥ २५ ॥

तत उत्तीर्य गङ्गा ते ताटकावनमागमन् ।
विश्वामित्रस्तदा प्राह राम सत्यपराक्रमम् ॥ २६ ॥

अत्रास्ति ताटका राम राक्षसी कामरूपिणी ।
बाधते लोकमखिल जहि तामविचारयन् ॥ २७ ॥

तथेति धनुरादाय सगुण रघुनन्दन ।
टङ्कारमकरोत्तेन शब्देनापूरयद्वनम् ॥ २८ ॥

तच्छ्रुत्वासहमाना सा ताटका घोररूपिणी ।
क्रोधसमूर्च्छिता राममभिदुद्राव मेघवत् ॥ २९ ॥

तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि ।
पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिर बहु ॥ ३० ॥

ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता ।
शापात्पिशाचता प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादत ॥ ३१ ॥

नत्वा राम परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥ ३२ ॥
ततोऽतिहृष्ट परिरभ्य राम
मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किञ्चित् ।
सर्वास्त्रजाल सरहस्यमन्त्र
प्रीत्याभिरामाय ददौ मुनीन्द्र ॥ ३३ ॥

विश्वामित्रजीने भक्तिपूर्वक रामको बुलाया और उन्हे देवनिर्मित बला और अतिबला नामकी ऐसी दो विद्याएँ दी, जिनके ग्रहण करनेसे ही क्षुधा और दुर्बलता आदिकी बाधा नही होती ॥ २३—२५ ॥

तदनन्तर गङ्गाजीको पारकर वे ताटकावनमे आये, तब विश्वामित्रजीने सत्यपराक्रमी रामसे कहा ॥ २६ ॥ "यहाँ एक ताटका नामकी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी रहती है जो इस प्रदेशके समस्त निवासियोको अत्यन्त कष्ट पहुँचाती है, तुम बिना कुछ सोच-विचार किये उसे मार डालो" ॥ २७ ॥ तब रघुनाथजीने 'बहुत अच्छा' कह धनुषपर प्रत्यञ्चा चढाकर टङ्कार किया, जिसके शब्दसे वह सम्पूर्ण वन गुञ्जायमान हो गया ॥ २८ ॥ उस शब्दको सुनकर घोररूपिणी ताटका उसे सहन न कर सकनेके कारण क्रोधसे पागल होकर मेघके समान रामकी ओर दौडी ॥ २९ ॥ भगवान् रामने तुरत ही उसके वक्ष स्थलमे एक बाण मारा, जिससे वह घोर राक्षसी बहुत-सा रुधिर उगलती हुई उस वनमे गिर पडी ॥ ३० ॥ फिर शापवश पिशाचताको प्राप्त हुई वह ताटका श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे शापमुक्त होकर एक सर्वालङ्कार-विभूषिता परम सुन्दरी यक्षिणी हो गयी तथा रामचन्द्रजीकी परिक्रमा करके उन्हे प्रणामकर उनकी आज्ञासे स्वर्गलोकको चली गयी ॥ ३१-३२ ॥ तब मुनिवर विश्वामित्रजीने अति हर्षित होकर रामजीका आलिङ्गन किया और उनका सिर सूँघकर कुछ सोच-विचारकर रहस्य और मन्त्रादिके सहित समस्त अस्त्र-शस्त्र प्रीतिपूर्वक अभिराम रामको दिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे बालकाण्डे चतुर्थ सर्ग ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

मारीच और सुबाहुका दमन तथा अहल्योद्धार

श्रीमहादेव उवाच

तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कुले ।
उषित्वा रजनीमेका प्रभाते प्रस्थिता शनै ॥ १ ॥
सिद्धाश्रम गता सर्वे सिद्धचारणसेवितम् ।
विश्वामित्रेण सदिष्टा मुनयस्तन्निवासिन ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तदुपरान्त विश्वामित्रजीके सहित वे दोनो भाई एक रात मुनिजन-सकुलित अति सुन्दर उस कामाश्रम नामक वनमे रहकर प्रात काल होते ही धीरे-धीरे वहाँसे चले ॥ १ ॥ तब वे सब सिद्ध और चारणोसे सेवित सिद्धाश्रमपर आये ।

पूजा च महतीं चक्रू रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ।
श्रीराम कौशिक प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम् ॥ ३ ॥

दर्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ ।
तथेत्युक्त्वा मुनिर्यष्टुमारेभे मुनिभि सह ॥ ४ ॥

मध्याह्ने ददृशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥

रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधी ।
आकर्णान्त समाकृष्य विससर्ज तयो पृथक् ॥ ६ ॥

तयोरेकस्तु मारीच भ्रामयञ्छतयोजनम् ।
पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥

द्वितीयोऽग्निमयो बाण सुबाहुमजयत्क्षणात् ।
अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिन ॥ ८ ॥

पुष्पौघैराकिरन्देवा राघव सहलक्ष्मणम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवु सिद्धचारणा ॥ ९ ॥

विश्वामित्रस्तु सपूज्य पूजार्ह रघुनन्दनम् ।
अङ्के निवेश्य चालिङ्ग्य भक्त्या बाष्पाकुलेक्षण ॥ १० ॥

भोजयित्वा सह भ्रात्रा राम पक्वफलादिभि ।
पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ॥ ११ ॥

चतुर्थेऽहनि सप्राप्ते कौशिको राममब्रवीत् ।
राम राम महायज्ञ द्रष्टु गच्छामहे वयम् ॥ १२ ॥

विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मन ।
तत्र माहेश्वर चापमस्ति न्यस्त पिनाकिना ॥ १३ ॥

द्रक्ष्यसि त्व महासत्त्व पूज्यसे जनकेन च ।
इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताभ्या ययौ गङ्गासमीपगम् ॥ १४ ॥

गौतमस्याश्रम पुण्य यत्राहल्यास्थिता तप ।

वहाँके रहनेवाले मुनिजनोने विश्वामित्रजीकी आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक राम और लक्ष्मणका बडा सत्कार किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रजीसे कहा—"हे मुने! आप दीक्षामे स्थित होइये ॥ २-३ ॥ और हे महाभाग! हमे केवल यह दिखा दीजिये कि वे राक्षसाधम कहाँ है ?" तब मुनिवरने 'बहुत अच्छा' कहकर अन्य मुनियोके साथ यज्ञ करना आरम्भ कर दिया ॥ ४ ॥

मध्याह्नके समय मारीच और सुबाहु नामक वे दोनो कामरूपी राक्षस रक्त और अस्थियोकी वर्षा करते दिखायी दिये ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् रामने भी दो बाण लेकर धनुषपर चढाये और कर्णपर्यन्त खीचकर अलग-अलग उन दोनो राक्षसोकी ओर छोडे ॥ ६ ॥ उनमेसे एक बाणने मारीचको आकाशमे घुमते हुए सौ योजनकी दूरीपर समुद्रमे गिरा दिया। यह एक बडा ही आश्चर्य-सा हो गया ॥ ७ ॥ दूसरे अग्निमय बाणने क्षणभरमे सुबाहुको भस्म कर डाला तथा जो उनके अन्यान्य अनुयायी थे उन सबको तुरत ही लक्ष्मणजीने मार डाला ॥ ८ ॥

उस समय देवताओने लक्ष्मणजीके सहित श्रीरघुनाथजीपर फूल बरसाये और देवदुन्दुभि आदि बाजोका घोष किया तथा सिद्ध और चारणगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ विश्वामित्रजीने पूजनीय रघुनाथजीका भली प्रकार पूजन किया और उन्हे गोदमे ले नेत्रोमे भक्तिपूर्वक प्रेमाश्रु भरकर गले लगा लिया ॥ १० ॥ फिर भाई लक्ष्मणके सहित रामको पके फल आदि खिलाकर पुराण और इतिहासादिकी मधुर कथाएँ सुनाते हुए तीन दिन बिताये ॥ ११ ॥ चौथा दिन आनेपर विश्वामित्रजीने रामसे कहा—"हे राम! महात्मा जनकजीका बडा भारी यज्ञ देखनेके लिये हमलोग जनकपुर चलेगे। वहाँ श्रीमहादेवजीका धरोहरके रूपमे रखा हुआ एक बडा भारी धनुष है ॥ १२-१३ ॥ उस सुदृढ धनुषको तुम देखोगे और महाराज जनक तुम्हारा भली प्रकार सत्कार करेगे।" विश्वामित्रजी इस प्रकार कह मुनियोको और राम-लक्ष्मणको साथ ले गङ्गाजीके निकट मुनिश्रेष्ठ गौतमजीके उस पवित्र आश्रमपर आये जो दिव्य और पवित्र फलोवाले वृक्षोसे घिरा हुआ था और जहाँ

मृगपक्षिगणैर्हीन नानाजन्तुविवर्जितम् ।
दृष्ट्वोवाच मुनिं श्रीमान् रामो राजीवलोचन ॥ १६ ॥

कस्यैतदाश्रमपद भाति भास्वच्छुभ महत् ।
पत्रपुष्पफलैर्युक्त जन्तुभि परिवर्जितम् ॥ १७ ॥

आह्लादयति मे चेतो भगवन् ब्रूहि तत्त्वत ॥ १८ ॥

कमलनयन श्रीमान् रामजीने उस आश्रमको मृग, पक्षी तथा नाना प्रकारके जीवोसे रहित देख मुनिवर कौशिकसे कहा ॥ १६ ॥ "यह पत्र, पुष्प और फल आदिसे सम्पन्न तथा जीवशून्य महान् आश्रम जो बडा सुन्दर, रमणीय और पवित्र दीख पडता है, किसका है ? भगवन् ! इसे देखकर मेरा चित्त अति आह्लादित हो रहा है, आप इसका सब वृत्तान्त यथावत् कहिये" ॥ १७-१८ ॥

विश्वामित्र उवाच

शृणु राम पुरा वृत्त गौतमो लोकविश्रुत ।
सर्वधर्मभृता श्रेष्ठस्तपसाराधयन् हरिम् ॥ १९ ॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्या लोकसुन्दरीम् ।
ब्रह्मचर्येण सन्तुष्ट शुश्रूषणपरायणाम् ॥ २० ॥

तया सार्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपता वर ।
शक्रस्तु ता धर्षयितुमन्तर प्रेप्सुरन्वहम् ॥ २१ ॥

कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात् ।
धर्षयित्वाथ निरगात्त्वरित मुनिरप्यगात् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा यान्त स्वरूपेण मुनि परमकोपन ।
पप्रच्छ कस्त्व दुष्टात्मन्मम रूपधरोऽधम ॥ २३ ॥

सत्य ब्रूहि न चेद्भस्म करिष्यामि न सशय ।
सोऽब्रवीद्देवराजोऽह पाहि मा कामकिङ्करम् ॥ २४ ॥

कृत जुगुप्सित कर्म मया कुत्सितचेतसा ।
गौतम क्रोधताम्राक्ष शशाप दिविजाधिपम् ॥ २५ ॥

योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव ।
शप्त्वा त देवराजान प्रविश्य स्वाश्रम द्रुतम् ॥ २६ ॥

दृष्ट्वाहल्या वेपमाना प्राञ्जलि गौतमोऽब्रवीत् ।
दुष्टे त्व तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ॥ २७ ॥

निराहारा दिवारात्र तप. परममास्थिता ।
आतपानिलवर्षादिसहिष्णु परमेश्वरम् ॥ २८ ॥

ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि सस्थितम् ।
नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति ॥ २९ ॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले—हे राम ! इस आश्रमका पूर्व-वृत्तान्त सुनो। पहले इस आश्रममे जगद्विख्यात धार्मिक-श्रेष्ठ मुनिवर गौतमजी तपस्याद्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हुए रहते थे ॥ १९ ॥ उनके ब्रह्मचर्यसे सतुष्ट होकर भगवान् ब्रह्माजीने उनकी सेवाके लिये उन्हे अहल्या नामकी एक लोकसुन्दरी सेवा-परायणा कन्या दी ॥ २० ॥ और तापसप्रवर गौतमजी उस अहल्याके साथ यहाँ रहने लगे, इधर देवराज इन्द्र अहल्याके रूप-लावण्यपर मुग्ध होकर नित्यप्रति उसके साथ रमण करनेका अवसर देखने लगे ॥ २१ ॥

एक दिन मुनिवर गौतमके बाहर चले जानेपर वह गौतमके रूपसे अहल्याके साथ रमण कर जल्दीसे वहाँसे चलता बना, इसी समय मुनि भी वहाँ लौट आये ॥ २२ ॥ उसे अपना रूप धारणकर वहाँसे जाते देख गौतम मुनिने अत्यन्त कुपित होकर पूछा—"रे दुष्टात्मन् ! रे अधम ! मेरे रूपको धारण करनेवाला तू कौन है ? ॥ २३ ॥ सच-सच बता, नही तो मैं तुझे अभी भस्म कर दूँगा—इसमे सन्देह न करना।" तब वह बोला— "भगवन् ! मैं कामके वशीभूत देवराज इन्द्र हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ मुझ पापात्माने बडा घृणित कार्य किया है।" तब गौतमने क्रोधसे आँखे लाल कर देवराजको शाप दिया ॥ २५ ॥ "हे दुष्टात्मन् ! तू योनिलम्पट है इसलिये तेरे शरीरमे सहस्र भग हो जायँ।" इस प्रकार देवराजको शाप देकर मुनिने अपने आश्रममे प्रवेश किया तो देखा कि अहल्या भयसे काँपती हुई हाथ जोडे खडी है। उसे देखकर गौतमने कहा—"हे दुष्टे ! तू मेरे आश्रममें शिलामे निवास कर ॥ २६-२७ ॥ यहाँ तू निराहार रहकर धूप, वायु और वर्षा आदिको सहन करती हुई दिन-रात तपस्या कर और एकाग्रचित्तसे हृदयमे विराजमान परमात्मा रामका ध्यान कर। अबसे यह मेरा आश्रम विविध प्रकारके जीव-जन्तुओसे रहित हो जायगा ॥ २८-२९ ॥

एव वर्षसहस्रेषु ह्यनेकेषु गतेषु च।
रामो दाशरथि श्रीमानागमिष्यति सानुज ॥ ३० ॥

यदा त्वदाश्रयशिला पादाभ्यामाक्रमिष्यति।
तदैव धूतपापा त्व राम सपूज्य भक्तित ॥ ३१ ॥

परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद्विमोक्ष्यसे।
पूर्ववन्मम शुश्रूषा करिष्यसि यथासुखम् ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा गौतम प्रागाद्धिमवन्त नगोत्तमम्।
तदाद्यहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे ॥ ३३ ॥

तव पादरज स्पर्श काङ्क्षते पवनाशना।
आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता ॥ ३४ ॥

पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्या ब्रह्मण सुताम्।
इत्युक्त्वा राघव हस्ते गृहीत्वा मुनिपुङ्गव ॥ ३५ ॥

दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम्।
राम शिला पदा स्पृष्ट्वा ता चापश्यत्तपोधनीम् ॥ ३६ ॥

ननाम राघवोऽहल्या रामोऽहमिति चाब्रवीत्।
ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठ पीतकौशेयवाससम् ॥ ३७ ॥

चतुर्भुज शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणम्।
धनुर्बाणधर राम लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ३८ ॥

स्मितवक्त्र पद्मनेत्र श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
नीलमणिव्यसङ्काश द्योतयन्त दिशो दश ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा राम रमानाथ हर्षविस्फारितेक्षणा।
गौतमस्य वच स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायण परम् ॥ ४० ॥

सपूज्य विधिवद्राममर्घ्यादिभिरनिन्दिता।
हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दण्डवत्प्रणिपत्य सा ॥ ४१ ॥

उत्थाय च पुनर्दृष्ट्वा राम राजीवलोचनम्।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा गिरा गद्गदयैलत ॥ ४२ ॥

अहल्योवाच

अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास ते
पादाब्जसलग्नरज कणादहम्।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभि-
र्विमृग्यते रन्धितमानसै सदा ॥ ४३ ॥

इसी प्रकार कई हजार वर्ष बीत जानेपर यहाँ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी भाई लक्ष्मणके साथ आयेंगे ॥ ३० ॥ जिस समय वे तेरी आश्रयभूत शिलापर अपने दोनो चरण रखेगे उसी समय तू पापमुक्त हो जायगी तथा भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका पूजन कर उनकी परिक्रमा और नमस्कारपूर्वक स्तुति कर शापसे छूट जायगी और फिर पूर्ववत् मेरी सुखपूर्वक सेवा करने लगेगी'' ॥ ३१-३२ ॥ ऐसा कहकर महर्षि गौतम पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर चले गये। हे रघुश्रेष्ठ! उसी दिनसे यह अहल्या वायु भक्षण करती हुई कठोर तपस्यामे स्थित हो आपके चरण-रजके स्पर्शकी कामनासे आजतक प्राणियोसे अलक्षिता रहकर अपने शुभ आश्रममे रहती है ॥ ३३-३४ ॥ हे राम! अब तुम ब्रह्माजीकी पुत्री गौतम-पत्नी अहल्याका उद्धार करो।

मुनिवर विश्वामित्रजीने ऐसा कह रघुनाथजीका हाथ पकड उन्हे उग्र तपमें स्थित अहल्याको दिखलाया। तब श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणसे उस शिलाको स्पर्शकर तपस्विनी अहल्याको देखा ॥ ३५-३६ ॥ उसे देखकर भगवान् रामने ''मैं राम हूँ'' ऐसा कहकर प्रणाम किया।

तब अहल्याने रेशमी पीताम्बर धारण किये श्रीरघुनाथजीको देखा ॥ ३७ ॥ उनकी चारो भुजाओंमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे, कधेपर धनुष-बाण विराजमान थे तथा साथमें श्रीलक्ष्मणजी थे ॥ ३८ ॥ उनका मुख मुसकानयुक्त, नेत्र कमलदलके समान और वक्ष स्थल श्रीवत्साङ्कसे सुशोभित था। अपने नीलमणिसदृश श्याम विग्रहसे वे दसो दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ ३९ ॥ रमानाथ श्रीरामचन्द्रको देखकर अहल्याके नेत्र हर्षसे खिल गये और उसे मुनिवर गौतमके वाक्योंका स्मरण हो आया। तब उन्हें साक्षात् श्रीनारायण जान उस अनिन्दिताने अर्घ्यादिसे उनका विधिवत् पूजन किया और नेत्रोमे आनन्दाश्रु भर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४०-४१ ॥ फिर खडी होकर वह कमलनयन भगवान् रामको देख सर्वाङ्गसे पुलकित हो गद्गदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगी ॥ ४२ ॥

अहल्या बोली—हे जगन्निवास! आपके चरण-कमलोंके रज कणका स्पर्श कर आज मैं कृतार्थ हो गयी। अहो! (बडे भाग्यकी बात है कि) आपके जिन पदारविन्दों-का ब्रह्मा और शकर आदि एकाग्रचित्तसे सर्वदा अनुसन्धान किया करते हैं उन्हींका आज मैं स्पर्श कर रही हूँ ॥ ४३ ॥

अहो विचित्र तव राम चेष्टित
मनुष्यभावेन विमोहित जगत्।
चलस्यजस्र चरणादिवर्जित
सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिक ॥ ४४ ॥

यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा
भागीरथी भवविरिञ्चिमुखान्पुनाति ।
साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते
किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम् ॥ ४५ ॥

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं
रामाभिधेय रमणीयदेहिनम् ।
धनुर्धर पद्मविशाललोचन
भजामि नित्य न परान्भजिष्ये ॥ ४६ ॥

यत्पादपङ्कजरज श्रुतिभिर्विमृग्य
यन्नाभिपङ्कजभव कमलासनश्च ।
यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारि-
स्त रामचन्द्रमनिश हृदि भावयामि ॥ ४७ ॥

यस्यावतारचरितानि विरिञ्चिलोके
गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्या ।
आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमा
वागीश्वरी च तमह शरण प्रपद्ये ॥ ४८ ॥

सोऽय परात्मा पुरुष पुराण
एक स्वयज्योतिरनन्त आद्य ।
मायातनु लोकविमोहनीया
धत्ते परानुग्रह एष राम ॥ ४९ ॥

अय हि विश्वोद्भवसयमाना-
मेक स्वमायागुणबिम्बितो य ।
विरिञ्चिविष्ण्वीश्वरनाम भेदान्
धत्ते स्वतन्त्र परिपूर्ण आत्मा ॥ ५० ॥

नमोऽस्तु ते राम तवाङ्घ्रिपङ्कज
श्रिया धृत वक्षसि लालित प्रियात् ।
आक्रान्तमेकेन जगत्त्रय पुरा
ध्येय मुनीन्द्रैरभिमानवर्जितै ॥ ५१ ॥

हे राम ! आपकी लीलाएँ बडी विचित्र है, आपके मानुष-भावसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है। आप पूर्णानन्दमय और अति मायावी है, क्योकि चरणादिहीन होकर भी आप निरन्तर चलते रहते है ॥ ४४ ॥ जिनके चरण-कमलके परागसे पवित्र हुई श्रीगङ्गाजी, शिव और ब्रह्मा आदि जगदीश्वरोको भी पवित्र करती है, आज साक्षात् वे ही मेरे नेत्रोके विषय हो रहे है—मै अपने पूर्वकृत पुण्यकर्मोंका किस प्रकार वर्णन करूँ ? ॥ ४५ ॥ जिन्होने परम सुन्दर मानवदेहसे मर्त्यलोकमे अवतार लिया है, मै उन धनुषधारी कमलदल-लोचन भगवान् रामको सर्वदा भजती हूँ और किसीको भी नही भजना चाहती ॥ ४६ ॥ जिनके चरण-कमलोकी रजको श्रुतियाँ भी ढूँढती रहती है, जिनकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए है तथा जिनके नामामृतके भगवान् शङ्कर रसिक है, उन श्रीरामचन्द्रजीका मै अपने हृदयमे अहर्निश ध्यान करती हू ॥ ४७ ॥ जिनके अवतार-चरित्रोका नारदादि देवर्षिगण, ब्रह्मा और महादेव आदि देवेश्वरगण तथा आनन्दाश्रुओसे जिनके कुचमण्डल भीगे हुए है वे सरस्वतीजी भी ब्रह्मलोकमे निरन्तर गान किया करती है उन प्रभुकी मै शरण लेती हूँ ॥ ४८ ॥ उन्ही पुराणपुरुष परमात्मा रामने ससारपर परम अनुग्रह करनेके लिये एक स्वयप्रकाश, अनन्त और सबके आदिकारण होते हुए भी यह जगन्मोहन मायामय रूप धारण किया है ॥ ४९ ॥ जो अकेले ही ससारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके लिये अपनी मायाके गुणोका आश्रय कर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव नामक विभिन्न रूप धारण करते है वे स्वतन्त्र और परिपूर्ण आत्मा आप ही है ॥ ५० ॥ हे राम ! आपके जिन चरण-कमलोको श्रीलक्ष्मीजी अपने वक्ष स्थलपर रखकर बडे प्रेमसे लाड लडाती है, जिन्होने पूर्वकालमे (बलि-बन्धनके समय) एक ही पगमे सम्पूर्ण त्रिलोकी माप ली थी तथा अभिमान-हीन मुनिजन जिनका निरन्तर ध्यान किया करते है उन आपके चरण-कमलोको मै नमस्कार करती हूँ ॥ ५१ ॥

जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रयः ।
सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्परः ॥ ५२ ॥

ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान् ।
वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः ॥ ५३ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः ।
एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया ॥ ५४ ॥

त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः ।
मानुषं त्वाभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥ ५५ ॥

आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः ।
असङ्गो ह्यचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सदव्ययः ॥ ५६ ॥

योषिन्मूढाहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो ।
तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः ॥ ५७ ॥

देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥ ५८ ॥

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥

भवभयहरमेकं भानुकोटिप्रकाशं
करधृतशरचापं कालमेघावभासम् ।
कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यं
कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे ॥ ६० ॥

स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम् ।
परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम् ॥ ६१ ॥

अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः ।
स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६२ ॥

पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदि निधाय च ।
संवत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम् ॥ ६३ ॥

हे प्रभो ! आप ही जगत्के आदिकारण, आप ही जगत्-रूप और आप ही उसके आश्रय है, तथापि आप समस्त प्राणियोसे पृथक् है और अद्वितीय परब्रह्मरूपसे प्रकाशमान है ॥ ५२ ॥ हे राम ! आप ओंकारके वाच्य है तथा आप ही वाणीके अगोचर परम पुरुष है। हे प्रभो ! वाच्य-वाचक (शब्द-अर्थ) भेदसे आप ही सम्पूर्ण जगत्-रूप है ॥ ५३ ॥ हे राम ! आप अकेले ही बहु-रूपमयी मायाके आश्रयसे कार्य, कारण, कर्तृत्व, फल और साधनाके भेदसे अनेक रूपोमे भासमान हो रहे है ॥ ५४ ॥ आपकी मायासे जिनकी बुद्धि मोहित हो रही है वे लोग आपका वास्तविक रूप नही जान सकते। आप मायापति परमेश्वरको वे मूढजन साधारण मनुष्य समझते है ॥ ५५ ॥ आप आकाशके समान बाहर-भीतर सब ओर विराजमान, निर्मल, असङ्ग, अचल, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सत्यस्वरूप और अव्यय है ॥ ५६ ॥ हे विभो ! मै मूढ और अज्ञानी स्त्री-जाति भला आपके तत्त्वको क्या जानूँ ? अतः हे राम ! मै अनन्यभावसे आपको सैकडो बार केवल नमस्कार ही करती हूँ ॥ ५७ ॥ हे देव ! मै जहाँ-कही भी रहूँ वही सर्वदा आपके चरणकमलोमे मेरी आसक्तिपूर्ण भक्ति बनी रहे ॥ ५८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है, हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है, हे हृषीकेश ! आपको नमस्कार है, हे नारायण ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५९ ॥ जो ससारके एकमात्र भय दूर करनेवाले है, करोडो सूर्योके समान प्रकाशमान है, कर-कमलोमे धनुष और बाण धारण किये है श्याम मेघके समान आभावाले है, सुवर्णके समान पीत वस्त्र धारण किये है, रत्न-जटित कुण्डलोसे सुशोभित है तथा जिनके कमल-दलके समान अति सुन्दर विशाल नेत्र है, भाई लक्ष्मणसहित उन श्रीरघुनाथजीकी मै स्तुति करती हूँ ॥ ६० ॥

इस प्रकार सम्मुख खडे हुए साक्षात् परमपुरुष श्रीरघुनाथजीकी स्तुति, परिक्रमा और वन्दना कर वह उनकी आज्ञा ले शीघ्र ही अपने पतिके पास चली गयी ॥ ६१ ॥

जो पुरुष अहल्याके किये हुए इस स्तोत्रको भक्तिपूर्वक पढता है वह समस्त पापोसे मुक्त होकर परब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ६२ ॥ जो वन्ध्या स्त्री भी श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमे धारणकर पुत्रकी कामनासे

सर्वान्कामानवाप्नोति रामचन्द्रप्रसादत ॥ ६४ ॥

ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोऽपि पुरुष
स्तेयी सुरापोऽपि वा
मातृभ्रातृविहिंसकोऽपि सतत
भोगैकबद्धातुर ।
नित्य स्तोत्रमिद जपन् रघुपतिं
भक्त्या हृदिस्थ स्मरन्
ध्यायन्मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ
स्वाचारयुक्तो नर ॥ ६५ ॥

इसका भक्तिपूर्वक पाठ करे तो एक वर्षमे ही उसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हो सकता है तथा श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती है ॥ ६३-६४ ॥ ब्राह्मणका वध करनेवाला, गुरु-स्त्रीसे भोग करनेवाला, चोर, मद्यप, माता-पिता और भाईकी हिंसा करनेवाला तथा निरन्तर भोगासक्त रहनेवाला पुरुष भी यदि अपने हृदयमे विराजमान श्रीरघुनाथजीका भक्तिपूर्वक नित्य स्मरण करता है और उनका ध्यान करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है तो मुक्त हो जाता है, फिर स्वधर्म-परायण पुरुषोकी तो बात ही क्या है ? ॥ ६५ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे बालकाण्डे अहल्योद्धरण नाम पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

★

षष्ठ सर्ग

धनुर्भङ्ग और विवाह

सूत उवाच

विश्वामित्रोऽथ त प्राह राघव सहलक्ष्मणम् ।
गच्छामो वत्स मिथिला जनकेनाभिपालिताम् ॥ १ ॥

दृष्ट्वा क्रतुवर पश्चादयोध्या गन्तुमर्हसि ।
इत्युक्त्वा प्रययौ गङ्गामुत्तर्तु सहराघव ।
तस्मिन्काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दन ॥ २ ॥

सूतजी बोले—तदनन्तर विश्वामित्रजीने लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा, "वत्स ! अब हम महाराज जनकसे पालित मिथिलापुरीको चलेगे ॥ १ ॥ वहाँ यज्ञोत्सव देखकर फिर तुम अयोध्यापुरीको लौट सकते हो।" ऐसा कह वे रघुनाथजीके साथ गङ्गाजी पार करनेके लिये तटपर आये, तब नाविकने रघुनाथजीको नावपर चढनेसे रोक दिया ॥ २ ॥

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपङ्कज
नाथ दारुदृषदो किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते
पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥ ३ ॥

पादाम्बुज ते विमल हि कृत्वा
पश्चात्पर तीरमह नयामि ।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन
स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानि ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वा क्षालितौ पादौ पर तीर ततो गता ।
कौशिको रघुनाथेन सहितो मिथिला ययौ ॥ ५ ॥

नाविक बोला—हे नाथ ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणोमे कोई मनुष्य बना देनेवाला चूर्ण है। (आपने अभी शिलाको स्त्री बना दिया, फिर) शिला और काष्ठमे भेद ही क्या है ? अत नौकापर चढानेसे पूर्व मै आपके चरणकमलोको धोऊँगा ॥ ३ ॥ इस प्रकार आपके चरणोको मलरहित करके मै आपको श्रीगङ्गाजीके उस पार ले चलूँगा। नही तो हे विभो ! आपके चरणरजके स्पर्शसे यदि मेरी नौका सुन्दरी युवती हो गयी तो मेरे कुटुम्बकी आजीविका ही मारी जायगी ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर केवटने उनके चरण धोये और फिर गङ्गाजीके पार ले गया। वहाँसे राम और लक्ष्मणके सहित श्रीविश्वामित्रजी मिथिलापुरीको चले ॥ ५ ॥

विदेहस्य पुर प्रातर्ऋषिवाट समाविशत्।
प्राप्त कौशिकमाकर्ण्य जनकोऽतिमुदान्वित ॥ ६ ॥

पूजाद्रव्याणि सगृह्य सोपाध्याय समाययौ।
दण्डवत्प्रणिपत्याथ पूजयामास कौशिकम्॥ ७ ॥

पप्रच्छ राघवौ दृष्ट्वा सर्वलक्षणसयुतौ।
द्योतयन्तौ दिश सर्वाश्चन्द्रसूर्याविवापरौ ॥ ८ ॥

कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ।
मन प्रीतिकरौ मेऽद्य नरनारायणाविव ॥ ९ ॥

प्रत्युवाच मुनि प्रीतो हर्षयन् जनक तदा।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

मखसरक्षणार्थाय मयानीतौ पितु पुरात्।
आगच्छन् राघवो मार्गे ताटका विश्वघातिनीम्॥ ११ ॥

शरेणैकेन हतवान्नोदितो मेऽतिविक्रम।
ततो ममाश्रम गत्वा मम यज्ञविहिंसकान्॥ १२ ॥

सुबाहुप्रमुखान्हत्वा मारीच सागरेऽक्षिपत्।
ततो गङ्गातटे पुण्ये गौतमस्याश्रम शुभम्॥ १३ ॥

गत्वा तत्र शिलारूपा गौतमस्य वधू स्थिता।
पादपङ्कजसस्पर्शात्कृता मानुषरूपिणी ॥ १४ ॥

दृष्ट्वाहल्या नमस्कृत्य तया सम्यक्प्रपूजित।
इदानीं द्रष्टुकामस्ते गृहे माहेश्वर धनु ॥ १५ ॥

पूजित राजभि सर्वैर्दृष्टमित्यनुशुश्रुवे।
अतो दर्शय राजेन्द्र शैव चापमनुत्तमम्।
दृष्ट्वायोध्या जिगमिषु पितर द्रष्टुमिच्छति ॥ १६ ॥

इत्युक्तो मुनिना राजा पूजार्हाविति पूजया।
पूजयामास धर्मज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १७ ॥

तत सम्प्रेषयामास मन्त्रिण बुद्धिमत्तरम्।

जनक उवाच

शीघ्रमानय विश्वेशचाप रामाय दर्शय ॥ १८ ॥

प्रात काल होते ही वे विदेहनगरमे पहुँचकर ऋषियोके निवासस्थानमे ठहर गये। उसी समय, विश्वामित्रजीके आगमनकी सूचना पाकर जनकजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक पूजन-सामग्री लिये अपने पुरोहितके साथ वहाँ आये और साष्टाङ्ग दण्डवत् कर उन्होने मुनिवर कौशिककी पूजा की ॥ ६-७ ॥ फिर साक्षात् दूसरे सूर्य और चन्द्रमाके समान अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओको देदीप्यमान करते हुए उन सर्व-लक्षण-सम्पन्न रघुकुमारोको देखकर पूछा— ॥ ८ ॥ "ये देवपुत्रोके समान दो नरशार्दूल किसके पुत्र है, ये मेरे हृदयमे इस समय नर और नारायणके समान प्रीति उत्पन्न करते है" ॥ ९ ॥

तब मुनिवर विश्वामित्रजीने महाराज जनकको आनन्दित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक कहा— "ये दोनो भाई राम और लक्ष्मण कोसल-नरेश दशरथजीके पुत्र है ॥ १० ॥ मै इन्हे अपने यज्ञकी रक्षाके लिये अयोध्यासे ले आया था। मार्गमे आते समय मेरी प्रेरणासे इन अति पराक्रमी रघुनाथजीने एक ही बाणसे विश्वघातिनी ताटकाको मार डाला, फिर मेरे आश्रममे पहुँचकर मेरा यज्ञ विध्वस करनेवाले सुबाहु आदि राक्षसोको मार डाला तथा मारीचको समुद्रमे फेक दिया। तदनन्तर ये गङ्गातटपर महर्षि गौतमके पुनीत आश्रममे आये और वहाँ शिला-रूपसे स्थित गौतम-पत्नीको देख अपने चरणकमलके स्पर्शसे उसे मनुष्यरूप बना दिया ॥ ११—१४ ॥ अहल्याको देखकर रामजीने उसे नमस्कार किया, फिर उससे भलीप्रकार पूजा ग्रहणकर इस समय तुम्हारे यहाँ शङ्करका धनुष देखनेके लिये आये है ॥ १५ ॥ हमने सुना है उस धनुषकी तुम्हारे यहाँ बडी पूजा होती है और सब राजा लोग उसे देख गये हैं। अत हे राजेन्द्र! आप महादेवजीका वह उत्तम धनुष इन्हे दिखा दीजिये, क्योकि ये उसे देखकर शीघ्र ही अपने माता-पितासे मिलनेके लिये अयोध्या जाना चाहते है" ॥ १६ ॥

मुनिवर विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञ राजा जनकने राम और लक्ष्मणको पूजनीय समझकर उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ १७ ॥ फिर अपने बुद्धिमान् मन्त्रीको यह कहकर भेजा कि तुम शीघ्र ही श्रीविश्वेश्वरका धनुष लाकर रामचन्द्रजीको दिखाओ ॥ १८ ॥

ततो गते मन्त्रिवरे राजा कौशिकमब्रवीत्।
यदि रामो धनुर्धृत्वा कोट्यामारोपयेद्गुणम् ॥ १९ ॥

तदा मयात्मजा सीता दीयते राघवाय हि।
तथेति कौशिकोऽप्याह राम सवीक्ष्य सस्मितम् ॥ २० ॥

शीघ्र दर्शय चापाग्र्य रामायामिततेजसे।
एव ब्रुवति मौनीश आगतोश्चापवाहका ॥ २१ ॥

चाप गृहीत्वा बलिन पञ्चसाहस्रसङ्ख्यका ।
घण्टाशतसमायुक्त मणिवज्रादिभूषितम् ॥ २२ ॥

दर्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रयता वर ।
दृष्ट्वा राम प्रहृष्टात्मा बद्ध्वा परिकर दृढम् ॥ २३ ॥

गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनु ।
आरोपयामास गुण पश्यत्स्वखिलराजसु ॥ २४ ॥

ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन स ।
बभञ्जाखिलहृतसारो दिश शब्देन पूरयन् ॥ २५ ॥

दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्ग मर्त्य रसातलम्।
तदद्भुतमभूत्तत्र देवाना दिवि पश्यताम् ॥ २६ ॥

आच्छादयन्त कुसुमैर्देवा स्तुतिभिरीडिरे।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणा ॥ २७ ॥

द्विधा भग्न धनुर्दृष्ट्वा राजालिङ्ग्य रघूद्वहम्।
विस्मय लेभिरे सीतामातरोऽन्त पुराजिरे ॥ २८ ॥

सीता स्वर्णमयीं माला गृहीत्वा दक्षिणे करे।
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥ २९ ॥

मुक्ताहारै कर्णपत्रै क्वणच्चरणनूपुरा।
दुकूलपरिसवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी ॥ ३० ॥

रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुद ययौ।
ततो मुमुदिरे सर्वे राजदारा स्वलङ्कृतम् ॥ ३१ ॥

मन्त्रीके चले जानेपर राजाने श्रीविश्वामित्रजीसे कहा, "यदि रामचन्द्रजी उस धनुषको उठाकर उसकी कोटियोपर रोदा चढा देगे तो निश्चय मै उन्हे ही अपनी कन्या सीता विवाह दूँगा।" तब विश्वामित्रजीने रामजीकी ओर देखते हुए मुसकराकर कहा—"ठीक है ॥ १९-२० ॥ राजन्! आप शीघ्र ही वह श्रेष्ठ धनुष अमिततेजस्वी रघुनाथजीको दिखाइये।" मुनीश्वरके ऐसा कहते ही बडे बलवान् पाँच हजार धनुष-वाहक उस धनुष-श्रेष्ठको लेकर वहाँ आ पहुँचे। उस धनुषमे सैकडो घटियाँ बँधी हुई थी तथा वह हीरे और मणि आदि रत्नोसे सुसज्जित था ॥ २१-२२ ॥ तब परामर्श-दाताओमे श्रेष्ठ उन मन्त्रिवरने रामको वह धनुष दिखाया। प्रसन्नचित्त श्रीरामजीने उसे देखते ही दृढतासे कमर कसकर उस धनुषको खेल करते हुए बाये हाथसे उठाकर थाम लिया और सब राजाओके देखते-देखते उसपर रोदा चढा दिया ॥ २३-२४ ॥ फिर सबके हृदयसर्वस्व भगवान् रामने अपने दाये हाथसे उस धनुषको थोडा-सा खींचा और दसो दिशाओको गुञ्जायमान करते हुए तोड डाला ॥ २५ ॥ दिशा विदिशा, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातल आदि समस्त पातालोमे वह शब्द गूँज उठा। स्वर्गलोकसे देवगणोके देखते-देखते यह एक बडा आश्चर्य-सा हो गया ॥ २६ ॥ देवताओने पुष्प बरसाकर भगवान्को ढँक दिया और दुन्दुभी आदि बाजे बजाते हुए उनकी स्तुति की तथा अप्सराएँ नृत्य करन लगी ॥ २७ ॥

धनुषके दो खण्ड हुए देख महाराज जनकने रघुनाथजीका आलिङ्गन किया और अन्त पुरके आँगनमे स्थित सीताजीकी माताएँ अत्यन्त विस्मित हुई ॥ २८ ॥ तत्पश्चात् सर्वालकारविभूषिता, सुवर्ण-वर्णा श्रीसीताजी अपने दाहिने हाथमे सुवर्णमयी माला लिये मन्द-मन्द मुसकाती हुई वहाँ आयी ॥ २९ ॥ वे मुक्ताहार, कर्णफूल और झमझमाते हुए पायजेब आदि आभूषणोसे विभूषिता थी तथा शरीरमे अति उत्तम साडी पहने हुए थी जिसमेसे उनके पीन-पयोधर झलक रहे थे ॥ ३० ॥

सीताजी नम्रतापूर्वक मुसकाते हुए वह जयमाल रामचन्द्रजीके ऊपर डालकर प्रसन्न हुई। उस समय श्रीरामचन्द्रजीके सर्वालकारविभूषित भुवनमोहन रूपको

गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम्।
ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारद ॥ ३२ ॥

भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्र प्रेषय सत्वरम्।
राजा दशरथ शीघ्रमागच्छतु सपुत्रक ॥ ३३ ॥

विवाहार्थं कुमाराणा सदार सहमन्त्रिभि ।
तथेति प्रेषयामास दूतास्त्वरितविक्रमान्॥ ३४ ॥

ते गत्वा राजशार्दूल रामश्रेयो न्यवेदयन्।
श्रुत्वा रामकृत राजा हर्षेण महताप्लुत ॥ ३५ ॥

मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिण ।
गच्छन्तु मिथिला सर्वे गजाश्वरथपत्तय ॥ ३६ ॥

रथमानय मे शीघ्र गच्छाम्यद्यैव मा चिरम्।
वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदार सहितोऽग्निभि ॥ ३७ ॥

राममातृ समादाय मुनिर्मे भगवान् गुरु ।
एव प्रस्थाप्य सकल राजर्षिर्विपुल रथम्॥ ३८ ॥

महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ।
आगत राघव श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुल ॥ ३९ ॥

प्रत्युज्जगाम जनक शतानन्दपुरोधसा।
यथोक्तपूजया पूज्य पूजयामास सत्कृतम्॥ ४० ॥

रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितु ।
ततो हृष्टो दशरथो राम वचनमब्रवीत्॥ ४१ ॥

दिष्ट्या पश्यामि ते राम मुख फुल्लाम्बुजोपमम्।
मुनेरनुग्रहात्सर्व सम्पन्न मम शोभनम्॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वाघ्राय मूर्धानमालिङ्ग्य च पुन पुन ।
हर्षेण महताविष्टो ब्रह्मानन्द गतो यथा॥ ४३ ॥

ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशित ।
शोभने सर्वभोगाढ्ये सदार ससुत सुखी॥ ४४ ॥

तत शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम्।
आनयामास धर्मज्ञो राम सभ्रातृक तदा॥ ४५ ॥

रत्नस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे।
मण्डपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते॥ ४६ ॥

झरोखोमेसे देखकर समस्त रानियाँ अति आनन्दित हुई। फिर सर्वशास्त्रज्ञ महाराज जनकने मुनिवर विश्वामित्रजीसे कहा— ॥ ३१-३२ ॥ "मुनिवर कौशिकजी ! आप तुरत ही महाराज दशरथके पास पत्र भेजिये, वे कुमारोके विवाहोत्सवके लिये शीघ्र ही पुत्र, महिषियो और मन्त्रियोके साथ यहाँ पधारे।" तब विश्वामित्रजीने 'बहुत अच्छा' कह शीघ्रगामी दूतोको भेजा॥ ३३-३४ ॥

दूतोने जाकर राजशार्दूल दशरथसे रामका कुशलक्षेम कहा। उनसे रामचन्द्रजीके अद्भुत कृत्यका वृत्तान्त सुनकर महाराज परमानन्दमे डूब गये॥ ३५॥ फिर आपने मिथिलापुरीको चलनेके लिये शीघ्रता करते हुए मन्त्रियोसे कहा—"हाथी, घोडे, रथ और पदातियोके सहित सब लोग मिथिलापुरीको चलो॥ ३६ ॥ मेरा रथ भी तुरत ले आओ, देरी न करो, मै भी आज ही चलूँगा। अग्नियोके और अरुन्धतीके सहित मेरे गुरु मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठजी रामकी माताओको लेकर सबसे आगे चले।" इस प्रकार सबका कूँच करा एक विशाल रथपर आरूढ हो राजर्षि दशरथजी बडे दलबलके सहित शीघ्रतापूर्वक मिथिलापुरीको चले। रघुकुल-तिलक दशरथजीको आये हुए सुन महाराज जनक हर्षपूर्वक पुरोहित शतानन्दजीको ले उन्हे लेने गये और उन पूजनीय राजाका यथोचित रीतिसे सत्कार कर पूजन किया॥ ३७—४० ॥ तदनन्तर लक्ष्मणके सहित रामजीने पिताके चरणोमे प्रणाम किया, तब राजा दशरथने प्रसन्न होकर रामसे कहा— ॥ ४१ ॥ "राम ! आज बडे भाग्यसे मै तुम्हारा विकसित कमलके समान मुख देख रहा हूँ, मुनिवरके अनुग्रहसे सब प्रकार मेरा कल्याण ही हुआ"॥ ४२॥ ऐसा कह वे उन्हे पुन-पुन हृदयसे लगा और उनका मस्तक सूँघ अत्यन्त हर्षसे मानो ब्रह्मानन्दमे डूब गये॥ ४३॥ तदनन्तर महाराज जनकने उन्हे रानियो और राजकुमारोके सहित समस्त भोग-सामग्रियोसे पूर्ण एक परम सुन्दर महलमे सुखपूर्वक ठहराया॥ ४४ ॥

फिर शुभ दिनमे शुभ मुहूर्त और लग्नके समय धर्मज्ञ जनकजीने भाइयोसहित रामको बुलाया॥ ४५॥ और एक सर्वशोभासम्पन्न विस्तीर्ण मण्डपमे जिसमे रत्नजटित स्तम्भ, सुन्दर वितान, मनोहर तोरण तथा मोतियोके पुष्प और फल लगे हुए थे तथा जो सुवर्ण-भूषण-भूषित

वेदविद्भि सुसम्बाधे ब्राह्मणै स्वर्णभूषितै ।
सुवासनीभि परितो निष्ककण्ठीभिरावृते ॥ ४७ ॥

भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यै समाकुले ।
दिव्यरत्नाञ्चिते स्वर्णपीठे राम न्यवेशयत् ॥ ४८ ॥

वसिष्ठ कौशिक चैव शतानन्द पुरोहित ।
यथाक्रम पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयो ॥ ४९ ॥

स्थापयित्वा स तत्राग्नि ज्वालयित्वा यथाविधि ।
सीतामानीय शोभाढ्या नानारत्नविभूषिताम् ॥ ५० ॥

सभार्यो जनक प्रायाद्राम राजीवलोचनम् ।
पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तदपो मूर्ध्न्यधारयत् ॥ ५१ ॥

या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभि सदा ।
तत सीता करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् ॥ ५२ ॥

रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानत ।
सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥ ५३ ॥

दीयते मे सुता तुभ्य प्रीतो भव रघूत्तम ।
इति प्रीतेन मनसा सीता रामकरेऽर्पयन् ॥ ५४ ॥

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे ।
ऊर्मिला चौरसीं कन्या लक्ष्मणाय ददौ मुदा ॥ ५५ ॥

तथैव श्रुतकीर्तिं च माण्डवीं भ्रातृकन्यके ।
भरताय ददावेका शत्रुघ्नायापरा ददौ ॥ ५६ ॥

चत्वारो दारसम्पन्ना भ्रातर शुभलक्षणा ।
विरेजु प्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥ ५७ ॥

ततोऽब्रवीद्वसिष्ठाय विश्वामित्राय मैथिल ।
जनक स्वसुतोदन्त नारदेनाभिभाषितम् ॥ ५८ ॥

यज्ञभूमिविशुद्ध्यर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे ।
सीतामुखात्समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ॥ ५९ ॥

तामद्राक्षमह प्रीत्या पुत्रिकाभावभाविताम् ।
अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्रनिभानना ॥ ६० ॥

वेदपाठी ब्राह्मणोसे खचाखच भरा हुआ था और सुन्दर वस्त्र धारण किये निष्ककण्ठी (सुहागिन) नारियोसे समाकुल था, श्रीरामचन्द्रजीको एक दिव्य-रत्न-जटित सुवर्ण-सिहासनपर बैठाया। उस समय भेरी और दुन्दुभि आदि बाजो तथा नृत्य और गान आदिका बडा तुमुल कोलाहल हो रहा था॥ ४६—४८ ॥ तब पुरोहित शतानन्दने श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रजीका क्रमश पूजन कर उनको रामचन्द्रजीके दोनो ओर बैठा दिया। फिर वहाँ विधिपूर्वक अग्नि प्रज्वलित की गयी तथा नाना-रत्न-विभूषिता सीताको साथ लेकर महारानीसहित महाराज जनकजी कमलनयन रामजीके पास आये और विधि-पूर्वक उनके चरण धोकर अपने सिरपर चरणोदक रखा॥ ४९—५१ ॥ जिसे शिव, ब्रह्मा और अन्यान्य मुनिजन भी सदा अपने मस्तकपर धारण करते है। फिर सीताजीका हाथ पकडकर उसे जल और चावलसहित पाणिग्रहणकी विधिसे प्रीतिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोमे दे दिया और कहा—"रघुश्रेष्ठ! मै सुवर्ण और मुक्ता आदिसे विभूषिता अपनी पुत्री कमललोचना सीता आपको सौपता हूँ, आप प्रसन्न होइये।" इस प्रकार सीताजीको प्रसन्न चित्तसे श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोमे सौपकर जनकजी ऐसे आनन्दमग्न हो गये जैसे क्षीरसागर श्रीविष्णुभगवान्‌के करकमलोमे लक्ष्मीको सौपकर हुआ था। फिर उन्होने प्रसन्नतापूर्वक अपनी औरसी कन्या उर्मिला लक्ष्मणजीको विवाह दी॥ ५२—५५ ॥ तथा अपने भाईकी पुत्रियाँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति क्रमश भरत और शत्रुघ्नको दी॥ ५६ ॥ इस प्रकार सुलक्षणसम्पन्न चारो भाई पत्नियोके सहित साक्षात् दूसरे लोकपालोके समान अपने प्रकाशसे सुशोभित हुए॥ ५७ ॥

तदनन्तर, मिथिलापति महाराज जनकने, पुत्री जानकीके विषयमे देवर्षि नारदने जो कुछ कहा था वह सब वृत्तान्त वसिष्ठ और विश्वामित्रजीको सुनाया॥ ५८ ॥ वे बोले—"एक बार मै यज्ञभूमिकी शुद्धिके लिये हल जोत रहा था, उसी समय मेरे हलके सीता (अग्रभाग) से यह शुभलक्षणा कन्या प्रकट हुई॥ ५९ ॥ उस समय मैने इसे देखा और इसमे मुझे पुत्रीवत् प्रीति हुई, इसलिये मैने इस चन्द्रमुखीको अपनी प्रियपत्नीको सौप दिया॥ ६० ॥

एकदा नारदोऽभ्यागाद्विविक्ते मयि संस्थिते ।
रणयन्महतीं वीणां गायन्नारायणं विभुम् ॥ ६१ ॥

पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः ।
शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥ ६२ ॥

परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥ ६३ ॥

जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् ।
आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥ ६४ ॥

योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥

नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः ।
इत्युक्त्वा प्रययौ देवगतिं देवमुनिस्तदा ॥ ६६ ॥

तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ।
कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा ॥ ६७ ॥

इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् ।
मत्पितामहगेहे तु न्यासभूतमिदं धनुः ॥ ६८ ॥

ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम् ।
धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कृतं तथा ॥ ६९ ॥

सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम् ।
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीवलोचनः ॥ ७० ॥

आगतोऽत्र धनुर्द्रष्टुं फलितो मे मनोरथः ।
अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥ ७१ ॥

एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ।
त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः ॥ ७२ ॥

बलिस्त्वत्पादसलिलं धृत्वाभूद्दिविजाधिपः ।
त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः ॥ ७३ ॥

सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता ॥ ७४ ॥
यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-
वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥ ७५ ॥

एक दिन जब मैं एकान्तमें बैठा हुआ था, मेरे पास महर्षि नारदजी अपनी महती नामकी वीणा बजाते और सर्वव्यापक श्रीहरिका गुण गाते हुए आये ॥ ६१ ॥ मेरे पूजा-सत्कारादि कर चुकनेपर वे सुखपूर्वक बैठकर प्रसन्नतापूर्वक मुझसे बोले, 'राजन्! अपने कल्याणका कारणरूप यह परम गुप्त वचन सुनो— ॥ ६२ ॥ परमात्मा हृषीकेश भक्तोंपर कृपा, देवताओंकी कार्य-सिद्धि और रावणका वध करनेके लिये माया-मानवरूपसे अवतीर्ण होकर 'राम' नामसे विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर अपने चार अंशोंसे दशरथके पुत्र होकर अयोध्यामें रहते हैं ॥ ६३-६४ ॥ और इधर योगमायाने तुम्हारे यहाँ सीताके रूपसे जन्म लिया है। अतः तुम प्रयत्नपूर्वक इस सीताका पाणिग्रहण रघुनाथजीके साथ ही करना और किसीसे नहीं—क्योंकि यह पहलेसे ही परमात्मा रामकी ही भार्या है,' ऐसा कहकर देवर्षि नारदजी आकाश-मार्गसे चले गये ॥ ६५-६६ ॥ तबसे इस सीताको मैं विष्णुभगवान्‌की भार्या लक्ष्मी ही समझता हूँ। फिर यह सोचते हुए कि 'शुभलक्षणा जानकीको किस प्रकार रघुनाथजीको दूँ', मैंने एक युक्ति विचारी। पूर्वकालमें श्रीमहादेवजीने त्रिपुरासुरको भस्म करनेके अनन्तर यह धनुष मेरे दादाके यहाँ धरोहरके रूपमें रखा था। मैंने यह सोचकर कि 'सीताके पाणिग्रहणके लिये सबके गर्वनाशक इस धनुषको ही पण (बाजी) बनाना चाहिये' वैसा ही किया। हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी कृपासे यहाँ कमलनयन रामजी धनुष देखने आ गये, इससे मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। हे राम! आज मेरा जन्म सफल हो गया जो मैं सूर्यके समान देदीप्यमान और सीताके साथ एक आसनपर विराजमान आपको देख रहा हूँ। प्रभो! आपके चरणोदकको सिरपर धारण करके ही ब्रह्माजी सृष्टि-चक्रके प्रवर्तक हुए हैं ॥ ६७—७२ ॥ आपके चरणोदकके प्रतापसे बलिको इन्द्र-पद प्राप्त हुआ है और आपकी ही चरण-धूलिके स्पर्शसे अहल्या तुरत पतिके शापसे मुक्त हो गयी। आपसे बढ़कर हमारा रक्षक और कौन है ॥ ७३-७४ ॥ जिनके चरण-कमल-परागके रसिक, काल-चक्रको जीतनेवाले योगिजनोंने संसार-भयको भी जीत लिया है तथा जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ" ॥ ७५ ॥

इति स्तुत्वा नृप प्रादाद्राघवाय महात्मने।
दीनाराणा कोटिशत रथानामयुत तदा ॥ ७६ ॥

अश्वाना नियुत प्रादाद्गजाना षट्शत तथा।
पत्तीना लक्षमेक तु दासीना त्रिशत ददौ ॥ ७७ ॥

दिव्याम्बराणि हाराश्च मुक्तारत्नमयोज्ज्वलान्।
सीतायै जनक प्रादात्प्रीत्या दुहितृवत्सल ॥ ७८ ॥

वसिष्ठादीन्सुसपूज्य भरत लक्ष्मण तथा।
पूजयित्वा यथान्याय तथा दशरथ नृपम् ॥ ७९ ॥

प्रस्थापयामास नृपो राजान रघुसत्तमम्।
सीतामालिङ्ग्य रुदतीं मातर साश्रुलोचना ॥ ८० ॥

श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्य राममनुव्रता।
पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम् ॥ ८१ ॥

प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य
भेरीमृदङ्गानकतूर्यघोष ।
स्वर्वासिभेरीघनतूर्यशब्दै
समूर्च्छितो भूतभयङ्करोऽभूत् ॥ ८२ ॥

महात्मा रघुनाथजीकी इस प्रकार स्तुति कर महाराज जनकने उन्हे दहेजमे सो करोड दीनार (सुवर्णमुद्रा), दस हजार रथ, दस लक्ष घोडे, छ सौ हाथी, एक लाख पदाति और तीन सो दासियाँ दी ॥ ७६-७७ ॥ तथा सीताजीको भी पुत्रीवत्सल जनकजीने प्रेमपूर्वक अनेको दिव्य वस्त्र तथा मोती और रत्न-जटित उज्ज्वल हार दिये ॥ ७८ ॥ तदनन्तर उन्होने वसिष्ठादिकी पूजा की, फिर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और राजा दशरथका धन-दानादिसे यथोचित सत्कार कर रघुश्रेष्ठ महाराज दशरथको विदा किया। फिर माताओने रोती हुई सीताको गले लगा नेत्रोमे जल भरकर कहा—॥ ७९-८० ॥ "वत्से! तुम सासुकी सेवा करती हुई सदा रामचन्द्रजीकी अनुगामिनी रह पातिव्रत-धर्मका अवलम्बन कर सुख-पूर्वक रहना" ॥ ८१ ॥ तदनन्तर रघुकुलतिलक श्रीरघुनाथजीके कूच करते समय भेरी, मृदङ्ग, आनक और तूर्य आदि बाजोका घोष, आकाशमे देवताओके बजाये हुए भेरी, झाँझ और तूर्य आदिके शब्द मिलकर प्राणियोको भय उपजानेवाला हुआ ॥ ८२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे बालकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

परशुरामजीसे भेट

सूत उवाच

अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम्।
निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तम ॥ १ ॥

नत्वा वसिष्ठ पप्रच्छ किमिद मुनिपुङ्गव।
निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समन्तत ॥ २ ॥

वसिष्ठस्तमथ प्राह भयमागामि सूच्यते।
पुनरप्यभय तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

मृगा प्रदक्षिण यान्ति पश्य त्वा शुभसूचका ।
इत्येव वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिल ॥ ४ ॥

मुष्णश्चक्षूषि सर्वेषा पासुवृष्टिभिरर्दयन्।
ततो व्रजन्ददर्शाग्रे तेजोराशिमुपस्थितम् ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—श्रीरामचन्द्रजीके मिथिलापुरीसे तीन योजन चले जानेपर नृपश्रेष्ठ दशरथजीने अत्यन्त घोर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ तब उन्होने वसिष्ठजीको प्रणाम करके पूछा—"मुनिश्रेष्ठ! क्या कारण है कि चारो ओर भयङ्कर अपशकुन दिखायी दे रहे है?" ॥ २ ॥

वसिष्ठजीने कहा—"इन अपशकुनोसे किसी आगामी भयकी सूचना होती है, किन्तु (साथ ही यह भी सूचित होता है कि) फिर शीघ्र ही अभय प्राप्त होगा ॥ ३ ॥ क्योकि देखो तुम्हारी दायी ओर शुभसूचक मृगगण जा रहे है।" वसिष्ठजीके ऐसा कहते ही बडा प्रचण्ड वायु चलने लगा ॥ ४ ॥ उसने धूलि बरसाकर सबके नेत्रोको मूँद दिया। फिर उन्होने चलते-चलते तेजका पुञ्ज अपने सम्मुख उपस्थित हुआ देखा ॥ ५ ॥

कोटिसूर्यप्रतीकाश विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् ।
तेजोराशि ददर्शाथ जामदग्न्य प्रतापवान् ॥ ६ ॥

नीलमेघनिभ प्राशु जटामण्डलमण्डितम् ।
धनु परशुपाणि च साक्षात्कालमिवान्तकम् ॥ ७ ॥

कार्तवीर्यान्तक राम दृप्तक्षत्रियमर्दनम् ।
प्राप्त दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम् ॥ ८ ॥

त दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा ।
अर्घ्यादिपूजा विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥

दण्डवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राण प्रयच्छ मे ।
इति ब्रुवन्त राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥ १० ॥

उवाच निष्ठुर वाक्य क्रोधात्प्रचलितेन्द्रिय ।
त्व राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम ॥ ११ ॥

द्वन्द्वयुद्ध प्रयच्छाशु यदि त्व क्षत्रियोऽसि वै ।
पुराण जर्जर चाप भड्क्त्वा त्व कत्थसे मुधा ॥ १२ ॥

अस्मिस्तु वैष्णवे चाप आरोपयसि चेद्गुणम् ।
तदा युद्ध त्वया सार्ध करोमि रघुवशज ॥ १३ ॥

नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरो ह्यहम् ।
इति ब्रुवति वै तस्मिश्चचाल वसुधा भृशम् ॥ १४ ॥

अन्धकारो बभूवाथ सर्वेषामपि चक्षुषाम् ।
रामो दाशरथिर्वीरो वीक्ष्य त भार्गव रुषा ॥ १५ ॥

धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमञ्जसा ।
तूणीराद्बाणमादाय सधायाकृष्य वीर्यवान् ॥ १६ ॥

उवाच भार्गव राम शृणु ब्रह्मन्वचो मम ।
लक्ष्य दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायक ॥ १७ ॥

लोकान्पादयुग वापि वद शीघ्र ममाज्ञया ।
अय लोक परो वाथ त्वया गन्तु न शक्यते ॥ १८ ॥

एव त्व हि प्रकर्तव्य वद शीघ्र ममाज्ञया ।
एव वदति श्रीरामे भार्गवो विकृतानन ॥ १९ ॥

फिर उन्होने करोडो सूर्योके समान तेजस्वी, विद्युत्-पुञ्जके समान प्रभा-सम्पन्न, महाप्रतापी, तेजोराशि, नील-मेघकी-सी आभावाले, उन्नतकाय, जटा-जूटधारी, हाथमे धनुष और परशु लिये, प्राणियोका नाश करनेवाले साक्षात् कालके समान परशुरामजीको आते देखा ॥ ६-७ ॥ उन्होने देखा कि कार्तवीर्यका वध करनेवाले और गर्वीले क्षत्रियोका मान मर्दन करनेवाले परशुरामजी जो दूसरे यमराजके समान है, महाराज दशरथके सामने खडे है ॥ ८ ॥

उस समय महाराज दशरथ उन्हे देखते ही भयभीत हो गये और अर्घ्यादिसे उनकी पूजा करना भूलकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसा कहकर पुकारने लगे ॥ ९ ॥ और दण्डवत्-प्रणाम करके बोले—'मुझे पुत्रके प्राणोका दान दीजिये ।'

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए राजाकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर उन्होने क्रोधसे व्याकुल हो कठोर वाणीसे रघूत्तम श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"अरे क्षत्रियाधम ! तू मेरे ही समान 'राम' नामसे विख्यात होकर पृथ्वीमे विचरता है ॥ १०-११ ॥ सो यदि तू वास्तवमे क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध कर, एक पुराने जीर्ण-शीर्ण धनुषको तोडकर व्यर्थ ही अपनी प्रशसा कर रहा है ? ॥ १२ ॥ अरे रघुकुलोत्पन्न ! यदि तू इस वैष्णव धनुषपर रोदा चढा देगा तो मै तेरे साथ युद्ध करूँगा ॥ १३ ॥ नही तो मै अभी सबको मार डालूँगा, क्योकि क्षत्रियोका अन्त करना तो मेरा काम ही है ।" परशुरामजीके ऐसा कहनेपर पृथ्वी बारम्बार कॉपने लगी ॥ १४ ॥ और सबके नेत्रोके सामने अन्धकार छा गया ।

तब दशरथ-नन्दन वीरवर रामने परशुरामजीकी ओर रोषपूर्वक देखते हुए उनके हाथसे धनुष छीन लिया और उसपर अनायास ही रोदा चढाकर अपने तरकशसे बाण निकालकर उसपर रखा और उसे खीचकर भृगुनन्दन परशुरामजीसे कहा—"ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनो, मेरा बाण अमोघ है—यह व्यर्थ नही जाता । इसके लिये शीघ्र ही लक्ष्य दिखाओ ॥ १५—१७ ॥ (अपने पुण्यसे जीते हुए) लोक अथवा अपने चरण—इन दोनोमेसे मेरी आज्ञासे शीघ्र ही किसी एकको बताओ । (उसीको इस बाणसे बेध डालूँगा) अब तुम इस लोक या परलोकमे कहीं नही जा सकते ॥ १८ ॥ अब तुम्हारे साथ मेरा जो कुछ कर्तव्य है वह तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही बताओ ।"

रामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भृगुनन्दन परशुरामजीका

सस्मरन्पूर्ववृत्तान्तमिद वचनमब्रवीत्।
राम राम महाबाहो जाने त्वा परमेश्वरम्॥ २०॥

पुराणपुरुष विष्णु जगत्सर्गलयोद्भवम्।
बाल्येऽह तपसा विष्णुमाराधयितुमञ्जसा॥ २१॥

चक्रतीर्थ शुभ गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम्।
अतोषय महात्मान नारायणमनन्यधी॥ २२॥

तत प्रसन्नो देवेश शङ्खचक्रगदाधर।
उवाच मा रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपङ्कज॥ २३॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन्फलित ते तपो महत्।
मच्चिदशेन युक्तस्त्व जहि हैहयपुङ्गवम्॥ २४॥

कार्तवीर्य पितृहण यदर्थ तपस श्रम।
ततस्त्रि सप्तकृत्वस्त्व हत्वा क्षत्रियमण्डलम्॥ २५॥

कृत्स्ना भूमि कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह।
त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्यय॥ २६॥

उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मा तत।
मत्तेज पुनरादास्ये त्वयि दत्त मया पुरा॥ २७॥

तदा तपश्चरँल्लोके तिष्ठ त्व ब्रह्मणो दिनम्।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तथा सर्व कृत मया॥ २८॥

स एव विष्णुस्त्व राम जातोऽसि ब्रह्मणार्थित।
मयि स्थित तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम्॥ २९॥

अद्य मे सफल जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो।
ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्व प्रकृते पारगो मत॥ ३०॥

त्वयि जन्मादिषड्भावा न सन्त्यज्ञानसभवा।
निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्व गमनादिविवर्जित॥ ३१॥

यथा जले फेनजाल धूमो वह्नौ तथा त्वयि।
त्वदाधारा त्वद्विषया माया कार्य सृजत्यहो॥ ३२॥

यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वा न विजानते।
अविचारितसिद्धैषाविद्या विद्याविरोधिनी॥ ३३॥

मुख मलिन हो गया॥ १९॥ फिर उन्होने पूर्व वृत्तान्तको स्मरणकर यह कहा—"हे राम! हे राम! हे महाबाहो! मैने आप परमेश्वरको जान लिया॥ २०॥ आप साक्षात् ससारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, पुराण-पुरुष भगवान् विष्णु है। मै बाल्यावस्थामे तपके द्वारा विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेके लिये अकस्मात् परम पवित्र चक्रतीर्थमे पहुँचा और वहाँ प्रतिदिन अनन्यभावसे तपस्या करते हुए मैंने परमात्मा नारायण भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया॥ २१-२२॥ हे रघुश्रेष्ठ! उस समय शङ्ख-चक्र-गदाधारी प्रसन्नवदन देवेश्वर विष्णुने मुझसे प्रसन्न होकर कहा—॥ २३॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! तपस्या छोडकर खडे हो, तुम्हारा महान् तप सफल हो गया। तुम मेरे चिदशसे युक्त होकर, जिसके लिये यह तपस्या करनेका कष्ट उठाया है उस पितृघाती हैहयश्रेष्ठ कार्तवीर्यका वध करो और फिर इक्कीस बार समस्त क्षत्रियोको मारकर॥ २४-२५॥ सम्पूर्ण पृथिवी कश्यपजीको दे शान्ति लाभ करो। मै अविनाशी परमात्मा त्रेतायुगमे दशरथके यहाँ 'राम' नामसे जन्म लूँगा। उस समय मेरी परमशक्ति (सीता) के सहित तुम मुझे देखोगे। तब (पहले) इस समय तुम्हे दिया हुआ अपना तेज मै फिर ग्रहण कर लूँगा॥ २६-२७॥ तबसे तुम तपस्या करते हुए कल्पान्तपर्यन्त पृथिवीमे रहोगे। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये, और मैने जैसा उन्होने कहा था वैसा ही किया॥ २८॥

हे राम! आप वही विष्णु है। ब्रह्माकी प्रार्थनासे आपने जन्म लिया है। आपका जो तेज मुझमे स्थित था वह आज आपने फिर ले लिया॥ २९॥ हे प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया जो मैने आपको पहचान लिया, क्योकि आप तो ब्रह्मा आदिसे भी अप्राप्य और प्रकृतिसे भी परे माने गये है॥ ३०॥ आपमे अज्ञानजन्य जन्मादि छ भाव-विकार नही हैं तथा आप गमनादिसे रहित निर्विकार और पूर्ण हैं॥ ३१॥

अहो! जलके फेन-समूह और अग्निके धूएँके समान आपके आश्रित और आपहीको विषय करनेवाली माया नाना प्रकारके विचित्र कार्योकी रचना करती है॥ ३२॥ मनुष्य जबतक मायासे आवृत रहते है तबतक आपको नही जान सकते। विद्याकी विरोधिनी यह अविद्या जबतक विचार नहीं किया जाता तभीतक रहती है॥ ३३॥

अविद्याकृतदेहादिसङ्घाते प्रतिबिम्बिता ।
चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्यभिधीयते ॥ ३४ ॥

यावद्देहमन प्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान् ।
तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदु खादिभाग्भवेत् ॥ ३५ ॥

आत्मन ससृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञान न जात्विति ।
अविवेकाद्द्वय युड्क्त्वा ससारीति प्रवर्तते ॥ ३६ ॥

जडस्य चित्समायोगाच्चित्त्व भूयाच्चितेस्तथा ।
जडसङ्गाज्जडत्व हि जलाग्न्योर्मेलन यथा ॥ ३७ ॥

यावत्त्वत्पादभक्तानां सङ्गसौख्य न विन्दति ।
तावत्ससारदु खौघान्न निवर्तेन्नर सदा ॥ ३८ ॥

तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वा समुपासते ।
तदा माया शनैर्याति तानव प्रतिपद्यते ॥ ३९ ॥

ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्न सद्गुरुस्तेन लभ्यते ।
वाक्यज्ञान गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वद्भक्तिहीनाना कल्पकोटिशतैरपि ।
न मुक्तिशङ्का विज्ञानशङ्का नैव सुख तथा ॥ ४१ ॥

अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि ।
स्यात्त्वद्भक्तिमता सङ्गोऽविद्या याभ्या विनश्यति ॥ ४२ ॥

लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिण ।
पुनन्ति लोकमखिल किं पुन स्वकुलोद्भवान् ॥ ४३ ॥

नमोऽस्तु जगता नाथ नमस्ते भक्तिभावन ।
नम कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥

देव यद्यत्कृत पुण्य मया लोकजिगीषया ।
तत्सर्व तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥

तत प्रसन्नो भगवान् श्रीराम करुणामय ।
प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन्यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४६ ॥

दास्ये तदखिल कामं मा कुरुष्वात्र सशयम् ।
तत प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् ॥ ४७ ॥

अविद्याजन्य देहादि सघातोमे प्रतिबिम्बित हुई चित्-शक्ति ही इस जीव-लोकमे 'जीव' कहलाती है ॥ ३४ ॥ यह जीव जबतक देह, मन, प्राण और बुद्धि आदिमे अभिमान करता है तभीतक कर्तृत्व, भोक्तृत्व और सुख-दु खादिको भोगता है ॥ ३५ ॥ वास्तवमे आत्मामे जन्म-मरणादि ससार किसी भी अवस्थामे नही है और बुद्धिमे कभी ज्ञानशक्ति नही है। अविवेकसे इन दोनोको मिलाकर जीव 'ससारी हूँ' ऐसा मानकर कर्ममे प्रवृत्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जल और अग्निका मेल होनेसे जैसे जलमे उष्णता और अग्निमे शान्तता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार जड (बुद्धि) का चेतन (आत्मा) से सयोग होनेसे उसमे चेतनता और चेतन आत्माका जड-बुद्धि-से सयोग होनेसे उसमे (कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि) जडता प्रकट हो जाती है ॥ ३७ ॥ हे राम ! जबतक मनुष्य आपके चरण-कमलोके भक्तोका सङ्गसुख निरन्तर अनुभव नही करता तबतक ससारके दु ख-समूहसे पार नही होता ॥ ३८ ॥ जब वह भक्तजनोके सङ्गसे प्राप्त हुई भक्तिद्वारा आपकी उपासना करता है तब आपकी माया शनै -शनै चली जाती है और वह क्षीण होने लगती है ॥ ३९ ॥ फिर उस साधकको आपके ज्ञानसे सम्पन्न सद्गुरुकी प्राप्ति होती है और उन सद्गुरुदेवसे महावाक्यका बोध पाकर वह आपकी कृपासे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ अत आपकी भक्तिसे शून्य पुरुषोको सौ करोड कल्पोमे भी मुक्ति अथवा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेकी सम्भावना नही है और इसीलिये उन्हे वास्तविक सुख मिलनेकी भी सम्भावना नही है ॥ ४१ ॥ अत मै यही चाहता हूँ कि जन्म-जन्मान्तरमे आपके चरण-युगलमे मेरी भक्ति हो और मुझे आपके भक्तो-का सङ्ग मिले, क्योकि इन्ही दोनो साधनोसे अविद्याका नाश होता है ॥ ४२ ॥ ससारमे आपकी भक्तिमे तत्पर और भगवद्धर्मरूप अमृतकी वर्षा करनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण लोकको पवित्र कर देते है, फिर वे अपने कुलमे उत्पन्न हुए पुरुषोको पवित्र कर देते है, इसमे तो कहना ही क्या है ? ॥ ४३ ॥ हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। हे भक्तिभावन ! आपको नमस्कार है। हे करुणामय ! हे अनन्त ! आपको नमस्कार है। हे रामचन्द्र ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे देव ! मैने पुण्यलोक-प्राप्तिके लिये जो कुछ पुण्य कर्म किये हैं वे सब आपके इस बाणके लक्ष्य हो। हे राम ! आपको नमस्कार है" ॥ ४५ ॥ तब करुणामय भगवान् श्रीरामचन्द्रने प्रसन्न होकर कहा—"हे ब्रह्मन् ! मै प्रसन्न हूँ, तुम्हारे हृदयमे जो-जो कामनाएँ है उन सभीको मै पूर्ण करूँगा, इसमे सन्देह न करना।" तब परशुरामजी-ने प्रसन्न-चित्त होकर रामसे कहा— ॥ ४६-४७ ॥

यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन।
त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढा भक्ति सदास्तु मे॥ ४८॥

स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु भक्तिहीनोऽपि सर्वदा।
त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञान भूयादन्ते स्मृतिस्तव॥ ४९॥

तथेति राघवेणोक्त परिक्रम्य प्रणम्य तम्।
पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात्॥ ५०॥

राजा दशरथो हृष्टो राम मृतमिवागतम्।
आलिङ्ग्यालिङ्ग्य हर्षेण नेत्राभ्या जलमुत्सृजत्॥ ५१॥

तत प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्त पुर ययौ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसमिता।
स्वा स्वा भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्वमन्दिरे॥ ५२॥

मातापितृभ्या सहृष्टो राम सीतासमन्वित।
रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरि॥ ५३॥

युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुल।
भरत नेतुमागच्छत्स्वराज्य प्रीतिसयुत॥ ५४॥

प्रेषयामास भरत राजा स्नेहसमन्वित।
शत्रुघ्न चापि सपूज्य युधाजितमरिन्दम॥ ५५॥

कौसल्या शुशुभे देवी रामेण सह सीतया।
देवमातेव पौलोम्या शच्या शक्रेण शोभना॥ ५६॥

साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणो
लोकसङ्गीतकीर्ति
श्रीराम सीतयास्तेऽखिलजननिकरा-
नन्दसन्दोहमूर्ति।
नित्यश्रीर्निर्विकारो निरवधिविभवो
नित्यमायानिरासो
मायाकार्यानुसारी मनुज इव सदा
भाति देवोऽखिलेश॥ ५७॥

"हे मधुसूदन राम! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो मुझे सदा आपके भक्तोका सङ्ग रहे और आपके चरणकमलोमे मेरी सुदृढ भक्ति हो॥ ४८॥ तथा कोई भक्तिहीन पुरुष भी यदि इस स्तोत्रका पाठ करे तो उसे सर्वदा आपकी भक्ति मिले और ज्ञान प्राप्त हो तथा अन्तमे आपकी स्मृति रहे"॥ ४९॥

तदनन्तर रघुनाथजीके 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहनेपर परशुरामजीने उनकी परिक्रमा कर उन्हे प्रणाम किया और उनसे पूजित हो उनकी आज्ञासे महेन्द्रपर्वतपर चले गये॥ ५०॥ राजा दशरथने रामको मानो मृत्युसे लौटे हुए समझ अत्यन्त हर्षसे बारम्बार आलिङ्गन किया और नेत्रोसे आनन्दाश्रुओकी वर्षा करने लगे॥ ५१॥ तदनन्तर वे सब प्रसन्नचित्तसे अपनी अयोध्यापुरीमे आये। वहाँ पहुँचकर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अपनी-अपनी पत्नियोके साथ देवताओके समान अपने-अपने महलोमे रमण करने लगे॥ ५२॥ सीताके सहित श्रीरामचन्द्रजी अपने पिता-माताओका आनन्द बढाते हुए इस प्रकार रमण करने लगे जैसे वैकुण्ठलोकमे भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ विहार करते है॥ ५३॥

इसी समय कैकेयीके भाई भरतजीके मामा युधाजित् भरतको प्रीतिपूर्वक अपने यहाँ ले जानेके लिये आये॥ ५४॥ शत्रुदमन महाराज दशरथने भी युधाजित्का सत्कार कर उनके स्नेहवश भरत और शत्रुघ्नको उनके साथ भेज दिया॥ ५५॥

तदुपरान्त देवी कौसल्या राम और सीताके सहित इस प्रकार सुशोभित हुई जैसे पुलोम-पुत्री शची और इन्द्रके सहित देवमाता अदिति शोभायमान होती है॥ ५६॥ जिनके गुणगण ब्रह्मा आदि सकल लोकपालोमे प्रसिद्ध है, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकोमे गायी जाती है, जो सारे मनुष्योके आनन्द-समूहकी मूर्ति है, जो नित्य, शोभाधाम, निर्विकार, अनन्त-वैभव और सदा मायातीत होकर भी माया-कार्योका अनुसरण करते हुए सदा मनुष्यके समान प्रतीत होते है वे अखिलेश्वर भगवान् राम सीताजीके साथ साकेत (अयोध्या) धाममे विराजने लगे॥ ५७॥

═ ★ ═

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे बालकाण्डे सप्तम सर्ग॥ ७॥

═ ★ ═

समाप्तमिद बालकाण्डम्

═ ★ ═

ॐ

अध्यात्मरामायण

अयोध्याकाण्ड

प्रथम सर्ग

भगवान् रामके पास नारदजीका आना

श्रीमहादेव उवाच

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे।
सर्वाभरणसम्पन्नं रत्नसिंहासने स्थितम्॥ १॥

नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम्॥ २॥

विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात्।
नारदोऽवतरद्द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः॥ ३॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरच्चन्द्र इवामलः।
अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः॥ ४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः।
ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान्॥ ५॥

उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः।
संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम्।
अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने॥ ६॥

अवाप्तं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः।
संसारिणापि हि मुने लभ्यते सत्समागमः॥ ७॥

अतस्त्वद्दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर।
किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भोः॥ ८॥

अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम्।
किं मोहयसि मां राम वाक्यैर्लोकानुसारिभिः॥ ९॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! एक दिन जब सर्वालङ्कारविभूषित श्रीरामचन्द्रजी अपने अन्तःपुरके आँगनमें एक रत्नसिंहासनपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे॥ १॥ तथा जिस समय नीलोत्पलदलश्याम कौस्तुभमणिमण्डित उन रघुनाथजीपर श्रीसीताजी रत्नदण्डयुक्त चँवर डुला रही थी॥ २॥ और वे आदरपूर्वक दिये हुए ताम्बूल-चर्वणादिसे आनन्दित हो रहे थे, उसी समय उन्हें देखनेके लिये देवर्षि नारदजी आकाशसे उतरे॥ ३॥ शुद्ध स्फटिक मणिके समान स्वच्छ और शरच्चन्द्रके समान निर्मल दिव्यमूर्ति श्रीनारदजीको इस प्रकार अचानक आते देख भगवान् राम सहसा उठ खड़े हुए और सीताजीके सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पृथिवीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४-५॥

फिर भगवान् रामने परम प्रीतिपूर्वक नारदजीसे कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! हम-जैसे विषयासक्त संसारी मनुष्योंके लिये आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। हे मुने! आज अपने पूर्वजन्म-कृत पुण्य-पुञ्जके उदय होनेसे ही मुझे आपका दर्शन हुआ है, क्योंकि हे मुने! पुण्योदय होनेपर संसारी पुरुषको भी सत्सङ्ग प्राप्त हो जाता है॥ ६-७॥ अतः हे मुनीश्वर! आज आपके दर्शनसे ही मैं कृतार्थ हो गया, अब मुझे आपका क्या कार्य करना होगा सो कहिये, उसे मैं (इस समय) पूर्ण करूँ"॥ ८॥

तब नारदजीने भक्तवत्सल भगवान् रामसे कहा—"हे राम! आप सामान्य मनुष्योंके-से इन वाक्योंसे मुझे क्यों मोहित कर रहे हैं॥ ९॥

ससार्यहमिति प्रोक्त सत्यमेतत्त्वया विभो ।
जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव ॥ १० ॥

त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्या ब्रह्मादय प्रजा ।
त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥ ११ ॥

सूतेऽजस्र शुक्लकृष्णलोहिता' सर्वदा प्रजा ।
लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृत ॥ १२ ॥

त्व विष्णुर्जानकी लक्ष्मी शिवस्त्व जानकी शिवा ।
ब्रह्मा त्व जानकी वाणी सूर्यस्त्व जानकी प्रभा ॥ १३ ॥

भवान् शशाङ्क सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान् ॥ १४ ॥

यमस्त्व कालरूपश्च सीता सयमिनी प्रभो ।
निर्ऋतिस्त्व जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥ १५ ॥

राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा ।
वायुस्त्व राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥ १६ ॥

कुबेरस्त्व राम सीता सर्वसपत्प्रकीर्तिता ।
रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्व लोकनाशकृत् ॥ १७ ॥

लोके स्त्रीवाचक यावत्तत्सर्व जानकी शुभा ।
पुन्नामवाचक यावत्तत्सर्व त्व हि राघव ॥ १८ ॥

तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्या नास्ति किञ्चन ॥ १९ ॥

त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृतमितीर्यते ।
तस्मान्महास्तत सूत्र लिङ्ग सर्वात्मक तत ॥ २० ॥

अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च ।
लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्ममृत्युसुखादिमत् ॥ २१ ॥

स एव जीवसज्ञश्च लोके भाति जगन्मय ।
अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ॥ २२ ॥

स्थूल सूक्ष्म कारणाख्यमुपाधित्रितय चिते ।
एतैर्विशिष्टो जीव स्याद्वियुक्त परमेश्वर ॥ २३ ॥

हे विभो ! आपने जो यह कहा कि 'मै ससारी हूँ' सो ठीक ही है, क्योकि सम्पूर्ण ससारकी जो आदिकारण है वह माया आपकी गृहिणी है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आपकी सन्निधिमात्रसे ही उस मायासे ब्रह्मा आदि सब प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, वह सत्त्व-रज-तमोमयी त्रिगुणात्मिका माया सदा आपके आश्रित होकर ही भासमान होती है तथा स्वगुणानुरूप शुक्ल, लोहित और कृष्णवर्ण प्रजा उत्पन्न करती है। इस त्रिलोकीरूप महागृहके आप गृहस्थ कहे गये हैं ॥ ११-१२ ॥ आप भगवान् विष्णु है और जानकीजी लक्ष्मीजी हैं, आप शिव हैं और जानकीजी पार्वती है। आप ब्रह्मा है और जानकीजी सरस्वती है तथा आप सूर्यदेव है और जानकीजी प्रभा है ॥ १३ ॥ आप चन्द्रमा हैं, शुभलक्षणा सीताजी रोहिणी है, आप इन्द्र है और सीता पुलोम-कन्या शची हैं तथा आप अग्नि है और सीताजी स्वाहा हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप सबके कालरूप यम है और सीता सयमिनी है, हे जगन्नाथ ! आप निर्ऋति है और जानकीजी तामसी है ॥ १५ ॥ हे राम ! आप वरुण है और शुभलक्षणा जानकी भृगु-कन्या वारुणी है, आप वायु है तथा सीताजी सदागति है ॥ १६ ॥ हे राम ! आप कुबेर है और सीताजी उनकी सब सम्पत्ति है तथा आप लोकसहारकारी रुद्र हैं और सीताजी रुद्राणी कहलाती है ॥ १७ ॥ हे राघव ! नि सन्देह ससारमे जो कुछ पुरुषवाचक है वह सब आप हैं और स्त्रीवाचक सब श्रीजानकीजी हैं, अत हे देव ! त्रिलोकीमे आप दोनोसे अतिरिक्त और कुछ भी नही है ॥ १८-१९ ॥ आपहीके आभाससे प्रकट हुआ अज्ञान अव्याकृत कहलाता है, उससे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे सूत्रात्मा (हिरण्यगर्भ) और सूत्रात्मासे सर्वात्मक लिङ्गदेह उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ अहकार, बुद्धि, पञ्चप्राण और दस इन्द्रियाँ इनके समूहको ही प्राज्ञजन जन्म, मृत्यु और सुख-दु खादि धर्मोवाला लिङ्गदेह बताते है ॥ २१ ॥ वह (लिङ्गदेहाभिमानी चेतनाभास) ही जगत्मे तन्मय हुआ जीव नामसे विख्यात है। अनिर्वचनीय और अनादि अविद्या ही (इस जीवकी) कारण-उपाधि कही जाती है ॥ २२ ॥ शुद्ध चेतनकी स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीन उपाधियाँ है। इन उपाधियोसे युक्त होनेसे वह जीव कहलाता है और इससे रहित होनेसे परमेश्वर कहा जाता है ॥ २३ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते ।
तस्या विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम ॥ २४ ॥

त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम् ॥ २५ ॥

रज्जावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् ।
परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते ॥ २६ ॥

चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः ।
त्वया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ॥ २७ ॥

अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जौ भुजङ्गवत् ।
त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ॥ २८ ॥

त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ।
तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ॥ २९ ॥

अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः ।
अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ॥ ३० ॥

त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो ।
अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥

रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम ।
इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति ॥ ३३ ॥

यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि ।
प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ॥ ३४ ॥

तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसंधस्त्वमेव हि ।
श्रुत्वैतद्गदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ॥ ३५ ॥

शृणु नारद मे किञ्चिद्विद्यतेऽविदितं क्वचित् ।
प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः ॥ ३६ ॥

हे रघुश्रेष्ठ ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ऐसी जो तीन प्रकारकी सृष्टि है उससे आप विलक्षण हैं और उसके चेतनमात्र साक्षी हैं ॥ २४ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे उत्पन्न हुआ है, आपहीमें स्थित है और आपहीमें लीन होता है। इसलिये आप ही सबके कारण हैं ॥ २५ ॥ रज्जुमें सर्प-भ्रमके समान अपनेको जीव माननेसे मनुष्यको भय होता है, पर वही जब यह समझ लेता है कि 'मैं परमात्मा हूँ' तो सम्पूर्ण भय और दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २६ ॥ क्योंकि चिन्मात्र ज्योति स्वरूप आप ही सबके शरीरोंमें स्थित होकर उनकी बुद्धियोंको प्रकाशित कर रहे हैं इसलिये आप ही सबके आत्मा हैं ॥ २७ ॥ रज्जुमें सर्प-भ्रमके समान अज्ञानसे ही आपमें सम्पूर्ण जगत्की कल्पना की जाती है, सो आपका ज्ञान होनेसे वह सब लीन हो जाती है। सुतरां मनुष्यको सदा ज्ञानका अभ्यास करना चाहिये ॥ २८ ॥ आपके चरणकमलोंकी भक्तिसे युक्त पुरुषोंको ही क्रमशः ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अतः जो पुरुष आपकी भक्तिसे युक्त हैं वे ही वास्तवमें मुक्तिके पात्र हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! मैं आपके भक्तोंके भक्त और उनके भी भक्तोंका दास हूँ, अतः आप मुझे मोहित न कर मुझपर अनुग्रह कीजिये ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूँ। हे राघव ! आप मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये" ॥ ३१ ॥

इस प्रकार कहकर और बारम्बार प्रणाम कर श्रीनारदजीने नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरकर कहा—"हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे ब्रह्माजीने आपके पास भेजा है, आपका अवतार रावणका वध करनेके लिये हुआ है, किन्तु अब पिता दशरथ आपको राज्यशासनके लिये अभिषिक्त करनेवाले हैं ॥ ३२-३३ ॥ हे राम ! यदि राज्यमें आसक्त होकर आप रावणको न मारेंगे तो पृथिवीका भार उतारनेके लिये जो आपने प्रतिज्ञा की थी उसका क्या होगा ! ॥ ३४ ॥ अतः हे राजेन्द्र ! आप उसे सत्य कीजिये क्योंकि आप सत्यप्रतिज्ञ ही हैं।"

नारदजीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकराकर कहा ॥ ३५ ॥ "नारदजी ! सुनिये, क्या कोई ऐसी बात भी है जिसे मैं न जानता होऊँ ! मैंने पहले जो कुछ प्रतिज्ञा की है वह मैं निस्सन्देह पूर्ण करूँगा ॥ ३६ ॥

किन्तु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसक्षयात् ।
हरिष्ये सर्वभूभार क्रमेणासुरमण्डलम् ॥ ३७ ॥

रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम् ।
चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥ ३८ ॥

सीतामिषेण त दुष्ट सकुल नाशयाम्यहम् ।
एव रामे प्रतिज्ञाते नारद प्रमुमोद ह ॥ ३९ ॥

प्रदक्षिणत्रय कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् ।
अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनि ॥ ४० ॥

सवाद पठति शृणोति सस्मरेद्वा
यो नित्य मुनिवररामयो स भक्त्या ।
सप्राप्नोत्यमरसुदुर्लभ विमोक्ष
कैवल्य विरतिपुर सर क्रमेण ॥ ४१ ॥

किन्तु कालक्रमसे जिन-जिनका प्रारब्ध क्षीण होता जायगा उन-उन दैत्योको ही मारकर मै क्रमश पृथिवीका भार उतारूँगा ॥ ३७ ॥ रावणका वध करनेके लिये मै कल दण्डकारण्यको जाऊँगा और वहाँ चौदह वर्ष मुनिवेष धारण कर रहूँगा ॥ ३८ ॥ उस दुष्टको सीता-हरणके मिषसे मै कुटुम्बके सहित नष्ट कर दूँगा।"

रामचन्द्रजीके इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेपर नारदजी अति प्रसन्न हुए ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उन्होने रामजीकी तीन परिक्रमाएँ की और उन्हे दण्डवत्-प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले आकाश-मार्गसे देवलोकको चले गये ॥ ४० ॥ जो मनुष्य नारद और रामचन्द्रजीके इस सवादको नित्य भक्तिपूर्वक पढता, सुनता या स्मरण करता है वह वैराग्यपूर्वक क्रमश देवताओको अत्यन्त दुर्लभ कैवल्य मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अयोध्याकाण्डे प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

★

द्वितीय सर्ग

राज्याभिषेककी तैयारी तथा वसिष्ठजी और रघुनाथजीका सवाद

महादेव उवाच

अथ राजा दशरथ कदाचिद्रहसि स्थित ।
वसिष्ठ स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥ १ ॥

भगवन् राममखिला प्रशसन्ति मुहुर्मुहु ।
पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषत ॥ २ ॥

तत सर्वगुणोपेत गम राजीवलोचनम् ।
ज्येष्ठ राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽह मुनिपुङ्गव ॥ ३ ॥

भरतो मातुल द्रष्टु गत शत्रुघ्नसयुत ।
अभिषेक्ष्ये श्व एवाशु भवास्तच्चानुमोदताम् ॥ ४ ॥

सम्भारा सम्भ्रियन्ता च गच्छ मन्त्रय राघवम् ।
उच्छ्रीयन्ता पताकाश्च नानावर्णा समन्तत ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक दिन एकान्तमे बैठे हुए राजा दशरथने अपने कुल-पुरोहित वसिष्ठजीको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ "भगवन्! सभी पुरवासी, वेदार्थाभिज्ञ बडे-बूढे और मन्त्रिजन रामकी विशेषतया बारम्बार प्रशसा किया करते है ॥ २ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ! मेरा विचार है कि मै अपने सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र कमलनयन रामको राज्यपदपर अभिषिक्त कर दूँ क्योकि मै अब वृद्ध हो गया हूँ ॥ ३ ॥ इस समय भरत शत्रुघ्नके साथ अपने मामाके यहाँ मिलने गया है, तथापि मै कल शीघ्र ही रामका राज्याभिषेक करना चाहता हूँ। इस विषयमे आप भी अपनी सम्मति दे दीजिये ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप अभिषेककी सामग्री एकत्रित कराइये और रघुनाथजीके पास जाकर उनको यथोचित सम्मति दीजिये। इस समय नगरमे सब ओर रग-बिरगी झडियाँ लगायी जानी

तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै ।
आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ॥ ६ ॥

आज्ञापयति यद्युक्त्वा मुनिस्तत्तत्समानय ।
यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम् ॥ ७ ॥

तथेति हर्षात्स मुनिं किं करोमीत्यभाषत ।
तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥ ८ ॥

श्वः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः ।
तिष्ठन्तु षोडश गजः स्वर्णरत्नादिभूषितः ॥ ९ ॥

चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः ।
नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥ १० ॥

स्थाप्यन्तां नववैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय ।
श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ॥ ११ ॥

दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।
मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥ १२ ॥

नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा ।
नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ॥ १३ ॥

हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः ।
नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥ १४ ॥

तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरादृता ।
राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥ १५ ॥

इत्यादिश्य मुनिः श्रीमान्सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम् ।
स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम् ॥ १६ ॥

रथमारुह्य भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात्क्षितिमवातरत् ॥ १७ ॥

अन्तः प्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः ।
गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृताञ्जलिः ॥ १८ ॥

प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद् भक्तिसंयुतः ।
स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ॥ १९ ॥

चाहिये ॥ ५ ॥ तथा चित्र-विचित्र सुवर्ण और मोतियोंके तोरण (झालर) बाँधे जाने चाहिये।'' उसी समय राजाने मन्त्रिश्रेष्ठ सुमन्त्रको बुलाकर आज्ञा दी कि मैं कल रघुनाथजीको युवराज-पदपर अभिषिक्त करूँगा, उसके लिये मुनिवर वसिष्ठजी जो-जो सामग्री बतायें वह सब एकत्रित करो ॥ ६-७ ॥

राजा दशरथसे 'बहुत अच्छा' कह सुमन्त्रने हर्षपूर्वक मुनिवरसे कहा कि 'मैं क्या करूँ ?' तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठजीने उससे कहा— ॥ ८ ॥ 'कल प्रातःकाल मध्यद्वारपर सुवर्ण-भूषण-भूषित सोलह कन्याएँ खड़ी रहनी चाहिये, तथा सुवर्ण और रत्न आदिसे विभूषित ऐरावतके कुलमें उत्पन्न एक चार दाँतोंवाला हाथी रहना चाहिये, नाना तीर्थोंके जलसे पूर्ण हजारों सुवर्ण कलश मँगवाये जायँ ॥ ९-१० ॥ तीन नवीन व्याघ्र-चर्म लाकर रखो और मुक्तामणि-सुशोभित रत्नदण्डयुक्त एक श्वेत छत्र लाओ ॥ ११ ॥ अनेकों दिव्य मालाएँ, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण लाकर रखे जाने चाहिये तथा अभिषेक-स्थानपर भली प्रकार सम्मान किये हुए अनेकों मुनिजन हाथमें कुशा लिये हुए उपस्थित रहें ॥ १२ ॥ अनेकों नर्तकियाँ, मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ, गायक, वेणुवादक तथा कुशल बाजे बजानेवाले महाराज दशरथके आँगनमें गाना-बजाना करें ॥ १३ ॥ अभिषेक-स्थानके बाहर हाथी, घोड़े, रथ और पदाति यह चतुरंगिणी सेना अस्त्र-शस्त्रमें सुसज्जित होकर खड़ी रहे। नगरमें जितने देवालय हैं उन सबमें नाना प्रकारकी बलि-सामग्रीसे देवोंकी पूजा की जाय तथा राजालोग शीघ्र ही नाना प्रकारकी भेंटें लेकर आवें'' ॥ १४-१५ ॥

राजमन्त्री सुमन्त्रको इस प्रकार आज्ञा दे श्रीमान् वसिष्ठजी स्वयं श्रीरघुनाथजीके परम सुन्दर महलमें गये ॥ १६ ॥ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने रथपर चढ़कर रघुनाथजीके महलकी तीन पौरियाँ पार कीं और फिर पृथिवीपर उतर पड़े ॥ १७ ॥ तदनन्तर आचार्य होनेके कारण बिना रोक-टोकके वे भीतर चले गये। उस समय गुरुजीको आये देख रामचन्द्रजीने तुरत हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया और भक्तिपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम किया। उसी समय सीताजी सुवर्णके पात्रमें जल ले आयीं ॥ १८-१९ ॥

रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तित ।
तदप शिरसा धृत्वा सीतया सह राघव ॥ २० ॥

धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात् ।
श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २१ ॥

त्वत्पादसलिल धृत्वा धन्योऽभूद्गिरिजापति ।
ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभ ॥ २२ ॥

इदानीं भाषसे यत्त्व लोकानामुपदेशकृत् ।
जानामि त्वा परात्मान लक्ष्म्या सजातमीश्वरम् ॥ २३ ॥

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थ भक्ताना भक्तिसिद्धये ।
रावणस्य वधार्थाय जात जानामि राघव ॥ २४ ॥

तथापि देवकार्यार्थ गुह्य नोद्धाटयाम्यहम् ।
यथा त्व मायया सर्व करोषि रघुनन्दन ॥ २५ ॥

तथैवानुविधास्येऽह शिष्यस्त्व गुरुरप्यहम् ।
गुरुर्गुरूणा त्व देव पितृणा त्व पितामह ॥ २६ ॥

अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचर ।
शुद्धसत्त्वमय देह धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥ २७ ॥

मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्व योगमायया ।
पौरोहित्यमह जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकूणा कुले राम परमात्मा जनिष्यते ।
इति ज्ञात मया पूर्वं ब्रह्मणा कथित पुरा ॥ २९ ॥

ततोऽहमाशया राम तव सम्बन्धकाङ्क्षया ।
अकार्ष गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥ ३० ॥

ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन ।
त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥ ३१ ॥

मा यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह ।
गुरुनिष्कृतिकामस्त्व यदि देह्येतदेव मे ॥ ३२ ॥

तब रघुनाथजीने गुरुजीको रत्नसिहासनपर बैठाकर उनके चरण धोये और सीताजीके सहित उस चरणोदकको भक्तिपूर्वक अपने सिरपर रखकर कहा—"हे मुने। आपके चरणोदकको धारणकर आज मै कृतकृत्य हो गया।" भगवान् रामके इस प्रकार कहनेपर मुनिवर वसिष्ठने हँसकर कहा ॥ २०-२१ ॥ "हे राम। आपके पादोदकको मस्तकपर धारणकर पार्वतीवल्लभ भगवान् शकर धन्य-धन्य हो गये तथा मेरे पिता ब्रह्माजी भी आपके पादतीर्थका सेवन करनेसे ही निष्पाप हो गये है ॥ २२ ॥ इस समय केवल ससारको यह उपदेश करनेके लिये ही कि 'गुरुके साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये' आप इस प्रकार सम्भाषण कर रहे है। मै भली प्रकार जानता हूँ आप लक्ष्मीके सहित प्रकट हुए साक्षात् परमात्मा विष्णु हैं ॥ २३ ॥ हे राघव। मैं जानता हूँ आपने देवताओका कार्य सिद्ध करनेके लिये, भक्तोकी भक्ति सफल करनेके लिये और रावणका वध करनेके लिये ही अवतार लिया है ॥ २४ ॥ तथापि देवताओकी कार्य-सिद्धिके लिये मै इस गुप्त रहस्यको प्रकट नही करता। हे रघुनन्दन। जिस प्रकार मायाके आश्रयसे आप सब कार्य करेगे उसी प्रकार मै भी 'तुम शिष्य हो और मैं गुरु हूँ' इस सम्बन्धके अनुकूल व्यवहार करूँगा। किन्तु हे देव। वास्तवमे तो आप ही गुरुओके गुरु और पितृगणोके भी पितामह हैं ॥ २५-२६ ॥ आप अन्तर्यामी, जगद्व्यवहारके प्रवर्त्तक और मन-वाणीके अविषय है, और स्वेच्छासे यह शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारणकर इस लोकमे अपनी योगमायासे मनुष्यके समान प्रतीत होते है। मै यह जानता हूँ कि पुरोहिताई अति निन्दनीय और दूषित जीविका है ॥ २७-२८ ॥ तो भी जब पूर्वकालमे ब्रह्माजीके कहनेसे मुझे यह मालूम हुआ कि इक्ष्वाकुवशमे परमात्मा राम अवतार लेगे ॥ २९ ॥ तब हे राम। आपसे सम्बन्ध जोडनेकी इच्छासे आपका आचार्य बननेके लिये इस निन्दनीय पदको भी मैने स्वीकार कर लिया ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन। आज मेरी इच्छा पूर्ण हो गयी। अब यदि आप गुरु-ऋणसे उऋण होना चाहते है तो मुझे यही दीजिये कि आपके अधीन रहनेवाली आपकी सर्वलोकविमोहिनी महामाया मुझे मोहित न करे ॥ ३१-३२ ॥

प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्त न वाच्य कुत्रचिन्मया ।
राज्ञा दशरथेनाह प्रेषितोऽस्मि रघूद्वह ॥ ३३ ॥

त्वामामन्त्रयितु राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव ।
अद्य त्व सीतया सार्धमुपवास यथाविधि ॥ ३४ ॥

कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रिय ।
गच्छामि राजसान्निध्य त्व तु प्रातर्गमिष्यसि ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम् ।
रामोऽपि लक्ष्मण दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति ।
निमित्तमात्रमेवाह कर्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥ ३७ ॥

मम त्व हि बहि प्राणो नात्र कार्या विचारणा ।
ततो वसिष्ठेन यथा भाषित तत्तथाकरोत् ॥ ३८ ॥

वसिष्ठोऽपि नृप गत्वा कृत सर्व न्यवेदयत् ।
वसिष्ठस्य पुरो राज्ञा ह्युक्त रामाभिषेचनम् ॥ ३९ ॥

यदा तदैव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ ।
कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥ ४० ॥

श्रुत्वा ते हर्षसम्पूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम् ।
तस्मै तत प्रीतमना कौसल्या पुत्रवत्सला ॥ ४१ ॥

लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ।
सत्यवादी दशरथ करोत्येव प्रतिश्रुतम् ॥ ४२ ॥

कैकेयीवशग किन्तु कामुक किं करिष्यति ।
इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गा देवीमपूजयत् ॥ ४३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् ।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्याया प्रयत्नत ॥ ४४ ॥

रामाभिषेकविघ्नार्थ यतस्व ब्रह्मवाक्यत ।
मन्थरा प्रविशस्वादौ कैकेयीं च तत परम् ॥ ४५ ॥

हे रघुश्रेष्ठ ! इस समय प्रसगवश मैने ये सब बाते आपसे कह दी है, मै ऐसा और कही भी न कहूँगा । हे राघव ! महाराज दशरथने इस बातकी सूचना देनेके लिये कि कल वे आपको राजपदपर अभिषिक्त करेगे—मुझे आपके पास भेजा है। आज आप सीताके सहित विधिपूर्वक उपवास और शुद्धता तथा इन्द्रियजयपूर्वक पृथिवीपर शयन करे । अब मै राजाके पास जाता हूँ , आप कल प्रात काल वहाँ पधारे'' ॥ ३३—३५ ॥

ऐसा कह राजपुरोहित वसिष्ठजी रथपर चढकर तुरत ही चले गये । तब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीकी ओर देखकर हँसते हुए कहा— ॥ ३६ ॥ ''हे सुमित्रानन्दन ! कल मेरा युवराज-पदपर अभिषेक होगा, सो मै तो केवल निमित्त-मात्र ही होऊँगा, उसके कर्ता-भोक्ता तो तुम्ही होगे ॥ ३७ ॥ क्योकि मेरे बाह्यप्राण तो तुम्ही हो—इसमे कोई विशेष सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं है ।'' तदनन्तर वसिष्ठजी जैसा कह गये थे रघुनाथजीने वैसा ही किया ॥ ३८ ॥ इधर वसिष्ठजीने भी राजा दशरथके पास आकर जो कुछ किया था, सो सब सुना दिया । जिस समय महाराज दशरथ वसिष्ठजीसे रामचन्द्रजीके अभिषेकके विषयमे कह रहे थे उसी समय किसी पुरुषने यह समाचार सुनकर सम्पूर्ण नगरमे सुना दिया और राममाता कौसल्या तथा सुमित्राको भी यह सूचना दे दी ॥ ३९-४० ॥ उन दोनोने सुनते ही अति हर्षपूर्ण हो उसे एक अत्युत्तम हार दिया। तदुपरान्त पुत्रवत्सला कौसल्याने रामचन्द्रजीकी इष्ट-सिद्धिके लिये लक्ष्मीदेवीका पूजन किया। 'राजा दशरथ सत्यवादी है और उनके विषयमे यह प्रसिद्ध है कि वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते है ॥ ४१-४२ ॥ किन्तु वे कामी और कैकेयीके वशीभूत हैं ऐसी अवस्थामे क्या वे इस प्रतिज्ञाको पूर्ण कर सकेगे ।' इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल होकर वह दुर्गादेवीका पूजन करने लगी ॥ ४३ ॥

इसी समय देवताओने सरस्वतीदेवीसे आग्रह किया कि ''हे देवि ! तुम यत्नपूर्वक भूलोकमे अयोध्यापुरीमे जाओ ॥ ४४ ॥ और वहाँ ब्रह्माजीकी आज्ञासे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमे विघ्न उपस्थित करनेके लिये यत्न करो । प्रथम तो तुम मन्थरामे प्रवेश करना और फिर कैकेयीमे ॥ ४५ ॥

ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे।
तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम्॥ ४६॥

सापि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत्।
नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलङ्कृतम्॥ ४७॥

नानातोरणसम्बाधं पताकाभिरलङ्कृतम्।
सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागमत्॥ ४८॥

धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलङ्कृतम्।
नानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता॥ ४९॥

ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च।
तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम्॥ ५०॥

श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलङ्कृतं पुरम्।
तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्रवीत्॥ ५१॥

पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम्।
किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम्॥ ५२॥

न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी॥ ५३॥

रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति।
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी॥ ५४॥

तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम्।
हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम्॥ ५५॥

भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः।
कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम्॥ ५६॥

रामाद्भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे।
तच्छ्रुत्वा विषसादाथ कुब्जाकारणवैरिणी॥ ५७॥

शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्भयम्।
त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते॥ ५८॥

हे शुभे! इस प्रकार विघ्न उपस्थित हो जानेपर तुम फिर स्वर्गलोकको लौट आना।'' इसपर सरस्वतीने 'बहुत अच्छा' कहकर वैसा ही किया और प्रथम मन्थरामे प्रवेश किया॥ ४६॥

तब तीन स्थानमे टढी वह कुबडी मन्थरा महलकी अट्टालिकापर चढी और उसने देखा कि नगर सब ओरसे सजाया गया है॥ ४७॥ उसमे नाना प्रकारकी बन्दनवारे बँधी हुई है चित्र-विचित्र पताकाएँ सुशोभित हो रही हे और सब ओर उत्सव हो रहे है। यह देखकर वह अत्यन्त विस्मिता हो नीचे उतर आयी॥ ४८॥ और धायसे पूछा—''मैया! आज नगर क्यो सजाया गया है और महारानी कौसल्या भी नाना प्रकारसे उत्सव मनाती हुई अत्यन्त हर्षपूर्वक उत्तमोत्तम ब्राह्मणोको विविध वस्त्राभूषण क्यो दे रही है!'' तब धायने उससे कहा—''कल श्रीरामजीका राज्याभिषेक होगा, इसीलिये आज सब ओरसे नगर सजाया गया है।'' यह सुनते ही उसने तुरत ही कैकेयीके पास जाकर कहा॥ ४९—५१॥ विशालाक्षी कैकेयी उस समय एकान्तमे पलगपर बैठी थी, उससे मन्थरा बोली—''अयि अभागिनि मूढे! कैसे सो रही हो, तुम्हारे लिये बडा भारी सङ्कट उपस्थित हुआ है॥ ५२॥ हे मतवाली चालवाली! तुम्हे अपनी सुन्दरताका बडा घमण्ड है इसीलिये तुम्हे किसी बातका पता ही नहीं रहता॥ ५३॥ देखो, महाराजकी कृपासे कल रामका राज्याभिषेक होनेवाला है।''

यह सुनकर प्रियवादिनी कैकेयी सहसा उठ खडी हुई॥ ५४॥ और उसे अति दिव्य रत्नजटित सुवर्णनूपुर देकर कहा, ''अरी! यह तो बडे आनन्दकी बात है, इसमे तू सकट उपस्थित हुआ कैसे बतलाती है॥ ५५॥ राम तो भरतकी अपेक्षा मेरा अधिक प्रिय करनेवाला और मधुरभाषी है, वह तो कौसल्या तथा मुझे समान भावसे देखता हुआ सदा ही मेरी सेवा किया करता है॥ ५६॥ अरी मूर्खे! तू यह तो बता कि तुझे रामसे क्या भय उपस्थित हुआ है?''

यह सुनकर बिना कारण वैर करनेवाली मन्थरा विषाद करने लगी॥ ५७॥ और बोली, ''देवि! मेरी बात सुनो, वास्तवमे तुम्हारे लिये बडा सकट उपस्थित हुआ है। राजा तुम्हे सन्तुष्ट करनेके लिये ही सदा चिकनी-चुपडी

कामुकोऽतथ्यवादी च त्वा वाचा परितोषयन्।
कार्य करोति तस्या वै राममातु सुपुष्कलम्॥ ५९॥

मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम्।
भरत मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम्॥ ६०॥

सुमित्राया समीचीन भविष्यति न सशय ।
लक्ष्मणो राममन्वेति राज्य सोऽनुभविष्यति॥ ६१॥

भरतो राघवस्याग्रे किङ्करो वा भविष्यति।
विवास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हाप्यतेऽचिरात्॥ ६२॥

त्व तु दासीव कौसल्या नित्य परिचरिष्यसि।
ततोऽपि मरण श्रेयो यत्सपत्न्या पराभव ॥ ६३॥

अत शीघ्र यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने।
रामस्य वनवासार्थ वर्षाणि नव पञ्च च॥ ६४॥

ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति।
उपाय ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम्॥ ६५॥

पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथ स्वयम्।
इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथ ॥ ६६॥

जगाम सेनया सार्ध त्वया सह शुभानने।
युद्ध प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसै सह धन्विन ॥ ६७॥

तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद स ।
त्व तु हस्त समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यत ॥ ६८॥

स्थितवत्यसितापाङ्गि पतिप्राणपरीप्सया।
ततो हत्वासुरान्सर्वान् ददर्श त्वामरिन्दम ॥ ६९॥

आश्चर्य परम लेभे त्वामालिङ्ग्य मुदान्वित ।
वृणीष्व यत्ते मनसि वाञ्छित वरदोऽस्म्यहम्॥ ७०॥

वरद्वय वृणीश्व त्वमेव राजावदत्स्वयम्।
त्वयोक्तो वरदो राजन्यदि दत्त वरद्वयम्॥ ७१॥

त्वय्येव तिष्ठतु चिर न्यासभूत ममानघ।
यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम्॥ ७२॥

बाते बना दिया करते है॥ ५८॥ वे बडे कामी और मिथ्यावादी है, तुम्हे इस प्रकार केवल बातोसे ही बहलाकर रामकी माताका ही पूरा-पूरा कार्य किया करते है॥ ५९॥ अपने मनमे यही ठानकर उन्होने छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित तुम्हारे पुत्र भरतको ननिहाल भेज दिया है॥ ६०॥ इसमे सुमित्राके लिये तो निस्सन्देह सब कुछ ठीक ही होगा, क्योकि लक्ष्मण रामके अनुगामी है इसलिये वे तो राज्य ही भोगेगे॥ ६१॥ किन्तु भरतको या तो रामका दास होकर रहना पडेगा या उन्हे शीघ्र ही नगरसे निकाल दिया जायगा अथवा उनका प्राणघात किया जायगा॥ ६२॥ और तुम्हे दासीके समान सदा कौसल्याकी सेवा करनी पडेगी। इस प्रकार सौतसे अपमानित होकर रहनेकी अपेक्षा तो मरना ही अच्छा है॥ ६३॥ इसलिये अब तुम शीघ्र ही भरतके राज्याभिषेक और रामके चौदह वर्षतक वनवासके लिये प्रयत्न करो॥ ६४॥ हे रानी! ऐसा होनेपर तुम्हारे पुत्र भरत निष्कण्टक राज्यपदपर आरूढ हो जायँगे। इसके लिये मैने जो पहलेसे ही सोच रखा है वह उपाय तुम्हे बताती हूँ॥ ६५॥ पूर्वकालमे देवासुरसग्रामके समय स्वय इन्द्रने धनुर्धर महारथी राजा दशरथसे सहायताके लिये प्रार्थना की थी॥ ६६॥ हे सुमुखि! उस समय सेनाके सहित वे तुम्हे साथ लेकर वहाँ गये थे। जिस समय धनुर्धर महाराज दशरथ राक्षसोसे युद्ध करनेमे निमग्न थे, उस समय उनके बिना जाने रथकी धुरीकी कील टूटकर गिर गयी, तब अत्यन्त धैर्यपूर्वक तुमने अपना हाथ उस कीलके छिद्रमें लगा दिया॥ ६७-६८॥ और हे कृष्णाक्षि! पतिकी प्राणरक्षाके लिये तुम बहुत देरतक इसी स्थितिमे रही। तदनन्तर समस्त दैत्योको मार चुकनेपर शत्रुदमन महाराज दशरथने तुम्हे देखा॥ ६९॥ तुम्हे ऐसी स्थितिमे देखकर उन्हे अति आश्चर्य हुआ और अति प्रसन्नतासे तुम्हे गले लगाकर वे बोले—"मैं तुम्हे वर देना चाहता हूँ, तुम्हे जो इच्छा हो सो माँग लो॥ ७०॥ इस समय तुम दो वर माँग सकती हो।" राजाके इस प्रकार कहनेपर तुमने कहा—"राजन्! यदि आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे दो वर देना चाहते है॥ ७१॥ तो हे अनघ! मेरी यह धरोहर बहुत समयतक आप ही रखिये, जिस समय इनका अवसर आवे उस समय आप ये दोनो वर मुझे दे दीजियेगा"॥ ७२॥

तथेत्युक्त्वा स्वय राजा मन्दिर व्रज सुव्रते ।
त्वत्त श्रुत मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ॥ ७३ ॥

अत शीघ्र प्रविश्याद्य क्रोधागार रुषान्विता ।
विमुच्य सर्वाभरण सर्वतो विनिकीर्य च ।
भूमावेव शयाना त्व तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ॥ ७४ ॥

यावत्सत्य प्रतिज्ञाय राजाभीष्ट करोति ते ।
श्रुत्वा त्रिवक्रयोक्त तत्तदा केकयनन्दिनी ॥ ७५ ॥

तथ्यमेवाखिल मेने दु सङ्गाहितविभ्रमा ।
तामाह कैकेयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ ७६ ॥

एव त्वा बुद्धिसम्पन्ना न जाने वक्रसुन्दरि ।
भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुत प्रिय ॥ ७७ ॥

ग्रामान् शत प्रदास्यामि मम त्व प्राणवल्लभा ।
इत्युक्त्वा कोपभवन प्रविश्य सहसा रुषा ॥ ७८ ॥

विमुच्य सर्वाभरण परिकीर्य समन्तत ।
भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ॥ ७९ ॥

प्रोवाच शृणु मे कुब्जे यावद्रामो वन व्रजेत् ।
प्राणास्त्यक्ष्येऽथ वा वक्रे शयिष्ये तावदेव हि ॥ ८० ॥

निश्चय कुरु कल्याणि कल्याण ते भविष्यति ।
इत्युक्त्वा प्रययौ कुब्जा गृह सापि तथाकरोत् ॥ ८१ ॥

धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सगुणा-
चारान्वितो वाथवा
नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो
विद्याविवेकोऽथवा ।
दुष्टानामतिपापभावितधिया
सङ्ग सदा चेद्भजे-
त्तद्बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्
साम्य क्रमेण स्फुटम् ॥ ८२ ॥

अत सङ्ग परित्याज्यो दुष्टाना सर्वदैव हि ।
दु सङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेय राजकन्यका ॥ ८३ ॥

तब राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर तुमसे कहा 'हे सुव्रते ! अब घर चलो ।' महारानीजी ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त पहले तुम्हीसे मैने सुना था, इस समय मुझे यह स्मरण हो आया है ॥ ७३ ॥ अत हे भामिनि ! अब तुम शीघ्र ही रोषपूर्वक कोपभवनमे जाओ और अपने समस्त आभूषण उतारकर इधर-उधर बखेर दो तथा जबतक सत्य प्रतिज्ञा-पूर्वक राजा तुम्हारा अभीष्ट कार्य करनेको तत्पर न हो तबतक चुपचाप पृथिवीपर पडी रहो ।''

त्रिवक्रा मन्थराकी ये बाते सुनकर दु सङ्गवश बुद्धि भ्रष्ट हो जानेके कारण दुष्टा कैकेयीने उस समय उसका कथन सर्वथा ठीक मान लिया और उससे कहा—''तुझमे ऐसी बुद्धि कहाँसे आ गयी ? ॥ ७४—७६ ॥ अरी बाँकी सुन्दरी ! मै तुझे इतनी बुद्धिमती नही जानती थी ! यदि मेरा प्रिय पुत्र भरत राजा हो गया तो मै तुझे सौ गाँव दूँगी, तू तो मुझे प्राणोके समान प्यारी है ।' ऐसा कहकर कैकेयीने रोषपूर्वक कोपभवनमे प्रवेश किया ॥ ७७-७८ ॥ और अपने सब आभूषण उतारकर इधर-उधर बखेर दिये तथा मैले-कुचैले वस्त्र पहनकर अति मलिन दशामे पृथिवीमे पडकर बोली, ''अरी कुब्जे ! सुन, जबतक राम वनको न जायँगे, प्राण भले ही छूट जायँ, मै इसी प्रकार पडी रहूँगी'' ॥ ७९-८० ॥

तब कुब्जा यह समझाकर कि 'हे कल्याणि ! तुम नि सन्देह ऐसा ही करना, इससे अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा—अपने घर चली गयी और कैकेयीने भी वैसा ही किया ॥ ८१ ॥

सच है, कोई पुरुष अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुका भक्त अथवा विद्या-विवेक-सम्पन्न भी क्यो न हो, यदि निरन्तर अत्यन्त पापबुद्धि दुष्ट पुरुषोका सङ्ग करेगा तो अवश्य ही क्रमश उन्हीकी बुद्धिसे प्रभावित होकर उन्हीके समान हो जायगा ॥ ८२ ॥ इसलिये सदा ही दुष्ट पुरुषोका सङ्ग छोडना चाहिये, क्योकि दु सङ्गसे पुरुष इस राजकन्या (कैकेयी) के समान ही पुरुषार्थच्युत हो जाता है ॥ ८३ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अयोध्याकाण्डे द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

★

तृतीय सर्ग

राजा दशरथका कैकेयीको वर देना

श्रीमहादेव उवाच

ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात्।
आदिश्य मन्त्रिप्रकृती सानन्दो गृहमाविशत्॥ १ ॥

तत्रादृष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदिति विह्वलः।
या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना॥ २ ॥

हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते।
इत्यात्मन्येव सञ्चिन्त्य मनसातिविदूयता॥ ३ ॥

पप्रच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा।
नायाति मां यथापूर्वं मत्प्रिया प्रियदर्शना॥ ४ ॥

ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे।
कारणं तत्र देव त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि॥ ५ ॥

इत्युक्तो भयसन्त्रस्तो राजा तस्याः समीपगः।
उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन्वै पाणिनाब्रवीत्॥ ६ ॥

किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च।
मां त्वं खेदयसे भीरु यतो मां नावभाषसे॥ ७ ॥

अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा।
किमर्थं ब्रूहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम्॥ ८ ॥

को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा।
स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः॥ ९ ॥

ब्रूहि देवि यथा प्रीतिस्तदवश्यं ममाग्रतः।
तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात्॥ १० ॥

जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मां स्ववशे स्थितम्।
तथापि मां खेदयसे वृथा तव परिश्रमः॥ ११ ॥

ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियङ्करम्।
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम्॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर महाराज दशरथने रामचन्द्रजीके अभ्युदयके लिये प्रजावर्ग और मन्त्रियोको (माङ्गलिक कार्योके लिये) आज्ञा देकर आनन्दपूर्वक अपने रनिवासमे प्रवेश किया॥ १॥ वहाँ अपनी प्रिया कैकेयीको न देखकर वे अत्यन्त विह्वल होकर मन-ही-मन कहने लगे, 'क्या कारण है, जो पहले अपने महलमे घुसते ही सदा हँसती हुई मेरे सामने आती थी वह सुमुखी आज दिखायी ही नही दे रही है?' अपने चित्तमे अत्यन्त दुःख मानकर इसी प्रकार सोचते-सोचते॥ २-३॥ उन्होने दासियोसे पूछा—'आज तुम्हारी शुभलक्षणा स्वामिनी कहाँ है? वह प्रियदर्शना प्रिया आज पूर्ववत् मेरे सामने क्यो नही आती?'॥ ४॥

दासियोने कहा—"देव! कारण तो मालूम नही, किन्तु आज वे कोप-भवनमे गयी हुई है, आप स्वय ही वहाँ जाकर सब हाल जान लीजिये"॥ ५॥

दासियोके इस प्रकार कहनेपर राजा भयभीत होकर उसके पास गये और वहाँ बैठकर उसके शरीरपर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए बोले—॥ ६॥ "अयि भीरु! आज पलग आदिको छोडकर इस प्रकार पृथिवीपर क्यो पडी हो? तुम हमसे कुछ बोलती नही हो, इसमे हमे बडा खेद हो रहा है॥ ७॥ समस्त आभूषण छोडकर तुम मलिन वस्त्र पहने हुए पृथिवीपर क्यो पडी हो? तुम्हारी जो इच्छा हो सो कहो, मैं सब पूर्ण करूँगा॥ ८॥ तुम्हारा अनिष्ट करनेवाला कौन है? वह स्त्री हो अथवा पुरुष अवश्य मेरे दण्डका पात्र होगा। यही नही, उसका वध भी किया जा सकता है॥ ९॥ हे देवि! जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता हो वह मुझसे अवश्य कहो। वह कार्य अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी मैं इसी समय एक क्षणमे ही पूरा कर दूँगा॥ १०॥ तुम मेरे हृदयको जानती ही हो, मैं तुम्हारा अत्यन्त प्रिय और तुम्हारे वशीभूत हूँ। फिर भी तुम मुझे खिन्न करती हो? तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ है॥ ११॥ बताओ, तुम्हारा प्रिय करनेवाले किस कगालको मै धनी कर दूँ अथवा तुम्हारे अप्रियकारी किस धनपतिको एक

ब्रूहि क वा वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यते ।
किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ॥ १३ ॥

मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचन ।
तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धित तत्करोम्यहम् ॥ १४ ॥

इति ब्रुवाण राजान शपन्त राघवोपरि ।
शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजान प्रत्यभाषत ॥ १५ ॥

यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि शपथ कुरुषे यदि ।
याच्ञा मे सफला कर्तु शीघ्रमेव त्वमर्हसि ॥ १६ ॥

पूर्व देवासुरे युद्धे मया त्व परिरक्षित ।
तदा वरद्वय दत्त त्वया मे तुष्टचेतसा ॥ १७ ॥

तद्द्वय न्यासभूत मे स्थापित त्वयि सुव्रत ।
तत्रैकेन वरेणाशु भरत मे प्रिय सुतम् ॥ १८ ॥

एभि सभृतसभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय ।
अपरेण वरेणाशु रामो गच्छतु दण्डकान् ॥ १९ ॥

मुनिवेषधर श्रीमान् जटावल्कलभूषण ।
चतुर्दश समास्तत्र कन्दमूलफलाशन ॥ २० ॥

पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम् ।
प्रभाते गच्छतु वन रामो राजीवलोचन ॥ २१ ॥

यदि किञ्चिद्विलम्बेत प्राणास्त्यक्ष्ये तवाग्रत ।
भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम् ॥ २२ ॥

श्रुत्वैतद्दारुण वाक्य कैकेय्या रोमहर्षणम् ।
निपपात महीपालो वज्राहत इवाचल ॥ २३ ॥

शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया ।
दु स्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तविभ्रम ॥ २४ ॥

इत्यालोक्य पुर पत्नीं व्याघ्रीमिव पुर स्थिताम् ।
किमिद भाषसे भद्रे मम प्राणहर वच ॥ २५ ॥

राम कमपराध ते कृतवान्कमलेक्षण ।
ममाग्रे राघवगुणान्वर्णयस्यनिश शुभान् ॥ २६ ॥

क्षणमे ही कगाल बना दूँ ? ॥ १२ ॥ बताओ, किस अवध्यको मार डालूँ और किस वध्यको छोड दूँ। हे प्रिये ! इस विषयमे और अधिक क्या कहूँ, मै तुम्हे अपने प्राण भी दे सकता हूँ ॥ १३ ॥ कमलनयन राम मुझे प्राणोसे भी अधिक प्रिय है। मै उन्हीकी शपथ करके कहता हूँ कि तुम्हे जो कुछ प्रिय हो मै वही करूँगा" ॥ १४ ॥

महाराज दशरथके रामकी सौगन्ध खाकर इस प्रकार कहनेपर कैकेयीने धीरे-धीरे अपने आँसू पोछकर राजासे कहा— ॥ १५ ॥ "राजन् ! यदि आप सत्यप्रतिज्ञ है और शपथ भी करते है तो शीघ्र ही मै जो कुछ माँगूँ उसे सफल कर देना चाहिये ॥ १६ ॥ पूर्वकालमे देवासुर-सग्राममे मैने आपकी रक्षा की थी। उस समय प्रसन्नचित्त होकर आपने मुझे दो वर देनेको कहा था ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! मैने वे दोनो वर आपके पास धरोहरके रूपमे रख दिये थे। अब उनमेसे एक वरसे तो तुरत ही मेरे प्रिय पुत्र भरतको इस एकत्रित की हुई सामग्रीसे युवराज-पदपर अभिषिक्त कीजिये और दूसरेसे तुरत ही राम दण्डक-वनको चले जायँ ॥ १८-१९ ॥ वहाँ श्रीमान् रामको जटा-वल्कलादि धारणकर कद-मूल-फल खाते हुए मुनिवेषमे चौदह वर्षतक रहना चाहिये ॥ २० ॥ उसके पश्चात् अपनी इच्छासे चाहे वे अयोध्यामे लौट आवे अथवा वनहीमे रहे, किन्तु कमलनयन राम कल सबेरे ही अवश्य वनको चले जायँ ॥ २१ ॥ यदि इसमे कुछ देरी होगी तो आपके सामने ही मै अपने प्राण छोड दूँगी। आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिये, मेरा प्रिय कार्य बस यही है" ॥ २२ ॥

कैकेयीके ऐसे रोमाञ्चकारी कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ वज्राहत पर्वतके समान गिर पडे ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् धीरे-धीरे नेत्र खोलकर अति भयपूर्वक आँसू पोछे और मन-ही-मन कहने लगे—'मैने यह कोई दु स्वप्न देखा है या मेरे चित्तको भ्रम हो गया है ?" ॥ २४ ॥

इसी समय अपने सामने सिहिनीके समान बैठी हुई रानी कैकेयीको देखकर कहने लगे—"हे भद्रे ! मेरे प्राणोको हरनेवाले तुम ये क्या वचन बोल रही हो ॥ २५ ॥ कमलनयन रामने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? तुम तो अहर्निश मेरे सामने रामके शुभ गुण गाया करती

कौसल्या मा सम पश्यन् शुश्रूषा कुरुते सदा ।
इति ब्रुवन्ती त्व पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा ॥ २७ ॥

राज्य गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे ।
अनुगृह्णीष्व मा वामे रामान्नास्ति भय तव ॥ २८ ॥

थी ॥ २६ ॥ तुम तो पहले कहा करती थी कि 'राम मुझे और कौसल्याको समान जानकर सदा ही मेरी सेवा किया करते है। फिर इस समय तुम यह उलटी बात कैसे कह रही हो ? ॥ २७ ॥ तुम अपने पुत्रके लिये राज्य ले लो किन्तु रामको घर ही रहने दो। हे वामे ! तुम मुझपर कृपा करो, रामसे तुम्हे कोई भय नही है'' ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्ष पादयोर्निपपात ह ।
कैकेयी प्रत्युवाचेद सापि रक्तान्तलोचना ॥ २९ ॥

राजेन्द्र किं त्व भ्रान्तोऽसि उक्त तद्भाषसेऽन्यथा ।
मिथ्या करोषि चेत्स्वीय भाषित नरको भवेत् ॥ ३० ॥

वन न गच्छेद्यदि रामचन्द्र
प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्त ।
उद्बन्धन वा विषभक्षण वा
कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाहम् ॥ ३१ ॥

सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके
विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु ।
रामोपरि त्व शपथ च कृत्वा
मिथ्याप्रतिज्ञो नरक प्रयाहि ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर महाराज दशरथ नेत्रोमे जल भरकर कैकेयीके चरणोमे गिर पडे। तब उस कैकेयीने आँखे लाल करके यो कहा— ॥ २९ ॥ ''राजेन्द्र ! क्या तुम्हारी बुद्धिमे भ्रम हो गया है जो अपने कथनके विपरीत बोल रहे हो, याद रखो यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञा भग कर दी तो तुम्हे नरक भोगना पडेगा ॥ ३० ॥ सुनो, यदि कल प्रात काल ही मृगचर्म और वल्कल-वस्त्र धारणकर राम वनको न गये तो मै तुम्हारे सामने ही फाँसी लगाकर या विष खाकर मर जाऊँगी ॥ ३१ ॥ तुम ससारमे सभी सभाओमे 'मै सत्यप्रतिज्ञ हूँ' ऐसा कहकर लोगोको धोखेमे डाला करते हो, अब तुम रामकी शपथ करके की हुई प्रतिज्ञाको भी तोड रहे हो, अत तुम्हे नरकमे जाना पडेगा'' ॥ ३२ ॥

इत्युक्त प्रियया दीनो मग्नो दु खार्णवे नृप ।
मूर्च्छित पतितो भूमौ विसज्ञो मृतको यथा ॥ ३३ ॥

एव रात्रिर्गता तस्य दु खात्सवत्सरोपमा ।
अरुणोदयकाले तु बन्दिनो गायका जगु ॥ ३४ ॥

निवारयित्वा तान् सर्वान्कैकेयी रोषमास्थिता ।
तत प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिता ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या ऋषय कन्यकास्तथा ।
छत्र च चामर दिव्य गजो वाजी तथैव च ॥ ३६ ॥

अन्याश्च वारमुख्या या पौरजानपदास्तथा ।
वसिष्ठेन यथाज्ञप्त तत्सर्वं तत्र सस्थितम् ॥ ३७ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रा न लेभिरे ।
कदा द्रक्ष्यामहे राम पीतकौशेयवाससम् ॥ ३८ ॥

अपनी प्रियाके ऐसे कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ दु ख-समुद्रमे डूबकर बडे व्याकुल हो गये और मृतकके समान मूर्च्छित तथा सज्ञाशून्य होकर पृथिवीपर गिर पडे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अत्यन्त दु खके कारण उनकी वह रात्रि एक वर्षके समान बीती। इधर अरुणोदय होते ही गायक और बन्दीजन स्तुतिगान करने लगे ॥ ३४ ॥ किन्तु कैकेयी उन सबको रोककर क्रोधसे बैठी हुई थी। तदनन्तर प्रात काल होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋषिगण, कन्याएँ, दिव्य छत्र और चँवर तथा हाथी और घोडे आदि सभी अभिषेकोपयोगी वस्तुएँ मध्यद्वारपर उपस्थित की गयी ॥ ३५-३६ ॥ इनके अतिरिक्त वसिष्ठजीके आज्ञानुसार मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ तथा पुरवासी और जनपदवासी भी वहाँ उपस्थित हो गये ॥ ३७ ॥ उस रात स्त्री, बालक और वृद्ध किसीको भी नीद नही आयी। सभीको यह चटपटी लगी रही कि हम रेशमी पीताम्बर पहने भगवान् रामको कब देखेगे ? ॥ ३८ ॥

सर्वाभरणसम्पन्न किरीटकटकोज्ज्वलम्।
कौस्तुभाभरण श्याम कन्दर्पशतसुन्दरम्॥ ३९॥

अभिषिक्त समायात गजारूढ स्मिताननम्।
श्वेतच्छत्रधर तत्र लक्ष्मण लक्षणान्वितम्॥ ४०॥

राम कदा वा द्रक्ष्याम प्रभात वा कदा भवेत्।
इत्युत्सुकधिय सर्वे बभूवु पुरवासिन॥ ४१॥

नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थ चेति चिन्तयन्।
सुमन्त्र शनकै प्रायाद्यत्र राजावतिष्ठते॥ ४२॥

वर्धयन् जयशब्देन प्रणमञ्शिरसा नृपम्।
अतिखिन्न नृप दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत॥ ४३॥

देवि कैकेयि वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा।
तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रा न लब्धवान्॥ ४४॥

राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन्।
प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते।
राममानय शीघ्र त्व राजा द्रष्टुमिहेच्छति॥ ४५॥

अश्रुत्वा राजवचन कथ गच्छामि भामिनि।
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्य राजा मन्त्रिणमब्रवीत्॥ ४६॥

सुमन्त्र राम द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्।
इत्युक्तस्त्वरित गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम्॥ ४७॥

अवारित प्रविष्टोऽथ त्वरित राममब्रवीत्।
शीघ्रमागच्छ भद्र ते राम राजीवलोचन॥ ४८॥

पितुर्गेह मया सार्धं राजा त्वा द्रष्टुमिच्छति।
इत्युक्तो रथमारुह्य सम्भ्रमात्त्वरितो ययौ॥ ४९॥

राम सारथिना सार्ध लक्ष्मणेन समन्वित।
मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वित॥ ५०॥

पितु समीप सङ्गम्य ननाम चरणौ पितु।
राममालिङ्गितु राजा समुत्थाय ससम्भ्रम॥ ५१॥

जो समस्त आभूषणोसे सुसज्जित, उज्ज्वल किरीट और कटक पहने हुए है तथा कौस्तुभमणिसे विभूषित और सैकडो कामदेवोके समान सुन्दर श्यामवर्ण है एव सर्व-सुलक्षण-सम्पन्न श्रीलक्ष्मणजीने जिनके ऊपर श्वेत छत्र लगा रखा है ऐसे श्रीरामको राज्याभिषेकके अनन्तर मन्द मुसकानके सहित हाथीपर चढकर आते हुए हम कब देखेगे ? वह मङ्गलप्रभात कब होगा ? इस प्रकार सभी पुरवासियोका चित्त अति उत्कण्ठित हो रहा था॥ ३९—४१॥

इसी समय मन्त्रिवर सुमन्त्र यह सोचकर कि 'महाराज अभीतक कैसे नही उठे' धीरेसे जहाँ राजा दशरथ थे वहाँ गये॥ ४२॥ वहाँ पहुँचकर उन्होने जय-जयकार कर राजाको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उन्हे अत्यन्त खिन्न देखकर कैकेयीसे पूछा—॥ ४३॥ "देवि कैकेयि! आपका अभ्युदय हो, कहिये आज महाराज अनमने कैसे दिखायी देते है?" इसपर कैकेयीने कहा—"आज महाराजको रात्रिमे बिलकुल नीद नही आयी॥ ४४॥ रात्रिभर रामका चिन्तन करते हुए 'राम, राम, राम' ही रटते रहे है। इस प्रकार जागते रहनेके कारण ही राजा कुछ अस्वस्थ-से दिखायी देते है। महाराज रामको यहाँ देखना चाहते है, इसलिये तुम शीघ्र ही उन्हे लिवा लाओ"॥ ४५॥

भामिनि! महाराजकी आज्ञा पाये बिना मै कैसे जा सकता हूँ? मन्त्रीका यह वचन सुनकर महाराज बोले—॥ ४६॥ "सुमन्त्र! मै मनोहरमूर्ति रामको देखूँगा। तुम उन्हे शीघ्र ही ले आओ।" राजाके ऐसा कहते ही सुमन्त्र तुरत रामके महलको गये॥ ४७॥ और बिना रोक-टोकके तुरत भीतर जाकर रामसे कहा— "कमलनयन राम! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शीघ्र ही मेरे साथ पिताजीके घर चलो, महाराज तुम्हे देखना चाहते है।" यह सुनते ही राम चकित-से होकर तुरत ही रथपर चढकर चले॥ ४८-४९॥ सारथी और लक्ष्मणके सहित भगवान् रामने मध्यद्वारपर विराजमान वसिष्ठादि गुरुजनोका केवल दर्शनमात्रसे ही सत्कार कर जल्दीसे पिताजीके पास पहुँच उनके चरणोमे प्रणाम किया। उस समय रामको गले लगानेके लिये ज्यो ही उठकर महाराज दशरथने आवेगके साथ हाथ बढाये कि वे बीचहीमे

बाहू प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह।
हाहेति रामस्तं शीघ्रमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत्॥ ५२॥

राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चुक्रुशुः सर्वयोषितः।
किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत्॥ ५३॥

रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम्।
एवं पृच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत्॥ ५४॥

त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये।
किञ्चित्कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम्॥ ५५॥

कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम्।
राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम सन्तुष्टचेतसा॥ ५६॥

त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वां लज्जते नृपः।
सत्यपाशेन सम्बद्धं पितरं त्रातुमर्हसि॥ ५७॥

पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात्त्रायते पिता।
रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा॥ ५८॥

व्यथितः कैकेयीं प्राह किं मामेवं प्रभाषसे।
पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम्॥ ५९॥

सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्।
अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः॥ ६०॥

उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः।
उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते॥ ६१॥

अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम।
सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते॥ ६२॥

इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे।
राम त्वदभिषेकार्थं सम्भाराः सम्भृताश्च ये॥ ६३॥

तैरेव भरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियो मम।
अपरेण वरेणाशु चीरवासा जटाधरः॥ ६४॥

वनं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया।
चतुर्दश समास्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः॥ ६५॥

दुःखपूर्वक 'हा राम! हा राम!' कहते हुए गिर पड़े। तब रामचन्द्रजीने हाहाकार करते हुए अति शीघ्रतासे उन्हें गले लगाकर अपनी गोदमें बैठा लिया॥ ५०—५२॥

'महाराजको मूर्च्छित देखकर रनिवासकी समस्त महिलाएँ रोने लगीं। तब यह सोचकर कि 'यह रुदन क्यों हो रहा है?' वहाँ वसिष्ठजी भी चले आये॥ ५३॥ भगवान् रामने कैकेयीसे पूछा—"महाराजके इस दुःखका क्या कारण है?" उनके इस प्रकार पूछनेपर कैकेयी बोली— ॥ ५४॥ "हे राम! महाराजके इस दुःखके कारण तुम्हीं हो, तुम्हें उनके दुःखके शान्त करनेके लिये उनका कुछ प्रिय कार्य करना होगा॥ ५५॥ तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, महाराजको भी सत्यवादी बनाओ। उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये हैं॥ ५६॥ किन्तु उनकी सफलता तुम्हारे ही अधीन है। महाराजको तो तुमसे कहनेमें संकोच मालूम होता है, किन्तु तुम्हें सत्यपाशमें बँधे हुए अपने पिताजीकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये॥ ५७॥ क्योंकि 'पुत्र' शब्दका अर्थ ही यह है कि जो पिताकी नरकसे रक्षा करता है।'

कैकेयीकी बातें सुनकर रामने मानो शूलसे विद्ध हुएके समान व्यथित होकर कहा—"मातः! आज हमसे ऐसी बातें क्यों करती हो? पिताजीके लिये मैं जीवन दे सकता हूँ, भयंकर विष पी सकता हूँ॥ ५८-५९॥ और सीता, कौसल्या तथा राज्यको भी छोड़ सकता हूँ। जो पुत्र पिताकी आज्ञाके बिना ही उनका अभीष्ट कार्य करता है वह उत्तम है॥ ६०॥ जो पिताके कहनेपर करता है वह मध्यम होता है और जो कहनेपर भी नहीं करता है वह पुत्र तो विष्ठाके समान है॥ ६१॥ अतः पिताजीने मेरे लिये जो कुछ आज्ञा की है उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा, यह सर्वथा सत्य है, राम दो बात कभी नहीं कहता"॥ ६२॥

रामकी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर कैकेयीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया, "हे राम! तुम्हारे अभिषेकके लिये जो कुछ सामग्री एकत्रित की गयी है॥ ६३॥ उसके द्वारा निश्चय ही मेरे प्रिय पुत्र भरतका अभिषेक होना चाहिये। (यही मेरा प्रथम वर है।) दूसरे वरके अनुसार पिताकी आज्ञासे आज तुरत ही तुम वल्कल-वस्त्र और जटा धारणकर वनको जाओ और वहाँ मुनिजनोचित भोजन करते हुए

एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि ।
राजा तु लज्जते वक्तुं त्वामेव रघुनन्दन ॥ ६६ ॥

श्रीराम उवाच

भरतस्यैव राज्यं स्यादहं गच्छामि दण्डकान् ।
किन्तु राजा न वक्तीह मां न जानेऽत्र कारणम् ॥ ६७ ॥

श्रुत्वैतद्रामवचनं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम् ।
प्राह राजा दशरथो दुःखितो दुःखितं वचः ॥ ६८ ॥

स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ।
निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ॥ ६९ ॥

एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद्रघुनन्दन ।
इत्युक्त्वा दुःखसन्तप्तो विललाप नृपस्तदा ॥ ७० ॥

हा राम हा जगन्नाथ हा मम प्राणवल्लभ ।
मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥ ७१ ॥

इति रामं समालिङ्ग्य मुक्तकण्ठो रुरोद ह ।
विमृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना ॥ ७२ ॥

आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः ।
किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शासतु मेऽनुजः ॥ ७३ ॥

अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम् ।
राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं मम राजन्वने सतः ॥ ७४ ॥

त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति ।
कैकेय्याश्च प्रियो राजन्वनवासो महागुणः ॥ ७५ ॥

इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृज्ज्वरः ।
सम्भाराश्चोपह्रियन्तामभिषेकार्थमाहृताः ॥ ७६ ॥

मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम् ।
आगत्य पादौ वन्दित्वा तव यास्ये सुखं वनम् ॥ ७७ ॥

इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ ।
कौसल्यापि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात् ॥ ७८ ॥

चौदह वर्षतक रहो ॥ ६४-६५ ॥ बस, तुम्हारे पिताका यही कार्य है, जो तुम्हे करना चाहिये । किन्तु राजा इन सब बातोको तुमसे कहनेमे सकोच करते है'' ॥ ६६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—माता ! भरत आनन्दसे यह राज्य भोगे और मै भी अभी दण्डकारण्यको जाता हूँ। किन्तु इसका कारण मालूम नही होता कि महाराज मुझसे क्यो नही कहते ? ॥ ६७ ॥

रामके ये वचन सुनकर और उन्हे अपने सामने बैठे देखकर दुःखातुर महाराज दशरथने इस प्रकार अति दुःखभरे वचन कहे— ॥ ६८ ॥ ''राम ! मुझ स्त्रीपरवश, भ्रान्तचित्त, कुमार्गगामी पापात्माको बाँधकर यह राज्य ले लो, इससे तुम्हे कोई पाप न लगेगा ॥ ६९ ॥ हे रघुनन्दन ! ऐसा होनेपर मुझे भी असत्य स्पर्श न करेगा ।'' ऐसा कह राजा दशरथ दुःखातुर होकर विलाप करने लगे ॥ ७० ॥ 'हा राम ! हा जगन्नाथ ! हा प्राणप्यारे ! मुझे छोडकर तुम घोर वनमे जाना कैसे उचित समझ रहे हो ?' ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर उन्होने रामको गले लगा लिया और जी खोलकर रोने लगे । तब रामने हाथमे जल लेकर पिताके आँसू पोछे ॥ ७२ ॥ और नीतिकुशल रामजीने धीरे-धीरे उन्हे ढाढस बँधाया । वे कहने लगे—'प्रभो ! यदि मेरे छोटे भाई भरत राज्यशासन करे तो इसमे दुःखकी क्या बात है ? ॥ ७३ ॥ मै भी इस प्रतिज्ञाका पालन कर फिर आपके पास अयोध्या लौट ही आऊँगा । और हे राजन् ! वनमे रहनेसे तो मुझे राज्यसे भी करोडगुना सुख होगा ॥ ७४ ॥ इसमे आपके सत्यकी रक्षा होगी, देवताओका कार्य सिद्ध होगा और कैकेयीका भी हित होगा, अतः हे राजन् ! वनवासमे सब प्रकार महान् गुण है ॥ ७५ ॥ अब मै शीघ्र ही जाना चाहता हूँ, माता कैकेयीकी हार्दिक व्यथा शान्त हो । अभिषेकके लिये एकत्रित की हुई यह सामग्री अलग रख दी जाय ॥ ७६ ॥ माता कौसल्याको सान्त्वना देकर और जानकीको समझा-बुझाकर मै अभी आता हूँ और आपके चरणोकी वन्दना कर आनन्दपूर्वक वनको जाता हूँ ॥ ७७ ॥

ऐसा कह उन्होने पिताकी परिक्रमा की और मातासे मिलनेके लिये आये । इस समय माता कौसल्या रामके मङ्गलके लिये श्रीविष्णुभगवान्की पूजा कर रही

होम च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्।
ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ॥ ७९ ॥

अन्त स्थमेकं घनचित्प्रकाशं
निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम्।
विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे
सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥ ८० ॥

थी ॥ ७८ ॥ उन्होने कुछ पहले हवन कराके ब्राह्मणोको बहुत-सा धन दिया था और इस समय वह मौन धारणकर एकाग्रचित्तसे श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान कर रही थी ॥ ७९ ॥ अपने हृदयमे अन्तर्यामी, चिद्घनस्वरूप तेजोमय, निरतिशयस्वरूप, सदानन्दमय भगवान् विष्णुका ध्यान करती रहनेके कारण उन्होने श्रीरामचन्द्रजीको नही देख पाया ॥ ८० ॥



इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥



चतुर्थ सर्ग

भगवान् रामका मातासे विदा होना तथा सीता और लक्ष्मणके सहित वनगमनकी तैयारी करना

श्रीमहादेव उवाच

तत सुमित्रा दृष्ट्वैनं रामं राज्ञीं ससम्भ्रमा।
कौसल्यां बोधयामास रामोऽयं समुपस्थित ॥ १ ॥

श्रुत्वैव रामनामैषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता।
रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥ २ ॥

मूर्ध्न्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि।
भुङ्क्ष्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दित ॥ ३ ॥

राम प्राह न मे मातर्भोजनावसर कृत।
दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्य निश्चित ॥ ४ ॥

कैकेयीवरदानेन सत्यसन्ध पिता मम।
भरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक्।
आगमिष्ये पुन शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा सहसोद्विग्ना मूर्च्छिता पुनरुत्थिता।
आह रामं सुदु खार्ता दु खसागरसम्प्लुता ॥ ७ ॥

यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि।
त्वद्विहीना क्षणार्द्धं वा जीवितं धारये कथम् ॥ ८ ॥

यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्न कुत्रचित्।
तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणात्प्रियं सुतम् ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! तब महारानी सुमित्राने रामको देखकर सम्भ्रमपूर्वक महारानी कौसल्याको चेत कराकर बताया कि राम खडे हुए है ॥ १ ॥ रामका नाम सुनते ही उनकी बहिर्दृष्टि हुई और उन्होने विशालनयन रामको देख गले लगाकर गोदमे बैठा लिया ॥ २ ॥ तथा उनका सिर सूँघकर उनके नील कमल-सदृश श्याम शरीरपर हाथ फेरा और कहा—"बेटा! भूख लगी होगी कुछ मिष्टान्न खा लो" ॥ ३ ॥

रामजी बोले—"माता! मुझे भोजन करनेका समय नही है, क्योकि आज मेरे लिये यह समय शीघ्र ही दण्डकारण्य जानेके लिये निश्चित किया गया है ॥ ४ ॥ मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिताजीने माता कैकेयीको वर देकर भरतका राज्य और मुझे अति उत्तम वनवास दिया है ॥ ५ ॥ वहाँ मुनिवेषसे चौदह वर्ष रहकर मै शीघ्र ही लौट आऊँगा, आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करे" ॥ ६ ॥

अचानक ऐसी बात सुनकर माता कौसल्या दु खसे अचेत हो गयी और फिर चेत होनेपर दु ख-सागरमे उछलती-डूबती दु खातुर होकर रामसे कहने लगी ॥ ७ ॥ "राम! यदि सचमुच ही तुम वनको जाते हो तो मुझे भी साथ ले चलो, तुम्हारे बिना मै आधे क्षण भी कैसे जीवित रह सकती हूँ ॥ ८ ॥ जिस प्रकार गौ अपने अल्पवयस्क बछडेको छोडकर अन्यत्र नही रह सकती, उसी प्रकार मै भी तुझ अपने प्राणप्रिय पुत्रको नही छोड सकती ॥ ९ ॥

भरताय प्रसन्नश्चेद्राज्य राजा प्रयच्छतु ।
किमर्थ वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम् ॥ १० ॥

कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्व वा प्रयच्छतु ।
त्वया किमपराद्ध हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ॥ ११ ॥

पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका तत ।
पित्राऽऽज्ञप्तो वन गन्तु वारयेयमह सुतम् ॥ १२ ॥

यदि गच्छसि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य नृपवाक्यत ।
तदा प्राणान्परित्यज्य गच्छामि यमसादनम् ॥ १३ ॥

लक्ष्मणोऽपि तत श्रुत्वा कौसल्यावचन रुषा ।
उवाच राघव वीक्ष्य दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ १४ ॥

उन्मत्त भ्रान्तमनस कैकेयीवशवर्तिनम् ।
बद्ध्वा निहन्मि भरत तद्बन्धून्मातुलानपि ॥ १५ ॥

अद्य पश्यन्तु मे शौर्य लोकान्प्रदहत पुरा ।
राम त्वमभिषेकाय कुरु यत्नमरिन्दम ॥ १६ ॥

धनुष्पाणिरह तत्र निहन्या विघ्नकारिण ।
इति ब्रुवन्त सौमित्रिमालिङ्ग्य रघुनन्दन ॥ १७ ॥

शूरोऽसि रघुशार्दूल ममात्यन्तहिते रत ।
जानामि सर्व ते सत्य किन्तु तत्समयो न हि ॥ १८ ॥

यदिद दृश्यते सर्व राज्य देहादिक च यत् ।
यदि सत्य भवेत्तत्र आयास सफलश्च ते ॥ १९ ॥

भोगा मेघवितानस्थविद्युल्लेखेव चञ्चला ।
आयुरप्यग्निसन्तप्तलोहस्थजलबिन्दुवत् ॥ २० ॥

यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते ।
तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान् ॥ २१ ॥

करोति दु खेन हि कर्मतन्त्र
शरीरभोगार्थमहर्निश नर ।
देहस्तु भिन्न पुरुषात्समीक्ष्यते
को वात्र भोग पुरुषेण भुज्यते ॥ २२ ॥

यदि राजा भरतसे प्रसन्न है तो उन्हे राज्य भले ही दे, परन्तु तुझ प्रिय पुत्रको वनवासकी आज्ञा क्यो देते है ॥ १० ॥ कैकेयीको वर देकर चाहे महाराज अपना सर्वस्व दे डाले (इसमे कोई आपत्ति नही), किन्तु तुमने राजा अथवा कैकेयीका क्या बिगाडा है ? ॥ ११ ॥ हे राम ! जिस प्रकार पिता तुम्हारे गुरु है उसी प्रकार मै भी तो उनसे अधिक तुम्हारी गुरु हूँ ! यदि पिताने तुमसे वन जानेको कहा है तो मै तुम्हे रोकती हूँ ॥ १२ ॥ यदि मेरे वाक्यका उल्लङ्घन कर तुम राजाकी आज्ञासे वनको चले जाओगे तो मै अपना प्राण छोडकर यमपुरको चली जाऊँगी ॥ १३ ॥

तब लक्ष्मणने भी कौसल्याके वचन सुनकर रामजीकी ओर देखकर रोषसे त्रिलोकीको दग्ध करते हुए-से कहा ॥ १४ ॥ "मै उन्मत्त, भ्रान्तचित्त और कैकेयीके वशवर्ती राजा दशरथको बाँधकर भरतको उनके सहायक मामा आदिके सहित मार डालूँगा ॥ १५ ॥ आज सम्पूर्ण लोकोको दग्ध करनेवाले कालानलके समान मेरे पौरुषको पहले वे सब लोग देख ले। हे शत्रुदमन राम ! आप अभिषेककी तैयारी कीजिये ॥ १६ ॥ उसमे विघ्न उपस्थित करनेवालोको मै हाथमे धनुष-बाण लेकर मार डालूँगा।"

लक्ष्मणजीके इस प्रकार कहनेपर रघुनाथजीने उन्हे गले लगाकर कहा ॥ १७ ॥ "रघुश्रेष्ठ ! तुम बडे शूरवीर और मेरे परम हितकारी हो। तुम जो कुछ कहते हो वह मै सब सत्य मानता हूँ, किन्तु यह उसका समय नही है ॥ १८ ॥ यह जो कुछ राज्य और देह आदि दिखायी देता है वह सब यदि सत्य होता तो अवश्य तुम्हारा परिश्रम सफल होता ॥ १९ ॥ किन्तु ये भोग तो मेघरूपी वितानमे चमकती हुई बिजलीके समान चञ्चल है और आयु अग्निमे तपाये हुए लोहेपर पडी हुई जलकी बूँदके समान क्षणिक है ॥ २० ॥ जिस प्रकार सर्पके मुँहमे पडा हुआ भी मेढक मच्छरोंको ताकता रहता है, उसी प्रकार लोग कालरूप सर्पसे ग्रस्त हुए भी अनित्य भोगोको चाहते रहते है ॥ २१ ॥ कैसा आश्चर्य है कि शरीरके भोगोके लिये ही मनुष्य रात-दिन अति कष्ट सहकर नाना प्रकारकी क्रियाएँ करता रहता है। यदि यह समझ ले कि शरीर आत्मासे भिन्न है तो फिर भला पुरुष कैसे किसी भोगको भोग

पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्ध्वादिसगम ।
प्रपायामिव जन्तूना नद्या काष्ठौघवच्चल ॥ २३ ॥

छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता
तारुण्यमम्बूर्मिवदध्रुव च ।
स्वप्नोपम स्त्रीसुखमायुरल्प
तथापि जन्तोरभिमान एष ॥ २४ ॥

ससृति स्वप्नसदृशी सदा रोगादिसकुला ।
गन्धर्वनगरप्रख्या मूढस्तामनुवर्तते ॥ २५ ॥

आयुष्य क्षीयते यस्मादादित्यस्य गतागतै ।
दृष्ट्वान्येषा जरामृत्यू कथञ्चिन्नैव बुध्यते ॥ २६ ॥

स एव दिवस सैव रात्रिरित्येव मूढधी. ।
भोगाननुपतत्येव कालवेग न पश्यति ॥ २७ ॥

प्रतिक्षण क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् ।
सपत्ना इव रोगौघा शरीर प्रहरन्त्यहो ॥ २८ ॥

जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते ।
मृत्यु सहैव यात्येष समय सम्प्रतीक्षते ॥ २९ ॥

देहेऽहभावमापन्नो राजाह लोकविश्रुत ।
इत्यस्मिन्मनुते जन्तु कृमिविड्भस्मसज्ञिते ॥ ३० ॥

त्वगस्थिमासविण्मूत्ररेतोरक्तादिसयुत ।
विकारी परिणामी च देह आत्मा कथ वद ॥ ३१ ॥

यमास्थाय भवॉल्लोक दग्धुमिच्छति लक्ष्मण ।
देहाभिमानिन सर्वे दोषा प्रादुर्भवन्ति हि ॥ ३२ ॥

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।
नाह देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ॥ ३३ ॥

अविद्या ससृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका ।
तस्माद्यत्न सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभि ।
कामक्रोधादयस्तत्र शत्रव शत्रुसूदन ॥ ३४ ॥

सकता है । ॥ २२ ॥ पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और बन्धु-बान्धवोका सयोग प्याऊपर एकत्रित हुए जीवो अथवा नदी-प्रवाहसे इकट्ठी हुई लकडियोके समान चञ्चल है ॥ २३ ॥ यह निस्सन्देह दिखायी पडता है कि लक्ष्मी छायाके समान चञ्चल, यौवन जल-तरङ्गके समान अनित्य है, स्त्री-सुख स्वप्नके समान मिथ्या और आयु अत्यन्त अल्प है तथापि प्राणियोका इनमे कितना अभिमान है ॥ २४ ॥ यह ससार सदा रोगादि-सकुल तथा स्वप्न और गन्धर्वनगरके समान मिथ्या है, मूढजन ही इसको सत्य मानकर इसका अनुकरण करते है ॥ २५ ॥ नित्य सूर्यके उदय और अस्त होनेसे आयु क्षीण हो रही है तथा नित्य ही दूसरोकी वृद्धावस्था और मृत्यु होती देखी जाती है तो भी मूढ पुरुषको किसी प्रकार चेत नही होता ॥ २६ ॥ नित्यप्रति उसी प्रकार दिन और रात होते हैं किन्तु मूढमति पुरुष भोगोके पीछे ही दौडता है, कालकी गतिको नही देखता ॥ २७ ॥ कच्चे घडेमे भरे हुए जलके समान आयु प्रतिक्षण क्षीण हो रही है और रोग-समूह शत्रुओके समान शरीरको नष्ट करते है ॥ २८ ॥ वृद्धावस्था सिहिनीके समान डराती हुई सामने खडी है और यह मृत्यु भी उसके साथ ही चलती हुई (अन्त) समयकी प्रतीक्षा कर रही है ॥ २९ ॥ किन्तु देहमे अह-भावना करनेवाला जीव इस कृमि, विष्ठा और भस्मरूप शरीरको ही 'मै लोक-प्रसिद्ध राजा हूँ, ऐसा मानता है ॥ ३० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम कुछ सोचकर बताओ कि जिसके आश्रयसे तुम ससारको दग्ध करना चाहते हो वह त्वचा, अस्थि, मास, विष्ठा, मूत्र, शुक्र और रुधिर आदिसे बना हुआ विकारी और परिणामी देह आत्मा किस प्रकार हो सकता है ? हे भाई ! इस देहाभिमानसे युक्त पुरुषमे ही सम्पूर्ण दोष प्रकट हुआ करते है ॥ ३१-३२ ॥ 'मै देह हूँ' इस बुद्धिका नाम ही अविद्या है और 'मै देह नही, चेतन आत्मा हूँ' इसीको विद्या कहते है ॥ ३३ ॥ अविद्या जन्म-मरणरूप ससारकी कारण है और विद्या उसको निवृत्त करनेवाली है, अत मोक्षकामियोको सदा विद्योपार्जनका प्रयत्न करना चाहिये । हे शत्रुदमन ! काम-क्रोध आदि इस

तत्रापि क्रोध एवाल मोक्षविघ्नाय सर्वदा ।
येनाविष्ट पुमान्हन्ति पितृभ्रातृसुहृत्सखीन् ॥ ३५ ॥

क्रोधमूलो मनस्ताप क्रोध ससारबन्धनम् ।
धर्मक्षयकर क्रोधस्तस्मात्क्रोध परित्यज ॥ ३६ ॥

क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी ।
सन्तोषो नन्दनवन शान्तिरेव हि कामधुक् ॥ ३७ ॥

तस्माच्छान्ति भजस्वाद्य शत्रुरेव भवेन्न ते ।
देहेन्द्रियमन प्राणबुद्ध्यादिभ्यो विलक्षण ॥ ३८ ॥

आत्मा शुद्ध स्वयज्योतिरविकारी निराकृति ।
यावद्देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्व नात्मनो विदु ॥ ३९ ॥

तावत्ससारदु खौघै पीड्यन्ते मृत्युसयुता ।
तस्मात्त्व सर्वदा भिन्नमात्मान हृदि भावय ॥ ४० ॥

बुद्ध्यादिभ्यो बहि सर्वमनुवर्तस्व मा खिद ।
भुञ्जन्प्रारब्धमखिल सुख वा दु खमेव वा ॥ ४१ ॥

प्रवाहपतित कार्य कुर्वन्नपि न लिप्यसे ।
बाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव ॥ ४२ ॥

अन्त शुद्धस्वभावस्त्व लिप्यसे न च कर्मभि ।
एतन्मयोदित कृत्स्न हृदि भावय सर्वदा ॥ ४३ ॥

ससारदु खैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन ।
त्वमप्यम्ब मयाऽऽदिष्ट हृदि भावय नित्यदा ॥ ४४ ॥

समागम प्रतीक्षस्व न दु खै पीड्यसे चिरम् ।
न सदैकत्र सवास कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥ ४५ ॥

यथा प्रवाहपतितप्लवाना सरिता तथा ।
चतुर्दशसमासङ्ख्या क्षणार्द्धमिव जायते ॥ ४६ ॥

अनुमन्यस्व मामम्ब दु ख सन्त्यज्य दूरत ।
एव चेत्सुखसवासो भविष्यति वने मम ॥ ४७ ॥

साधनमे विघ्न करनेवाले शत्रु है ॥ ३४ ॥ उनमे भी मोक्षमे विघ्न उपस्थित करनेके लिये तो एकमात्र क्रोध ही पर्याप्त है, जिसका आवेश होनेसे पुरुष पिता, माता, सुहृद् और बन्धुओका भी वध कर डालता है ॥ ३५ ॥ मनके सन्तापका मूल क्रोध ही है और क्रोध ही ससारका बन्धन तथा धर्मका क्षय करनेवाला है । इसलिये तुम क्रोधको छोड दो ॥ ३६ ॥ यह क्रोध महान् शत्रु है, तृष्णा वेतरणी नदी है, सन्तोष नन्दनवन है और शान्ति ही कामधेनु है ॥ ३७ ॥ इसलिये तुम शान्ति धारण करो, इससे (क्रोधरूपी) शत्रुका तुमपर प्रभाव न होगा । आत्मा देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदिसे पृथक् तथा शुद्ध, स्वयप्रकाश, अविकारी और निराकार है । जबतक मनुष्य देह, इन्द्रिय और प्राण आदिसे आत्माकी भिनता नही जानते तबतक वे मृत्युपाशमे बँधकर सासारिक दु ख-समूहसे पीडित होते रहते है । इसलिये तुम सर्वदा अपने हृदयमे बुद्धि आदिसे आत्माको भिन्न अनुभव करो, इस सम्पूर्ण बाह्य व्यवहारका अनुवर्तन करो, और सुख अथवा दु खरूप जैसा प्रारब्ध हो उसीको भोगते हुए चित्तमे खेद न मानो ॥ ३८—४१ ॥ हे रघुपुत्र ! बाहरसे (इन्द्रिय आदि द्वारा) कर्तृत्व प्रकट करते हुए जो कार्य प्रारब्धवश उपस्थित हो उसे करते रहनेसे भी तुम बन्धनमे नही पडोगे ॥ ४२ ॥ भीतरसे राग-द्वेषरहित और शुद्धस्वभाव रहनेके कारण तुम कर्मोसे लिप्त न होगे । मेरे इस सम्पूर्ण कथनपर तुम सर्वदा अपने हृदयमे विचार करो ॥ ४३ ॥ ऐसा करनेसे तुम सम्पूर्ण सासारिक दु खोसे कभी बाधित न होगे । हे मात ! तुम भी मेरे इस कथनपर नित्य विचार करना ॥ ४४ ॥ और मेरे फिर मिलनेकी प्रतीक्षा करती रहना । तुम्हे अधिक काल दु ख न होगा । कर्मबन्धनमे बँधे हुए जीवोका सदा एक ही साथ रहना-सहना नही हुआ करता ॥ ४५ ॥ जैसे नदीके प्रवाहमे पडकर बहती हुई डोगियाँ सदा साथ-साथ ही नही चलती । माता ! यह चौदह वर्षकी अवधि आधे क्षणके समान बीत जायगी । आप अब दु खको दूर करके हमे वन जानेकी अनुमति दीजिये । आपके ऐसा करनेसे मै वनमे सुखपूर्वक रह सकूँगा'' ॥ ४६-४७ ॥

इत्युक्त्वा दण्डवन्मातु पादयोरपतच्चिरम् ।
उत्थाप्याङ्के समावेश्य आशीर्भिरभ्यनन्दयत् ॥ ४८ ॥

सर्वे देवा सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादय ।
रक्षन्तु त्वा सदा यान्त तिष्ठन्त निद्रया युतम् ॥ ४९ ॥

इति प्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुन पुन ।
लक्ष्मणोऽपि तदा राम नत्वा हर्षाश्रुगद्गद ॥ ५० ॥

आह राम मनान्त स्थ सशयोऽद्य त्वया हत ।
यास्यामि पृष्ठतो राम सेवा कर्तु तदादिश ॥ ५१ ॥

अनुगृह्णीष्व मा राम नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।
तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मण याहि माचिरम् ॥ ५२ ॥

प्रतस्थे ता समाधातु गत सीतापतिर्विभु ।
आगत पतिमालोक्य सीता सुस्मितभाषिणी ॥ ५३ ॥

स्वर्णपात्रस्थसलिलै पादौ प्रक्षाल्य भक्तित ।
पप्रच्छ पतिमालोक्य देव किं सेनया विना ॥ ५४ ॥

आगतोऽसि गत कुत्र श्वेतच्छत्र च ते कुत ।
वादित्राणि न वाद्यन्ते किरीटादिविवर्जित ॥ ५५ ॥

सामन्तराजसहित सम्भ्रमान्नागतोऽसि किम् ।
इति स्म सीतया पृष्टो राम सस्मितमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्य दत्त शुभेऽखिलम् ।
अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्र यास्यामि भामिनि ॥ ५७ ॥

अद्यैव यास्यामि वन त्व तु श्वश्रूसमीपगा ।
शुश्रूषा कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिनो वयम् ॥ ५८ ॥

इति ब्रुवन्त श्रीराम सीता भीताब्रवीद्वच ।
किमर्थ वनराज्य ते पित्रा दत्त महात्मना ॥ ५९ ॥

ऐसा कह श्रीरामचन्द्रजी बहुत देरतक दण्डके समान माताके चरणोमे पडे रहे। तदनन्तर माताने उन्हे उठाकर गोदमे बैठा लिया और आशीर्वाद देकर उनकी प्रशसा की ॥ ४८ ॥ वे बोली—"तुम्हारे चलते बैठते अथवा सोते समय गन्धर्वोसहित ब्रह्मा विष्णु और शिव आदिक सम्पूर्ण देवगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा करे" ॥ ४९ ॥

इस प्रकार बारम्बार हृदयसे लगाकर माताने रामको विदा किया। तब लक्ष्मणजीने भी रामजीमे ऑखोमे आनन्दाश्रु भरकर गद्गद वाणीसे कहा—"हे राम ! आपने मेरा आन्तरिक सन्देह दूर कर दिया, अब मै आपकी सवा करनेके लिये आपके पीछे-पीछे चलूँगा। आप इसके लिये आज्ञा दीजिये ॥ ५०-५१ ॥ हे प्रभा ! आप मुझपर कृपा कीजिये, नही तो मै प्राण छाड दूँगा।" तब रघुनाथजीने भी लक्ष्मणसे कहा—'बहुत अच्छा चलो देरी न करो' ॥ ५२ ॥

तदनन्तर सीतापति भगवान् राम सीताजीको समझानेके लिये चले और अपने महलमे पहुँचे। तब मन्द-मुसकानपूर्वक बोलनेवाली श्रीसीताजीने पतिदेवको आते देख एक सुवर्णपात्रमे जल लेकर भक्तिपूर्वक उनके चरण धोये और स्वामीकी ओर देखते हुए पूछा—'देव ! इस समय सेनाके बिना ही आप कैसे आये ह ? आप प्रात काल कहॉ गये थे ? आपका श्वेत छत्र कहॉ ह ? बाजोका बजना क्यो बद हा गया हे और आप किरीटादि राजोचित आभूषणोसे रहित क्यो है ? ॥ ५३—५५ ॥ आप मन्त्री और राजाओके सहित बडे ठाट-बाटमे क्यो नही आये ?"

सीताजीके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकराकर कहा ॥ ५६ ॥ "हे शुभे ! पिताजीने मुझे दण्डकारण्यका सम्पूर्ण राज्य दिया हे अत ह भामिनि ! मैं शीघ्र ही उसका पालन करनेके लिये वहॉ जाऊँगा ॥ ५७ ॥ मै आज ही वनको जाऊँगा, तुम अपनी सासके पास जाकर उनकी सेवा-शुश्रूषामे रहो। मै झूठ नही बोलता" ॥ ५८ ॥

रामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर सीताजीने भयभीत होकर कहा—"आपके महात्मा पिताजीने आपको वनका राज्य क्यो दिया है ?" ॥ ५९ ॥

तामाह रामः कैकेय्यै राजा प्रीतो वरं ददौ ।
भरताय ददौ राज्यं वनवासं ममानघे ॥ ६० ॥

चतुर्दश समास्तत्र वासो मे किल याचितः ।
तया देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः ॥ ६१ ॥

अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विघ्नं कुरु भामिनि ।
श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता ॥ ६२ ॥

अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि ।
इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम् ॥ ६३ ॥

तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम् ।
कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम् ॥ ६४ ॥

राक्षसा घोररूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः ।
सिंहव्याघ्रवराहाश्च सञ्चरन्ति समन्ततः ॥ ६५ ॥

कट्वम्लफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे ।
अपूपानि व्यञ्जनानि विद्यन्ते न कदाचन ॥ ६६ ॥

काले काले फलं वापि विद्यते कुत्र सुन्दरि ।
मार्गो न दृश्यते क्वापि शर्कराकण्टकान्वितः ॥ ६७ ॥

गुहागह्वरसम्बाधं झिल्लीदंशादिभिर्युतम् ।
एवं बहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम् ॥ ६८ ॥

पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिमत् ।
राक्षसादीन्वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात् ॥ ६९ ॥

तस्माद्भद्रे गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मां पुनः ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता ॥ ७० ॥

प्रत्युवाच स्फुरद्वक्त्रा किञ्चित्कोपसमन्विता ।
कथं मामिच्छसे त्यक्तुं धर्मपत्नीं पतिव्रताम् ॥ ७१ ॥

तब रामचन्द्रजीने उनसे कहा—"हे अनघे! महाराजने प्रसन्नतापूर्वक कैकेयीको वर देकर भरतको राज्य और मुझे वनवास दिया है ॥ ६० ॥ देवी कैकेयीने मेरे लिये चौदह वर्षतक वनमें रहना माँगा था, सो सत्यवादी दयालु महाराजने देना स्वीकार कर लिया है ॥ ६१ ॥ अतः हे भामिनि! मैं शीघ्र ही वहाँ जाऊँगा, तुम इसमें किसी प्रकारका विघ्न खड़ा न करना।" रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर सीताजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"पहले मैं वनको जाऊँगी, उसके पीछे आप आना। हे राघव! मुझे छोड़कर आपको वनमें जाना उचित नहीं है" ॥ ६२-६३ ॥

तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर अपनी प्रिया प्रियवादिनी जानकीसे कहा—"मैं तुम्हें अनेकों व्याघ्रादि वन्य-पशुओंसे पूर्ण वनमें कैसे साथ ले चलूँ ॥ ६४ ॥ वहाँ मनुष्योंको खानेवाले भयंकर राक्षस रहते हैं और सब ओर सिंह, व्याघ्र तथा शूकर आदि हिंस्र-जीव फिरते हैं ॥ ६५ ॥ हे सुन्दर कमरवाली! वहाँ भोजनके लिये कड़ुए और खट्टे फल-मूलादि ही मिलते हैं, किसी प्रकारके पूए आदि व्यञ्जन वहाँ कभी नहीं मिलते ॥ ६६ ॥ हे सुन्दरि! वे फल भी सदा नहीं मिलते, किसी-किसी समय कहीं मिलते हैं। उस वनमें कहीं-कहीं तो धूलि और काँटोंसे ढके रहनेके कारण मार्ग भी दिखायी नहीं देता ॥ ६७ ॥ वह दण्डकारण्य ऐसे ही अनेकों दोषोंसे भरा हुआ है। उसमें अनेकों गुफाएँ और गड्ढे हैं तथा वह झिल्ली और डाँसों आदिसे भरा हुआ है ॥ ६८ ॥ ऐसे वनमें शीत, वायु और घाम आदिके समय भी पैदल ही चलना पड़ता है। मुझे सन्देह है कि तुम वनमें राक्षसादिकी भयंकर मूर्ति देखकर तुरंत ही प्राणत्याग कर बैठोगी ॥ ६९ ॥ इसलिये हे भद्रे! तुम घर ही रहो, मुझे शीघ्र ही फिर देख पाओगी।"

रामके ये वचन सुनकर सीताने दुःखातुर होकर कुछ क्रोधसे ओठ कँपाते हुए कहा—"मुझ पतिव्रता धर्मपत्नीको आप घर क्यों छोड़ना चाहते हैं, ॥ ७०-७१ ॥

त्वदनन्यामदोषा मा धर्मज्ञोऽसि दयापर ।
त्वत्समीपे स्थिता राम को वा मा धर्षयेद्वने ॥ ७२ ॥

फलमूलादिक यद्यत्तव भुक्तावशेषितम् ।
तदेवामृततुल्य मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥ ७३ ॥

त्वया सह चरन्त्या मे कुशा काशाश्च कण्टका ।
पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न सशय ॥ ७४ ॥

अह त्वा क्लेशये नैव भवेय कार्यसाधिनी ।
बाल्ये मा वीक्ष्य कश्चिद्वै ज्योति शास्त्रविशारद ॥ ७५ ॥
प्राह ते विपिने वास पत्या सह भविष्यति ।
सत्यवादी द्विजो भूयाद्गमिष्यामि त्वया सह ॥ ७६ ॥

अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मा नय काननम् ।
रामायणानि बहुश श्रुतानि बहुभिर्द्विजै ॥ ७७ ॥

सीता विना वन रामो गत किं कुत्रचिद्वद ।
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ॥ ७८ ॥

यदि गच्छसि मा त्यक्त्वा प्राणास्त्यक्ष्यामि तेऽग्रत ।
इति त निश्चय ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दन ॥ ७९ ॥

अब्रवीद्देवि गच्छ त्व वन शीघ्र मया सह ।
अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च ॥ ८० ॥

ब्राह्मणेभ्यो धन सर्व दत्त्वा गच्छामहे वनम् ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूय भक्तित ॥ ८१ ॥

ददौ गवा वृन्दशत धनानि
वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि ।
कुटुम्बवद्भ्य श्रुतशीलवद्भ्यो
मुदा द्विजेभ्यो रघुवशकेतु ॥ ८२ ॥

अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च ।
रामो मातु सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥ ८३ ॥

स्वकान्त पुरवासिभ्य सेवकेभ्यस्तथैव च ।
पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्य सहस्रश ॥ ८४ ॥

आप धर्मज्ञ और दयालु है, फिर अपनी अनन्यभक्ता और दोषहीना मुझ पत्नीको क्यो छोडते है ? हे राम ! वनमे भी आपके पास रहते हुए मेरा कोई क्या बिगाड सकता है ? ॥ ७२ ॥ जो भी फल-मूलादि आपके खानेसे बचेगे वे ही मेरे लिये अमृतके समान होगे। उनसे सन्तुष्ट होकर मै आनन्दपूर्वक रहूँगी ॥ ७३ ॥ इसमे कोई सन्देह नही कि आपके साथ विचरते हुए मेरे लिये कुश-काश ओर कण्टकादि भी फूलोके बिछौनोके समान होगे ॥ ७४ ॥ मै आपको किसी प्रकारका कष्ट न दूँगी, बल्कि आपके कार्यमे सहायिका होऊँगी। बाल्यावस्थामे एक ज्योतिष-शास्त्रविशारद महात्माने मुझे देखकर कहा था कि तू अपने पतिके साथ वनमे रहेगी। उन ब्राह्मण महोदयका वाक्य सत्य हो, मै अवश्य आपके साथ वनमे चलूँगी ॥ ७५-७६ ॥ एक बात और कहती हूँ, उसे सुनकर आप मुझे वनको ले चलिये। आपने बहुत-से ब्राह्मणोके मुखसे बहुत-सी रामायणे सुनी होगी ॥ ७७ ॥ बताइये, इनमेसे किसीमे भी क्या सीताके बिना रामजी वनको गये है ? अत मै आपकी पूर्णतया सहायिका होकर अवश्य आपके साथ चलूँगी ॥ ७८ ॥ यदि आप मुझे छोडकर चले जायँगे तो मै अभी आपके सामने ही अपने प्राण छोड दूँगी।''

तब रघुनाथजीने सीताका ऐसा दृढ निश्चय देखकर कहा—''देवि ! तुम शीघ्र ही मेरे साथ वनको चलो, ये हार आदि सम्पूर्ण आभूषण वसिष्ठजीकी स्त्री अरुन्धतीको दे दो ॥ ७९-८० ॥ हम अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणोको देकर वनको चलेगे।''

ऐसा कह भगवान् रामने लक्ष्मणजीद्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोको बुलवाया ॥ ८१ ॥ और उन रघुकुलकेतु भगवान् रामने प्रसन्नतापूर्वक सैकडो गोओके झुड, बहुत-सा धन, दिव्य वस्त्र और आभूषण कुटुम्बी तथा विद्वान् और शीलसम्पन्न ब्राह्मणोको दिये ॥ ८२ ॥ सीताजीने अपने मुख्य-मुख्य आभूषण अरुन्धतीजीको दे दिये तथा अपनी माताके सेवकोको भी रामने बहुत-सा धन दिया ॥ ८३ ॥ इसी प्रकार अपने अन्त पुरवासी सेवको, पुरवासियो, देशवासियो तथा ब्राह्मणोको भी उन्होने बहुत-सा धन दिया ॥ ८४ ॥

लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत्।
धनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः ॥ ८५ ॥
रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम्॥ ८६ ॥

श्रीरामः सह सीतया नृपपथे गच्छन् शनैः सानुजः
पौरान् जानपदान्कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन्।
श्यामः कामसहस्रसुन्दरवपुः कान्त्या दिशो भासयन्
पादन्यासपवित्रिताखिलजगत् प्रापालयं तत्पितुः ॥ ८७ ॥

इधर श्रीलक्ष्मणजीने भी अपनी माता सुमित्राको कौसल्याजीको सौंप दिया और आप हाथमें धनुष लेकर रामके सामने आकर खड़े हो गये। तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीता सब महाराज दशरथके पास चले ॥ ८५-८६ ॥ सहस्रों कामदेवोंके समान सुन्दर श्याम शरीरवाले भगवान् राम सीता और छोटे भाई लक्ष्मणके सहित अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए धीरे-धीरे राजमार्गसे चले। उस समय जो पुरवासी और जनपदवासी लोग कुतूहलवश आनन्दमयी दृष्टिसे उनकी ओर देख रहे थे, उनके देखते हुए और अपने चरण-स्पर्शसे सम्पूर्ण संसारको पवित्र करते हुए वे अपने पिताके घर पहुँचे ॥ ८७ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

★

पञ्चम सर्ग

भगवान्‌का वनगमन

श्रीमहादेव उवाच

आयान्तं नागरा दृष्ट्वा मार्गे रामं सजानकिम्।
लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊचुः सर्वे परस्परम्॥ १ ॥

कैकेय्या वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः।
बत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम्॥ २ ॥

स्त्रीहेतोरत्यजत्कामी तस्य सत्यात्मता कुतः।
कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियङ्करम्॥ ३ ॥

विवासयामास कथं क्रूरकर्मातिमूढधीः।
हे जना नात्र वस्तव्यं गच्छामोऽद्यैव काननम्॥ ४ ॥

यत्र रामः सभार्यश्च सानुजो गन्तुमिच्छति।
पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम्॥ ५ ॥

पुम्भिः कदाचिद्दृष्टा वा जानकी लोकसुन्दरी।
सापि पादेन गच्छन्ती जनसङ्घेष्वनावृता॥ ६ ॥

रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः।
गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम्॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—जानकी और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीको मार्गमें आते देख और कैकेयीके वरदानादिका समाचार सुन समस्त नगरवासी दुःखातुर होकर आपसमें कहने लगे—"हाय! कामवश राजा दशरथने अपने सत्यपरायण प्रिय पुत्रको स्त्रीके कारण छोड़ दिया? उसकी सत्यपरायणता कैसे रही? और दुष्टा कैकेयीने भी सत्यवादी और प्रियकारी रामको क्यों वनवास दिया? वह ऐसी क्रूरकर्मा और हतबुद्धि क्यों हो गयी? भाइयो! अब हमें यहाँ न रहना चाहिये, हम भी आज ही वनको चलेंगे, जहाँ स्त्री और छोटे भाईके सहित श्रीराम जाना चाहते हैं। देखो तो, आज जानकीजी पैदल चल रही हैं ॥ १—५ ॥ हाय! जिस त्रिलोकसुन्दरी जानकीको पहले कभी किसी पुरुषने शायद ही देखा हो, वही आज बिना किसी परदेके जनसमूहमें पैदल चल रही है ॥ ६ ॥ भाइयो! इन सर्वलोकैकसुन्दर भगवान् रामकी ओर भी देखो, ये भी आज बिना हाथी-घोड़ेके पैदल ही जा रहे

राक्षसी कैकेयीनाम्नी जाता सर्वविनाशिनी ।
रामस्यापि भवेद्दु ख सीताया पादयानत ॥ ८ ॥

बलवान्विधिरेवात्र पुप्रयत्नो हि दुर्बल ।
इति दु खाकुले वृन्दे साधूना मुनिपुङ्गव ॥ ९ ॥

अब्रवीद्वामदेवोऽथ साधूना सङ्घमध्यग ।
मानुशोचथ राम वा सीता वा वच्मि तत्त्वत ॥ १० ॥

एष राम परो विष्णुरादिनारायण स्मृत ।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥ ११ ॥

असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम् ।
एष मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥ १२ ॥

एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माभूद्विश्वभावन ।
सत्त्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालक ॥ १३ ॥

एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम् ।
एष मत्स्य पुरा भूत्वा भक्त वैवस्वत मनुम् ॥ १४ ॥

नाव्यारोप्य लयस्यान्ते पालयामास राघव ।
समुद्रमथने पूर्व मन्दरे सुतल गते ॥ १५ ॥

अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिं कूर्मरूपी रघूत्तम ।
मही रसातल याता प्रलये सूकरोऽभवत् ॥ १६ ॥

तोलयामास दष्ट्राग्रे ता क्षोणीं रघुनन्दन ।
नारसिह वपु कृत्वा प्रह्लादवरद पुरा ॥ १७ ॥

त्रैलोक्यकण्टक रक्ष पाटयामास तन्नखै ।
पुत्रराज्य हृत दृष्ट्वा ह्यदित्या याचित पुरा ॥ १८ ॥

वामनत्वमुपागम्य याच्ञया चाहरत्पुन ।
दुष्टक्षत्रियभूभारनिवृत्त्यै भार्गवोऽभवत् ॥ १९ ॥

स एव जगता नाथ इदानीं रामता गत ।
रावणादीनि रक्षासि कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥

मानुषेणैव मरण तस्य दृष्ट दुरात्मन ।
राज्ञा दशरथेनापि तपसाराधितो हरि ॥ २१ ॥

हैं ॥ ७ ॥ यह कैकेयी नामकी राक्षसी सबका नाश करनेके लिये उत्पन्न हुई है। भाई! इन सीताजीके पैदल चलनेसे रामजीको भी तो बडा दु ख होता होगा ॥ ८ ॥ किन्तु किया क्या जाय? इसमे दैव ही प्रबल है, पुरुषका प्रयत्न सर्वथा असमर्थ है।"

इस प्रकार साधु-समाजको दु खातुर देख मुनिवर वामदेव उनके बीचमे आकर कहने लगे—"मै आपलोगोको वास्तविक बात बताता हूँ, आप इन राम और सीताके लिये किसी प्रकारकी चिन्ता न करे ॥ ९-१० ॥ ये राम आदिनारायण भगवान् विष्णु है और ये जानकीजी योगमाया नामसे विख्यात श्रीलक्ष्मीजी हैं ॥ ११ ॥ इस समय जो लक्ष्मण नाम धारण कर इनका अनुगमन कर रहे हैं, ये शेषजी है। ये पुरुषोत्तम भगवान् ही मायाके गुणोसे युक्त होकर विभिन्न आकारवाले-से प्रतीत हुआ करते है ॥ १२ ॥ रजोगुणसे युक्त होकर ये ही विश्वरचयिता ब्रह्माजी हुए है और सत्त्वगुणविशिष्ट होनेपर ये ही त्रिलोकरक्षक भगवान् विष्णु होते है ॥ १३ ॥ तथा कल्पान्तमे तमोगुणका आश्रय कर ये ही जगत्का प्रलय करनेवाले रुद्र होते हैं। पूर्वकालमे इन्ही रघुनाथजीने मत्स्यरूप होकर अपने भक्त वैवस्वत मनुको नावमे बैठाकर प्रलयकालके समय उनकी रक्षा की थी। समुद्र-मन्थनके समय, जब मन्दराचल पाताललोकको जाने लगा ॥ १४-१५ ॥ तब इन्ही रघुनाथजीने कूर्मरूप होकर उसे अपनी पीठपर धारण किया था। प्रलयकालमे जब पृथिवी रसातलको चली गयी तो ये शूकररूप हुए ॥ १६ ॥ और उस पृथिवीको अपनी दाढोपर उठा लिया। इसी प्रकार एक बार प्रह्लादको वर देनेके लिये इन्होने नृसिहरूप धारण किया ॥ १७ ॥ और तीनो लोकोके कण्टकरूप दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अपने नखोसे फाड डाला। एक बार अपने पुत्र इन्द्रका राज्य गया हुआ देख जब अदितिने इनसे प्रार्थना की ॥ १८ ॥ तब इन्होने वामनरूप धारणकर याचना करके उसे फिर लौटा लिया। इन्होने पृथिवीके भाररूप दुष्ट क्षत्रियगणोको नष्ट करनेके लिये भृगुपुत्र परशुरामका रूप धारण किया था ॥ १९ ॥ वे ही जगत्प्रभु इस समय रामरूपसे प्रकट हुए है, अब ये रावण आदि करोडो राक्षसोका वध करेगे ॥ २० ॥ उस दुरात्माकी मृत्यु मनुष्यके हाथ ही बदी है। महाराज दशरथने (अपने पूर्वजन्ममे) तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी इसलिये

पुत्रत्वाकाङ्क्षया विष्णोस्तदा पुत्रोऽभवद्धरि ।
स एव विष्णु श्रीरामो रावणादिवधाय हि ॥ २२ ॥

गन्ताद्यैव वन रामो लक्ष्मणेन सहायवान् ।
एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ २३ ॥

राजा वा कैकेयी वापि नात्र कारणमण्वपि ।
पूर्वेद्युर्नारद प्राह भूभारहरणाय च ॥ २४ ॥

रामोऽप्याह स्वय साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यह वनम् ।
अतो राम समुद्दिश्य चिन्ता त्यजत बालिशा ॥ २५ ॥

रामरामेति ये नित्य जपन्ति मनुजा भुवि ।
तेषा मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥ २६ ॥

का पुनस्तस्य रामस्य दु खशङ्का महात्मन ।
रामनाम्नैव मुक्ति स्यात्कलौ नान्येन केनचित् ॥ २७ ॥

मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत् ।
भक्ताना भजनार्थाय रावणस्य वधाय च ॥ २८ ॥

राज्ञश्चाभीष्टसिद्ध्यर्थ मानुष वपुराश्रित ।
इत्युक्त्वा विररामाथ वामदेवो महामुनि ॥ २९ ॥

श्रुत्वा तेऽपि द्विजा सर्वे राम ज्ञात्वा हरि विभुम् ।
जहुर्हृत्सशयग्रन्थि राममेवान्वचिन्तयन् ॥ ३० ॥

य इद चिन्तयेन्नित्य रहस्य रामसीतयो ।
तस्य रामे दृढा भक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ॥ ३१ ॥

रहस्य गोपनीय वो यूय वै राघवप्रिया ।
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रस्तेऽपि राम पर विदु ॥ ३२ ॥

ततो राम समाविश्य पितृगेहमवारित ।
सानुज सीतया गत्वा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

आगता स्मो वय मातस्त्रयस्ते सम्मत वनम् ।
गन्तु कृतधिय शीघ्रमाज्ञापयतु न पिता ॥ ३४ ॥

आराधना की थी कि वे उनके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार ले, इसीलिये भगवान् इनके पुत्र हुए है। वे विष्णुभगवान् ही श्रीरामचन्द्रजी है। अब ये रावणके वधके लिये आज ही लक्ष्मणसहित वनको जायँगे। ये सीताजी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाली साक्षात् भगवान्की माया है॥ २१—२३ ॥ इनके वन-गमनमे राजा या कैकेयी अणुमात्र भी कारण नही है। कल ही इनसे नादजीने पृथिवीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी ॥ २४ ॥ उस समय स्वय रामने भी उनसे यही कहा था कि कल मै वनको जाऊँगा। अत भोले भाइयो ! आपलोग रामके लिये कोई चिन्ता न करे ॥ २५ ॥ ससारमे जो लोग नित्यप्रति 'राम-राम' जपा करते है उनका भी किसी समय मृत्युके भय आदि नही होते ॥ २६ ॥ फिर उन महात्मा रामके लिये तो दु खकी शका ही कैस हो सकती है ? कलियुगमे तो एकमात्र राम-नामसे ही मक्ति हो सकती है और किसी उपायसे नही ॥ २७ ॥ ये जगत्कर्ता प्रभु भक्तोको गुण-कीर्तनका सुयोग देनेके लिये और रावणको मारनेके लिये ही मायामानुषरूपसे ससारम लीला कर रहे है ॥ २८ ॥ इसके सिवा राजा दशरथकी मनोरथ-सिद्धिके लिये भी इन्होने यह मनुष्य-शरीर धारण किया है।'' ऐसा कहकर महामुनि वामदेवजी मौन हो गये ॥ २९ ॥

यह सुन वहाँ एकत्रित हुए सब द्विजगणोने भी भगवान् रामको सर्वव्यापक श्रीविष्णुभगवान् जाना और वे अपने हृदयका सशय छोडकर श्रीरामचन्द्रजीका ही स्मरण करने लगे ॥ ३० ॥ 'जो पुरुष नित्यप्रति राम और सीताके इस रहस्यका मनन करेगा, उसकी भगवान् राममे विज्ञानके सहित दृढ भक्ति हो जायगी ॥ ३१ ॥ आप सब लोग रामके परम प्रिय है अत इस रहस्यको सदा गुप्त रखे, ऐसा कह विप्रवर वामदेवजी वहाँसे चले गये और पुरजनोने भी जाना कि राम परमात्मा है ॥ ३२ ॥

तदनन्तर रामजीने बिना किसी रोक-टोकके पिताके महलमे प्रवेश किया और लक्ष्मण तथा सीताके सहित वहाँ पहुँचकर कैकेयीसे कहा— ॥ ३३ ॥ ''माताजी ! आपके कथनानुसार हम तीनो वनको जानेके लिये तैयार होकर आ गये है, अब शीघ्र ही पिताजी हमे आज्ञा दे'' ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा सहसोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम्।
रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक्॥ ३५॥

रामस्तु वस्त्राण्युत्सृज्य वन्यचीराणि पर्यधात्।
लक्ष्मणोऽपि तथा चक्रे सीता तन्न विजानती॥ ३६॥

हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत।
रामो गृहीत्वा तच्चीरमशुके पर्यवेष्टयत्॥ ३७॥

तद्दृष्ट्वा रुरुदु सर्वे राजदारा समन्तत।
वसिष्ठस्तु तदाकर्ण्य रुदित भर्त्सयन् रुषा॥ ३८॥

कैकेयीं प्राह दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृत।
वनवासाय दुष्टे त्व सीतायै किं प्रयच्छसि॥ ३९॥

यदि राम समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता।
दिव्याम्बरधरा नित्य सर्वाभरणभूषिता॥ ४०॥

रमयत्वनिश राम वनदु खनिवारिणी।
राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्र रथमानय॥ ४१॥

रथमारुह्य गच्छन्तु वन वनचरप्रिया।
इत्युक्त्वा राममालोक्य सीता चैव सलक्ष्मणम्॥ ४२॥

दु खान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुत।
आरुरोह रथ सीता शीघ्र रामस्य पश्यत॥ ४३॥

राम प्रदक्षिण कृत्वा पितर रथमारुहत्।
लक्ष्मण खड्गयुगल धनुस्तूणीयुग तथा॥ ४४॥

गृहीत्वा रथमारुह्य नोदयामास सारथिम्।
तिष्ठ तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत्॥ ४५॥

गच्छ गच्छेति रामेण नोदितोऽचोदयद्रथम्।
रामे दूर गते राजा मूर्च्छित प्रापतद्भुवि॥ ४६॥

पौरास्तु बालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमा।
तिष्ठ तिष्ठेति रामेति क्रोशन्तो रथमन्वयु॥ ४७॥

रामके ऐसा कहनेपर कैकेयीने सहसा उठकर स्वय ही राम, लक्ष्मण और सीताको अलग-अलग वल्कल-वस्त्र दिये॥ ३५॥ तब रामचन्द्रजीने अपने राजोचित वस्त्रोको उतारकर वनवासियोके-से वस्त्र धारण किये, लक्ष्मणजीने भी ऐसा ही किया किन्तु सीताजी उन्हे पहनना नही जानती थी॥ ३६॥ अत उन वस्त्रोको हाथमे लेकर वे लज्जापूर्वक रामजीकी ओर देखने लगी। तब रामचन्द्रजीने उस चीरको लेकर सीताजीके वस्त्रोपर ही लपेट दिया॥ ३७॥

यह देखकर रनिवासकी सभी स्त्रियाँ रोने लगी। तब वसिष्ठजीने उनके रोनेका शब्द सुनकर क्रोधित हो कैकेयीको डाँटते हुए कहा—''अयि दु शीले! तूने तो केवल रामके वन जानेका ही वर माँगा है न? फिर तू सीताको भी वनके वस्त्र कैसे देती है?॥ ३८-३९॥ यदि पतिव्रता सीता भक्तिवश रामके साथ जाना चाहती है तो वह समस्त आभूषणोसे विभूषित और दिव्य वस्त्र धारण किये हुए ही जाय॥ ४०॥ तथा नित्यप्रति रामके वनवास-दु खको दूर करती हुई उनको आनन्दित करे।''

तब महाराज दशरथने सुमन्त्रसे कहा—''सुमन्त्र! तुम रथ ले आओ॥ ४१॥ वनवासियोके प्रिय ये राम आदि रथपर चढकर ही वनको जायँगे।'' ऐसा कह वे सीता और लक्ष्मणके सहित रामको देखकर दु खसे पृथिवीपर गिर पडे और आँखोमे आँसू भरकर रोने लगे। तब रामजीके देखते-देखते शीघ्र ही सीताजी रथपर चढी॥ ४२-४३॥ फिर रामचन्द्रजी पिताकी परिक्रमा कर रथारूढ हुए और उनके पीछे दो खड्ग तथा दो धनुष और तरकश लेकर लक्ष्मणजी सवार हुए और सारथिसे रथ हाँकनेको कहा। तब राजा दशरथ कहने लगे—'सुमन्त्र! ठहरो, ठहरो॥ ४४-४५॥ किन्तु रामचन्द्रजीने 'चलो, चलो' कहकर शीघ्रता करनेको कहा। इसलिये सुमन्त्रने रथ हाँक दिया। रामके दूर निकल जानेपर महाराज मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पडे॥ ४६॥ तदनन्तर समस्त पुरवासी, बालक-वृद्ध और वयोवृद्ध मुनिगण 'हे राम! ठहरो, मत जाओ' इस प्रकार चिल्लाते हुए रथके पीछे-पीछे चले॥ ४७॥

राजा रुदित्वा सुचिरं मा नयन्तु गृह प्रति ।
कौसल्याया राममातुरित्याह परिचारकान् ॥ ४८ ॥

किञ्चित्काल भवेत्तत्र जीवन दु खितस्य मे ।
अत ऊर्ध्व न जीवामि चिर राम विना कृत ॥ ४९ ॥

ततो गृह प्रविश्यैव कौसल्याया पपात ह ।
मूर्च्छितश्च चिरादबुद्ध्वा तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥ ५० ॥

रामस्तु तमसातीर गत्वा तत्रावसत्सुखी ।
जल प्राश्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद्विभु ॥ ५१ ॥

सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मण ।
पालयामास धर्मज्ञ सुमन्त्रेण समन्वित ॥ ५२ ॥

पौरा सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरत ।
शक्ता राम पुर नेतु नोचेद्गच्छामहे वनम् ॥ ५३ ॥

इति निश्चयमाज्ञाय तेषा रामोऽतिविस्मित ।
नाह गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिन ॥ ५४ ॥

भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ।
इदानीमेव गच्छाम सुमन्त्र रथमानय ॥ ५५ ॥

इत्याज्ञप्त सुमन्त्रोऽपि रथ वाहैरयोजयत् ।
आरुह्य राम सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रुतम् ॥ ५६ ॥

अयोध्याभिमुख गत्वा किञ्चिद्दूर ततो ययु ।
तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रातरुत्थाय दु खिता ॥ ५७ ॥

रथनेमिगत मार्ग पश्यन्तस्ते पुर ययु ।
हृदि राम ससीत ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम् ॥ ५८ ॥

सुमन्त्रोऽपि रथ शीघ्र नोदयामास सादरम् ।
स्फीताञ्जनपदान्पश्यन् राम सीतासमन्वित ॥ ५९ ॥

गङ्गातीर समागच्छच्छृङ्गवेराविदूरत ।
गङ्गा दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानस ॥ ६० ॥

राजा दशरथ बहुत देरतक रोते रहे, फिर उन्होने अपने सेवकोसे कहा—"मुझे रामकी माता कौसल्याके घर ले चलो ॥ ४८ ॥ मुझ दु खियाका वहाँ रहकर कुछ काल जीना हो सकता है, किन्तु रामसे रहित होकर अब मै अधिक काल जीवित नही रह सकूँगा" ॥ ४९ ॥ तब कौसल्याके घर पहुँचते ही राजा अचेत होकर पृथिवीपर गिर पडे, फिर बहुत देर पीछे चेत होनेपर वे चुपचाप बैठे रहे ॥ ५० ॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी तमसा नदीके तटपर पहुँचकर वहाँ सुखपूर्वक रहे और रात्रिके समय बिना कुछ आहार किये केवल जल पीकर सीताजीके सहित वृक्षके नीचे सो गये। तथा सुमन्त्रके सहित धर्मात्मा लक्ष्मणजी धनुष लेकर उनकी रक्षा करते रहे ॥ ५१-५२ ॥ उनके पास ही समस्त पुरवासी आकर ठहर गये। उन्होने निश्चय किया कि हम या तो रामको अयोध्या लौटा ले चलेगे, नही तो हम भी इनके साथ वनको ही चले जायँगे ॥ ५३ ॥ रामचन्द्रजीको उनके इस निश्चयका पता चलनेपर अति विस्मय हुआ और उन्होने यह सोचकर कि मै तो अयोध्याको लौटूँगा नही, ये व्यर्थ वनमे क्लेश भोगेगे, सुमन्त्रको बुलाकर कहा—"सुमन्त्र ! तुम रथ ले आओ, हम अभी चलेगे" ॥ ५४-५५ ॥

रामकी ऐसी आज्ञा होनेपर सुमन्त्रने रथमे घोडे जोत दिये। तब राम, लक्ष्मण और सीता उसपर चढकर शीघ्रतासे चले ॥ ५६ ॥ उन्होने अपना रथ कुछ दूर अयोध्याकी ओर ले जाकर फिर वनकी ओर बढाया। प्रात काल होनेपर पुरवासियोने उठकर जब रामको न देखा तो वे अत्यन्त दु खी हुए ॥ ५७ ॥ और रथके पहियोकी लीकके मार्गको देखते हुए वे अयोध्यापुरीमे लौट आये तथा प्रतिदिन हृदयमे राम और सीताका ध्यान करते हुए वहाँ रहने लगे ॥ ५८ ॥

इधर सुमन्त्रने भी शीघ्र ही आदरपूर्वक अपना रथ बढाया। तब सीताके सहित श्रीरामचन्द्रजी विस्तृत देशोको देखते हुए शृङ्गवेरपुरके पास गङ्गाजीके तटपर पहुँचे। गङ्गाजीको देखकर उन्होने प्रसन्नचित्तसे नमस्कार करके

शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः ।
ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम् ॥ ६१ ॥

सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत् ।
फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥ ६२ ॥

रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दण्डवत्प्रापतद्भुवि ।
गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे ॥ ६३ ॥

सपृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ॥ ६४ ॥

बभूव परमानन्दः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गं रघूत्तम ।
नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम ॥ ६५ ॥

त्वदधीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह ।
आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम् ॥ ६६ ॥

गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे ।
अनुगृह्णीष्व भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम ॥ ६७ ॥

रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे ।
न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पञ्च च ॥ ६८ ॥

दत्तमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि किञ्चन ।
राज्यं ममैतत्ते सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः ॥ ६९ ॥

वटक्षीरं समानाय्य जटामुकुटमादरात् ।
बबन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः ॥ ७० ॥

जलमात्रं तु सम्प्राश्य सीतया सह राघवः ।
आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि ॥ ७१ ॥

उवास तत्र नगरप्रासादाग्रे यथा पुरा ।
सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यङ्क इव संस्कृते ॥ ७२ ॥

ततोऽविदूरे परिगृह्य चापं
सबाणतूणीरधनुः स लक्ष्मणः ।
ररक्ष रामं परितो विपश्यन्
गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥ ७३ ॥

स्नान किया ॥ ५९-६० ॥ और फिर रघुश्रेष्ठ रामजी शिंशपा (सीसम) के वृक्षकी छायामे बैठे। इसी समय निषादराज गुहने लोगोके मुखसे रामजीके आनेका मङ्गल समाचार सुना ॥ ६१ ॥ यह सुनते ही वह तुरंत अपने एकमात्र सखा और स्वामी श्रीरघुनाथजीको देखनेके लिये प्रसन्न चित्तसे भक्तिपूर्वक फल, शहद और पुष्पादि लेकर वहाँ आया ॥ ६२ ॥ और वह भेटकी सामग्री रामके आगे डालकर दण्डके समान पृथिवीपर गिर पडा। तब श्रीरघुनाथजीने उसे तुरंत ही उठाकर गले लगा लिया ॥ ६३ ॥

तदुपरान्त रामजीके कुशल पूछनेपर गुहने हाथ जोडकर कहा—"हे लोकपावन! मैं धन्य हूँ, आज मेरा निषाद-जातिमे जन्म लेना सफल हो गया ॥ ६४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! आपके अङ्ग-सङ्गसे मुझे परम आनन्द प्राप्त हुआ है। हे रघुवर! आपके दासका यह नैषादराज्य आपहीका है, इसलिये हे रघुनाथजी! आप यहाँ रहकर हमलोगोकी रक्षा कीजिये। चलिये नगरमे पधारकर मेरा घर पवित्र कीजिये ॥ ६५-६६ ॥ हे भगवन्! आपके लिये मैने जो कुछ फल-मूलादि एकत्रित किये हैं उन्हे स्वीकार कीजिये। हे सुरश्रेष्ठ! मै आपका दास हूँ, आप मुझपर कृपा कीजिये" ॥ ६७ ॥

तब रामचन्द्रजीने अति प्रसन्न होकर उससे कहा—"मित्र! सुनो, मै चौदह वर्षतक किसी घर या गाँवमे नही जा सकता ॥ ६८ ॥ और न किसी औरके दिये हुए फल-मूलादि ही खा सकता हूँ। मित्र! तुम्हारा यह सम्पूर्ण राज्य मेरा ही है और तुम भी मेरे अत्यन्त प्रिय सखा हो' ॥ ६९ ॥

तदनन्तर रघुनाथजीने वटका दूध मँगाकर लक्ष्मणके सहित भली प्रकार सँवारकर जटाजूट बाँधे ॥ ७० ॥ लक्ष्मणजीने कुश और पत्तोकी एक शय्या बना दी, उसीपर केवल जल पीकर सीताके सहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हुए और पहले जिस प्रकार अयोध्यापुरीके महलमे जनकनन्दिनीके सहित सुसज्जित पलगपर पौढते थे उसी प्रकार सो गये ॥ ७१-७२ ॥ उनके पास ही धनुष, बाण और तरकश लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी धनुषधारी गुहके सहित धनुष चढाकर इधर-उधर देखते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी रखवाली करने लगे ॥ ७३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

गङ्गोत्तरण तथा भरद्वाज और वाल्मीकिजीसे भेट

श्रीमहादेव उवाच

सुप्तं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः ।
लक्ष्मणं प्राह विनयाद्भ्रातः पश्यसि राघवम् ॥ १ ॥

शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह ।
यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ॥ २ ॥

कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता ।
मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत् ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम ।
कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा ॥ ४ ॥

स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः ॥ ५ ॥

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥ ६ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थबान्धवाः ।
स्वयमेवाचरन्कर्म तथा तत्र विभाव्यते ॥ ७ ॥

सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः ।
यद्यद्यथागतं तत्तद्भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत् ॥ ८ ॥

न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने ।
आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत् ॥ ९ ॥

यस्मिन्देशे च काले च यस्माद्वा येन केन वा ।
कृतं शुभाशुभं कर्म भोज्यं तत्तत्र नान्यथा ॥ १० ॥

अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाशुभफलोदये ।
विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्घ्यं सुरासुरैः ॥ ११ ॥

सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते ।
शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुखदुःखवत् ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! उस समय रामजीको सोते देख गुहने आँखोंमें आँसू भरकर नम्रतापूर्वक लक्ष्मणजीसे कहा—"भाई! देखते हो, जो रघुनाथजी अपने भव्य-भवनमें सुन्दर बिछौनेसे युक्त सुवर्णनिर्मित पलगपर पौढ़ते थे वे ही आज सीताजीके सहित कुश और पत्तोंकी साथरीपर पड़े हुए हैं ॥ १-२ ॥ विधाताने रामजीके इस दुःखका कारण कैकेयीको बना दिया। मन्थराकी बुद्धिपर विश्वास करके कैकेयीने यह बड़ा पापका काम किया।" ॥ ३ ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजीने कहा—"भाई! मेरी बात सुनो? किसीके दुःख अथवा सुखका कारण दूसरा कौन है? अर्थात् कोई भी नहीं है। मनुष्यका पूर्वकृत कर्म ही उसके सुख अथवा दुःखका कारण होता है ॥ ४-५ ॥ सुख और दुःखका देनेवाला कोई और नहीं है, 'कोई अन्य सुख-दुःख देता है' यह समझना कुबुद्धि है। 'मैं करता हूँ' यह वृथा अभिमान है, क्योंकि लोग अपने-अपने कर्मोंकी डोरीमें बँधे हुए हैं ॥ ६ ॥ यह मनुष्य स्वयं ही पृथक्-पृथक् आचरण करके उसके अनुसार सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेष्य, मध्यस्थ और बन्धु आदिकी कल्पना कर लेता है ॥ ७ ॥ अतः मनुष्यको चाहिये कि प्रारब्धानुसार सुख या दुःख जो कुछ भी जैसे-जैसे प्राप्त हो उसे वैसे ही भोगते हुए सदा प्रसन्नचित्त रहे ॥ ८ ॥ हमें न तो भोगोंकी प्राप्तिकी इच्छा है और न उन्हें त्यागनेकी। भोग आये या न आये हम भोगोंके अधीन नहीं हैं ॥ ९ ॥ जिस देश अथवा जिस कालमें जिस किसीके द्वारा शुभ अथवा अशुभ कर्म किया जाता है, उसे निस्सन्देह उसी प्रकार भोगना पड़ता है ॥ १० ॥ अतः शुभ अथवा अशुभ कर्मफलके उदय होनेपर हर्ष अथवा दुःख मानना व्यर्थ है, क्योंकि विधाताकी गतिका देवता अथवा दैत्य कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ मनुष्य सदा ही दुःख और सुखसे घिरा रहता है, क्योंकि मनुष्य-शरीर पाप और पुण्यके मेलसे उत्पन्न होनेके कारण सुख-दुःखमय ही

सुखस्यानन्तर दु ख दु खस्यानन्तर सुखम्।
द्वयमेतद्धि जन्तूनामलङ्घ्य दिनरात्रिवत्॥ १३॥

सुखमध्ये स्थित दु खदु खमध्ये स्थित सुखम्।
द्वयमन्योन्यसयुक्त प्रोच्यते जलपङ्कवत्॥ १४॥

तस्माद्धैर्येण विद्वास इष्टानिष्टोपपत्तिषु।
न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्व मायेति भावनात्॥ १५॥

गुहलक्ष्मणयोरेव भाषतोर्विमल नभ।
बभूव राम सलिल स्पृष्ट्वा प्रात समाहित॥ १६॥

उवाच शीघ्र सुदृढा नावमानय मे सखे।
श्रुत्वा रामस्य वचन निषादाधिपतिर्गुह॥ १७॥

स्वयमेव दृढा नावमानिनाय सुलक्षणाम्।
स्वामिन्नारुह्यता नौका सीतया लक्ष्मणेन च॥ १८॥

वाहये ज्ञातिभि सार्धमहमेव समाहित।
तथेति राघव सीतामारोप्य शुभलक्षणाम्॥ १९॥

गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वय चारोहदच्युत।
आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यारुरोह च॥ २०॥

गुहस्तान्वाहयामास ज्ञातिभि सहित स्वयम्।
गङ्गामध्ये गता गङ्गा प्रार्थयामास जानकी॥ २१॥

देवि गङ्गे नमस्तुभ्य निवृत्ता वनवासत।
रामेण सहिताह त्वा लक्ष्मणेन च पूजये॥ २२॥

इत्युक्त्वा परकूल तौ शनैरुत्तीर्य जग्मतु॥ २३॥

गुहोऽपि राघव प्राह गमिष्यामि त्वया सह।
अनुज्ञा देहि राजेन्द्र नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम्॥ २४॥

श्रुत्वा नैषादिवचन श्रीरामस्तमथाब्रवीत्।
चतुर्दश समा स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम्॥ २५॥

आयास्याम्युदित सत्य नासत्य रामभाषितम्।
इत्युक्त्वालिङ्ग्य त भक्त समाश्वास्य पुन पुन॥ २६॥

निवर्तयामास गुह सोऽपि कृच्छ्राद्ययौ गृहम्॥ २७॥

है॥ १२॥ सुखके पीछे दु ख और दु खके पीछे सुख आता है। ये दोनो ही दिन और रात्रिके समान जीवोसे अलङ्घनीय हैं॥ १३॥ सुखके भीतर दु ख और दु खके भीतर सुख सर्वदा वर्तमान रहता है। ये दोनो ही जल और कीचडके समान आपसमे मिले हुए रहते है॥ १४॥ इसलिये विद्वान् लोग 'सब कुछ माया ही है' इस भावनाके कारण इष्ट या अनिष्टकी प्राप्तिमे धैर्य रखकर हर्ष या शोक नही मानते"॥ १५॥

गुह और लक्ष्मणके इस प्रकार बातचीत करते-करते आकाशमे उजाला हो गया। तब रामचन्द्रजीने सावधानतापूर्वक आचमन कर प्रात क्रिया की॥ १६॥ और बोले—"मित्र! शीघ्र ही मेरे लिये एक सुदृढ नौका लाओ।" रामके ये वचन सुनकर निषादराज गुह स्वय ही एक सुलक्षण-सम्पन्न सुदृढ नौका ले आये और बोले—'स्वामिन्! सीता और लक्ष्मणके सहित नावपर चढिये॥ १७-१८॥ अपने जाति-भाइयोके साथ मै स्वय इसे सावधानतापूर्वक चलाऊँगा।" तब रघुनाथजीने 'बहुत अच्छा' कह प्रथम शुभलक्षणा सीताजीको उसपर चढाया॥ १९॥ फिर गुहका हाथ पकडकर श्रीअच्युत भगवान् रघुनाथजी स्वय चढे। तदनन्तर अपने आयुधादिको रख श्रीलक्ष्मणजी नौकारूढ हुए॥ २०॥

तब गुहने अपने जाति-भाइयोके सहित स्वय नौका चलायी। जिस समय नाव गङ्गाजीके बीचमे पहुँची तब जानकीजीने गङ्गाजीसे प्रार्थना की—॥ २१॥ "देवि गङ्गे! मै तुम्हे प्रणाम करती हूँ। वनवाससे लौटनेपर मै राम और लक्ष्मणके सहित तुम्हारी पूजा करूँगी।" इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् वे शनै-शनै पार उतरकर आगे चलने लगे॥ २२-२३॥ तब गुहने श्रीरघुनाथजीसे कहा—"हे राजेन्द्र! मैं भी आपके साथ ही चलूँगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये, नही तो मै प्राण छोड दूँगा॥ २४॥

निषादपुत्रके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—"मै चौदह वर्ष दण्डकारण्यमे रहकर यहाँ फिर आऊँगा। मै जो कुछ कहता हूँ सत्य ही कहता हूँ, रामकी बात कभी मिथ्या नही हो सकती।" ऐसा कह रामजीने भक्त गुहको ढाढस बँधा उसे बारम्बार गले लगाकर विदा किया। तब निषादराज गुह बडी कठिनतासे घर लौटे॥ २५—२७॥

ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वित ॥ २८ ॥
भरद्वाजाश्रमपद गत्वा बहिरुपस्थित ।
तत्रैक बटुक दृष्ट्वा राम प्राह च हे बटो ॥ २९ ॥
रामो दाशरथि सीतालक्ष्मणाभ्या समन्वित ।
आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यता मुनिसन्निधौ ॥ ३० ॥
तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयो पतितो मुने ।
स्वामिन् राम समागत्य वनाद्बहिरवस्थित ॥ ३१ ॥
सभार्य सानुज श्रीमानाह मा देवसन्निभ ।
भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम् ॥ ३२ ॥
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वर ।
गृहीत्वार्घ्यं च पाद्य च रामसामीप्यमाययौ ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा राम यथान्याय पूजयित्वा सलक्ष्मणम् ।
आह मे पर्णशाला भो राम राजीवलोचन ॥ ३४ ॥
आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन ।
इत्युक्त्वोटजमानीय सीतया सह राघवौ ॥ ३५ ॥
भक्त्या पुन पूजयित्वा चकारातिथ्यमुत्तमम् ।
अद्याह तपस पार गतोऽस्मि तव सङ्गमात् ॥ ३६ ॥
ज्ञात राम तवोदन्त भूत चागामिक च यत् ।
जानामि त्वा परात्मान मायया कार्यमानुषम् ॥ ३७ ॥
यदर्थमवतीर्णोऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा ।
यदर्थ वनवासस्ते यत्करिष्यसि वै पुर ॥ ३८ ॥
जानामि ज्ञानदृष्ट्याह जातया त्वदुपासनात् ।
इत पर त्वा किं वक्ष्ये कृतार्थोऽह रघूत्तम ॥ ३९ ॥
यस्त्वा पश्यामि काकुत्स्थ पुरुष प्रकृते परम् ।
रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसयुत ॥ ४० ॥
अनुग्राह्यास्त्वया ब्रह्मन्वय क्षत्रियबान्धवा ।
इति सम्भाष्य तेऽन्योन्यमुषित्वा मुनिसन्निधौ ॥ ४१ ॥

तदनन्तर जानकीजी और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाज मुनिके आश्रमके पास पहुँचकर बाहर खडे हो गये। वहाँ एक ब्रह्मचारीको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—"हे बटो। मुनिवरसे जाकर कहो कि दशरथका पुत्र राम सीता और लक्ष्मणके सहित आश्रमके बाहर खडा है" ॥ २८—३० ॥

रघुनाथजीका यह कथन सुनकर ब्रह्मचारीने तुरत ही मुनिवरके पास जाकर उनके चरणोमे सिर रखकर कहा—"भगवन्। पत्नी और छोटे भाईके सहित श्रीमान् रामचन्द्र आये है और आश्रमके बाहर खडे है। उन देवतुल्य श्रीरामजीने मुझसे कहा है कि मुनिवर भरद्वाजको इसकी यथायोग्य सूचना दो" ॥ ३१-३२ ॥

यह सुनकर मुनिनाथ भरद्वाज सहसा उठ खडे हुए और अर्घ्य-पाद्यादि लेकर रामके पास आये ॥ ३३ ॥ रामको देखकर उन्होने लक्ष्मणजीसहित उनकी नियमानुसार पूजा की और कहा—"हे राम। हे कमलनयन रघुनन्दन। आइये, अपनी चरण-रजसे मेरी पर्णशालाको पवित्र कीजिये।" ऐसा कह वे सीताजीके सहित दोनो रघुकुमारोको अपनी कुटियामे ले आये ॥ ३४-३५ ॥ और फिर उनका भक्तिपूर्वक पूजन कर भली प्रकार आतिथ्य-सत्कार किया। तदनन्तर मुनिवर बोले—"राम। आज आपके समागमसे मेरी तपस्या पूर्ण हो गयी ॥ ३६ ॥ हे रघुनन्दन। मै आपका भूत और भविष्यत् सम्पूर्ण वृत्तान्त जानता हूँ। मै यह भी जानता हूँ कि आप साक्षात् परमात्मा है और कार्यकी सिद्धिके लिये ही मायासे मनुष्यरूप हुए है ॥ ३७ ॥ पूर्वकालमे ब्रह्माके प्रार्थना करनेसे जिस लिये आपने अवतार लिया है, जिस लिये आपको वनवास हुआ है और जो कुछ आप आगे करेगे वह सब, आपकी उपासनाद्वारा प्राप्त हुई ज्ञान-दृष्टिसे मै जानता हूँ। हे रघुश्रेष्ठ। आपसे मै अधिक क्या कहूँ ? मै तो कृतार्थ हो गया, जो आज प्रकृतिसे परे साक्षात् पुरुषोत्तम आप ककुत्स्थनन्दनको देख रहा हूँ।"

तब सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीने उन्हे प्रणाम करके कहा— ॥ ३८—४० ॥ "ब्रह्मन्। हम क्षत्रिय-कुलोत्पन्न है, अत आपकी कृपाके पात्र है।" इस प्रकार परस्पर एक-दूसरेसे कहनेके उपरान्त वे मुनिके यहाँ ठहर गये ॥ ४१ ॥

प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिदारकै ।
कृताप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघव ॥ ४२ ॥

प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रम ।
गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रम ऋषिसङ्कुलम् ॥ ४३ ॥

नानामृगद्विजाकीर्णं नित्यपुष्पफलाकुलम् ।
तत्र दृष्ट्वा समासीन वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥ ४४ ॥

ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
दृष्ट्वा राम रमानाथ वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ॥ ४५ ॥

जानकीलक्ष्मणोपेत जटामुकुटमण्डितम् ।
कन्दर्पसदृशाकार कमनीयाम्बुजेक्षणम् ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वैव सहसोत्तस्थौ विस्मयानिमिषेक्षण ।
आलिङ्ग्य परमानन्द राम हर्षाश्रुलोचन ॥ ४७ ॥

पूजयित्वा जगत्पूज्य भक्त्यार्घ्यादिभिरादृत ।
फलमूलै स मधुरैर्भोजयित्वा च लालित ॥ ४८ ॥

राघव प्राञ्जलि प्राह वाल्मीकिं विनयान्वित ।
पितुराज्ञा पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम् ॥ ४९ ॥

भवन्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम् ।
यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थान वदस्व तत् ॥ ५० ॥

सीतया सहित काल किञ्चित्तत्र नयाम्यहम् ।
इत्युक्तो राघवेणासौ मुनि सस्मितमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

त्वमेव सर्वलोकाना निवासस्थानमुत्तमम् ।
तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ॥ ५२ ॥

एव साधारण स्थानमुक्त ते रघुनन्दन ।
सीतया सहितस्येति विशेष पृच्छतस्तव ॥ ५३ ॥

तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम् ।
शान्ताना समदृष्टीनामद्वेष्टॄणा च जन्तुषु ।
त्वामेव भजता नित्य हृदय तेऽधिमन्दिरम् ॥ ५४ ॥

प्रात काल जागनेपर श्रीरघुनाथजी मुनिकुमारोकी बनायी हुई डोगीपर चढकर यमुनाके पार हुए और मुनिवरके बताये हुए मार्गसे चित्रकूट-पर्वतकी ओर चले जहाँ वाल्मीकिजीका आश्रम था। उस ऋषिगणोसे भरे हुए, नाना मृग और पक्षियोसे समाकुल तथा सर्वदा फल-पुष्पादिसे परिपूर्ण वाल्मीकिजीके आश्रममे जाकर श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी बैठे हुए है ॥ ४२—४४ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके सहित उन्हे सिर झुकाकर प्रणाम किया। तब श्रीवाल्मीकिजीने सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, कामदेवकी-सी आकृतिवाले, जटा-मुकुटधारी, त्रिलोक-मोहन लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीको सीता और लक्ष्मणके सहित देखा ॥ ४५-४६ ॥

उन्हे देखते ही श्रीवाल्मीकिजी सहसा उठ खडे हुए, उनके नेत्र आश्चर्यसे निमेषशून्य हो गये और उन्होने नेत्रोमे आनन्दाश्रु भर परमानन्दस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीका आलिङ्गन किया ॥ ४७ ॥ तथा अति भक्तिभावसे जगत्पूज्य भगवान् रामकी अर्घ्यादिसे सादर पूजा कर उन्हे मीठे-मीठे फल-मूलादि खिलाकर उनका लालन किया ॥ ४८ ॥

तब श्रीरघुनाथजीने अति नम्रतापूर्वक हाथ जोडकर श्रीवाल्मीकिजीसे कहा—"हम पिताजीकी आज्ञा मानकर दण्डकवनमे आये है ॥ ४९ ॥ आप सब कुछ जानते ही है, फिर हम आपको इसका कारण क्या बताये ? अब आप मुझे कोई ऐसा स्थान बताइये जहाँ मै सुखपूर्वक रह सकूँ ॥ ५० ॥ आपके बताये हुए उस स्थानमे मै सीताके साथ रहकर कुछ समय बिताऊँगा।"

रघुनाथजीके इस प्रकार कहनेपर मुनिवरने मुसकराकर कहा— ॥ ५१ ॥ "हे राम ! सम्पूर्ण प्राणियोके आप ही एकमात्र उत्तम निवास-स्थान है और सब जीव भी आपके निवास-गृह है ॥ ५२ ॥ हे रघुनन्दन ! इस प्रकार यह मैने आपका साधारण निवासस्थान बताया, परन्तु आपने विशेष-रूपसे सीताके सहित अपने रहनेका स्थान पूछा है इसलिये हे रघुश्रेष्ठ ! अब मै आपका जो निश्चित गृह है वह बताता हूँ। जो शान्त, समदर्शी और सम्पूर्ण जीवोके प्रति द्वेषहीन है तथा अहर्निश आपका ही भजन करते है उनका हृदय आपका

धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् ।
सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम् ॥ ५५ ॥

त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरण गत ।
निर्द्वन्द्वो नि स्पृहस्तस्य हृदय ते सुमन्दिरम् ॥ ५६ ॥

निरहङ्कारिण शान्ता ये रागद्वेषवर्जिता ।
समलोष्टाश्मकनकास्तेषा ते हृदय गृहम् ॥ ५७ ॥

त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्य सन्तुष्ट सदा भवेत् ।
त्वयि सन्त्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभ गृहम् ॥ ५८ ॥

यो न द्वेष्ट्यप्रिय प्राप्य प्रिय प्राप्य न हृष्यति ।
सर्व मायेति निश्चित्य त्वा भजेत्तन्मनो गृहम् ॥ ५९ ॥

षड्भावादिविकारान्यो देहे पश्यति नात्मनि ।
क्षुत्तृट् सुख भय दु ख प्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥ ६० ॥

ससारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानस गृहम् ॥ ६१ ॥

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थ
त्वा चिद्घन सत्यमनन्तमेकम् ।
अलेपक सर्वगत वरेण्य
तेषा हृदब्जे सह सीतया वस ॥ ६२ ॥

निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मना
त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ।
त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणा
सीतासमेतस्य गृह हृदब्जे ॥ ६३ ॥

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ।
यत्प्रभावादह राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥ ६४ ॥

अह पुरा किरातेषु किरातै सह वर्धित ।
जन्ममात्रद्विजत्व मे शूद्राचाररत सदा ॥ ६५ ॥

शूद्राया बहव पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मन ।
ततश्चौरैश्च सङ्गम्य चौरोऽहमभव पुरा ॥ ६६ ॥

प्रधान निवास-स्थान है ॥ ५३-५४ ॥ जो धर्म और अधर्म दोनोको छोडकर निरन्तर आपका ही भजन करता है, हे राम ! उसके हृदय-मन्दिरमे सीताके सहित आप सुखपूर्वक रहते है ॥ ५५ ॥ जो आपहीके मन्त्रका जाप करता है, आपहीकी शरणमे रहता है तथा द्वन्द्वहीन और नि स्पृह है उसका हृदय आपका सुन्दर मन्दिर है ॥ ५६ ॥ जो अहकारशून्य, शान्तस्वभाव, राग-द्वेषरहित और मृत-पिण्ड, पत्थर तथा सुवर्णमे समान दृष्टि रखनेवाले है, उनका हृदय आपका घर है ॥ ५७ ॥ जो आपहीमे मन और बुद्धिको लगाकर सदा सन्तुष्ट रहता है और अपने समस्त कर्म आपहीको अर्पण कर देता है उसका मन ही आपका शुभ गृह है ॥ ५८ ॥ जो अप्रियको पाकर द्वेष नही करता और प्रियको पाकर हर्षित नही होता तथा 'यह सम्पूर्ण प्रपञ्च मायामात्र है' ऐसा निश्चय कर सदा आपका भजन करता है उसका मन ही आपका घर है ॥ ५९ ॥ जो (सत्ता, जन्म लेना, बढना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना—इन) छ विकारोको ही शरीरमे देखता है, आत्मामें नही तथा क्षुधा, तृषा, सुख, दु ख और भय आदिको प्राण और बुद्धिके ही विकार मानता है और स्वय सासारिक धर्मोंसे मुक्त रहता है उसका चित्त आपका निज गृह है ॥ ६०-६१ ॥ जो लोग चिद्घन, सत्यस्वरूप, अनन्त, एक, निर्लेप, सर्वगत और स्तुत्य आप परमेश्वरको समस्त अन्त करणोमे विराजमान देखते है, हे राम ! उनके हृदय-कमलमे आप सीताजीके सहित निवास कीजिये ॥ ६२ ॥ निरन्तर अभ्यास करनेसे जिनका चित्त स्थिर हो गया है, जो सर्वदा आपकी चरण-सेवामे लगे रहते हैं तथा आपके नाम-सकीर्तनसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं उनके हृदय-कमलमें सीताके सहित आपका निवास-गृह है ॥ ६३ ॥ हे राम ! जिसके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त किया है, आपके उस नामकी महिमा कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है ? ॥ ६४ ॥ पूर्वकालमे मैं किरातोंके साथ रहता था और उन्हींके साथ रहकर बडा हुआ। मैं निरन्तर शूद्रोके आचरणोमे रत रहता था, मेरी द्विजातीयता केवल जन्ममात्रकी थी ॥ ६५ ॥ मुझ अजितेन्द्रियके शूद्राके गर्भसे बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। उस समय चोरोके समागमसे मै भी पक्का चोर हो गया

धनुर्बाणधरो नित्य जीवानामन्तकोपम ।
एकदा मुनय सप्त दृष्टा महति कानने ॥ ६७ ॥

साक्षान्मया प्रकाशन्तो ज्वलनार्कसमप्रभा ।
तानन्वधाव लोभेन तेषा सर्वपरिच्छदान् ॥ ६८ ॥

ग्रहीतुकामस्तत्राह तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवम् ।
दृष्ट्वा मा मुनयोऽपृच्छन्किमायासि द्विजाधम ॥ ६९ ॥

अह तानब्रव किञ्चिदादातु मुनिसत्तमा ।
पुत्रदारादय सन्ति बहवो मे बुभुक्षिता ॥ ७० ॥

तेषा सरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने ।
ततो मामूचुरव्यग्रा पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम् ॥ ७१ ॥

यो यो मया प्रतिदिन क्रियते पापसञ्चय ।
यूय तद्भागिन किं वा नेति वेति पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥

वय स्थास्यामहे तावदागमिष्यसि निश्चय ।
तथेत्युक्त्वा गृह गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥ ७३ ॥

अपृच्छ पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽह रघूत्तम ।
पाप तवैव तत्सर्व वय तु फलभागिन ॥ ७४ ॥

तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागमम् ।
मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसा ॥ ७५ ॥

मुनीना दर्शनादेव शुद्धान्त करणोऽभवम् ।
धनुरादीन्परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥ ७६ ॥

रक्षध्व मा मुनिश्रेष्ठा गच्छन्त निरयार्णवम् ।
इत्यग्रे पतित दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमा ॥ ७७ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र ते सफल सत्समागम ।
उपदेक्ष्यामहे तुभ्य किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे ।
परस्पर समालोच्य दुर्वृत्तोऽय द्विजाधम ॥ ७८ ॥

उपेक्ष्य एव सद्वृत्तैस्तथापि शरण गत ।
रक्षणीय प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशत ॥ ७९ ॥

इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ।
एकाग्रमनसात्रैव मरेति जप सर्वदा ॥ ८० ॥

था ॥ ६६ ॥ जीवोके अन्तकर्ता कालके समान मै सदा धनुष-बाण धारण किये रहता था। एक दिन एक घोर वनमे मैंने साक्षात् सप्तर्षियोको जाते देखा। वे अपनी प्रभासे अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान थे। उनके सम्पूर्ण वस्त्रादि छीननेकी इच्छासे मै लोभके वश होकर उनके पीछे दौडा और बोला—'ठहरो, ठहरो।' तब मुनीश्वरोने मेरी ओर देखकर पूछा—'हे द्विजाधम ! क्यो आ रहा है।' ॥ ६७—६९ ॥ मैने कहा—'हे मुनि-श्रेष्ठगण ! मेरे बहुत-से भूखे पुत्र-कलत्रादि है। अत उनके पोषणार्थ कुछ लेनेके लिये आ रहा हूँ ॥ ७० ॥ उन्हींका पालन-पोषण करनेके लिये मै वन-पर्वतादिमे घूमता फिरता हूँ।' तब उन मुनीश्वरोने मुझसे निर्भयतापूर्वक कहा—'अच्छा, एक बार अपने कुटुम्बियोके पास जाकर प्रत्येकसे अलग-अलग पूछ कि मै प्रतिदिन जो पाप सञ्चय करता हूँ उसके आपलोग भी भागी हैं या नही ? ॥ ७१-७२ ॥ इस बातका निश्चय रख कि जबतक तू लौटकर आवेगा हम यही रहेगे।' मै 'बहुत अच्छा' कह अपने घर आया और जिस प्रकार मुनीश्वरोने मुझसे कहा था मैने अपने पुत्र-स्त्री आदिसे पूछा। हे रघुश्रेष्ठ ! तब वे बोले, 'वह पाप तो सब तुझीको लगेगा, हम तो उससे प्राप्त हुए फल (धन आदि) को ही भोगनेवाले हैं ॥ ७३-७४ ॥ यह सुनकर मुझे अति वैराग्य हुआ और मै विचार करता हुआ, जहाँ करुणासे परिपूर्ण हृदयवाले मुनीश्वर थे, वहाँ आया ॥ ७५ ॥ तब उन मुनीश्वरोके दर्शनमात्रसे ही मेरा अन्त करण शुद्ध हो गया और मै धनुष आदिको फेककर दण्डके समान पृथिवीपर गिर पडा ॥ ७६ ॥ 'हे मुनिश्रेष्ठगण ! इस पाप-समुद्रमे पडते हुए मेरी आप रक्षा कीजिये'—इस प्रकार चिल्लाते हुए मुझे अपने सामने पडा देख वे मुनिश्रेष्ठ मुझसे बोले— ॥ ७७ ॥ 'खडा हो, खडा हो, तेरा सत्सग सफल हो गया है, तेरा अवश्य कल्याण होगा। हम तुझे थोडा-सा उपदेश करते हैं उसीसे तू मुक्त हो जायगा।' तब उन्होने आपसमे मिलकर यह विचार किया कि यद्यपि यह ब्राह्मणाधम अत्यन्त दुराचारी होनेसे श्रेष्ठ पुरुषोके लिये उपेक्षाका ही पात्र है तथापि अब यह शरणमे आ गया है, इसलिये मोक्ष मार्गके उपदेशद्वारा इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी ही चाहिये ॥ ७८-७९ ॥ हे राम ! ऐसा विचारकर उन्होने आपके नामाक्षरोको उलटा करके मुझसे कहा 'तू इसी स्थानपर रहकर एकाग्रचित्तसे सदा 'मरा-मरा' जपा

आगच्छाम पुनर्यावत्तावदुक्त सदा जप ।
इत्युक्त्वा प्रययु सर्वे मुनयो दिव्यदर्शना ॥ ८१ ॥

अह यथोपदिष्ट तैस्तथाकरवमञ्जसा ।
जपन्नेकाग्रमनसा बाह्य विस्मृतवानहम् ॥ ८२ ॥

एव बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिण ।
सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥ ८३ ॥

ततो युगसहस्रान्ते ऋषय पुनरागमन् ।
मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थित ॥ ८४ ॥

वल्मीकान्निर्गतश्चाह नीहारादिव भास्कर ।
मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्व मुनीश्वर ॥ ८५ ॥

वल्मीकात्सम्भवो यस्माद् द्वितीय जन्म तेऽभवत् ।
इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगति रघुकुलोत्तम ॥ ८६ ॥

अह ते राम नाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् ।
अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीत लक्ष्मणेन च ॥ ८७ ॥

राम राजीवपत्राक्ष त्वा मुक्तो नात्र सशय ।
आगच्छ राम भद्र ते स्थल वै दर्शयाम्यहम् ॥ ८८ ॥

एवमुक्त्वा मुनि श्रीमॉल्लक्ष्मणेन समन्वित ।
शिष्यै परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयो ॥ ८९ ॥

तत्र शाला सुविस्तीर्णा कारयामास वासभू ।
प्राक्पश्चिम दक्षिणोदक् शोभन मन्दिरद्वयम् ॥ ९० ॥

जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वित ।
तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे ॥ ९१ ॥

वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽय
राम ससीत सह लक्ष्मणेन ।
देवैर्मुनीन्द्रै सहितो मुदास्ते
स्वर्गे यथा देवपति सशच्या ॥ ९२ ॥

कर ॥ ८० ॥ जबतक हम फिर लौटकर आये तबतक तू सर्वदा हमारे कथनानुसार इसका जाप कर।' ऐसा कहकर वे सब दिव्य-दर्शन मुनीश्वर चले गये ॥ ८१ ॥ तब उन्होने मुझे जैसा उपदेश किया था मैने ठीक वैसा ही किया। इस प्रकार निरन्तर एकाग्रचित्तसे जप करते-करते मुझे बाह्य ज्ञान नही रहा ॥ ८२ ॥ इस तरह बहुत समयतक निश्चलतापूर्वक रहनेसे मुझ सर्वसङ्गविहीनके ऊपर वल्मीक (मिट्टीका ढेर) बन गया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर, एक हजार युग बीतनेपर वे ऋषिगण फिर लौटे और मुझसे कहा—'निकल आओ' यह सुनकर मै तुरत खडा हो गया ॥ ८४ ॥ और जिस प्रकार कुहरेको पार करके सूर्य निकल आता है उसी प्रकार मै वल्मीकसे निकल आया। तब मुनिगणने मुझसे कहा 'हे मुनिवर! तुम वाल्मीकि हो ॥ ८५ ॥ इस समय तुम वल्मीकसे निकले हो इसलिये तुम्हारा यह दूसरा जन्म हुआ है।' हे रघुश्रेष्ठ! ऐसा कहकर वे दिव्यलोकको चले गये ॥ ८६ ॥ हे राम! आपके नामके प्रभावसे मै ऐसा हो गया जो आज सीता और लक्ष्मणके सहित साक्षात् आप कमलनयनको देख रहा हूँ। अहा! मै निस्सन्देह मुक्त हो गया—हे राम! आपका मङ्गल हो, आइये, मै आपको रहनेके लिये स्थान दिखलाता हूँ ॥ ८७-८८ ॥

ऐसा कह शिष्योसे घिरे हुए श्रीमान् मुनिवर वाल्मीकिजीने लक्ष्मणके सहित गङ्गा और पर्वतके बीचके स्थलमे जाकर वहाँ भगवान् रामके रहनेके लिये एक सुविशाल शाला बनवायी, उसमे एक पूर्व-पश्चिम और दूसरा उत्तर-दक्षिण ऐसे दो सुन्दर घर बनाये गये ॥ ८९-९० ॥ उस भव्य भवनमे जानकीके सहित श्रीराम और लक्ष्मण देवताओके समान रहने लगे ॥ ९१ ॥ श्रीवाल्मीकिजीसे भली प्रकार सम्मान पाकर देवता और मुनिजनोके सहित श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे जैसे स्वर्गलोकमे शचीके साथ देवराज इन्द्र रहते है ॥ ९२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अयोध्याकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

सुमन्त्रका प्रत्यागमन, राजा दशरथका स्वर्गवास तथा भरतजीका ननिहालसे आना और वसिष्ठजीके आदेशसे पिताका अन्त्येष्टि-सस्कार करना

श्रीमहादेव उवाच

सुमन्त्रोऽपि तदायोध्या दिनान्ते प्रविवेश ह।
वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य बाष्पाकुलितलोचन ॥ १ ॥

बहिरेव रथ स्थाप्य राजान द्रष्टुमाययौ।
जयशब्देन राजान स्तुत्वा त प्रणनाम ह ॥ २ ॥

ततो राजा नमन्त त सुमन्त्र विह्वलोऽब्रवीत्।
सुमन्त्र राम कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ३ ॥

कुत्र त्यक्तस्त्वया राम किं मा पापिनमब्रवीत्।
सीता वा लक्ष्मणो वापि निर्दय मा किमब्रवीत् ॥ ४ ॥

हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि।
दु खार्णवे निमग्न मा म्रियमाण न पश्यसि ॥ ५ ॥

विलप्यैव चिर राजा निमग्नो दु खसागरे।
एव मन्त्री रुदन्त त प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

राम सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते।
शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिता ॥ ७ ॥

गुहेन किञ्चिदानीत फलमूलादिक च यत्।
स्पृष्ट्वा हस्तेन सम्प्रीत्या नाग्रहीद्विससर्ज तत् ॥ ८ ॥

वटक्षीर समानाय्य गुहेन रघुनन्दन।
जटामुकुटमाबद्ध्य मामाह नृपते स्वयम् ॥ ९ ॥

सुमन्त्र ब्रूहि राजान शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते।
साकेतादधिक सौख्य विपिने नो भविष्यति ॥ १० ॥

मातुर्मे वन्दन ब्रूहि शोक त्यजतु मत्कृते।
आश्वासयतु राजान वृद्ध शोकपरिप्लुतम् ॥ ११ ॥

सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसत्तम।
दु खगद्गदया वाचा राम किञ्चिदवेक्षती ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इधर सायकालके समय सुमन्त्रने भी वस्त्रसे मुख ढाँपकर नेत्रोमे जल भरे हुए अयोध्यापुरीमे प्रवेश किया ॥ १ ॥ रथको बाहर ही खडाकर वे राजाको देखनेके लिये अन्त पुरमे गये और जय-शब्दसे उनकी स्तुति कर उन्हे प्रणाम किया ॥ २ ॥

राजाने सुमन्त्रको नमस्कार करते देख दु खसे व्याकुल होकर कहा—"सुमन्त्र! सीता और लक्ष्मणके सहित राम कहाँ है? ॥ ३ ॥ तुमने रामको कहाँ छोडा है? उन्होने मुझ पापीके लिये क्या कहा? तथा सीता और लक्ष्मणने भी मुझ निर्दयीके लिये क्या कहा है? ॥ ४ ॥ हा राम! हा गुणनिधे! हा प्रियवादिनि सीते! क्या तुम मुझको दु ख-समुद्रमे डूबकर मरते हुए नही देखते हो?" ॥ ५ ॥

इस प्रकार बहुत देरतक विलाप करके राजा दु ख-समुद्रमे डूब गये। महाराजको इस प्रकार रोते देख मन्त्रीने हाथ जोडकर कहा— ॥ ६ ॥ "महाराज! मै राम, सीता और लक्ष्मणको आपके रथमे बैठाकर ले गया था। वे शृङ्गवेरपुरके पास गङ्गाजीके किनारे जाकर टिके ॥ ७ ॥ वहाँ निषादराज गुह कुछ फल-मूलादि ले आया, किन्तु रामजीने उन्हे ग्रहण नही किया, केवल प्रीतिपूर्वक हाथसे छूकर ही छोड दिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने गुहसे वटका दूध मँगवाकर अपनी जटाओका मुकुट बनाया और फिर वे स्वय मुझसे बोले— ॥ ९ ॥ 'सुमन्त्र! महाराजसे कहना वे हमारे लिये शोक न करे, हमे वनमे अयोध्यासे भी अधिक सुख प्राप्त होगा ॥ १० ॥ मातासे भी मेरा प्रणाम कहकर कहना कि मेरे लिये शोक करना छोड दे। महाराज वृद्ध और शोकाकुल है, उन्हे भली प्रकार ढाढस बँधाना' ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर नेत्रोमे जल भरकर कुछ-कुछ रामकी ओर देखते हुए सीताने दु खसे गद्गद कण्ठ हो मुझसे कहा— ॥ १२ ॥

साष्टाङ्ग प्रणिपात मे ब्रूहि श्वश्र्वो पदाम्बुजे ।
इति प्ररुदती सीता गता किञ्चिदवाङ्मुखी ॥ १३ ॥

ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा ।
यावद्गङ्गा समुत्तीर्य गतास्तावदह स्थित ॥ १४ ॥

ततो दु खेन महता पुनरेवाहमागत ।
तत्र रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

कैकेय्यै प्रियभार्यायै प्रसन्नो दत्तवान्वरम् ।
त्व राज्य देहि तस्यैव मत्पुत्र किं विवासित ॥ १६ ॥

कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि ।
कौसल्यावचन श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ॥ १७ ॥

पुन शोकाश्रुपूर्णाक्ष कौसल्यामिदमब्रवीत् ।
दु खेन म्रियमाण मा किं पुनर्दु खयस्यलम् ॥ १८ ॥

इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चय ।
शप्तोऽह बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा ॥ १९ ॥

पुराह यौवने दृप्तश्चापबाणधरो निशि ।
अचर मृगयासक्तो नद्यास्तीरे महावने ॥ २० ॥

तत्रार्धरात्रसमये मुनि कश्चित्तृषार्दित ।
पिपासार्दितयो पित्रोर्जलमानेतुमुद्यत ।
अपूरयज्जले कुम्भ तदा शब्दोऽभवन्महान् ॥ २१ ॥

गज पिबति पानीयमिति मत्वा महानिशि ।
बाण धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिपम् ॥ २२ ॥

हा हतोऽस्मीति तत्राभूच्छब्दो मानुषसूचक ।
कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे ॥ २३ ॥

प्रतीक्षते मा माता च पिता च जलकाङ्क्षया ।
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्तस्ततोऽह पौरुष वच ॥ २४ ॥

शनैर्गत्वाथ तत्पार्श्वे स्वामिन्दशरथोऽस्म्यहम् ।
अजानता मया विद्धस्त्रातुमर्हसि मा मुने ॥ २५ ॥

'दोनो सासुओके चरण-कमलोमे मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम कहना। ऐसा कह कुछ सिर झुकाकर रोती हुई वे वहाँसे चली गयी ॥ १३ ॥ इसके पीछे वे सब नेत्रोमे जल भरे हुए नावपर चढे। जबतक वे गङ्गाजीको पार कर उस पार पहुँचे तबतक मै वही खडा रहा ॥ १४ ॥ फिर वहाँसे चलकर बडे दु खसे मै यहाँ पहुँचा हूँ।''

तब कौसल्याने रोती हुई राजासे इस प्रकार कहा— ॥ १५ ॥ ''राजन्। आपने यदि प्रसन्न होकर अपनी प्रिया कैकेयीको वर दिया तो भले ही आपने उसीके पुत्रको राज्य दिया होता, किन्तु मेरे पुत्रको देशनिकाला क्यो दिया ? ॥ १६ ॥ और अपने-आप ही यह सारी करतूत करके अब आप रोते क्यो है ?'' कौसल्याके ये वचन सुनकर महाराजको ऐसी वेदना हुई मानो घावमे अग्निका स्पर्श हो गया हो ॥ १७ ॥

तब महाराजने नेत्रोमे शोकाश्रु भरकर कौसल्यासे कहा—''मै तो आप ही दु खसे मर रहा हूँ, फिर इस प्रकार मुझे और दु ख क्यो देती हो ? इससे क्या लाभ है ? ॥ १८ ॥ इसमे सन्देह नही कि मेरे प्राण अभी निकलनेवाले है। पूर्वकालमे मेरी मूर्खताके कारण मुझे एक मुनीश्वरने शाप दिया था ॥ १९ ॥ (वह कथा इस प्रकार है—) पहले एक बार मै युवावस्थाके मदसे उन्मत्त हुआ मृगयामे आसक्त होकर रात्रिके समय धनुष और बाण लिये एक घोर वनमे नदीके किनारे घूम रहा था ॥ २० ॥ उस आधी रातके समय किन्ही प्यासे मुनीश्वरने अपने तृषित माता-पिताके निमित्त जल ले जानेके लिये जलमे घडा डुबोया, उस समय उसका महान् शब्द हुआ ॥ २१ ॥ तब यह सोचकर कि इस घोर रात्रिमे कोई हाथी जल पी रहा है, मैने अपने धनुषपर शब्दवेधी बाण चढाकर छोडा ॥ २२ ॥ वहाँपर मनुष्यकी सूचना देनेवाला यह शब्द हुआ 'हाय ! मै मारा गया ! हे विधे ! मैने तो किसीका भी कोई अपराध नही किया था, फिर किसने मुझे मारा ? ॥ २३ ॥ हाय ! मेरे माता-पिता भी जलकी आकाङ्क्षासे मेरी बाट देख रहे होगे।' यह मानुष-वचन सुनकर मै अत्यन्त भयभीत हुआ और धीरेसे उनके पास जाकर बोला—'प्रभो ! मै दशरथ हूँ, मैने ही अनजानमे यह बाण छोडा है, हे मुने ! आप मेरी रक्षा कीजिये' ॥ २४-२५ ॥

इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य पतितो गद्गदाक्षर ।
तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम ॥ २६ ॥

ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वा वैश्योऽह तपसि स्थित ।
पितरौ मा प्रतीक्षेते क्षुत्तृड्भ्या परिपीडितौ ॥ २७ ॥

तयोस्त्वमुदक देहि शीघ्रमेवाविचारयन् ।
न चेत्त्वा भस्मसात्कुर्यात्पिता मे यदि कुप्यति ॥ २८ ॥

जल दत्त्वा तु तौ नत्वा कृत सर्व निवेदय ।
शल्यमुद्धर मे देहात्प्राणास्त्यक्ष्यामि पीडित ॥ २९ ॥

इत्युक्तो मुनिना शीघ्र बाणमुत्पाट्य देहत ।
सजल कलश धृत्वा गतोऽह यत्र दम्पती ॥ ३० ॥

अतिवृद्धावन्धदृशौ क्षुत्पिपासार्दितौ निशि ।
नायाति सलिल गृह्य पुत्र किं वात्र कारणम् ॥ ३१ ॥

अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ तृट्परिपीडितौ ।
आवामुपेक्षते किं वा भक्तिमानावयो सुत ॥ ३२ ॥

इति चिन्ताव्याकुलौ तौ मत्पादन्यासज ध्वनिम् ।
श्रुत्वा प्राह पिता पुत्र किं विलम्ब कृतस्त्वया ॥ ३३ ॥

देह्यावयो सुपानीय पिब त्वमपि पुत्रक ।
इत्येव लपतोर्भीत्या सकाशमगम शनै ॥ ३४ ॥

पादयो प्रणिपत्याहमब्रव विनयान्वित ।
नाह पुत्रस्त्वयोध्याया राजा दशरथोऽस्म्यहम् ॥ ३५ ॥

पापोऽह मृगयासक्तो रात्रौ मृगविहिंसक ।
जलावतारादूरेऽह स्थित्वा जलगत ध्वनिम् ॥ ३६ ॥

श्रुत्वाह शब्दवेधित्वादेक बाणमथात्यजम् ।
हतोऽस्मीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागत ॥ ३७ ॥

जटा विकीर्य पतित दृष्ट्वाह मुनिदारकम् ।
भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्ष रक्षेति चाब्रवम् ॥ ३८ ॥

"ऐसा कहकर मै गद्गद-कण्ठ हो उनके चरणोमे गिर पडा। तब उन मुनीश्वरने मुझसे कहा—'हे नृपश्रेष्ठ! डरो मत ॥ २६ ॥ तुम्हे ब्रह्महत्या नही लगेगी, क्योकि मै तपस्यामे लगा हुआ वैश्य हूँ। मेरे माता-पिता भूख और प्याससे व्याकुल हुए मेरी बाट देखते होगे ॥ २७ ॥ इसलिये अब बिना कुछ सोच-विचार किये शीघ्र ही तुम उन्हे जल दे आओ, नही तो यदि मेरे पिता कुपित हो गये तो तुम्हे भस्म कर डालेगे ॥ २८ ॥ उन्हे जल देकर और नमस्कार कर अपना सारा कृत्य सुना देना। मुझे अत्यन्त पीडा हो रही है, तुम मेरे शरीरमेसे बाण निकाल दो, अब मै प्राण छोडूँगा ॥ २९ ॥

"मुनिके ऐसा कहनेपर मैने तुरत ही उनके शरीरसे बाण निकाल दिया और जलका घडा लेकर, जहाँ उनके माता-पिता थे, वहाँ गया ॥ ३० ॥ उस समय वे इस प्रकार चिन्तामे व्याकुल हो रहे थे—'हम अत्यन्त वृद्ध और आँखोसे लाचार है तथा भूख-प्याससे पीडित हो रहे है, क्या कारण है कि इस रात्रिके समयमे हमारा पुत्र अभीतक जल लेकर नही लौटा, हमारा और कोई सहारा नही है, हम वृद्ध, शोचनीय और प्याससे अत्यन्त व्याकुल है। क्या कारण है कि ऐसी अवस्थामे हमारा पितृभक्त पुत्र हमारी उपेक्षा कर रहा है?' इसी समय मेरे पैरोकी आहट सुनकर पिताने पूछा—'बेटा! आज तुमने इतनी देरी कैसे की? ॥ ३१—३३ ॥ लाओ शीघ्र ही हमे पवित्र जल पिलाओ और तुम भी पिओ।' उनके इस प्रकार कहनेपर मै डरते-डरते धीरेसे उनके पास गया ॥ ३४ ॥ और उनके चरणोमे प्रणाम करके अति नम्रतापूर्वक कहा—मै आपका पुत्र नही हूँ बल्कि अयोध्याका राजा दशरथ हूँ ॥ ३५ ॥ मै पापात्मा मृगयाकी आसक्तिके कारण रात्रिके समय पशुओका वध करता फिरता था। यद्यपि मैं उस समय जलके तीरसे दूर था किन्तु शब्दवेधी होनेके कारण जलमे हुए शब्दको सुनकर वहाँ मृग समझकर उसे मारनेके लिये मैंने एक बाण छोड दिया। पर जब मैंने यह शब्द सुना कि 'मैं मारा गया' तो डरता हुआ वहाँ आया ॥ ३६-३७ ॥ वहाँ आनेपर जब मैने एक मुनिकुमारको जटा फैलाये पडे देखा तो भयसे उसके चरण पकड लिये और 'रक्षा करो, रक्षा करो', ऐसा कहने

मा भैषीरिति मा प्राह ब्रह्महत्याभय न ते ।
मत्पित्रो सलिल दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम् ॥ ३९ ॥

इत्युक्तो मुनिना तेन ह्यागतो मुनिहिंसक ।
रक्षेता मा दयायुक्तौ युवा हि शरणागतम् ॥ ४० ॥

इति श्रुत्वा तु दु खार्तौ विलप्य बहु शोच्य तम् ।
पतितौ नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन् ॥ ४१ ॥

ततो नीतौ सुतो यत्र मया तौ वृद्धदम्पती ।
स्पृष्ट्वा सुत तौ हस्ताभ्या बहुशोऽथ विलेपतु ॥ ४२ ॥

हाहेति क्रन्दमानौ तौ पुत्रपुत्रेत्यवोचताम् ।
जल देहीति पुत्रेति किमर्थ न ददास्यलम् ॥ ४३ ॥

ततो मामूचतु शीघ्र चितिं रचय भूपते ।
मया तदैव रचिता चितिस्तत्र निवेशिता ।
त्रयस्तत्राग्निसंस्पृष्टो दग्धास्ते त्रिदिव ययु ॥ ४४ ॥

तत्र वृद्ध पिता प्राह त्वमप्येव भविष्यसि ।
पुत्रशोकेन मरण प्राप्स्यसे वचनान्मम ॥ ४५ ॥

स इदानीं मम प्राप्त शापकालोऽनिवारित ।
इत्युक्त्वा विललापाथ राजा शोकसमाकुल ॥ ४६ ॥

हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर ।
त्वद्वियोगादह प्राप्तो मृत्यु कैकेयिसम्भवम् ॥ ४७ ॥

वदन्नेव दशरथ प्राणास्त्यक्त्वा दिव गत ।
कौसल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोषित ॥ ४८ ॥

चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् ।
वसिष्ठ प्रययौ तत्र प्रातर्मन्त्रिभिरावृत ॥ ४९ ॥

तैलद्रोण्या दशरथ क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत् ।
गच्छत त्वरित साश्वा युधाजिन्नगर प्रति ॥ ५० ॥

तत्रास्ते भरत श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहित प्रभु ।
उच्यता भरत शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया ॥ ५१ ॥

लगा ॥ ३८ ॥ तब उन्होने मुझसे कहा—'डरो मत, तुम्हे ब्रह्महत्याका भय नही है । मेरे माता-पिताको जल देकर उन्हे प्रणाम कर जीवनदान माँगो' ॥ ३९ ॥ मुनिकुमारके ऐसा कहनेपर यह मुनिहिंसक आपके पास आया है । आप दोनो बडे दयाशील हैं, मै आपकी शरण आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें' ॥ ४० ॥

"यह सुनकर वे दु खार्त होकर उसके लिये अत्यन्त शोक करते और रोते हुए पृथिवीपर गिर पडे और बोले—'जहाँ हमारा बेटा है, हमे तुरत ही वहाँ ले चलो' ॥ ४१ ॥ तब जहाँ वह लडका पडा था वही उन वृद्ध-दम्पतिको मै ले गया और वे उसे हाथोसे स्पर्श कर अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ४२ ॥ वे 'हा पुत्र ! हा पुत्र !' कहकर रोते हुए बोले—'बेटा ! हमे जल दो, हमे जल दो ! आज जल क्यो नही देते हो ?' ॥ ४३ ॥ फिर उन्होने मुझसे कहा—'राजन् ! शीघ्र ही चिता बनाओ !' मैंने तुरत ही वहाँ चिता बना दी । तब वे तीनो उसपर चढ गये और अग्नि लगानेपर उसमे भस्म होकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ ४४ ॥ उस समय वृद्ध पिताने मुझसे कहा—'तुम्हारे लिये भी ऐसा ही होगा, तुम भी मेरे वचनसे पुत्र-शोकसे ही मरोगे' ॥ ४५ ॥

"वही अनिवार्य शापकाल इस समय मेरे लिये उपस्थित हुआ है ।" ऐसा कहकर राजा दशरथ अत्यन्त शोकाकुल होकर विलाप करने लगे— ॥ ४६ ॥ "हा पुत्र राम ! हा सीते ! हा गुणाकर लक्ष्मण ! तुम्हारे वियोगसे मै कैकेयीसे उपस्थित की हुई मृत्युको प्राप्त हो रहा हूँ" ॥ ४७ ॥

इस प्रकार कहते हुए महाराज दशरथ प्राण त्यागकर स्वर्गलोकको चले गये । उस समय कौसल्या, सुमित्रा और अन्यान्य रानियाँ छाती पीट-पीटकर रोने और विलाप करने लगी । प्रात काल होनेपर वहाँ मन्त्रियोके सहित मुनिवर वसिष्ठजी आये ॥ ४८-४९ ॥ और राजा दशरथके शवको एक तैलपूर्ण नौकामे रखवाकर दूतोसे बोले—"तुमलोग शीघ्र ही घोडोपर चढकर युधाजित्की राजधानीको जाओ ॥ ५० ॥ वहाँ शत्रुघ्नके सहित श्रीमान् महाराज भरत विराजमान है । उनसे मेरी आज्ञासे जाकर

अयोध्या प्रति राजान कैकेयीं चापि पश्यतु ।
इत्युक्तास्त्वरित दूता गत्वा भरतमातुलम् ॥ ५२ ॥

युधाजित प्रणम्योचुर्भरत सानुज प्रति ।
वसिष्ठस्त्वाब्रवीद्राजन् भरत सानुज प्रभु ॥ ५३ ॥

शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्यामविचारयन् ।
इत्याज्ञप्तोऽथ भरतस्त्वरित भयविह्वल ॥ ५४ ॥

आययौ गुरुणादिष्ट सह दूतैस्तु सानुज ।
राज्ञो वा राघवस्यापि दु ख किञ्चिदुपस्थितम् ॥ ५५ ॥

इति चिन्तापरो मार्गे चिन्तयन्नगर ययौ ।
नगर भ्रष्टलक्ष्मीक जनसम्बाधवर्जितम् ॥ ५६ ॥

उत्सवैश्च परित्यक्त दृष्ट्वा चिन्तापरोऽभवत् ।
प्रविश्य राजभवन राजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥ ५७ ॥

अपश्यत्कैकेयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् ।
ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वित ॥ ५८ ॥

आगत भरत दृष्ट्वा कैकेयी प्रेमसम्भ्रमात् ।
उत्थायालिङ्ग्य रभसा स्वाङ्कमारोप्य सस्थिता ॥ ५९ ॥

मूर्ध्न्यवघ्राय पप्रच्छ कुशल स्वकुलस्य सा ।
पिता मे कुशली भ्राता माता च सुभलक्षणा ॥ ६० ॥

दिष्ट्या त्वमद्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक ।
इति पृष्ट स भरतो मात्रा चिन्ताकुलेन्द्रिय ॥ ६१ ॥

दूयमानेन मनसा मातर समपृच्छत ।
मात पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह सस्थिता ॥ ६२ ॥

त्वया विना न मे तात कदाचिद्रहसि स्थित ।
इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद ॥ ६३ ॥

अदृष्ट्वा पितर मेऽद्य भय दु ख च जायते ।
अथाह कैकेयी पुत्र किं दु खेन तवानघ ॥ ६४ ॥

इस प्रकार कहना कि भरत शीघ्र ही अयोध्यापुरीमे आकर महाराज दशरथ और कैकेयीका दर्शन करे ।''

वसिष्ठजीके इस प्रकार कहनेपर दूतोने तुरत ही जाकर भरतके मामा युधाजित् और छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित भरतको प्रणाम करके कहा—''राजन् ! वसिष्ठजीने आपके लिये यह कहा है कि छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित महाराज भरत तुरत ही बिना कुछ आगा-पीछा सोचे अयोध्यापुरीमे चले आवे ।'' ऐसी आज्ञा सुनकर श्रीभरतजी भयसे व्याकुल हो तुरत ही गुरुजीके आदेशमे छोटे भाईके सहित दूतोके साथ चले और यह सोचकर कि 'अवश्य ही महाराज या श्रीरघुनाथजीपर कोई घोर सकट उपस्थित हुआ है' ॥ ५१—५५ ॥ मार्गमे मन-ही-मन चिन्ता करते नगरमे पहुँचे । वहाँ उन्होने देखा कि नगर शोभाहीन, जनसमूहसे रहित तथा उत्सवहीन हो रहा है । यह देखकर वे अत्यन्त चिन्तित हुए । राजभवनमे जाकर देखा तो वह राजलक्ष्मीसे शून्य हो रहा है और वहाँ अकेली कैकेयी एक आसनपर बैठी हुई है । माताको देखकर उन्होने भक्तिपूर्वक उसके चरणोमे सिर रखकर प्रणाम किया ॥ ५६—५८ ॥

भरतजीको आये देख माता कैकेयीने उन्हे प्रेमवश शीघ्रतासे उठाकर हृदय लगाया और अपनी गोदमे बैठा लिया ॥ ५९ ॥ फिर उनका सिर सूँघकर अपने कुलकी कुशल पूछी । वह बोली—''मेरे पिता, भाई और शुभलक्षणा माता कुशलपूर्वक हैं न ? ॥ ६० ॥ बेटा ! आज बडे भाग्यसे मैने तुम्हे सकुशल देख पाया है ।''

माताके इस प्रकार पूछनेपर भरतजीने चिन्ताकुल होकर दु खी चित्तसे मातासे पूछा—''माँ ! मेरे पिताजी कहाँ है जो तुम यहाँ अकेली बैठी हो ? ॥ ६१-६२ ॥ माँ ! तुम्हारे बिना तो पिताजी एकान्तमे कभी नही रहते थे, किन्तु इस समय वे दिखायी नही देते, सो बताओ वे कहाँ है ? ॥ ६३ ॥ पिताजीको न देखनेसे आज मुझे अत्यन्त भय और दु ख हो रहा है ।''

तब कैकेयीने कहा—''हे अनघ ! तुम्हारे लिये दु ख-

या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम् ।
ता गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल ॥ ६५ ॥

तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरत शोकविह्वल ।
हा तात क्व गतोऽसि त्व त्यक्त्वा मा वृजिनार्णवे ॥ ६६ ॥

असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मा क्व गतोऽसि भो ।
इति विलपित पुत्र पतित मुक्तमूर्धजम् ॥ ६७ ॥

उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत् ।
समाश्वसिहि भद्र ते सर्व सम्पादित मया ॥ ६८ ॥

तामाह भरतस्तातो म्रियमाण किमब्रवीत् ।
तमाह कैकेयी देवी भरत भयवर्जिता ॥ ६९ ॥

हा राम राम सीतेति लक्ष्मणेति पुन पुन ।
विलपन्नेव सुचिर देह त्यक्त्वा दिव ययौ ॥ ७० ॥

तामाह भरतो हेऽम्ब राम सन्निहितो न किम् ।
तदानीं लक्ष्मणो वापि सीता वा कुत्र ते गता ॥ ७१ ॥

कैकेय्युवाच

रामस्य यौवराज्यार्थ पित्रा ते सम्भ्रम कृत ।
तव राज्यप्रदानाय तदाह विघ्नमाचरम् ॥ ७२ ॥

राज्ञा दत्त हि मे पूर्व वरदेन वरद्वयम् ।
याचित तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम् ॥ ७३ ॥

राज्य रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् ।
तत सत्यपरो राजा राज्य दत्त्वा तवैव हि ॥ ७४ ॥

राम सम्प्रेषयामास वनमेव पिता तव ।
सीताप्यनुगता राम पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥ ७५ ॥

सौभ्रात्र दर्शयन्राममनुयातोऽपि लक्ष्मण ।
वन गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥ ७६ ॥

प्रलपन् राम रामेति ममार नृपसत्तम ।
इति मातुर्वच श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुम ॥ ७७ ॥

की क्या बात है ? ॥ ६४ ॥ हे पितृवत्सल ! अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले धर्मपरायण पुरुषोकी जो गति होती हे उसीको आज तुम्हारे पिता भी प्राप्त हुए है'' ॥ ६५ ॥

यह सुनते ही भरत शोकाकुल होकर पृथिवीमे गिर पडे और बोले—''हा तात ! हा तात ! मुझे दु ख-समुद्रमे छोडकर आप कहाँ चले गये ? ॥ ६६ ॥ हाय ! महाराज रामको मुझे सौपे बिना ही आप कहाँ चले गये ?'' इस प्रकार विलाप करते और बिथुरे हुए केशोसे पृथिवीपर पडे अपने पुत्रको उठाकर कैकेयीने उसके आँसू पोछकर कहा—''बेटा ! धीरज रखो, तुम्हारा कल्याण हो। मैने तुम्हारे लिये सब कुछ ठीक कर लिया है'' ॥ ६७-६८ ॥

तब भरतजीने पूछा—''मरते समय महाराजने क्या कहा था ?'' इसपर कैकेयीदेवीने निर्भय होकर भरतजीसे कहा— ॥ ६९ ॥ ''वे 'हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण !' इस प्रकार बहुत समयतक बारम्बार विलाप करते हुए अपना शरीर त्यागकर स्वर्गको गये है'' ॥ ७० ॥

तब भरतजीने पूछा—''माता ! तो क्या उस समय राम, सीता और लक्ष्मण भी उनके पास नही थे ? वे तीनो उस समय कहाँ गये थे ?'' ॥ ७१ ॥

कैकेयी बोली—''तुम्हारे पिताने रामको युवराज बनानेकी तैयारी की थी। उस समय तुम्हे राज्य दिलानेके लिये मैने उसमे विघ्न खडा कर दिया ॥ ७२ ॥ पूर्वकालमे एक बार प्रसन्न होकर वरदाता राजाने मुझे दो वर देनेको कहा था। इस समय उनमेसे एकके द्वारा मैने तुम्हारे लिये सम्पूर्ण राज्य और दूसरेसे रामके लिये मुनिव्रतपूर्वक वनवास माँग लिया। इसलिये तुम्हारे पिता सत्यसन्ध महाराज दशरथने तुम्हे ही राज्य देकर रामको वनमे भेज दिया। पातिव्रत्यका पालन करनेवाली सीता भी रामके साथ ही वनमे चली गयी ॥ ७३—७५ ॥ तथा लक्ष्मण भी भ्रातृस्नेह प्रकट करते हुए रामके अनुगामी हुए। इस प्रकार इन सबके वनको चले जानेपर उन्हीका स्मरण करते हुए और 'राम ! राम !' करके विलाप करते हुए नृपश्रेष्ठ महाराजने शरीर छोड दिया।'' माताके ये वचन सुनकर भरतजी वज्राहत वृक्षके समान अचेत होकर पृथिवीपर गिर पडे।

पपात भूमौ नि सज्ञस्त दृष्ट्वा दु खिता तदा ।
कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोकेन किं तव ॥ ७८ ॥

राज्ये महति सम्प्राप्ते दु खस्यावसर कुत ।
इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातर प्रदहन्निव ॥ ७९ ॥

असम्भाष्यासि पापे मे घोरे त्व भर्तृघातिनी ।
पापे त्वद्गर्भजातोऽह पापवानस्मि साम्प्रतम् ।
अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विष वा भक्षयाम्यहम् ॥ ८० ॥

खड्गेन वाथ चात्मान हत्वा यामि यमक्षयम् ।
भर्तृघातिनि दुष्टे त्व कुम्भीपाक गमिष्यसि ॥ ८१ ॥

इति निर्भर्त्स्य कैकेयीं कौसल्याभवन ययौ ।
सापि त भरत दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ॥ ८२ ॥

पादयो पतितस्तस्या भरतोऽपि तदारुदत् ।
आलिङ्ग्य भरत साध्वी राममाता यशस्विनी ।
कृशातिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत् ॥ ८३ ॥

पुत्र त्वयि गते दूरमेव सर्वमभूदिदम् ।
उक्त मात्रा श्रुत सर्व त्वया ते मातृचेष्टितम् ॥ ८४ ॥

पुत्र सभार्यो वनमेव यात
सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्र ।
चीराम्बरो बद्धजटाकलाप
सन्त्यज्य मा दु खसमुद्रमग्नाम् ॥ ८५ ॥

हा राम हा मे रघुवशनाथ
जातोऽसि मे त्व परत परात्मा ।
तथापि दु ख न जहाति मा वै
विधिर्बलीयानिति मे मनीषा ॥ ८६ ॥

स एव भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भृश शुचा ।
पादौ गृहीत्वा प्राहेद शृणु मातर्वचो मम ॥ ८७ ॥

कैकेय्या यत्कृत कर्म रामराज्याभिषेचने ।
अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ॥ ८८ ॥

पाप मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।
हत्वा वसिष्ठ खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ॥ ८९ ॥

उन्हे ऐसी दशामे देख कैकेयीने दु खित होकर फिर कहा—"बेटा ! तुम शोक क्यो करते हो ? ॥ ७६—७८ ॥ ऐसे महान् राज्यको पानेपर दु खका कारण ही कहाँ रह जाता है ?" माताको इस प्रकार कहती देख भरतजीने क्रोधसे जलते हुए-से कहा— ॥ ७९ ॥ "अरी पापिनी ! तू बात करनेयोग्य नही है ! अरी घोरे ! तू अपने पतिकी हत्या करनेवाली है ! अरी पापे ! तेरे गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण अब तो मै भी प्रत्यक्ष ही महापापी हूँ। मै या तो अग्निमे प्रवेश कर जाऊँगा या विष खा लूँगा ॥ ८० ॥ अथवा खड्गसे आत्मघात करके यमलोकको चला जाऊँगा। हे भर्तृघातिनि ! हे दुष्टे ! तू भी कुम्भीपाक नरकमे पडेगी" ॥ ८१ ॥

कैकेयीको इस प्रकार डाँटकर वे कौसल्याक घर गये। भरतको देखते ही माता कौसल्या मुक्तकण्ठसे रोने लगी ॥ ८२ ॥ तब भरतजी भी उनके चरणोमे पडकर रोने लगे। उन्हे गले लगाकर, (चिन्तासे) महादुर्बल और अति दीनवदना यशस्विनी राममाता कौसल्याने नेत्रोमे जल भरकर कहा— ॥ ८३ ॥ "बेटा ! तुम्हारे बाहर चले जानेसे जो-जो अनर्थ हुए है, अपनी माताकी वे सब करतूते तुमने उसके मुखसे सुन ही ली होगी ॥ ८४ ॥ मेरा पुत्र रघुश्रेष्ठ रामचन्द्र अपनी पत्नी सीता और लक्ष्मणके सहित चीर-वस्त्र धारण कर और जटाजूट बाँधकर मुझे दु ख-समुद्रमे डुबोकर वनको चला गया ॥ ८५ ॥ हा राम ! हा मेरे रघुवशशिरोमणि ! आप साक्षात् परम पुरुष परमात्माने मेरे गर्भसे जन्म लिया, तथापि दु खने मेरा पल्ला नही छोडा। इससे मेरा विचार है कि विधाता ही बलवान् है" ॥ ८६ ॥

भरतजीने उन्हे इस प्रकार शोकसे अत्यन्त विलाप करती देख उनके चरण पकडकर कहा— "माता ! मेरी बात सुनो— ॥ ८७ ॥ कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके समय जो कुछ करतूत की है अथवा उसने और भी जो कोई कार्य किया है उसे यदि मै जानता होऊँ अथवा उसमे मेरी सम्मति हो ॥ ८८ ॥ तो हे मात ! मुझे सौ ब्रह्महत्याओका पाप लगे ! अथवा अरुन्धतीके सहित श्रीवसिष्ठजीको खड्गसे मारनेसे जो पाप होता है

भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम्।
इत्येव शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा॥ ९० ॥

कौसल्या तमथालिङ्ग्य पुत्र जानामि मा शुचः।
एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम्॥ ९१ ॥

वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमन्दिरम्।
रुदन्तं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम्॥ ९२ ॥

वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः।
भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः॥ ९३ ॥

अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वा रामं सुतं हरिम्।
अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्द्धासनं प्रभुः॥ ९४ ॥

तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम्।
आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः॥ ९५ ॥

शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम्।
विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन॥ ९६ ॥

पिता वा तनयो वापि यदि मृत्युवशं गतः।
मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम्॥ ९७ ॥

निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां यदा।
भवेद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च॥ ९८ ॥

जन्मवान्यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हि तं मृत्युरन्वगात्।
तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा॥ ९९ ॥

स्वकर्मवशतः सर्वजन्तूनां प्रभवाप्ययौ।
विजानन्नप्यविद्वान्यः कथं शोचति बान्धवान्॥ १०० ॥

ब्रह्माण्डकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः।
शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते॥ १०१ ॥

चलपत्रान्तलग्नाम्बुबिन्दुवत्क्षणभङ्गुरम्।
आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव॥ १०२ ॥

देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान्पुनः।
तद्देहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः॥ १०३ ॥

वही मारा पाप मुझे भी लगे।" इस प्रकार शपथ करके भरतजी रो उठे॥ ८९-९०॥ तब कौसल्याने उन्हें हृदयसे लगाकर कहा—"बेटा! मैं यह सब जानती हूँ, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो।"

इसी समय भरतजीका आना सुनकर मन्त्रियोंके सहित वसिष्ठजी राजभवनमें आये और भरतको रोते देखकर आदरपूर्वक बोले—॥ ९१-९२॥ "महाराज दशरथ वृद्ध, ज्ञानी और सत्य-पराक्रमी थे। वे मनुष्यजन्मके समस्त सुख भोगकर, बहुत-सी दक्षिणाके सहित अश्वमेधादि यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन कर और रामचन्द्रके रूपमें साक्षात् विष्णुभगवान्‌को पुत्ररूपसे पाकर अन्तमें स्वर्गलोकमें जाकर देवराज इन्द्रके आधे आसनके अधिकारी हुए हैं॥ ९३-९४॥ वे सर्वथा अशोचनीय और मोक्षके पात्र हैं, उनके लिये तुम वृथा ही शोक करते हो, देखो, आत्मा तो नित्य-अविनाशी, शुद्ध और जन्म-नाशादिसे रहित है॥ ९५॥ और शरीर जड, अत्यन्त अपवित्र और नाशवान् है। इस प्रकार विचार करनेपर शोकके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता॥ ९६॥ यदि कोई पिता या पुत्र मर जाता है तो मूढजन ही उसके लिये छाती पीटकर रोते हैं॥ ९७॥ किन्तु इस असार संसारमें यदि ज्ञानियोंको किसीसे वियोग होता है तो वह उनके लिये वैराग्यका कारण होता है और सुख तथा शान्तिका विस्तार करता है॥ ९८॥ यदि किसीने इस लोकमें जन्म लिया है तो मृत्यु भी अवश्य ही उसके साथ लगी हुई है। अतः जन्म लेनेवालोंके लिये मृत्यु सर्वदा अनिवार्य है॥ ९९॥ 'अपने कर्मानुसार ही सब प्राणियोंके जन्म-मरण होते हैं' यह जानकर भी देखो मूढलोग अपने बन्धु-बान्धवोंके लिये कैसे शोक करते हैं॥ १००॥ करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेकों सृष्टियाँ बीत गयीं, ये सम्पूर्ण समुद्र एक दिन सूख जायँगे, फिर इस क्षणिक जीवनमें भला क्या आस्था की जाय?॥ १०१॥ यह आयु हिलते हुए पत्तेकी नोकपर लटकती हुई जलकी बूँदके समान क्षणभङ्गुर है, असमयमें ही छोड़कर चली जाती है, उसका तुम क्या विश्वास करते हो?॥ १०२॥ इस जीवात्माने अपने पूर्व-देह-कृत कर्मोंसे यह शरीर धारण किया है और फिर इस देहके कर्मोंसे यह और शरीर धारण करेगा। इसी प्रकार आत्माको सदा पुनः-पुनः देहकी

यथा त्यजति वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम् ।
तथा जीर्णं परित्यज्य देही देह पुनर्नवम् ॥ १०४ ॥

भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसर कुत ।
आत्मा न म्रियते जातु जायते न च वर्धते ॥ १०५ ॥

षड्भावरहितोऽनन्त सत्यप्रज्ञानविग्रह ।
आनन्दरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी लयविवर्जित ॥ १०६ ॥

एक एव परो ह्यात्मा ह्यद्वितीय सम स्थित ।
इत्यात्मान दृढ ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोक कुरु क्रियाम् ॥ १०७ ॥

तैलद्रोण्या पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवै सह ।
कृत्य कुरु यथान्यायमस्माभि कुलनन्दन ॥ १०८ ॥

इति सम्बोधित साक्षाद्गुरुणा भरतस्तदा ।
विसृज्याज्ञानज शोक चक्रे सविधिवत्क्रियाम् ॥ १०९ ॥

गुरुणोक्तप्रकारेण आहिताग्नेर्यथाविधि ।
सस्कृत्य स पितुर्देह विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ११० ॥

एकादशेऽहनि प्राप्ते ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
भोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रश ॥ १११ ॥

उद्दिश्य पितर तत्र ब्राह्मणेभ्यो धन बहु ।
ददौ गवा सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च ॥ ११२ ॥

अवसत्स्वगृहे तत्र राममेवानुचिन्तयन् ।
वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभि परिवारित ॥ ११३ ॥

रामेऽरण्य प्रयाते सह जनकसुता-
लक्ष्मणाभ्या सुघोर
माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदय
दर्शनादेव सद्य ।
गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिल
दूरतोऽपास्य राज्य
राम सीतासमेत स्मितरुचिरमुख
नित्यमेवानुसेवे ॥ ११४ ॥

प्राप्ति होती रहती है ॥ १०३ ॥ मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्रोको उतारकर फिर नये वस्त्र पहन लेता है उसी प्रकार देहधारी जीव पुराने शरीरको छोडकर नवीन शरीर धारण कर लेता है। अत इसमे शोकका क्या कारण है ? क्योकि आत्मा तो न कभी मरता है, न जन्मता है और न बढता ही है ॥ १०४-१०५ ॥ वह षड्-भाव-विकारोसे रहित, अनन्त, सच्चित्स्वरूप, आनन्दरूप, बुद्धि आदिका साक्षी और अविनाशी है ॥ १०६ ॥ वह परमात्मा एक, अद्वितीय और समभावसे स्थित है। इस प्रकार तुम आत्माका दृढ ज्ञान प्राप्त कर शोकरहित हो समस्त कार्य करो ॥ १०७ ॥ हे कुलनन्दन भरत ! अपने पिताका शरीर तैलकी नावमेसे निकालकर मन्त्रियो और हम सब ऋषियोके साथ उसका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि-सस्कार करो'' ॥ १०८ ॥

तब गुरुजीके इस प्रकार समझानेपर भरतजीने अज्ञानजन्य शोकको छोडकर राजाका विधिवत् अन्त्य कत्य किया ॥ १०९ ॥ गुरुजीके कथनानुसार जैसे अग्निहोत्रीका अन्तिम सस्कार करना चाहिये उसी प्रकार विधिपूर्वक पिताके देहका शास्त्रानुकूल सस्कार कराकर ॥ ११० ॥ फिर एकादशाह आनेपर सैकडो-हजारो वेदज्ञ ब्राह्मणोको विधिवत् भोजन कराया ॥ १११ ॥ तथा पिताके उद्देश्यसे ब्राह्मणोको बहुत-सा धन, हजारो गौएँ, अनेको गाँव और रत्न तथा वस्त्रादि दिये ॥ ११२ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीका ही स्मरण करते हुए वे गुरु वसिष्ठजी, भाई शत्रुघ्न और मन्त्रियोके साथ अपने घरमे रहने लगे ॥ ११३ ॥ घरमे रहते हुए वे मन-ही-मन सोचा करते थे कि 'जनकनन्दिनी महारानी सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरघुनाथजीके भयकर वनमे चले जानेसे माता कैकेयी अपने दर्शनमात्रसे ही राक्षसीके समान मेरे हृदयमे दाह उत्पन्न करती है। अत अब मै निस्सन्देह शीघ्र ही सब राज-पाट छोडकर वनको जाऊँगा और मधुर मुसकानसे जिनका मुखारविन्द अति शोभित हो रहा है उन राम और सीताकी नित्यप्रति सेवा करूँगा' ॥ ११४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अयोध्याकाण्डे सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

भरतजीका वनको प्रस्थान, मार्गमे गुह और भरद्वाजजीसे भेट तथा चित्रकूटदर्शन

श्रीमहादेव उवाच

वसिष्ठो मुनिभि सार्धमन्त्रिभि परिवारित ।
राज्ञ सभा देवसभासन्निभामविशद्विभु ॥ १ ॥

तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापर ।
आनीय भरत तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥ २ ॥

अब्रवीद्वचन देशकालोचितमरिन्दमम् ।
वत्स राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात् ॥ ३ ॥

कैकेय्या याचित राज्य त्वदर्थे पुरुषर्षभ ।
सत्यसन्धो दशरथ प्रतिज्ञाय ददौ किल ॥ ४ ॥

अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम् ।
तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने ॥ ५ ॥

रामो राजाधिराजश्च वय तस्यैव किङ्करा ।
श्व प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥ ६ ॥

अह यूय मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना ।
हनिष्याम्यधुनैवाह कैकेयीं मातृगन्धिनीम् ॥ ७ ॥

किन्तु मा नो रघुश्रेष्ठ स्त्रीहन्तार सहिष्यते ।
तच्छ्वोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान् ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नसहितस्तूर्ण यूयमायात वा न वा ।
रामो यथा वने यातस्तथाह वल्कलाम्बर ॥ ९ ॥

फलमूलकृताहार शत्रुघ्नसहितो मुने ।
भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ॥ १० ॥

इति निश्चित्य भरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् ।
साधुसाध्विति त सर्वे प्रशशसुर्मुदान्विता ॥ ११ ॥

तत प्रभाते भरत गच्छन्त सर्वसैनिका ।
अनुजग्मु सुमन्त्रेण नोदिता साश्वकुञ्जरा ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! एक दिन मुनीश्वरोके सहित मन्त्रियोसे घिरे हुए भगवान् वसिष्ठजी देवसभाके सदृश राजसभामे आये ॥ १ ॥ वहाँ दूसरे ब्रह्माजीके समान आसनपर विराजमान श्रीवसिष्ठजीने भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजीको बुलाकर आसनपर बैठाया ॥ २ ॥ और उन शत्रुदमन भरतजीसे इस प्रकार देशकालोचित वाक्योमे कहा—"वत्स ! तुम्हारे पिताके कथनानुसार आज हम तुम्हे राजपदपर अभिषिक्त करेगे ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! कैकेयीने तुम्हारे लिये राजा दशरथसे राज्य माँगा था। राजा सत्यपरायण थे, इसलिये प्रतिज्ञा करनेके कारण उन्होने उसे दे दिया ॥ ४ ॥ अत मुनिजनोद्वारा मन्त्रोच्चारपूर्वक आज तुम्हारा अभिषेक होना चाहिये।"

यह सुनकर भरतजी बोले—"हे मुनिनाथ ! राज्यसे मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥ ५ ॥ महाराज राम ही राजाधिराज है, हम तो उन्हीके दास है। कल प्रात काल रामजीको लानेके लिये हम शीघ्र ही वनको जायँगे ॥ ६ ॥ मै, आप सब लोग और राक्षसी कैकेयीके सिवा अन्य सब माताएँ—ये सभी वनको चलेगे। मै क्या करूँ ? मे तो इस नाममात्रकी माता कैकेयीको अभी मार डालता, किंतु श्रीरघुनाथजी मुझ स्त्रीहत्यारेको क्षमा न करेगे। अत कुछ भी हो, कल प्रात काल होते ही, आपलोग चले या न चले मै तो शत्रुघ्नके सहित पैदल ही दण्डकारण्यको जाऊँगा। हे मुने ! जिस प्रकार रामजी गये है उसी प्रकार जबतक रामचन्द्रजी न लौटेगे तबतक मै भी शत्रुघ्नके सहित वल्कल-वस्त्र और जटाजूट धारणकर कन्द-मूल-फलादिका भोजन करूँगा और पृथिवीपर शयन करूँगा" ॥ ७—१० ॥

ऐसा निश्चय कर भरतजी मौन हो गये। तब सब लोग प्रसन्न होकर 'साधु-साधु' कहकर उनकी प्रशसा करने लगे ॥ ११ ॥

तदनन्तर प्रात काल होनेपर भरतजीके कूच करते समय हाथी और घोडोके सहित समस्त सैनिक सुमन्त्र-

कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजा ।
छादयन्तो भुव सर्वे पृष्ठत पार्श्वतोऽग्रत ॥ १३ ॥

शृङ्गवेरपुर गत्वा गङ्गाकूले समन्तत ।
उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिचोदिता ॥ १४ ॥

आगत भरत श्रुत्वा गुह शङ्कितमानस ।
महत्या सेनया सार्धमागतो भरत किल ॥ १५ ॥

पाप कर्तु न वा याति रामस्याविदितात्मन ।
गत्वा तद्धृदय ज्ञेय यदि शुद्धस्तरिष्यति ॥ १६ ॥

गङ्गा नोचेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधा ।
ज्ञातयो मे समायत्ता पश्यन्त सर्वतोदिशम् ॥ १७ ॥

इति सर्वान्समादिश्य गुहो भरतमागत ।
उपायनानि सगृह्य विविधानि बहून्यपि ॥ १८ ॥

प्रययौ ज्ञातिभि सार्ध बहुभिर्विविधायुधै ।
निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्तत ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा भरतमासीन सानुज सह मन्त्रिभि ।
चीराम्बर घनश्याम जटामुकुटधारिणम् ॥ २० ॥

राममेवानुशोचन्त रामरामेति वादिनम् ।
ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥

शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम् ।
पृष्ट्वानामयमव्यग्र सखायमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

भ्रातस्त्व राघवेणात्र समेत समवस्थित ।
रामेणालिङ्गित सार्द्रनयनेनामलात्मना ॥ २३ ॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यत्त्वया परिभाषित ।
रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया ॥ २४ ॥

यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मा नय सुव्रत ।
सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तद्दर्शयस्व मे ॥ २५ ॥

त्व रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् ।
इति सस्मृत्य सस्मृत्य राम साश्रुविलोचन ॥ २६ ॥

की प्रेरणासे उनके साथ चले ॥ १२ ॥ कौसल्या आदि महारानियाँ तथा वसिष्ठ आदि द्विजगण पृथिवीको आच्छादन कर उनके आगे-पीछे और इधर-उधर यथायोग्य रीतिसे चलने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार शृङ्गवेरपुर पहुँचनेपर वह महान् सेना शत्रुघ्नकी प्रेरणासे गङ्गातटपर जहाँ-तहाँ ठहर गयी ॥ १४ ॥

भरतका आगमन सुन गुहको यह शका हुई कि भरत बडी सेना लेकर आये है, अत ये रामके अनजानमे उनका कोई अनिष्ट करनेके लिये न जाते हो ? मुझे उनके पास जाकर उनका मर्म जानना चाहिये। यदि उनका भाव ठीक हो तब तो वे भले ही पार चले जायँ ॥ १५-१६ ॥ नही तो (इसके विपरीत उपाय करना पडेगा अत) मेरे जातिवाल अस्त्र-शस्त्र लेकर सावधानीसे सब ओर देखते हुए चोकस रहे और सब नावोको खीचकर गङ्गाके बीचमे खडी कर दे ॥ १७ ॥

इस प्रकार सबको आज्ञा दे गुह नाना प्रकारकी बहुत-सी भेटे लेकर अपने बहुत-से हथियारबद जाति-भाइयोके साथ भरतजीके पास आया। वहाँ उनके सामने सब सामग्री रखकर इधर-उधर देखते हुए उसने देखा कि मेघश्याम भरत चीर-वस्त्र और जटाजूट धारण किये छोटे भाई तथा मन्त्रियोके साथ बैठे है ॥ १८—२० ॥ वे रामहीका स्मरण कर रहे है और 'राम-नाम' का ही जप कर रहे है। यह देखकर उसने पृथिवीपर सिर रखकर भरतजी-को प्रणाम किया और बोला—'मै गुह हूँ' ॥ २१ ॥

भरतजीने उसे शीघ्र ही उठाकर आदरपूर्वक गाढ आलिङ्गन किया और प्रसन्नमुखसे उसकी कुशल पूछकर उससे सखा-भावसे इस प्रकार बोले— ॥ २२ ॥ "भैया ! तुम यहाँ श्रीरामचन्द्रके साथ रहे थे और निर्मलहृदय श्रीरामने नेत्रोमे जल भरकर तुम्हारा आलिङ्गन किया था ॥ २३ ॥ तुमसे सीता और लक्ष्मणके सहित कमलनयन रामने वार्तालाप किया। अत तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन सफल है ॥ २४ ॥ हे सुव्रत ! तुमने श्रीरामचन्द्रजीको जहाँ देखा था मुझे वही ले चलो, जहाँ वे सीताके सहित सोये थे वह स्थान मुझे दिखाओ ॥ २५ ॥ तुम रामके प्रियतम सखा और भाग्यवान् भक्त हो।" इस प्रकार पुन-पुन रामका स्मरण करनेसे भरतजीके नेत्रोमे जल भर आया ॥ २६ ॥

गुहेन सहितस्तत्र यत्र राम स्थितो निशि।
ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसंस्तृतम्॥ २७॥

सीताभरणसंलग्नस्वर्णबिन्दुभिरर्चितम्।
दु खसन्तप्तहृदयो भरत पर्यदेवयत्॥ २८॥

अहोऽतिसुकुमारी या सीता जनकनन्दिनी।
प्रासादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे॥ २९॥

रामेण सहिता शेते सा कथ कुशविष्टरे।
सीता रामेण सहिता दु खेन मम दोषत॥ ३०॥

धिङ् मा जातोऽस्मि कैकेय्या पापराशिसमानत।
मन्निमित्तमिद क्लेश रामस्य परमात्मन॥ ३१॥

अहोऽतिसफल जन्म लक्ष्मणस्य महात्मन।
राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधी॥ ३२॥

अह रामस्य दासा ये तेषा दासस्य किङ्कर।
यदि स्या सफल जन्म मम भूयान्न सशय॥ ३३॥

भ्रातर्जानासि यदि तत्कथयस्व ममाखिलम्।
यत्र तिष्ठति तत्राह गच्छाम्यानेतुमञ्जसा॥ ३४॥

गुहस्त शुद्धहृदय ज्ञात्वा सस्नेहमब्रवीत्।
देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी॥ ३५॥

रामे राजीवपत्राक्षे सीताया लक्ष्मणे तथा।
चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्यविदूरत॥ ३६॥

मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुज।
जानक्या सहितो नन्दात्सुखमास्ते किल प्रभु॥ ३७॥

तत्र गच्छामहे शीघ्र गङ्गा तर्तुमिहार्हसि।
इत्युक्त्वा त्वरित गत्वा नाव पञ्चशतानि ह॥ ३८॥

समानयत्ससैन्यस्य तर्तु गङ्गा महानदीम्।
स्वयमेवानिनायैका राजनाव गुहस्तदा॥ ३९॥

आरोप्य भरत तत्र शत्रुघ्न राममातरम्।
वसिष्ठ च तथान्यत्र कैकेयीं चान्ययोषित॥ ४०॥

इस प्रकार विरहव्याकुल हुए वे गुहके साथ उस स्थानपर पहुँचे जहाँ रात्रिके समय श्रीरामने निवास किया था। वहाँ जाकर उन्होने उस कुशा बिछे हुए शयन-स्थानको देखा॥ २७॥ वह सीताजीके आभूषणोसे झडे हुए सुवर्णकणोसे सुशोभित था। उसे देखकर भरतजीका हृदय दु खसे भर आया और वे इस प्रकार विलाप करने लगे—॥ २८॥ "अहो! जो अति सुकुमारी जनकदुलारी सीता राजमहलमे कोमल बिछौनेसे युक्त अति सुन्दर रत्नपर्यङ्कपर श्रीरघुनाथजीके साथ शयन किया करती थी, वे ही मेरे दोषसे श्रीरामचन्द्रजीके साथ इस कुशाओकी साथरीपर किस प्रकार क्लेशपूर्वक सोती होगी?॥ २९-३०॥ मुझे धिक्कार है! जो मै मूर्तिमान् पापपुञ्जके समान कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ। हाय! मेरे लिये ही परमात्मा रामको यह क्लेश उठाना पडा॥ ३१॥ अहा! महात्मा लक्ष्मणका जन्म अत्यन्त सफल है, जो भगवान् रामके वनमे रहते समय भी सदा प्रसन्न मनसे उन्हीका अनुसरण करते है॥ ३२॥ जो लोग रामके दास हैं उनके दासोका दास भी यदि मै हो जाऊँ तो मेरा जन्म सफल हो जाय—इसमे सदेह नही॥ ३३॥ भाई! यदि तुम्हे मालूम हो तो मुझे यह सब बताओ कि राम कहाँ है? वे जहाँ कही भी होगे, मै उन्हे तुरत लानेके लिये वही जाऊँगा"॥ ३४॥

गुहने उनका चित्त शुद्ध देखकर स्नेहपूर्वक कहा—"स्वामिन्! आपकी कमलनयन राम, सीता और लक्ष्मणमे ऐसी विशुद्ध भक्ति है, अत आप ही धन्य है। छोटे भाई लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्र चित्रकूट-पर्वतके पास मन्दाकिनी नदीके समीप मुनियोके आश्रममे रहते है। वहाँ जानकीके सहित भगवान् राम आनन्द और सुख-पूर्वक विराजमान है॥ ३५—३७॥ चलिये, शीघ्र ही हमलोग वहाँ चले। पहले आपलोग यहाँ गङ्गाजी पार कर ले।" ऐसा कहकर उसने तुरत ही सेनाके सहित भरतजीको महानदी गङ्गाजीसे पार करनेके लिये पाँच सौ नावे मँगवायी और स्वय एक राजनौका ले आया॥ ३८-३९॥ उसमे भरत, शत्रुघ्न, रामकी माता कोसल्या और वसिष्ठजीको चढाया तथा एक दूसरी नावमे कैकेयी आदि अन्य राजमहिलाओको सवार किया॥ ४०॥

तीर्त्वा गङ्गां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति ।
दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ ॥ ४१ ॥

आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः ॥ ४२ ॥

ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट् ।
पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम् ॥ ४३ ॥

राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद्वल्कलादिकम् ।
आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपिनं मुनिसेवितम् ॥ ४४ ॥

भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः ।
सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः ॥ ४५ ॥

तथापि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे ।
कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम् ॥ ४६ ॥

वनवासादिकं वापि न हि जानामि किञ्चन ।
भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वार्त्तमानसः ।
ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वाशुद्ध एव वा ॥ ४८ ॥

मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि ।
किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः ॥ ४९ ॥

अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके ।
पतित्वा राज्यसम्भारान् समर्प्यात्रैव राघवम् ॥ ५० ॥

अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह ।
नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत् ॥ ५१ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः ।
आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय प्रशशंस सुविस्मयः ॥ ५२ ॥

वत्स ज्ञातं पुरैवैतद्भविष्यं ज्ञानचक्षुषा ।
मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि ॥ ५३ ॥

इस प्रकार शीघ्र ही गङ्गाजीको पार कर वे भरद्वाज मुनिके आश्रमकी ओर चले। वहाँ अपनी महान् सेनाको आश्रमसे दूर छोडकर भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजी आश्रमपर गये ॥ ४१ ॥ और प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी मुनिवर भरद्वाजको आश्रममें बैठे देख उन्हें अति भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४२ ॥

मुनीश्वरको जब मालूम हुआ कि वे दशरथनन्दन भरत हैं, तब उन्होंने प्रीतिपूर्वक उनकी पूजा की और उन्हें जटा-वल्कलादि धारण किये देख कुशल-प्रश्नके अनन्तर पूछा— ॥ ४३ ॥ "भाई भरत! राज्य-शासन करते हुए तुमने आज यह वल्कलादि कैसे धारण कर लिये और इस मुनिजनसेवित तपोवनमें तुम किस लिये आये हो?" ॥ ४४ ॥

भरद्वाजके ये वचन सुनकर भरतने नेत्रोंमें जल भरकर कहा—"भगवन्! आप सब जानते हैं, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी हैं ॥ ४५ ॥ फिर भी आप जो पूछ रहे हैं, वह मेरे ऊपर आपकी कुछ कृपा ही है। कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न उपस्थित करनेवाला और वनवासादिविषयक जो कुछ कार्य किया है, हे मुनिश्रेष्ठ! आपके चरणोंका साक्षी करके कहता हूँ, मुझे उसके विषयमें कुछ भी पता नहीं था" ॥ ४६-४७ ॥ ऐसा कह उन्होंने अति आर्त्तचित्त हो मुनिके चरणयुगल पकडकर कहा—"भगवन्! आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं दोषी हूँ या निर्दोष ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन्! महाराज रामके रहते हुए मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन है? हे मुनिश्रेष्ठ! मैं तो सदासे ही श्रीरामचन्द्रका दास हूँ ॥ ४९ ॥ अतः हे मुनिनाथ! मैं श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर उनके चरण-कमलोंमें पडकर यह सारी राजपाटकी सामग्री उन्हें यहीं सौंप दूँगा ॥ ५० ॥ तथा वसिष्ठ आदि पुरजन और जनपदवासियोंके साथ मिलकर उनका राज्याभिषेक कर अयोध्या ले जाऊँगा और अति तुच्छ दासके समान उन लक्ष्मीपतिकी सेवा करूँगा" ॥ ५१ ॥

मुनीश्वरने भरतके ये उद्गार सुनकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और विस्मयपूर्वक सिर सूँघकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५२ ॥ वे बोले—"बेटा! अपने ज्ञानचक्षुओंसे मैंने पहले ही ये होनेवाली बातें जान ली थीं। तुम शोक न करो, तुम तो लक्ष्मणकी अपेक्षा भी रामके परम भक्त

आतिथ्य कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ ।
अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्व श्वो गन्ता रामसन्निधिम्॥ ५४ ॥

यथाज्ञापयति भवास्तथेति भरतोऽब्रवीत् ।
भरद्वाजस्त्वप स्पृष्ट्वा मौने होमगृहे स्थित ॥ ५५ ॥

दध्यौ कामदुधा कामवर्षिणीं कामदो मुनि ।
असृजत्कामधुक् सर्व यथाकाममलौकिकम् ॥ ५६ ॥

भरतस्य ससैन्यस्य यथेष्ट च मनोरथम् ।
यथा ववर्ष सकल तृप्तास्ते सर्वसैनिका ॥ ५७ ॥

वसिष्ठ पूजयित्वाग्रे शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
पश्चात्ससैन्य भरत तर्पयामास योगिराट् ॥ ५८ ॥

उषित्वा दिनमेक तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे ।
अभिवाद्य पुन प्रातर्भरद्वाज सहानुज ।
भरतस्तु कृतानुज्ञ प्रययौ रामसन्निधिम् ॥ ५९ ॥

चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे सस्थाप्य सैनिकान् ।
रामसदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ भरत स्वयम् ॥ ६० ॥

शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण गुहेन च परन्तप ।
तपस्विमण्डल सर्व विचिन्वानो न्यवर्तत ॥ ६१ ॥

अदृष्ट्वा रामभवनमपृच्छदृषिमण्डलम् ।
कुत्रास्ते सीतया सार्ध लक्ष्मणेन रघूत्तम ॥ ६२ ॥

ऊचुरग्रे गिरे पश्चाद्गङ्गाया उत्तरे तटे ।
विविक्त रामसदन रम्य काननमण्डितम् ॥ ६३ ॥

सफलैराम्रपनसै कदलीखण्डसवृतम् ।
चम्पकै कोविदारैश्च पुन्नागैर्विपुलैस्तथा ॥ ६४ ॥

एव दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रत ।
हर्षाद्ययौ रघुश्रेष्ठभवन मन्त्रिणा सह ॥ ६५ ॥

ददर्श दूरादतिभासुर शुभ
रामस्य गेह मुनिवृन्दसेवितम् ।
वृक्षाग्रसलग्नसुवल्कलाजिन
रामाभिराम भरत सहानुज ॥ ६६ ॥

हो ॥ ५३ ॥ हे अनघ ! मै सेनाके सहित तुम्हारा आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ। आज सेनासहित तुम यही भोजन करो, कल रामके पास जाना" ॥ ५४ ॥

भरतजीने कहा—"आपकी जैसी आज्ञा होगी, वही होगा।" तब मुनिवर भरद्वाज आचमन कर मौन होकर यज्ञशालामे बैठे ॥ ५५ ॥ वहाँ बैठकर उन कामप्रद मुनीश्वरने समस्त कामनाओको पूर्ण करनेवाली कामधेनुका स्मरण किया। तब उस कामधेनुने इच्छानुसार सम्पूर्ण अलौकिक भोग प्रस्तुत कर दिये ॥ ५६ ॥ उसने सेनाके सहित भरतजीके सम्पूर्ण मनोरथोको इस प्रकार पूर्ण किया, जिससे वे समस्त सैनिक सन्तुष्ट हो गये ॥ ५७ ॥ फिर उन योगिराजने शास्त्रानुकूल प्रथम वसिष्ठजीकी पूजा की और तदनन्तर सेनाके सहित भरतजीको तृप्त किया ॥ ५८ ॥

इस प्रकार उस स्वर्ग-सदृश आश्रममे एक दिन रहकर प्रात काल मुनिवरको प्रणामकर उनकी आज्ञा ले भाईके सहित भरतजी रामचन्द्रजीके पास चले ॥ ५९ ॥ चित्रकूटके निकट पहुँचनेपर उन्होने सैनिकोको दूर खडा कर दिया और स्वय राम-दर्शनकी लालसासे आगे बढे ॥ ६० ॥ परन्तप भरतजी शत्रुघ्न, सुमन्त्र और गुहके साथ समस्त तपस्वियोके आश्रमोमे खोजते-खोजते फिर आये ॥ ६१ ॥ किन्तु उन्हे श्रीरामचन्द्रजीकी कुटी कही न मिली। तब उन्होने ऋषि-मण्डलीसे पूछा—"सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरघुनाथजी कहाँ रहते है ?" ॥ ६२ ॥ उन्होने कहा—"सामनेवाले पर्वतके उस ओर श्रीमन्दाकिनीके उत्तरीय तटपर वनावलीसे सुशोभित रामकी परम रमणीक एकान्त कुटी है ॥ ६३ ॥ वह फलयुक्त आम्रवृक्ष, पनस और कदलीखण्ड (केलेकी क्यारियो) से घिरी हुई है। तथा उसके चारो ओर बहुत-से चम्पक, कचनार और नागकेशरके भी वृक्ष सुशोभित है" ॥ ६४ ॥ मुनियोके इस प्रकार बतलानेपर भरतजी प्रसन्नतापूर्वक मन्त्रियोको साथ ले सबसे आगे रघुनाथजीके निवास-स्थानको चले ॥ ६५ ॥ आगे बढनेपर भाईके सहित भरतने दूरहीसे रामका मुनिजनसेवित अति सुन्दर और भासमान सुन्दर भवन देखा। जिसमे वृक्षकी शाखापर वल्कलवस्त्र और मृगचर्म टँगे हुए थे और श्रीरामचन्द्रजीके वास करनेके कारण जो परम रमणीक था ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अयोध्याकाण्डेऽष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

भगवान् राम और भरतका मिलन, भरतजीका अयोध्यापुरीको लौटना और श्रीरामचन्द्रजीका अत्रिमुनिके आश्रमपर जाना

श्रीमहादेव उवाच

अथ गत्वाश्रमपदसमीप भरतो मुदा ।
सीतारामपदैर्युक्त पवित्रमतिशोभनम् ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तदनन्तर श्रीभरतजी अति मग्न मनसे सीता और रामके चरणचिह्नोसे सुशोभित आश्रमके समीप अति सुन्दर और पवित्र स्थलमे पहुँचे ॥ १ ॥

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाञ्चित-
ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वत ।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गला-
न्यचेष्टयत्पादरज सु सानुज ॥ २ ॥

वहाँ उन्होने सब ओर भगवान् रामचन्द्रके वज्र, अङ्कुश, कमल और ध्वजा आदिके चिह्नोसे सुशोभित तथा पृथिवीके लिये अति मङ्गलमय चरण-चिह्न देखे । उन्हे देखकर भाई शत्रुघ्नके सहित वे उस चरणरजमे लोटने लगे ॥ २ ॥

अहो सुधन्योऽहममूनि राम-
पादारविन्दाङ्कितभूतलानि ।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्य
ब्रह्मादिदेवै श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥ ३ ॥

और मन-ही-मन कहने लगे—"अहो ! मै परम धन्य हूँ, जो आज श्रीरामचन्द्रजीके उन चरणारविन्दोके चिह्नोसे सुशोभित भूमिको देख रहा हूँ जिनकी चरणरजको ब्रह्मा आदि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी सदा खोजती रहती है" ॥ ३ ॥

इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो
विगाढचेता रघुनाथभावने ।
आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तर
शनैरवापाश्रमसन्निधि हरे ॥ ४ ॥

इस प्रकार जिनका हृदय अद्भुत प्रेमरससे भरा हुआ है, मन रघुनाथजीकी भावनामे डूबा हुआ है तथा वक्ष स्थल आनन्दाश्रुओसे भीगा हुआ है, वे भरतजी धीरे-धीरे श्रीहरिके आश्रमके निकट पहुँचे ॥ ४ ॥

स तत्र दृष्ट्वा रघुनाथमास्थित
दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम् ।
जटाकिरीट नववल्कलाम्बर
प्रसन्नवक्त्र तरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥

वहाँ उन्होने दूर्वादलके समान श्याम शरीर और विशाल नयन श्रीरघुनाथजीको बैठे हुए देखा, जो जटाओका मुकुट और नवीन वल्कल-वस्त्र धारण किये थे तथा प्रसन्नवदन और मध्याह्न सूर्यके समान प्रभायुक्त थे ॥ ५ ॥

विलोकयन्त जनकात्मजा शुभा
सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम् ।
तदाभिदुद्राव रघूत्तम शुचा
हर्षाच्च तत्पादयुग त्वराग्रहीत् ॥ ६ ॥

एव जो शुभलक्षणा श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर निहार रहे थे तथा श्रीलक्ष्मणजी जिनके चरणकमलोकी सेवा कर रहे थे। उन्हे देखते ही भरतजीने दौडकर हर्ष और शोकयुक्त होकर तुरत उनके चरण-युगल पकड लिये ॥ ६ ॥

रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहु-
र्दोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजै ।
जलैरथाङ्कोपरि सन्यवेशयत्
पुन पुन सपरिषस्वजे विभु ॥ ७ ॥

बडी भुजाओवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपनी दोनो बाहुओसे उन्हे उठाकर आलिङ्गन किया और उन्हे गोदमे बैठाकर अपने आँसुओसे सींचते हुए बारम्बार हृदयसे लगाया ॥ ७ ॥

अथ ता मातरा सर्वा समाजग्मुस्त्वरान्विता ।
राघव द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम् ॥ ८ ॥

फिर प्यासी गौएँ जिस प्रकार जलकी ओर दौडती है उसी प्रकार कौसल्या आदि समस्त माताएँ रघुनाथजीको देखनेके लिये बडी शीघ्रतासे चली ॥ ८ ॥

राम स्वमातर वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयो ।
ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्यातीव दु खिता ॥ ९ ॥

इतराश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दन ।
तत समागत दृष्ट्वा वसिष्ठ मुनिपुङ्गवम् ॥ १० ॥

साष्टाङ्ग प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुन पुन ।
यथार्हमुपवेश्याह सर्वानेव रघूद्वह ॥ ११ ॥

पिता मे कुशली किं वा मा किमाहातिदु खित ।
वसिष्ठस्तमुवाचेद पिता ते रघुनन्दन ॥ १२ ॥

त्वद्वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन् ।
राम रामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह ॥ १३ ॥

श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभ गुरोर्वचनमञ्जसा ।
हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् राम सलक्ष्मण ॥ १४ ॥

ततोऽनुरुरुदु सर्वा मातरश्च तथापरे ।
हा तात मा परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर ॥ १५ ॥

अनाथोऽस्मि महाबाहो मा को वा लालयेदित ।
सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥ १६ ॥

वसिष्ठ शान्तवचनै शमयामास ता शुचम् ।
ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषा ॥ १७ ॥

राज्ञे ददुर्जल तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे ।
पिण्डान्निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसयुत ॥ १८ ॥

इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान्मधुसम्प्लुतान् ।
वय यदन्ना पितरस्तदन्ना स्मृतिनोदिता ॥ १९ ॥

इति दु खाश्रुपूर्णाक्ष पुन स्नात्वा गृह ययौ ।
सर्वे रुदित्वा सुचिर स्नात्वा जग्मुस्तदाश्रमम् ॥ २० ॥

तस्मिंस्तु दिवसे सर्वे उपवास प्रचक्रिरे ।
तत परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले ॥ २१ ॥

उपविष्ट समागम्य भरतो राममब्रवीत् ।
राम राम महाभाग स्वात्मानमभिषेचय ॥ २२ ॥

रामजीने अपनी माताको देखते ही शीघ्रतासे उठकर उनका चरण-वन्दन किया और उन्होने अत्यन्त दु खसे नेत्रोमे जल भरकर पुत्रको हृदयसे लगाया ॥ ९ ॥ फिर श्रीरघुनाथजीने उसी प्रकार अन्य माताओको भी प्रणाम किया। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीको आते देख, ॥ १० ॥ उन्हे साष्टाङ्ग प्रणामकर बारम्बार कहने लगे 'मै धन्य हूँ, मै धन्य हूँ।'

फिर श्रीरघुनाथजीने सबको यथायोग्य बैठाकर पूछा— ॥ ११ ॥ "कहिये, हमारे पिताजी कुशलसे है ? उन्होने मेरे वियोगसे अत्यन्त दु खातुर होकर मेरे लिये क्या आज्ञा दी है ?" तब वसिष्ठजीने कहा—"हे रघुनन्दन। तुम्हारे पिताने तुम्हारे वियोगसे अति सन्तप्त होकर 'हे राम। हे राम। हे सीते। हे लक्ष्मण।' इस प्रकार तुम्हारा ही चिन्तन करते हुए अपने प्राण छोड दिये" ॥ १२-१३ ॥

कानोमे शूलके समान लगनेवाले गुरुके इन वचनोको सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण 'हाय। हम मारे गये' इस प्रकार रोते हुए सहसा गिर पडे ॥ १४ ॥ तब समस्त माताएँ और अन्यान्य सभी उपस्थित लोग रोने लगे। श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार कहने लगे—"हा तात। हे दयामय। आप मुझे छोडकर कहाँ चले गये ? ॥ १५ ॥ हे महाबाहो। मै अनाथ हो गया, अब मुझे कौन लाड लडावेगा।" फिर इसी प्रकार सीता और लक्ष्मण भी बहुत विलाप करने लगे ॥ १६ ॥

तब वसिष्ठजीने शान्तिमय वाक्योसे वह शोक शान्त किया और फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्नान करके पवित्र हुए ॥ १७ ॥ वहाँ सबने जलकाङ्क्षी महाराज दशरथको जलाञ्जलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्डदान किया ॥ १८ ॥ 'जो हमारा अन्न है वही अन्न हमारे पितरोको प्रिय होगा, यही स्मृतिकी आज्ञा है' ऐसा कह उन्होने इङ्गुदीफलके पिण्ड बना उनपर मधु डालकर उन्हे दान किया ॥ १९ ॥ फिर नेत्रोमे शोकाश्रु भरे हुए वे पुन स्नानकर आश्रममे आये। इसी प्रकार और सब भी बहुत देरतक रोकर अन्तमे स्नान करके आश्रमको लौटे ॥ २० ॥

उस दिन सबने उपवास किया। दूसरे दिन मन्दाकिनीके निर्मल जलमे स्नान कर भरतजीने आश्रममे बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर कहा—"हे राम। हे राम।

राज्य पालय पित्र्य ते ज्येष्ठस्त्व मे पिता यथा ।
क्षत्रियाणामय धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥ २३ ॥

इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधै पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे ।
राज्ये पुत्र समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम् ॥ २४ ॥

इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे ।
मातुर्मे दुष्कृत किञ्चित्स्मर्तु नार्हसि पाहि न ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा चरणौ भ्रातु शिरस्याधाय भक्तित ।
रामस्य पुरत साक्षाद्दण्डवत्पतितो भुवि ॥ २६ ॥

उत्थाप्य राघव शीघ्रमारोप्याङ्केऽतिभक्तित ।
उवाच भरत राम स्नेहार्द्रनयन शनै ॥ २७ ॥

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि त्वयोक्त यत्तथैव तत् ।
किन्तु मामब्रवीत्तातो नव वर्षाणि पञ्च च ॥ २८ ॥

उषित्वा दण्डकारण्ये पुर पश्चात्समाविश ।
इदानीं भरतायेद राज्य दत्त मयाखिलम् ॥ २९ ॥

तत पित्रैव सुव्यक्त राज्य दत्त तवैव हि ।
दण्डकारण्यराज्य मे दत्त पित्रा तथैव च ॥ ३० ॥

अत पितुर्वच कार्यमावाभ्यामतियत्नत ।
पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते ॥ ३१ ॥

स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरय व्रजेत् ।
तस्माद्राज्य प्रशाधि त्व वय दण्डकपालका ॥ ३२ ॥

भरतस्त्वब्रवीद्राम कामुको मूढधी पिता ।
स्त्रीजितो भ्रान्तहृदय उन्मत्तो यदि वक्ष्यति ।
तत्सत्यमिति न ग्राह्य भ्रान्तवाक्य यथा सुधी ॥ ३३ ॥

श्रीराम उवाच

न स्त्रीजित पिता ब्रूयान्न कामी नैव मूढधी ।
पूर्व प्रतिश्रुत तस्य सत्यवादी ददौ भयात् ॥ ३४ ॥

हे महाभाग ! आप अपना अभिषेक कीजिये ॥ २१-२२ ॥ यह पैतृक राज्य आपहीका है, आप इसका पालन करे। आप हमारे बडे भाई है, अत पितृतुल्य हे। महाराज ! प्रजाका पालन करना यही क्षत्रियोका मुख्य धर्म है ॥ २३ ॥ अत आप नाना प्रकारके यज्ञोस यजन करक फिर वशवृद्धिके लिये पुत्र उत्पन्न कर उसे (बडे होनेपर) राजसिहासनपर बैठाकर तब वनको जाये ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! अभी वनवासका समय नही है, आप मुझपर प्रसन्न होइये। मेरी माताका जो कुछ अपराध है उसे भूल जाइये और हमारी रक्षा कीजिये" ॥ २५ ॥ ऐसा कहकर उन्होने भाईके चरणोको भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर रख लिया ओर श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख दण्डके समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २६ ॥

रामजीने भरतको शीघ्रतासे उठाकर अति प्रेमपूर्वक गोदमे बैठा लिया और नेत्रोमे प्रेमाश्रु भरकर धीरे-धीरे उनसे कहने लगे— ॥ २७ ॥ "भाई ! मै जो कहता हू वह सुनो। तुम जो कुछ कहते हो सो बिलकुल ठीक हे। किन्तु पिताजीने मुझे आज्ञा दी थी कि चौदह वर्ष दण्डकारण्यमे रहकर फिर अयोध्यामे आना, इस समय यह सम्पूर्ण राज्य मै भरतको देता हूँ ॥ २८-२९ ॥ अत स्पष्ट ही पिताजीने यह राज्य तो तुम्हीको दिया हे ओर वेसे ही मुझे उन्होने दण्डकारण्यका राज्य दिया ह ॥ ३० ॥ इसलिये हम दोनोको ही प्रयत्नपूर्वक पिताजीके वचनाको सफल करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पिताके वचनोका उल्लङ्घन कर स्वेच्छापूर्वक बर्तता हे वह जीता हुआ भी मृतकके समान है और शरीर छोडनेपर नरकको जाता है। अत तुम राज्य-शासन करो हम दण्डकवनकी रक्षा करेगे" ॥ ३१-३२ ॥

तब भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"यदि पिताजीने कामी, मूढबुद्धि, स्त्रीके वशीभूत, भ्रान्तचित्त और उन्मत्त होनेके कारण ऐसा कह भी दिया है तो भी उसे सत्य न मानना चाहिये, जिस प्रकार बुद्धिमान् लोग भ्रान्त पुरुषोके वाक्यका आदर नही करते" ॥ ३३ ॥

श्रीरामजी बोले—पिताजीने स्त्रीवश कामवश अथवा मूढबुद्धि होकर ऐसा नही कहा। उन सत्यवादीन अपने पूर्व-प्रतिज्ञानुसार ही प्रतिज्ञा-भगके भयमे ये वर

असत्याद्भीतिरधिका महता नरकादपि।
करोमीत्यहमप्येतत्सत्य तस्यै प्रतिश्रुतम्॥ ३५॥

कथ वाक्यमह कुर्यामसत्य राघवो हि सन्।
इत्युदीरितमाकर्ण्य रामस्य भरतोऽब्रवीत्॥ ३६॥

तथैव चीरवसनो वने वत्स्यामि सुव्रत।
चतुर्दश समास्त्व तु राज्य कुरु यथासुखम्॥ ३७॥

श्रीराम उवाच

पित्रा दत्त तवैवैतद्राज्य मह्य वन ददौ।
व्यत्यय यद्यह कुर्यामसत्य पूर्ववत् स्थितम्॥ ३८॥

भरत उवाच

अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वा लक्ष्मणो यथा।
नोचेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥ ३९॥

इत्येव निश्चय कृत्वा दर्भानास्तीर्य चातपे।
मनसापि विनिश्चित्य प्राङ्मुखोपविवेश स॥ ४०॥

भरतस्यापि निर्बन्ध दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मित।
नेत्रान्तसज्ञा गुरवे चकार रघुनन्दन॥ ४१॥

एकान्ते भरत प्राह वसिष्ठो ज्ञानिना वर।
वत्स गुह्य शृणुष्वेद मम वाक्यात्सुनिश्चितम्॥ ४२॥

रामो नारायण साक्षाद्ब्रह्मणा याचित पुरा।
रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मज॥ ४३॥

योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी।
शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा॥ ४४॥

रावण हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न सशय।
कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम्॥ ४५॥

सर्व देवकृत नोचेदेव सा भाषयेत्कथम्।
तस्मात्त्यजाग्रह तात रामस्य विनिवर्तने॥ ४६॥

निवर्तस्व महासैन्यैर्मातृभि सहित पुरम्।
रावण सकुल हत्वा शीघ्रमेवागमिष्यति॥ ४७॥

दिये थे॥ ३४॥ महान् पुरुषोको असत्यसे नरककी अपेक्षा भी अधिक भय हुआ करता है। मै भी 'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर उनसे सत्य-प्रतिज्ञा कर चुका हूँ॥ ३५॥ फिर मै रघुवशमे जन्म लेकर अपना वचन कैसे उलट सकता हूँ?

रामजीका यह कथन सुनकर भरतजी बोले—॥ ३६॥ "हे सुव्रत! पिताजीके कथनानुसार मै तो आपके समान चौदह वर्षतक वल्कल-वस्त्र धारणकर वनमे रहूँगा और आप सुखपूर्वक राज्य भोगिये"॥ ३७॥

श्रीरामजी बोले—पिताजीने तुमको यह राज्य और मुझे वनवास दिया है। अब यदि मै इसका उलटा करूँ तो असत्य ज्यो-का-त्यो ही रहता है॥ ३८॥

भरतजी बोले—(अच्छा, यदि आप वनसे नही लौटना चाहते तो मुझे आज्ञा दीजिये जिससे) मै भी वनमे आकर लक्ष्मणके समान ही आपकी सेवा करूँ, नही तो मै अन्न-जल छोडकर इस शरीरको त्याग दूँगा॥ ३९॥ अपना ऐसा निश्चय प्रकट कर और मनमे भी यही ठानकर वे धूपमे कुशा बिछाकर पूर्वकी ओर मुख करके बैठ गये॥ ४०॥ भरतजीका ऐसा हठ देखकर श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त विस्मित हो गुरु वसिष्ठजीको नेत्रोसे सकेत किया॥ ४१॥

तब ज्ञानियोमे श्रेष्ठ वसिष्ठजीने भरतको एकान्तमे ले जाकर कहा' "वत्स! मै जो कहता हूँ यह सुनिश्चित गुह्य रहस्यकी बात सुनो॥ ४२॥ भगवान् राम साक्षात् नारायण है। पूर्वकालमे ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर उन्होने रावणको मारनेके लिये दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे जन्म लिया है॥ ४३॥ इसी प्रकार योगमायाने जनकनन्दिनी सीताके रूपसे अवतार लिया है और शेषजी लक्ष्मणके रूपसे उत्पन्न होकर उनका अनुगमन कर रहे है॥ ४४॥ वे रावणको मारना चाहते है इसलिये निस्सन्देह वनको ही जायँगे। कैकेयीके जो कुछ भी वरदान आदि और निष्ठुर भाषण आदि कार्य है वे सब देवताओकी प्रेरणासे ही हुए है, नही तो वह ऐसे वचन कैसे बोल सकती थी? इसलिये हे तात! तुम रामको लौटानेका आग्रह छोड दो॥ ४५-४६॥ और माताओ तथा महती सेनाके सहित अयोध्याको लौट चलो, राम भी कुलसहित रावणका सहार करके वहाँ शीघ्र ही आ जायँगे"॥ ४७॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य भरतो विस्मयान्वित ।
गत्वा समीप रामस्य विस्मयोत्फुल्ललोचन ॥ ४८ ॥

पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते ।
तयो सेवा करोम्येव यावदागमन तव ॥ ४९ ॥

इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये योजयामास पादयो ।
रामस्य ते ददौ रामो भरतायातिभक्तित ॥ ५० ॥

गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ।
राम पुन परिक्रम्य प्रणनाम पुन पुन ॥ ५१ ॥

भरत पुनराहेद भक्त्या गद्गदया गिरा ।
नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि ॥ ५२ ॥

नागमिष्यसि चेद्राम प्रविशामि महानलम् ।
बाढमित्येव त रामो भरत सन्यवर्तयत् ॥ ५३ ॥

ससैन्य सवसिष्ठश्च शत्रुघ्नसहित सुधी ।
मातृभिर्मन्त्रिभि सार्ध गमनायोपचक्रमे ॥ ५४ ॥

कैकेयी राममेकान्ते स्त्रवन्नेत्रजलाकुला ।
प्राञ्जलि प्राह हे राम तव राज्यविघातनम् ॥ ५५ ॥

कृत मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा ।
क्षमस्व मम दौरात्म्य क्षमासारा हि साधव ॥ ५६ ॥

त्व साक्षाद्विष्णुरव्यक्त परमात्मा सनातन ।
मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिल जगत् ।
त्वयैव प्रेरितो लोक कुरुते साध्वसाधु वा ॥ ५७ ॥

त्वदधीनमिद विश्वमस्वतन्त्र करोति किम् ।
यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ॥ ५८ ॥

त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ।
त्वयैव प्रेरिताह च देवकार्य करिष्यता ॥ ५९ ॥

पापिष्ठ पापमनसा कर्माचरमरिन्दम ।
अद्य प्रतीतोऽसि मम देवानामप्यगोचर ॥ ६० ॥

गुरुजीके ये वचन सुनकर भरतको अति विस्मय हुआ और उन्होने आश्चर्यचकित होकर श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर कहा— ॥ ४८ ॥ "हे राजेन्द्र! आप मुझे राज्य-शासनके लिये अपनी जगत्पूज्य चरण-पादुकाएँ दीजिये। जबतक आप लौटेगे तबतक मै उन्हीकी सेवा करता रहूँगा" ॥ ४९ ॥

ऐसा कहकर भरतजीने उनके चरणोमे दो दिव्य पादुकाएँ (खडाऊँ) पहना दी। श्रीरामचन्द्रजीने भरतका भक्ति-भाव देखकर वे खडाऊँ उन्हे दे दी ॥ ५० ॥ भरतजीने वे रत्नजटित दिव्य पादुकाएँ लेकर श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की और उन्हे बारम्बार प्रणाम किया ॥ ५१ ॥

तदनुसार, वे भक्तिवश गद्गद-वाणीसे बोले, "हे राम! यदि चौदह वर्षके व्यतीत होनेपर आप पहले दिन ही अयोध्या न पहुँचे तो मै महान् अग्निमे प्रवेश कर जाऊँगा।" तब रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कह भरतजीको विदा किया ॥ ५२-५३ ॥ तदुपरान्त बुद्धिमान् भरतजीने सम्पूर्ण सेना, वसिष्ठ, शत्रुघ्न, समस्त माताओ तथा मन्त्रियोके साथ चलनेकी तैयारी की ॥ ५४ ॥

इसी समय कैकेयीने एकान्त स्थानमे नेत्रोमे जल भरकर हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"हे राम! मायासे मुग्धचित्त हो जानेके कारण मुझ कुबुद्धिने तुम्हारे राज्याभिषेकमे विघ्न डाल दिया सो तुम मेरी इस कुटिलताको क्षमा करना, क्योकि साधुजन सर्वदा क्षमाशील ही होते हैं ॥ ५५-५६ ॥ आप साक्षात् विष्णु-भगवान्, अव्यक्त परमात्मा और सनातन पुरुष है। अपने मायामय मनुष्यरूपसे आप समस्त ससारको मोहित कर रहे है। आपकी ही प्रेरणासे लोग शुभ अथवा अशुभ कर्म करते है ॥ ५७ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व आपहीके अधीन है, अस्वतन्त्र होनेके कारण यह स्वय कुछ भी नही कर सकता, जिस प्रकार कृत्रिम नर्तकियाँ (कठपुतलियाँ) सूत्रधार (बाजीगर) के इच्छानुसार ही नाचती है ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार नाना आकार धारण करनेवाली यह मायारूपिणी नटी आपहीके अधीन है। और हे शत्रुदमन! देवताओका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छावाले आपहीके द्वारा प्रेरित होकर मुझ पापिनीने अपनी दुष्टबुद्धिसे यह पापकर्म किया था। आज मैने आपको जान लिया, आप देवताओके भी मन और

पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते।
छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम्॥ ६१॥

त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता।
कैकेय्या वचनं श्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत्॥ ६२॥

यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत्।
मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता॥ ६३॥

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव।
गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्॥ ६४॥

सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात्।
अहं सर्वत्र समदृग् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा॥ ६५॥

नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्।
मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम्॥ ६६॥

सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः।
दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम्॥ ६७॥

स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः।
इत्युक्त्वा सा परिक्रम्य रामं सानन्दविस्मया॥ ६८॥

प्रणम्य शतशो भूमौ ययौ गेहं मुदान्विता।
भरतस्तु सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह॥ ६९॥

अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन्।
पौरजानपदान् सर्वानयोध्यायामुदारधीः॥ ७०॥

स्थापयित्वा यथान्यायं नन्दिग्रामं ययौ स्वयम्।
तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः॥ ७१॥

पूजयित्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः॥ ७२॥

फलमूलाशनो दान्तो जटावल्कलधारकः।
अधःशायी ब्रह्मचारी शत्रुघ्नसहितस्तदा॥ ७३॥

वाणी आदिसे परे है॥ ५९-६०॥ हे विश्वेश्वर! हे अनन्त! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। हे प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ। आप अपने ज्ञानाग्निरूप खड्गसे मेरे पुत्र और धन आदिके स्नेह-बन्धनको काट डालिये"।

कैकेयीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकराकर कहा— ॥ ६१-६२॥ "हे महाभागे! तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक ही है, मिथ्या नहीं। मेरी प्रेरणासे ही देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये तुम्हारे मुखसे वे शब्द निकले थे। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। अब तुम जाओ, अहर्निश निरन्तर हृदयमें मेरी ही भावना करनेसे तुम सर्वत्र स्नेहरहित होकर मेरी भक्तिद्वारा शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी। मैं सर्वत्र समदर्शी हूँ, मेरा कोई भी प्रिय या अप्रिय नहीं है॥ ६३—६५॥ मायावी पुरुष जिस प्रकार अपनी ही मायासे रचे पदार्थोंमें राग-द्वेष नहीं करता उसी प्रकार मेरा भी किसीमें राग-द्वेष नहीं है। जो पुरुष जिस प्रकार मेरा भजन करता है मैं भी वैसे ही उसका ध्यान रखता हूँ। हे मातः! मेरी मायासे मोहित होकर लोग मुझे सुख-दुःखके वशीभूत साधारण मनुष्य जानते हैं। वे मेरे वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो तुम्हें संसार-भयको दूर करनेवाला मेरा तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ है॥ ६६-६७॥ तुम मेरा स्मरण करती हुई घरहीमें रहो, इससे तुम कर्म-बन्धनमें नहीं बँधोगी।"

रामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर कैकेयीने आनन्द और विस्मयपूर्वक रामकी परिक्रमा की और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें सैकड़ों बार प्रणामकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको चली तथा भरतजी मन्त्रिगण, माताओं और वसिष्ठजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीका ही स्मरण करते हुए शीघ्रतासे अयोध्याको चले।

उदार-बुद्धि भरतजी समस्त पुरवासी और देशवासियोंको यथायोग्य अयोध्यापुरीमें बसाकर स्वयं नन्दिग्रामको चले गये। वहाँ एक सिंहासनपर उन दोनों पादुकाओंको रखकर वे श्रीरामचन्द्रजीके समान ही उनकी नित्यप्रति भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प और अक्षतादि सम्पूर्ण राजोचित सामग्रीसे पूजा करने लगे। इस प्रकार भरतजी फल-मूल खाते, इन्द्रिय-दमन करते, जटा और वल्कल धारण किये, पृथिवीपर शयन करते और ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए शत्रुघ्नके साथ रहने लगे॥ ६८—७३॥

राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले ।
तानि पादुकयो सम्यङ्निवेदयति राघव ॥ ७४ ॥

गणयन् दिवसानेव रामागमनकाङ्क्षया ।
स्थितो रामार्पितमना साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥ ७५ ॥

रामस्तु चित्रकूटाद्रौ वसन्मुनिभिरावृत ।
सीतया लक्ष्मणेनापि किञ्चित्कालमुपावसत् ॥ ७६ ॥

नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलोलसा ।
चित्रकूटस्थित ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ७७ ॥

दृष्ट्वा तज्जनसम्बाध रामस्तत्याज त गिरिम् ।
दण्डकारण्यगमने कार्यमप्यनुचिन्तयन् ॥ ७८ ॥

अन्वगात्सीतया भ्रात्रा ह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ।
सर्वत्र सुखसवास जनसम्बाधवर्जितम् ॥ ७९ ॥

गत्वा मुनिमुपासीन भासयन्त तपोवनम् ।
दण्डवत्प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये ॥ ८० ॥

पितुराज्ञा पुरस्कृत्य दण्डकाननमागत ।
वनवासमिषेणापि धन्योऽह दर्शनात्तव ॥ ८१ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचन राम ज्ञात्वा हरि परम् ।
पूजयामास विधिवद्भक्त्या परमया मुनि ॥ ८२ ॥

वन्यै फलै कृतातिथ्यमुपविष्ट रघूत्तमम् ।
सीता च लक्ष्मण चैव सतुष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८३ ॥

भार्या मेऽतीव सवृद्धा ह्यनसूयेति विश्रुता ।
तपश्चरन्ती सुचिर धर्मज्ञा धर्मवत्सला ॥ ८४ ॥

अन्तस्तिष्ठति ता सीता प्रयत्वरिनिषूदन ।
तथेति जानकीं प्राह रामो राजीवलोचन ॥ ८५ ॥

गच्छ देवीं नमस्कृत्य शीघ्रमेहि पुन शुभे ।
तथेति रामवचन सीता चापि तथाकरोत् ॥ ८६ ॥

पृथिवीके जितने राजकार्य होते उन सबको वे रघुश्रेष्ठ (भरतजी) पादुकाओके सामने निवेदन कर दिया करते थे ॥ ७४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके आगमनकी प्रतीक्षासे अवधिके दिन गिनते हुए वे राममे ही मन लगाकर साक्षात् ब्रह्मर्षिके समान रहने लगे ॥ ७५ ॥

इधर रामचन्द्रजीने भी मुनियोसे घिरे रहकर सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूट-पर्वतपर कुछ दिन बिताये ॥ ७६ ॥ रामचन्द्रजीको सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटपर विराजमान सुनकर आसपासके नगरनिवासी उनके दर्शनोकी इच्छासे सदैव आया करते थे ॥ ७७ ॥ रामचन्द्रजीने उस भीड-भाडको देखकर और अपने दण्डकारण्यमे जानेके कार्यको भी विचारकर उस पर्वतको छोड दिया ॥ ७८ ॥ वहाँसे चलकर वे सीता तथा लक्ष्मणके सहित अत्रि मुनिके अति उत्तम और जन-समूह-शून्य आश्रममे आये जो सब प्रकार सुखपूर्वक रहनेयोग्य था ॥ ७९ ॥

वहाँ पहुँचनेपर उन्होने अपने आश्रममे विराजमान और सम्पूर्ण तपोवनको प्रकाशित करते हुए मुनीश्वरके पास जा उन्हे दण्डवत्-प्रणाम करके कहा— 'मै राम आपका अभिवादन करता हूँ ॥ ८० ॥ मै पिताकी आज्ञासे दण्डकारण्यमे आया हूँ। इस समय वनवासके मिषसे भी आपका दर्शन कर मै कृतार्थ हो गया'' ॥ ८१ ॥

रामचन्द्रजीके ये वचन सुन मुनीश्वरने उन्हे साक्षात् परब्रह्म जान उनकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा की ॥ ८२ ॥ फिर वन्य फलोसे उनका आतिथ्य-सत्कार कर उन्होने आसनपर विराजमान रघुनाथजी, महारानी सीता और लक्ष्मणजीसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ ८३ ॥ ''मेरी भार्या 'अनसूया' नामसे विख्यात है, वह अति वृद्धा है, बहुत दिनोसे तपस्या करती है, धर्मको जाननेवाली है और धर्ममे प्रेम रखनेवाली है ॥ ८४ ॥ इस समय वह कुटीके भीतर है। हे शत्रुदमन राम ! सीता उससे मिल ले।'' तब कमललोचन रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कह जानकीजीसे कहा— ॥ ८५ ॥ 'हे शुभे ! जाओ, तुम शीघ्र ही देवी अनसूयाजीको प्रणाम कर आओ।'' सीताजीने 'बहुत अच्छा' कह रामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन किया ॥ ८६ ॥

दण्डवत्पतितामग्रे सीता दृष्ट्वातिहृष्टधी ।
अनसूया समालिङ्ग्य वत्से सीतेति सादरम् ॥ ८७ ॥

दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा ।
दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसयुता ॥ ८८ ॥

अङ्गराग च सीतायै ददौ दिव्य शुभानना ।
न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वा कमलानने ॥ ८९ ॥

पातिव्रत्य पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि ।
कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम् ॥ ९० ॥

भोजयित्वा यथान्याय राम सीतासमन्वितम् ।
लक्ष्मण च तदा राम पुन प्राह कृताञ्जलि ॥ ९१ ॥

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषा
सरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन् ।
देहान्बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्त-
स्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया ॥ ९२ ॥

अनसूयाजीने अपने सम्मुख सीताजीको दण्डके समान पडी देख अति हर्षित हो 'बेटी सीता !' ऐसा कहकर आदरपूर्वक आलिङ्गन किया और भक्तिसहित उन्हे विश्वकर्माके बनाये हुए दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ रेशमी साडियाँ दी ॥ ८७-८८ ॥ सुन्दर मुखवाली अनसूयाजीने उन्हे दिव्य अङ्गराग भी दिया और कहा— "हे कमलमुखि ! इस अङ्गरागके लगानेसे तेरे शरीरकी शोभा कभी कम न होगी ॥ ८९ ॥ हे जानकि ! तुम पातिव्रत्यका पालन करती हुई सदा रामकी ही अनुगामिनी रहना। रघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर लौटे" ॥ ९० ॥ फिर उन्होने विधिपूर्वक लक्ष्मण और सीताजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीको भोजन कराया। तत्पश्चात् उन्होने फिर श्रीरामजीसे हाथ जोडकर कहा— ॥ ९१ ॥ "हे राम ! इन सम्पूर्ण भुवनोकी रचना करके आप ही इनकी रक्षाके लिये देवता, मनुष्य और तिर्यगादि योनियोमे शरीर धारण करते है, तथापि देहके गुणोसे आप लिप्त नही होते। सम्पूर्ण ससारको मोहित करनेवाली माया भी आपसे सदा डरती रहती है" ॥ ९२ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अयोध्याकाण्डे नवम सर्ग ॥ ९ ॥

★

समाप्तमिदमयोध्याकाण्डम् ।

★

ॐ

अध्यात्मरामायण

अरण्यकाण्ड

प्रथम सर्ग

विराध-वध

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र दिन स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दन ।
स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे ॥ १ ॥

मुने गच्छामहे सर्वे मुनिमण्डलमण्डितम् ।
विपिन दण्डक यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि ॥ २ ॥

मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि ।
श्रुत्वा रामस्य वचन प्रहस्यात्रिर्महायशा ।
प्राह तत्र रघुश्रेष्ठ राम राम सुराश्रय ॥ ३ ॥

सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्व तव को मार्गदर्शक ।
तथापि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिण ॥ ४ ॥

इति शिष्यान्समादिश्य स्वय किञ्चित्तमन्वगात् ।
रामेण वारित प्रीत्या अत्रि स्वभवन ययौ ॥ ५ ॥

क्रोशमात्र ततो गत्वा ददर्श महतीं नदीम् ।
अत्रे शिष्यानुवाचेद रामो राजीवलोचन ॥ ६ ॥

नद्या सन्तरणे कश्चिदुपायो विद्यते न वा ।
ऊचुस्ते विद्यते नौका सुदृढा रघुनन्दन ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! उस दिन अत्रि मुनिके आश्रममे ही रहकर दूसरे दिन प्रात काल स्नान करनेके अनन्तर श्रीरघुनाथजीने मुनिवरकी सम्मतिसे चलनेकी तैयारी की ॥ १ ॥ वे बोले—"हे मुने ! हम सब मुनिमण्डलीसे सुशोभित दण्डकारण्यको जाना चाहते है, अत आप हमे आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ २ ॥ और हमे मार्ग दिखानेके लिये कुछ शिष्योको आज्ञा दीजिये ।" रामजीका यह कथन सुनकर महायशस्वी अत्रि मुनि श्रीरघुनाथजीसे हँसकर बोले—"हे राम ! हे देवताओके आश्रयस्वरूप ! सबके मार्गदर्शक तो आप है, फिर आपका मार्गदर्शक कौन बनेगा ? तथापि इस समय आप लोक-व्यवहारका अनुसरण कर रहे है। अत मेरे शिष्यगण आपको मार्ग दिखानेके लिये जायँगे" ॥ ३-४ ॥ तदनन्तर शिष्योको आज्ञा दे मुनिवर अत्रि स्वय भी कुछ दूर रामचन्द्रजीके साथ गये और फिर उनके प्रीतिपूर्वक मना करनेपर अपने आश्रमको लौट आये ॥ ५ ॥

एक कोश जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने एक बहुत बडी नदी देखी। तब कमलनयन रघुनाथजीने अत्रिके शिष्योसे इस प्रकार पूछा— ॥ ६ ॥ "हे ब्रह्मचारियो ! नदीको पार करनेका कोई उपाय है या नही ?" तब शिष्योने कहा—"हे रघुनन्दन ! यहाँ एक सुदृढ नौका है"॥ ७ ॥

तारयिष्यामहे युष्मान्वयमेव क्षणादिह।
ततो नावि समारोप्य सीता राघवलक्ष्मणौ॥ ८ ॥

क्षणात्सन्तारयामासुर्नदीं मुनिकुमारका।
रामाभिनन्दिता सर्वे जग्मुरत्रेरथाश्रमम्॥ ९ ॥

तावेत्य विपिन घोर झिल्लीझङ्कारनादितम्।
नानामृगगणाकीर्ण सिहव्याघ्रादिभीषणम्॥ १० ॥

राक्षसैर्घोररूपैश्च सेवित रोमहर्षणम्।
प्रविश्य विपिन घोर रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ११ ॥

इत पर प्रयत्नेन गन्तव्य सहितेन मे।
धनुर्गुणेन सयोज्य शरानपि करे दधत्॥ १२ ॥

अग्रे यास्याम्यह पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धर।
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनो॥ १३ ॥

चक्षुश्चारय सर्वत्र दृष्ट रक्षोभय महत्।
विद्यते दण्डकारण्ये श्रुतपूर्वमरिन्दम॥ १४ ॥

इत्येव भाषमाणौ तौ जग्मतु सार्धयोजनम्।
तत्रैका पुष्करिण्यास्ते कह्लारकुमुदोत्पलै॥ १५ ॥

अम्बुजै शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत।
तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सलिल शुभम्॥ १६ ॥

ऊषुस्ते सलिलाभ्याशे क्षण छायामुपाश्रिता।
ततो ददृशुरायान्त महासत्त्व भयानकम्॥ १७ ॥

करालदष्ट्रवदन भीषयन्त स्वगर्जितै।
वामासे न्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम्॥ १८ ॥

भक्षयन्त गजव्याघ्रमहिष वनगोचरम्।
ज्यारोपित धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ १९ ॥

पश्य भ्रातर्महाकायो राक्षसोऽयमुपागत।
आयात्यभिमुख नोऽग्रे भीरूणा भयमावहन्॥ २० ॥

हम उसमे चढाकर आपको एक क्षणमे ही नदीके उस पार पहुँचा देगे।" तब मुनिकुमारोने सीताके सहित राम और लक्ष्मणको नौकामे चढाकर एक क्षणमात्रमे नदीके उस पार पहुँचा दिया। और फिर रामचन्द्रजीद्वारा प्रशसित हो अत्रि मुनिके आश्रमको लौट आये॥ ८-९ ॥

तब वे झिल्लियोकी झनकारसे गुञ्जायमान, विविध वन्य पशुओंसे पूर्ण और सिह-व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओसे भयानक एक घोर वनमे पहुँचे॥ १० ॥ भयकर रूपधारी राक्षसोंसे सेवित उस रोमाञ्चकारी घोर वनमे घुसकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—॥ ११ ॥ "यहाँसे हम दोनोको बहुत सावधान होकर चलना चाहिये। मै धनुषपर प्रत्यञ्चा चढाकर और हाथमे बाण लेकर आगे-आगे चलता हूँ और तुम धनुष धारणकर पीछे चलो, तथा जीव और परमात्माके बीचमे रहनेवाली मायाके समान सीता हमारे बीचमे चले॥ १२-१३ ॥ हे अरिन्दम! सब ओर सावधानीसे निगाह रखो। हमने पहले जैसा सुना था उसीके अनुसार इस दण्डकारण्यमे राक्षसोका अत्यन्त भय दिखायी देता है"॥ १४ ॥

इस प्रकार आपसमे बातचीत करते वे डेढ योजन (छ कोश) निकल गये। वहाँ कुमुद, कह्लार और कमलादिसे सुशोभित एक पुष्करिणी (तलाई) थी॥ १५ ॥ वह कमलवन और शीतल जलसे अति सुन्दर दीख पडती थी। उन्होने उसके निकट जाकर उसका शीतल जल पान किया॥ १६ ॥ और कुछ देरके लिये जलके किनारे वृक्षकी छायामे बैठ गये। उसी समय उन्होने एक महाबलवान् और भयानक राक्षस आता देखा॥ १७ ॥ उसका मुख तीक्ष्ण दाढोसे पूर्ण था, वह अपनी गर्जनासे अत्यन्त भय उत्पन्न करता था और उसके बाये कधेपर एक त्रिशूल रखा था जिसमे बहुत-से मनुष्य बिधे हुए थे॥ १८ ॥ वह बहुत-से जगली हाथी, सिह और भैसोको खाता हुआ आ रहा था। उसे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रत्यञ्चा चढाये हुए अपने धनुषको उठाकर लक्ष्मणजीसे कहा—॥ १९ ॥ "भाई! देखो, हमारे सामने यह भीरु पुरुषोको डरानेवाला उग्ररूप महाकाय राक्षस आ रहा है॥ २० ॥

सज्जीकृतधनुस्तिष्ठ मा भैर्जनकनन्दिनि ।
इत्युक्त्वा बाणमादाय स्थितो राम इवाचल ॥ २१ ॥

स तु दृष्ट्वा रमानाथ लक्ष्मण जानकीं तदा ।
अट्टहास तत कृत्वा भीषयन्निदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

कौ युवा बाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ ।
मुनिवेषधरौ बालौ स्त्रीसहायौ सुदुर्मदौ ॥ २३ ॥

सुन्दरौ बत मे वक्त्रप्रविष्टकवलोपमौ ।
किमर्थमागतौ घोर वन व्यालनिषेवितम् ॥ २४ ॥

श्रुत्वा रक्षोवचो राम स्मयमान उवाच तम् ।
अह रामस्त्वय भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मत ॥ २५ ॥

एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागता ।
पितृवाक्य पुरस्कृत्य शिक्षणार्थ भवादृशाम् ॥ २६ ॥

श्रुत्वा तद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत् ।
व्यादाय वक्त्र बाहुभ्या शूलमादाय सत्वर ॥ २७ ॥

मा न जानासि राम त्व विराध लोकविश्रुतम् ।
मद्भयान्मुनय सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गता ॥ २८ ॥

यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीता निरायुधौ ।
पलायत न चेच्छीघ्र भक्षयामि युवामहम् ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा राक्षस सीतामादातुमभिदुद्रुवे ।
रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण प्रहसन्निव ॥ ३० ॥

तत क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकट मुखम् ।
राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावत ॥ ३१ ॥

पदद्वय विराधस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥

तत सर्प इवास्येन ग्रसितु राममापतत् ।
ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिर ॥ ३३ ॥

चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले ।
तत सीता समालिङ्ग्य प्रशशस रघूत्तमम् ॥ ३४ ॥

तुम धनुषपर बाण चढाकर सावधान हो जाओ, जानकि ! तुम डरना मत।" ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी धनुषपर बाण चढा पर्वतके समान निश्चल होकर खडे हो गये ॥ २१ ॥

तदनन्तर उस राक्षसने राम, लक्ष्मण और जानकीजी-को देखकर (बडा) अट्टहास किया और सबको भयभीत करते हुए इस प्रकार कहा— ॥ २२ ॥ "अरे बालको ! बाण, तूणीर और जटा-वल्कल आदि मुनिवेष धारण किये तुम कौन हो ? तुम्हारे साथमे एक स्त्री है और तुम बडे मदोन्मत्त दिखायी देते हो ॥ २३ ॥ तुम बडे सुन्दर हो और मेरे मुखमे जानेवाले ग्रासके समान हो। हाय ! हिंस्र जीवोसे पूर्ण इस घोर वनमे तुम किसलिये आये हो ?" ॥ २४ ॥

राक्षसके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उससे मुसकराकर कहा—"मेरा नाम राम है और यह मेरा प्यारा छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ २५ ॥ तथा यह रमणी मेरी प्राणप्रिया सीता है। हम पिताकी आज्ञासे तुम-जैसोको शिक्षा देनेके लिये इस वनमे आये है" ॥ २६ ॥

रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर वह ठट्ठा मारकर हँसने लगा और उसने मुँह फैलाकर तुरत ही अपने हाथोमे शूल उठा लिया ॥ २७ ॥ और बोला—"राम ! क्या तुम मुझे नही जानते ? मै जगत्प्रसिद्ध विराध नामक (राक्षस) हूँ। मेरे ही भयसे समस्त मुनिजन इस वनको छोडकर चले गये है ॥ २८ ॥ यदि तुम्हे जीनेकी इच्छा है तो सीताको छोडकर बिना अस्त्र-शस्त्रोके भाग जाओ, नही तो मै अभी तुम दोनोको खा जाऊँगा" ॥ २९ ॥

ऐसा कह वह राक्षस सीताजीको पकडनेके लिये उनकी ओर दौडा। तब रामचन्द्रजीने हँसते हुए अपने बाणसे उसकी भुजाएँ काट डाली ॥ ३० ॥ इसपर वह अत्यन्त क्रोधसे सन्तप्त हो अपना विकराल मुख फाडकर रामचन्द्रजीकी ओर दौडा। तब श्रीरघुनाथजीने अपनी ओर आते हुए विराधके दोनो पैर काट डाले। यह बडा ही आश्चर्य-सा हो गया ॥ ३१-३२ ॥ तदनन्तर सर्पके समान अपने मुखसे ही रामजीको निगल जानेके लिये वह उनकी ओर बढा। तब भगवान् रामने एक अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका महान् सिर काट डाला। तब वह रुधिरसे लथपथ होकर तत्काल पृथिवीपर गिर पडा। इस प्रकार उसे मरा देख श्रीसीताजीने रघुश्रेष्ठ भगवान् रामका आलिङ्गन कर उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की ॥ ३३-३४ ॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिता ।
ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नरा ॥ ३५ ॥

विराधकायादतिसुन्दराकृति-
विभ्राजमानो विमलाम्बरावृत ।
प्रतप्तचामीकरचारुभूषणो
व्यदृश्यताग्रे गगने रविर्यथा ॥ ३६ ॥

प्रणम्य राम प्रणतार्तिहारिण
भवप्रवाहोपरम घृणाकरम् ।
प्रणम्य भूय प्रणनाम दण्डवत्
प्रपन्नसर्वार्तिहर प्रसन्नधी ॥ ३७ ॥

विराध उवाच

श्रीराम राजीवदलायताक्ष
विद्याधरोऽह विमलप्रकाश ।
दुर्वाससाकारणकोपमूर्तिना
शप्त पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया ॥ ३८ ॥

इत पर त्वच्चरणारविन्दयो
स्मृति सदा मेऽस्तु भवोपशान्तये ।
त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी
करोतु मे कर्णपुट त्वदीयम् ॥ ३९ ॥

कथामृत पातु करद्वय ते
पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात् ।
शिरश्च ते पादयुगप्रणाम
करोतु नित्य भवदीयमेवम् ॥ ४० ॥

नमस्तुभ्य भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
आत्मारामाय रामाय सीतारामाय वेधसे ॥ ४१ ॥

प्रपन्न पाहि मा राम यास्यामि त्वदनुज्ञया ।
देवलोक रघुश्रेष्ठ माया मा मावृणोतु ते ॥ ४२ ॥

इति विज्ञापितस्तेन प्रसन्नो रघुनन्दन ।
ददौ वर तदा प्रीतो विराधाय महामति ॥ ४३ ॥

गच्छ विद्याधराशेषमायादोषगुणा जिता ।
त्वया मद्दर्शनात्सद्यो मुक्तो ज्ञानवता वर ॥ ४४ ॥

उस समय आकाशमे देवगण दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सराएँ प्रसन्नतापूर्वक नाचने लगी और गन्धर्व तथा किन्नरगण गाने लगे ॥ ३५ ॥

इसी समय विराधके मृत शरीरसे आकाशस्थित सूर्यदेवके समान, सुन्दर वस्त्रोसे सुशोभित और तपाये हुए सुवर्णालङ्कारोसे सुसज्जित अति सुन्दर एक पुरुष प्रकट हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय पुरुषने शरणागत जनोका दु ख दूर करनेवाले, ससार-सागरसे पार करनेवाले, दयामय श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्नचित्तसे प्रणाम कर उन प्रसन्नचित्त और शरणागतोके सकल दु ख दूर करनेवाले प्रभुको फिर भी दण्डके समान पृथिवीपर लोटकर बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३७ ॥

विराध बोला—हे कमलदललोचन श्रीराम ! मै विमलतेजोमय विद्याधर हूँ। मुझे पूर्वकालमे बिना कारण ही क्रोध करनेवाले श्रीदुर्वासाजीने शाप दिया था सो आज आपने मुझे शापमुक्त कर दिया ॥ ३८ ॥ अब आप ऐसी कृपा करे जिससे भविष्यमे मुझे ससार-बन्धनको दूर करनेवाली आपके चरणारविन्दोकी स्मृति सर्वदा बनी रहे, मेरी वाणी सर्वदा आपका नामसङ्कीर्तन करती रहे, कान आपका कथामृत पान करते रहे, हाथ आपके चरण-कमलोका पूजन करते रहे और इसी प्रकार सिर आपके चरणयुगलोमे प्रणाम करता रहे ॥ ३९-४० ॥ हे विशुद्ध-ज्ञानस्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप अपने स्वरूपमे रमण करनेवाले होनेसे राम है, (अपनी मायाके सहित विराजमान होनेसे युगलमूर्ति) श्रीसीता-राम है और ससारके रचनेवाले है, आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे राम ! मै आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञासे मै देवलोकको जा रहा हूँ, आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे आपकी माया मुझे आच्छादित न करे ॥ ४२ ॥

विराधके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर महामति श्रीरघुनाथजीने उसे प्रसन्न होकर यह वर दिया— ॥ ४३ ॥ "हे विद्याधर ! अब तू जा। तूने मायाके सम्पूर्ण गुण-दोषोको जीत लिया है। तू ज्ञानियोमे श्रेष्ठ है और मेरे दर्शनके प्रभावसे तुरत मुक्त हो गया है ॥ ४४ ॥

मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाता चेन्मुक्तिदा यत ।
अतस्त्व भक्तिसम्पन्न पर याहि ममाज्ञया ॥ ४५ ॥

ससारमे मेरी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, क्योकि वह उत्पन्न होती है तो अवश्य मुक्ति देनेवाली होती है। तू मेरी भक्तिसे सम्पन्न है, इसलिये मेरी आज्ञासे तू परमधामको जा'' ॥ ४५ ॥

रामेण रक्षोनिधन सुघोर
शापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् ।
विद्याधरत्व पुनरेव लब्ध
राम गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ४६ ॥

(इस प्रकार) श्रीरामचन्द्रजीने भयकर राक्षसका वध किया, उसको शापसे मुक्त किया, उसको वरदान दिया और पुन विद्याधरत्व प्राप्त कराया। जो पुरुष इन लीलाओके कीर्तनद्वारा श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करता है वह अवश्य सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोको पाता है ॥ ४६ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

★

द्वितीय सर्ग

शरभङ्ग तथा सुतीक्ष्ण आदि मुनीश्वरोसे भेट

श्रीमहादेव उवाच

विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
जगाम शरभङ्गस्य वन सर्वसुखावहम् ॥ १ ॥

शरभङ्गस्ततो दृष्ट्वा राम सौमित्रिणा सह ।
आयान्त सीतया सार्ध सम्भ्रमादुत्थित सुधी ॥ २ ॥

अभिगम्य सुसम्पूज्य विष्टरेषूपवेशयत् ।
आतिथ्यमकरोत्तेषा कन्दमूलफलादिभि ॥ ३ ॥

प्रीत्याह शरभङ्गोऽपि राम भक्तपरायणम् ।
बहुकालमिहैवास तपसे कृतनिश्चय ॥ ४ ॥

तव सन्दर्शनाकाङ्क्षी राम त्व परमेश्वर ।
अद्य मत्तपसा सिद्ध यत्पुण्य बहु विद्यते ।
तत्सर्व तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! विराधके स्वर्ग सिधारनेपर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजीके साथ शरभङ्ग मुनिके सर्वसुखदायक तपोवनको गये ॥ १ ॥ मतिमान् शरभङ्ग श्रीरामचन्द्रजीको सीता और लक्ष्मणके सहित आते देख सहसा उठ खडे हुए ॥ २ ॥ और आगे बढकर उनकी भली प्रकार पूजा कर उनको आसनपर बैठाया तथा कन्द-मूल-फलादिसे उनका आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर मुनिवर शरभङ्गने भक्तवत्सल भगवान् रामसे प्रीतिपूर्वक कहा—''मै बहुत कालसे आपके दर्शनोकी आकाङ्क्षासे तपस्याका निश्चय कर यहीं रहता हूँ। हे राम ! आप साक्षात् परमेश्वर है। मुझे तपस्याके द्वारा जो बहुत-सा पुण्य प्राप्त हुआ है वह सब आज आपको समर्पितकर मै मोक्षपद प्राप्त करूँगा'' ॥ ४-५ ॥

समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्य-
फल विरक्त शरभङ्गयोगी ।
चितिं समारोहयदप्रमेय
राम ससीत सहसा प्रणम्य ॥ ६ ॥

ऐसा कह महाविरक्त योगिवर शरभङ्ग अपना महान् पुण्य-फल श्रीरामचन्द्रजीको समर्पणकर सीताके सहित अप्रमेय (भगवान्) रामको प्रणामकर सहसा चितापर चढ गये ॥ ६ ॥

ध्यायश्चिर राममशेषहृत्स्थ
दूर्वादलश्यामलमम्बुजाक्षम् ।
चीराम्बर स्निग्धजटाकलाप
सीतासहाय सहलक्ष्मण तम् ॥ ७ ॥

को वा दयालु स्मृतकामधेनु-
रन्यो जगत्या रघुनायकादहो ।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा
ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यात ॥ ८ ॥

पश्यत्विदानीं देवेशो रामो दाशरथि प्रभु ।
दग्ध्वा स्वदेह गच्छामि ब्रह्मलोकमकल्मष ॥ ९ ॥

अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघव सदा ।
यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ॥ १० ॥

इति राम चिर ध्यात्वा दृष्ट्वा च पुरत स्थितम् ।
प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मक वपु ॥ ११ ॥

दिव्यदेहधर साक्षाद्ययौ लोकपते पदम् ।
ततो मुनिगणा सर्वे दण्डकारण्यवासिन ।
आजग्मू राघव द्रष्टु शरभङ्गनिवेशनम् ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा मुनिसमूह त जानकीरामलक्ष्मणा ।
प्रणेमु सहसा भूमौ मायामानुषरूपिण ॥ १३ ॥

आशीर्भिरभिनन्द्याथ राम सर्वहृदि स्थितम् ।
ऊचु प्राञ्जलय सर्वे धनुर्बाणधर हरिम् ॥ १४ ॥

भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणार्थित ।
जानीमस्त्वा हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मण तथा ॥ १५ ॥

शेषाश शङ्खचक्रे द्वे भरत सानुज तथा ।
अतश्चादौ ऋषीणा त्व दु ख मोक्तुमिहार्हसि ॥ १६ ॥

आगच्छ यामो मुनिसेवितानि
वनानि सर्वाणि रघूत्तम क्रमात् ।
द्रष्टु सुमित्रासुतजानकीभ्या
तदा दयाऽस्मासु दृढा भविष्यति ॥ १७ ॥

उस समय वे (मन-ही-मन) सर्वान्तर्यामी दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, चीराम्बरधारी, स्निग्धजटाजूटधारी श्रीरामचन्द्रजीका सीता और लक्ष्मणके सहित बहुत देरतक ध्यान करते रहे ॥ ७ ॥ (फिर मन-ही-मन कहने लगे—)"अहो ! इस ससारमे श्रीरघुनाथजीको छोडकर स्मरण करनेपर कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और कौन दयालु है ? मै अनन्य भावसे उनका नित्य स्मरण करता था, अत मेरे स्मरणको जानकर वे स्वय ही चले आये ॥ ८ ॥ देवेश दशरथनन्दन भगवान् राम मेरी ओर देखते रहे, मै अपना शरीर जलाकर अब निष्पाप होकर ब्रह्मलोकको जा रहा हूँ ॥ ९ ॥ मेरे हृदयमे सर्वदा अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रजी विराजमान रहे, जिनके वामाङ्कमे मेघमे बिजलीके समान श्रीसीताजी विराजमान है" ॥ १० ॥

इस प्रकार रामचन्द्रजीका बहुत देरतक ध्यान करते हुए तथा अपने सम्मुख विराजमान उनके स्वरूपको देखते हुए मुनिवर शरभङ्गने अग्नि प्रज्वलितकर अपना पाञ्चभौतिक शरीर जला डाला ॥ ११ ॥ तथा दिव्य देह धारणकर साक्षात् ब्रह्मलोकको चले गये ।

तदनन्तर दण्डकारण्यवासी समस्त मुनिगण श्रीरघुनाथजीका दर्शन करनेके लिये शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर आये ॥ १२ ॥ उस मुनि-समाजको देखकर माया-मानव-रूप श्रीराम, सीता और लक्ष्मणने सहसा पृथिवीपर सिर रखकर उन्हे प्रणाम किया ॥ १३ ॥ उन मुनीश्वरोने सर्वान्तर्यामी भगवान् रामका आशीर्वादद्वारा अभिनन्दन किया और फिर वे धनुर्बाणधारी श्रीहरिसे हाथ जोडकर बोले— ॥ १४ ॥ "आपने ब्रह्माकी प्रार्थनासे पृथिवीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया है । हम यह जानते है कि आप साक्षात् श्रीहरि, जानकीजी लक्ष्मी, लक्ष्मणजी शेषजीका अश और भरत-शत्रुघ्न भगवान्के शङ्ख और चक्र है। इसलिये आप यहाँ सबसे पहले ऋषियोका दु ख दूर करे ॥ १५-१६ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आइये, सीता और लक्ष्मणसहित आप हमारे साथ क्रमश मुनीश्वरोके समस्त आश्रमोको देखनेके लिये चलिये । ऐसा करनेसे आपको हमपर बडी दया आयेगी" ॥ १७ ॥

इति विज्ञापितो राम कृताञ्जलिपुटैर्विभु ।
जगाम मुनिभि सार्ध द्रष्टु मुनिवनानि स ॥ १८ ॥

ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरासि स ।
अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

अस्थीनि केषामेतानि किमर्थ पतितानि वै ।
तमूचुर्मुनयो राम ऋषीणा मस्तकानि हि ॥ २० ॥

राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्ताना समाधित ।
अन्तराय मुनीना ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि ॥ २१ ॥

श्रुत्वा वाक्य मुनीना स भयदैन्यसमन्वितम् ।
प्रतिज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम् ॥ २२ ॥

पूज्यमान सदा तत्र मुनिभिर्वनवासिभि ।
जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वित ॥ २३ ॥

उवास कतिचित्तत्र वर्षाणि रघुनन्दन ।
एव क्रमेण सपश्यन्नृषीणामाश्रमान्विभु ॥ २४ ॥

सुतीक्ष्णस्याश्रम प्रागात्प्रख्यातमृषिसङ्कुलम् ।
सर्वर्तुगुणसम्पन्न सर्वकालसुखावहम् ॥ २५ ॥

राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्ण स्वयमागत ।
अगस्त्यशिष्यो रामस्य मन्त्रोपासनतत्पर ।
विधिवत्पूजयामास भक्त्युत्कण्ठितलोचन ॥ २६ ॥

सुतीक्ष्ण उवाच

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय
सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे ।
ससारसिन्धुतरणामलपोतपाद
रामाभिराम सतत तव दासदास ॥ २७ ॥

मामद्य सर्वजगतामविगोचरस्त्व
त्वन्मायया सुतकलत्रगृहान्धकूपे ।
मग्न निरीक्ष्य मलपुद्गलपिण्डमोह-
पाशानुबद्धहृदय स्वयमागतोऽसि ॥ २८ ॥

इस प्रकार हाथ जोडकर निवेदन किये जानेपर भगवान् राम मुनियोके साथ उनके तपोवनोको देखनेके लिये चले ॥ १८ ॥ वहाँ उन्होने सब ओर बहुत-सी खोपडियाँ पडी देखी। उन्हे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने मुनियोसे पूछा— ॥ १९ ॥ "ये हड्डियाँ किनकी है और (इस तपोभूमिमे) कैसे पडी है?" तब मुनीश्वरोने कहा—"हे राम! ये ऋषियोके मस्तक है ॥ २० ॥ हे समर्थ! इन्हे राक्षसोने खा लिया है, वे राक्षस समाधिमे मग्न रहनेके कारण भागनेमे असमर्थ मुनीश्वरोको भक्षण करनेके लिये मौका देखते हुए जहाँ-तहाँ घूमते रहते है" ॥ २१ ॥ मुनियोके ये भय और दीनतापूर्ण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने समस्त राक्षसोका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की ॥ २२ ॥ इस प्रकार क्रमश मुनीश्वरोके आश्रम देखते हुए प्रभु श्रीरघुनाथजी वनवासी मुनियोद्वारा नित्य पूजित होते हुए सीता और लक्ष्मणके साथ वहाँ कुछ वर्ष रहे ॥ २३-२४ ॥

तदनन्तर वे सुविख्यात सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममे गये जो ऋषियोसे भरा हुआ, समस्त ऋतुओके गुणोसे युक्त और सब समय सुखदायक था ॥ २५ ॥ रामका आगमन सुन राम-मन्त्रके उपासक और अगस्त्यके शिष्य सुतीक्ष्ण (उन्हे लेनेके लिये) स्वय आगे आये और उनकी विधिवत् पूजा की। उस समय सुतीक्ष्णके नेत्र भक्तिवश भगवद्दर्शनके लिये अति उतावले हो रहे थे ॥ २६ ॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे अनन्त-गुण अप्रमेय सीतापते! मै आपका ही मन्त्र जपता हूँ। हे अभिराम राम! शिव और ब्रह्मा आपके चरणोके आश्रित है, आपके चरण ससार-सागरसे पार करनेके लिये सुदृढ पोत (जहाज) है। हे नाथ! मै सर्वदा आपके दासोका दास हूँ ॥ २७ ॥ आप समस्त ससारकी इन्द्रियोके अविषय है, तथापि इस मल-मूत्रके पुतले शरीरके मोहपाशमे जिनका हृदय बँधा हुआ है ऐसे मुझ दीनको अपनी ही मायासे मोहित होकर पुत्र-कलत्र और गृह आदिके अन्धकूपमे पडा देखकर आप स्वय ही (मुझें अपना पुण्य-दर्शन देनेके लिये) पधारे हैं! ॥ २८ ॥

त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि
त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम्।
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया
सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीप ॥ २९ ॥

विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेक-
स्त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू।
भासीश मोहितधियां विविधाकृतिस्त्वं
यद्वद्रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः ॥ ३० ॥

प्रत्यक्षतोऽद्य भवतश्चरणारविन्दं
पश्यामि राम तमसः परतः स्थितस्य।
दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि
त्वन्मन्त्रपूतहृदयेषु सदा प्रसन्नः ॥ ३१ ॥

पश्यामि राम तव रूपमरूपिणोऽपि
मायाविडम्बनकृतं सुमनुष्यवेषम्।
कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचाप-
बाणं दयार्द्रहृदयं स्मितचारुवक्त्रम् ॥ ३२ ॥

सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्य
सौमित्रिणा नियतसेवितपादपद्मम्।
नीलोत्पलद्युतिमनन्तगुणं प्रशान्तं
मद्भागधेयमनिशं प्रणमामि रामम् ॥ ३३ ॥

जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश-
कालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम्।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव
रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ॥ ३४ ॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सस्मितमब्रवीत्।
मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात् ॥ ३५ ॥

अतोऽहमागतो द्रष्टुं मदृते नान्यसाधनम्।
मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः ॥ ३६ ॥

आप समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं, तथापि जो लोग आपके मन्त्रजापसे विमुख हैं उन्हें आप अपनी मायासे मोहित करते हैं और जो उस मन्त्रके जापमें तत्पर हैं उनकी माया दूर हो जाती है। इस प्रकार राजाके समान आप सबको उनकी सेवाके अनुसार फल देनेवाले हैं॥ २९ ॥ हे ईश! वास्तवमें एकमात्र आप ही इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण होते हुए त्रिगुणमयी मायाके कारण ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके रूपोंमें भासते हैं, आप ही मुग्धचित्त पुरुषोंकी (दृष्टिमें) (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) नाना प्रकारकी आकृतियोंसे प्रतीत हो रहे हैं, जिस प्रकार जलके पात्रोंमें प्रतिबिम्बित होनेसे सूर्य अनेक होकर भासता है॥ ३० ॥ हे राम! आप अज्ञानसे सर्वथा परे हैं तथापि आपके चरण-कमलोंको आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। (इससे विदित होता है कि) सबके साक्षी होनेसे आप असत्पुरुषोंको अगोचर होकर भी जिनका चित्त आपके मन्त्रजापसे शुद्ध हो गया है उनपर सदा प्रसन्न रहते हैं॥ ३१ ॥ हे राम! आप रूपरहित हैं, तथापि अपने ही माया-विलाससे धारण किये आपके मनोहर मनुष्यवेषधारी स्वरूपको मैं देख रहा हूँ। आपका यह रूप करोड़ों कामदेवोंके समान कान्तिमान् है और कमनीय धनुर्बाण धारण किये है। आपका हृदय दयार्द्र तथा मुख मुसकानसे मनोहर है॥ ३२ ॥ जो सीताजीसे युक्त हैं, मृगचर्म धारण किये हैं, सर्वथा अजेय हैं, जिनके चरणकमल नित्य श्रीसुमित्रा-नन्दनसे सेवित हैं और जिनकी नीलकमलके समान आभा है उन अनन्तगुणसम्पन्न अत्यन्त शान्त मेरा सौभाग्यस्वरूप श्रीराममूर्तिको मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ॥ ३३ ॥ हे राम! जो लोग आपके स्वरूपको देश-काल आदि समस्त उपाधियोंसे रहित और चिद्घन प्रकाशस्वरूप जानते हैं, वे भले ही वैसा ही जानें, किन्तु मेरे हृदयमें तो, आज जो प्रत्यक्षरूपसे मुझे दिखायी दे रहा है, यही रूप भासमान होता रहे। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी रूपकी इच्छा नहीं है॥ ३४ ॥

सुतीक्ष्णके इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे मुसकराकर कहा—"हे मुने! मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारा चित्त मेरी उपासनासे निर्मल हो गया है॥ ३५ ॥ और तुम्हारा मेरे अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है, इसीलिये मैं तुम्हें देखनेके लिये आया हूँ। संसारमें जो

निरपेक्षा नान्यगतास्तेषा दृश्योऽहमन्वहम् ।
स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृत मत्प्रिय सदा ॥ ३७ ॥

सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञान च विमल भवेत् ।
त्व ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वत ॥ ३८ ॥

देहान्ते मम सायुज्य लप्स्यसे नात्र सशय ।
गुरु ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्य मुनिनायकम् ।
किञ्चित्काल तत्र वस्तु मनो मे त्वरयत्यलम् ॥ ३९ ॥

सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव ।
अहमप्यागमिष्यामि चिराद्दृष्टो महामुनि ॥ ४० ॥

अथ प्रभाते मुनिना समेतो
राम ससीत सह लक्ष्मणेन ।
अगस्त्यसम्भाषणलोलमानस
शनैरगस्त्यानुजमन्दिर ययौ ॥ ४१ ॥

लोग मेरे मन्त्रकी उपासना करते है और मेरी ही शरणमे रहते है ॥ ३६ ॥ तथा नित्य निरपेक्ष और अनन्यगति रहते है, उन्हे मै नित्यप्रति दर्शन देता हूँ। जो व्यक्ति तुम्हारे किये हुए इस मेरे प्रिय स्तोत्रका पाठ करता है ॥ ३७ ॥ उसे मेरी शुद्ध भक्ति और निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है, तुम केवल मेरी उपासनासे इस जीवितावस्थामे ही सर्वथा मुक्त हो गये हो ॥ ३८ ॥ शरीर छूटनेपर तुम निस्सन्देह मेरा सायुज्यपद प्राप्त करोगे। अब मै तुम्हारे गुरु मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे मिलना चाहता हूँ, मेरा चित्त उनके पास कुछ दिन रहनेके लिये उतावला हो रहा है'' ॥ ३९ ॥

सुतीक्ष्णने कहा, ''हे राघव ! बहुत अच्छा, वहाँ कल चलियेगा। मैने भी मुनीश्वरको बहुत दिन हुए तब देखा था। अत मै भी आपके साथ ही वहाँ चलूँगा'' ॥ ४० ॥ प्रात काल होनेपर सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण मुनिको लेकर अगस्त्यजीसे वार्तालाप करनेके लिये उत्कण्ठित हो शनै-शनै उनके छोटे भाई (अग्निजिह्व मुनि) के आश्रमकी ओर चले ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

मुनिवर अगस्त्यजीसे भेट

श्रीमहादेव उवाच

अथ राम सुतीक्ष्णेन जानक्या लक्ष्मणेन च ।
अगस्त्यस्यानुजस्थान मध्याह्ने समपद्यत ॥ १ ॥

तेन सम्पूजित सम्यग्भुक्त्वा मूलफलादिकम् ।
परेद्यु प्रातरुत्थाय जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम् ॥ २ ॥

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्य नानामृगगणैर्युतम् ।
पक्षिसङ्घैश्च विविधैर्नादित नन्दनोपमम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभि सेवित मुनिमन्दिरै ।
सर्वतोऽलङ्कृत साक्षाद् ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) (उस दिन) मध्याह्नके समय श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण, सीता और लक्ष्मणके साथ अगस्त्य मुनिके छोटे भाई (अग्निजिह्व मुनि) के आश्रममे पहुँचे ॥ १ ॥ उन्होने उनकी भली प्रकार पूजा की (फिर उनके दिये हुए) कन्द-मूल-फल आदि खाकर, दूसरे दिन प्रात काल उठते ही अगस्त्य मुनिके आश्रमको चले ॥ २ ॥

वह आश्रम समस्त ऋतुओके फल और पुष्पोसे परिपूर्ण, विविध वन्य पशुओसे सेवित तथा नाना प्रकारके पक्षियोसे गुञ्जायमान नन्दन वनके समान (सुशोभित) था ॥ ३ ॥ वह ब्रह्मर्षियो और देवर्षियोसे सेवित था तथा उसके चारो ओर उन ऋषियोके आश्रम सुशोभित थे। इस

बहिरेवाश्रमस्याथ स्थित्वा रामोऽब्रवीन्मुनिम्।
सुतीक्ष्ण गच्छ त्व शीघ्रमागत मा निवेदय ॥ ५ ॥

अगस्त्यमुनिवर्याय सीतया लक्ष्मणेन च।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा सुतीक्ष्ण प्रययौ गुरो ॥ ६ ॥

आश्रम त्वरया तत्र ऋषिसङ्घसमावृतम्।
उपविष्ट रामभक्तैर्विशेषेण समायुतम्॥ ७ ॥

व्याख्यातराममन्त्रार्थ शिष्येभ्यश्चातिभक्तित ।
दृष्ट्वागस्त्य मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण प्रययौ मुने ॥ ८ ॥

दण्डवत्प्रणिपत्याह विनयावनत सुधी ।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च।
आगतो दर्शनार्थ ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलि ॥ ९ ॥

अगस्त्य उवाच

शीघ्रमानय भद्र ते राम मम हृदि स्थितम्।
तमेव ध्यायमानोऽह काङ्क्षमाणोऽत्र सस्थित ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा स्वयमुत्थाय मुनिभि सहितो द्रुतम्।
अभ्यगात्परया भक्त्या गत्वा राममथाब्रवीत्॥ ११ ॥

आगच्छ राम भद्र ते दिष्ट्या तेऽद्य समागम ।
प्रियातिथिर्मम प्राप्तोऽस्यद्य मे सफल दिनम्॥ १२ ॥

रामोऽपि मुनिमायान्त दृष्ट्वा हर्षसमाकुल ।
सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि ॥ १३ ॥

द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड्राममालिङ्ग्य भक्तित ।
त द्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुल ॥ १४ ॥

गृहीत्वा करमेकेन करेण रघुनन्दनम्।
जगाम स्वाश्रम हृष्टो मनसा मुनिपुङ्गव ॥ १५ ॥

सुखोपविष्ट सम्पूज्य पूजया बहुविस्तरम्।
भोजयित्वा यथान्याय भोज्यैर्वन्यैरनेकधा ॥ १६ ॥

प्रकार वह साक्षात् दूसरे ब्रह्मलोकके समान जान पडता था ॥ ४ ॥ आश्रमके बाहर रहकर श्रीरामचन्द्रजीने सुतीक्ष्ण मुनिसे कहा—"हे सुतीक्ष्ण! तुम शीघ्र ही मुनिवर अगस्त्यजीके पास जाकर उन्हे सीता और लक्ष्मणके सहित मेरे आनेकी सूचना दो।" तब सुतीक्ष्ण 'बडी प्रसन्नताकी बात है' ऐसा कह शीघ्रतासे गुरुजीके आश्रममे गये। वहाँ जाकर सुतीक्ष्णने देखा कि मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य मुनिमण्डलीसे—विशेषतया रामभक्तोसे घिरे हुए बैठे है और अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने शिष्योको राममन्त्रकी व्याख्या सुना रहे है। यह देखकर सुतीक्ष्ण उनके पास गये ॥ ५—८ ॥ उन्हे विनयपूर्वक दण्डवत्-प्रणामकर सुबुद्धि सुतीक्ष्णने कहा—"ब्रह्मन्! दशरथ-कुमार श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आपके दर्शनोके लिये आये है और अञ्जलि बाँधे आश्रमके बाहर खडे है" ॥ ९ ॥

अगस्त्यजी बोले—वत्स! तुम्हारा कल्याण हो। तुम शीघ्र ही मेरे हृदयस्थित (भगवान्) रामको ले आओ। मै उनके दर्शनोकी इच्छासे उन्हीका ध्यान करता हुआ यहाँ रहता हूँ ॥ १० ॥ ऐसा कह वे शीघ्र ही मुनियोके साथ उठकर स्वय श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और उनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक बोले— ॥ ११ ॥ "हे राम! आइये, आपका कल्याण हो। आज बडे भाग्यसे आपका समागम हुआ है। आजका दिन सफल है, आज मुझे मेरे प्रिय अतिथि प्राप्त हुए है" ॥ १२ ॥

मुनीश्वरको आते देख श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त आनन्दित होकर लक्ष्मण और सीताके सहित पृथिवीपर दण्डके समान लेट गये ॥ १३ ॥ तब मुनिराजने तुरत ही रामको उठाकर भक्तिपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके शरीर-स्पर्शसे प्राप्त हुए आनन्दसे उनके नेत्रोमे जल भर आया ॥ १४ ॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी एक हाथसे श्रीरघुनाथजीका हाथ पकडकर उन्हे प्रसन्न मनसे अपने आश्रममे ले आये ॥ १५ ॥ और उन्हे सुखपूर्वक आसनपर बैठाकर उनकी विधि-विधानसे बडी पूजा की तथा समयानुकूल नाना प्रकारके वन्य फल भोजन कराये ॥ १६ ॥

सुखोपविष्टमेकान्ते राम शशिनिभाननम्।
कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो भगवानृषि ॥ १७ ॥

त्वदागमनमेवाह प्रतीक्षन्समवस्थित ।
यदा क्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणा प्रार्थित पुरा ॥ १८ ॥

भूमेर्भारापनुत्त्यर्थं रावणस्य वधाय च।
तदादि दर्शनाकाङ्क्षी तव राम तपश्चरन्।
वसामि मुनिभि सार्धं त्वामेव परिचिन्तयन् ॥ १९ ॥

सृष्टे प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिक ।
त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरुच्यते ॥ २० ॥

त्वामेव निर्गुण शक्तिरावृणोति यदा तदा।
अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्तपरिनिष्ठिता ॥ २१ ॥

मूलप्रकृतिरित्येके प्राहुर्मायेति केचन।
अविद्या ससृतिर्बन्ध इत्यादि बहुधोच्यते ॥ २२ ॥

त्वया सक्षोभ्यमाणा सा महत्तत्त्व प्रसूयते।
महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्वया सञ्चोदितादभूत् ॥ २३ ॥

अहङ्कारो महत्तत्त्वसवृतस्त्रिविधोऽभवत्।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते ॥ २४ ॥

तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भूतान्यत परम्।
स्थूलानि क्रमशो राम क्रमोत्तरगुणानि ह ॥ २५ ॥

राजसानीन्द्रियाण्येव सात्त्विका देवता मन ।
तेभ्योऽभवत्सूत्ररूप लिङ्ग सर्वगत महत् ॥ २६ ॥

ततो विराट् समुत्पन्न स्थूलाद् भूतकदम्बकात्।
विराज पुरुषात्सर्व जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २७ ॥

देवतिर्यङ्मनुष्याश्च कालकर्मक्रमेण तु।
त्व रजोगुणतो ब्रह्मा जगत सर्वकारणम् ॥ २८ ॥

सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्य पालक सद्भिरुच्यते।
लये रुद्रस्त्वमेवास्य त्वन्मायागुणभेदत ॥ २९ ॥

इस प्रकार एकान्तमे सुखपूर्वक बैठे हुए चन्द्रवदन श्रीरामचन्द्रजीसे भगवान् अगस्त्य मुनिने हाथ जोडकर कहा— ॥ १७ ॥ हे राम ! पूर्वकालमे जिस समय क्षीरसमुद्रके समीप ब्रह्माजीने आपसे भूमिका भार उतारनेके लिये रावणका वध करनेकी प्रार्थना की थी तभीसे आपके दर्शनोकी इच्छासे मै तपस्या करता हुआ और आपहीका चिन्तन करता हुआ आपके आनेकी प्रतीक्षामे यहाँ मुनियोके साथ रहता हूँ ॥ १८-१९ ॥ सृष्टिके आरम्भमे विकल्प और उपाधिसे रहित आप अकेले ही थे (उस समय और कुछ भी नही था)। आपहीमें आश्रित तथा आपहीको विषय करनेवाली माया आपकी ही शक्ति कही जाती है ॥ २० ॥ जिस समय यह माया-शक्ति आप निर्गुणको ढँक लेती है उस समय वेदान्तनिष्ठ पुरुष इसे 'अव्याकृत' कहते है ॥ २१ ॥ कोई इसे 'मूलप्रकृति' कहते हैं और कोई माया, तथा यही अविद्या, ससृति और बन्धन आदि अनेक नामोसे पुकारी जाती है ॥ २२ ॥ आपके द्वारा क्षुभित होनेपर इस शक्तिसे महतत्त्व उत्पन्न होता है और महत्तत्त्वसे आपहीकी प्रेरणासे अहकार प्रकट हुआ है ॥ २३ ॥ महत्तत्त्वसे ओतप्रोत वह अहकार तीन प्रकारका हुआ, जो सात्त्विक, राजस और तामस कहलाता है ॥ २४ ॥ हे राम ! तामस अहकारसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँच सूक्ष्म तन्मात्राएँ हुई और इन सूक्ष्म तन्मात्राओसे इनके गुणानुसार क्रमश आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी—ये पाँच स्थूल भूत हुए ॥ २५ ॥ राजस अहकारसे दस इन्द्रियाँ और सात्त्विक अहकारसे इन्द्रियोके अधिष्ठाता देवता तथा मन उत्पन्न हुए, और इन सबसे मिलकर समष्टि-सूक्ष्म-शरीररूप हिरण्यगर्भ हुआ, जिसका दूसरा नाम सूत्रात्मा भी है ॥ २६ ॥ फिर स्थूल भूतसमूहसे विराट् उत्पन्न हुआ तथा विराट् पुरुषसे यह सम्पूर्ण स्थावर-जगम ससार प्रकट हुआ ॥ २७ ॥ (हे जगदीश्वर !) काल और कर्मके क्रमस आप ही देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि योनियोमे प्रकट हुए हैं। अपने मायिक गुणोके भेदसे आप ही रजोगुणद्वारा जगत्कर्ता ब्रह्माजी, सत्त्वगुणद्वारा जगत्‌की रक्षा करनेवाले विष्णु और तमोगुणसे उसका लय करनेवाले भगवान् रुद्र हुए है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते है ॥ २८-२९ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणै ।
तासा विलक्षणो राम त्व साक्षी चिन्मयोऽव्यय ॥ ३० ॥

सृष्टिलीला यदा कर्तुमीहसे रघुनन्दन ।
अङ्गीकरोषि माया त्व तदा वै गुणवानिव ॥ ३१ ॥

राम माया द्विधा भाति विद्याविद्येति ते सदा ।
प्रवृत्तिमार्गनिरता अविद्यावशवर्तिन ।
निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारका ॥ ३२ ॥

त्वद्भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामया स्मृता ।
अविद्यावशगा ये तु नित्य ससारिणश्च ते ।
विद्याभ्यासरता ये तु नित्यमुक्तास्त एव हि ॥ ३३ ॥

लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये ।
विद्या प्रादुर्भवेत्तेषा नेतरेषा कदाचन ॥ ३४ ॥

अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न सशय ।
त्वद्भक्त्यमृतहीनाना मोक्ष स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥ ३५ ॥

किं राम बहुनोक्तेन सार किञ्चिद्ब्रवीमि ते ।
साधुसङ्गतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता ॥ ३६ ॥

साधव समचित्ता ये नि स्पृहा विगतैषणा ।
दान्ता प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामना ॥ ३७ ॥

इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्च समा सङ्गविवर्जिता ।
सन्यस्ताखिलकर्माण सर्वदा ब्रह्मतत्परा ॥ ३८ ॥

यमादिगुणसम्पन्ना सन्तुष्टा येन केनचित् ।
सत्सङ्गमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रति ॥ ३९ ॥

समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने ।
त्वद्भक्तावुपपन्नाया विज्ञान विपुल स्फुटम् ॥ ४० ॥

उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवित ।
तस्माद्राघव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा ॥ ४१ ॥

सदा भूयाद्धरे सङ्गस्त्वद्भक्तेषु विशेषत ।
अद्य मे सफल जन्म भवत्सन्दर्शनादभूत् ॥ ४२ ॥

हे राम ! बुद्धिके सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोसे ही प्राणीकी क्रमश जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ होती है, पर आप इन तीनोसे सर्वथा पृथक्, इनके साक्षी, चित्स्वरूप और अविकारी है ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन ! जिस समय आप सृष्टिरूपी लीलाका विस्तार करना चाहते है उस समय मायाको अगीकार कर गुणवान्-से हो जाते है ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपकी यह माया सदा विद्या और अविद्या दो रूपसे भासती है। जो लोग प्रवृत्ति-मार्गमे लगे रहते है वे अविद्याके वशीभूत है और जो वेदान्तार्थका विचार करनेवाले, निवृत्ति-परायण और आपकी भक्तिमे निरत है वे विद्यामय समझे जाते है। इनमेसे जो अविद्याके वशीभूत है वे सदा जन्म-मरणरूप ससारमे फँसे रहते है और जो विद्याभ्यासी है वे ही नित्यमुक्त है ॥ ३२-३३ ॥ ससारमे जो लोग आपकी भक्तिमे तत्पर और आपहीके मन्त्रकी उपासना करनेवाले होते है उन्हींके (अन्त करणमे) विद्याका प्रादुर्भाव होता है और किसीको नही ॥ ३४ ॥ अत जो पुरुष आपकी भक्तिसे सम्पन्न है वे निस्सन्देह मुक्त ही है, आपकी भक्तिरूप अमृतके बिना स्वप्नमे भी मोक्ष नही हो सकता ॥ ३५ ॥ हे राम ! और अधिक क्या कहूँ ? इस विषयमे जो सार बात है वह तुम्हे बताये देता हूँ—ससारमे साधुसङ्ग ही मोक्षका मुख्य कारण कहा गया है ॥ ३६ ॥ ससारमें जो लोग सम्पद्-विपद्मे समानचित्त, स्पृहारहित, पुत्र-वित्तादिकी इच्छाओसे रहित, इन्द्रियोका दमन करनेवाले, शान्तचित्त, आपके भक्त, सम्पूर्ण कामनाओसे शून्य, इष्ट तथा अनिष्टकी प्राप्तिमे समान रहनेवाले, सङ्गहीन, समस्त कर्मोका त्याग करनेवाले, सर्वदा ब्रह्मपरायण रहनेवाले, यम आदि गुणोसे सम्पन्न तथा जो कुछ मिल जाय उसीमे सन्तुष्ट रहनेवाले होते है वे ही साधु हैं। जिस समय ऐसे साधु पुरुषका सङ्ग होता है तो आपके कथा-श्रवणमे प्रेम हो जाता है ॥ ३७—३९ ॥ हे राम ! तदनन्तर आप सनातन पुरुषमें भक्ति हो जाती है, तथा आपकी भक्ति हो जानेपर आपका स्फुट तथा प्रचुर ज्ञान प्राप्त होता है। यही चतुर जनसेवित मुक्तिका आद्य मार्ग है। अत हे राघव ! आपमे मेरी सर्वदा प्रेमलक्षणा उत्तम भक्ति बनी रहे और हे हरे ! मुझे अधिकतर आपके भक्तोका सङ्ग प्राप्त हो। हे नाथ ! आज आपके दर्शनोसे

अद्य मे क्रतव सर्वे बभूवु सफला प्रभो ।
दीर्घकाल मया तप्तमनन्यमतिना तप ।
तस्येह तपसो राम फल तव यदर्चनम् ॥ ४३ ॥

मेरा जन्म सफल हो गया ॥ ४०—४२ ॥ हे प्रभो ! आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ सफल हो गये। मैने बहुत समयसे अनन्यभावसे तपस्या की है। हे राम ! आज जो मैने आपकी प्रत्यक्ष पूजा की यह उस तपस्याका ही फल है ॥ ४३ ॥

सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव ।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृति स्यान्मे सदा त्वयि ॥ ४४ ॥

हे राघव ! सीताके सहित आप सर्वदा मेरे हृदयमे निवास करे, मुझे चलते-फिरते सदा आपका स्मरण बना रहे ॥ ४४ ॥

इति स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तम ।
ददौ चाप महेन्द्रेण रामार्थे स्थापित पुरा ॥ ४५ ॥
अक्षय्यौ बाणतूणीरौ खड्गो रत्नविभूषित ।
जहि राघव भूभारभूत राक्षसमण्डलम् ॥ ४६ ॥

लक्ष्मीपति श्रीरघुनाथजीकी इस प्रकार स्तुति कर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने उन्हे पूर्वकालमे रामहीके लिये इन्द्रका दिया हुआ धनुष, बाणोसे भरे हुए कभी खाली न होनेवाले दो तरकश तथा एक रत्नजटित खड्ग दिया और कहा—"हे राघव ! पृथिवीके भारस्वरूप राक्षसोका सहार करो ॥ ४५-४६ ॥

यदर्थमवतीर्णोऽसि मायया मनुजाकृति ।
इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमण्डित ॥ ४७ ॥
अस्ति पञ्चवटीनाम्ना आश्रमो गौतमीतटे ।
नेतव्यस्तत्र ते काल शेषो रघुकुलोद्वह ॥ ४८ ॥
तत्रैव बहुकार्याणि देवाना कुरु सत्पते ॥ ४९ ॥

जिसके लिये आपने माया-मानव-रूपसे अवतार लिया है। यहाँसे दो योजनकी दूरीपर गौतमी नदीके किनारे पवित्र वनसे सुशोभित एक पञ्चवटी नामक आश्रम है। हे रघुनाथजी ! आप अपना शेष काल वही व्यतीत करे। हे सत्पते ! वही रहकर आप देवताओके बहुत-से कार्य सिद्ध करे" ॥ ४७—४९ ॥

श्रुत्वा तदागस्त्यसुभाषित वच
स्तोत्र च तत्त्वार्थसमन्वित विभु ।
मुनिं समाभाष्य मुदान्वितो ययौ
प्रदर्शित मार्गमशेषविद्धरि. ॥ ५० ॥

तदनन्तर सर्वज्ञ भगवान् राम अगस्त्यजीका यह मनोहर भाषण और तत्त्वार्थगर्भित स्तोत्र सुन उनकी अनुमति लेकर प्रसन्नतापूर्वक उनके दिखाये हुए मार्गसे चले ॥ ५० ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

★

चतुर्थ सर्ग

पञ्चवटीमे निवास और लक्ष्मणजीको उपदेश

श्रीमहादेव उवाच

मार्गे व्रजन्ददर्शाथ शैलशृङ्गमिव स्थितम् ।
वृद्ध जटायुष राम किमेतदिति विस्मित ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले— (हे पार्वति !) मार्गमे जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीने पर्वत-शिखरके समान बैठे हुए वृद्ध जटायुको देखा। उसे देखकर उनको बडा आश्चर्य हुआ कि 'यह क्या है ?' ॥ १ ॥

धनुरानय सौमित्रे राक्षसोऽय पुर स्थित ।
इत्याह लक्ष्मण रामो हनिष्याम्यृषिभक्षकम् ॥ २ ॥

तब वे लक्ष्मणजीसे बोले—"सौमित्रे ! मेरा धनुष लाओ। देखो, सामने यह राक्षस बैठा है, मैं ऋषियोको भक्षण करनेवाले इस दुष्टको अभी मार डालता हूँ" ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा रामवचन गृध्रराड् भयपीडित ।
वधार्होऽह न ते राम पितुस्तेऽह प्रिय सखा ॥ ३ ॥

जटायुर्नाम भद्र ते गृध्रोऽह प्रियकृत्तव ॥ ४ ॥

पञ्चवट्यामह वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया ।
मृगयाया कदाचित्तु प्रयाते लक्ष्मणेऽपि च ॥ ५ ॥

सीता जनककन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नत ।
श्रुत्वा तद्गृध्रवचन राम सस्नेहमब्रवीत् ॥ ६ ॥

साधु गृध्र महाराज तथैव कुरु मे प्रियम् ।
अत्रैव मे समीपस्थो नातिदूरे वने वसन् ॥ ७ ॥

इत्यामन्त्रितमालिङ्ग्य ययौ पञ्चवटीं प्रभु ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया रघुनन्दन ॥ ८ ॥

गत्वा ते गौतमीतीर पञ्चवट्या सुविस्तरम् ।
मन्दिर कारयामास लक्ष्मणेन सुबुद्धिना ॥ ९ ॥

तत्र ते न्यवसन्सर्वे गङ्गाया उत्तरे तटे ।
कदम्बपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ॥ १० ॥

विविक्ते जनसम्बाधवर्जिते नीरुजस्थले ।
विनोदयन् जनकजा लक्ष्मणेन विपश्चिता ॥ ११ ॥

अध्युवास सुख रामो देवलोक इवापर ।
कन्दमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिन तयो ॥ १२ ॥

आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानस ।
धनुर्बाणधरो नित्य रात्रौ जागर्ति सर्वत ॥ १३ ॥

स्नान कुर्वन्त्यनुदिन त्रयस्ते गौतमीजले ।
उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमागमौ ॥ १४ ॥

आनीय सलिल नित्य लक्ष्मण प्रीतमानस ।
सेवतेऽहरह प्रीत्या एवमासन् सुख त्रय ॥ १५ ॥

एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम् ।
विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥ १६ ॥

भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम् ।
त्वत्त कमलपत्राक्ष सङ्क्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

रामका यह वचन सुन गृध्रराजने भयसे व्यथित होकर कहा—"राम ! मै तुम्हारे द्वारा मारे जाने योग्य नही हूँ। मै तुम्हारे पिताका प्रिय सखा जटायु नामक गृध्र हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, मै तो तुम्हारा हितकारी हूँ ॥ ३-४ ॥ तुम्हारी ही हित-कामनासे मै पञ्चवटीमे रहूँगा। किसी समय जब लक्ष्मणजी भी मृगयाके लिये वनमे चले जायँगे तो मैं जनकनन्दिनी सीताजीकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करूँगा।" गृध्रराजके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने स्नेहपूर्वक कहा— ॥ ५-६ ॥ "हे गृध्रमहाराज ! ठीक है, इस पासके वनमे ही रहते हुए आप समीपवर्ती होकर अवश्य हमारा प्रियसाधन करे" ॥ ७ ॥

इस प्रकार अपनी सम्मति दे भगवान् राम जटायुको आलिङ्गन कर भाई लक्ष्मण और सीताजीके सहित पञ्चवटीको गये ॥ ८ ॥ गौतमीके तटपर पहुँचकर उन्होने बुद्धिमान् लक्ष्मणजीसे पञ्चवटीमे एक विशाल कुटी बनवायी ॥ ९ ॥ वहाँ वे सब गौतमी गङ्गाके उत्तर तटपर कदम्ब, पनस और आम्र आदि फलवाले वृक्षोसे युक्त एक रोग-रहित जन-शून्य एकान्त स्थानमे बस गये। श्रीरामचन्द्रजी बुद्धिमान् लक्ष्मणके सहित जनकात्मजा सीताका मनोरञ्जन करते हुए उस देवलोकके समान सुरम्य स्थानमे दूसरे इन्द्रके समान सुखपूर्वक रहने लगे। राम-सेवामे जिनका चित्त लगा हुआ है वे लक्ष्मणजी नित्यप्रति उन्हे कन्द-मूल-फल लाकर देते और रात्रिके समय धनुष-बाण लेकर चारो ओर (घूमकर रक्षा करते हुए) जागा करते ॥ १०—१३ ॥ वे तीनो ही नित्यप्रति गौतमीमे स्नान किया करते थे। उस समय सीताजी उन दोनोके बीचमे रहकर आया-जाया करती थीं ॥ १४ ॥ लक्ष्मणजी प्रसन्नचित्तसे नित्यप्रति जल लाकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा किया करते थे। इस प्रकार वे तीनो वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ १५ ॥

एक दिन लक्ष्मणजीने एकान्तमे बैठे हुए परमात्मा श्रीरामके पास जाकर नम्रतापूर्वक पूछा— ॥ १६ ॥ "भगवन् ! मै आपके मुखारविन्दसे मोक्षका अव्यभिचारी निश्चित साधन सुनना चाहता हूँ, अत हे कमलनयन ! आप उसका सक्षेपसे वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

ज्ञान विज्ञानसहित भक्तिवैराग्यबृंहितम्।
आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥ १८ ॥

श्रीराम उवाच

शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतर परम्।
यद्विज्ञाय नरो जह्यात्सद्यो वैकल्पिक भ्रमम् ॥ १९ ॥

आदौ मायास्वरूप ते वक्ष्यामि तदनन्तरम्।
ज्ञानस्य साधन पश्चाज्ज्ञान विज्ञानसयुतम् ॥ २० ॥

ज्ञेय च परमात्मान यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात्।
अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत् ॥ २१ ॥

सैव माया तयैवासौ ससार परिकल्प्यते।
रूपे द्वे निश्चिते पूर्व मायाया कुलनन्दन ॥ २२ ॥

विक्षेपावरणे तत्र प्रथम कल्पयेज्जगत्।
लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्त स्थूलसूक्ष्मविभेदत ॥ २३ ॥

अपर त्वखिल ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति।
मायया कल्पित विश्व परमात्मनि केवले ॥ २४ ॥

रज्जौ भुजङ्गवद् भ्रान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन।
श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरै सदा ॥ २५ ॥

असदेव हि तत्सर्व यथा स्वप्नमनोरथौ।
देह एव हि ससारवृक्षमूल दृढ स्मृतम् ॥ २६ ॥

तन्मूल पुत्रदारादिबन्ध किं तेऽन्यथात्मन ॥ २७ ॥

देहस्तु स्थूलभूताना पञ्च तन्मात्रपञ्चकम्।
अहकारश्च बुद्धिश्च इन्द्रियाणि तथा दश ॥ २८ ॥

चिदाभासो मनश्चैव मूलप्रकृतिरेव च।
एतत्क्षेत्रमिति ज्ञेय देह इत्यभिधीयते ॥ २९ ॥

एतैर्विलक्षणो जीव परमात्मा निरामय।
तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु ॥ ३० ॥

जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधी।
मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम् ॥ ३१ ॥

हे रघुश्रेष्ठ! आप मुझे भक्ति और वैराग्यसे सना हु[illegible] विज्ञानयुक्त ज्ञान सुनाइये, ससारमे आपके अतिरि[illegible] विषयका उपदेश करनेवाला और कोई न[illegible]

श्रीरामजी बोले—वत्स! सुन, मै तुझे गुह्यसे [illegible] गुह्य परम रहस्य सुनाता हूँ जिसके जान लेनेपर मनुष्य [illegible] ही विकल्पजनित (ससाररूप) भ्रममे मुक्त हो जाता है॥ १९ ॥ प्रथम मै तुमसे मायाका स्वरूप कहूँगा तत्पश्चात् ज्ञानका साधन बताऊँगा और फिर विज्ञान सहित ज्ञानका वर्णन करूँगा ॥ २० ॥ इनके अतिरिक्त [illegible] परमात्माका भी स्वरूप बतलाऊँगा जिसके जान लेनेसे मनुष्य ससार-भयसे मुक्त हो जाता है। शरीरादि अनात्मपदार्थोमे जो आत्मबुद्धि होती है उसीको माया कहते है। उसीके द्वारा इस ससारकी कल्पना हुई है। कुलनन्दन! मायाके पहले-पहल दो रूप माने [illegible] है॥ २१-२२ ॥ एक विक्षेप, दूसरा आवरण। इनमे पहली विक्षेप-शक्ति ही महत्तत्त्वसे लेकर [illegible] ससारकी स्थूल और सूक्ष्म भेदसे कल्पना करती है॥ २३ ॥ और दूसरी आवरण-शक्ति सम्पूर्ण ज्ञानको आवरण करके स्थित रहती है। यह सम्पूर्ण विश्व रज्जुमे सर्प-भ्रमके समान शुद्ध परमात्मामे मायासे कल्पित है, विचार करनेपर यह कुछ भी नही ठहरता। मनुष्य जो कुछ सर्वदा सुनते, देखते और स्मरण करते है, वह सब स्वप्न और मनोरथोके समान असत्य है। शरीर ही इस ससाररूप वृक्षकी दृढ मूल है॥ २४—२६ ॥ उसीके कारण पुत्र-कलत्रादिका बन्धन है, नही तो आत्माका इनसे क्या सम्बन्ध है? ॥ २७ ॥ पाँच स्थूल भूत, पञ्च तन्मात्राए, अहकार, बुद्धि, दस इन्द्रियाँ, चिदाभास, मन और मूलप्रकृति इन सबके समूहको क्षेत्र समझना चाहिये, इसीको शरीर भी कहते है॥ २८-२९ ॥ निर्दोष परमात्मरूप जीव इन सबसे पृथक् है। अब मै तुझे जीवको जाननेके कुछ साधन भी बताता हूँ (सावधान होकर) सुनो ॥ ३० ॥

जीव और परमात्मा यह पर्याय शब्द है—दोनोका अभिप्राय एक ही है, अत इसमे भेद-बुद्धि नही (करनी चाहिये)। अभिमानसे दूर रहना, दम्भ और हिंसा आदिका

परक्षेपादिसहन सर्वत्रावक्रता तथा ।
मनोवाक्कायसद्भक्त्या सद्गुरो परिसेवनम् ॥ ३२ ॥

बाह्याभ्यन्तरसशुद्धि स्थिरता सत्क्रियादिषु ।
मनोवाक्कायदण्डश्च विषयेषु निरीहता ॥ ३३ ॥

निरहङ्कारता जन्मजराद्यालोचन तथा ।
असक्ति स्नेहशून्यत्व पुत्रदारधनादिषु ॥ ३४ ॥

इष्टानिष्टागमे नित्य चित्तस्य समता तथा ।
मयि सर्वात्मके रामे ह्यनन्यविषया मति ॥ ३५ ॥

जनसम्बाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम् ।
प्राकृतैर्जनसङ्घैश्च ह्यरति सर्वदा भवेत् ॥ ३६ ॥

आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम् ।
उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञान विपरीतैर्विपर्यय ॥ ३७ ॥

बुद्धिप्राणमनोदेहाहङ्कृतिभ्यो विलक्षण ।
चिदात्माह नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम् ॥ ३८ ॥

येन ज्ञानेन सवित्ते तज्ज्ञान निश्चित च मे ।
विज्ञान च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा ॥ ३९ ॥

आत्मा सर्वत्र पूर्ण स्याच्चिदानन्दात्मकोऽव्यय ।
बुद्ध्याद्युपाधिरहित परिणामादिवर्जित ॥ ४० ॥

स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृत ।
एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षण ॥ ४१ ॥

असङ्ग स्वप्रभो द्रष्टा विज्ञानेनावगम्यते ।
आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञान यदा भवेत् ॥ ४२ ॥

आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि ।
लीयते कार्यकरणै सहैव परमात्मनि ॥ ४३ ॥

सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मनि ।
इद मोक्षस्वरूप ते कथित रघुनन्दन ॥ ४४ ॥

ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहित मे परात्मन ।
किन्त्वेतद्दुर्लभ मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम् ॥ ४५ ॥

त्याग करना ॥ ३१ ॥ दूसरोके किये हुए आक्षेपादिको सहन करना, सर्वत्र सरल भाव रखना, मन, वचन और शरीरके द्वारा सच्ची भक्तिसे सद्गुरुकी सेवा करना ॥ ३२ ॥ बाह्य और आन्तरिक शुद्धि रखना, सत्कर्मोमे तत्पर रहना, मन, वाणी और शरीरका सयम करना, विषयोमे प्रवृत्त न होना ॥ ३३ ॥ अहकारशून्य रहना, जन्म, मृत्यु, रोग और बुढापे आदिके कष्टोका विचार करना, पुत्र, स्त्री और धन आदिमे आसक्ति तथा स्नेह न करना ॥ ३४ ॥ इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमे चित्तको सदा समान रखना मुझ सर्वात्मा राममे अनन्य बुद्धि रखना ॥ ३५ ॥ जनसमूहसे शून्य पवित्र देशमे रहना, ससारी लोगोसे सर्वदा उदासीन रहना ॥ ३६ ॥ आत्मज्ञानका सदा उद्योग करना तथा वेदान्तके अर्थका विचार करना—इन उक्त साधनोसे तो ज्ञान प्राप्त होता है और इनके विपरीत आचरण करनेसे विपरीत फल (अज्ञान) मिलता है ॥ ३७ ॥

जिससे ऐसा बोध होता है कि मै बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहङ्कार आदिसे विलक्षण नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूँ वही ज्ञान है यह मेरा निश्चय है। जिस समय इसका साक्षात् अनुभव होता है उस समय इसीको विज्ञान कहते है ॥ ३८-३९ ॥ आत्मा सर्वत्र पूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, अविनाशी, बुद्धि आदि उपाधियोसे शून्य तथा परिणामादिसे रहित है ॥ ४० ॥ यह अपने प्रकाशसे देह आदिको प्रकाशित करता हुआ भी स्वय आवरणशून्य, एक अद्वितीय और सत्य ज्ञान आदि स्वरूप तथा सगरहित, स्वप्रकाश और सबका साक्षी है—ऐसा विज्ञानसे जाना जाता है। जिस समय आचार्य और शास्त्रके उपदेशसे जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होता है उसी समय मूला अविद्या अपने कार्य (शरीरादि) तथा इन्द्रियोके सहित (अर्थात् अपने स्थूल और सूक्ष्म कार्यके सहित) परमात्मामे लीन हो जाती है ॥ ४१—४३ ॥ अविद्याकी इस लयावस्थाको ही मोक्ष कहते है, आत्मामे यह (मोक्ष) केवल उपचारमात्र है (वास्तवमे आत्माकी मुक्तावस्था आगन्तुक नही है वह तो सदा ही मुक्त है) हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! तुम्हे मैने यह ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यके सहित परमात्मरूप अपना मोक्षस्वरूप सुनाया। किन्तु जो लोग मेरी भक्तिसे विमुख है उनके लिये मै इसे अत्यन्त दुर्लभ मानता हूँ ॥ ४४-४५ ॥

चक्षुष्मतामपि यथा रात्रौ सम्यङ् न दृश्यते ।
पद दीपसमेताना दृश्यते सम्यगेव हि ॥ ४६ ॥

एव मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते ।
मद्भक्ते कारण किञ्चिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वत ॥ ४७ ॥

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्ताना निरन्तरम् ।
एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम् ॥ ४८ ॥

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रति ।
मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ॥ ४९ ॥

एव सततयुक्ताना भक्तिरव्यभिचारिणी ।
मयि सञ्जायते नित्य तत किमवशिष्यते ॥ ५० ॥

अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञान विज्ञानमेव च ।
वैराग्य च भवेच्छीघ्र ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥

कथित सर्वमेतत्ते तव प्रश्नानुसारत ।
अस्मिन्मन समाधाय यस्तिष्ठेत्स तु मुक्तिभाक् ॥ ५२ ॥

न वक्तव्यमिद यत्नान्मद्भक्तिविमुखाय हि ।
मद्भक्ताय प्रदातव्यमाहूयापि प्रयत्नत ॥ ५३ ॥

य इद तु पठेन्नित्य श्रद्धाभक्तिसमन्वित ।
अज्ञानपटलध्वान्त विधूय परिमुच्यते ॥ ५४ ॥

भक्ताना मम योगिना सुविमल-
स्वान्तातिशान्तात्मना।
मत्सेवाभिरतात्मना च विमल-
ज्ञानात्मना सर्वदा ।
सङ्ग य कुरुते सदोद्यतमति-
स्तत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिश
दृश्यो भवे नान्यथा ॥ ५५ ॥

जिस प्रकार नेत्र होते हुए भी लोग रात्रिके समय (अन्धकारमे) चौर आदिका चिह्न (निशान) भली प्रकार नही देखते, दीपक होनेपर ही उस समय वह दिखायी देता है, उसी प्रकार मेरी भक्तिसे युक्त पुरुषोको ही आत्माका सम्यक् साक्षात्कार होता है। अब मै अपनी भक्तिके कुछ वास्तविक उपाय बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो ॥ ४६-४७ ॥

"मेरे भक्तका सङ्ग करना, निरन्तर मेरी और मेरे भक्तोकी सेवा करना, एकादशी आदिका व्रत करना, मेरे पर्वदिनोको मानना, ॥ ४८ ॥ मेरी कथाके सुनने, पढने और उसकी व्याख्या करनेमे सदा प्रेम करना, मेरी पूजामे तत्पर रहना, मेरा नाम-कीर्तन करना" ॥ ४९ ॥ इस प्रकार जा निरन्तर मुझमे लगे रहते है उनकी मुझमे अविचल भक्ति अवश्य हो जाती है। फिर बाकी ही क्या रहता है ? ॥ ५० ॥ अत (यह निश्चित बात है कि) मेरी भक्तिसे युक्त पुरुषको ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य आदिकी शीघ्र प्राप्ति होती है और फिर वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ५१ ॥

इस प्रकार मैने तुम्हारे प्रश्नानुसार यह सम्पूर्ण (रहस्य) तुम्हे सुना दिया। जो व्यक्ति अपने चित्तको इसमे समाहित करके रहता है वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण ! मेरी भक्तिसे विमुख पुरुषोसे इसे सावधानतापूर्वक न कहना चाहिये और मेरे भक्तोको प्रयत्नपूर्वक बुलाकर भी यह रहस्य सुनाना चाहिये। ॥ ५३ ॥ जो पुरुष इसे श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदैव पढेगा वह अज्ञानसमूहसे बने हुए अन्धकारको हटाकर मुक्त हो जायगा ॥ ५४ ॥ जो पुरुष मेरी सेवामे अनुरक्त-चित्त, निर्मल-हृदय, शान्तात्मा, विमलज्ञानसम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिजनोका सग अनन्य बुद्धिसे सर्वदा उनकी सेवामे तत्पर रहकर करता है, मुक्ति उसके करतलगत रहती है और मै सर्वदा उसकी दृष्टिके सम्मुख विराजमान रहता हूँ। इसके अतिरिक्त और किसी उपायसे मेरा दर्शन नही हो सकता ॥ ५५ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे चतुर्थ सर्ग ॥ ४ ॥

★

पञ्चम सर्ग

शूर्पणखाको दण्ड, खर आदि राक्षसोका वध और शूर्पणखाका रावणके पास जाना

श्रीमहादेव उवाच

तस्मिन् काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी ।
विचचार महासत्त्वा जनस्थाननिवासिनी ॥ १ ॥

एकदा गौतमीतीरे पञ्चवट्या समीपत ।
पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानि पदानि जगतीपते ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता ।
पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम् ॥ ३ ॥

तत्र त रमानाथ सीतया सह सस्थितम् ।
कन्दर्पसदृश राम दृष्ट्वा कामविमोहिता ॥ ४ ॥

राक्षसी राघव प्राह कस्य त्व क किमाश्रमे ।
युक्तो जटावल्कलाद्यै साध्य किं तेऽत्र मे वद ॥ ५ ॥

अह शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
भगिनी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महात्मन ॥ ६ ॥

खरेण सहिता भ्रात्रा वसाम्यत्रैव कानने ।
राज्ञा दत्त च मे सर्व मुनिभक्षा वसाम्यहम् ॥ ७ ॥

त्वा तु वेदितुमिच्छामि वद मे वदता वर ।
तामाह रामनामाहमयोध्याधिपते सुत ॥ ८ ॥

एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी ।
स तु भ्राता कनीयान्मे लक्ष्मणोऽतीव सुन्दर ॥ ९ ॥

किं कृत्य ते मया ब्रूहि कार्य भुवनसुन्दरि ।
इति रामवच श्रुत्वा कामार्ता साब्रवीदिदम् ॥ १० ॥

एहि राम मया सार्ध रमस्व गिरिकानने ।
कामार्ताह न शक्नोमि त्यक्तु त्वा कमलेक्षणम् ॥ ११ ॥

राम सीता कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत् ।
भार्या ममैषा कल्याणी विद्यते ह्यनपायिनी ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले— (हे पार्वति !) उस समय उस घोर वनमे जनस्थानकी रहनेवाली एक महाबलवती इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी घूमा करती थी ॥ १ ॥ एक दिन पञ्चवटीके पास गौतमी नदीके तीरपर जगत्पति श्रीरामचन्द्रजीके पद्म, वज्र और अकुशकी रेखाओसे युक्त चरण-चिह्नोको देखकर वह उनके सौन्दर्यसे मोहित होकर कामासक्त हुई उन्हे देखती-देखती धीरे-धीरे रघुनाथजीके आश्रममे चली आयी ॥ २-३ ॥ वहाँ आकर कामदेवक समान अति सुन्दर लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीको सीताजीके साथ बैठे देखकर वह कामातुरा राक्षसी रघुनाथजीसे बोली—"तुम किसके (पुत्र) हो ? तुम्हारा क्या नाम है ? इस आश्रमम जटा-वल्कलादि धारण कर क्यो रहते हो ? यहाँ रहकर तुम क्या प्राप्त करना चाहते हो ? सो मुझे बताओ ॥ ४-५ ॥ मै राक्षसराज महात्मा रावणकी बहिन कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखा हूँ ॥ ६ ॥ मै अपने भाई खरके साथ इसी वनमे रहती हूँ। राजाने मुझे इस सम्पूर्ण वनका अधिकार सौप दिया है, (अत) मै मुनियोको खाती हुई यहाँ रहती हूँ ॥ ७ ॥ हे वक्ताओम श्रेष्ठ ! मै तुम्हारे विषयमे जानना चाहती हूँ अत तुम मुझे (अपना नाम-धाम आदि) बताओ। तब भगवान्ने उससे कहा—"मै अयोध्याधिपति राजा दशरथका राम नामक पुत्र हूँ ॥ ८ ॥ यह सुन्दरी मेरी भार्या जनकनन्दिनी सीता है तथा वह अति सुन्दर कुमार मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ ९ ॥ हे त्रिभुवनसुन्दरि ! बताओ मै तुम्हारा क्या कार्य करूँ ?' रामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर कामातुरा शूर्पणखा बोली— ॥ १० ॥ "राम ! चलो (किसी) गिरि-गुहाम चलकर मेरे साथ आनन्द करो। इस समय मै कामातुरा हूँ, अत आप कमलनयनको छोड नही सकती" ॥ ११ ॥

तब रामचन्द्रजीने नेत्रोसे सीताजीकी ओर सकेत करके मुसकराकर कहा—"ह सुन्दरि ! मेरी तो यह भार्या मौजूद है, जिसको त्यागना असम्भव है ॥ १२ ॥ (इसके

त्वं तु सापत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि ।
बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥ १३ ॥

तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव सञ्चर ।
इत्युक्ता लक्ष्मणं प्राह पतिर्मे भव सुन्दर ॥ १४ ॥

भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य सङ्गच्छावोऽद्य माचिरम् ।
इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता ॥ १५ ॥

तामाह लक्ष्मणः साध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः ।
दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम् ॥ १६ ॥

तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाखिलेश्वरः ।
तच्छ्रुत्वा पुनरप्यागाद्राघवं दुष्टमानसा ॥ १७ ॥

क्रोधाद्राम किमर्थं मां भ्रामयस्यनवस्थितः ।
इदानीमेव तां सीतां भक्षयामि तवाग्रतः ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा विकटाकारा जानकीमनुधावति ।
ततो रामाज्ञया खड्गमादाय परिगृह्य ताम् ॥ १९ ॥

चिच्छेद नासां कर्णौ च लक्ष्मणो लघुविक्रमः ।
ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्द्रुतम् ॥ २० ॥

क्रन्दमाना पपाताग्रे खरस्य परुषाक्षरा ।
किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः ॥ २१ ॥

केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्त्रानुवर्तिना ।
वद मे तं वधिष्यामि कालकल्पमपि क्षणात् ॥ २२ ॥

तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः ।
दण्डकं निर्भयं कुर्वन्नास्ते गोदावरीतटे ॥ २३ ॥

मामेवं कृतवांस्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः ।
यदि त्वं कुलजातोऽसि वीरोऽसि जहि तौ रिपू ॥ २४ ॥

तयोस्तु रुधिरं पास्ये भक्षयैतौ सुदुर्मदौ ।
नो चेत्प्राणान्परित्यज्य यास्यामि यमसादनम् ॥ २५ ॥

रहते हुए) तुम जन्मभर सौतकी डाहसे जलती हुई किस प्रकार रह सकोगी ? बाहर मेरा अत्यन्त सुन्दर छोटा भाई लक्ष्मण विराजमान है ॥ १३ ॥ वह तुम्हारा योग्य पति होगा, तुम उसीके साथ (वन-पर्वतादिमें) विहार करो।' रामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर कामसे मोहिता भयङ्करी शूर्पणखाने लक्ष्मणजीसे (जाकर) कहा—"हे सुन्दर ! अपने भाईकी आज्ञा मानकर तुम मेरे पति हो जाओ। आज हम और तुम परस्पर संगमन करें, देरी न करो" ॥ १४-१५ ॥

(उस राक्षसीने जब लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा तो) वे उससे बोले, "साध्वि ! मैं तो उन बुद्धिमान् (भगवान्) रामका दास हूँ। मुझे अपना पति बनानेसे तुम्हें भी उनकी दासी बनना पड़ेगा। तुम्हारे लिये इससे अधिक दुःखकी और क्या बात होगी ? ॥ १६ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, तुम उन्हींके पास जाओ, वे महाराज सबके स्वामी हैं।' यह सुनकर वह दुष्टचित्ता राक्षसी फिर रघुनाथजीके पास आयी ॥ १७ ॥ और क्रोधपूर्वक बोली—"हे राम ! तुम बड़े चञ्चलचित्त हो, मुझे क्यों इधर-उधर घुमा रहे हो ? मैं अभी तुम्हारे सामने ही इस सीताको खाये जाती हूँ।" ॥ १८ ॥

ऐसा कह वह विकट रूप धारण कर जानकीजीकी ओर दौड़ी। तब लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे उसे पकड़कर बड़ी फुर्तीसे खड्ग लेकर उसके नाक-कान काट डाले। तदनन्तर वह घोर शब्द करती हुई रुधिरमें लथपथ हो बड़ी शीघ्रतासे जाकर रोती और कठोर शब्द करती खरके सामने गिर पड़ी। उसे देखकर तीक्ष्ण ध्वनिवाले खरने कहा—"यह क्या बात है ॥ १९—२१ ॥ अरी ! मृत्युके मुखमें जानेवाले किस दुष्टने तेरी यह दशा की है ? तू बतला तो सही, वह कालके समान भी बली क्यों न हो, मैं उसे क्षणभरमें ही मार डालूँगा" ॥ २२ ॥

तब राक्षसी शूर्पणखाने उससे कहा—"यहाँ सीता और लक्ष्मणके सहित राम दण्डकारण्यको निर्भय करता हुआ गोदावरीके तटपर रहता है ॥ २३ ॥ उसीकी प्रेरणासे उसके भाई लक्ष्मणने मेरी यह गति की है। यदि तुम बड़े कुलीन और वीर हो तो उन दोनों शत्रुओंको मार डालो ॥ २४ ॥ तुम उन दोनों मदोन्मत्तोंको खा जाओ और मैं उन दोनोंका रुधिर पीऊँगी। नहीं तो अपने प्राणोंको छोड़कर यमलोकको चली जाऊँगी" ॥ २५ ॥

तच्छ्रुत्वा त्वरित प्रागात्खर क्रोधेन मूर्च्छित ।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणाम् ॥ २६ ॥

चोदयामास रामस्य समीप वधकाङ्क्षया ।
खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षस ॥ २७ ॥

सर्वे राम ययु शीघ्र नानाप्रहरणोद्यता ।
श्रुत्वा कोलाहल तेषा राम सौमित्रिमब्रवीत् ॥ २८ ॥

श्रूयते विपुल शब्दो नूनमायान्ति राक्षसा ।
भविष्यति महद्युद्ध नूनमद्य मया सह ॥ २९ ॥

सीता नीत्वा गुहा गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल ।
हन्तुमिच्छाम्यह सर्वान् राक्षसान् घोररूपिण ॥ ३० ॥

अत्र किञ्चिन्न वक्तव्य शापितोऽसि ममोपरि ।
तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वर ययौ ॥ ३१ ॥

राम परिकर बद्ध्वा धनुरादाय निष्ठुरम् ।
तूणीरावक्षयशरौ बद्ध्वायत्तोऽभवत्प्रभु ॥ ३२ ॥

तत आगत्य रक्षासि रामस्योपरि चिक्षिपु ।
आयुधानि विचित्राणि पाषाणान्पादपानपि ॥ ३३ ॥

तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलश क्षणात् ।
ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वरक्षसान् ॥ ३४ ॥

खर त्रिशिरस चैव दूषण चैव राक्षसम् ।
जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तम ॥ ३५ ॥

लक्ष्मणोऽपि गुहामध्यात्सीतामादाय राघवे ।
समर्प्य राक्षसान्दृष्ट्वा हतान्विस्मयमाययौ ॥ ३६ ॥

सीता राम समालिङ्ग्य प्रसन्नमुखपङ्कजा ।
शस्त्रव्रणानि चाङ्गेषु ममार्ज जनकात्मजा ॥ ३७ ॥

सापि दुद्राव दृष्ट्वा तान्हतान् राक्षसपुङ्गवान् ।
लङ्का गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ ॥ ३८ ॥

रावणस्य पपातोर्व्या भगिनी तस्य रक्षस ।
दृष्ट्वा ता रावण प्राह भगिनीं भयविह्वलाम् ॥ ३९ ॥

शूर्पणखाका यह कथन सुनकर खर क्रोधसे परिपूर्ण हो तुरत (युद्धके लिये) चला और रामको मारनेके लिये उसने बडे पराक्रमी चौदह सहस्र राक्षस उनके पास भेजे। खर, दूषण और त्रिशिरा—ये सभी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर रामके पास आये। उनका कोलाहल सुन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा— ॥ २६—२८ ॥ ("लक्ष्मण ! देखो) बडा कोलाहल सुनायी पड रहा है, मालूम होता है निश्चय ही राक्षसगण आ रहे है, अवश्य ही आज मेरे साथ उनका घोर युद्ध होगा ॥ २९ ॥ अत हे महाबल ! तुम सीताको लेकर किसी पर्वतकी कन्दरामे चले जाओ। आज मै इन समस्त घोररूप राक्षसोका वध करना चाहता हूँ ॥ ३० ॥ तुम्हे मेरी सौगन्द है, इस विषयमे तुम और कुछ न कहना।" तब लक्ष्मणजी 'जो आज्ञा' कह सीताजीको लेकर एक गिरिगुहामे चले गये ॥ ३१ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने अपनी कमर कसी और कठोर धनुष तथा दो अक्षयबाणवाले तरकस बॉधकर युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर राक्षसगण वहॉ आकर रामके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, पत्थर और वृक्षादिकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥श्रीरामचन्द्रजीने एक क्षणमात्रमे लीलासे ही उन अस्त्र-शस्त्रादिको तिल-तिल करके काट डाला। फिर सहस्रो बाणोसे उन सम्पूर्ण राक्षसोको मारकर खर, दूषण और त्रिशिराको भी मार डाला। इस प्रकार रघुवशियोमे श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने आधे पहरमे ही उन समस्त राक्षसोका सहार कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

तब लक्ष्मणजीने गुहामेसे सीताजीको लाकर श्रीरघुनाथजीको सौप दिया। उस समय सम्पूर्ण राक्षसोको मरे हुए देख वे बडे विस्मित हुए ॥ ३६ ॥ जनकनन्दिनी श्रीसीताजीने प्रसन्नमुखसे श्रीरामचन्द्रजीका आलिङ्गन किया और उनके शरीरमे हुए शस्त्रके घावोपर हाथ फेरने लगी ॥ ३७ ॥

उन सम्पूर्ण श्रेष्ठ राक्षसोको मरे देख राक्षसराज रावणकी बहिन शूर्पणखा दौडती हुई लकामे पहुॅची और राजसभामे पहुॅचकर रोती हुई रावणके पैरोके समीप पृथ्वीपर गिर पडी। अपनी बहिनको इस प्रकार भयभीत देखकर रावण बोला— ॥ ३८-३९ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से त्व विरूपकरण तव।
कृत शक्रेण वा भद्रे यमेन वरुणेन वा ॥ ४० ॥

कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्या क्षणेन तम्।
राक्षसी तमुवाचेद त्व प्रमत्तो विमूढधी ॥ ४१ ॥

पानासक्त स्त्रीविजित षण्ढ सर्वत्र लक्ष्यसे।
चारचक्षुर्विहीनस्त्व कथ राजा भविष्यसि ॥ ४२ ॥

खरश्च निहत सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा।
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसाना महात्मनाम् ॥ ४३ ॥

निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा।
जनस्थानमशेषेण मुनीना निर्भय कृतम्।
न जानासि विमूढस्त्वमत एव मयोच्यते ॥ ४४ ॥

रावण उवाच

को वा राम किमर्थ वा कथ तेनासुरा हता।
सम्यक्कथय मे तेषा मूलघात करोम्यहम् ॥ ४५ ॥

शूर्पणखोवाच

जनस्थानादह याता कदाचिद्गौतमीतटे।
तत्र पञ्चवटी नाम पुरा मुनिजनाश्रया ॥ ४६ ॥

तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीवलोचन।
धनुर्बाणधर श्रीमान् जटावल्कलमण्डित ॥ ४७ ॥

कनीयाननुजस्तस्य लक्ष्मणोऽपि तथाविध।
तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा ॥ ४८ ॥

देवगन्धर्वनागाना मनुष्याणा तथाविधा।
न दृष्टा न श्रुता राजन्द्योतयन्ती वन शुभा ॥ ४९ ॥

आनेतुमहमुद्युक्ता ता भार्यार्थ तवानघ।
लक्ष्मणो नाम तद्भ्राता चिच्छेद मम नासिकाम् ॥ ५० ॥

कर्णौ च नोदितस्तेन रामेण स महाबल।
ततोऽहमतिदु खेन रुदती खरमन्वगाम् ॥ ५१ ॥

"अरी वत्से! उठ, खडी हो। बता तो सही तुझे किसने विरूपा किया है? हे भद्रे! यह इन्द्रका काम है, अथवा यम, वरुण और कुबेरमेसे किसीने किया है? बता, एक क्षणमे ही मै उसे भस्म कर डालूँगा।"

तब राक्षसी शूर्पणखाने उससे कहा—"तुम बडे ही प्रमादी और मूढबुद्धि हो ॥ ४०-४१ ॥ तुम मद्यपानमे आसक्त, स्त्रीके वशीभूत और सब विषयोमे नपुसक-जैसे दिखायी पडते हो। तुम्हारे चार (खुफिया पुलिस) रूप नेत्र नही है, फिर तुम राजा कैसे रह सकोगे? ॥ ४२ ॥ युद्धमे खर मारा गया तथा दूषण और त्रिशिरा आदि चौदह सहस्र मुख्य-मुख्य राक्षसोको राक्षसशत्रु रामने एक क्षणमे ही मार डाला और सारे जनस्थानको मुनीश्वरोके लिये सर्वथा निर्भय कर दिया। इतना उत्पात हो जानेपर भी तुम्हे अभीतक कुछ पता ही नही है इसीलिये मै कहती हूँ कि तुम मूढ हो" ॥ ४३-४४ ॥

रावण बोला—अरी! तू बता तो, वह राम कौन है? उसने किसलिये और किस प्रकार इन राक्षसोको मारा? तू सब बात विस्तारपूर्वक कह, मै उसका मूलोच्छेद कर डालूँगा ॥ ४५ ॥

शूर्पणखा बोली—एक दिन जनस्थानसे मै गौतमीके किनारे जा रही थी, वहाँ पूर्वकालमे मुनिजनोसे सेवित एक पञ्चवटी नामक आश्रम है ॥ ४६ ॥ उस आश्रममे मैने जटा-वल्कलादिसे सुशोभित धनुर्बाणधारी कमलनयन शोभाधाम रामको देखा ॥ ४७ ॥ उसका छोटा भाई लक्ष्मण भी उसीके समान रूपवान् है तथा उसकी विशाललोचना भार्या भी रूपमे साक्षात् दूसरी लक्ष्मी-जैसी ही है ॥ ४८ ॥ हे राजन्! देव, गन्धर्व, नाग और मनुष्य आदिमेसे किसीकी भी स्त्री ऐसी रूपवती न देखी है और न सुनी है। वह शुभलक्षणा अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको प्रकाशित कर रही थी ॥ ४९ ॥ हे अनघ! उसे तुम्हारी पत्नी बनानेके लिये मैने लानेका प्रयत्न किया था, इसीसे रामके भाई लक्ष्मणने मेरी नाक काट डाली ॥ ५० ॥ फिर रामकी प्रेरणासे महाबली लक्ष्मणने मेरे कान भी काट लिये। तब मै अत्यन्त दु खसे रोती हुई खरके पास गयी ॥ ५१ ॥

सोऽपि राम समासाद्य युद्ध राक्षसयूथपै ।
तत क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना ॥ ५२ ॥

सर्वे तेन विनष्टा वै राक्षसा भीमविक्रमा ।
यदि रामो मन कुर्यात्त्रैलोक्य निमिषार्धत ॥ ५३ ॥

भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो ।
यदि सा तव भार्या स्यात्सफल तव जीवितम् ॥ ५४ ॥

अतो यतस्व राजेन्द्र यथा ते वल्लभा भवेत् ।
सीता राजीवपत्राक्षी सर्वलोकैकसुन्दरी ॥ ५५ ॥

साक्षाद्रामस्य पुरत स्थातु त्व न क्षम प्रभो ।
मायया मोहयित्वा तु प्राप्स्यसे ता रघूत्तमम् ॥ ५६ ॥

श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा ।
आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वक गृहम् ।
तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रा रात्रौ न लब्धवान् ॥ ५७ ॥

एकेन रामेण कथ मनुष्य-
मात्रेण नष्ट सबल खरो मे ।
भ्राता कथ मे बलवीर्यदर्प-
युतो विनष्टो बत राघवेण ॥ ५८ ॥

यद्वा न रामो मनुज परेशो
मा हन्तुकाम सबल बलौघै ।
सम्प्रार्थितोऽय द्रुहिणेन पूर्व
मनुष्यरूपोऽद्य रघो कुलेऽभूत् ॥ ५९ ॥

वध्यो यदि स्या परमात्मनाह
वैकुण्ठराज्य परिपालयेऽहम् ।
नो चेदिद राक्षसराज्यमेव
भोक्ष्ये चिर राममतो व्रजामि ॥ ६० ॥

इत्थ विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो
राम विदित्वा परमेश्वर हरिम् ।
विरोधबुद्ध्यैव हरि प्रयामि
द्रुत न भक्त्या भगवान्प्रसीदेत् ॥ ६१ ॥

उसने भी अपने राक्षस-सेनापतियोके साथ तुरत जाकर रामसे युद्ध ठाना, किन्तु उस बलशाली रामने एक क्षणमे ही वे समस्त भीमविक्रम राक्षस नष्ट कर दिये। हे प्रभो ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यदि रामके मनमे आ जाय तो वह निस्सन्देह आधे निमेषमे ही सम्पूर्ण त्रिलोकीको भस्म कर सकता हे। किन्तु यदि उसकी स्त्री सीता तुम्हारी भार्या हो जाय तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा ॥ ५२—५४ ॥ अत हे राजेन्द्र ! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे सम्पूर्ण लोकोमे एकमात्र सुन्दरी कमलनयनी सीता तुम्हारी प्राणप्रिया हो जाय ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! तुम रामके सामने साक्षात् न ठहर सकोग इसलिय उन रघुश्रेष्ठको किसी प्रकार मायाजालस मोहित कर तुम उस प्राप्त कर सकते हो ॥ ५६ ॥

यह सुनकर राक्षसराज रावणन सुन्दर वाक्या ओर दान-मानादिसे बहिन शूर्पणखाको धैर्य बँधाकर अपन अन्त पुरमे प्रवेश किया, किन्तु वहाँ चिन्ताके कारण उस रात्रिको नीद नही आयी ॥ ५७ ॥ (वह सोचने लगा—) (‘बडे आश्चर्यकी बात है,) अकेले मनुष्यमात्र रघुवशी रामने बल-वीर्य और साहससम्पन्न मेर भाई खरको सेनाके सहित कैसे मार डाला ? ॥ ५८ ॥ अथवा यह राम मनुष्य नही है, साक्षात् परमात्माने ही पूर्वकालमे की हुई ब्रह्माकी प्रार्थनासे मेरी सेनाके सहित मुझे वानरसेनाओमे मारनेक लिय इस समय रघुवशमे मनुष्यरूपसे अवतार लिया है ॥ ५९ ॥ यदि परमात्माद्वारा मै मारा गया तब ता मे वैकुण्ठका राज्य भोगूँगा, नही तो चिरकालपर्यन्त राक्षसोका राज्य तो भोगूँगा ही। इसलिये मे (अवश्य) रामके पास चलूँगा ॥ ६० ॥

सम्पूर्ण राक्षसोके स्वामी रावणने इस प्रकार विचारकर भगवान् रामको साक्षात् परमात्मा हरि जानकर (यह निश्चय किया कि) मै विरोध-बुद्धिसे ही भगवान्‌के पास जाऊँगा (क्योकि) भक्तिके द्वारा भगवान् शीघ्र प्रसन्न नही हो सकते ॥ ६१ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

★

षष्ठ सर्ग

रावणका मारीचके पास जाना

श्रीमहादेव उवाच

विचिन्त्यैव निशाया स प्रभाते रथमास्थित ।
रावणो मनसा कार्यमेक निश्चित्य बुद्धिमान् ॥ १ ॥

ययौ मारीचसदन पर पारमुदन्वत ।
मारीचस्तत्र मुनिवज्जटावल्कलधारक ॥ २ ॥

ध्यायन् हृदि परात्मान निर्गुण गुणभासकम् ।
समाधिविरमेऽपश्यद्रावण गृहमागतम् ॥ ३ ॥

द्रुतमुत्थाय चालिङ्गय पूजयित्वा यथाविधि ।
कृतातिथ्य सुखासीन मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

समागमनमेतत्ते रथेनैकेन रावण ।
चिन्तापर इवाभासि हृदि कार्य विचिन्तयन् ॥ ५ ॥

ब्रूहि मे न हि गोप्य चेत्करवाणि तव प्रियम् ।
न्याय्य चेद् ब्रूहि राजेन्द्र वृजिन मा स्पृशेन्न हि ॥ ६ ॥

रावण उवाच

अस्ति राजा दशरथ साकेताधिपति किल ।
रामनामा सुतस्तस्य ज्येष्ठ सत्यपराक्रम ॥ ७ ॥

विवासयामास सुत वन वनजनप्रियम् ।
भार्यया सहित भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ८ ॥

स आस्ते विपिने घोरे पञ्चवट्याश्रमे शुभे ।
तस्य भार्या विशालाक्षी सीता लोकविमोहिनी ॥ ९ ॥

रामो निरपराधान्मे राक्षसान् भीमविक्रमान् ।
खर च हत्वा विपिने सुखमास्तेऽतिनिर्भय ॥ १० ॥

भगिन्या शूर्पणखाया निर्दोषायाश्च नासिकाम् ।
कर्णौ चिच्छेद दुष्टात्मा वने तिष्ठति निर्भय ॥ ११ ॥

अतस्त्वया सहायेन गत्वा तत्प्राणवल्लभाम् ।
आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम् ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! रात्रिके समय इस प्रकार विचारकर प्रात काल होनेपर बुद्धिमान् रावण रथमे सवार हुआ और अपने मन-ही-मन एक कार्य निश्चय कर वह समुद्रके दूसर तटपर मारीचके घर गया। वहाँ मारीच मुनियोके समान जटा-वल्कलादि धारणकर प्राकृत गुणोके प्रकाशक निर्गुण भगवान्का ध्यान कर रहा था। समाधि भग होनेपर उसने रावणको अपने घर आया देखा ॥ १—३ ॥

रावणको देखते ही वह शीघ्रतासे उठ खडा हुआ और उससे गले मिलकर उसकी विधिपूर्वक पूजा की तथा आतिथ्य-सत्कारके अनन्तर जब रावण स्वस्थ होकर बैठा तो मारीच उससे बोला— ॥ ४ ॥ "हे रावण ! इस समय तुम एक ही रथके साथ आये हो और तुम्हारा चित्त किसी कार्यके विचारमे चिन्ताग्रस्त-सा प्रतीत होता है ॥ ५ ॥ यदि गोपनीय न हो नो मुझे वह कार्य बताओ। हे राजेन्द्र ! यदि उसक करनेमे मुझे पाप न लगे और वह न्यायानुकूल हो तो कहो, मे तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा" ॥ ६ ॥

रावण बोला—कहते है—राजा दशरथ अयोध्यापुरीका अधिपति है, उसका ज्येष्ठ पुत्र सत्यपराक्रमी राम हे ॥ ७ ॥ उस अपने मुनिजनप्रिय पुत्रको दशरथने स्त्री और छोटे भाई लक्ष्मणके सहित वनमे भेज दिया है ॥ ८ ॥ इस समय वह घोर दण्डकारण्यके पञ्चवटी नामक शुभ आश्रममे रहता है। (सुना है,) उसकी भार्या विशालनयना सीता त्रिलोकीको मोहित करनेवाली ह ॥ ९ ॥ वह राम मेरे बडे पराक्रमी निरपराध राक्षसोको भाई खरके सहित मारकर उस तपोवनमे निर्भयतापूर्वक बडे आनन्दस रहता है ॥ १० ॥ मेरी बहिन शूर्पणखाने उसका कुछ भी नही बिगाडा था, किन्तु उस दुष्टने उसके नाक-कान काट डाले और अब निर्भयतापूर्वक उस वनमे रहता है ॥ ११ ॥ इसलिये अब तुम्हारी सहायतासे मै रामके तपोवनमे न रहनपर उसकी प्राणप्रिया सीताको ले

त्व तु मायामृगो भूत्वा ह्याश्रमादपनेष्यसि ।
राम च लक्ष्मण चैव तदा सीता हराम्यहम् ॥ १३ ॥

त्व तु तावत्सहाय मे कृत्वा स्थास्यसि पूर्ववत् ।
इत्येव भाषमाण त रावण वीक्ष्य विस्मित ॥ १४ ॥

केनेदमुपदिष्ट ते मूलघातकर वच ।
स एव शत्रुर्वध्यश्च यस्त्वन्नाश प्रतीक्षते ॥ १५ ॥

रामस्य पौरुष स्मृत्वा चित्तमद्यापि रावण ।
बालोऽपि मा कौशिकस्य यज्ञसरक्षणाय स ॥ १६ ॥

आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे ।
योजनाना शत रामस्तदादि भयविह्वल ॥ १७ ॥

स्मृत्वा स्मृत्वा तदेवाह राम पश्यामि सर्वत ॥ १८ ॥

दण्डकेऽपि पुनरप्यह वने
पूर्ववैरमनुचिन्तयन् हृदि ।
तीक्ष्णशृङ्गमृगरूपमेकदा
मादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम् ॥ १९ ॥

राघव जनकजासमन्वित
लक्ष्मणेन सहित त्वरान्वित ।
आगतोऽहमथ हन्तुमुद्यतो
मा विलोक्य शरमेकमक्षिपत् ॥ २० ॥

तेन विद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन्
राक्षसेन्द्र पतितोऽस्मि सागरे ।
तत्प्रभृत्यहमिद समाश्रित
स्थानमूर्जितमिद भयार्दित ॥ २१ ॥

राममेव सतत विभावये
भीतभीत इव भोगराशित ।
राजरत्नरमणीरथादिक
श्रोत्रयोर्यदि गत भय भवेत् ॥ २२ ॥

राम आगत इहेति शङ्कया
बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम् ।
निद्रया परिवृतो यदा स्वपे
राममेव मनसानुचिन्तयन् ॥ २३ ॥

आना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ तुम मायासे मृगरूप होकर राम और लक्ष्मणको आश्रमसे दूर ले जाना। उसी समय मै सीताको हर लाऊँगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार मेरी सहायता करके तुम फिर पूर्ववत् अपने आश्रममे आ रहना।

रावणको इस प्रकार कहते देख मारीचने विस्मित होकर कहा— ॥ १४ ॥ "रावण! ये सर्वनाश करनेवाली बाते तुम्हे किसने बतायी है ? इस प्रकार जो कोई तुम्हारा नाश करना चाहता है, निश्चय ही वह तुम्हारा शत्रु है और वध करने योग्य है ॥ १५ ॥ हे रावण! उनके बाल्यकालके पौरुषको याद करके, जब वे विश्वामित्रजीकी यज्ञ-रक्षाके लिये आये थे और उन्होने एक बाणसे ही मुझे सौ योजन दूर समुद्रके तटपर फेक दिया था, तबसे मैं भयसे व्याकुल हो जाता हूँ। बारम्बार उसी बातका स्मरण हो आनेसे मुझे सब ओर राम-ही-राम दिखलायी देने लगते है ॥ १६—१८ ॥ एक दिन अपने पूर्व-वैरका स्मरण कर मै दण्डकारण्यमे भी अपने-जैसे बहुत-से मृगोके साथ मिलकर एक तीखे सीगोवाले मृगका रूप बनाकर गया था ॥ १९ ॥ जब मै बडी फुर्तीसे सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरघुनाथजीको मारनेकी इच्छासे आगे बढा तो मुझे देखकर उन्होने केवल एक बाण छोड दिया ॥ २० ॥ हे राक्षसेन्द्र! उसीसे हृदय बिंध जानेके कारण मै आकाशमे चक्कर काटता हुआ समुद्रमे आकर गिरा। तबसे मै भयभीत होकर इस निर्भय स्थानमे रहता हूँ ॥ २१ ॥ राज, रत्न, रमणी और रथ आदि (भोग-सामग्रियोके प्रथम अक्षर 'र') के कानोमे पडते ही मुझे (रामकी याद आ जानेसे) भय उत्पन्न हो जाता है, इसलिये मै भोग-समुदायसे भयभीत होकर निरन्तर 'राम' का ही ध्यान करता रहता हूँ ॥ २२ ॥ 'यहाँ राम न आ गये हो' इस आशकासे मैने समस्त बाह्य कार्य छोड दिये है। जिस समय मै निद्राके वशीभूत होकर सोता हूँ उस समय मन-ही-मन रामका ही स्मरण करता रहता हूँ ॥ २३ ॥

स्वप्नदृष्टिगतराघव तदा
बोधितो विगतनिद्र आस्थित ।
तद्भवानपि विमुच्य चाग्रह
राघव प्रति गृह प्रयाहि भो ॥ २४ ॥
रक्ष राक्षसकुल चिरागत
तत्स्मृतौ सकलमेव नश्यति ।
तव हित वदतो मम भाषित
परिगृहाण परात्मनि राघवे ॥ २५ ॥
त्यज विरोधमतिं भज भक्तित
परमकारुणिको रघुनन्दन ।
अहमशेषमिद मुनिवाक्यतोऽ-
श्रृणवमादियुगे परमेश्वर ॥ २६ ॥
ब्रह्मणार्थित उवाच त हरि
किं तवेप्सितमह करवाणि तत् ।
ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचन
त्व प्रयाहि भुवि मानुष वपु ।
दशरथात्मजभावमञ्जसा
जहि रिपु दशकन्धर हरे ॥ २७ ॥
अतो न मानुषो राम साक्षान्नारायणोऽव्यय ।
मायामानुषवेषेण वन यातोऽतिनिर्भय ॥ २८ ॥
भूभारहरणार्थाय गच्छ तात गृह सुखम् ।
श्रुत्वा मारीचवचन रावण प्रत्यभाषत ॥ २९ ॥
परमात्मा यदा राम प्रार्थितो ब्रह्मणा किल ।
मा हन्तु मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागत ॥ ३० ॥
करिष्यत्यचिरादेव सत्यसङ्कल्प ईश्वर ।
अतोऽह यत्नत सीतामानेष्याम्येव राघवात् ॥ ३१ ॥
वधे प्राप्ते रणे वीर प्राप्स्यामि परम पदम् ।
यद्वा राम रणे हत्वा सीता प्राप्स्यामि निर्भय ॥ ३२ ॥
तदुत्तिष्ठ महाभाग विचित्रमृगरूपधृक् ।
राम सलक्ष्मण शीघ्रमाश्रमादतिदूरत ॥ ३३ ॥
आक्रम्य गच्छ त्व शीघ्र सुख तिष्ठ यथा पुरा ।
अत पर चेद्यत्किञ्चिद्भाषसे मद्विभीषणम् ॥ ३४ ॥
हनिष्याम्यसिनानेन त्वामत्रैव न सशय ।

इस प्रकार स्वप्नमे देखे हुए श्रीरघुनाथजीको जब निद्रा टूटनेपर जागता हूँ तब भी नही भूलता। अत हे रावण! तुम भी श्रीराघवसे हठ छोडकर अपने घर चले जाओ ॥ २४ ॥ और चिरकालसे चले हुए अपने राक्षस-वशकी रक्षा करो। (श्रीरामचन्द्रजीसे वैर न करो,) उनका तो (वैरभावसे) स्मरण करनेसे भी सर्वस्व नष्ट हो जाता है। मै तुम्हारे हितके लिये जो कुछ कहता हूँ वह मानो। तुम परमात्मा श्रीरघुनाथजीसे विरोध-बुद्धि छोड दो और भक्तिभावसे उनका भजन करो, क्योकि श्रीरामचन्द्रजी बडे दयालु है। मैने मुनीश्वरोके मुखसे ये सभी बाते सुनी है कि सत्ययुगमे ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर परमात्मा श्रीहरिने कहा था कि तुम अपना मनोरथ बताओ, मै उसे पूर्ण करूँगा। तब ब्रह्माजीने भगवान्से कहा—'हे कमललोचन हरे! आप मनुष्यरूपसे पृथिवीमे अवतार लीजिये और शीघ्र ही दशरथनन्दन श्रीराम होकर देवद्रोही दशाननका वध कीजिये' ॥ २५—२७ ॥ अत तुम निश्चय मानो, राम मनुष्य नही है, वे साक्षात् अव्ययपुरुष श्रीनारायण है, मायासे मनुष्यरूप होकर वे निर्भयतापूर्वक पृथिवीका भार उतारनेके लिये वनमे आये है। अत हे तात! तुम सुखपूर्वक घर लौट जाओ।''

मारीचके ये वचन सुनकर रावण बोला— ॥ २८-२९ ॥ ''यदि ब्रह्माकी प्रार्थनासे परमात्मा ही राम होकर मनुष्यरूपसे मुझे मारनेके लिये प्रयत्नपूर्वक यहाँ आये है, तो वे शीघ्र ही अवश्य वैसा ही करेगे, क्योकि ईश्वर सत्य-सकल्प है। इसलिये मैं अवश्य यत्नपूर्वक रघुनाथजीके पाससे सीताको ले आऊँगा ॥ ३०-३१ ॥ हे वीर! यदि मै युद्धमे उनके हाथसे मारा गया तो परमपद प्राप्त करूँगा और यदि मैने ही रामको रणक्षेत्रमे मार डाला तो निर्भयतापूर्वक सीताको पाऊँगा ॥ ३२ ॥ अत हे महाभाग! उठो और शीघ्र ही विचित्र मृगरूप धारण कर राम और लक्ष्मणको आश्रमसे अति दूर ले जाओ, फिर पूर्ववत् अपने आश्रममे आकर सुखपूर्वक रहो। यदि मुझे भयभीत करनेके लिये अब और कुछ कहोगे तो निश्चय मानो, मै अभी इसी खड्गसे तुम्हे यही मार डालूँगा।''

मारीचस्तद्वच श्रुत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत् ॥ ३५ ॥

यदि मा राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात् ।
मा हन्याद्यदि चेद्दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

इति निश्चित्य मरण रामादुत्थाय वेगत ।
अब्रवीद्रावण राजन्करोम्याज्ञा तव प्रभो ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय गतो रामाश्रम प्रति ।
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मृगोऽभूद्रौप्यबिन्दुक ॥ ३८ ॥

रत्नशृङ्गो मणिखुरो नीलरत्नविलोचन ।
विद्युत्प्रभो विमुग्धास्यो विचचार वनान्तरे ॥ ३९ ॥

रामाश्रमपदस्यान्ते सीतादृष्टिपथे चरन् ॥ ४० ॥

क्षण च धावत्यवतिष्ठते क्षण
समीपमागत्य पुनर्भयावृत ।
एव स मायामृगवेषरूपधृक्
चचार सीता परिमोहयन्खल ॥ ४१ ॥

उसका यह कथन सुनकर मारीचने मन-ही-मन सोचा— ॥ ३३—३५ ॥'यदि श्रीरघुनाथजीने मुझे मारा तो मै ससार-सागरसे पार हो जाऊँगा और जो कही इस दुष्टने मुझे मार डाला तो निश्चय ही मुझे नरकमे पडना होगा' ॥ ३६ ॥ इस प्रकार श्रीरामके हाथसे ही अपना मरना निश्चय कर वह शीघ्रतासे उठा और रावणसे बोला—"हे राजन् ! हे प्रभो ! मै आपकी आज्ञा पालन करूँगा" ॥ ३७ ॥

ऐसा कह वह (रावणके) रथपर चढकर श्रीरामचन्द्रके आश्रममे आया और चॉदीकी बूँदोके सहित शुद्धसुवर्ण-वर्ण विचित्र मृग-रूप धारण किया ॥ ३८ ॥ उसके सीग रत्नमय, खुर मणिमय और नेत्र नीलरत्नमय थे। इस प्रकार बिजलीकी-सी छटा और मनोहर मुखवाला वह मृग रामचन्द्रजीके आश्रमके पास सीताजीके सामने वनमे विचरने लगा ॥ ३९-४० ॥ किसी क्षण तो वह चौकडी मारने लगता और कभी पास आकर ठिठक जाता, फिर भयसे (भागने लगता)। इस प्रकार वह वञ्चक मायामृग-रूप धारणकर सीताजीको मोहित करता हुआ विचरने लगा ॥ ४१ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

★

सप्तम सर्ग

मारीचवध और सीताहरण

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामोऽपि तत्सर्व ज्ञात्वा रावणचेष्टितम् ।
उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वच ॥ १ ॥

रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम् ।
त्व तु छाया त्वदाकारा स्थापयित्वोटजे विश ॥ २ ॥

अग्नावदृश्यरूपेण वर्ष तिष्ठ ममाज्ञया ।
रावणस्य वधान्ते मा पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ॥ ३ ॥

श्रुत्वा रामोदित वाक्य सापि तत्र तथाकरोत् ।
मायासीता बहि स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले— (हे पार्वति !) इधर श्रीरामचन्द्रजीने भी रावणका सारा षड्यन्त्र जानकर एकान्तमे श्रीजानकीजीसे कहा—"हे सीते ! मै जो कुछ कहता हूँ वह सुनो ॥ १ ॥ हे शुभे ! रावण तुम्हारे पास भिक्षुका रूप धारण कर आयेगा, अत तुम अपने ही समान आकृतिवाली अपनी छायाको कुटीमे छोडकर अग्निमे प्रवेश कर जाओ और मेरी आज्ञासे वहाँ अदृश्यरूपसे एक वर्ष रहो। तदनन्तर, रावणके मारे जानेपर तुम मुझे पूर्ववत् पा लोगी" ॥ २-३ ॥ रामचन्द्रजीके वचन सुनकर सीताजीने भी वैसा ही किया। वे मायामयी सीताको बाहर कुटीमे छोडकर स्वय अग्निमे अर्न्तधान हो गयी ॥ ४ ॥

मायासीता तदापश्यन्मृग मायाविनिर्मितम् ।
हसन्ती राममभ्येत्य प्रोवाच विनयान्विता ॥ ५ ॥

पश्य राम मृग चित्र कानक रत्नभूषितम् ।
विचित्रविन्दुभिर्युक्त चरन्तमकुतोभयम् ।
बद्ध्वा देहि मम क्रीडामृगो भवतु सुन्दर ॥ ६ ॥

तथेति धनुरादाय गच्छन् लक्ष्मणमब्रवीत् ।
रक्ष त्वमतियत्नेन सीता मत्प्राणवल्लभाम् ॥ ७ ॥

मायिन सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शना ।
अतोऽत्रावहित साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम् ॥ ८ ॥

लक्ष्मणो राममाहेद देवाय मृगरूपधृक् ।
मारीचोऽत्र न सन्देह एवभूतो मृग कुत ॥ ९ ॥

श्रीराम उवाच

यदि मारीच एवाय तदा हन्मि न सशय ।
मृगश्चेदानयिष्यामि सीताविश्रमहेतवे ॥ १० ॥

गमिष्यामि मृग बद्ध्वा ह्यानयिष्यामि सत्वर ।
त्व प्रयत्नेन सन्तिष्ठ सीतासरक्षणोद्यत ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ रामो मायामृगमनुद्रुत ।
माया यदाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृति ॥ १२ ॥

निर्विकारश्चिदात्मापि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात् ।
भक्तानुकम्पी भगवानिति सत्य वचो हरि ॥ १३ ॥

कर्तु सीताप्रियार्थाय जानन्नपि मृग ययौ ।
अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मन ॥ १४ ॥

मृगेण वा स्त्रिया वापि किं कार्य परमात्मन ।
कदाचिद्दृश्यतेऽभ्याशे क्षण धावति लीयते ॥ १५ ॥

दृश्यते च ततो दूरादेव राममपाहरत् ।
ततो रामोऽपि विज्ञाय राक्षसोऽयमिति स्फुटम् ॥ १६ ॥

तब उस मायासीताने मायामय मगको देखकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर हँसते हुए बडी नम्रतासे कहा— ॥ ५ ॥ "हे राम ! यह रत्न-विभूषित विचित्र सुवर्ण-मृग देखिये । (अहो !) इसके शरीरमे कैसे अद्भुत बिन्दु है और यह कैसी निर्भयतासे विचर रहा है ? हे प्रभो ! आप इसे बाँधकर मुझे ला दीजिये, यह मुन्दर हरिण मेरा क्रीडामृग हो ' ॥ ६ ॥

तब रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कह अपना धनुष उठा लिया और जाते समय लक्ष्मणजीसे कहा— "लक्ष्मण ! तुम प्राण-प्रिया सीताकी यत्नपूर्वक रक्षा करना ॥ ७ ॥ वनमे बडे मायावी भयकर राक्षस विचर रहे है । अत तुम अनिन्दिता साध्वी सीताकी बहुत सावधान रहकर रक्षा करना' ॥ ८ ॥

तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— 'देव ! यह मृगरूपधारी मारीच है, इसमे सन्देह नही, क्योकि भला मृग ऐसा कहाँ हो सकता है ?'' ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—यदि यह मारीच है तो, इसमे सन्देह नही, मै इसे अवश्य मार डालूँगा। और यदि मृग ही है तो सीताका मन रखनेके लिये ले आऊँगा ॥ १० ॥ मै अभी जाकर बहुत शीघ्र ही इस मृगको बाँधकर लिये आता हूँ, तबतक तुम सीताकी रखवाली करते हुए बहुत सावधान रहना ॥ ११ ॥

यह विश्वप्रपञ्चरूपिणी जगन्मोहिनी माया जिनके आश्रित है वे रामचन्द्रजी ऐसा कह उस मायामृगके पीछे दौडते चले गये ॥ १२ ॥ वे निर्विकार चिदात्मा और सर्वव्यापक होकर भी उस मृगके पीछे दौडे, इससे यह वाक्य सर्वथा सत्य ही है कि 'भगवान् हरि बडे भक्त-वत्सल हैं' ॥ १३ ॥ भगवान् सब कुछ जानते थे, तथापि सीताजीको प्रसन्न करनेके लिये वे मृगके पीछे गये । नही तो पूर्णकाम आत्मज्ञ भगवान् रामको मृग अथवा स्त्रीसे क्या काम था, वह मृग कभी तो पास ही दिखलायी देने लगता, कभी एक क्षणमे ही दूर भागकर छिप जाता ॥ १४-१५ ॥ और फिर बहुत दूरीपर दिखलायी देता । इस प्रकार वह रामचन्द्रजीको बहुत दूर ले गया ।

विव्याध शरमादाय राक्षस मृगरूपिणम् ।
पपात रुधिरात्कास्यो मारीच पूर्वरूपधृक् ॥ १७ ॥

हा हतोऽस्मि महाबाहो त्राहि लक्ष्मण मा द्रुतम् ।
इत्युक्त्वा रामवद्वाचा पपात रुधिराशन ॥ १८ ॥

यन्नामाज्ञोऽपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात् ।
किमुताग्रे हरि पश्यस्तेनैव निहतोऽसुर ॥ १९ ॥

तद्देहादुत्थित तेज सर्वलोकस्य पश्यत ।
राममेवाविशद्देवा विस्मय परम ययु ॥ २० ॥

कि कर्म कृत्वा कि प्राप्त पातकी मुनिहिंसक ।
अथवा राघवस्याय महिमा नात्र सशय ॥ २१ ॥

रामबाणेन सविद्ध पूर्व राममनुस्मरन् ।
भयात्सर्व परित्यज्य गृहवित्तादिक च यत् ॥ २२ ॥

हृदि राम सदा ध्यात्वा निर्धूताशेषकल्मष ।
अन्ते रामेण निहत पश्यन् राममवाप स ॥ २३ ॥

द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा ।
त्यजन्कलेवर राम स्मृत्वा याति पर पदम् ॥ २४ ॥

इति तेऽन्योन्यमाभाष्य ततो देवा दिव ययु ।
रामस्तच्चिन्तयामास म्रियमाणोऽसुराधम ॥ २५ ॥

हा लक्ष्मणेति मद्वाक्यमनुकुर्वन्ममार किम् ।
श्रुत्वा मद्वाक्यसदृश वाक्य सीतापि कि भवेत् ॥ २६ ॥

इति चिन्तापरीतात्मा रामो दूरान्न्यवर्तत ।
सीता तद्भाषित श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मन ॥ २७ ॥

भीतातिदु खसविग्ना लक्ष्मण त्विदमब्रवीत् ।
गच्छ लक्ष्मण वेगेन भ्राता तेऽसुरपीडित ॥ २८ ॥

हा लक्ष्मणेति वचन भ्रातुस्ते न शृणोषि किम् ।
तामाह लक्ष्मणो देवि रामवाक्य न तद्भवेत् ॥ २९ ॥

तब रामचन्द्रजीने यह निश्चयपूर्वक जानकर कि यह राक्षस ही है, उस मृगरूप राक्षसको एक बाण छोडकर बीध डाला। बाणके लगते ही मारीच अपना पूर्वरूप धारणकर लोहूभरे मुखसे पृथिवीपर गिर पडा ॥ १६-१७ ॥ वह रक्तपायी (राक्षस) रामकी-सी बोलीमे यह कहता हुआ कि 'हे महाबाहो लक्ष्मण ! मै मारा गया, मेरी शीघ्र ही रक्षा करो'—पृथिवीपर गिरा ॥ १८ ॥

मरण-समयमे जिनके नामका स्मरण करनेसे अज्ञजन भी जिनमे लीन हो जाते है उन्ही हरिको देखते-देखते उन्हीके हाथसे मरे हुए उस राक्षसके विषयमे तो कहना ही क्या है ? ॥ १९ ॥ उसके शरीरसे निकला हुआ तेज सबके देखते-देखते श्रीराममे ही समा गया। यह देखकर देवताओको बडा आश्चर्य हुआ ॥ २० ॥ वे कहने लगे—("अहो !) इस मुनिजनहिंसक पापी निशाचरने कैसे-कैसे कुकर्म किये और फिर कैसी शुभ गति प्राप्त की। निस्सन्देह यह श्रीरघुनाथजीकी ही महिमा है॥ २१ ॥ रामके बाणसे बीधे जानेपर यह पहलेसे ही भयसे अपना सब गृह और धन आदि छोड रामचन्द्रजीके स्मरणमे लगा हुआ था ॥ २२ ॥ निरन्तर रामका ध्यान करनेसे इसके सारे पाप नष्ट हो गये थे तथा अन्तमे यह रामको देखते-देखते उन्हीके हाथसे मारा भी गया, इसलिये इसने रामहीको प्राप्त कर लिया ॥ २३ ॥ जो श्रीरामका स्मरण करते हुए शरीर छोडते है, वे ब्राह्मण हो या राक्षस, पापी हो या धार्मिक—परम पदको ही प्राप्त होते है" ॥ २४ ॥ परस्पर इस प्रकार कहते हुए फिर देवगण स्वर्गको चले गये।

तब रामचन्द्रजी सोचने लगे कि 'इस अधम राक्षसने मरते समय मेरी-सी बोलीमे 'हा लक्ष्मण !' कहकर प्राण क्यो छोडे ? इन मेरे-से वाक्योको सुनकर सीताकी क्या दशा होगी ? ॥ २५-२६ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए राम बडी दूरसे लौटे।

इधर सीताने दुरात्मा मारीचका वह शब्द सुनकर अत्यन्त भय और दु खसे व्याकुल हो लक्ष्मणसे यो कहा—"लक्ष्मण ! तुम बहुत शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई राक्षसोसे कष्ट पा रहे है ॥ २७-२८ ॥ क्या तुम अपने भाईका 'हा लक्ष्मण' यह वाक्य नही सुनते ?"

य कश्चिद्राक्षसो देवि म्रियमाणोऽब्रवीद्वच ।
रामस्त्रैलोक्यमपि य क्रुद्धो नाशयति क्षणात् ॥ ३० ॥

स कथ दीनवचन भाषतेऽमरपूजित ।
क्रुद्धा लक्ष्मणमालोक्य सीता बाष्पविलोचना ॥ ३१ ॥

प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ।
प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षिणा ॥ ३२ ॥

मा नेतुमागतोऽसि त्व रामनाश उपस्थिते ।
न प्राप्स्यसे त्व मामद्य पश्य प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥ ३३ ॥

न जानातीदृश रामस्त्वा भार्याहरणोद्यतम् ।
रामादन्य न स्पृशामि त्वा वा भरतमेव वा ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा वध्यमाना सा स्वबाहुभ्या रुरोद ह ।
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मण कर्णौ पिधायातीव दु खित ॥ ३५ ॥

मामेव भाषसे चण्डि धिक् त्वा नाशमुपैष्यसि ।
इत्युक्त्वा वनदेवीभ्य समर्प्य जनकात्मजाम् ॥ ३६ ॥

ययौ दु खातिसविग्नो राममेव शनै शनै ।
ततोऽन्तर समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक् ॥ ३७ ॥

सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दण्डकमण्डलु ।
सीता तमवलोक्याशु नत्वा सम्पूज्य भक्तित ॥ ३८ ॥

कन्दमूलफलादीनि दत्त्वा स्वागतमब्रवीत् ।
मुने भुङ्क्ष्व फलादीनि विश्रमस्व यथासुखम् ॥ ३९ ॥

इदानीमेव भर्ता मे ह्यागमिष्यति ते प्रियम् ।
करिष्यति विशेषेण तिष्ठ त्व यदि रोचते ॥ ४० ॥

भिक्षुरुवाच

का त्व कमलपत्राक्षि को वा भर्ता तवानघे ।
किमर्थमत्र ते वासो वने राक्षससेविते ।
ब्रूहि भद्रे तत सर्व स्ववृत्तान्त निवेदये ॥ ४१ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—"देवि ! यह वाक्य श्रीरामचन्द्रजीका नही है ॥ २९ ॥ किसी राक्षसने मरते-मरते ये वचन कहे है। जो रामजी क्रोधित होनेपर एक क्षणमे सम्पूर्ण त्रिलोकीको भी नष्ट कर सकते है ॥ ३० ॥ वे देववन्दित प्रभु भला ऐसा दीन वचन कैसे बोल सकते है ?"

तब सीताजीने नेत्रोमे जल भरकर क्रोधपूर्वक लक्ष्मणजीकी ओर देखते हुए कहा—"रे लक्ष्मण । क्या तू अपने भाईको विपत्तिमे पडे देखना चाहता है ? अरे दुर्बुद्धे ! मालूम होता है, तुझे रामका नाश चाहनेवाले भरतने ही भेजा है ॥ ३१-३२ ॥ क्या तू रामके नष्ट हो जानेपर मुझे ले जानेके लिये ही आया है, किन्तु तू मुझे नही पावेगा। देख मै अभी प्राण त्याग किये देती हूँ ॥ ३३ ॥ राम तुझे इस प्रकार पत्नीहरणके लिये उद्यत नही जानते है। रामके अतिरिक्त मै भरत या तुझे किसीको भी नही छू सकती" ॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर वे अपनी भुजाओसे छाती पीटती हुई रोने लगी। उनके ऐसे कठोर शब्द सुन लक्ष्मणजीने अति दु खित हो अपने दोनो कान मूँद लिये और कहा—"हे चण्डि ! तुम्हे धिक्कार है, तुम मुझे ऐसी बाते कह रही हो ! इससे तुम नष्ट हो जाओगी।" ऐसा कह लक्ष्मणजी सीताको वनदेवियोको सौपकर दु खसे अत्यन्त खिन्न हो धीरे-धीरे रामके पास चले।

इसी समय मौका समझकर रावण भिक्षुका वेष बना दण्ड-कमण्डलुके सहित सीताके पास आया। सीताने उसे देखकर तुरत ही प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक उसका पूजन कर कन्द-मूल-फल आदि देकर स्वागत करते हुए कहा—"हे मुने ! ये फल आदि खाकर सुखपूर्वक विश्राम कीजिये। अभी थोडी देरमे ही मेरे पतिदेव आते होगे। यदि आपकी इच्छा हो तो कुछ देर ठहरिये। वे आपका कुछ विशेष सत्कार कर सकेगे" ॥ ३५—४० ॥

भिक्षु बोला—हे कमललोचने ! तुम कौन हो ? तुम्हारे पति कौन है, हे अनघे ! इस राक्षससेवित वनमे तुम क्यो रहती हो, हे कल्याणि ! ये सब बाते बताओ, तब मै भी तुम्हे अपना सारा वृत्तान्त सुनाऊँगा ॥ ४१ ॥

सीतोवाच

अयोध्याधिपति श्रीमान् राजा दशरथो महान्।
तस्य ज्येष्ठ सुतो राम सर्वलक्षणलक्षित ॥ ४२ ॥

तस्याह धर्मत पत्नी सीता जनकनन्दिनी।
तस्य भ्राता कनीयाश्च लक्ष्मणो भ्रातृवत्सल ॥ ४३ ॥

पितुराज्ञा पुरस्कृत्य दण्डके वस्तुमागत ।
चतुर्दश समास्त्वा तु ज्ञातुमिच्छामि मे वद ॥ ४४ ॥

भिक्षुरुवाच

पौलस्त्यतनयोऽह तु रावणो राक्षसाधिप ।
त्वत्कामपरितप्तोऽह त्वा नेतु पुरमागत ॥ ४५ ॥

मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मा भज।
भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं त्यज दु ख वनोद्भवम् ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा तद्वचन सीता भीता किञ्चिदुवाच तम्।
यद्येव भाषसे मा त्व नाशमेष्यसि राघवात् ॥ ४७ ॥

आगमिष्यति रामोऽपि क्षण तिष्ठ सहानुज ।
मा को धर्षयितु शक्तो हरेर्भार्या शशो यथा ॥ ४८ ॥

रामबाणैर्विभिन्नस्त्व पतिष्यसि महीतले।
इति सीतावच श्रुत्वा रावण क्रोधमूर्च्छित ॥ ४९ ॥

स्वरूप दर्शयामास महापर्वतसन्निभम्।
दशास्य विंशतिभुज कालमेघसमद्युतिम् ॥ ५० ॥

तद्दृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वितत्रसु ।
ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभि ॥ ५१ ॥

तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्र विहायसा।
हा राम हा लक्ष्मणेति रुदती जनकात्मजा ॥ ५२ ॥

सीताजी बोलीं—(हे भिक्षो!) श्रीमान् महाराज दशरथ अयोध्याके राजा थे, उनके ज्येष्ठ पुत्र सर्वसुलक्षणसम्पन्न राम है ॥ ४२ ॥ मै जनकनन्दिनी सीता उन्हीकी धर्मपत्नी हूँ। उनका छोटा भाई लक्ष्मण है। वह अपने भाईका अत्यन्त स्नेही है ॥ ४३ ॥ (हम दोनोके साथ) श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे चौदह वर्ष दण्डकारण्यमे रहनेके लिये आये है। अब मै आपके विषयमे जानना चाहती हूँ, आप भी मुझे अपना परिचय दे ॥ ४४ ॥

भिक्षु बोला—मै पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका पुत्र राक्षसराज रावण हूँ। मै तुम्हे पानेकी इच्छासे सन्तप्त हूँ, अत इस समय तुम्हे अपनी राजधानीमे ले जानेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ ४५ ॥ उस मुनिवेषधारी रामसे तुम्हे क्या मिलेगा। तुम मुझसे प्रेम करो और इन वनवासके दु खोसे छूटकर मेरे साथ नाना प्रकारके भोग भोगो ॥ ४६ ॥

उसके ये वचन सुनकर सीताजीने कुछ डरते हुए उससे कहा—"यदि तू मुझसे ऐसी बात कहेगा तो रामचन्द्रजी तुझे नष्ट कर देगे ॥ ४७ ॥ जरा ठहर तो, भाईके सहित श्रीरामचन्द्रजी अभी आते होगे! मेरे साथ कौन बलका प्रयोग कर सकता है, क्या सिह-पत्नीके साथ खरहा भी बलप्रयोग कर सकता है, ॥ ४८ ॥ रामजीके बाणोसे छिन्न-भिन्न होकर तू अभी पृथिवीतलपर सोवेगा।' सीताजीके ऐसे वचन सुनकर रावणने क्रोधाकुल हो अपना महापर्वताकार रूप दिखलाया, जिसके दस मुख और बीस भुजाएँ थी तथा जिसकी काले मेघके समान आभा थी ॥ ४९-५० ॥ उस भयकर रूपको देखकर वनदेवियाँ और वन्य जीव भयभीत हो गये। तब रावणने (सीताजीके पैरोके नीचेकी) पृथिवीको नखोसे खोदकर* उन्हे अपने हाथोसे उठा लिया और रथमे डालकर तुरत आकाशमार्गसे चल दिया।

* वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड सर्ग १३ मे रावण कहता है कि एक बार मैंने पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सराको आकाशमार्गस ब्रह्माजीके पास जाते देखा। तब मैने उसे बलात् वस्त्रहीन कर उसके साथ सम्भोग किया। यह बात ब्रह्माजीको ज्ञात होनेसे उन्होने मुझे शाप दिया कि यदि तू आजसे किसी स्त्रीसे बलात्कार करेगा तो तेरे मस्तकके सौ टुकडे हो जायँगे।' उस शापके भयसे ही रावणने सीताजीको स्पर्श नही किया। रावणको इस प्रकारका शाप रम्भाको बलात्कार करनेके कारण कुबेरपुत्र नलकूबरने भी दिया था [वा० रा० उ० का० २६ सर्ग] परन्तु वह शाप पहला था और अपने तपोबलके कारण रावण उससे डरता नही था। इसलिये पीछे वह पुञ्जिकस्थलापर बलात्कार करनेका साहस किया (रामाभिरामी वा० रा० यु० का० १३। १४)।

भयोद्विग्नमना दीना पश्यन्ती भुवमेव सा।
श्रुत्वा तत्क्रन्दितं दीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः ॥ ५३ ॥

जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाग्रात्तीक्ष्णतुण्डकः ।
तिष्ठ तिष्ठेति तं प्राह को गच्छति ममाग्रतः ॥ ५४ ॥

मुषित्वा लोकनाथस्य भार्यां शून्याद्वनालयात्।
शुनको मन्त्रपूतं त्वं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥ ५५ ॥

इत्युक्त्वा तीक्ष्णतुण्डेन चूर्णयामास तद्रथम्।
वाहान्बिभेद पादाभ्यां चूर्णयामास तद्धनुः ॥ ५६ ॥

ततः सीतां परित्यज्य रावणः खड्गमाददे।
चिच्छेद पक्षौ सामर्षः पक्षिराजस्य धीमतः ॥ ५७ ॥

पपात किञ्चिच्छेषेण प्राणेन भुवि पक्षिराट्।
पुनरन्यरथेनाशु सीतामादाय रावणः ॥ ५८ ॥

क्रोशन्ती राम रामेति त्रातारं नाधिगच्छति।
हा राम हा जगन्नाथ मां न पश्यसि दुःखिताम् ॥ ५९ ॥

रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव।
हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम् ॥ ६० ॥

वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर।
इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशङ्कया ॥ ६१ ॥

जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः।
विहायसा नीयमाना सीतापश्यदधोमुखी ॥ ६२ ॥

पर्वताग्रे स्थितान्पञ्च वानरान्वारिजानना।
उत्तरीयार्धखण्डेन विमुच्याभरणादिकम् ॥ ६३ ॥

बद्ध्वा चिक्षेप रामाय कथयन्त्विति पर्वते।
ततः समुद्रमुल्लङ्घ्य लङ्कां गत्वा स रावणः ॥ ६४ ॥

स्वान्तःपुरे रहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत्।
राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यान्वपालयत् ॥ ६५ ॥

उस समय सीताजी अति भयभीतचित्त होकर दीन दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देखती हुई 'हा राम! हा लक्ष्मण!' ऐसा कहकर रोने लगी। सीताजीका वह आर्तक्रन्दन सुनकर तुरत ही तीखी चोंचवाला पक्षिश्रेष्ठ जटायु पहाडकी चोटीपरसे उठा। और बोला—"अरे! ठहर, ठहर, यज्ञके मन्त्रपूत पुरोडाशको ले जानेवाले कुत्तेके समान मेरे सामने ही जगन्नाथ श्रीरघुनाथजीकी भार्याको सूने तपोवनसे तू कौन लिये जाता है?" ॥ ५१—५५ ॥ जटायुने ऐसा कहकर अपनी तीक्ष्ण चोंचसे रावणके रथको चूर-चूर कर डाला और अपने पञ्जोंसे घोडोंको मारकर उसके धनुषके टुकडे-टुकडे कर दिये ॥ ५६ ॥

तब रावणने सीताजीको छोडकर अपना खड्ग निकाला और झुँझलाकर मतिमान् जटायुके पंख काट डाले ॥ ५७ ॥ पंख कट जानेसे पक्षिराज जटायु अधमरे होकर पृथिवीपर गिर पडे। फिर तुरत ही रावण सीताजीको दूसरे रथपर चढाकर चलता बना ॥ ५८ ॥

उस समय वह सीता किसी रक्षकको न देखकर बारम्बार रामको पुकारती हुई रो-रोकर कह रही थी—"हा राम! हा जगन्नाथ! क्या आप मुझ दुःखिनीको नहीं देखते ॥ ५९ ॥ हे राघव! आपकी भार्याको राक्षस लिये जाता है, आप छुडाइये। हा महाभाग लक्ष्मण! मुझ अपराधिनीकी रक्षा करो ॥ ६० ॥ हे देवर! मैंने तुम्हें वाग्बाण मारे थे, तुम मुझे क्षमा करना।" सीताजीके इस प्रकार रुदन करनेसे रामके आनेकी आशङ्का करता हुआ रावण उन्हें लेकर वायुके समान अति तीव्र वेगसे चलने लगा।

इस प्रकार आकाशमार्गसे जाते हुए नीचेकी ओर देखती हुई कमलानना सीताजीने एक पर्वत-शिखरपर पाँच वानरोंको बैठे देखा। यह देखकर उन्होंने अपने आभूषणादि उतारकर अपने दुपट्टेके टुकडेमें बाँधे और 'ये रामको मेरा समाचार सुनावें' इस अभिप्रायसे पर्वतपर फेंक दिये।

तदनन्तर रावणने समुद्र पारकर लङ्कामें पहुँचकर उन्हें अपने अन्तःपुरके एकान्त देश अशोकवनमें रखा और राक्षसियोंसे घेरे रखकर मातृबुद्धिसे उनकी रक्षा करने

कृशातिदीना परिकर्मवर्जिता
दु खेन शुष्यद्वदनातिविह्वला ।
हा राम रामेति विलप्यमाना
सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ॥ ६६ ॥

लगा ॥ ६१—६५ ॥ उस स्थानमे अति कृश और दीनवदना सीताजी सब प्रकारका शृगार छोडकर दु खके कारण शुष्कवदन और अत्यन्त विह्वल होकर 'हा राम ! हा राम !' ऐसे विलाप करती हुई राक्षसोके बीचमे रहने लगी ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

सीताजीके वियोगमे भगवान् रामका विलाप और जटायुसे भेट

श्रीमहादेव उवाच

रामो मायाविन हत्वा राक्षस कामरूपिणम् ।
प्रतस्थे स्वाश्रम गन्तु ततो दूराद्ददर्श तम् ॥ १ ॥

आयान्त लक्ष्मण दीन मुखेन परिशुष्यता ।
राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामति ॥ २ ॥

लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीता मया कृताम् ।
ज्ञात्वाप्येन वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा ॥ ३ ॥

यद्यह विरतो भूत्वा तूष्णीं स्थास्यामि मन्दिरे ।
तदा राक्षसकोटीना वधोपाय कथ भवेत् ॥ ४ ॥

यदि शोचामि ता दु खसन्तप्त कामुको यथा ।
तदा क्रमेणानुचिन्वन्सीता यास्येऽसुरालयम् ।
रावण सकुल हत्वा सीतामग्नौ स्थिता पुन ॥ ५ ॥

मयैव स्थापिता नीत्वा यातायोध्यामतन्द्रित ।
अह मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणार्थित ॥ ६ ॥

मनुष्यभावमापन्न किञ्चित्काल वसामि कौ ।
ततो मायामनुष्यस्य चरित मेऽनुशृण्वताम् ॥ ७ ॥

मुक्ति स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम् ।
निश्चित्यैव तदा दृष्ट्वा लक्ष्मण वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

किमर्थमागतोऽसि त्व सीता त्यक्त्वा मम प्रियाम् ।
नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्जनकात्मजा ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) इधर रामचन्द्रजी जब कामरूपधारी मायावी राक्षसको मारकर अपने आश्रमपर चलनेके लिये प्रस्थान किये तो उन्होने दूरसे ही दीन और उदास मुखसे लक्ष्मणको आते देखा। तब महामति रघुनाथजी मन-ही-मन सोचने लगे ॥ १-२ ॥ 'लक्ष्मणको यह पता नही है कि मैने मायामयी सीता बना दी है। मै यह जानता हूँ तथापि लक्ष्मणसे यह बात छिपाकर मै साधारण मनुष्यके समान शोक करूँगा ॥ ३ ॥ यदि मै उपराम होकर चुपचाप अपनी कुटीमे बैठ गया तो इन करोडो राक्षसोके नाशका उपाय कैसे होगा ? ॥ ४ ॥ यदि मै उसके लिये दु खातुर होकर कामी पुरुषके समान शोक करूँगा तो क्रमश सीताकी खोज करता हुआ राक्षसराज रावणके यहाँ पहुँच जाऊँगा और उसे कुलसहित मारकर अपने-आप ही अग्निमे स्थापित की हुई सीताको उसमेसे निकालकर फिर तुरत अयोध्या चला जाऊँगा। ब्रह्माकी प्रार्थनासे मैने मनुष्यावतार लिया है, अत मै कुछ समय पृथ्वीपर मनुष्यभावसे ही रहूँगा। इससे मुझ माया-मानवके चरित्रोको सुननेवाले भक्ति-परायण पुरुषोकी अनायास ही मुक्ति हो जायगी।'

श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार निश्चयकर लक्ष्मणजीकी ओर देखकर कहा— ॥ ५—८ ॥ "लक्ष्मण ! तुम मेरी प्रिया सीताको छोडकर कैसे चले आये ? अब राक्षसगण जनकनन्दिनी सीताको हर ले गये होगे अथवा उन्हे खा गये होगे" ॥ ९ ॥

लक्ष्मण प्राञ्जलि प्राह सीताया दुर्वचो रुदन् ।
हा लक्ष्मणेति वचन राक्षसोक्त श्रुत तया ॥ १० ॥

त्वद्वाक्यसदृश श्रुत्वा मा गच्छेति त्वराब्रवीत् ।
रुदन्ती सा मया प्रोक्ता देवि राक्षसभाषितम् ।
नेद रामस्य वचन स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ११ ॥

इत्येव सान्त्विता साध्वी मया प्रोवाच मा पुन ।
यदुक्त दुर्वचो राम न वाच्य पुरतस्तव ॥ १२ ॥

कर्णौ पिधाय निर्गत्य यातोऽह त्वा समीक्षितुम् ।
रामस्तु लक्ष्मण प्राह तथाप्यनुचित कृतम् ॥ १३ ॥

त्वया स्त्रीभाषित सत्य कृत्वा त्यक्ता शुभानना ।
नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्नात्र सशय ॥ १४ ॥

इति चिन्तापरो राम स्वाश्रम त्वरितो ययौ ।
तत्रादृष्ट्वा जनकजा विललापातिदु खित ॥ १५ ॥

हा प्रिये क्व गतासि त्व नासि पूर्ववदाश्रमे ।
अथवा मद्विमोहार्थ लीलया क्व विलीयसे ॥ १६ ॥

इत्याचिन्वन्वन सर्व नापश्यज्जानकीं तदा ।
वनदेव्य कुत सीता ब्रुवन्तु मम वल्लभाम् ॥ १७ ॥

मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् ।
इत्येव विलपन्नेव राम सीता न कुत्रचित् ॥ १८ ॥

सर्वज्ञ सर्वथा क्वापि नापश्यद्रघुनन्दन ।
आनन्दोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति ॥ १९ ॥

निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान् ।
मम जायेति सीतेति विललापातिदु खित ॥ २० ॥

एव मायामनुचरन्नसक्तोऽपि रघूत्तम ।
आसक्त इव मूढाना भाति तत्त्वविदा न हि ॥ २१ ॥

तब लक्ष्मणजीने हाथ जोडकर रोते हुए सीताजीके दुर्वाक्य कह सुनाये। (वे बोले)—"आपके वाक्यके समान राक्षसके कहे हुए 'हा लक्ष्मण !' इस शब्दको सुनकर सीताजीने शीघ्रतासे मुझसे कहा 'फौरन जाओ'। तब मैने रोती हुई उन्हे समझाया कि देवि ! यह रघुनाथजीका वाक्य नही है, राक्षसका शब्द है, हे शुचिस्मिते ! तुम निश्चिन्त रहो ॥ १०-११ ॥ मेरे इस प्रकार ढाढस बँधानेपर भी साध्वी सीताजीने मुझसे जैसे दुर्वचन कहे है, हे रघुनाथजी ! वे आपके सामने कहने योग्य नही है ॥ १२ ॥ अत मै कान मूँदकर वहाँसे आपको देखनेके लिये चला आया।"

इसपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—"लक्ष्मण ! ठीक है, तथापि तुमने उचित नही किया ॥ १३ ॥ जो स्त्रीकी बातको सत्य मानकर शुभानना सीताको छोड दिया। इसमे सन्देह नही अब राक्षसलोग या तो उन्हे हर ले गये होगे या खा गये होगे" ॥ १४ ॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए श्रीरामचन्द्रजी बडी शीघ्रतासे अपने आश्रममे आये और वहाँ जानकीजीको न देखकर अति दु खित होकर विलाप करने लगे— ॥ १५ ॥ 'हा प्रिये ! आज तुम पूर्ववत् आश्रममे दिखायी नही देती हो, सो कहाँ चली गयी हो ? अथवा मुझे मोहित करनेके लिये विनोदसे ही कही छिप रही हो ? ॥ १६ ॥

इस प्रकार विलाप करते हुए उन्होने सारा वन छान डाला किन्तु कही भी जानकीजीको नही देखा। तब (वे कहने लगे—) "अयि वनदेवियो ! बताओ, मेरी वल्लभा सीता कहाँ है ? अरे मृग, पक्षी और वृक्षो ! तुम्ही मेरी प्रियाको दिखाओ" ॥ १७ ॥ इस प्रकार विलाप करते हुए सर्वज्ञ श्रीरघुनाथजीने सीताजीको कही भी नही देखा ॥ १८ ॥ (अहो !) भगवान् रामने आनन्दस्वरूप होकर भी सीताजीके लिये शोक किया, निश्चल होनेपर भी उनकी खोजमे इधर-उधर दौडते फिरे तथा ममता और अहकारसे शून्य अखण्डानन्दस्वरूप होकर भी अत्यन्त दु खित हो 'मेरी जाया' तथा 'सीता !' ऐसा कहकर विलाप किया ॥ १९-२० ॥ इस प्रकार मायाका अनुसरण करते हुए श्रीरघुनाथजी अनासक्त होते हुए भी मूढ पुरुषोको आसक्त-से प्रतीत होते हैं किन्तु तत्त्वज्ञानियोको ऐसा भ्रम नही होता ॥ २१ ॥

एव विचिन्वन्सकल वन राम सलक्ष्मण ।
भग्न रथ छत्रचाप कूबर पतित भुवि ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेद पश्य लक्ष्मण केनचित् ।
नीयमाना जनकजा त जित्वान्यो जहार ताम् ॥ २३ ॥

तत कश्चिद्भुवो भाग गत्वा पर्वतसन्निभम् ।
रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

एष वै भक्षयित्वा ता जानकीं शुभदर्शनाम् ।
शेते विविक्तेऽतितृप्त पश्य हन्मि निशाचरम् ॥ २५ ॥

चापमानय शीघ्र मे बाण च रघुनन्दन ।
तच्छ्रुत्वा रामवचन जटायु प्राह भीतवत् ॥ २६ ॥

मा न मारय भद्र ते म्रियमाण स्वकर्मणा ।
अह जटायुस्ते भार्याहारिण समनुद्रुत ॥ २७ ॥

रावण तत्र युद्ध मे बभूवारिविमर्दन ।
तस्य वाहान् रथ चाप छित्त्वाह तेन घातित ॥ २८ ॥

पतितोऽस्मि जगन्नाथ प्राणास्त्यक्ष्यामि पश्य माम् ॥ २९ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो दीन कण्ठप्राण ददर्श ह ।
हस्ताभ्या सस्पृशन् रामो दु खाश्रुवृतलोचन ॥ ३० ॥

जटायो ब्रूहि मे भार्या केन नीता शुभानना ।
मत्कार्यार्थ हतोऽसि त्वमतो मे प्रियबान्धव ॥ ३१ ॥

जटायु सन्नया वाचा वक्त्राद्रक्त समुद्वमन् ।
उवाच रावणो राम राक्षसो भीमविक्रम ॥ ३२ ॥

आदाय मैथिलीं सीता दक्षिणाभिमुखो ययौ ।
इतो वक्तु न मे शक्ति प्राणास्त्यक्ष्यामि तेऽग्रत ॥ ३३ ॥

दिष्ट्या दृष्टोऽसि राम त्व म्रियमाणेन मेऽनघ ।
परमात्मासि विष्णुस्त्व मायामनुजरूपधृक् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण वनमे सीताजीको ढूँढते-ढूँढते पृथिवीपर टूटे रथ-छत्र, धनुष और कूबर (रथकी एक लकडी) पडे देखे। उन्हें देखकर भगवान् रामने लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण ! देखो यहाँ सीताजीको ले जाते हुए किसी पुरुषको कोई अन्य व्यक्ति (युद्धमे) जीतकर उन्हे हर ले गया है" ॥ २२-२३ ॥

फिर कुछ दूर जानेपर एक पर्वत-सदृश शरीरको रुधिरसे लथपथ देखकर रामने कहा— ॥ २४ ॥ "देखो, निस्सन्देह यही उस शुभदर्शना सीताको खाकर अत्यन्त तृप्त हो यहाँ एकान्तमे सो रहा है। मै इस निशाचरको अभी मार डालता हूँ ॥ २५ ॥ हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! शीघ्र ही मेरा धनुष-बाण लाओ।"

रामका यह कथन सुन जटायुने भयभीत होकर कहा— ॥ २६ ॥ "मै अपने ही कर्मसे मर रहा हूँ, आपका कल्याण हो, आप मुझे न मारे। मै जटायु हूँ, मैने आपकी भार्याको ले जानेवाले रावणका पीछा किया था। हे शत्रुदमन ! मेरा उससे युद्ध हुआ और मैने उसके रथ, घोडे और धनुष भी काट डाले, किन्तु अब मै उसका घायल किया हुआ पडा हूँ। हे जगन्नाथ ! आप मेरी ओर देखिये, मै अब प्राण छोडना ही चाहता हूँ" ॥ २७—२९ ॥

यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने (जटायुके पास जाकर) उसे कण्ठगतप्राण और अति दीन अवस्थामे देखा। तब वे आँखोमे आँसू भरकर उसपर हाथ फेरते हुए (बोले—) ॥ ३० ॥ "हे जटायो ! कहो। मेरी सुमुखी भार्या सीताजीको कौन ले गया है ? (अहो !) तुम मेरे कार्यके लिये मारे गये। अत अवश्य ही तुम मेरे प्रिय बन्धु हो" ॥ ३१ ॥

जटायुने रक्त वमन करते हुए लडखडाती बोलीमे कहा—"हे राम ! महापराक्रमी राक्षसराज रावण मिथिलेशनन्दिनी सीताको दक्षिणकी ओर ले गया है और अधिक कहनेकी मुझमे शक्ति नही है। मै अभी आपके सामने ही प्राण छोडना चाहता हूँ ॥ ३२-३३ ॥ हे राम ! आज बडे भाग्यसे मैने मरते समय आपको देख पाया है। हे अनघ ! आप मायामानवरूप साक्षात् परमात्मा विष्णु ही है ॥ ३४ ॥

अन्तकालेऽपि दृष्ट्वा त्वा मुक्तोऽह रघुसत्तम ।
हस्ताभ्या स्पृश मा राम पुनर्यास्यामि ते पदम् ॥ ३५ ॥

तथेति राम पस्पर्श तदङ्ग पाणिना स्मयन् ।
तत प्राणान्परित्यज्य जटायु पतितो भुवि ॥ ३६ ॥

रामस्तमनुशोचित्वा बन्धुवत्साश्रुलोचन ।
लक्ष्मणेन समानाय्य काष्ठानि प्रददाह तम् ॥ ३७ ॥

स्नात्वा दु खेन रामोऽपि लक्ष्मणेन समन्वित ।
हत्वा वने मृग तत्र मासखण्डान्समन्तत ॥ ३८ ॥

शाद्वले प्राक्षिपद्राम पृथक् पृथगनेकधा ।
भक्षन्तु पक्षिण सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट् ॥ ३९* ॥

इत्युक्त्वा राघव प्राह जटायो गच्छ मत्पदम् ।
मत्सारूप्य भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यत ॥ ४० ॥

ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधर शुभ ।
विमानवरमारुह्य भास्वर भानुसन्निभम् ॥ ४१ ॥

शङ्खचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणै ।
द्योतयन्स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोऽमल ॥ ४२ ॥

चतुर्भि पार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजित ।
स्तूयमानो योगिगणै राममाभाष्य सत्वर ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥ ४३ ॥

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्य
सकलजगत्स्थितिसयमादिहेतुम् ।
उपरमपरम परात्मभूत
सततमह प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥ ४४ ॥

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्ष-
क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदु खम् ।
नरवरमनिश नतोऽस्मि राम
वरदमह वरचापबाणहस्तम् ॥ ४५ ॥

हे रघुश्रेष्ठ ! वैसे तो अन्त समय आपका दर्शन करनेसे ही मै मुक्त हो गया, तथापि आप मुझे अपने कर (कमलो) से स्पर्श कीजिये। फिर मै आपके परमपदको जाऊँगा'' ॥ ३५ ॥

तब रामचन्द्रजीने मुसकराते हुए 'बहुत अच्छा' कह उसका शरीर अपने करकमलोसे छुआ। तदनन्तर जटायु प्राण छोडकर पृथिवीपर गिर पडा ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजीने नेत्रोमे जल भरकर उसके लिये अपने स्वजनके समान शोक करते हुए लक्ष्मणसे लकडियाँ मँगवा उसका दाह-कर्म किया ॥ ३७ ॥

श्रीरघुनाथजी बोले—''जटायो ! तुम मेरे परमपदको जाओ और आज सबके देखते-देखते मेरा सारूप्य प्राप्त करो'' ॥ ४० ॥ तदनन्तर वह तुरत ही सुन्दर दिव्य रूप धारण कर एक सूर्य-सदृश प्रकाशमान विमानपर आरूढ हुआ ॥ ४१ ॥

उस समय वह सुन्दर पीताम्बर धारण किये शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट आदि श्रेष्ठ आभूषणोके सहित अपने प्रकाशसे (सम्पूर्ण दिशाओको) प्रकाशित कर रहा था ॥ ४२ ॥ वैसे ही वेष-भूषावाले चार विष्णुपार्षद उसकी पूजा कर रहे थे तथा योगिगण उसकी स्तुति कर रहे थे। तदनन्तर वह त्वराके साथ हाथ जोडकर श्रीरघुनाथजीको सम्बोधन कर उनकी स्तुति करने लगा ॥ ४३ ॥

जटायु बोला—'जो अगणित गुणशाली है, अप्रमेय है, जगत्के आदिकारण है तथा उसकी स्थिति और लय आदिके हेतु है, उन परम शान्त-स्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मै निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ जो असीम आनन्दमय और श्रीकमलादेवीके कटाक्षके आश्रय है तथा जो ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवगणोका दु ख दूर करनेवाले है, उन धनुष-बाणधारी वरदायक नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके प्रति मै अहर्निश प्रणत हूँ ॥ ४५ ॥ जो

* ३८ और ३९—इन दो श्लोकोके अर्थका रहस्य हमारी समझमे नही आया अत इनका अर्थ नही दिया गया।

त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्य
रविशतभासुरमीहितप्रदानम् ।
शरणदमनिश सुरागमूले
कृतनिलय रघुनन्दन प्रपद्ये ॥ ४६ ॥

भवविपिनदवाग्निनामधेय
भवमुखदैवतदैवत दयालुम् ।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाश
रवितनयासदृश हरि प्रपद्ये ॥ ४७ ॥

अविरतभवभावनातिदूर
भवविमुखैर्मुनिभि सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोत
शरणमह रघुनन्दन प्रपद्ये ॥ ४८ ॥

गिरिशगिरिसुतामनोनिवास
गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रि
सुरवरद रघुनायक प्रपद्ये ॥ ४९ ॥

परधनपरदारवर्जिताना
परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
परहितनिरतात्मना सुसेव्य
रघुवरमम्बुजलोचन प्रपद्ये ॥ ५० ॥

स्मितरुचिरविकासिताननाब्ज-
मतिसुलभ सुरराजनीलनीलम् ।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभ
रघुपतिमीशगुरोर्गुरु प्रपद्ये ॥ ५१ ॥

हरिकमलजशम्भुरूपभेदा-
त्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्त ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रे-
ष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ॥ ५२ ॥

रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्ग
शतपथगोचरभावनाविदूरम् * ।

त्रिलोकीमे सबसे अधिक रूपवान् है, (सबके) स्तुत्य है, सैकडो सूर्येकि समान तेजस्वी है तथा वाञ्छित फल देनेवाले है उन शरणप्रद और प्रेमी हृदयमे रहनेवाले श्रीरघुनाथजीकी मै अहर्निश शरण लेता हूँ ॥ ४६ ॥ जिनका नाम ससाररूप वनके लिये दावानलके समान है, जो महादेव आदि देवताओके भी (पूज्य) देव है तथा जो करोडो दानवेन्द्रोका दलन करनेवाले और श्रीयमुनाजीके समान श्यामवर्ण है, उन दयामय श्रीहरिकी मै शरण लेता हूँ ॥ ४७ ॥ जो ससारमे निरन्तर वासना रखनेवालोसे अत्यन्त दूर है और ससारसे उपराम मुनिजनोके सदैव दृष्टिगोचर रहते है तथा जिनके चरणरूप पोत (जहाज) ससार-सागरसे पार करनेवाले है, उन रघुनाथजीकी मे शरण लेता हूँ ॥ ४८ ॥ जो श्रीमहादेव और पार्वतीजीके मन-(मन्दिर-) मे निवास करते है, जिनका चरित्र अति मनोहर है तथा देव और असुरपतिगण जिनके चरण-कमलोकी सेवा करते है, उन गिरिवरधारी देवताओके वरदायक रघुनायककी मै शरण लेता हूँ ॥ ४९ ॥ जो परधन और परस्त्रीसे सदा दूर रहते है तथा पराये गुण और परायी विभूतिको देखकर प्रसन्न होते है, उन निरन्तर परोपकार-परायण महात्माओसे सुसेवित कमलनयन श्रीरघुनाथजीकी मै शरण लेता हूँ ॥ ५० ॥ जिनका मुखकमल मनोहर मुसकानसे सुशोभित हो रहा है, जो (भक्तोके लिये) अति सुलभ है, जिनके शरीरकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान सुन्दर नीलवर्ण है तथा जिनके मनोहर नेत्र श्वेत कमलकी-सी शोभावाले है, उन महादेवजीके परम गुरु श्रीरघुनाथजीकी मै शरण लेता हूँ ॥ ५१ ॥ (हे प्रभो !) जलसे भरे हुए पात्रोमे जैसे एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होता है वैसे ही सत्त्व, रज और तम—इन तीनो गुणोके साथ सम्बन्ध-युक्त होकर आप ही विष्णु, ब्रह्मा और महादेवरूपसे भासित होते है। देवराज इन्द्रकी भी स्तुतिके पात्र परमेश्वरस्वरूप आपकी मै स्तुति करता हूँ ॥ ५२ ॥ आपका दिव्य शरीर करोडो कामदेवोसे भी सुन्दर है, सैकडो मार्गोमे फँसे हुए लोगोसे आप अत्यन्त दूर है और यतिश्रेष्ठोके हृदयमे आप सदा ही

* टीकाके अनुसार यहाँ अकार लुप्त है— 'शतपथगोचरभावनाविदूरम्' इस प्रकार पाठ है ओर उसका भावार्थ गह है— 'शतपथब्राह्मणके अन्तर्गत बृहदारण्यक मे जिस ब्रह्म-भावनाका उपदेश किया है उस भावनामे जो प्राप्य हे।

यतिपतिहृदये सदा विभात
रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥ ५३ ॥

भासमान है। ऐसे आप आर्तिहर प्रभु रघुपतिकी मैं शरण लेता हूँ" ॥ ५३ ॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः ।
उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ॥ ५४ ॥
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत् ।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥ ५५ ॥
इति राघवभाषितं तदा
श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः
प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥ ५६ ॥

जटायुके इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीरघुनाथजी उसपर प्रसन्न होकर बोले, "जटायो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे परमधाम विष्णुलोकको जाओ ॥ ५४ ॥ जो पुरुष मेरे इस स्तोत्रको एकाग्रचित्तसे सुनता, लिखता अथवा पढ़ता है वह मेरा सारूप्यपद प्राप्त करता है और मरते समय उसे मेरा स्मरण होता है" ॥ ५५ ॥ पक्षिराज जटायुने रघुनाथजीका यह कथन बड़े हर्षसे सुना और उन्हींके समान रूप धारण कर ब्रह्मासे अत्यन्त पूजित परमधामको चला गया ॥ ५६ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

★

नवम सर्ग

कबन्धोद्धार

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामो लक्ष्मणेन जगाम विपिनान्तरम् ।
पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परः ॥ १ ॥
तत्राद्भुतसमाकारो राक्षसः प्रत्यदृश्यत ।
वक्षस्येव महावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥ २ ॥
बाहू योजनमात्रेण व्यापृतौ तस्य रक्षसः ।
कबन्धो नाम दैत्येन्द्रः सर्वसत्त्वविहिंसकः ॥ ३ ॥
तद्बाह्वोर्मध्यदेशे तौ चरन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
ददर्शतुर्महासत्त्वं तद्बाहुपरिवेष्टितौ ॥ ४ ॥
रामः प्रोवाच विहसन्पश्य लक्ष्मण राक्षसम् ।
शिरःपादविहीनोऽयं यस्य वक्षसि चाननम् ॥ ५ ॥
बाहुभ्यां लभ्यते यद्यत्तत्तद्भक्षन् स्थितो ध्रुवम् ।
आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्ये सङ्कलितौ ध्रुवम् ॥ ६ ॥
गन्तुमन्यत्र मार्गो न दृश्यते रघुनन्दन ।
किं कर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानीं भक्षयेत्स नौ ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति!) तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी दुःखी होकर फिर सीताजीको खोजते हुए लक्ष्मणजीके साथ दूसरे वनको गये ॥ १ ॥ वहाँ उन्होंने एक बड़े ही विचित्र आकारका राक्षस देखा, जिसके वक्षःस्थलमें ही एक बड़ा भारी मुख था, जो नेत्र तथा कर्ण आदिसे रहित था ॥ २ ॥ इस राक्षसकी भुजाएँ एक-एक योजनतक फैली हुई थीं। यह सम्पूर्ण प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला 'कबन्ध' नामक दैत्यराज था ॥ ३ ॥ उसकी भुजाओंके बीचमें चलते हुए उनसे घिरे हुए राम और लक्ष्मणने उस महाबलवान् राक्षसको देखा ॥ ४ ॥

तब रामचन्द्रजीने हँसते हुए कहा—"लक्ष्मण! इस राक्षसको देखो, यह सिर-पैरसे रहित है और इसकी छातीमें ही मुँह है ॥ ५ ॥ अपनी भुजाओंसे ही इसे जो कुछ मिल जाता है उसीको खाकर यह जीवित रहता है। हम भी निश्चय ही इसकी भुजाओंके बीचमें फँस गये हैं ॥ ६ ॥ हे रघुनन्दन! इसके चगुलमेंसे निकलनेका हमें कोई मार्ग दिखायी नहीं देता, अब हमें क्या करना चाहिये? (जल्दी विचार करो नहीं तो) यह हमें अभी खा जायगा" ॥ ७ ॥

लक्ष्मणस्तमुवाचेदं किं विचारेण राघव।
आवामेकैकमव्यग्रौ छिन्द्यावास्य भुजौ ध्रुवम्॥ ८ ॥

तथेति रामः खड्गेन भुजं दक्षिणमच्छिनत्।
तथैव लक्ष्मणो वामं चिच्छेद भुजमञ्जसा॥ ९ ॥

ततोऽतिविस्मितो दैत्यः कौ युवां सुरपुङ्गवौ।
मद्बाहुच्छेदकौ लोके दिवि देवेषु वा कुतः॥ १० ॥

ततोऽब्रवीद्धसन्नेव रामो राजीवलोचनः।
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान्॥ ११ ॥

रामोऽहं तस्य पुत्रोऽसौ भ्राता मे लक्ष्मणः सुधीः।
मम भार्या जनकजा सीता त्रैलोक्यसुन्दरी॥ १२ ॥

आवां मृगयया यातौ तदा केनापि रक्षसा।
नीता सीता विचिन्वन्तौ चागतौ घोरकानने॥ १३ ॥

बाहुभ्यां वेष्टितावत्र तव प्राणरिरक्षया।
छिन्नौ तव भुजौ त्वं च को वा विकटरूपधृक्॥ १४ ॥

कबन्ध उवाच

धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम्।
पुरा गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनदर्पितः॥ १५ ॥

विचरँल्लोकमखिलं वरनारीमनोहरः।
तपसा ब्रह्मणो लब्धमवध्यत्वं रघूत्तम॥ १६ ॥

अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा कदाचिदहसं पुरा।
क्रुद्धोऽसावाह दुष्ट त्वं राक्षसो भव दुर्मते॥ १७ ॥

अष्टावक्रः पुनः प्राह वन्दितो मे दयापरः।
शापस्यान्तं च मे प्राह तपसा द्योतितप्रभः॥ १८ ॥

त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणः स्वयम्।
आगमिष्यति ते बाहू छिद्येते योजनायतौ॥ १९ ॥

तेन शापाद्विनिर्मुक्तो भविष्यसि यथा पुरा।
इति शप्तोऽहमद्राक्षं राक्षसीं तनुमात्मनः॥ २० ॥

लक्ष्मणजीने कहा—"हे राघव! इसमें अधिक विचारनेकी क्या बात है? हम दोनों सावधान होकर अभी इसकी एक-एक भुजा काट डालें"॥ ८॥ रामचन्द्रजीने कहा, 'बहुत ठीक', और खड्गसे उसकी दायी भुजा काट डाली। वैसे ही लक्ष्मणजीने भी तुरन्त ही उसकी बायी भुजा उड़ा दी॥ ९॥

तब उस दैत्यने अति विस्मयपूर्वक (कहा—)"मेरी भुजाओंको काटनेवाले तुम कौन देवश्रेष्ठ हो? इस लोकमें अथवा स्वर्गवासी देवताओंमें भी कोई ऐसा (समर्थ) होना सम्भव नहीं"॥ १०॥

इसपर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीने हँसते हुए कहा—"श्रीमान् महाराज दशरथ अयोध्याके स्वामी थे॥ ११॥ मैं उन्हींका पुत्र 'राम' हूँ और यह बुद्धिमान् मेरा छोटा भाई 'लक्ष्मण' है तथा त्रैलोक्यसुन्दरी जनकनन्दिनी सीता मेरी भार्या है॥ १२॥ हम मृगया (शिकार) के लिये बाहर गये हुए थे कि किसी राक्षसने सीताको चुरा लिया, उसीको ढूँढते हुए हम यहाँ इस घोर वनमें आ गये। इतनेहीमें तुमने हमें अपनी भुजाओंसे घेर लिया। तब हमने अपने प्राण बचानेके लिये तुम्हारी भुजाएँ काट डाली। अब यह बताओ—ऐसे विकट रूपवाले तुम कौन हो?"॥ १३-१४॥

कबन्धने कहा—"यदि आप राम हैं और स्वयं मेरे पास आये हैं तो मैं धन्य हूँ। पूर्वकालमें मैं रूप और यौवनके मदसे उन्मत्त एक गन्धर्वराज था॥ १५॥ हे रघुश्रेष्ठ! मैंने तपस्याद्वारा ब्रह्माजीसे अवध्यता (किसीसे भी न मारे जा सकनेकी योग्यता) प्राप्त कर ली थी और मैं अपनी रूपकान्तिसे सुन्दर स्त्रियोंके चित्तोंको चुराता हुआ सम्पूर्ण लोकोंमें घूमा करता था॥ १६॥ एक बार अष्टावक्र मुनिको देखकर मैं हँस पड़ा, अतः उन्होंने क्रोधित होकर कहा—"अरे दुष्ट दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जा"॥ १७॥ (उनके शापसे भयभीत होकर जब) मैंने उनकी स्तुति की तो तपके कारण परम तेजस्वी उन दयालु मुनिश्वरने मेरे शापका अन्त इस प्रकार बताया॥ १८॥ (वे बोले—)"त्रेतायुगमें स्वयं नारायण दशरथके यहाँ अवतार लेकर तेरे पास आयेंगे और वे तेरी एक-एक योजन लंबी भुजाएँ काट डालेंगे॥ १९॥ तब तू शापसे छूटकर अपना [illegible] हो जायगा।' उनके इस

कदाचिद्देवराजानमभ्यद्रवमहं रुषा।
सोऽपि वज्रेण मां राम शिरोदेशेऽभ्यताडयत्॥ २१॥

तदा शिरो गतं कुक्षिं पादौ च रघुनन्दन।
ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात्॥ २२॥

मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपम्।
ऊचुः सर्वे दयाविष्टा मां विलोक्यास्यवर्जितम्॥ २३॥

ततो मां प्राह मघवा जठरे ते मुखं भवेत्।
बाहू ते योजनायामौ भविष्यत इतो व्रज॥ २४॥

इत्युक्तोऽत्र वसन्नित्यं बाहुभ्यां वनगोचरान्।
भक्षयाम्यधुना बाहू खण्डितौ मे त्वयानघ॥ २५॥

इतः परं मां श्वभ्रास्ये निक्षिप्याग्नीन्धनावृते।
अग्निना दह्यमानोऽहं त्वया रघुकुलोत्तम॥ २६॥

पूर्वरूपमनुप्राप्य भार्यामार्गं वदामि ते।
इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशु श्वभ्रं निर्माय तत्र तम्॥ २७॥

निक्षिप्य प्रादहत्काष्ठैस्ततो देहात्समुत्थितः।
कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः॥ २८॥

रामं प्रदक्षिणं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च।
कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्तिगद्गदया गिरा॥ २९॥

गन्धर्व उवाच

स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो रामातिसम्भ्रमात्।
त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम्॥ ३०॥

सूक्ष्मं ते रूपमव्यक्तं देहद्वयविलक्षणम्।
दृग्रूपमितरत्सर्वं दृश्यं जडमनात्मकम्।
तत्कथं त्वां विजानीयाद्व्यतिरिक्तं मनः प्रभो॥ ३१॥

बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यं जीव इत्यभिधीयते।
बुद्ध्यादिसाक्षी ब्रह्मैव तस्मिन्निर्विषयेऽखिलम्॥ ३२॥

आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि।
हिरण्यगर्भस्ते सूक्ष्मं देहं स्थूलं विराट् स्मृतम्॥ ३३॥

प्रकार शाप देनेसे मैंने अपनेको राक्षसरूपमें देखा॥ २०॥

हे राम! एक बार मैं रोषपूर्वक देवराज इन्द्रके पीछे दौड़ा। तब उसने क्रोधित होकर मेरे सिरपर अपना वज्र मारा॥ २१॥ हे रघुनन्दन! उस वज्रके आघातसे मेरे सिर और पैर पेटमें घुस गये। किन्तु ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे मैं मरा नहीं॥ २२॥ मुझे मुखहीन देखकर समस्त (देवताओं) ने दयावश हो देवराजसे कहा—"यह बिना मुखके कैसे जीवित रह सकेगा?"॥ २३॥ तब इन्द्रने मुझसे कहा—"तेरे पेटमें ही मुख होगा और तेरी भुजाएँ एक-एक योजन लंबी हो जायँगी, अब तू यहाँसे चला जा"॥ २४॥ इन्द्रके ऐसा कहनेपर मैं यहीं रहकर नित्यप्रति अपनी भुजाओंसे वनके जीवोंको खींचकर खाता रहा हूँ। हे अनघ! अब उन भुजाओंको आपने काट डाला॥ २५॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ! अब आप मुझे एक अग्नि और ईंधनसे युक्त गड्ढेमें डाल दीजिये। आपके द्वारा अग्निसे दग्ध होनेपर अपना पूर्वरूप धारण कर मैं आपकी भार्याका पता बताऊँगा।"

उसके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे तुरत ही एक बड़ा गड्ढा तैयार कराया और उसे उसमें डालकर लकड़ियोंसे जला दिया। तब उसके शरीरसे एक सर्वालंकारविभूषित कामदेवके समान अति सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ॥ २६—२८॥ उसने रामचन्द्रजीकी परिक्रमा कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिसे गद्गद-कण्ठ हो हाथ जोड़कर कहने लगा॥ २९॥

गन्धर्व बोला—हे राम! आप अनन्त, आदि-अन्तसे रहित और मन-वाणीके अविषय हैं, (तथापि) आज मेरा मन आपकी स्तुति करनेको बड़े वेगसे उत्सुक हो रहा है॥ ३०॥ हे प्रभो! आपके स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर (विराट् और हिरण्यगर्भ) से आपका वास्तविक ज्ञानमय स्वरूप सूक्ष्म अर्थात् योगियोंसे भी सर्वथा दुर्ज्ञेय है। उससे अतिरिक्त जो कुछ है वह जड दृश्य और अनात्मा है। अतः आपसे भिन्न यह जड मन आपको कैसे जान सकता है? बुद्धि और चिदाभासका अन्योन्या-

भावनाविषयो राम सूक्ष्म ते ध्यातृमङ्गलम्।
भूत भव्य भविष्यच्च यत्रेद दृश्यते जगत्॥ ३४ ॥

स्थूलेऽण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते।
सप्तभिरुत्तरगुणैर्वैराजो धारणाश्रय ॥ ३५ ॥

त्वमेव सर्वकैवल्य लोकास्तेऽवयवा स्मृता ।
पाताल ते पादमूल पार्ष्णिस्तव महातलम्॥ ३६ ॥

रसातल ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते।
जानुनी सुतल राम ऊरू ते वितल तथा॥ ३७ ॥

अतल च मही राम जघन नाभिग नभ ।
उर स्थल ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते॥ ३८ ॥

वदन जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम्।
सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ॥ ३९ ॥

इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिश श्रुती।
अश्विनौ नासिके राम वक्त्र तेऽग्निरुदाहृत ॥ ४० ॥

चक्षुस्ते सविता राम मनश्चन्द्र उदाहृत ।
भ्रूभङ्ग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत्॥ ४१ ॥

रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दासि तेऽव्यय।
यमस्ते दंष्ट्रदेशस्थो नक्षत्राणि द्विजालय ॥ ४२ ॥

ध्यासरूप ऐक्य ही जीव कहलाता है। इन बुद्धि आदि सबका साक्षी ब्रह्म ही है, वह मन-वाणी आदि किसीका भी विषय नही है, उसी निर्विकार सर्वात्मामे अज्ञानवश इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को आरोपित किया जाता है। हे राम। आपका सूक्ष्म देह हिरण्यगर्भ और स्थूल देह विराट् कहलाता है। आपका भावनामय (हृदयकमलमे ध्यान करने योग्य) सूक्ष्म रूप जिसमे भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह सम्पूर्ण जगत् दीख पडता है, अपने ध्यान करनेवालोका मगल करनेवाला है॥ ३१—३४॥ अपने-अपने उत्तरवर्ती तत्त्वासे प्रत्यक दसगुना अधिक महत्तत्त्वादि सात आवरणोसे* घिरे हुए आपके स्थूल ब्रह्माण्डशरीरमे ही धारणाका आश्रयरूप विराट् शरीर स्थित है॥ ३५॥ आप ही एकमात्र सर्व साक्षस्वरूप है। सम्पूर्ण लोक आपहीके अवयव है। पाताल आपका चरणतल (तलुआ) हे, महातल एँडी है॥ ३६॥ हे राम। रसातल गुल्फ (टखने) है, तलातल जानु है तथा सुतल आपकी जघाएँ और वितल आपके दो ऊरु है॥ ३७॥ अतल और पृथिवी आपकी जघन भाग (कटिदेश) है भूर्लोक नाभि है, स्वर्लोक वक्ष स्थल हे तथा महर्लोक आपकी ग्रीवा है॥ ३८॥ हे रघुश्रेष्ठ। जनलोक आपका मुख हे तप लोक ललाट हे तथा हे प्रभो। सत्यलोक आपका मस्तक है॥ ३९॥ हे राम। इन्द्रादि लोकपालगण आपकी भुजाएँ है दिशाएँ कर्ण हे, अश्विनीकुमार नासिका हे और अग्नि आपका मुख बताया गया है॥ ४०॥ हे राम। सूर्य आपके नेत्र हे, चन्द्रमा मन है, काल भ्रूभगी हे और बृहस्पतिजी आपकी बुद्धि है॥ ४१॥ हे निर्विकार। रुद्र आपका अहकार हे, वेद आपकी वाणी है, यम आपकी दाढ है और नक्षत्रगण

* यहाँ साख्य तथा पुराणसम्मत इस प्रकारकी प्रक्रिया टीकामे लिखी है—स्वयम्भू (ब्रह्मा) के सङ्कल्पसे उत्पन्न चतुर्दश भुवन (भू, भुव, स्व मह जन, तप, सत्यम्) है, जो स्वयम्भूका स्थूल शरीर है। उसके बाहर चारो ओर पृथिवी तथा उससे उत्पन्न अण्ड है जो चतुर्दश भुवनसे दसगुना है। उस अण्डका आवरण पृथिवी है जो अण्डसे दसगुना है। इस पृथिवीका आवरण जल है—यह पृथिवीसे दसगुना अधिक है, जलका आवरण तेज तेजका आवरण वायु, वायुका आवरण आकाश आकाशका आवरण अहङ्कार अहङ्कारका आवरण महत्तत्त्व है, इनमे प्रत्येक आवरण अपने आवरणीय पृथिवी आदिसे दसगुना बडा हे। पृथिवी जल तेज, वायु आकाश—ये सब आवरण यहाँ सूक्ष्म पृथिवी आदि है स्थूल नही है।

यहाँ विराट्रूपको धारणाका आश्रय (विषय) कहा है। योगदर्शनमे धारणा इस प्रकार कही है— देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (३।१)। विषयान्तरको त्यागकर किसी वस्तुमे वृत्तिद्वारा चित्तके स्थिरीकरणका नाम धारणा हे।

हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम्।
धर्म पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरित ॥ ४३ ॥

निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम।
समुद्रा सप्त ते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो ॥ ४४ ॥

रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो।
महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एव स्थूल वपुस्तव ॥ ४५ ॥

यदस्मिन् स्थूलरूपे ते मन सन्धार्यते नरै ।
अनायासेन मुक्ति स्यादतोऽन्यन्नहि किञ्चन ॥ ४६ ॥

अतोऽह राम रूप ते स्थूलमेवानुभावये।
यस्मिन्ध्याते प्रेमरस सरोमपुलको भवेत् ॥ ४७ ॥

तदैव मुक्ति स्याद्राम यदा ते स्थूलभावक ।
तदप्यास्ता तवैवाहमेतद्रूप विचिन्तये ॥ ४८ ॥

धनुर्बाणधर श्याम जटावल्कलभूषितम्।
अपीच्यवयस सीता विचिन्वन्त सलक्ष्मणम् ॥ ४९ ॥

इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन।
सर्वज्ञ शङ्कर साक्षात्पार्वत्या सहित सदा ॥ ५० ॥

त्वद्रूपमेव सतत ध्यायन्नास्ते रघूत्तम।
मुमूर्षूणा तदा काश्या तारक ब्रह्मवाचकम् ॥ ५१ ॥

रामरामेत्युपदिशन्सदा सन्तुष्टमानस ।
अतस्त्व जानकीनाथ परमात्मा सुनिश्चित ॥ ५२ ॥

सर्वे ते मायया मूढास्त्वा न जानन्ति तत्त्वत ।
नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने ॥ ५३ ॥

अयोध्याधिपते तुभ्य नम सौमित्रिसेवित।
त्राहि त्राहि जगन्नाथ मा माया नावृणोतु ते ॥ ५४ ॥

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽह देवगन्धर्व भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ।
याहि मे परम स्थान योगिगम्य सनातनम् ॥ ५५ ॥

आपकी दन्तावलि है ॥ ४२ ॥ सबको मोहित करनेवाली माया आपका हास्य है, सृष्टि आपका कटाक्ष है, धर्म आपका आगेका भाग है और अधर्म पीछेका भाग है ॥ ४३ ॥ हे रघूत्तम ! रात और दिन आपके निमेषोन्मेष है। हे प्रभो ! सातो समुद्र आपकी कुक्षि और नदियाँ नाडियाँ है ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! वृक्ष और ओषधियाँ आपके रोम, वृष्टि आपका वीर्य और ज्ञानशक्ति आपकी महिमा है। यही आपका स्थूल शरीर है ॥ ४५ ॥ यदि पुरुष आपके इस स्थूल शरीरमे मन स्थिर करे (धारणा करे) तो वह अनायास ही मुक्त हो जाता है। हे राम ! आपके इस स्थूल रूपसे पृथक् और कोई पदार्थ नही है ॥ ४६ ॥ अत हे राम ! मै आपके उस स्थूल रूपका ही सदा चिन्तन करता हूँ, जिसके ध्यानमात्रसे ही शरीरमे रोमाञ्चके सहित (हृदयमे) प्रेम-रसका सञ्चार हो जाता है ॥ ४७ ॥ हे राम ! जब यह जीव आपके विराट् रूपका चिन्तन करता है तो तत्काल ही उसकी मुक्ति हो जाती है तो भी मुझे उसकी आवश्यकता नही। मै तो आपके इस (रामरूप) का ही चिन्तन करूँगा ॥ ४८ ॥ हे रघुनन्दन ! (मेरी यही प्रार्थना है कि) लक्ष्मणजीके सहित सीताको खोजता हुआ आपका यह जटा-वल्कल-विभूषित धनुष-बाणधारी तरुणवयस्क श्यामरूप सदा मेरे मनमे विराजमान रहे। हे रघुश्रेष्ठ ! आपके इस दिव्य रूपका पार्वतीजीके सहित सर्वज्ञ श्रीशङ्करभगवान् सर्वदा चिन्तन किया करते है और काशीमे मरनेवालेको ब्रह्मवाचक 'राम-राम' इस तारक-मन्त्रका उपदेश करते हुए सदा अति आनन्दमे मग्नचित्त रहते है। अत हे जानकीनाथ ! आप निश्चय ही परमात्मा है ॥ ४९—५२ ॥ आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सब लोग आपका वास्तविक स्वरूप नही जानते। हे ससारकी रचना करनेवाले परमात्मा राम ! मै आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ५३ ॥ हे सौमित्रिसेवित अयोध्यानाथ ! आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! आप मेरी रक्षा कीजिये, आपकी माया मुझे मोहित न करे ॥ ५४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे देवगन्धर्व ! मै तुम्हारी भक्ति और स्तुतिसे अति सन्तुष्ट हूँ। हे अनघ ! तुम योगियोके प्राप्त करनेयोग्य मेरे सनातन परमधामको जाओ ॥ ५५ ॥

जपन्ति ये नित्यमनन्यबुद्ध्या।
भक्त्या त्वदुक्त स्तवमागमोक्तम्।
तेऽज्ञानसम्भूतभव विहाय
मा यान्ति नित्यानुभवानुमेयम्॥ ५६॥

जो लोग तुम्हारे इस आगमोक्त स्तोत्रका अनन्य बुद्धिसे नित्य भक्तिपूर्वक जप करेगे, वे अन्तमे अज्ञानजन्य ससारसे मुक्त होकर जगत्रूप कार्यके द्वारा अनुमान करनेयोग्य ज्ञानस्वरूप नित्य मुझ परमात्माको प्राप्त करेगे॥ ५६॥



इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे नवम सर्ग ॥ ९॥



दशम सर्ग

शबरीसे भेट

श्रीमहादेव उवाच

लब्ध्वा वर स गन्धर्व प्रयास्यन् राममब्रवीत्।
शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन॥ १॥

भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा।
ता प्रयाहि महाभाग सर्व ते कथयिष्यति॥ २॥

इत्युक्त्वा प्रययौ सोऽपि विमानेनार्कवर्चसा।
विष्णो पद रामनामस्मरणे फलमीदृशम्॥ ३॥

त्यक्त्वा तद्विपिन घोर सिहव्याघ्रादिदूषितम्।
शनैरथाश्रमपद शबर्या रघुनन्दन॥ ४॥

शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम्।
आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा॥ ५॥

पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना।
स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने सन्यवेशयत्॥ ६॥

रामलक्ष्मणयो सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तित।
तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता॥ ७॥

सम्पूज्य विधिवद्राम ससौमित्रि सपर्यया।
सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा॥ ८॥

फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तित।
पादौ सम्पूज्य कुसुमै सुगन्धै सानुलेपनै॥ ९॥

श्रीमहादेवजी बोले— (हे पार्वति!) (भगवान् रामसे) वर पाकर (उनके परमधामको) जाते हुए उस गन्धर्वने कहा—"हे रघुनन्दन! सामनेवाले आश्रममे शबरी रहती है। वह आपके चरण-कमलोमे अति अनुराग रखनेके कारण भक्ति-मार्गमे कुशल है। हे महाभाग! आप वहाँ पधारिये। वह आपको (सीताजीके सम्बन्धमे) सब बाते बता देगी"॥ १-२॥ ऐसा कहकर वह एक सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढकर विष्णुलोकको चला गया। (सच है) रामनाम-स्मरणका फल ऐसा ही है॥ ३॥

तदनन्तर सिह, व्याघ्रादिसे दूषित उस घोर वनको छोडकर श्रीरघुनाथजी धीरे-धीरे शबरीके आश्रमपर पहुँचे॥ ४॥ लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीको समीप ही आते देख शबरी अत्यन्त हर्षसे तुरत उठ खडी हुई॥ ५॥ उसके नेत्रोमे आनन्दाश्रु भर आये और वह भगवान् रामके चरणोमे गिर पडी तथा उनका स्वागत कर कुशल-प्रश्नादिके अनन्तर उन्हे सुन्दर आसनपर बैठाया॥ ६॥ तदनन्तर भक्तिसे श्रीराम और लक्ष्मणके चरण अच्छी प्रकार धोये और उस चरणोदकको अपने अङ्गोपर छिडककर श्रद्धायुक्त होकर अर्घ्यादि विविध सामग्रियोसे राम और लक्ष्मणका विधिवत् पूजन कर जो अमृतके समान दिव्य फल उसने श्रीरामचन्द्रजीके लिये इकट्ठे कर रखे थे, वे हर्षसे लाकर भक्तिपूर्वक उन्हे दिये और उनके चरण-कमलोका चन्दनयुक्त सुगन्धित पुष्पोसे पूजन किया॥ ७—९॥

कृतातिथ्यं रघुश्रेष्ठमुपविष्टं सहानुजम्।
शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १०॥

अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो मे महर्षयः।
स्थिताः शुश्रूषणं तेषां कुर्वती समुपस्थिता॥ ११॥

बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम्।
गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता॥ १२॥

रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः।
राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च॥ १३॥

आगमिष्यति सैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव।
इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः॥ १४॥

यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम्।
दृष्ट्वैव राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम्॥ १५॥

तथैवाकरवं राम त्वद्ध्यानैकपरायणा।
प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम्॥ १६॥

तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे न हि।
योषिन्मूढाप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा॥ १७॥

तव दासस्य दासानां शतसङ्ख्योत्तरस्य वा।
दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि॥ १८॥

कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः।
स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे॥ १९॥

श्रीराम उवाच

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्॥ २०॥

यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा॥ २१॥

तस्माद्भामिनि सङ्क्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम्।
सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम्॥ २२॥

(इस प्रकार) आतिथ्य-सत्कार हो चुकनेपर जब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित आसनपर विराजमान थे, शबरीने भक्तिपूर्वक हाथ जोडकर कहा— ॥ १०॥ "हे रघुश्रेष्ठ! इस आश्रममें पहले मेरे गुरु महर्षि (मतंग) रहा करते थे, मैं उनकी सेवा-शुश्रूषा करती हुई यहाँ हजारों वर्षोंसे रहती हूँ। अब वे महर्षिश्रेष्ठ ब्रह्मलोकको चले गये हैं। जाते समय उन्होंने मुझसे कहा था कि तू एकाग्रचित्त होकर यहीं रह॥ ११-१२॥ सनातन परमात्माने राक्षसोंको मारने और ऋषियोंकी रक्षा करनेके लिये राजा दशरथके पुत्र रामरूपसे अवतार लिया है। १३॥ वे (शीघ्र ही) यहाँ आयेंगे। तू एकाग्रचित्तसे उनका ध्यान करती हुई यहाँ रह। आजकल भगवान् रामजी चित्रकूट पर्वतके आश्रममें विराजमान हैं॥ १४॥ जबतक वे आवें तबतक तू अपने शरीरका पालन कर। रघुनाथजीके आनेपर उनका दर्शन करते हुए इस शरीरको जलाकर तू उनके परमधामको चली जायगी॥ १५॥ हे राम! गुरुजीके कथनानुसार मैं तभीसे केवल आपका ध्यान करती हुई आपके आनेकी बाट देख रही थी। आज गुरुजीका वह वाक्य सफल हो गया॥ १६॥ हे राम! आपका दर्शन तो मेरे गुरुदेवको भी नहीं हुआ। फिर हे अप्रमेयात्मन्! मैं तो नीच-जातिमें उत्पन्न हुई एक गँवारी नारी ही हूँ। (मेरी तो बात ही क्या है?) ॥ १७॥ जो आपके दासोंके दास हैं उनके भी जो उत्तरोत्तर सैकड़ों दासानुदास हैं मैं तो उनकी दासी होनेकी भी अधिकारिणी नहीं हूँ, फिर साक्षात् आपकी दासी कहलानेका तो मेरा मुँह ही कहाँ है॥ १८॥ हे राम! आप तो मन या वाणीके विषय नहीं हैं (फिर न जाने) आज मुझे आपका दर्शन कैसे हो गया। हे देवेश्वर! मैं आपकी स्तुति करना नहीं जानती। अब मैं क्या करूँ? प्रभो! आप स्वयं ही (अपनी दयालुतासे) मुझपर प्रसन्न होइये" ॥ १९॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—पुरुषत्व-स्त्रीत्वका भेद अथवा जाति, नाम और आश्रम—ये कोई भी मेरे भजनके कारण नहीं है। उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है॥ २०॥ जो मेरी भक्तिसे विमुख है, वे यज्ञ, दान, तप अथवा वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्मसे मुझे कभी नहीं देख सकते॥ २१॥ अतः हे भामिनि! मैं सक्षेपसे अपनी भक्तिके साधनोंका वर्णन करता हूँ। उनमें

द्वितीय मत्कथालापस्तृतीय मद्गुणेरणम् ।
व्याख्यातृत्व मद्वचसा चतुर्थ साधन भवेत् ॥ २३ ॥

आचार्योपासन भद्रे मद्बुद्ध्यामायया सदा ।
पञ्चम पुण्यशीलत्व यमादि नियमादि च ॥ २४ ॥

निष्ठा मत्पूजने नित्य षष्ठ साधनमीरितम् ।
मम मन्त्रोपासकत्व साङ्ग सप्तममुच्यते ॥ २५ ॥

मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मति ।
बाह्यार्थेषु विरागित्व शमादिसहित तथा ॥ २६ ॥

अष्टम नवम तत्त्वविचारो मम भामिनि ।
एव नवविधा भक्ति साधन यस्य कस्य वा ॥ २७ ॥

स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा ।
भक्ति सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ॥ २८ ॥

भक्तौ सञ्जातमात्राया मत्तत्त्वानुभवस्तदा ।
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥ २९ ॥

स्यात्तस्मात्कारण भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम् ।
प्रथम साधन यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु ॥ ३० ॥

भवेत्सर्व ततो भक्तिर्मुक्तिरेव सुनिश्चितम् ।
यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्व ततोऽह त्वामुपस्थित ॥ ३१ ॥

इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र सशय ।
यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना ॥ ३२ ॥

कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना ॥ ३३ ॥

पहला साधन तो सत्सङ्ग ही है ॥ २२ ॥ मेरे जन्म-कर्मोकी कथाका कीर्तन करना दूसरा साधन है, मेरे गुणोकी चर्चा करना—यह तीसरा उपाय है और (गीता-उपनिषदादि) मेरे वाक्योकी व्याख्या करना उसका चौथा साधन है ॥ २३ ॥ हे भद्रे ! अपने गुरुदेवकी निष्कपट होकर भगवद्बुद्धिसे सेवा करना पॉचवॉ, पवित्र स्वभाव, यम-नियमादिका पालन और मेरी पूजामे सदा प्रेम होना छठा तथा मेरे मन्त्रकी साङ्गोपाङ्ग उपासना करना सातवॉ साधन कहा जाता है ॥ २४-२५ ॥ मेरे भक्तोकी मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियोमे मेरी भावना करना, बाह्य पदार्थोमे वैराग्य करना और शम-दमादि-सम्पन्न होना—यह मेरी भक्तिका आठवॉ साधन है तथा तत्त्वविचार करना नवॉ है। हे भामिनि ! इस प्रकार यह नौ प्रकारकी भक्ति है। हे शुभलक्षणे ! जिस किसीमे ये साधन होते है वह स्त्री, पुरुष अथवा पशु-पक्षी आदि कोई भी क्यो न हो उसमे प्रेम-लक्षणा-भक्तिका आविर्भाव हो ही जाता है ॥ २६—२८ ॥ भक्तिके उत्पन्न होनेमात्रसे ही मेरे स्वरूपका अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है उसकी उसी जन्मभे निस्सन्देह मुक्ति हो जाती है। अत यह सिद्ध हुआ कि मोक्षका कारण भक्ति ही है। (भक्तिके उपर्युक्त नौ साधनोमेसे) जिसमे पहला साधन होता है उसमे क्रमश ये सभी आ जाते है। तब फिर उसे भक्ति तथा मुक्तिका प्राप्त होना निश्चित ही है। तू मेरी भक्तिसे युक्त है इसीलिये मै तेरे पास आया हूँ ॥ २९—३१ ॥ (अब) मेरा यह दर्शन होनेसे तेरी मुक्ति हो ही जायगी—इसमे सन्देह नही। यदि तुझे पता हो तो बता इस समय कमललोचना सीता कहॉ है। मेरी प्रियदर्शना प्रियाको कौन ले गया है ? ॥ ३२-३३ ॥

शबर्युवाच

देव जानासि सर्वज्ञ सर्व त्व विश्वभावन ।
तथापि पृच्छसे यन्मा लोकाननुसृत प्रभो ॥ ३४ ॥

ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राधुना स्थिता ।
रावणेन हृता सीता लङ्काया वर्ततेऽधुना ॥ ३५ ॥

शबरी बोली—हे देव ! हे सर्वज्ञ ! हे विश्वभावन ! आप सभी कुछ जानते है। तथापि हे प्रभो ! लोकाचारका अनुसरण करते हुए यदि आप मुझसे पूछते है तो इस समय सीताजी जहॉ है वह मै आपको बतलाती हूँ। सीताजीको रावण हर ले गया है और इस समय वे लङ्कामे

इत समीपे रामास्ते पम्पानाम सरोवरम्।
ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानग ॥ ३६ ॥

चतुर्भिर्मन्त्रिभि सार्ध सुग्रीवो वानराधिप ।
भीतभीत सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥ ३७ ॥

वालिनश्च भयाद् भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात्।
वालिनस्तत्र गच्छ त्व तेन सख्य कुरु प्रभो ॥ ३८ ॥

सुग्रीवेण स सर्व ते कार्यं सम्पादयिष्यति ।
अहमग्नि प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन ॥ ३९ ॥

मुहूर्त तिष्ठ राजेन्द्र यावद्दग्ध्वा कलेवरम्।
यास्यामि भगवन् राम तव विष्णो पर पदम् ॥ ४० ॥

इति राम समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम्।
क्षणान्निर्धूय सकलमविद्याकृतबन्धनम्।
रामप्रसादाच्छबरी मोक्ष प्रापातिदुर्लभम् ॥ ४१ ॥

किं दुर्लभ जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले।
प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा ॥ ४२ ॥

कि पुनर्ब्राह्मणा मुख्या पुण्या श्रीरामचिन्तका ।
मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न सशय ॥ ४३ ॥

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवत
श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोका कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगल
सेवध्वमत्युत्सुका ।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं
त्यक्त्वा सुदूरे भृश
राम श्यामतनु स्मरारिहृदये
भान्त भजध्व बुधा ॥ ४४ ॥

है ॥ ३४-३५ ॥ हे राम! यहाँसे पास ही पम्पा नामका एक सरोवर है। उसके समीप ऋष्यमूक नामका एक बहुत बडा पर्वत है ॥ ३६ ॥ वहाँ अतुलित पराक्रमी वानरराज सुग्रीव अपने भाई वालीके भयसे सदा अत्यन्त डरता हुआ अपने चार मन्त्रियोके साथ रहता है। ऋषि-शापके भयसे वह स्थान वालीके लिये सर्वथा अगम्य है। हे प्रभो! आप वहाँ जाइये और उस सुग्रीवसे मित्रता कीजिये। वह आपका सब कार्य सिद्ध करेगा। हे रघुनन्दन! अब मै आपके सामने ही अग्निमे प्रवेश करूँगी ॥ ३७—३९ ॥ हे राजेश्वर! हे भगवन्! हे राम! जबतक मै अपने शरीरको जलाकर आप विष्णुभगवान्‌के परमधामको जाऊँ, तबतक आप एक मुहूर्त यहाँ और ठहरिये ॥ ४० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके साथ इस प्रकार सम्भाषण करनेके अनन्तर शबरीने अग्निमे प्रवेश किया और एक क्षणमे ही समस्त अविद्याजन्य बन्धनोको नष्टकर भगवान् रामकी कृपासे अति दुर्लभ मोक्ष-पद प्राप्त किया ॥ ४१ ॥ भक्तवत्सल जगन्नाथ श्रीरामके प्रसन्न होनेपर क्या दुर्लभ है। (देखो, उनकी कृपासे) नीच जातिमे उत्पन्न हुई शबरीने भी मोक्षपद प्राप्त कर लिया ॥ ४२ ॥ फिर श्रीरामका ध्यान करनेवाले पुण्यजन्मा ब्राह्मणादि यदि मुक्त हो जायँ तो इसमे क्या आश्चर्य है? निस्सन्देह, भगवान् रामकी भक्ति ही मुक्ति है ॥ ४३ ॥ अरे लोगो! भगवान् श्रीरामचन्द्रकी भक्ति ही मोक्ष देनेवाली है। अत कामधेनुरूप उनके चरण-युगलोकी अति उत्सुकतासे सेवा करो। हे बुद्धिमान् लोगो! इन विविध विज्ञान-वार्ताओ और मन्त्र-विस्तारको अत्यन्त दूर—अलग रखकर तुरत ही श्रीशकरके हृदयधाममे शोभा पानेवाले श्यामशरीर भगवान् रामका अत्यन्त भजन करो ॥ ४४ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे अरण्यकाण्डे दशम सर्ग ॥ १० ॥

★

समाप्तमिदमरण्यकाण्डम्।

★

ॐ

अध्यात्मरामायण

किष्किन्धाकाण्ड

प्रथम सर्ग

सुग्रीवसे भेट

श्रीमहादेव उवाच

तत सलक्ष्मणो राम शनै पम्पासरस्तटम्।
आगत्य सरसा श्रेष्ठ दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके सहित धीरे-धीरे पम्पासरके तटपर आये। उस सुन्दर सरोवरको देखकर उन्हे बडा विस्मय हुआ ॥ १ ॥

क्रोशयात्र सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम्।
उत्फुल्लाम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ २ ॥

उसका विस्तार एक कोसका था और उसमे अति निर्मल अगाध जल भरा हुआ था तथा सब ओर खिले हुए कमल, कह्लार, कुमुद और उत्पल आदि सुशोभित हो रहे थे ॥ २ ॥

हसकारण्डवाकीर्ण चक्रवाकादिशोभितम्।
जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौञ्चनादोपनादितम् ॥ ३ ॥

उस सरोवरमे जहाँ-तहाँ हस और कारण्डव आदि पक्षी विहार कर रहे थे, चक्रवाकादि उसकी शोभा बढा रहे थे और जलकुक्कुट, कोयष्टि तथा क्रौंच आदि पक्षियोके कलरवसे वह शब्दायमान हो रहा था ॥ ३ ॥

नानापुष्पलताकीर्ण नानाफलसमावृतम्।
सता मन स्वच्छजल पद्मकिञ्जल्कवासितम् ॥ ४ ॥

वह चित्र-विचित्र पुष्प-लताओसे परिपूर्ण और नाना प्रकारके फलवाले वृक्षोसे घिरा हुआ था तथा उसका कमलकेशरसे सुवासित जल सज्जनोके चित्तके समान स्वच्छ था ॥ ४ ॥

तत्रोपस्पृश्य सलिल पीत्वा श्रमहर विभु ।
सानुज सरसस्तीरे शीतलेन पथा ययौ ॥ ५ ॥

वहाँ पहुँचनेपर छोटे भाई लक्ष्मणके सहित प्रभु रामने आचमनकर उस सरोवरका श्रमहारी शीतल जल पीया और फिर उसके किनारे-किनारे शीतल छायायुक्त मार्गसे चलने लगे ॥ ५ ॥

ऋष्यमूकगिरे पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ ।
पश्यन्तौ विविधान्वृक्षान् गिरे शोभा सुविक्रमौ ॥ ६ ॥

इस प्रकार जटावल्कलविभूषित जितेन्द्रिय परम पराक्रमी राम और लक्ष्मण, जब हाथमे धनुष-बाण लिये विविध वृक्षो और पर्वतकी शोभाको निहारते हुए ऋष्यमूक पर्वतकी बगलमे चल रहे थे ॥ ६ ॥

सुग्रीवस्तु गिरेर्मूर्ध्नि चतुर्भि सह वानरै ।
स्थित्वा ददर्श तौ यान[illegible]रुरोह गिरे शिर ॥ ७ ॥

उस समय अपने चार मन्त्रियोके सहित गिरि-शिखरपर बैठे हुए सुग्रीवने उन्हे उधर जाते देखा और वह सबसे ऊँचे शिखरपर चढ गया ॥ ७ ॥

भयादाह हनूमन्त कौ तौ वीरवरौ सखे।
गच्छ जानीहि भद्र ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृति ॥ ८ ॥

वालिना प्रेषितौ किंवा मा हन्तु समुपागतौ।
ताभ्या सम्भाषण कृत्वा जानीहि हृदय तयो ॥ ९ ॥

यदि तौ दुष्टहृदयौ सज्ञा कुरु कराग्रत।
विनयावनतो भूत्वा एव जानीहि निश्चयम् ॥ १० ॥

तथेति वटुरूपेण हनुमान् समुपागत।
विनयावनतो भूत्वा राम नत्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

कौ युवा पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ।
द्योतयन्तौ दिश सर्वा प्रभया भास्कराविव ॥ १२ ॥

युवा त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम।
युवा प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ १३ ॥

मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया।
भूभारहरणार्थाय भक्ताना पालनाय च ॥ १४ ॥

अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती।
जगत्स्थितिलयौ सर्ग लीलया कर्तुमुद्यतौ ॥ १५ ॥

स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ।
नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मति ॥ १६ ॥

श्रीरामो लक्ष्मण प्राह पश्यैन वटुरूपिणम्।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुत नूनमनेकधा ॥ १७ ॥

अनेन भाषित कृत्स्न न किञ्चिदपशब्दितम्।
तत प्राह हनूमन्त राघवो ज्ञानविग्रह ॥ १८ ॥

अह दाशरथी रामस्त्वय मे लक्ष्मणोऽनुज।
सीतया भार्यया सार्ध पितुर्वचनगौरवात् ॥ १९ ॥

आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽह दण्डके द्विज।
तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम।
तामन्वेष्टुमिहायातौ त्व को वा कस्य वा वद ॥ २० ॥

फिर भयभीत होकर हनुमान्‌जीसे बोला—"मित्र! देखो, ये दो वीरवर कौन है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम ब्राह्मण ब्रह्मचारीके वेषमे उनके पास जाकर यह मालूम तो करो ॥ ८ ॥ तुम उनसे बातचीत करके उनके यहाँ आनेका अभिप्राय मालूम करना। ऐसा न हो, वे वालीके भेजनेसे मुझे मारनेके लिये आ रहे हो ॥ ९ ॥ यदि तुम्हे उनका हृदय दूषित मालूम हो तो अपनी अँगुलीसे मुझे सकेत कर देना। देखो, बडे विनीत होकर यह सब भेद मालूम कर लेना" ॥ १० ॥

तब हनुमान्‌जी सुग्रीवसे 'जो आज्ञा' कह ब्रह्मचारीका वेष बनाकर रघुनाथजीके पास आये और बडी नम्रतासे उन्हे नमस्कार कर बोले— ॥ ११ ॥ "हे पुरुषव्याघ्र! आप दोनो कौन है? आपकी युवावस्था है और आप बडे वीर मालूम होते है। अहो! अपने शरीरकी कान्तिसे आपने समस्त दिशाओको सूर्यके समान प्रकाशमान कर रखा है ॥ १२ ॥ मेरा मन तो यह कहता है कि आप दोनो त्रिलोकीके रचनेवाले ससारके कारणभूत जगन्मय प्रधान और पुरुष ही है ॥ १३ ॥ आप मानो पृथिवीका भार उतारने और भक्तजनोकी रक्षा करनेके लिये ही लीलावश अपनी मायासे मनुष्यरूप धारण कर विचर रहे है ॥ १४ ॥ आप साक्षात् परमात्मा ही क्षत्रियकुमारके रूपमे अवतीर्ण होकर पृथिवीपर घूम रहे है। आप लीलाहीसे ससारकी उत्पत्ति स्थिति और (दुष्टोका) नाश करनेमे तत्पर है ॥ १५ ॥ मेरी बुद्धिमे तो यही आता है कि आप सबके हृदयमे विराजमान, सबके प्रेरक, परम स्वतन्त्र भगवान् नर-नारायण ही इस लोकमे विचर रहे है" ॥ १६ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण! इस ब्रह्मचारीको देखो। अवश्य ही इसने सम्पूर्ण शब्दशास्त्र (व्याकरण) कई बार भली प्रकार पढा है ॥ १७ ॥ देखो, इसने इतनी बाते कही किन्तु इसके बोलनेमे कही कोई एक भी अशुद्धि नही हुई।" तदनन्तर विज्ञानघन श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ १८ ॥ "हे द्विज! मै दशरथका पुत्र राम हूँ और यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। मै पिताकी आज्ञा मानकर अपनी स्त्री सीताके सहित वनमे आया था और यहाँ दण्डकारण्यमे रहता था। वहाँ किसी राक्षसने मेरी भार्या सीताको हर लिया। उसे ढूँढनेके लिये हम यहाँ आये है। कहिये, आप कौन है और किसके पुत्र हैं।" ॥ १९-२० ॥

वटुरुवाच

सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणा महामति ।
चतुर्भिर्मन्त्रिभि सार्ध गिरिमूर्धनि तिष्ठति ॥ २१ ॥

भ्राता कनीयान् सुग्रीवो वालिन पापचेतस ।
तेन निष्कासितो भार्या हृता तस्येह वालिना ॥ २२ ॥

तद्भयादृष्यमूकाख्य गिरिमाश्रित्य सस्थित ।
अह सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते ॥ २३ ॥

हनूमान्नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भव ।
तेन सख्य त्वया युक्त सुग्रीवेण रघूत्तम ॥ २४ ॥

भार्यापहारिण हन्तु सहायस्ते भविष्यति ।
इदानीमेव गच्छाम आगच्छ यदि रोचते ॥ २५ ॥

ब्रह्मचारी बोले—महामति सुग्रीव वानरोके राजा है। वे अपन चार मन्त्रियोके साथ इस पर्वतके शिखरपर रहते है ॥ २१ ॥ वे दुष्टचित्त वालीके छोटे भाई है। उस वालीने उनकी स्त्री छीनकर उन्हे घरसे निकाल दिया है ॥ २२ ॥ अत उसके भयसे वे इस ऋष्यमूक पर्वतपर ही रहते है। हे महामते । मै उन्ही सुग्रीवका मन्त्री और वायुका पुत्र हूँ ॥ २३ ॥ मेरा जन्म माता अञ्जनीके गर्भसे हुआ है और मै 'हनूमान्' नामसे विख्यात हूँ। हे रघुश्रेष्ठ । आपको महाराज सुग्रीवसे मित्रता करनी चाहिये ॥ २४ ॥ वे आपकी भार्याको चुरानेवालेका वध करनेमे आपके सहायक होगे। आइये, यदि आपकी इच्छा हो तो अभी उनके पास चले ॥ २५ ॥

श्रीराम उवाच

अहमप्यागतस्तेन सख्य कर्तु कपीश्वर ।
सख्युस्तस्यापि यत्कार्य तत्करिष्याम्यसशयम् ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे कपीश्वर । मै भी उनसे मित्रता करनेके लिये आया हूँ। उन मित्रवरका भी जो कुछ कार्य होगा, वह मै निस्सन्देह पूर्ण कर दूँगा ॥ २६ ॥

हनूमान् स्वस्वरूपेण स्थितो राममथाब्रवीत् ।
आरोहता मम स्कन्धौ गच्छाम पर्वतोपरि ॥ २७ ॥

यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्वालिनो भयात् ।
तथेति तस्यारुरोह स्कन्ध रामोऽथ लक्ष्मण ॥ २८ ॥

उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि क्षणादेव महाकपि ।
वृक्षच्छाया समाश्रित्य स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥

यह सुनकर हनूमान्‌जीने अपना रूप धारण कर रामसे कहा, "आइये, आप दोनो मेरे कधोपर चढ जाइये। अब हम पर्वतके ऊपर चलते है, जहाँ अपने मन्त्रियोके सहित सुग्रीव वालीके भयसे (छिपकर) रहते है।" तब राम और लक्ष्मण 'बहुत अच्छा' कह उनके कधोपर चढ गये ॥ २७-२८ ॥ वानरराज हनूमान् एक क्षणमे ही पर्वतके शिखरपर कूदकर पहुँच गये। वहाँ राम और लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामे खडे हो गये ॥ २९ ॥

हनूमानपि सुग्रीवमुपगम्य कृताञ्जलि ।
व्येतु ते भयमायातौ राजन् श्रीरामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥

शीघ्रमुत्तिष्ठ रामेण सख्य ते योजित मया ।
अग्नि साक्षिणमारोप्य तेन सख्य द्रुत कुरु ॥ ३१ ॥

इधर हनूमान्‌जीने सुग्रीवके पास जा उनसे हाथ जोडकर कहा—"राजन् । अब अपनी शका दूर कीजिये, क्योकि आपके यहाँ श्रीराम और लक्ष्मण पधारे है ॥ ३० ॥ शीघ्र उठिये, मैने रामके साथ आपकी मित्रता होनेका योग लगा दिया है। शीघ्र ही अग्निको साक्षी करके उनसे मित्रता कीजिये" ॥ ३१ ॥

ततोऽतिहर्षात्सुग्रीव समागम्य रघूत्तमम् ।
वृक्षशाखा स्वय छित्त्वा विष्टराय ददौ मुदा ॥ ३२ ॥

तब सुग्रीव अति प्रसन्न होकर रघुनाथजीके पास आये और प्रसन्नमनसे अपने हाथसे एक वृक्षकी शाखा

हनूमाँल्लक्ष्मणायादात्सुग्रीवाय च लक्ष्मण ।
हर्षेण महताविष्टा सर्व एवावतस्थिरे ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्व रामवृत्तान्तमादित ।
वनवासाभिगमन सीताहरणमेव च ॥ ३४ ॥

लक्ष्मणोक्त वच श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत् ।
अह करिष्ये राजेन्द्र सीताया परिमार्गणम् ॥ ३५ ॥

साहाय्यमपि ते राम करिष्ये शत्रुघातिन ।
शृणु राम मया दृष्ट किञ्चित्ते कथयाम्यहम् ॥ ३६ ॥

एकदा मन्त्रिभि सार्ध स्थितोऽह गिरिमूर्धनि ।
विहायसा नीयमाना केनचित्प्रमदोत्तमाम् ॥ ३७ ॥

क्रोशन्तीं रामरामेति दृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि ।
आमुच्याभरणान्याशु स्वोत्तरीयेण भामिनी ॥ ३८ ॥

निरीक्ष्याध परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा ।
नीताह भूषणान्याशु गुहायामक्षिप प्रभो ॥ ३९ ॥

इदानीमपि पश्य त्व जानीहि तव वा न वा ।
इत्युक्त्वानीय रामाय दर्शयामास वानर ॥ ४० ॥

विमुच्य रामस्तद्दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहु ।
हृदि निक्षिप्य तत्सर्व रुरोद प्राकृतो यथा ॥ ४१ ॥

आश्वास्य राघव भ्राता लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
अचिरेणैव ते राम प्राप्यते जानकी शुभा ।
वानरेन्द्रसहायेन हत्वा रावणमाहवे ॥ ४२ ॥

सुग्रीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञा करवाणि ते ।
समरे रावण हत्वा तव दास्यामि जानकीम् ॥ ४३ ॥

ततो हनूमान्प्रज्वाल्य तयोरग्नि समीपत ।
तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति ॥ ४४ ॥

तोडकर उन्हे बैठनेके लिये आसन दिया ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार हनुमान्‌जीने लक्ष्मणजीको नथा लक्ष्मणजीने सुग्रीवको आसन दिया और सब लोग अति आनन्दपूर्वक अपने-अपने आसनोपर बैठ गये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणजीने आरम्भसे लेकर वनमे आने और सीताजीके हरे जानेतकका रामचन्द्रजीका सारा वृत्तान्त सुनाया ॥ ३४ ॥

लक्ष्मणजीके वचन सुनकर सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"हे राजराजेश्वर ! मै सीताजीकी खोज करूँगा ॥ ३५ ॥ और शत्रुका वध करते समय भी मै आपकी सहायता करूँगा। हे राम ! इस सम्बन्धमे मैने जो कुछ देखा है वह आपको सुनाता हूँ, सुनिये ॥ ३६ ॥

"एक दिन अपने मन्त्रियोके साथ मै पर्वतके शिखरपर बैठा था। उस समय हमने देखा कि कोई राक्षस किसी उत्तम कामिनीको आकाशमार्गसे लिये जाता है ॥ ३७ ॥ वह 'राम ! राम !' कहकर विलाप कर रही थी। हमे पर्वतपर बैठे देखकर उसने तुरत ही अपने आभूषण उतारकर एक वस्त्रमे बाँधे और हमारी ओर देखते हुए नीचे गिरा दिये। हे प्रभो ! इसी प्रकार निरन्तर विलाप करती हुई उस अबलाको वह राक्षस ले गया। प्रभो ! मैने तुरत ही उन आभूषणोको उठाकर गुफामे रख दिया ॥ ३८-३९ ॥ आप उन्हे अभी देखिये और पहचानिये कि वे आपहीके है या नही।" ऐसा कह कपिराज सुग्रीवने वे आभूषण लाकर रामको दिखाये ॥ ४० ॥ रामचन्द्रजीने उन्हे खोलकर देखा तो (उन्हे पहचानकर) छातीसे लगा लिया और साधारण पुरुषोके समान बारम्बार 'हा सीते ! हा सीते !' कहकर रोने लगे ॥ ४१ ॥

तब भाई लक्ष्मणने उन्हे ढाँढस बँधाकर कहा—"हे राम ! वानरराज सुग्रीवकी सहायतासे युद्धमे रावणको मारकर आप शीघ्र ही शुभलक्षणा जनकनन्दिनीको प्राप्त करेगे" ॥ ४२ ॥ सुग्रीवने भी कहा—"हे राम ! मै आपसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रावणको युद्धमे मारकर आपको सीता दिला दूँगा" ॥ ४३ ॥

तदनन्तर हनुमान्‌जीने उन दोनोके पास अग्नि प्रज्वलित की। तब निष्पाप राम और सुग्रीव दोनो ही

बाहू प्रसार्य चालिङ्ग्य परस्परमकल्मषौ ।
समीपे रघुनाथस्य सुग्रीव समुपाविशत् ॥ ४५ ॥

स्वोदन्त कथयामास प्रणयाद्रघुनायके ।
सखे शृणु ममोदन्त वालिना यत्कृत पुरा ॥ ४६ ॥

मयपुत्रोऽथ मायावी नाम्ना परमदुर्मद ।
किष्किन्धा समुपागत्य वालिन समुपाह्वयत् ॥ ४७ ॥

सिहनादेन महता वाली तु तदमर्षण ।
निर्ययौ क्रोधताम्राक्षो जघान दृढमुष्टिना ॥ ४८ ॥

दुद्राव तेन सविघ्नो जगाम स्वगुहा प्रति ।
अनुदुद्राव त वाली मायाविनमह तथा ॥ ४९ ॥

तत प्रविष्टमालोक्य गुहा मायाविन रुषा ।
वाली मामाह तिष्ठ त्व बहिर्गच्छाम्यह गुहाम् ।
इत्युक्त्वाविश्य स गुहा मासमेक न निर्ययौ ॥ ५० ॥

मासादूर्ध्व गुहाद्वारान्निर्गत रुधिर बहु ।
तद्दृष्ट्वा परितप्ताङ्गो मृतो वालीति दु खित ॥ ५१ ॥

गुहाद्वारि शिलामेका निधाय गृहमागत ।
ततोऽब्रव मृतो वाली गुहाया रक्षसा हत ॥ ५२ ॥

तच्छ्रुत्वा दु खिता सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत ।
राज्येऽभिषेचन चक्रु सर्वे वानरमन्त्रिण ॥ ५३ ॥

शिष्ट तदा मया राज्य किञ्चित्कालमरिन्दम ।
तत समागतो वाली मामाह परुष रुषा ॥ ५४ ॥

बहुधा भर्त्सयित्वा मा निजघान च मुष्टिभि ।
ततो निर्गत्य नगरादधावं परया भिया ॥ ५५ ॥

लोकान् सर्वान्परिक्रम्य ऋष्यमूक समाश्रित ।
ऋषे शापभयात्सोऽपि नायातीम गिरि प्रभो ॥ ५६ ॥

तदादि मम भार्यां स स्वय भुङ्क्ते विमूढधी ।
अतो दु खेन सन्तप्तो हृतदारो हताश्रय ॥ ५७ ॥

अग्निको साक्षी कर परस्पर एक-दूसरेसे भुजा फैलाकर मिले। तत्पश्चात् सुग्रीव रामचन्द्रजीके पास बैठ गये ॥ ४४-४५ ॥ और अति प्रेमपूर्वक उन्हे अपना वृत्तान्त सुनाने लगे। वे बोले—''मित्र ! अब हमारी कहानी सुनो, वालीने पूर्वकालमे मेरे साथ जो कुछ किया है वह सुनाता हूँ ॥ ४६ ॥ एक बार अति मदोन्मत्त मय दानवके पुत्र मायावीने किष्किन्धापुरीमे आकर वालीको युद्धके लिये ललकारा ॥ ४७ ॥ वह दैत्य बडा भारी सिहनाद करने लगा । वाली उसका यह दर्प न देख सका, उसकी आँखे क्रोधसे लाल हो गयी और उसने बाहर आ उसके बडे जोरसे एक घूँसा मारा ॥ ४८ ॥ उसके आघातसे व्याकुल होकर मायावी अपनी गुफाकी ओर दौडा। तब वाली और मै दोनोहीने उसका पीछा किया ॥ ४९ ॥ मायावीको गुफामे गया देखकर वालीको बडा रोष हुआ । उसने मुझसे कहा—'तुम यही रहो, मैं गुफामे जाता हूँ।' ऐसा कहकर वह गुफामे घुस गया और एक मासतक उससे न निकला ॥ ५० ॥ एक महीना बीत जानेपर उस गुफाके द्वारसे बहुत-सा रक्त निकला। उसे देखकर यह समझकर कि वाली मारा गया, मुझे बडा दु ख और सन्ताप हुआ ॥ ५१ ॥ तब (इस भयसे कि कही वालीको मारनेवाला दैत्य बाहर आकर मुझे भी न मार डाले) उस गुफाके द्वारपर एक शिला रखकर मै घर लौट आया और सबसे यह कह दिया कि वाली गुफामे राक्षसके हाथसे मारा गया ॥ ५२ ॥ यह सुनकर सबको बडा दु ख हुआ और मेरी इच्छा न होनेपर भी समस्त वानर-मन्त्रिमण्डलने मुझे राजपदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ५३ ॥ हे शत्रुदमन ! मैने कुछ ही दिन राज्यशासन किया होगा कि वाली आ गया और क्रोधपूर्वक मुझसे बडी कडवी-कडवी बाते कहने लगा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार मुझे बहुत कुछ भला-बुरा कहकर वह मुझे घूँसोसे मारने लगा। तब मै अत्यन्त भयभीत होकर नगर छोडकर भाग गया ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! मैने सम्पूर्ण लोकोमे घूमकर अन्तमे इस ऋष्यमूक-पर्वतकी शरण ली है, क्योंकि ऋषिशापके भयसे वह इस पर्वतपर नही आता ॥ ५६ ॥ तबसे मेरी भार्याको वह दुर्मति स्वय भोगता है और मै स्त्री तथा घरके छिन जानेसे मन-ही-मन कुढ़ता हुआ यहाँ रहता हूँ। आज आपके चरणकमलोका स्पर्श करनेसे मुझे

वसाम्यद्य भवत्पादसस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम् ।
मित्रदु खेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचन ॥ ५८ ॥

हनिष्यामि तव द्वेष्य शीघ्र भार्यापहारिणम् ।
इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा ॥ ५९ ॥

सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र वाली बलवता बली ।
कथ हनिष्यति भवान्देवैरपि दुरासदम् ॥ ६० ॥

शृणु ते कथयिष्यामि तद्बल बलिना वर ।
कदाचिद्दुन्दुभिर्नाम महाकायो महाबल ॥ ६१ ॥

किष्किन्धामगमद्राम महामहिषरूपधृक् ।
युद्धाय वालिन रात्रौ समाह्वयत भीषण ॥ ६२ ॥

तच्छ्रुत्वासहमानोऽसौ वाली परमकोपन ।
महिष शृङ्गयोर्धृत्वा पातयामास भूतले ॥ ६३ ॥

पादेनैकेन तत्कायमाक्रम्यास्य शिरो महत् ।
हस्ताभ्या भ्रामयश्छित्त्वा तोलयित्वाक्षिपद्भुवि ॥ ६४ ॥

पपात तच्छिरो राम मातङ्गाश्रमसन्निधौ ।
योजनात्पतित तस्मान्मुनेराश्रममण्डले ॥ ६५ ॥

रक्तवृष्टि पपातोच्चैर्दृष्ट्वा ता क्रोधमूर्च्छित ।
मातङ्गो वालिन प्राह यद्यागन्तासि मे गिरिम् ॥ ६६ ॥

इत पर भग्नशिरा मरिष्यसि न सशय ।
एव शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूक न यात्यसौ ॥ ६७ ॥

एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्र वसामि भयवर्जित ।
राम पश्य शिरस्तस्य दुन्दुभे पर्वतोपमम् ॥ ६८ ॥

तत्क्षेपणे यदा शक्त शक्तस्त्व वालिनो वधे ।
इत्युक्त्वा दर्शयामास शिरस्तद्गिरिसन्निभम् ॥ ६९ ॥

दृष्ट्वा राम स्मित कृत्वा पादाङ्गुष्ठेन चाक्षिपत् ।
दशयोजनपर्यन्त तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७० ॥

कुछ चैन मिला है।'' तब कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीने सखा सुग्रीवके दु खसे आतुर होकर उसके सामने प्रतिज्ञा की कि ''मै बहुत ही शीघ्र तुम्हारी पत्नीको छीननेवाले तुम्हारे शत्रुका नाश कर डालूँगा'' ॥ ५७—५९ ॥

सुग्रीवने कहा—''हे राजेन्द्र। वाली सम्पूर्ण योद्धाओमे अग्रणी है (वह कोई साधारण बलवाला नही है)। उसको पराजित करना देवताओके लिये भी अति कठिन है। फिर आप उसे कैसे मार सकेगे ? ॥ ६० ॥ हे वीरश्रेष्ठ। सुनिय, मै आपको उसके बलका वृनान्त सुनाता हूँ। एक बार दुन्दुभि नामका एक बडा बलवान् और स्थूलकाय दैत्य किष्किन्धापुरीमे भैसेका रूप बनाकर आया और उस महाभयानक असुरने रात्रिके समय वालीको युद्धके लिये ललकारा ॥ ६१-६२ ॥ उसकी गर्जना वालीको सहन न हुई और उसने अति क्रोधपूर्वक उस भैसेके सीग पकडकर उसे पृथिवीपर पटक दिया ॥ ६३ ॥ तथा अपने एक पैरसे उसके शरीरको दबाकर उसके महान् मस्तकको अपने हाथोसे मरोडकर तोड डाला और उसे उछालकर पृथिवीपर दूर फेक दिया ॥ ६४ ॥ हे राम। वह फिर वहाँसे एक योजन दूर मुनियोके आश्रममण्डलमे महर्षि मतगके आश्रमके पास जाकर गिरा ॥ ६५ ॥ उससे जहाँ-तहाँ बहुत-सा रक्त बरसा। उसे देखकर मुनिवर मतगको बडा क्रोध हुआ और उन्होने क्रोधमे भरकर वालीसे कहा—'यदि आजसे तुम कभी मेरे इस पर्वतपर आओगे तो निस्सन्देह तुम्हारा सिर फट जायगा और तुम मर जाओगे।' हे रामजी। मुनिके इस प्रकार शाप देनेसे ही वह तबसे ऋष्यमूक-पर्वतपर नही आता ॥ ६६-६७ ॥ ऐसा जानकर ही मै यहाँ निर्भय होकर रहता हूँ। हे राम। (जिसे वालीने मारा था) आप जरा उस दुन्दुभि दैत्यके पर्वताकार सिरको तो देखिये (इसीसे आपको उसके बलका कुछ अनुमान हो जायगा) ॥ ६८ ॥ यदि आप उस मस्तकको फेक सकेगे तो अवश्य वालीका वध भी कर सकेगे।''

ऐसा कहकर सुग्रीवने वह पर्वत-सदृश सिर दिखलाया ॥ ६९ ॥ उसे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकराते हुए अपने पैरके अँगूठेसे उसे दस योजन दूर फेक दिया। यह बडे आश्चर्यकी बात हुई ॥ ७० ॥

साधु साध्विति सम्प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभि सह ।
पुनरप्याह सुग्रीवो राम भक्तपरायणम् ॥ ७१ ॥

एते ताला महासारा सप्त पश्य रघूत्तम ।
एकैक चालयित्वासौ निष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ॥ ७२ ॥

यदि त्वमेकबाणेन विद्ध्वा छिद्र करोषि चेत् ।
हतस्त्वया तदा वाली विश्वासो मे प्रजायते ।
तथेति धनुरादाय सायक तत्र सन्दधे ॥ ७३ ॥

बिभेद च तदा राम सप्त तालान्महाबल ।
तालान्सप्त विनिर्भिद्य गिरि भूमि च सायक ॥ ७४ ॥

पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववत्स्थित ।
ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मित ॥ ७५ ॥

देव त्व जगता नाथ परमात्मा न सशय ।
मत्पूर्वकृतपुण्यौघै सङ्गतोऽद्य मया सह ॥ ७६ ॥

त्वा भजन्ति महात्मान ससारविनिवृत्तये ।
त्वा प्राप्य मोक्षसचिव प्रार्थयेऽह कथ भवम् ॥ ७७ ॥

दारा पुत्रा धन राज्य सर्व त्वन्मायया कृतम् ।
अतोऽह देवदेवेश नाकाङ्क्षेऽन्यत्प्रसीद मे ॥ ७८ ॥

आनन्दानुभव त्वाद्य प्राप्तोऽह भाग्यगौरवात् ।
मृदर्थ यतमानेन निधानमिव सत्पते ॥ ७९ ॥

अनाद्यविद्यासंसिद्ध बन्धन छिन्नमद्य न ।
यज्ञदानतप कर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥ ८० ॥

न जीर्यते पुनर्दार्ढ्य भजते ससृति प्रभो ।
त्वत्पाददर्शनात्सद्यो नाशमेति न सशय ॥ ८१ ॥

क्षणार्धमपि यच्चित्त त्वयि तिष्ठत्यचञ्चलम् ।
तस्याज्ञानमनर्थाना मूल नश्यति तत्क्षणात् ॥ ८२ ॥

तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा ॥ ८३ ॥

अपने मन्त्रियोके सहित सुग्रीव भी 'वाह ! वाह !' करने लगे और फिर वह भक्तोके एकमात्र आश्रय भगवान् रामसे बोले— ॥ ७१ ॥ "हे रघुश्रेष्ठ ! देखिये, तालके ये सात वृक्ष कैसे सुदृढ है, किन्तु वाली इनमेसे प्रत्येकको हिलाकर अनायास ही पत्रहीन (बेपत्तेके) कर दिया करता है ॥ ७२ ॥ यदि आप एक बाणसे ही इन सबको बेधकर इनमे छिद्र कर देगे तो मुझे यह विश्वास हो जायगा कि आप अवश्य ही वालीको मार डालेगे ।"

तब महाबली रघुनाथजीने 'बहुत अच्छा' कह अपना धनुष लेकर उसपर बाण चढाया और उन सातो ताल-वृक्षोको बेध दिया । तत्पश्चात् वह बाण सातो ताल, पर्वत और पृथ्वीको बेधकर पहलेके समान फिर आकर रामचन्द्रजीके तरकशमे स्थित हो गया ।

तब सुग्रीवने आश्चर्यचकित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे अत्यन्त हर्षके साथ कहा— ॥ ७३—७५ ॥ "हे देव ! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी साक्षात् परमात्मा है—इसमे सन्देह नही । मेरे पूर्वकृत पुण्य-पुञ्जके परिपाकसे ही आज आपसे मेरा सयोग हुआ है ॥ ७६ ॥ महात्मा लोग ससार-बन्धनकी निवृत्तिके लिये आपका भजन करते है, फिर आप मोक्षदायक प्रभुको पाकर मै सासारिक पदार्थोकी कामना कैसे करूँ ? ॥ ७७ ॥ हे देवदेवेश्वर ! ये स्त्री, पुत्र, धन, राज्य आदि सभी आपकी मायाके कार्य है। अत अब आपके अतिरिक्त और किसी पदार्थकी मुझे इच्छा नही है, आप मुझपर कृपा कीजिये ॥ ७८ ॥ हे सत्पते ! आप आनन्दस्वरूप है। मिट्टी खोदते हुए जैसे किसीको खजाना हाथ लग जाय उसी प्रकार आज बड भाग्यसे मुझे आपके दर्शन हुए है ॥ ७९ ॥ आज हमारा अनादि अविद्याजन्य बन्धन कट गया। हे प्रभो ! यह ससार-बन्धन यज्ञ, दान, तप तथा इष्टापूर्त आदि कर्मोसे भी नही टूटता बल्कि और दृढ हो जाता है । किन्तु आपके चरणकमलोका दर्शन करते ही यह तुरत नष्ट हो जाता है—इसमे सन्देह नही ॥ ८०-८१ ॥ जिसका चित्त आपके स्वरूपमे आधे क्षणके लिये भी निश्चल होकर सलग्न हो जाता है, उसका सम्पूर्ण अनर्थोका मूलकारण अज्ञान तत्काल नष्ट हो जाता है । अत हे राम ! मेरा मन सदा आपहीमे लगा रह, वह आपको छोडकर और कही

रामरामेति यद्वाणी मधुर गायति क्षणम्।
स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकै ॥ ८४ ॥

न काङ्क्षे विजय राम न च दारसुखादिकम्।
भक्तिमेव सदाकाङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ॥ ८५ ॥

त्वन्मायाकृतससारस्त्वदशोऽह रघूत्तम।
स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मा भवसङ्कटात् ॥ ८६ ॥

पूर्व मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतस।
आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव ॥ ८७ ॥

सर्व ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्र क्व च मे रिपु।
यावत्त्वन्मायया बद्धस्ताव द्गुणविशेषता ॥ ८८ ॥

सा यावदस्ति नानात्व तावद्भवति नान्यथा।
यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृत भयम् ॥ ८९ ॥

अतोऽविद्यामुपास्ते य सोऽन्धे तमसि मज्जति।
मायामूलमिद सर्व पुत्रदारादिबन्धनम्।

तदुत्सारय माया त्व दासीं तव रघूत्तम ॥ ९० ॥

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्ति-
स्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे
त्वदङ्गसङ्ग लभता मदङ्गम् ॥ ९१ ॥

त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरु च चक्षु
पश्यत्वजस्र स शृणोति कर्ण।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्म
व्रजत्वजस्र तव मन्दिराणि ॥ ९२ ॥

अङ्गानि ते पादरजोविमिश्र-
तीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो।
शिरस्त्वदीय भवपद्मजाद्यै-
र्जुष्ट पद राम नमत्वजस्रम् ॥ ९३ ॥

भी न जाय ॥ ८२-८३ ॥ जिसकी वाणी एक क्षण भी 'राम-राम' ऐसा सुमधुर गान करती है, वह ब्रह्मघाती अथवा मद्यपी भी क्यो न हो, समस्त पापोसे छूट जाता है ॥ ८४ ॥ हे राम! अब मुझे वालीको जीतने अथवा स्त्री आदिका सुख प्राप्त करनेकी इच्छा नही है। मै तो ससार-बन्धनको काटनेवाली आपकी भक्ति ही चाहता हूँ॥ ८५॥ हे रघुश्रेष्ठ! यह ससार आपकी मायाका विलास है और मै भी आपहीका अश हूँ। अत अपने चरणकमलोकी भक्ति देकर मुझे इस ससार-सकटसे बचाइये ॥ ८६ ॥ पहले, जब मेरा चित्त आपकी मायासे ढँका हुआ था, मुझे अपने शत्रु-मित्र और उदासीन दिखायी देते थे। किन्तु हे रघुनाथजी! अब आपके चरणकमलोका दर्शन पाते ही मुझे सब कुछ ब्रह्मरूप ही भासता है। प्रभो! ससारमे मेरा कौन मित्र है और कौन शत्रु? जबतक जीव आपकी मायासे बँधा रहता है तभीतक उसपर सत्त्वादि गुणोका प्रभाव पडता रहता है ॥ ८७-८८ ॥ जबतक मायाका प्रभाव रहता है तभीतक शत्रु-मित्रादि भेद-भाव रहता है। उसके दूर होते ही समस्त भेद-भाव दूर हो जाता है। और जबतक यह अज्ञानजन्य भेद-भाव रहता है तभीतक मृत्युका भय है॥ ८९ ॥ इसलिये जो पुरुष अविद्याकी उपासना करता है (अर्थात् अविद्याजन्य पदार्थोंकी कामना करता है) वह घोर अन्धकारमे पडता है। ये पुत्र-स्त्री आदि सम्पूर्ण बन्धन मायामय ही है। अत हे रघुश्रेष्ठ! अपनी दासीरूप इस मायाको हमसे दूर कीजिये ॥ ९० ॥ प्रभो! मेरी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणकमलोमे लगी रहे, वाणी आपके नाम-सकीर्तन और कथा-वार्तामे लगी रहे, हाथ आपके भक्तोकी सेवामे लगे रहे और मेरा शरीर (आपके पादस्पर्श आदिके मिससे) सदा आपका अङ्ग-सङ्ग करता रहे ॥ ९१ ॥ मेरे नेत्र सर्वदा आपकी मूर्ति, आपके भक्त और अपने गुरुका दर्शन करते रहे, कान निरन्तर आपके अवतारोकी लीलाओका श्रवण करे और मेरे पैर सदा आपके मन्दिरोकी यात्रा करते रहे ॥ ९२ ॥ हे गरुडध्वज! मेरा शरीर आपकी चरणरजसे युक्त तीर्थोदकको धारण करे और मेरा सिर निरन्तर आपके उन चरणोमे प्रणाम किया करे जिनकी शिव और ब्रह्मा आदि देवगण भी सदैव सेवा करते हैं" ॥ ९३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

साधु साध्विति सम्प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभि सह ।
पुनरप्याह सुग्रीवो राम भक्तपरायणम् ॥ ७१ ॥

एते ताला महासारा सप्त पश्य रघूत्तम ।
एकैक चालयित्वासौ निष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ॥ ७२ ॥

यदि त्वमेकबाणेन विद्ध्वा छिद्र करोषि चेत् ।
हतस्त्वया तदा वाली विश्वासो मे प्रजायते ।
तथेति धनुरादाय सायक तत्र सन्दधे ॥ ७३ ॥

बिभेद च तदा राम सप्त तालान्महाबल ।
तालान्सप्त विनिर्भिद्य गिरि भूमि च सायक ॥ ७४ ॥

पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववत्स्थित ।
ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मित ॥ ७५ ॥

देव त्व जगता नाथ परमात्मा न सशय ।
मत्पूर्वकृतपुण्यौघै सङ्गतोऽद्य मया सह ॥ ७६ ॥

त्वा भजन्ति महात्मान ससारविनिवृत्तये ।
त्वा प्राप्य मोक्षसचिव प्रार्थयेऽह कथ भवम् ॥ ७७ ॥

दारा पुत्रा धन राज्य सर्व त्वन्मायया कृतम् ।
अतोऽह देवदेवेश नाकाङ्क्षेऽन्यत्प्रसीद मे ॥ ७८ ॥

आनन्दानुभव त्वाद्य प्राप्तोऽह भाग्यगौरवात् ।
मृदर्थ यतमानेन निधानमिव सत्पते ॥ ७९ ॥

अनाद्यविद्याससिद्ध बन्धन छिन्नमद्य न ।
यज्ञदानतप कर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥ ८० ॥

न जीर्यते पुनर्दार्ढ्य भजते ससृति प्रभो ।
त्वत्पाददर्शनात्सद्यो नाशमेति न सशय ॥ ८१ ॥

क्षणार्धमपि यच्चित्त त्वयि तिष्ठत्यचञ्चलम् ।
तस्याज्ञानमनर्थाना मूल नश्यति तत्क्षणात् ॥ ८२ ॥

तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा ॥ ८३ ॥

अपने मन्त्रियोके सहित सुग्रीव भी 'वाह ! वाह !' करने लगे और फिर वह भक्तोके एकमात्र आश्रय भगवान् रामसे बोले— ॥ ७१ ॥ "हे रघुश्रेष्ठ ! देखिये, तालके ये सात वृक्ष कैसे सुदृढ है, किन्तु वाली इनमेसे प्रत्येकको हिलाकर अनायास ही पत्रहीन (बेपत्तेके) कर दिया करता है ॥ ७२ ॥ यदि आप एक बाणसे ही इन सबको बेधकर इनमे छिद्र कर देगे तो मुझे यह विश्वास हो जायगा कि आप अवश्य ही वालीको मार डालेगे ।"

तब महाबली रघुनाथजीने 'बहुत अच्छा' कह अपना धनुष लेकर उसपर बाण चढाया और उन सातो ताल-वृक्षोको बेध दिया । तत्पश्चात् वह बाण सातो ताल, पर्वत और पृथ्वीको बेधकर पहलेके समान फिर आकर रामचन्द्रजीके तरकशमे स्थित हो गया ।

तब सुग्रीवने आश्चर्यचकित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे अत्यन्त हर्षके साथ कहा— ॥ ७३—७५ ॥ "हे देव ! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी साक्षात् परमात्मा है—इसमे सन्देह नही । मेरे पूर्वकृत पुण्य-पुञ्जके परिपाकसे ही आज आपसे मेरा सयोग हुआ है ॥ ७६ ॥ महात्मा लोग ससार-बन्धनकी निवृत्तिके लिये आपका भजन करते है, फिर आप मोक्षदायक प्रभुको पाकर मै सासारिक पदार्थोकी कामना कैसे करूँ ? ॥ ७७ ॥ हे देवदेवेश्वर ! ये स्त्री, पुत्र, धन, राज्य आदि सभी आपकी मायाके कार्य हैं। अत अब आपके अतिरिक्त और किसी पदार्थकी मुझे इच्छा नही है, आप मुझपर कृपा कीजिये ॥ ७८ ॥ हे सत्पते ! आप आनन्दस्वरूप है । मिट्टी खोदते हुए जैसे किसीको खजाना हाथ लग जाय उसी प्रकार आज बड भाग्यसे मुझे आपके दर्शन हुए है ॥ ७९ ॥ आज हमारा अनादि अविद्याजन्य बन्धन कट गया । हे प्रभो ! यह ससार-बन्धन यज्ञ, दान, तप तथा इष्टापूर्त आदि कर्मोसे भी नही टूटता बल्कि और दृढ हो जाता है । किन्तु आपके चरणकमलोका दर्शन करते ही यह तुरत नष्ट हो जाता है—इसमे सन्देह नही ॥ ८०-८१ ॥ जिसका चित्त आपके स्वरूपमे आधे क्षणके लिये भी निश्चल होकर सलग्न हो जाता है, उसका सम्पूर्ण अनर्थोका मूलकारण अज्ञान तत्काल नष्ट हो जाता है । अत हे राम ! मेरा मन सदा आपहीमे लगा रहे, वह आपको छोडकर और कही

रामरामेति यद्वाणी मधुर गायति क्षणम् ।
स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकै ॥ ८४ ॥

न काङ्क्षे विजय राम न च दारसुखादिकम् ।
भक्तिमेव सदाकाङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ॥ ८५ ॥

त्वन्मायाकृतससारस्त्वदशोऽह रघूत्तम ।
स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मा भवसङ्कटात् ॥ ८६ ॥

पूर्व मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतस ।
आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव ॥ ८७ ॥

सर्व ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्र क्व च मे रिपु ।
यावत्त्वन्मायया बद्धस्ताव द्गुणविशेषता ॥ ८८ ॥

सा यावदस्ति नानात्व तावद्भवति नान्यथा ।
यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृत भयम् ॥ ८९ ॥

अतोऽविद्यामुपास्ते य सोऽन्धे तमसि मज्जति ।
मायामूलमिद सर्व पुत्रदारादिबन्धनम् ।

तदुत्सारय माया त्व दासीं तव रघूत्तम ॥ ९० ॥
त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्ति-
स्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी ।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे
त्वदङ्गसङ्ग लभता मदङ्गम् ॥ ९१ ॥

त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरु च चक्षु
पश्यत्वजस्र स शृणोति कर्ण ।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्म
व्रजत्वजस्र तव मन्दिराणि ॥ ९२ ॥

अङ्गानि ते पादरजोविमिश्र-
तीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो ।
शिरस्त्वदीय भवपद्मजाद्यै-
र्जुष्ट पद राम नमत्वजस्रम् ॥ ९३ ॥

भी न जाय ॥ ८२-८३ ॥ जिसकी वाणी एक क्षण भी 'राम-राम' ऐसा सुमधुर गान करती है, वह ब्रह्मघाती अथवा मद्यपी भी क्यो न हो, समस्त पापोसे छूट जाता है ॥ ८४ ॥ हे राम ! अब मुझे वालीको जीतने अथवा स्त्री आदिका सुख प्राप्त करनेकी इच्छा नही है। मै तो ससार-बन्धनको काटनेवाली आपकी भक्ति ही चाहता हूँ॥ ८५॥ हे रघुश्रेष्ठ ! यह ससार आपकी मायाका विलास है और मै भी आपहीका अश हूँ। अत अपने चरणकमलोकी भक्ति देकर मुझे इस ससार-सकटसे बचाइये ॥ ८६ ॥ पहले, जब मेरा चित्त आपकी मायासे ढँका हुआ था, मुझे अपने शत्रु-मित्र और उदासीन दिखायी देते थे। किन्तु हे रघुनाथजी ! अब आपके चरणकमलोका दर्शन पाते ही मुझे सब कुछ ब्रह्मरूप ही भासता है। प्रभो ! ससारमे मेरा कौन मित्र है और कौन शत्रु ? जबतक जीव आपकी मायासे बँधा रहता है तभीतक उसपर सत्त्वादि गुणोका प्रभाव पडता रहता है ॥ ८७-८८ ॥ जबतक मायाका प्रभाव रहता है तभीतक शत्रु-मित्रादि भेद-भाव रहता है। उसके दूर होते ही समस्त भेद-भाव दूर हो जाता है। और जबतक यह अज्ञानजन्य भेद-भाव रहता है तभीतक मृत्युका भय है॥ ८९ ॥ इसलिये जो पुरुष अविद्याकी उपासना करता है (अर्थात् अविद्याजन्य पदार्थोकी कामना करता है) वह घोर अन्धकारमे पडता है। ये पुत्र-स्त्री आदि सम्पूर्ण बन्धन मायामय ही है। अत हे रघुश्रेष्ठ ! अपनी दासीरूप इस मायाको हमसे दूर कीजिये ॥ ९० ॥ प्रभो ! मेरी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणकमलोमे लगी रहे, वाणी आपके नाम-सकीर्तन और कथा-वार्तामे लगी रहे, हाथ आपके भक्तोकी सेवामे लगे रहे और मेरा शरीर (आपके पादस्पर्श आदिके मिससे) सदा आपका अङ्ग-सङ्ग करता रहे ॥ ९१ ॥ मेरे नेत्र सर्वदा आपकी मूर्ति, आपके भक्त और अपने गुरुका दर्शन करते रहे, कान निरन्तर आपके अवतारोकी लीलाओका श्रवण करे और मेरे पैर सदा आपके मन्दिरोकी यात्रा करते रहे ॥ ९२ ॥ हे गरुडध्वज ! मेरा शरीर आपकी चरणरजसे युक्त तीर्थोदकको धारण करे और मेरा सिर निरन्तर आपके उन चरणोमे प्रणाम किया करे जिनकी शिव और ब्रह्मा आदि देवगण भी सदैव सेवा करते है'' ॥ ९३ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

★

द्वितीय सर्ग

वालीका वध और भगवान्‌के साथ उसका सम्भाषण

श्रीमहादेव उवाच

इत्थ स्वात्मपरिष्वङ्ग निर्धूताशेषकल्मषम् ।
राम सुग्रीवमालोक्य सस्मित वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

माया मोहकरीं तस्मिन्वितन्वन् कार्यसिद्धये ।
सरवे त्वदुक्त यत्तन्मा सत्यमेव न सशय ॥ २ ॥

किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेव रघुनन्दन ।
कृतवान्कि कपीन्द्राय सख्य कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ३ ॥

इति लोकापवादो मे भविष्यति न सशय ।
तस्मादाह्वय भद्र ते गत्वा युद्धाय वालिनम् ॥ ४ ॥

बाणेनैकेन त हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये ।
तथेति गत्वा सुग्रीव किष्किन्धोपवन द्रुतम् ॥ ५ ॥

कृत्वा शब्द महानाद तमाह्वयत वालिनम् ।
तच्छ्रुत्वा भ्रातृनिनद रोषताम्रविलोचन ॥ ६ ॥

निर्जगाम गृहाच्छीघ्र सुग्रीवो यत्र वानर ।
तमापतन्त सुग्रीव शीघ्र वक्षस्यताडयत् ॥ ७ ॥

सुग्रीवमपि मुष्टिभ्या जघान क्रोधमूर्च्छित ।
वाली तमपि सुग्रीव एव क्रुद्धौ परस्परम् ॥ ८ ॥

अयुद्ध्येतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मित ।
न मुमोच तदा बाण सुग्रीववधशङ्कया ॥ ९ ॥

ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्त भयाकुल ।
वाली स्वभवन यात सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥ १० ॥

किं मा घातयसे राम शत्रुणा भ्रातृरूपिणा ।
यदि मद्धनने वाञ्छा त्वमेव जहि मा विभो ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले— हे पार्वति ! इस प्रकार अपने ससर्गसे जिसके सब पाप दूर हो गये है उस सुग्रीवकी ओर देखते हुए श्रीरघुनाथजी कार्य सिद्ध करनेके लिये उसपर अपनी मोह उत्पन्न करनेवाली मायाका विस्तार करते हुए मुसकराकर बोले—"मित्र ! तुमने मुझसे जो कुछ कहा है वह निस्सन्देह सब ठीक है ॥ १-२ ॥ तथापि (यदि तुम राज्यादिसे उपराम हो जाओगे तो) लोग मेरे लिये कहेगे कि रघुनाथजीने वानरराज सुग्रीवसे अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की, किन्तु उन्होने उसका कौन-सा काम सिद्ध किया ? ॥ ३ ॥ इस प्रकार लोगोमे मेरी निन्दा होगी इसमे सन्देह नहीं। अत तुम्हारा कल्याण हो, तुम अभी जाकर वालीको युद्धके लिये ललकारो ॥ ४ ॥ मै उसे एक ही बाणसे मारकर तुम्हे राजपदपर अभिषिक्त कर दूँगा।" तब सुग्रीव 'बहुत अच्छा' कह तुरत ही किष्किन्धापुरीके उपवनमे गया और अति घोर शब्दसे गरजकर वालीको युद्धके लिये पुकारा।

भाईका सिहनाद सुनते ही वालीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह तत्काल अपने घरसे निकलकर वानरराज सुग्रीवके पास आया। उसके आते ही सुग्रीवने तुरत उसके वक्ष स्थलमे प्रहार किया ॥ ५—७ ॥ इसपर वालीने भी क्रोधातुर होकर सुग्रीवपर अपने दोनो घूँसोसे प्रहार किया और सुग्रीवने वालीपर आक्रमण किया। इस प्रकार वे दोनो ही अति क्रोधपूर्वक एक-दूसरेसे लडने लगे। उन दोनोका रूप ऐसा समान था कि श्रीरामचन्द्रजी उन्हे देखकर आश्चर्य-चकित हो गये (और उनमेसे कौन वाली है तथा कौन सुग्रीव ? यह न पहचान सके)। अत इस आशकासे कि कही सुग्रीव न मारा जाय, बाण नही छोडा ॥ ८-९ ॥

अन्तमे सुग्रीव भयातुर होकर रक्त वमन करता हुआ भागा और वाली अपने घर चला गया। तब सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ १० ॥ "हे राम ! क्या आप इस भ्रातारूपी शत्रुसे मुझे मरवाना चाहते है ? हे प्रभो ! यदि आपकी इच्छा मुझे मरवानेकी ही है तो आप स्वय ही

एव मे प्रत्यय कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम ।
उपेक्षसे किमर्थ मा शरणागतवत्सल ॥ १२ ॥

श्रुत्वा सुग्रीववचन राम साश्रुविलोचन ।
आलिङ्ग्य मा स्म भैषीस्त्व दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ ॥ १३ ॥

मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान्सायक न हि ।
इदानीमेव ते चिह्न करिष्ये भ्रमशान्तये ॥ १४ ॥

गत्वाह्वय पुन शत्रु हत द्रक्ष्यसि वालिनम् ।
रामोऽह त्वा शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपु क्षणात् ॥ १५ ॥

इत्याश्वास्य स सुग्रीव रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम् ॥ १६ ॥

प्रेषयस्व महाभाग सुग्रीव वालिन प्रति ।
लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा गच्छ गच्छेति सादरम् ॥ १७ ॥

प्रेषयामास सुग्रीव सोऽपि गत्वा तथाकरोत् ।
पुनरप्यद्भुत शब्द कृत्वा वालिनमाह्वयत् ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महतावृत ।
बद्ध्वा परिकर सम्यग्गमनायोपचक्रमे ॥ १९ ॥

गच्छन्त वालिन तारा गृहीत्वा निषिषेध तम् ।
न गन्तव्य त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते ॥ २० ॥

इदानीमेव ते भग्न पुनरायाति सत्वर ।
सहायो बलवास्तस्य कश्चिन्नून समागत ॥ २१ ॥

वाली तामाह हे सुभ्रु शङ्का ते व्येतु तद्गता ।
प्रिये कर परित्यज्य गच्छ गच्छामि त रिपुम् ॥ २२ ॥

हत्वा शीघ्र समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत् ।
सहायो यदि सुग्रीवस्ततो हत्वोभय क्षणात् ॥ २३ ॥

मार डालिये ॥ ११ ॥ हे सत्यवादी शरणागतवत्सल रघुनाथजी ! मुझे इस प्रकार विश्वास दिलाकर अब आप मेरी उपेक्षा क्यो करते है ?'' ॥ १२ ॥

सुग्रीवके ये वचन सुनकर रामचन्द्रजीने उसे हृदयसे लगा लिया और नेत्रोमे जल भरकर कहा—''भैया ! डरो मत, तुम दोनोको एक रूप देखकर मैने इस भयसे कि कही मित्रका वध न हो जाय, बाण नही छोडा। अब इस भ्रमको दूर करनेके लिये मै तुम्हारे शरीरमे कोई चिह्न कर दूँगा ॥ १३-१४ ॥ एक बार तुम फिर जाकर अपने शत्रुको पुकारो। अबकी बार तुम वालीको अवश्य मरा हुआ देखोगे। भैया ! मै राम तुम्हारी शपथ करके कहता हूँ कि इस बार मैं अवश्य एक क्षणमे ही तुम्हारे शत्रुको मार डालूँगा'' ॥ १५ ॥

सुग्रीवको इस प्रकार ढाँढस बँधाकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—''लक्ष्मण ! सुग्रीवके गलेमे एक फूले हुए पुष्पोकी माला डाल दो ॥ १६ ॥ और हे महाभाग ! इसे वालीसे लडनेके लिये भेज दो।'' तब लक्ष्मणजीने सुग्रीवके गलेमे पुष्पमाला बाँधकर उससे आदरपूर्वक 'भाई ! जाओ, जाओ' ऐसा कहकर भेज दिया। सुग्रीवने भी वहाँ पहुँचकर पहलेकी भाँति ही फिर बडा विचित्र शब्द करते हुए वालीको पुकारा ॥ १७-१८ ॥

सुग्रीवका शब्द सुनकर वालीको बडा विस्मय और साथ ही अत्यन्त क्रोध हुआ और वह अपनी कमर कसकर चलनेके लिये तैयार हो गया ॥ १९ ॥ जाते समय उसकी स्त्री ताराने उसका हाथ पकडकर रोका और कहा—''देव ! इस समय आप न जाइये, मेरे हृदयमे बडी शङ्का हो रही है ॥ २० ॥ यह अभी-अभी आपसे मार खाकर भागा था, तो भी तुरत ही लौट आया। इससे मालूम होता है कि अवश्य ही इसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है'' ॥ २१ ॥

वालीने कहा—''हे सुन्दर भृकुटिवाली ! तुम इस विषयमे कोई शङ्का न करो। हे प्रिये ! मेरा हाथ छोडकर तुम घर लौट जाओ, मै भी अभी जाकर उस शत्रुको मारकर लौट आता हूँ। उस (अभागे) को भला कौन सहायक मिलेगा ? और यदि कोई होगा भी, तो मै एक क्षणमे ही दोनोको मारकर आ जाऊँगा। हे सुन्दरि ! तुम

द्वितीय सर्ग

वालीका वध और भगवान्‌के साथ उसका सम्भाषण

श्रीमहादेव उवाच

इत्थं स्वात्मपरिष्वङ्गनिर्धूताशेषकल्मषम् ।
रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

माया मोहकरीं तस्मिन्वितन्वन् कार्यसिद्धये ।
सखे त्वदुक्तं यत्तन्मा सत्यमेव न संशयः ॥ २ ॥

किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेव रघुनन्दनः ।
कृतवान्किं कपीन्द्राय सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ३ ॥

इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः ।
तस्मादाह्वय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम् ॥ ४ ॥

बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये ।
तथेति गत्वा सुग्रीवः किष्किन्धोपवनं द्रुतम् ॥ ५ ॥

कृत्वा शब्दं महानादं तमाह्वयत वालिनम् ।
तच्छ्रुत्वा भ्रातृनिनदं रोषताम्रविलोचनः ॥ ६ ॥

निर्जगाम गृहाच्छीघ्रं सुग्रीवो यत्र वानरः ।
तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत् ॥ ७ ॥

सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्च्छितः ।
वाली तमपि सुग्रीव एवं क्रुद्धौ परस्परम् ॥ ८ ॥

अयुद्ध्येतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः ।
न मुमोच तदा वाणं सुग्रीववधशङ्कया ॥ ९ ॥

ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः ।
वाली स्वभवनं यातः सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥ १० ॥

किं मां घातयसे राम शत्रुणा भ्रातृरूपिणा ।
यदि मद्धनने वाञ्छा त्वमेव जहि मां विभो ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—'हे पार्वति! इस प्रकार अपने संसर्गसे जिसके सब पाप दूर हो गये हैं उस सुग्रीवकी ओर देखते हुए श्रीरघुनाथजी कार्य सिद्ध करनेके लिये उसपर अपनी मोह उत्पन्न करनेवाली मायाका विस्तार करते हुए मुसकराकर बोले—"मित्र! तुमने मुझसे जो कुछ कहा है वह निस्सन्देह सब ठीक है॥ १-२॥ तथापि (यदि तुम राज्यादिसे उपराम हो जाओगे तो) लोग मेरे लिये कहेंगे कि रघुनाथजीने वानरराज सुग्रीवसे अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की, किन्तु उन्होंने उसका कौन-सा काम सिद्ध किया? ॥ ३ ॥ इस प्रकार लोगोंमें मेरी निन्दा होगी इसमें सन्देह नहीं। अतः तुम्हारा कल्याण हो, तुम अभी जाकर वालीको युद्धके लिये ललकारो ॥ ४ ॥ मैं उसे एक ही बाणसे मारकर तुम्हें राजपदपर अभिषिक्त कर दूँगा।" तब सुग्रीव 'बहुत अच्छा' कह तुरत ही किष्किन्धापुरीके उपवनमें गया और अति घोर शब्दसे गरजकर वालीको युद्धके लिये पुकारा।

भाईका सिंहनाद सुनते ही वालीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह तत्काल अपने घरसे निकलकर वानरराज सुग्रीवके पास आया। उसके आते ही सुग्रीवने तुरत उसके वक्षःस्थलमें प्रहार किया॥ ५—७॥ इसपर वालीने भी क्रोधातुर होकर सुग्रीवपर अपने दोनों घूँसोंसे प्रहार किया और सुग्रीवने वालीपर आक्रमण किया। इस प्रकार वे दोनों ही अति क्रोधपूर्वक एक-दूसरेसे लड़ने लगे। उन दोनोंका रूप ऐसा समान था कि श्रीरामचन्द्रजी उन्हें देखकर आश्चर्य-चकित हो गये (और उनमेंसे कौन वाली है तथा कौन सुग्रीव? यह न पहचान सके)। अतः इस आशंकासे कि कहीं सुग्रीव न मारा जाय, बाण नहीं छोड़ा॥ ८-९॥

अन्तमें सुग्रीव भयातुर होकर रक्त वमन करता हुआ भागा और वाली अपने घर चला गया। तब सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ १० ॥ "हे राम! क्या आप इस भ्रातारूपी शत्रुसे मुझे मरवाना चाहते हैं? हे प्रभो! यदि आपकी इच्छा मुझे मरवानेकी ही है तो आप स्वयं ही

एव मे प्रत्यय कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम ।
उपेक्षसे किमर्थ मा शरणागतवत्सल ॥ १२ ॥

श्रुत्वा सुग्रीववचन राम साश्रुविलोचन ।
आलिङ्ग्य मा स्म भैषीस्त्व दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ ॥ १३ ॥

मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान्सायक न हि ।
इदानीमेव ते चिह्न करिष्ये भ्रमशान्तये ॥ १४ ॥

गत्वाह्वय पुन शत्रु हत द्रक्ष्यसि वालिनम् ।
रामोऽह त्वा शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपु क्षणात् ॥ १५ ॥

इत्याश्वास्य स सुग्रीव रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम् ॥ १६ ॥

प्रेषयस्व महाभाग सुग्रीव वालिन प्रति ।
लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा गच्छ गच्छेति सादरम् ॥ १७ ॥

प्रेषयामास सुग्रीव सोऽपि गत्वा तथाकरोत् ।
पुनरप्यद्भुत शब्द कृत्वा वालिनमाह्वयत् ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महतावृत ।
बद्ध्वा परिकर सम्यग्गमनायोपचक्रमे ॥ १९ ॥

गच्छन्त वालिन तारा गृहीत्वा निषिषेध तम् ।
न गन्तव्य त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते ॥ २० ॥

इदानीमेव ते भग्न पुनरायाति सत्वर ।
सहायो बलवास्तस्य कश्चिन्नून समागत ॥ २१ ॥

वाली तामाह हे सुभ्रु शङ्का ते व्येतु तद्गता ।
प्रिये कर परित्यज्य गच्छ गच्छामि त रिपुम् ॥ २२ ॥

हत्वा शीघ्र समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत् ।
सहायो यदि सुग्रीवस्ततो हत्वोभय क्षणात् ॥ २३ ॥

मार डालिये ॥ ११ ॥ हे सत्यवादी शरणागतवत्सल रघुनाथजी ! मुझे इस प्रकार विश्वास दिलाकर अब आप मेरी उपेक्षा क्यो करते हैं ?" ॥ १२ ॥

सुग्रीवके ये वचन सुनकर रामचन्द्रजीने उसे हृदयसे लगा लिया और नेत्रोमे जल भरकर कहा—"भैया ! डरो मत, तुम दोनोको एक रूप देखकर मैने इस भयसे कि कही मित्रका वध न हो जाय, बाण नही छोडा। अब इस भ्रमको दूर करनेके लिये मै तुम्हारे शरीरमे कोई चिह्न कर दूँगा ॥ १३-१४ ॥ एक बार तुम फिर जाकर अपने शत्रुको पुकारो। अबकी बार तुम वालीको अवश्य मरा हुआ देखोगे। भैया ! मै राम तुम्हारी शपथ करके कहता हूँ कि इस बार मैं अवश्य एक क्षणमे ही तुम्हारे शत्रुको मार डालूँगा" ॥ १५ ॥

सुग्रीवको इस प्रकार ढाँढस बँधाकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीमे कहा—"लक्ष्मण ! सुग्रीवके गलेमे एक फूले हुए पुष्पोकी माला डाल दो ॥ १६ ॥ और हे महाभाग ! इसे वालीसे लडनेके लिये भेज दो।" तब लक्ष्मणजीने सुग्रीवके गलेमे पुष्पमाला बाँधकर उससे आदरपूर्वक 'भाई ! जाओ, जाओ' ऐसा कहकर भेज दिया। सुग्रीवने भी वहाँ पहुँचकर पहलेकी भाँति ही फिर बडा विचित्र शब्द करते हुए वालीको पुकारा ॥ १७-१८ ॥

सुग्रीवका शब्द सुनकर वालीको बडा विस्मय और साथ ही अत्यन्त क्रोध हुआ और वह अपनी कमर कसकर चलनेके लिये तैयार हो गया ॥ १९ ॥ जाते समय उसकी स्त्री ताराने उसका हाथ पकडकर रोका और कहा—"देव ! इस समय आप न जाइये, मेरे हृदयमे बडी शङ्का हो रही है ॥ २० ॥ यह अभी-अभी आपसे मार खाकर भागा था, तो भी तुरत ही लौट आया। इससे मालूम होता है कि अवश्य ही इसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है" ॥ २१ ॥

वालीने कहा—"हे सुन्दर भृकुटिवाली ! तुम इस विषयमे कोई शङ्का न करो। हे प्रिये ! मेरा हाथ छोडकर तुम घर लौट जाओ, मै भी अभी जाकर उस शत्रुको मारकर लौट आता हूँ। उस (अभागे) को भला कौन सहायक मिलेगा ? और यदि कोई होगा भी, तो मै एक क्षणमे ही दोनोको मारकर आ जाऊँगा। हे सुन्दरि ! तुम

आयास्ये मा शुच शूर कथं तिष्ठेद् गृहे रिपुम् ।
ज्ञात्वाप्याह्वयमानं हि हत्वायास्यामि सुन्दरि ॥ २४ ॥

तारोवाच

मत्तोऽन्यच्छृणु राजेन्द्र श्रुत्वा कुरु यथोचितम् ।
आह मामङ्गदः पुत्रो मृगयायाः श्रुतं वचः ॥ २५ ॥

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दाशरथिः किल ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥ २६ ॥

आगतो दण्डकारण्यं तत्र सीता हृता किल ।
रावणेन सह भ्रात्रा मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥ २७ ॥

आगतो ऋष्यमूकाद्रिं सुग्रीवेण समागतः ।
चकार तेन सुग्रीवः सख्यं चानलसाक्षिकम् ॥ २८ ॥

प्रतिज्ञा कृतवान् रामः सुग्रीवाय सलक्ष्मणः ।
वालिनं समरे हत्वा राजानं त्वां करोम्यहम् ॥ २९ ॥

इति निश्चित्य तौ यातौ निश्चितं शृणु मद्वचः ।
इदानीमेव ते भग्नः कथं पुनरुपागतः ॥ ३० ॥

अतस्त्वं सर्वथा वैरं त्यक्त्वा सुग्रीवमानय ।
यौवराज्येऽभिषिञ्चाशु रामं त्वं शरणं व्रज ॥ ३१ ॥

पाहि मामङ्गदं राज्यं कुलं च हरिपुङ्गव ।
इत्युक्त्वाश्रुमुखी तारा पादयोः प्रणिपत्य तम् ॥ ३२ ॥

हस्ताभ्यां चरणौ धृत्वा रुरोद भयविह्वला ।
तामालिङ्ग्य तदा वाली सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

स्त्रीस्वभावाद्बिभेषि त्वं प्रिये नास्ति भयं मम ।
रामो यदि समायातो लक्ष्मणेन समं प्रभुः ॥ ३४ ॥

तदा रामेण मे स्नेहो भविष्यति न संशयः ।
रामो नारायणः साक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥ ३५ ॥

भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयानघे ।
स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः ॥ ३६ ॥

किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। (मैं इस समय रुक नहीं सकता) शत्रुको बाहरसे युद्धके लिये ललकारता हुआ जानकर कोई शूरवीर अपने घरमें कैसे ठहर सकता है? अतः अब मैं उसे मारकर ही लौटूँगा' ॥ २२—२४ ॥

तारा बोली—हे राजेन्द्र! आप मुझसे कुछ और भी वृत्तान्त सुन लीजिये। उसे सुनकर जो उचित समझें, करें। मुझसे आपके पुत्र अङ्गदने मृगयाके समय (वनमें) सुनी हुई यह बात कही थी ॥ २५ ॥ कि अयोध्याधिपति दशरथनन्दन भगवान् रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीताके सहित दण्डकारण्यमें आये थे। वहाँ उनकी प्रिया सीताको रावण हर ले गया। अब वे अपने भाईके सहित जानकीजीको ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूक-पर्वतपर आकर सुग्रीवसे मिले हैं। वहाँ सुग्रीवने उनसे अग्निको साक्षी कर मित्रता जोड़ी है ॥ २६—२८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित सुग्रीवसे यह प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्धमें वालीको मारकर तुम्हें राजा बना दूँगा ॥ २९ ॥ इसी निश्चयको लेकर वे दोनों भी (उसके साथ) आये हैं, मेरी यह बात सच मानिये, नहीं तो अभी-अभी आपसे मार खाकर भागा हुआ वह कैसे लौट आता? ॥ ३० ॥ इसलिये अब आप सर्वथा सुग्रीवसे वैरभाव छोड़कर उसे ले आइये और उसे तुरंत युवराजपदपर अभिषिक्त कर श्रीरामकी शरणमें जाइये ॥ ३१ ॥ और हे कपिश्रेष्ठ! मेरी, अङ्गदकी तथा इस राज्य और कुलकी रक्षा कीजिये। ऐसा कहकर तारा वालीके चरणोंमें गिर पड़ी। उस समय उसके मुखपर आँसुओंकी धाराएँ बह रही थीं। ॥ ३२ ॥ वह भयसे अधीर होकर अपने हाथोंसे उसके दोनों चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगी।

तब वालीने उसका प्रेमपूर्वक आलिङ्गन कर इस प्रकार कहा ॥ ३३ ॥ "प्रिये! तुम अपने स्त्री-स्वभावसे व्यर्थ डरती हो, मुझे तो भयका कोई भी कारण दिखलायी नहीं देता। यदि लक्ष्मणके सहित प्रभु राम यहाँ आये हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उनसे मेरा प्रेम हो जायगा। हे अनघे! राम तो साक्षात् सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, उन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही अवतार लिया है—यह बात मैंने पहलेसे ही सुन रखी है। वे तो प्रकृति आदिसे परे, सबके आत्मारूप हैं, उनका कोई अपना या पराया पक्ष

आनेष्यामि गृह साध्वि नत्वा तच्चरणाम्बुजम् ।
भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्य सुरेश्वर ॥ ३७ ॥

यदि स्वय समायाति सुग्रीवो हन्मि त क्षणात् ।
यदुक्त यौवराज्याय सुग्रीवस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

कथमाहूयमानोऽह युद्धाय रिपुणा प्रिये ।
शूरोऽह सर्वलोकाना सम्मत शुभलक्षणे ॥ ३९ ॥

भीतभीतमिद वाक्य कथ वाली वदेत्प्रिये ।
तस्माच्छोक परित्यज्य तिष्ठ सुन्दरि वेश्मनि ॥ ४० ॥

एवमाश्वास्य तारा ता शोचन्तीमश्रुलोचनाम् ।
गतो वाली समुद्युक्त सुग्रीवस्य वधाय स ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा वालिनमायान्त सुग्रीवो भीमविक्रम ।
उत्पपात गले बद्धपुष्पमालो मतङ्गवत् ॥ ४२ ॥

मुष्टिभ्या ताडयामास वालिन सोऽपि त तथा ।
अहन्वाली च सुग्रीव सुग्रीवो वालिन तथा ॥ ४३ ॥

राम विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि ।
इत्येव युद्ध्यमानौ तौ दृष्ट्वा राम प्रतापवान् ॥ ४४ ॥

बाणमादाय तूणीरादैन्द्रे धनुषि सन्दधे ।
आकृष्य कर्णपर्यन्तमदृश्यो वृक्षखण्डग ॥ ४५ ॥

निरीक्ष्य वालिन सम्यग्लक्ष्य तद्धृदय हरि ।
उत्ससर्जाशनिसम महावेग महाबल ॥ ४६ ॥

बिभेद स शरो वक्षो वालिन कम्पयन्महीम् ।
उत्पपात महाशब्द मुञ्चन्स निपपात ह ॥ ४७ ॥

तदा मुहूर्त्त नि सज्ञो भूत्वा चेतनमाप स ।
ततो वाली ददर्शाग्रे राम राजीवलोचनम् ।
धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम् ॥ ४८ ॥

बिभ्राण चीरवसन जटामुकुटधारिणम् ।
विशालवक्षस भ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥ ४९ ॥

पीनचार्वायतभुज नवदूर्वादलच्छविम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणाभ्या च पार्श्वयो परिसेवितम् ॥ ५० ॥

नही है ॥ ३४—३६ ॥ हे साध्वी ! मै उनके चरण-कमलोमे प्रणाम कर उन्हे घर ले आऊँगा। वे देवदेवेश्वर भक्तिसे प्राप्त होते है और जो कोई उनका भजन करता है उसीके अनुकूल हो जाते है ॥ ३७ ॥ और यदि अकेला सुग्रीव ही आया है तो उसे मै एक क्षणमे मार डालूँगा। इसके सिवा, तुमने जो उसे युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी बात कही, सो हे शुभलक्षणे प्रिये ! मै सम्पूर्ण लोकोमे माननीय शूरवीर हूँ। भला, शत्रुद्वारा युद्धके लिये पुकारे जानेपर वाली उससे ऐसा अत्यन्त भयपूर्ण वाक्य कैसे कह सकता है ? अत हे सुन्दरि ! तुम निश्चिन्त होकर घर बैठो"॥ ३८—४० ॥

इस प्रकार शोकसे आँसू बहाती हुई ताराको धीरज बँधा, वाली सुग्रीवको मारनेपर उतारू होकर चला ॥ ४१ ॥ वालीको आता देख प्रचण्ड पराक्रमी सुग्रीव गलेमे पुष्पमाला पहने हुए मत्त गजराजके समान उछलने लगा ॥ ४२ ॥ फिर सुग्रीवने अपने घूँसोसे वालीपर और वालीने सुग्रीवपर प्रहार किया। इसी प्रकार परस्पर बारम्बार वाली सुग्रीवपर और सुग्रीव वालीपर मुष्टिकाघात करने लगे ॥ ४३ ॥ युद्ध करते समय सुग्रीवकी दृष्टि रामकी ओर ही लगी हुई थी।

परमप्रतापी श्रीरघुनाथजीने उन दोनोको इस प्रकार लडते देख अपने तरकशसे एक बाण निकालकर अपने ऐन्द्र धनुषपर चढाया और एक वृक्षकी आडमे छिपे-छिपे धनुषको कर्णपर्यन्त तानकर महाबलवान् श्रीहरिने वालीको देख उसके हृदयको ठीक लक्ष्य करके वह वज्रके समान कठोर और महावेगशाली बाण छोड दिया ॥ ४४—४६ ॥ उस बाणने वालीके वक्ष स्थलको बेध डाला। बाणके लगते ही वाली बडा घोर शब्द करता हुआ उछलकर पृथिवीपर गिर पडा। उसके गिरते समय पृथिवी डगमगा उठी ॥ ४७ ॥ उस समय एक मुहूर्त्तके लिये वह सज्ञाशून्य हो गया, पीछे जब उसे चेत हुआ, तब उसने अपने सामने कमलनयन श्रीरघुनाथजीको खडे देखा। वे बाये हाथसे धनुषका सहारा लेकर दाहिनेमे बाण लिये हुए थे तथा शरीरमे चीरवस्त्र और सिरपर जटाओका मुकुट धारण किये थे। उनका विशाल वक्ष स्थल मनोहर वनमालासे विभूषित था ॥ ४८-४९ ॥ भुजाएँ स्थूल, सुन्दर और लम्बी-लम्बी थी, शरीरकी कान्ति नवीन दूर्वादलके समान श्यामवर्ण थी तथा उनके दोनो ओर सुग्रीव और लक्ष्मण उनकी सेवामे खडे थे ॥ ५० ॥

राम राम महाभाग जाने त्वा परमेश्वरम्।
अजानता मया किञ्चिदुक्त तत्क्षन्तुमर्हसि ॥ ६५ ॥

साक्षात्त्वच्छरघातेन विशेषेण तवाग्रत ।
त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभ तव दर्शनम् ॥ ६६ ॥

यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाण पर पदम्।
याति साक्षात्स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुर स्थित ॥ ६७ ॥

देव जानामि पुरुष त्वा श्रिय जानकीं शुभाम्।
रावणस्य वधार्थाय जात त्वा ब्रह्मणार्थितम् ॥ ६८ ॥

अनुजानीहि मा राम यान्त तत्पदमुत्तमम्।
मम तुल्यबले बाले अङ्गदे त्व दया कुरु ॥ ६९ ॥

विशल्य कुरु मे राम हृदय पाणिना स्पृशन्।
तथेति बाणमुद्धृत्य राम पस्पर्श पाणिना।
त्यक्त्वा तद्वानर देहममरेन्द्रोऽभवत्क्षणात् ॥ ७० ॥

वाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो
रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ।
सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्य
प्राप्त पद परमहसगणैर्दुरापम् ॥ ७१ ॥

प्रणाम करके बोला— ॥ ६४ ॥ "हे राम! हे राम! हे महाभाग! मै जान गया, आप साक्षात् परमेश्वर है। अज्ञानवश मै जो कुछ कह गया हूँ उसे आप क्षमा करे ॥ ६५ ॥ हे प्रभो! आपका दर्शन तो बडे-बडे योगियोको भी अत्यन्त दुर्लभ है, बडे भाग्यकी बात है कि मै आपहीके बाणसे विद्ध होकर फिर आपहीके सामने प्राण छोड रहा हूँ ॥ ६६ ॥ मरते समय विवश होकर भी जिनका नाम लेनेमे पुरुष परमपद प्राप्त कर लेता है, वही आप आज इस अन्तिम घडीपर साक्षात् मेरे सामने विराजमान है ॥ ६७ ॥ हे देव! मै यह जानता हूँ कि आप साक्षात् परमपुरुष नारायण है और जानकीजी लक्ष्मी है। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे रावणका वध करनेके लिये ही आपने अवतार लिया है ॥ ६८ ॥ हे राम! अब मै आपके सर्वश्रेष्ठ परमधामको जा रहा हूँ, आप मुझे आज्ञा दीजिये। मेरा बालक अङ्गद मेरे ही समान बलशाली है, उसपर आप दयादृष्टि रखे ॥ ६९ ॥ हे राम! मेरे हृदयको अपने करकमलोसे स्पर्श कर इस बाणको निकाल दीजिये।" तब रामचन्द्रजीने 'अच्छा' कह उसे स्पर्श करते हुए वह बाण निकाल दिया। उसके निकलते ही वाली वानर-शरीर छोडकर इन्द्ररूप हो गया ॥ ७० ॥ हे पार्वति! वाली रघुनाथजीके बाणसे मारा गया था और फिर उसे उनके सुखमय कर-कमलका शीतल स्पर्श भी मिला। अत वह शीघ्र ही अपना वानर-देह छोडकर उस परम श्रेष्ठ पदको प्राप्त हुआ जो और किसीके लिये बहुत ही दुर्लभ है। और तो क्या, महान् परमहसोको भी उसका मिलना अत्यन्त कठिन है ॥ ७१ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

ताराका विलाप, श्रीरामचन्द्रजीका उसे समझाना तथा सुग्रीवका राजपद प्राप्त करना

श्रीमहादेव उवाच

निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना।
दुद्रुवुर्वानरा सर्वे किष्किन्धा भयविह्वला ॥ १ ॥
तारामूचुर्महाभागे हतो वाली रणाजिरे।
अङ्गद परिरक्षाद्य मन्त्रिण परिनोदय ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! परमात्मा रामके द्वारा युद्धमे वालीके मारे जानेपर समस्त वानरगण भयसे व्याकुल होकर किष्किन्धापुरीमे दौडे गये ॥ १ ॥ और तारासे बोले—"हे महाभागे! वानरराज वाली युद्धक्षेत्रमें मारे गये। अब आप राजकुमार अङ्गदकी रक्षा

चतुर्द्वारकपाटादीन् बद्ध्वा रक्षामहे पुरीम्।
वानराणा तु राजानमङ्गद कुरु भामिनि ॥ ३ ॥

निहत वालिन श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता।
अताडयत्स्वपाणिभ्या शिरो वक्षश्च भूरिश ॥ ४ ॥

किमङ्गदेन राज्येन नगरेण धनेन वा।
इदानीमेव निधन यास्यामि पतिना सह ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा त्वरिता तत्र रुदती मुक्तमूर्धजा।
ययौ तारातिशोकार्ता यत्र भर्तृकलेवरम् ॥ ६ ॥

पतित वालिन दृष्ट्वा रक्तै पासुभिरावृतम्।
रुदती नाथनाथेति पतिता तस्य पादयो ॥ ७ ॥

करुण विलपन्ती सा ददर्श रघुनन्दनम्।
राम मा जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया ॥ ८ ॥

गच्छामि पतिसालोक्य पतिर्मामभिकाङ्क्षते।
स्वर्गेऽपि न सुख तस्य मा विना रघुनन्दन ॥ ९ ॥

पत्नीवियोगज दु खमनुभूत त्वयानघ।
वालिने मा प्रयच्छाशु पत्नीदानफल भवेत् ॥ १० ॥

सुग्रीव त्व सुख राज्य दापित वालिघातिना।
रामेण रुमया सार्ध भुङ्क्ष्व सापत्नवर्जितम् ॥ ११ ॥

इत्येव विलपन्तीं ता तारा रामो महामना ।
सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशत ॥ १२ ॥

किं भीरु शोचसि व्यर्थ शोकस्याविषय पतिम्।
पतिस्तवाय देहो वा जीवो वा वद तत्त्वत ॥ १३ ॥

पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्मासरुधिरास्थिमान्।
कालकर्मगुणोत्पन्न सोऽप्यास्तेऽद्यापि ते पुर ॥ १४ ॥

कीजिये और मन्त्रियोको सावधान कर दीजिये ॥ २ ॥ हे भामिनि ! हमलोग चारो द्वारोके किवाड आदि लगाकर नगरकी रक्षा करते है, आप अङ्गदको वानरोका राजा बनाइये ॥ ३ ॥

वालीको मरा हुआ सुनकर तारा शोकसे मूर्च्छित हो गयी और अपने सिर तथा छातीको बारम्बार हाथोसे पीटने लगी ॥ ४ ॥ और बोली, "मुझे अङ्गद, राज्य, नगर और धन आदिसे क्या काम है, मै तो अभी अपने पतिदेवके साथ ही प्राण त्याग करूँगी" ॥ ५ ॥ ऐसा कह वह रोती हुई तुरत ही वहाँ गयी जहाँ उसके पतिका देह पडा हुआ था, उस समय वह अत्यन्त शोकाकुल थी और उसके बाल बिखरे हुए थे ॥ ६ ॥ वहाँ वालीको रक्त और धूलिसे लथपथ पडा देख वह 'हा नाथ ! हा नाथ !' कहकर रोती हुई उसके पैरोपर गिर पडी ॥ ७ ॥

इस प्रकार करुणक्रन्दन करते हुए उसकी दृष्टि श्रीरघुनाथजीपर पडी। (उन्हे देखकर वह बोली—) "राम ! आपने जिस बाणसे वालीको मारा है उसीसे मुझे भी मार डालिये ॥ ८ ॥ जिससे मै तुरत ही पतिलोकको चली जाऊँ, वे मेरी बाट देख रहे होगे क्योकि हे रघुनन्दन ! मेरे बिना उन्हे स्वर्गमे भी चैन नही होगा ॥ ९ ॥ हे अनघ ! पत्नीके वियोगका दु ख आपने अनुभव किया ही है (अत आपको उसकी तीव्रताका अनुमान हो ही सकता है।) इसलिये अब आप मुझे वालीके पास पहुँचा दीजिये। इससे आपको स्त्री-दानका फल मिलेगा ॥ १० ॥ सुग्रीव ! तुम्हे वालीको मारनेवाले रामने राज्य दिला ही दिया है। अब उस निष्कण्टक राज्यको तुम रुमाके साथ सुखपूर्वक भोगो" ॥ ११ ॥

इस प्रकार विलाप करती हुई उस ताराको महामना रामने दयापूर्वक तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर शान्त किया ॥ १२ ॥ वे बोले—"अयि भीरु ! तेरा पति शोक करनेयोग्य नही है, तू उसके लिये व्यर्थ क्यो शोक करती है ? तू विचारकर ठीक-ठीक बता वास्तवमे तेरा पति यह देह है या इसमे रहनेवाला जीव ? (यदि यह देह ही तेरा पति है तो) यह तो जड पञ्चभूतमय एव त्वचा, मास, रुधिर और अस्थियोसे बना हुआ है तथा काल, कर्म और गुणोसे उत्पन्न हुआ है, और वह तो अब भी तेरे सामने पडा है। (फिर उसके लिये शोक क्यो करती

मन्यसे जीवमात्मान जीवस्तर्हि निरामय ।
न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छति ॥ १५ ॥

न स्त्री पुमान्वा षण्ढो वा जीव सर्वगतोऽव्यय ।
एक एवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपक ।
नित्यो ज्ञानमय शुद्ध स कथ शोकमर्हति ॥ १६ ॥

है ?) ॥ १३-१४ ॥ और यदि तू जीवको अपना पति मानती है तो भी तुझे शोक न करना चाहिये, क्योकि वह निर्विकार है। वह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न आता-जाता है ॥ १५ ॥ जीव सर्वव्यापी और अव्यय है, वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुसक कुछ भी नही है बल्कि एक अद्वितीय, आकाशके समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्ध है, फिर वह शोचनीय कैसे हो सकता है ?'' ॥ १६ ॥

तारोवाच

देहोऽचित्काष्ठवद्राम जीवो नित्याश्चिदात्मक ।
सुखदु खादिसम्बन्ध कस्य स्याद्राम मे वद ॥ १७ ॥

तारा बोली—हे राम ! देह तो काष्ठके समान जड है और जीव नित्य तथा चैतन्यस्वरूप है, (उसका नाश हो नही सकता) फिर सुख-दु खादिका सम्बन्ध किससे होता है, यह मुझे बतलाइये ॥ १७ ॥

श्रीराम उवाच

अहङ्कारादिसम्बन्धो यावद्देहेन्द्रियै सह ।
ससारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिन ॥ १८ ॥

मिथ्यारोपितससारो न स्वय विनिवर्तते ।
विषयान्ध्यायमानस्य स्वप्ने मिथ्यागमो यथा ॥ १९ ॥

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्याहङ्कृतेस्तथा ।
ससारोऽपार्थकोऽपि स्याद्रागद्वेषादिसङ्कुल ॥ २० ॥

मन एव हि ससारो बन्धश्चैव मन शुभे ।
आत्मा मन समानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाक् ॥ २१ ॥

यथा विशुद्ध स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपग ।
तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम् ॥ २२ ॥

बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मन ससृतिर्बलात् ।
आत्मा स्वलिङ्ग तु मन परिगृह्य तदुद्भवान् ॥ २३ ॥

कामान् जुषन् गुणैर्बद्ध ससारे वर्ततेऽवश ।
आदौ मनोगुणान् सृष्ट्वा तत कर्माण्यनेकधा ॥ २४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—जबतक देह और इन्द्रियोके साथ 'मै'-'मेरापन' आदिका सम्बन्ध रहता है, तबतक आत्मा और अनात्माके विवेकसे रहित जीवका सुख-दु खादिके भोगरूप ससारसे सम्बन्ध रहता है ॥ १८ ॥ यह ससार आत्मामे मिथ्या ही आरोपित हुआ है तथापि ज्ञानोदयके बिना यह अपने-आप निवृत्त नही होता ? जिस प्रकार विषयोका निरन्तर ध्यान करनेवाले पुरुषको स्वप्नमे अनेक पदार्थ दीखते है, परन्तु वे होते मिथ्या ही है ॥ १९ ॥ अनादि अविद्या और उसके कार्य अहकारके सम्बन्धसे स्थित हुआ यह ससार निरर्थक (अत्यन्त मिथ्या) होते हुए भी राग-द्वेष आदिसे पूर्ण है ॥ २० ॥ हे शुभे ! मन ही ससार है और मन ही बन्धन है। उस अनात्म वस्तु मनके साथ (अन्योन्याध्याससे) एक हो जानेसे ही यह आत्मा तद्गत सुख-दु खादिके बन्धनमे पडता है ॥ २१ ॥ जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे शुक्लवर्ण होनेपर भी लाख आदिके समीप होनेपर उसीके रगकी मालूम होने लगती है, परन्तु वास्तवमे उसमे वह रग नहीं होता ॥ २२ ॥ वैसे ही बुद्धि और इन्द्रिय आदिकी सन्निधिसे आत्माको बलात् ससारकी प्रतीति होती है। आत्मा, अपने लिङ्ग (पहचाननेके साधन) मनको स्वीकार कर उससे प्राप्त होनेवाले विषयोका सेवन करता हुआ उसके राग-द्वेषादि गुणोमे बँधकर विवश हो ससार-चक्रमे फँसा रहता है। पहले वह राग-द्वेषादि मनके गुणोकी रचना करता है और फिर (उनके योगसे) नाना प्रकारके कर्म

शुक्ललोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानत ।
एव कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूतसम्प्लवम् ॥ २५ ॥

सर्वोपसहृतौ जीवो वासनाभि स्वकर्मभि ।
अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशत ॥ २६ ॥

सृष्टिकाले पुन पूर्ववासनामानसै सह ।
जायते पुनरप्येव घटीयन्त्रमिवावश ॥ २७ ॥

यदा पुण्यविशेषेण लभते सङ्गतिं सताम् ।
मद्भक्ताना सुशान्ताना तदा मद्विषया मति ॥ २८ ॥

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा दुर्लभा जायते तत ।
तत स्वरूपविज्ञानमनायासेन जायते ॥ २९ ॥

तदाचार्यप्रसादेन वाक्यार्थज्ञानत क्षणात् ।
देहेन्द्रियमन प्राणाहङ्कृतिभ्य पृथक्स्थितम् ॥ ३० ॥

स्वात्मानुभवत सत्यमानन्दात्मानमद्वयम् ।
ज्ञात्वा सद्यो भवेन्मुक्त सत्यमेव मयोदितम् ॥ ३१ ॥

एव मयोदित सम्यगालोचयति योऽनिशम् ।
तस्य ससारदु खानि न स्पृशन्ति कदाचन ॥ ३२ ॥

त्वमप्येतन्मया प्रोक्तमालोचय विशुद्धधी ।
न स्पृश्यसे दु खजालै कर्मबन्धाद्विमोक्ष्यसे ॥ ३३ ॥

पूर्वजन्मनि ते सुभ्रु कृता मद्भक्तिरुत्तमा ।
अतस्तव विमोक्षाय रूप मे दर्शित शुभे ॥ ३४ ॥

ध्यात्वा मद्रूपमनिशमालोचय मयोदितम् ।
प्रवाहपतित कार्य कुर्वत्यपि न लिप्यसे ॥ ३५ ॥

श्रीरामेणोदित सर्वं श्रुत्वा तारातिविस्मिता ।
देहाभिमानज शोक त्यक्त्वा नत्वा रघूत्तमम् ॥ ३६ ॥

आत्मानुभवसन्तुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह ।
क्षणसङ्गममात्रेण रामेण परमात्मना ॥ ३७ ॥

करता है। वे कर्म शुक्ल (जप, ध्यानादि), लोहित (हिंसामय यज्ञ-यागादि) और कृष्ण (मद्यपानादि पापकर्म) तीन प्रकारके होते है। उन कर्मोंके अनुसार ही उसकी गतियाँ होती है। इस प्रकार यह जीव कर्मोंके वशीभूत होकर प्रलयपर्यन्त आवागमनके चक्रमे पडा रहता है ॥ २३—२५ ॥ प्रलयकालमे सब भूतोका लय हो जानेपर भी अपने कर्ता-भोक्तापनके अभिनिवेशसे यह अपनी वासनाओ और कर्मोंके साथ अनादि अविद्यासे आच्छादित हुआ रहता है ॥ २६ ॥ जब नवीन सृष्टि आरम्भ होती है, तब यह विवश होकर अपनी पूर्व वासनाओसे युक्त मनके सहित घटीयन्त्रके समान फिर उत्पन्न हो जाता है ॥ २७ ॥ जिस समय किसी विशेष पुण्यपरिपाकसे इसे मेरे भक्त और शान्तचित्त महात्माओकी सङ्गति मिलती है उस समय इसका चित्त मेरी ओर लगता है ॥ २८ ॥ उससे मेरी कथा सुननेमे इसकी श्रद्धा होती है, जो बहुत ही दुर्लभ है। मेरी कथा सुननेसे इसको अनायास ही मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है ॥ २९ ॥ उस समय गुरु-कृपाद्वारा तत्त्वमसि आदि महावाक्योके अर्थ-ज्ञानसे तथा स्वय अपने अनुभवसे भी यह अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप अद्वितीय आत्माको देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और अहकारादिसे पृथक् जानकर एक क्षणमे ही तुरत मुक्त हो जाता है। हे तारे! मैने यह वास्तविक सत्य तुझसे कह दिया ॥ ३०-३१ ॥ मेरे कहे हुए इस परमार्थ ज्ञानका जो अहर्निश मनन करता है, उसे सासारिक दु ख कभी स्पर्श नही करते ॥ ३२ ॥ तू भी शुद्धचित्त होकर मेरे इस उपदेशका मनन कर। ऐसा करनेसे क्लेश-कलाप तुझे छू भी न सकेगे और तू कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जायगी ॥ ३३ ॥ हे सुभ्रु! अपने पूर्वजन्ममे तूने मेरी उत्कृष्ट भक्ति की थी, इसीलिये हे सुन्दरि! तुझे मुक्त करनेके लिये मैने अपना दर्शन दिया है ॥ ३४ ॥ तू रात-दिन मेरे रूपका ध्यान करती हुई मेरे उपदेशका मनन कर। ऐसा करनेसे प्रारब्ध-क्रमसे प्राप्त हुए कर्मोको करती हुई भी तू उनसे लिप्त न होगी ॥ ३५ ॥

भगवान् रामका यह अद्भुत उपदेश सुनकर ताराको बडा ही विस्मय हुआ और उसने देहाभिमानजनित शोक छोडकर श्रीरघुनाथजीको प्रणाम किया तथा आत्मानुभवसे सन्तुष्ट होकर वह तत्काल जीवन्मुक्त हो गयी। परमात्मा

अनादिबन्ध निर्धूय मुक्ता सापि विकल्मषा ।
सुग्रीवोऽपि च तच्छ्रुत्वा रामवक्त्रात्समीरितम् ॥ ३८ ॥

जहावज्ञानमखिल स्वस्थचित्तोऽभवत्तदा ।
तत सुग्रीवमाहेद रामो वानरपुङ्गवम् ॥ ३९ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्त साम्परायिकम् ।
कुरु सर्व यथान्याय सस्कारादि ममाज्ञया ॥ ४० ॥

तथेति बलिभिर्मुख्यैर्वानरै परिणीय तम् ।
वालिन पुष्पके क्षिप्त्वा सर्वराजोपचारकै ॥ ४१ ॥

भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मन्त्रिभि सह ।
यूथपैर्वानरै पौरैस्तारया चाङ्गदेन च ॥ ४२ ॥

गत्वा चकार तत्सर्व यथाशास्त्र प्रयत्नत ।
स्नात्वा जगाम रामस्य समीप मन्त्रिभि सह ॥ ४३ ॥

नत्वा रामस्य चरणौ सुग्रीव प्राह हृष्टधी ।
राज्य प्रशाधि राजेन्द्र वानराणा समृद्धिमत् ॥ ४४ ॥

दासोऽह ते पादपद्म सेवे लक्ष्मणवच्चिरम् ।
इत्युक्तो राघव प्राह सुग्रीव सस्मित वच ॥ ४५ ॥

त्वमेवाह न सन्देह शीघ्र गच्छ ममाज्ञया ।
पुरराज्याधिपत्ये त्व स्वात्मानमभिषेचय ॥ ४६ ॥

नगर न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समा सखे ।
आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मण पत्तन तव ॥ ४७ ॥

अङ्गद यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम् ।
अह समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुज ॥ ४८ ॥

वत्स्यामि वर्षदिवसास्ततस्त्व यत्नवान् भव ।
किञ्चित्काल पुरे स्थित्वा सीताया परिमार्गणे ॥ ४९ ॥

साष्टाङ्ग प्रणिपत्याह सुग्रीवो रामपादयो ।
यदाज्ञापयसे देव तत्तथैव करोम्यहम् ॥ ५० ॥

अनुज्ञातश्च रामेण सुग्रीवस्तु सलक्ष्मण ।
गत्वा पुर तथा चक्रे यथा रामेण चोदित ॥ ५१ ॥

रामके क्षणमात्रके सत्सगसे वह अनादि अविद्याके बन्धनको काटकर निष्पाप और मुक्त हो गयी। भगवान्‌के श्रीमुखका वक्तव्य सुनकर सुग्रीवका भी समस्त अज्ञान जाता रहा और वह शान्तचित्त हो गया। तदनन्तर भगवान्‌ने वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे कहा— ॥ ३६—३९ ॥ "हे सुग्रीव ! तुम मेरी आज्ञासे बेटा अङ्गदके द्वारा अपने बडे भाईका जो कुछ शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक कर्म हो वह सब विधिपूर्वक करो" ॥ ४० ॥ तब 'जो आज्ञा' कह मुख्य-मुख्य बलवान् वानरोके साथ वालीके शवको फूलोके विमानपर रखकर समस्त राजोचित उपचारोके सहित भेरी और दुन्दुभि आदिका घोष करते हुए ब्राह्मण, मन्त्रिवर्ग, यूथपति वानरगण, पुरवासी तारा और अङ्गदके साथ उसे ले जाकर सुग्रीवने बडे प्रयत्नसे शास्त्रानुकूल सब सस्कार किये और फिर स्नानादि करके मन्त्रियोके साथ रामके पास लौट आया ॥ ४१—४३ ॥

वहाँ आकर सुग्रीवने प्रसन्नचित्तसे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमे प्रणाम करके कहा—"हे राजराजेश्वर ! वानरोके इस समृद्धिसम्पन्न राज्यका शासन कीजिये ॥ ४४ ॥ मै तो आपका दास हूँ, लक्ष्मणके समान मै भी सदा आपके चरणकमलोकी सेवा करता रहूँगा।"

यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवसे मुसकराते हुए कहा— ॥ ४५ ॥ "सुग्रीव ! मै और तू एक ही है—इसमे किसी प्रकारका सन्देह नही। मेरी आज्ञासे तुम तुरत ही जाकर किष्किन्धाके राजपदपर अपना अभिषेक कराओ ॥ ४६ ॥ हे सखे ! मै चौदह वर्षतक किसी भी नगरमें प्रवेश नही कर सकता, इसलिये तुम्हारे राज्याभिषेकके समय भाई लक्ष्मण तुम्हारे नगरमे आयेगा ॥ ४७ ॥ अङ्गदको तुम आदरपूर्वक यौवराज्यपदपर अभिषिक्त करना। अब मै वर्षाके दिनोमे भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ पास ही पर्वत-शिखरपर रहूँगा, सो तुम कुछ दिन नगरमे रहकर फिर सीताजीकी खोज करानेका प्रयत्न करना ॥ ४८-४९ ॥

तब सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमे साष्टाङ्ग दण्डवत् करके कहा—"भगवन् ! आपकी जैसी आज्ञा होगी मैं वही करूँगा" ॥ ५० ॥ फिर भगवान् रामकी आज्ञा पा सुग्रीव लक्ष्मणजीको साथ लेकर किष्किन्धापुरीमे गये और जैसे-जैसे श्रीरामचन्द्रजीने करनेको कहा था सब

सुग्रीवेण यथान्याय पूजितो लक्ष्मणस्तदा ।
आगत्य राघव शीघ्र प्रणिपत्योपतस्थिवान् ॥ ५२ ॥

कार्य वैसे ही किया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर सुग्रीवसे यथोचित आदर पा लक्ष्मणजी श्रीरघुनाथजीके पास चले आये और उनके चरणोमे प्रणाम कर उनकी सेवामे उपस्थित हो गये ॥ ५२ ॥

ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वित ।
प्रवर्षणगिरेरूर्ध्व शिखर भूरिविस्तरम् ॥ ५३ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी तत्काल ही लक्ष्मणके साथ प्रवर्षण पर्वतके ऊपर अति विस्तीर्ण शिखरपर गये ॥ ५३ ॥

तत्रैक गह्वर दृष्ट्वा स्फाटिक दीप्तिमच्छुभम् ।
वर्षवातातपसह फलमूलसमीपगम् ।
वासाय रोचयामास तत्र राम सलक्ष्मण ॥ ५४ ॥

वहॉ उन्होने स्फटिकमणिकी एक स्वच्छ ओर प्रकाशमान गुफा देखी । उसमे वर्षा, वायु और धूपसे बचनेका सुभीता था तथा पास ही कन्द, मूल और फल भी लगे हुए थे । उसे देखकर श्रीराम और लक्ष्मणने वही रहना पसद किया ॥ ५४ ॥

दिव्यमूलफलपुष्पसयुते
मौक्तिकोपमजलौघपल्वले ।
चित्रवर्णमृगपक्षिशोभिते
पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥ ५५ ॥

तब रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी दिव्य मूल, फल और फूलोसे सम्पन्न, मोतीके समान स्वच्छ जलवाले सरोवरोसे युक्त और चित्र-विचित्र मृग तथा पक्षियोसे सुशोभित उस प्रवर्षण पर्वतपर रहने लगे ॥ ५५ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

भगवान् रामका लक्ष्मणजीसे क्रियायोगका वर्णन करना

श्रीमहादेव उवाच

तत्र वार्षिकदिनानि राघवो
लीलया मणिगुहासु सञ्चरन् ।
पक्वमूलफलभोगतोषितो
लक्ष्मणेन सहितोऽवसत्सुखम् ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! वहॉ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके साथ लीलासे ही मणिमय गुफाओमे विचरते और पके हुए फल-मूल खाकर निर्वाह करते हुए वर्षाके दिनोमे आनन्दपूर्वक रहे ॥ १ ॥

वातनुन्नजलपूरितमेघा-
नन्तरस्तनितवैद्युतगर्भान् ।
वीक्ष्य विस्मयमगाद्गजयूथा-
न्यद्भदाहितसुकाञ्चनकक्षान् ॥ २ ॥

वायुसे प्रेरित सजल मेघोको देखकर, जो अपने भीतर कौधती हुई बिजलीके कारण सुनहरी झूलोसे युक्त हाथियोके झुडके समान प्रतीत होते थे, उन्हे बडा ही विस्मय हुआ करता था ॥ २ ॥

नवघास समास्वाद्य हृष्टपुष्टमृगद्विजा ।
धावन्त परितो राम वीक्ष्य विस्फारितेक्षणा ॥ ३ ॥

नवीन घासके खानेसे हृष्ट-पुष्ट हुए मृग और पक्षिगण जब कभी इधर-उधर दौडते हुए श्रीरामचन्द्रजीको देख लेते तो उनकी ओर टकटकी लगाये रह जाते ॥ ३ ॥

न चलन्ति सदाध्याननिष्ठा इव मुनीश्वरा ।
राम मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु ॥ ४ ॥

और ध्याननिष्ठ मुनीश्वरोके समान इधर-उधर जाना भूलकर जहॉ-के-तहॉ खडे रह जाते । इस समय परमात्मा रामको मनुष्यरूपसे पर्वत और वनोमे विचरते जानकर

चरन्त परमात्मान ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि ।
मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे ॥ ५ ॥

सौमित्रिरेकदा राममेकान्ते ध्यानतत्परम् ।
समाधिविरमे भक्त्या प्रणयाद्विनयान्वित ॥ ६ ॥

अब्रवीदेव ते वाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतो मम ।
अनाद्यविद्यासम्भूत सशयो हृदि सस्थित ॥ ७ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियामार्गेण राघव ।
भवदाराधन लोके यथा कुर्वन्ति योगिन ॥ ८ ॥

इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्तिसाधनम् ।
नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रह्मा कमलसम्भव ॥ ९ ॥

ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणा च मोक्षदम् ।
स्त्रीशूद्राणा च राजेन्द्र सुलभ मुक्तिसाधनम् ।
तव भक्ताय मे भ्रात्रे ब्रूहि लोकोपकारकम् ॥ १० ॥

श्रीराम उवाच

मम पूजाविधानस्य नान्तोऽस्ति रघुनन्दन ।
तथापि वक्ष्ये सङ्क्षेपाद्यथावदनुपूर्वश ॥ ११ ॥

स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्व प्राप्य मानव ।
सकाशात्सद्गुरोर्मन्त्र लब्ध्वा मद्भक्तिसयुत ॥ १२ ॥

तेन सन्दर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधी ।
हृदये वानले वार्चेत्प्रतिमादौ विभावसौ ॥ १३ ॥

शालग्रामशिलाया वा पूजयेन्मामतन्द्रित ।
प्रात स्नान प्रकुर्वीत प्रथम देहशुद्धये ॥ १४ ॥

वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रैर्मृल्लेपनविधानत ।
सन्ध्यादि कर्म यन्नित्य तत्कुर्याद्विधिना बुध ॥ १५ ॥

सङ्कल्पमादौ कुर्वीत सिद्ध्यर्थं कर्मणा सुधी ।
स्वगुरु पूजयेद्भक्त्या मद्बुद्ध्या पूजको मम ॥ १६ ॥

बहुत-से सिद्धगण पृथ्वीपर मृग और पक्षियोके रूपसे सदा उन्हीकी सेवामे रहने लगे ॥ ४-५ ॥

एक दिन एकान्तमे ध्यान करते हुए भगवान् रामसे उनकी समाधि खुलनेपर सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीने अति प्रेम और भक्तिसे नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन् ! आपने मुझे जो उपदेश पहले दिया था उसे मेरे हृदयका अनादि अविद्याजन्य सन्देह तो दूर हो गया है ॥ ६-७ ॥ किन्तु हे राघव ! योगिजन क्रियामार्ग (पूजा-पद्धति) से जिस प्रकार ससारमे आपकी आराधना किया करते है, इस समय मै उसे सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ समस्त योगिजन एव देवर्षि नारद, महर्षि व्यास और कमलयोनि श्रीब्रह्माजी भी इसीको मुक्तिका साधन बतलाते है ॥ ९ ॥ हे राजराजेश्वर ! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णो तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य आदि आश्रमोको मोक्ष देनेवाला यही साधन है और स्त्री तथा शूद्रोकी भी इसी साधनसे सुगमतासे मुक्ति हो सकती है। हे प्रभो ! मैं आपका भक्त और भाई हूँ, अत आप मुझसे इस लोकोपकारी साधनका वर्णन कीजिये" ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे रघुकुलनन्दन लक्ष्मण ! मेरी पूजा-विधिका कोई अन्त नही है तथापि मै क्रमश उसका सक्षेपमे यथावत् वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥ मेरी भक्तिसे सम्पन्न मनुष्य अपनी शाखाके गृह्यसूत्रद्वारा बतलाये गये प्रकारसे (उपनयन-सस्कारके अनन्तर) द्विजत्व प्राप्त कर भक्तिपूर्वक सद्गुरुके पास जाय और उनसे मन्त्र ग्रहण करे ॥ १२ ॥ फिर बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उन गुरुदेवकी बतायी हुई विधिसे अपने हृदयमे, अग्निमे, प्रतिमा आदिमे अथवा सूर्यमे केवल मेरी ही सेवा-पूजा करे ॥ १३ ॥ अथवा सावधान होकर शालग्राम-शिलामे ही मेरी उपासना करे। बुद्धिमान् उपासकको चाहिये कि सबसे पहले देह-शुद्धिके लिये, प्रात काल ही वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रोका उच्चारण करते हुए शरीरमे विधिवत् मृत्तिका आदि लगाकर स्नान करे और फिर नियमानुसार सन्ध्या आदि नित्यकर्म करे ॥ १४-१५ ॥ मेरी पूजा करनेवाला मतिमान् पुरुष कर्मोकी सिद्धिके लिये पहले सकल्प करे और फिर अपने गुरुदेवमे मेरी ही भावना रखकर उनकी

शिलाया स्नपन कुर्यात्प्रतिमासु प्रमार्जनम् ।
प्रसिद्धैर्गन्धपुष्पाद्यैर्मत्पूजा सिद्धिदायिका ॥ १७ ॥

अमायिकोऽनुवृत्त्या मा पूजयेन्नियतव्रत ।
प्रतिमादिष्वलङ्कार प्रियो मे कुलनन्दन ॥ १८ ॥

अग्नौ यजेत हविषा भास्करे स्थण्डिले यजेत् ।
भक्तेनोपहृत प्रीत्यै श्रद्धया मम वार्यपि ॥ १९ ॥

किं पुनर्भक्ष्यभोज्यादि गन्धपुष्पाक्षतादिकम् ।
पूजाद्रव्याणि सर्वाणि सम्पाद्यैव समारभेत् ॥ २० ॥

चैलाजिनकुशै सम्यगासन परिकल्पयेत् ।
तत्रोपविश्य देवस्य सम्मुखे शुद्धमानस ॥ २१ ॥

ततो न्यास प्रकुर्वीत मातृकाबहिरान्तरम् ।
केशवादि तत कुर्यात्तत्त्वन्यास तत परम् ॥ २२ ॥

मन्मूर्तिपञ्जरन्यास मन्त्रन्यास ततो न्यसेत् ।
प्रतिमादावपि तथा कुर्यान्नित्यमतन्द्रित ॥ २३ ॥

कलश स्वपुरो वामे क्षिपेत्पुष्पादि दक्षिणे ।
अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थ मधुपर्कार्थमेव च ॥ २४ ॥

तथैवाचमनार्थं तु न्यसेत्पात्रचतुष्टयम् ।
हृत्पद्मे भानुविमले मत्कला जीवसञ्ज्ञिताम् ॥ २५ ॥

ध्यायेत्स्वदेहमखिल तया व्याप्तमरिन्दम ।
तामेवावाहयेन्नित्य प्रतिमादिषु मत्कलाम् ॥ २६ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यै स्नानवस्त्रविभूषणै ।
यावच्छक्योपचारैर्वा त्वर्चयेन्मामामायया ॥ २७ ॥

विभवे सति कर्पूरकुङ्कुमागरुचन्दनै ।
अर्चयेन्मन्त्रवन्नित्य सुगन्धकुसुमै शुभै ॥ २८ ॥

पूजा करे ॥ १६ ॥ मेरी मूर्ति यदि शिलारूप हो तो स्नान करावे और यदि प्रतिमाकार हो तो केवल मार्जन ही करे। फिर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गन्ध और पुष्प आदिसे पूजा करे। इस प्रकार की हुई मेरी पूजा शीघ्र ही फल देनेवाली होती है ॥ १७ ॥ मनुष्यको सब प्रकारके छल-छिद्र छोडकर गुरुकी बतायी विधिसे नियमबद्ध होकर मेरी पूजा करनी चाहिये। हे कुलनन्दन ! प्रतिमा आदिका शृगार करना मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १८ ॥ यदि अग्निमे पूजा करनी हो तो आहुतिद्वारा करे और यदि सूर्यमे करनी हो तो वेदीमे सूर्यका आकार बनाकर करे। भक्तके द्वारा श्रद्धापूर्वक निवेदन किया हुआ जल भी मेरी प्रसन्नताका कारण होता है ॥ १९ ॥ फिर भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थ और गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पूजा-सामग्रीकी तो बात ही क्या है ? अत पहले पूजाकी सब सामग्री इकट्ठी कर फिर मेरी पूजा आरम्भ करे ॥ २० ॥

(अब जिस प्रकार पूजा करनी चाहिये वह बतलाता हूँ—) पहले क्रमश कुशा, मृगचर्म और वस्त्र बिछाकर आसन बनावे तथा उसपर शुद्धचित्तसे इष्टदेवके सम्मुख बैठे ॥ २१ ॥ तदनन्तर बहिर्मातृका और अन्तर्मातृका न्यास करे तथा केशव, नारायण आदि चौबीस नामोका न्यास करके तत्त्वन्यास करे। उसके पश्चात् [विष्णुपञ्जरोक्त विधिसे] मेरी मूर्तिमे पञ्जरन्यास तथा मन्त्रन्यास करे। मेरी प्रतिमा आदिमे भी निरालस्य-भावसे उसी प्रकार न्यास करना चाहिये ॥ २२-२३ ॥ तथा अपने सामने बायीं ओर कलश और दायी ओर पुष्प आदि सामग्री रखे, उसी तरह अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क और आचमनके लिये चार पात्र रखे। तत्पश्चात् अपने सूर्यके समान तेजस्वी हृदय-कमलमे जीवनाम्नी मेरी कलाका ध्यान करे और हे शत्रुदमन ! अपने सम्पूर्ण शरीरको उससे व्याप्त देखे तथा प्रतिमा आदिका पूजन करते समय भी उन [प्रतिमा आदि] मे उस जीवकलाका ही आवाहन करे ॥ २४—२६ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण आदिसे अथवा जो कुछ सामग्री मिल सके उसीसे, निष्कपट होकर मेरी पूजा करे ॥ २७ ॥ यदि धनवान् हो तो नित्यप्रति कर्पूर, कुकुम, अगरु, चन्दन और अत्युत्तम सुगन्धित पुष्पोसे मन्त्रोच्चारण करता हुआ मेरी

दशावरणपूजा वै ह्यागमोक्ता प्रकारयेत्।
नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरै ॥ २९ ॥

श्रद्धयोपहरेन्नित्य श्रद्धाभुगहमीश्वर ।
होम कुर्यात्प्रयत्नेन विधिना मन्त्रकोविद ॥ ३० ॥

अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तम ।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुसूक्तेनाथवा बुध ॥ ३१ ॥

अथवौपासनाग्नौ वा चरुणा हविषा तथा।
तप्तजाम्बूनदप्रख्य दिव्याभरणभूषितम् ॥ ३२ ॥

ध्यायेदनलमध्यस्थ होमकाले सदा बुध ।
पार्षदेभ्यो बलि दत्त्वा होमशेष समापयेत् ॥ ३३ ॥

ततो जप प्रकुर्वीत ध्यायेन्मा यतवाक् स्मरन्।
मुखवास च ताम्बूल दत्त्वा प्रीतिसमन्वित ॥ ३४ ॥

मदर्थे नृत्यगीतादि स्तुतिपाठादि कारयेत्।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ हृदये मा निधाय च ॥ ३५ ॥

शिरस्याधाय मद्दत्त प्रसाद भावनामयम्।
पाणिभ्या मत्पदे मूर्ध्नि गृहीत्वा भक्तिसयुत ॥ ३६ ॥

रक्ष मा घोरससारादित्युक्त्वा प्रणमेत्सुधी ।
उद्वासयेद्यथापूर्व प्रत्यग्ज्योतिषि सस्मरन् ॥ ३७ ॥

एवमुक्तप्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि।
इहामुत्र च ससिद्धि प्राप्नोति मदनुग्रहात् ॥ ३८ ॥

मद्भक्तो यदि मामेव पूजा चैव दिने दिने।
करोति मम सारूप्य प्राप्नोत्येव न सशय ॥ ३९ ॥

इद रहस्य परम च पावन
मयैव साक्षात्कथित सनातनम्।
पठत्यजस्र यदि वा शृणोति य
स सर्वपूजाफलभाङ् न सशय ॥ ४० ॥

पूजा करे॥ २८॥ तथा नीराजन (पाँच बत्तियोकी आरती), धूप, दीप और नाना प्रकारके नैवेद्योद्वारा वेदोक्त दशावरण-पूजा-विधिस मेरा अर्चन करे ॥ २९ ॥

नित्यप्रति अति श्रद्धाके साथ सब पदार्थ निवेदन करे, क्योकि मै परमात्मा श्रद्धाका ही भूखा हूँ। मन्त्रविधिको जाननेवाला उपासक पूजाके अनन्तर विधिपूर्वक हवन करे॥ ३०॥ शास्त्रविधिके जाननेवाल बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि अगस्त्य मुनिकी बतायी हुई विधिसे कुण्ड बनाकर उसमे गुरुके दिये हुए मूलमन्त्रसे अथवा पुरुषसूक्तके मन्त्रोसे आहुति छोडे॥ ३१॥ अथवा अग्निहोत्रकी अग्निमे ही चरु तथा हविसे हवन करे। हवन करते समय बुद्धिमान् याजक होमाग्निमे 'तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले सर्वालकारविभूषित भगवान् यज्ञ-पुरुषके रूपमे' परमात्माका सदा ध्यान करे। और फिर मेरे पार्षदोके लिये बलि देकर होम समाप्त कर दे॥ ३२-३३ ॥

तदनन्तर मौन होकर मेरा ध्यान और स्मरण करता हुआ जप करे। फिर प्रीतिपूर्वक ताम्बूल और मुखवास देकर मेरे लिये नृत्य, गान और स्तुति-पाठ आदि करावे और हृदयमे मेरी मनोहर मूर्तिको धारण कर पृथिवीपर लोटकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करे॥ ३४-३५॥ मेरे दिये हुए भावनामय प्रसादको 'यह भगवत्प्रसाद है' ऐसी भावनासे सिरपर रखे और भक्तिभावसे विभोर हो मेरे चरणोको अपने मस्तकपर रखकर और 'हे प्रभो! इस भयकर ससारसे मुझे बचाओ' ऐसा कहकर मुझे प्रणाम करे, उसके बाद बुद्धिमान् उपासकको चाहिये कि प्रतिमामे आवाहन की हुई जीवकलाको 'वह मुझहीमे प्रवेश कर गयी है' ऐसी भावना करते हुए विसर्जन करे॥ ३६-३७॥

जो पुरुष उपर्युक्त प्रकारसे मेरी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह मेरी कृपासे इहलोक और परलोक दोनो जगह सिद्धि प्राप्त करता है॥ ३८॥ यदि मेरा भक्त इस प्रकार नित्यप्रति पूजा करे तो वह मेरा सारूप्य प्राप्त कर लेता है इसमे सदेह नही॥ ३९॥ यह अति गोपनीय पूजाविधि परम पवित्र और सनातन है। इसे साक्षात् मैने ही अपने मुखसे कहा है। जो पुरुष इसे निरन्तर पढता या सुनता है उसे निस्सन्देह सम्पूर्ण पूजाका फल मिलता है॥ ४०॥

एव परात्मा श्रीराम क्रियायोगमनुत्तमम् ।
पृष्ट प्राह स्वभक्ताय शेषाशाय महात्मने ॥ ४१ ॥

पुन प्राकृतवद्रामो मायामालम्ब्य दु खित ।
हा सीतेति वदन्नैव निद्रा लेभे कथञ्चन ॥ ४२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र किष्किन्धाया सुबुद्धिमान् ।
हनूमान्प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम् ॥ ४३ ॥

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम् ।
रामेण ते कृत पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तम ॥ ४४ ॥

कृतघ्नवत्त्वया नून विस्मृत प्रतिभाति मे ।
त्वत्कृते निहतो वाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मत ॥ ४५ ॥

राज्ये प्रतिष्ठितोऽसि त्व तारा प्राप्तोऽसि दुर्लभाम् ।
स राम पर्वतस्याग्रे भ्रात्रा सह वसन्सुधी ॥ ४६ ॥

त्वदागमनमेकाग्रमीक्षते कार्यगौरवात् ।
त्व तु वानरभावेन स्त्रीसक्तो नावबुद्ध्यसे ॥ ४७ ॥

करोमीति प्रतिज्ञाय सीताया परिमार्गणम् ।
न करोषि कृतघ्नस्त्व हन्यसे वालिवद्द्रुतम् ॥ ४८ ॥

हनूमद्वचन श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वल ।
प्रत्युवाच हनूमन्त सत्यमेव त्वयोदितम् ॥ ४९ ॥

शीघ्र कुरु ममाज्ञा त्व वानराणा तरस्विनाम् ।
सहस्राणि दशेदानीं प्रेषयाशु दिशो दश ॥ ५० ॥

सप्तद्वीपगतान्सर्वान्वानरानानयन्तु ते ।
पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुङ्गवा ॥ ५१ ॥

ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न सशय ।
इत्याज्ञाप्य हनूमन्त सुग्रीवो गृहमाविशत् ॥ ५२ ॥

सुग्रीवाज्ञा पुरस्कृत्य हनूमान्मन्त्रिसत्तम ।
तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन्दश दिश सुधी ॥ ५३ ॥

इस प्रकार अपने अनन्य भक्त शेषावतार महात्मा लक्ष्मणजीके पूछनेपर परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीने इस अत्युत्तम क्रियायोगका उन्हे उपदेश किया ॥ ४१ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायाका अवलम्बन कर साधारण पुरुषोके समान दु खित-से दिखायी देने लगे। वे 'हा सीते ! हा सीते !' कहते हुए सारी रात यो ही बिता देते उन्हे किसी प्रकार नीद न आती ॥ ४२ ॥

इसी समय किष्किन्धापुरीमे परम बुद्धिमान् हनूमान्जी-ने वानरराज सुग्रीवसे एकान्तमे कहा— ॥ ४३ ॥ 'हे राजन् ! सुनिये, मै आपके बडे हितकी बात कहता हूँ। देखिये, श्रीरामचन्द्रजीने पहले आपका कितना बडा उपकार किया है ॥ ४४ ॥ किन्तु मुझे मालूम होता है आप कृतघ्नके समान उसे भूल गये है। अहो ! आपहीके लिये जिन्होने त्रिलोकमान्य वीरवर वालीको मारा और आपको राज्यपदपर बैठाया तथा (जिनकी कृपासे) आपको परम दुर्लभ तारा मिली वे ही बुद्धिमान् भगवान् राम अपने भाईके साथ पर्वत-शिखरपर रहते हुए अपने भारी कार्यके लिये एकाग्रचित्तसे आपके आनेकी बाट देख रहे है। किन्तु आप वानर-स्वभावके अनुसार स्त्री-लम्पट होकर सब कुछ भूल गये ॥ ४५—४७ ॥ आपने सीताजीकी खोजके विषयमे 'मै अवश्य करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके भी अभीतक कुछ नही किया। आप बडे ही कृतघ्न है। मालूम होता है वालीके समान आप भी शीघ्र ही कालके गालमे जायँगे' ॥ ४८ ॥

हनूमान्जीके वचन सुनकर सुग्रीव भयसे विह्वल हो गये और बोले—"हनूमान् ! तुम ठीक ही कहते हो ॥ ४९ ॥ अब तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही दसो दिशाओमे बडे शीघ्रगामी दस सहस्र वानर भेजो ॥ ५० ॥ वे सातो द्वीपोमे रहनेवाले सम्पूर्ण वानरोको यहाँ ले आवे और जितने मुख्य-मुख्य वानर हैं वे सब यहाँ एक पक्षके भीतर आ जायँ ॥ ५१ ॥ जो कोई एक पक्षतक यहाँ न आयेगा वह निस्सन्देह मेरे हाथो मारा जायगा।" हनूमान्जीको इस प्रकार आज्ञा देकर सुग्रीव (फिर) अपने घरमे चले गये ॥ ५२ ॥

सुग्रीवकी आज्ञा पा परम बुद्धिमान् मन्त्रिप्रवर श्रीहनूमान्जीने तत्काल ही बहुत-से वानर दसो दिशाओमे

अगणितगुणसत्त्वान्वायुवेगप्रचारान्
वनचरगणमुख्यान् पर्वताकाररूपान्।
पवनहितकुमार प्रेषयामास दूता-
नतिरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान्॥ ५४॥

भेज दिये॥ ५३॥ जो अगणित गुण और पराक्रमशाली थे तथा वायुके समान वेगवान् और पर्वतके समान स्थूलकाय थे, उन मुख्य-मुख्य वानर दूतोको राम-कार्यके लिये अति उतावले पवननन्दन श्रीहनूमान्‌जीने दान-मानसे सन्तुष्ट कर सब ओर भेज दिया॥ ५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थ सर्ग ॥ ४॥

पञ्चम सर्ग

भगवान् रामका शोक और लक्ष्मणजीका किष्किन्धापुरीमे जाना

श्रीमहादेव उवाच

रामस्तु पर्वतस्याग्रे मणिसानौ निशामुखे।
सीताविरहज शोकमसहन्निदमब्रवीत्॥ १॥

पश्य लक्ष्मण मे सीता राक्षसेन हृता बलात्।
मृतामृता वा निश्चेतु न जानेऽद्यापि भामिनीम्॥ २॥

जीवतीति मम ब्रूयात्कश्चिद्वा प्रियकृत्स मे।
यदि जानामि ता साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा॥ ३॥

हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधे।
प्रतिज्ञा शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा॥ ४॥

नीता त भस्मसात्कुर्या सपुत्रबलवाहनम्।
हे सीते चन्द्रवदने वसन्ती राक्षसालये॥ ५॥

दु खार्त्ता मामपश्यन्ती कथ प्राणान् धरिष्यसि।
चन्द्रोऽपि भानुवद्भाति मम चन्द्रानना विना॥ ६॥

चन्द्र त्व जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मा स्पृश शीतलै।
सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दु खित मा न पश्यति॥ ७॥

राज्य निष्कण्टक प्राप्य स्त्रीभि परिवृतो रह।
कृतघ्नो दृश्यते व्यक्त पानासक्तोऽतिकामुक॥ ८॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! एक दिन प्रदोषकाल (रात्रिके प्रथम भाग) मे प्रवर्षण पर्वतके मणिमय शिखरपर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके विरहजनित सन्तापको सहन न कर सकनेके कारण इस प्रकार बोले—॥ १॥ "लक्ष्मण! देखो, हमारी सीताको राक्षस बलात् हर ले गया, वह सुन्दरी जीवित है या मर गयी—इसका निश्चय करनेके लिये हमे अभीतक कुछ भी पता नही लगा॥ २॥ यदि कोई मुझे यह समाचार सुनावे कि 'वह जीवित है' तो वह मेरा बडा ही उपकार करेगा। यदि मुझे उस साध्वीके जीवित रहनेका पता लग जाय तो फिर वह कही भी क्यो न हो, समुद्रमेसे अमृतके समान मै जैसे होगा वैसे उसे अवश्य ही तुरत ले आऊँगा। भाई! मेरी प्रतिज्ञा सुनो—'जो दुष्ट मेरी जानकीको ले गया है उसे पुत्र, सेना और वाहनोके सहित मै भस्म कर डालूँगा।' हे चन्द्रवदने सीते! मुझे न देखनेसे अत्यन्त दु खातुर होकर राक्षसके घरमे रहती हुई तुम किस प्रकार प्राण धारण करोगी? हा! चन्द्रमुखी सीताके बिना तो मुझे चन्द्रमा भी सूर्यके समान (तापप्रद) जान पडता है॥ ३—६॥ हे चन्द्र! तुम अपनी किरणोसे पहले जानकीको स्पर्श करो, (उनका स्पर्श करनेसे वे शीतल हो जायँगी) फिर उन शीतल किरणोसे मुझे स्पर्श करना। हाय! सुग्रीव भी कैसा निर्दयी हो गया है जो मुझ दु खियाकी ओर नही झाँकता॥ ७॥ अहो! निष्कण्टक राज्य पाकर मद्यपानमे आसक्त हुआ वह कामकिंकर स्त्रियोसे घिरा एकान्तमे पडा रहता है। इससे वह स्पष्ट ही बडा कृतघ्न दीख पडता

नायाति शरद पश्यन्नपि मार्गयितु प्रियाम् ।
पूर्वोपकारिण दुष्ट कृतघ्नो विस्मृतो हि माम् ॥ ९ ॥

हन्मि सुग्रीवमप्येव सपुर सहबान्धवम् ।
वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत् ॥ १० ॥

इति रुष्ट समालोक्य राघव लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
इदानीमेव गत्वाह सुग्रीव दुष्टमानसम् ॥ ११ ॥

मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम् ।
इत्युक्त्वा धनुरादाय स्वय तूणीरमेव च ॥ १२ ॥

गन्तुमभ्युद्यत वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रिय सखा ॥ १३ ॥

किन्तु भीषय सुग्रीव वालिवत्त्व हनिष्यसे ।
इत्युक्त्वा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥ १४ ॥

आगत्य पश्चाद्यत्कार्य तत्करिष्याम्यसशयम् ।
तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितो भीमविक्रम ॥ १५ ॥

किष्किन्धा प्रति कोपेन निर्दहन्निव वानरान् ।
सर्वज्ञो नित्यलक्ष्मीको विज्ञानात्मापि राघव ॥ १६ ॥

सीतामनुशुशोचार्त्त प्राकृत प्राकृतामिव ।
बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिन ॥ १७ ॥

रागादिरहितस्यास्य तत्कार्य कथमुद्भवेत् ।
ब्रह्मणोक्तमृत कर्तु राज्ञो दशरथस्य हि ॥ १८ ॥

तपस फलदानाय जातो मानुषवेषधृक् ।
मायया मोहिता सर्वे जना अज्ञानसयुता ॥ १९ ॥

कथमेषा भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन् ।
कथा प्रथयितु लोके सर्वलोकमलापहाम् ॥ २० ॥

रामायणाभिधा रामो भूत्वा मानुषचेष्टक ।
क्रोध मोह च काम च व्यवहारार्थसिद्धये ॥ २१ ॥

है ॥ ८ ॥ शरदृतुका आगमन देखकर भी वह प्राणप्रिया सीताकी खोज करानेके लिये नही आया। मैने उसका पहले उपकार किया है तथापि वह दुष्ट कृतघ्न होकर मुझे भूल गया ॥ ९ ॥ (जिस प्रकार मुझे सीताको हर ले जानेवालेका नाश करना है) उसी प्रकार मैं सुग्रीवको भी उसके नगर और बन्धु-बान्धवोके सहित मार डालूँगा। जैसे वाली मेरे हाथसे मारा गया वैसे ही आज सुग्रीव भी मारा जायगा" ॥ १० ॥

इस प्रकार रघुनाथजीको क्रुद्ध देखकर लक्ष्मणजी बोले—"हे राम! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मै अभी जाकर दुष्टचित्त सुग्रीवको मारकर आपके पास लौट आता हूँ।" ऐसा कह हाथमे धनुष और तरकश लेकर लक्ष्मणजीको अपने-आप ही जानेके लिये उद्यत देख श्रीरामचन्द्रजी बोले—"वत्स! सुग्रीव मेरा प्यारा मित्र है, तुम उसे मारना मत ॥ ११—१३ ॥ केवल यह कहकर कि 'तू वालीके समान मारा जायगा' उसे डराना और फिर शीघ्र ही उसका उत्तर लेकर आ जाना। उस समय जो कुछ करना होगा मै अवश्य वही करूँगा।"

तब महापराक्रमी लक्ष्मणजी 'बहुत अच्छा' कह तुरत ही किष्किन्धापुरीमे आये। उस समय उन्होने क्रोधसे ऐसा उग्र रूप धारण किया था कि मानो सम्पूर्ण वानरोको भस्म कर डालेगे।

श्रीरघुनाथजी सर्वज्ञ और ज्ञानस्वरूप है। श्रीलक्ष्मीजी सर्वदा उनकी सेवामे रहती है, तथापि साधारण स्त्रीके वियोगसे शोक करते हुए प्राकृत पुरुषके समान वे सीताजीके शोकसे विह्वल हो रहे है। वे प्रभु बुद्धि आदिके साक्षी, मायाके कार्योंसे परे और राग-द्वेष आदि विकारोसे रहित है फिर इन विकारोका कार्यरूप शोक उन्हे कैसे हो सकता है? उन्होने तो ब्रह्माजीकी वाणी सत्य करने और महाराज दशरथको उनकी तपस्याका फल देनेके लिये ही मनुष्यरूपसे अवतार लिया है। 'सब लोग मायासे मोहित होकर अज्ञानके वशीभूत हो गये है, उससे इनका किस प्रकार छुटकारा हो' यह सोचकर भगवान् विष्णु अपनी सकल-लोक-मलापहारिणी रामायण नामकी कथाका लोकमे विस्तार करनेके लिये रामरूप होकर मनुष्यके समान अनेको लीलाएँ करते हुए व्यवहारकी सिद्धिके लिये समयानुकूल क्रोध, मोह और काम आदि विकारोको

तत्तत्कालोचित गृह्णन् मोहयत्यवशा प्रजा ।
अनुरक्त इवाशेषगुणेषु गुणवर्जित ॥ २२ ॥

विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्ति साक्ष्यगुणान्वित ।
अत कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभ ॥ २३ ॥

विन्दन्ति मुनय केचिज्जानन्ति जनकादय ।
तद्भक्ता निर्मलात्मान सम्यग् जानन्ति नित्यदा ।
भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानज ॥ २४ ॥

लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरान्तिकम् ।
ज्याघोषमकरोत्तीव्र भीषयन् सर्ववानरान् ॥ २५ ॥

त दृष्ट्वा प्राकृतास्तत्र वानरा वप्रमूर्धनि ।
चक्रु किलकिलाशब्द धृतपाषाणपादपा ॥ २६ ॥

तान्दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा ।
निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान् ॥ २७ ॥

तत शीघ्र समाप्लुत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम् ॥ २८ ॥

निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तम ।
गत्वा लक्ष्मणसामीप्य प्रणनाम स दण्डवत् ॥ २९ ॥

ततोऽङ्गद परिष्वज्य लक्ष्मण प्रियवर्धन ।
उवाच वत्स गच्छ त्व पितृव्याय निवेदय ॥ ३० ॥

मामागत राघवेण चोदित रौद्रमूर्तिना ।
तथेति त्वरित गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥ ३१ ॥

लक्ष्मण क्रोधताम्राक्ष पुरद्वारि बहि स्थित ।
तच्छ्रुत्वातीव सन्त्रस्त सुग्रीवो वानरेश्वर ॥ ३२ ॥

आहूय मन्त्रिणा श्रेष्ठ हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
गच्छ त्वमङ्गदेनाशु लक्ष्मण विनयान्वित ॥ ३३ ॥

सान्त्वयन्कोपित वीर शनैरानय सादरम् ।
प्रेषयित्वा हनूमन्त तारामाह कपीश्वर ॥ ३४ ॥

स्वीकार करके विकारोके वशीभूत हुई प्रजाको अपनी लीलासे मोहित कर रहे है। किन्तु सम्पूर्ण गुणोमे अनुरक्त-से दिखलायी देते हुए भी वे वास्तवमे उन सबसे रहित है ॥ १४—२२ ॥ वे विज्ञानस्वरूप हे, विज्ञान ही उनकी शक्ति है तथा एकमात्र साक्षी और गुणातीत है। इसलिये वे आकाशके समान काम आदि (मनोविकारो) से सर्वदा अलिप्त है ॥ २३ ॥ उनके वास्तविक स्वरूपको कोई-कोई मुनिजन, जनकादि राजर्षिगण तथा उनके विशुद्धचित्त भक्तजन ही सदा ठीक-ठीक जान पाते है, वे अजन्मा भगवान् भक्तकी भावनाके अनुसार अवतार लेते हैं ॥ २४ ॥

इधर, लक्ष्मणजीने किष्किन्धापुरीके पास पहुँचकर सम्पूर्ण वानरोको भयभीत करते हुए अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका बडा भयकर टकार किया ॥ २५ ॥ उस समय नगरके परकोटेपर चढे हुए कुछ साधारण वानर लक्ष्मणजीको देखकर अपने हाथोमे पत्थर और वृक्षादि लेकर किलकारी मारने लगे। उन वानरोको देखकर वीरवर लक्ष्मणजीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे धनुष चढाकर उनका मूलोच्छेद करनेके लिये तत्पर हुए ॥ २६-२७ ॥

तब लक्ष्मणजीको आये जान वहाँ मन्त्रिवर अङ्गदजी तुरत ही उछलकर आये और उन्होने सब वानरोको रोककर उनके पास जाकर दण्डवत्-प्रणाम किया ॥ २८-२९ ॥ तदनन्तर, प्रियवर्द्धन श्रीलक्ष्मणजीने अङ्गदको हृदयसे लगाकर कहा—"वत्स। तुम अभी जाकर अपने काका सुग्रीवको सूचना दो कि श्रीरघुनाथजी तुमसे अत्यन्त क्रुद्ध है और उनकी प्रेरणासे मै यहाँ आया हूँ।" यह सुनकर अङ्गदने 'बहुत अच्छा' कह तुरत ही सारा समाचार सुग्रीवको जा सुनाया ॥ ३०-३१ ॥ और बोला कि 'लक्ष्मणजी क्रोधसे नेत्र लाल किये बाहर नगरके द्वारपर खडे है।'

यह सुनकर वानरराज सुग्रीवको बडा ही भय हुआ ॥ ३२ ॥ उन्होने मन्त्रिप्रवर हनूमान्‌जीको बुलाकर कहा—"तुम अङ्गदके साथ तुरत ही लक्ष्मणजीके पास जाओ और उन क्रोधित हुए वीरवरको धीरे-धीरे अति विनयपूर्वक शान्त कर आदरपूर्वक अपने साथ यहाँ ले आओ।" इस प्रकार हनूमान्‌जीको भेजकर कपिराज

त्व गच्छ सान्त्वयन्ती त लक्ष्मण मृदुभाषितै ।
शान्तमन्त पुर नीत्वा पश्चाद्दर्शय मेऽनघे ॥ ३५ ॥

भवत्विति ततस्तारा मध्यकक्ष समाविशत् ।
हनूमानङ्गदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम् ॥ ३६ ॥

गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत् ।
एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशङ्कितम् ॥ ३७ ॥

प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ।
यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्व करवाणि भो ॥ ३८ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मण भक्त्या करे गृह्य स मारुति ।
आनयामास नगरमध्याद्राजगृह प्रति ॥ ३९ ॥

पश्यस्तत्र महासौधान् यूथपाना समन्तत ।
जगाम भवन राज्ञ सुरेन्द्रभवनोपमम् ॥ ४० ॥

मध्यकक्षे गता तत्र तारा ताराधिपानना ।
सर्वाभरणसम्पन्ना मदरक्तान्तलोचना ॥ ४१ ॥

उवाच लक्ष्मण नत्वा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ।
एहि देवर भद्र ते साधुस्त्व भक्तवत्सल ॥ ४२ ॥

किमर्थ कोपमाकार्षीर्भक्ते भृत्ये कपीश्वरे ।
बहुकालमनाश्वास दु खमेवानुभूतवान् ॥ ४३ ॥

इदानीं बहुदु खौघाद्भवद्भिरभिरक्षित ।
भवत्प्रसादात्सुग्रीव प्राप्तसौख्यो महामति ॥ ४४ ॥

कामासक्तो रघुपते सेवार्थ नागतो हरि ।
आगमिष्यन्ति हरयो नानादेशगता प्रभो ॥ ४५ ॥

प्रेषितो दशसाहस्रा हरयो रघुसत्तम ।
आनेतु वानरान् दिग्भ्यो महापर्वतसन्निभान् ॥ ४६ ॥

सुग्रीव स्वयमागत्य सर्ववानरयूथपै ।
वधयिष्यति दैत्यौघान् रावण च हनिष्यति ॥ ४७ ॥

सुग्रीवने तारासे कहा— ॥ ३३-३४ ॥ "हे अनघे ! तुम आगे जाकर अपनी मधुर वाणीसे वीरवर लक्ष्मणको शान्त करो और जब वे शान्त हो जायँ तब उन्हे अन्त पुरमे लाकर मुझसे मिलाओ" ॥ ३५ ॥

यह सुनकर तारा 'बहुत अच्छा' कह बीचकी ड्योढीमे आ गयी। इधर अङ्गदके सहित हनूमान्‌जी लक्ष्मणजीके पास आये और उन्हे सिर नवाकर भक्तिपूर्वक स्वागत करते हुए बोले—"हे महाभाग वीरवर ! नि शक होकर आइये, यह घर आपहीका है ॥ ३६-३७ ॥ इसमे पधारकर राजमहिषियोसे और महाराज सुग्रीवसे मिलिये। फिर आपकी जो आज्ञा होगी हम वही करेगे" ॥ ३८ ॥

ऐसा कह पवननन्दन हनूमान्‌जी भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर उन्हे नगरके बीचसे होकर राजमन्दिरको ले चले ॥ ३९ ॥ तब, लक्ष्मणजी मार्गमे जहाँ-तहाँ यूथपति वानरोके महल देखते हुए इन्द्रभवनके समान अति शोभायमान राजभवनमे पहुँचे ॥ ४० ॥ वहाँ बीचकी ड्योढीमे चन्द्रवदना तारा बैठी थी, वह सम्पूर्ण आभूषणोसे विभूषिता थी तथा उसके नेत्र मदसे कुछ अरुणवर्ण हो रहे थे ॥ ४१ ॥

वह मधुरभाषिणी तारा लक्ष्मणजीको प्रणाम कर मुसकराती हुई बोली—"आइये देवर ! आपका शुभ हो ! आप बडे ही साधुस्वभाव और भक्तवत्सल है ॥ ४२ ॥ आपने अपने भक्त और अनुगत वानरराज सुग्रीवपर किस कारण इतना कोप किया ? उसने तो बहुत दिनोसे बिना किसी प्रकारका सहारा मिले दु ख-ही-दु ख भोगा है ॥ ४३ ॥ अब आपलोगोने ही उसे बडे दु ख-समूहसे निकाला है। आपहीकी कृपासे महामति सुग्रीवको यह सुख देखनेमे आया है ॥ ४४ ॥ वह जातिका वानर है, इसलिये कामासक्त होकर श्रीरघुनाथजीकी सेवामे उपस्थित नही हुआ। हे प्रभो ! अब शीघ्र ही विविध देशोसे बहुत-से वानर आनेवाले है ॥ ४५ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! अब दिशा-विदिशाओसे महापर्वतके समान बडे-बडे डीलवाले असख्य वानरोको लानेके लिये दस सहस्र बदर भेजे गये है ॥ ४६ ॥ सुग्रीव स्वय जाकर उन सब वानर-यूथपतियोंके द्वारा दैत्यदलका सहार करावेगा और

त्वयैव सहितोऽद्यैव गन्ता वानरपुङ्गव ।
पश्यान्तर्भवन तत्र पुत्रदारसुहृद्वृतम् ॥ ४८ ॥

दृष्ट्वा सुग्रीवमभय दत्त्वा नय सहैव ते ।
ताराया वचन श्रुत्वा कृशक्रोधोऽथ लक्ष्मण ॥ ४९ ॥

जगामान्त पुर यत्र सुग्रीवो वानरेश्वर ।
रुमामालिङ्ग्य सुग्रीव पर्यङ्के पर्यवस्थित ॥ ५० ॥

दृष्ट्वा लक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपातातिभीतवत् ।
त दृष्ट्वा लक्ष्मण क्रुद्धो मदविह्वलितेक्षणम् ॥ ५१ ॥

सुग्रीव प्राह दुर्वृत्त विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् ।
वाली येन हतो वीर स बाणोऽद्य प्रतीक्षते ॥ ५२ ॥

त्वमेव वालिनो मार्ग गमिष्यसि मया हत ।
एवमत्यन्तपरुष वदन्त लक्ष्मण तदा ॥ ५३ ॥

उवाच हनुमान् वीर कथमेव प्रभाषसे ।
त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽय वानराधिप ॥ ५४ ॥

रामकार्यार्थमनिश जागर्ति न तु विस्मृत ।
आगता परित पश्य वानरा कोटिश प्रभो ॥ ५५ ॥

गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीताया परिमार्गणम् ।
साधयिष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषत ॥ ५६ ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्य सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ।
सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मण समपूजयत् ॥ ५७ ॥

आलिङ्ग्य प्राह रामस्य दासोऽह तेन रक्षित ।
राम स्वतेजसा लोकान् क्षणार्द्धेनैव जेष्यति ॥ ५८ ॥

सहायमात्रमेवाह वानरै सहित प्रभो ।
सौमित्रिरपि सुग्रीव प्राह किञ्चिन्मयोदितम् ॥ ५९ ॥

तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषित मया ।
गच्छामोऽद्यैव सुग्रीव रामस्तिष्ठति कानने ॥ ६० ॥

स्वय रावणका वध करेगा ॥ ४७ ॥ वह कपिश्रेष्ठ आज ही आपके साथ श्रीरघुनाथजीकी सेवामे उपस्थित होगा। चलिये, अन्त पुरमे पधारिये। वहाँ सुग्रीव अपने पुत्र, स्त्री और सुहृद्गणसे घिरा हुआ बैठा है। उससे मिलकर उसे अभयदान दीजिये और अपने साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके पास ले जाइये।''

ताराका कथन सुनकर लक्ष्मणजीका क्रोध ठडा पड गया और वे अन्त पुरमे जहाँ वानरराज सुग्रीव थे, गये। सुग्रीव अपनी भार्या रुमाको गले लगाये पलगपर पडे थे ॥ ४८—५० ॥ लक्ष्मणजीको देखते ही वे अत्यन्त भयभीतके समान उछलकर खडे हो गये। उनके नेत्र मदसे विह्वल हो रहे थे। उन्हे ऐसी दशामे देखकर श्रीलक्ष्मणजीने अति क्रोधित होकर कहा—''अरे दु शील ! तू रघुनाथजीको भूल गया ? (तू नही जानता—) जिस बाणके द्वारा वीरवर वाली मारा गया था वही आज तेरी प्रतीक्षा कर रहा है ॥ ५१-५२ ॥ मालूम होता है, मेरे हाथसे मारा जाकर तू भी वालीके मार्गसे ही जाना चाहता है।''

लक्ष्मणजीको इस प्रकार अति कठोर भाषण करते देख वीरवर हनुमान्जी बोले—''महाराज ! ऐसी बाते क्यो कहते है ? ये वानरराज श्रीरामचन्द्रजीके आपसे भी अधिक भक्त है ॥ ५३-५४ ॥ भगवान् रामके कार्यके लिये ये रात-दिन जागते रहते है। ये उसे भूल नही गये है। प्रभो ! देखिये, ये करोडो वानर इसीलिये सब ओरसे आ रहे है ॥ ५५ ॥ ये सब शीघ्र ही सीताजीकी खोजके लिये जायेगे और महाराज सुग्रीव रामचन्द्रजीका सब कार्य भली प्रकार सिद्ध करेगे'' ॥ ५६ ॥

हनुमान्जीके ये वचन सुनकर लक्ष्मणजी लज्जित हो गये। तदनन्तर सुग्रीवने अर्घ्य और पाद्य आदिसे लक्ष्मणजीकी भली प्रकार पूजा की ॥ ५७ ॥ तथा उनसे गले मिलकर कहा, ''श्रीमन् ! मै तो रामका दास हूँ, उन्हीने मेरी रक्षा की है, वे अपने तेजसे आधे क्षणमे ही सम्पूर्ण लोकोको जीत सकते है ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! मै तो अपनी वानर-सेनाके साथ केवल उनका सहायकमात्र हूँगा। (मुझसे भला उनका क्या कार्य सिद्ध होगा, वे तो स्वय ही सर्वसमर्थ है) ।'' तब लक्ष्मणजीने भी सुग्रीवसे कहा—''हे महाभाग ! मैने भी प्रणय-कोपवश आपसे जो कुछ अनुचित कहा है वह क्षमा करे। भगवान् राम वनमे

एक एवातिदुःखार्त्तो जानकीविरहात्प्रभुः ।
तथेति रथमारुह्य लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ ६१ ॥

वानरैः सहितो राजा राममेवान्वपद्यत ॥ ६२ ॥

भेरीमृदङ्गैर्बहुऋक्षवानरैः
श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः ।
नीलाङ्गदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः
समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः ॥ ६३ ॥

अकेले ही हैं और वे श्रीजानकीजीके विरहसे अति व्याकुल हैं, अतः हम आज ही वहाँ चलेंगे।''

तब वानरराज सुग्रीव 'हाँ ठीक है' ऐसा कहकर लक्ष्मणजीके सहित रथमें चढ़े और वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके पास चले॥ ५९—६२ ॥ उस समय (उनकी सवारीकी अपूर्व शोभा थी—) भेरी और मृदंग आदि नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे तथा बहुत-से रीछ, वानर श्वेत छत्र और चँवर लिये उन्हें अत्यन्त सुशोभित कर रहे थे। इस प्रकार वानरराज सुग्रीव बड़े ठाट-बाटसे नील, अङ्गद और हनूमान् आदि मुख्य-मुख्य वानरोंके साथ श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

सीताजीकी खोज, वानरोंका गुहाप्रवेश और स्वयम्प्रभाचरित्र

श्रीमहादेव उवाच

दृष्ट्वा रामं समासीनं गुहाद्वारि शिलातले ।
चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलिविराजितम्॥ १ ॥

विशालनयनं शान्तं स्मितचारुमुखाम्बुजम् ।
सीताविरहसन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः ॥ २ ॥

रथाद्दूरात्समुत्पत्य वेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
रामस्य पादयोरग्रे पेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥ ३ ॥

रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य पृष्ट्वानामयमन्तिके ।
स्थापयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवित्॥ ४ ॥

ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो भक्तिनम्रधीः ।
देव पश्य समायान्तीं वानराणां महाचमूम्॥ ५ ॥

कुलाचलाद्रिसम्भूता मेरुमन्दरसन्निभाः ।
नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनः पर्वतोपमाः ॥ ६ ॥

असङ्ख्याताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः ।
सर्वे देवांशसम्भूताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! मृगचर्म ओर जटा-मुकुटसे सुशोभित, विशाल-नयन, सस्मित मनोहर मुखारविन्द, शान्तमूर्ति, श्यामशरीर भगवान् रामको सीताजीकी विरह-व्यथासे सन्तप्त होकर मृग ओर पक्षियोंकी ओर निहारते हुए गुफाके द्वारपर एक शिलाखण्डपर बैठे देख सुग्रीव और लक्ष्मण दूरसे ही तुरत रथसे उतर पड़े और अत्यन्त भक्ति-भावसे श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें जा गिरे॥ १—३ ॥ धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको गले लगाकर उनकी कुशल पूछी तथा अपने पास बिठाकर उनका यथोचित सत्कार किया॥ ४ ॥

तब सुग्रीवने भक्तिवश अति विनीत होकर श्रीरघुनाथजीसे कहा—''भगवन्! देखिये, वानरोंकी यह महान् सेना आ रही है॥ ५ ॥ प्रभो! हिमालय आदि कुलपर्वतोंपर उत्पन्न हुए, सुमेरु और मन्दराचलके समान डील-डौलवाले, भिन्न-भिन्न द्वीप, नदीतट और पर्वतोंके ऊपर रहनेवाले तथा पर्वतके समान अगणित विशालकाय वानर आ रहे हैं। ये सभी देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं और युद्ध करनेमें भी अति कुशल हैं॥ ६-७ ॥

अत्र केचिद्गजबला केचिद्दशगजोपमाः ।
गजायुतबला केचिदन्येऽमितबलाः प्रभो ॥ ८ ॥

केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः ।
केचिद्रक्तान्तवदना दीर्घवालास्तथापरे ॥ ९ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशाः केचिद्राक्षससन्निभाः ।
गर्जन्त परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिण ॥ १० ॥

त्वदाज्ञाकारिण सर्वे फलमूलाशना प्रभो ।
ऋक्षाणामधिपो वीरो जाम्बवान्नाम बुद्धिमान ॥ ११ ॥

एष मे मन्त्रिणा श्रेष्ठ कोटिभल्लूकवृन्दप ।
हनूमानेष विख्यातो महासत्त्वपराक्रम ॥ १२ ॥

वायुपुत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमता वर ।
नलो नीलश्च गवयो गवाक्षो गन्धमादन ॥ १३ ॥

शरभो मैन्दवश्चैव गज पनस एव च ।
वलीमुखो दधिमुख सुषेणस्तार एव च ॥ १४ ॥

केसरी च महासत्त्व पिता हनुमतो बली ।
एते ते यूथपा राम प्राधान्येन मयोदिता ॥ १५ ॥

महात्मानो महावीर्या शक्रतुल्यपराक्रमा ।
एते प्रत्येकत कोटिकोटिवानरयूथपा ॥ १६ ॥

तवाज्ञाकारिण सर्वे सर्वे देवाशसम्भवा ।
एष वालिसुत श्रीमानङ्गदो नाम विश्रुत ॥ १७ ॥

वालितुल्यबलो वीरो राक्षसाना बलान्तक ।
एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविता ॥ १८ ॥

योद्धार पर्वताग्रैश्च निपुणा शत्रुघातने ।
आज्ञापय रघुश्रेष्ठ सर्वे ते वशवर्तिन ॥ १९ ॥

राम सुग्रीवमालिङ्ग्य हर्षपूर्णाश्रुलोचन ।
प्राह सुग्रीव जानासि सर्व त्व कार्यगौरवम् ॥ २० ॥

मार्गणार्थं हि जानक्या नियुङ्क्ष्व यदि रोचते ।
श्रुत्वा रामस्य वचन सुग्रीव. प्रीतमानस ॥ २१ ॥

हे प्रभो ! इनमेसे किन्हीमे एक किन्हीमे दस और किन्हीमे दस हजार हाथियोंका बल है तथा किन्हीके बलका तो कोई परिमाण ही नही है ॥ ८ ॥ देखिये कोई कज्जलगिरिके समान काले हैं कोई सुवर्णके समान सुनहरे है, किन्हीका मुख रक्तवर्ण है और किन्हीके शरीरपर बडे-बडे बाल है ॥ ९ ॥ कोई शुद्ध स्फटिकमणिके समान दिखायी देते है और कोई राक्षस-जैसे मालूम पडते हैं । ये सभी वानर युद्धके लिये अति उतावले है, इसीलिये गर्जते हुए इधर-उधर दौड रहे हैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! ये सब आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले और फल-मूल आदि ही खानेवाले हैं। (इनके निर्वाहके लिये आपको कोई चिन्ता नही करनी पडेगी ।) ये रीछोंके अधिपति जाम्बवान बडे ही वीर और बुद्धिमान् है । ये एक करोड भालुओके यूथपति है और मेरे मन्त्रियोमे अग्रगण्य है । अपने महान् बल और पराक्रमके लिये सर्वत्र विख्यात ये परम तेजस्वी पवन-पुत्र हनूमान्जी है । ये बुद्धिमानोमे श्रेष्ठ और मेरे (प्रमुख) मन्त्री हैं । इनके अतिरिक्त हे रामजी ! नल नील गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, मैन्दव गज पनस वलीमुख, दधिमुख, सुषेण तार तथा हनुमान्के पिता महाबली और परम धीर केसरी—ये मेरे प्रधान-प्रधान यूथपति हैं, सो मैंने आपको बता दिये ॥ ११—१५ ॥ ये सब बडे महात्मा, वीर और इन्द्रके समान पराक्रमी है, तथा इनमेसे प्रत्येक करोडो वानरोके यूथका अधिपति है ॥ १६ ॥ ये सभी आपके आज्ञाकारी और देवताओके अंशसे उत्पन्न हुए हैं । ये वालीके पुत्र परम विख्यात श्रीमान् अङ्गदजी है ॥ १७ ॥ ये भी वालीके समान ही बलवान और राक्षसदलका दलन करनेवाले है । इस प्रकार ये सब तथा और भी बहुत-से वानर-वीर आपके लिये प्राण निछावर करनेको उद्यत है ॥ १८ ॥ ये पर्वत-शिखर लेकर लडा करते है और शत्रुका नाश करनेमे बडे कुशल हे । हे रघुश्रेष्ठ ! ये सब आपके अधीन है, आप इन्हे इच्छानुसार आज्ञा दीजिये'' ॥ १९ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने नेत्रोमे आनन्दाश्रु भरकर सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया और कहा—''सुग्रीव ! तुम मेरे कार्यकी कठिनताके विषयमे जानते ही हो ॥ २० ॥ यदि तुम ठीक समझो तो इन्हे यथायोग्य जानकीजीकी खोजके लिये नियुक्त कर दो ।' रामका यह वचन सुनकर

प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभ ।
दिक्षु सर्वासु विविधान्वानरान् प्रेष्य सत्वरम् ॥ २२ ॥

दक्षिणा दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान् ।
युवराज जाम्बवन्त हनूमन्त महाबलम् ॥ २३ ॥

नल सुषेण शरभ मैन्द द्विविदमेव च ।
प्रेषयामास सुग्रीवो वचन चेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम् ।
मासादर्वाङ्निवर्तध्व मच्छासनपुर सरा ॥ २५ ॥

सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्व दिन भवेत् ।
तदा प्राणान्तिक दण्ड मत्त प्राप्स्यथ वानरा ॥ २६ ॥

इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान् भीमविक्रमान् ।
रामस्य पार्श्वे श्रीराम नत्वा चोपविवेश स ॥ २७ ॥

गच्छन्त मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥ २८ ॥

मन्नामाक्षरसयुक्त सीतायै दीयता रह ।
अस्मिन् कार्ये प्रमाण हि त्वमेव कपिसत्तम ।
जानामि सत्त्व ते सर्व गच्छ पन्था शुभस्तव ॥ २९ ॥

एव कपीना राज्ञा ते विसृष्टा परिमार्गणे ।
सीताया अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह ॥ ३० ॥

भ्रमन्तो विन्ध्यगहने ददृशु पर्वतोपमम् ।
राक्षस भीषणाकार भक्षयन्त मृगान् गजान् ॥ ३१ ॥

रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवा ।
जघ्नु किलकिलाशब्द मुञ्चन्तो मुष्टिभि क्षणात् ॥ ३२ ॥

नाय रावण इत्युक्त्वा ययुरन्यन्महद्वनम् ।
तृषार्ता सलिल तत्र नाविन्दन् हरिपुङ्गवा ॥ ३३ ॥

विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।
ददृशुर्गह्वर तत्र तृणगुल्मावृत महत् ॥ ३४ ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने प्रसन्न होकर बहुत-से बलवान् वानरोको सीताकी खोजके लिये भेजा। इस प्रकार तुरत ही समस्त दिशाओमे अनेको वानरोको भेजकर दक्षिण-दिशामे अधिक प्रयत्नके साथ महाबली युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनूमान्, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद आदिको भेजा तथा उनसे इस प्रकार कहा— ॥ २१—२४ ॥ "मेरी आज्ञासे तुम सब लोग बडे प्रयत्नसे शुभलक्षणा जानकीजीकी खोज करो और एक मासके भीतर ही लौट आओ ॥ २५ ॥ यदि सीताको बिना देखे तुम्हे एक माससे एक दिन भी अधिक हो जायगा तो हे वानरो! याद रखो, तुम्हे मेरे हाथसे प्राणान्त-दण्ड भोगना पडेगा" ॥ २६ ॥

उन महापराक्रमी वानरोको इस प्रकार भेजकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीको प्रणामकर उनके पास जा बैठे ॥ २७ ॥ उस समय पवननन्दन हनुमान्‌को जाते देख श्रीरघुनाथजीने कहा—"[हे कपिश्रेष्ठ!] तुम मेरी यह अँगूठी ले जाओ, इसपर मेरे नामाक्षर गुदे हुए है। इसे अपने परिचयके लिये तुम एकान्तमे सीताजीको देना। हे कपिश्रेष्ठ! इस कार्यमे तुम्ही समर्थ हो। मै तुम्हारा बुद्धिबल अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छा, जाओ। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो" ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार वानरराज सुग्रीवके भेजे हुए वे अङ्गदादि वानरगण सीताजीकी खोज करते हुए पृथिवीपर जहाँ-तहाँ विचरने लगे ॥ ३० ॥ घूमते-घूमते उन्होने विन्ध्याचलके गहन वनमे एक पर्वताकार भयकर राक्षस देखा, जो जगलके मृग और हाथियोको पकड-पकडकर खा रहा था ॥ ३१ ॥ कुछ वानरोने यह समझकर कि 'यही रावण है' बडा किलकिला शब्द करते हुए उसे एक क्षणमे ही घूँसोसे मार डाला ॥ ३२ ॥ फिर (उसे इतनी सुगमतासे मरा हुआ देखकर) 'यह रावण नही है' ऐसा कहते हुए वे एक-दूसरे घोर वनमे गये। वहाँ उन्हे बडी प्यास लगी किन्तु जल कही भी दिखायी न देता था ॥ ३३ ॥

उस भयकर वनमे घूमते-घूमते उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये, तब उन्होने वहाँ तृण, गुल्म और लता आदिसे ढँकी हुई एक विशाल गुहा देखी ॥ ३४ ॥ उसमेसे

आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहसान्नि सृतान्ददृशुस्तत ।
अत्रास्ते सलिल नून प्रविशामो महागुहाम् ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयु ।
सर्वे परस्पर धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुका ॥ ३६ ॥

अन्धकारे महद्दूर गत्वापश्यन् कपीश्वरा ।
जलाशयान्मणिनिभतोयान् कल्पद्रुमोपमान् ॥ ३७ ॥

वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् ।
गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥ ३८ ॥

दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषै परिवर्जितान् ।
विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे ॥ ३९ ॥

प्रभया दीप्यमाना तु ददृशु स्त्रियमेककाम् ।
ध्यायन्तीं चीरवसना योगिनीं योगमास्थिताम् ॥ ४० ॥

प्रणेमुस्ता महाभागा भक्त्या भीत्या च वानरा ।
दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूय किमागता ॥ ४१ ॥

कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थान किं प्रधर्षथ ।
तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते ॥ ४२ ॥

अयोध्याधिपति श्रीमान् राजा दशरथ प्रभु ।
तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुत ॥ ४३ ॥

पितुराज्ञा पुरस्कृत्य सभार्य सानुजो वनम् ।
गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना ॥ ४४ ॥

रावणेन ततो राम सुग्रीव सानुजो ययौ ।
सुग्रीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम् ॥ ४५ ॥

मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागता ।
ततो वन विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिण ॥ ४६ ॥

प्रविष्टा गह्वर घोर दैवादत्र समागता ।
त्व वा किमर्थमत्रासि का वा त्व वद न शुभे ॥ ४७ ॥

उन्होने भीगे हुए पखोवाले क्रौञ्च और हसोको निकलते देखा। तब यह कहकर कि 'चलो इस गुहामे चले, इसमे अवश्य जल होगा' सबसे आगे हनुमान्‌जीने उसमे प्रवेश किया, उनके ही पीछे अन्य सब वानर भी एक-दूसरेकी बॉह-मे-बॉह डालकर उत्सुकतापूर्वक उसमे घुस गये ॥ ३५-३६ ॥

बहुत दूरतक अन्धकारहीमे जानेके अनन्तर उन वानरोने देखा कि वहॉ (स्फटिक) मणिके समान स्वच्छ जलसे पूर्ण कई सरोवर है, उनके पास ही पके फलोके भारसे झुके हुए कल्पतरुके समान सुन्दर वृक्ष है जिनमे शहदके छत्ते लगे हुए हैं। पास ही, मणिमय वस्त्रालकारोसे युक्त और दिव्य भक्ष्य-भोज्य आदि सामग्रियोसे पूर्ण सर्वगुणसम्पन्न निर्जन भवन है। उनमेसे एक दिव्य भवनमे उन्होने अति आश्चर्यचकित हो एक रमणीको अकेली सुवर्णसिहासनपर विराजमान देखा। वह सुन्दरी योगाभ्यासमे तत्पर एक योगिनी थी, अपने तेजसे वह उस स्थानको प्रकाशित कर रही थी तथा शरीरपर चीर-वस्त्र धारण किये उस समय ध्यान कर रही थी ॥ ३७—४० ॥

उस महाभागा युवतीको देखकर वानरोने भय और प्रीतिसे उसे प्रणाम किया। तब उस देवीने उनकी ओर देखकर कहा—"तुमलोग क्यो और कहॉसे आये हो ? तुम किसके दूत हो ? तथा मेरे स्थानको क्यो भ्रष्ट कर रहे हो ?" यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—"दवि ! मे आपसे सब वृत्तान्त निवेदन करता हूँ, सुनिये— ॥ ४१-४२ ॥ परम ऐश्वर्यसम्पन्न महाराज दशरथ अयोध्याके अधिपति थे। उनके महाभाग्यशाली ज्येष्ठ पुत्र राम-नामसे विख्यात है ॥ ४३ ॥ वे अपने पिताकी आज्ञा मानकर अपनी भार्या और छोटे भाईके सहित वनमे आये थे, यहॉ उनकी परम साध्वी पत्नीको दुरात्मा रावण हर ले गया। तब वे अपने अनुजके सहित वानरराज सुग्रीवके पास आये। सुग्रीवने उनसे मित्र-भाव हो जानेके कारण हमे यह आज्ञा दी है कि तुमलोग रामकी प्राणप्रियाकी खोज करो। अत हम वहीसे आये है। यहॉ वनमे जानकीको ढूँढते-ढूँढते हमे जलकी आवश्यकता हुई। इससे हम इस भयकर कन्दरामे घुसे और दैवयोगसे यहॉ आ गये। हे शुभे ! आप यहॉ किसलिये रहती है और कौन है ? यह हमे बताइये" ॥ ४४—४७ ॥

प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभ ।
दिक्षु सर्वासु विविधान्वानरान् प्रेष्य सत्वरम् ॥ २२ ॥

दक्षिणा दिशमत्यर्थ प्रयत्नेन महाबलान् ।
युवराज जाम्बवन्त हनूमन्त महाबलम् ॥ २३ ॥

नल सुषेण शरभ मैन्द द्विविदमेव च ।
प्रेषयामास सुग्रीवो वचन चेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम् ।
मासादर्वाड्निवर्तध्व मच्छासनपुर सरा ॥ २५ ॥

सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्व दिन भवेत् ।
तदा प्राणान्तिक दण्ड मत्त प्राप्स्यथ वानरा ॥ २६ ॥

इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान्भीमविक्रमान् ।
रामस्य पार्श्वे श्रीराम नत्वा चोपविवेश स ॥ २७ ॥

गच्छन्त मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥ २८ ॥

मन्नामाक्षरसयुक्त सीतायै दीयता रह ।
अस्मिन् कार्ये प्रमाण हि त्वमेव कपिसत्तम ।
जानामि सत्त्व ते सर्व गच्छ पन्था शुभस्तव ॥ २९ ॥

एव कपीना राज्ञा ते विसृष्टा परिमार्गणे ।
सीताया अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह ॥ ३० ॥

भ्रमन्तो विन्ध्यगहने ददृशु पर्वतोपमम् ।
राक्षस भीषणाकार भक्षयन्त मृगान् गजान् ॥ ३१ ॥

रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवा ।
जघ्नु किलकिलाशब्द मुञ्चन्तो मुष्टिभि क्षणात् ॥ ३२ ॥

नाय रावण इत्युक्त्वा ययुरन्यन्महद्वनम् ।
तृषार्ता सलिल तत्र नाविन्दन् हरिपुङ्गवा ॥ ३३ ॥

विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।
ददृशुर्गह्वर तत्र तृणगुल्मावृत महत् ॥ ३४ ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने प्रसन्न होकर बहुत-से बलवान् वानरोको सीताकी खोजके लिये भेजा। इस प्रकार तुरत ही समस्त दिशाओमे अनेको वानरोको भेजकर दक्षिण-दिशामे अधिक प्रयत्नके साथ महाबली युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनूमान्, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद आदिको भेजा तथा उनसे इस प्रकार कहा— ॥ २१—२४ ॥ "मेरी आज्ञासे तुम सब लोग बडे प्रयत्नसे शुभलक्षणा जानकीजीकी खोज करो और एक मासके भीतर ही लौट आओ ॥ २५ ॥ यदि सीताको बिना देखे तुम्हे एक माससे एक दिन भी अधिक हो जायगा तो हे वानरो! याद रखो, तुम्हे मेरे हाथसे प्राणान्त-दण्ड भोगना पडेगा" ॥ २६ ॥

उन महापराक्रमी वानरोको इस प्रकार भेजकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीको प्रणामकर उनके पास जा बैठे ॥ २७ ॥ उस समय पवननन्दन हनुमान्को जाते देख श्रीरघुनाथजीने कहा—"[हे कपिश्रेष्ठ!] तुम मेरी यह अँगूठी ले जाओ, इसपर मेरे नामाक्षर गुदे हुए है। इसे अपने परिचयके लिये तुम एकान्तमे सीताजीको देना। हे कपिश्रेष्ठ! इस कार्यमे तुम्ही समर्थ हो। मै तुम्हारा बुद्धिबल अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छा, जाओ। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो" ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार वानरराज सुग्रीवके भेजे हुए वे अङ्गदादि वानरगण सीताजीकी खोज करते हुए पृथिवीपर जहाँ-तहाँ विचरने लगे ॥ ३० ॥ घूमते-घूमते उन्होने विन्ध्याचलके गहन वनमे एक पर्वताकार भयकर राक्षस देखा, जो जगलके मृग और हाथियोको पकड-पकडकर खा रहा था ॥ ३१ ॥ कुछ वानरोने यह समझकर कि 'यही रावण है' बडा किलकिला शब्द करते हुए उसे एक क्षणमे ही घूँसोसे मार डाला ॥ ३२ ॥ फिर (उसे इतनी सुगमतासे मरा हुआ देखकर) 'यह रावण नही है' ऐसा कहते हुए वे एक-दूसरे घोर वनमे गये। वहाँ उन्हे बडी प्यास लगी किन्तु जल कही भी दिखायी न देता था ॥ ३३ ॥

उस भयकर वनमे घूमते-घूमते उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये, तब उन्होने वहाँ तृण, गुल्म और लता आदिसे ढँकी हुई एक विशाल गुहा देखी ॥ ३४ ॥ उसमेसे

आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहसान्नि सृतान्ददृशुस्तत ।
अत्रास्ते सलिल नून प्रविशामो महागुहाम् ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयु ।
सर्वे परस्पर धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुका ॥ ३६ ॥

उन्होने भीगे हुए पखोवाले क्रौञ्च और हसोको निकलते देखा। तब यह कहकर कि 'चलो इस गुहामे चले, इसमे अवश्य जल होगा' सबसे आगे हनुमान्‌जीने उसमे प्रवेश किया, उनके ही पीछे अन्य सब वानर भी एक-दूसरेकी बाँह-मे-बाँह डालकर उत्सुकतापूर्वक उसमे घुस गये ॥ ३५-३६ ॥

अन्धकारे महद्दूर गत्वापश्यन् कपीश्वरा ।
जलाशयान्मणिनिभतोयान् कल्पद्रुमोपमान् ॥ ३७ ॥

वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् ।
गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥ ३८ ॥

दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषै परिवर्जितान् ।
विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे ॥ ३९ ॥

प्रभया दीप्यमाना तु ददृशु स्त्रियमेककाम् ।
ध्यायन्तीं चीरवसना योगिनीं योगमास्थिताम् ॥ ४० ॥

बहुत दूरतक अन्धकारहीमे जानेके अनन्तर उन वानरोने देखा कि वहाँ (स्फटिक) मणिके समान स्वच्छ जलसे पूर्ण कई सरोवर है, उनके पास ही पके फलोके भारसे झुके हुए कल्पतरुके समान सुन्दर वृक्ष है जिनमे शहदके छत्ते लगे हुए है। पास ही, मणिमय वस्त्रालकारोसे युक्त और दिव्य भक्ष्य-भोज्य आदि सामग्रियोसे पूर्ण सर्वगुणसम्पन्न निर्जन भवन है। उनमेसे एक दिव्य भवनमे उन्होने अति आश्चर्यचकित हो एक रमणीको अकेली सुवर्णसिहासनपर विराजमान देखा। वह सुन्दरी योगाभ्यासमे तत्पर एक योगिनी थी, अपने तेजसे वह उस स्थानको प्रकाशित कर रही थी तथा शरीरपर चीर-वस्त्र धारण किये उस समय ध्यान कर रही थी ॥ ३७—४० ॥

प्रणेमुस्ता महाभागा भक्त्या भीत्या च वानरा ।
दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूय किमागता ॥ ४१ ॥

कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थान किं प्रधर्षथ ।
तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते ॥ ४२ ॥

उस महाभागा युवतीको देखकर वानरोने भय और प्रीतिसे उसे प्रणाम किया। तब उस देवीने उनकी ओर देखकर कहा—"तुमलोग क्यो और कहाँसे आये हो ? तुम किसके दूत हो ? तथा मेरे स्थानको क्यो भ्रष्ट कर रहे हो ?" यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—"देवि ! म आपसे सब वृत्तान्त निवेदन करता हूँ, सुनिये— ॥ ४१-४२ ॥

अयोध्याधिपति श्रीमान् राजा दशरथ प्रभु ।
तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुत ॥ ४३ ॥

पितुराज्ञा पुरस्कृत्य सभार्य सानुजो वनम् ।
गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना ॥ ४४ ॥

रावणेन ततो राम सुग्रीव सानुजो ययौ ।
सुग्रीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम् ॥ ४५ ॥

मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागता ।
ततो वन विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिण ॥ ४६ ॥

प्रविष्टा गह्वर घोर दैवादत्र समागता ।
त्व वा किमर्थमत्रासि का वा त्व वद न शुभे ॥ ४७ ॥

परम ऐश्वर्यसम्पन्न महाराज दशरथ अयोध्याके अधिपति थे। उनके महाभाग्यशाली ज्येष्ठ पुत्र राम-नामसे विख्यात है ॥ ४३ ॥ वे अपने पिताकी आज्ञा मानकर अपनी भार्या और छोटे भाईके सहित वनमे आये थे, यहाँ उनकी परम साध्वी पत्नीको दुरात्मा रावण हर ले गया। तब वे अपने अनुजके सहित वानरराज सुग्रीवके पास आये। सुग्रीवने उनसे मित्र-भाव हो जानेके कारण हमे यह आज्ञा दी है कि तुमलोग रामकी प्राणप्रियाकी खोज करो। अत हम वहीसे आये है। यहाँ वनमे जानकीको ढूँढते-ढूँढते हमे जलकी आवश्यकता हुई। इससे हम इस भयकर कन्दरामे घुसे और दैवयोगसे यहाँ आ गये। हे शुभे ! आप यहाँ किसलिये रहती है और कौन है ? यह हमे बताइये" ॥ ४४—४७ ॥

योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्टधी ।
यथेष्ट फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वामृत पय ॥ ४८ ॥

आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादित ।
तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानरा ॥ ४९ ॥

देव्या समीप गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटा स्थिता ।
तत प्राह हनूमन्त योगिनी दिव्यदर्शना ॥ ५० ॥

हेमा नाम पुरा दिव्यरूपिणी विश्वकर्मण ।
पुत्री महेश नृत्येन तोषयामास भामिनी ॥ ५१ ॥

तुष्टो महेश प्रददाविद दिव्यपुर महत् ।
अत्र स्थिता सा सुदती वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५२ ॥

तस्या अह सखी विष्णुतत्परा मोक्षकाङ्क्षिणी ।
नाम्ना स्वयम्प्रभा दिव्यगन्धर्वतनया पुरा ॥ ५३ ॥

गच्छन्ती ब्रह्मलोक सा मामाहेद तपश्चर ।
अत्रैव निवसन्ती त्व सर्वप्राणिविवर्जिते ॥ ५४ ॥

त्रेता युगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्यय ।
भूभारहरणार्थाय विचरिष्यति कानने ॥ ५५ ॥

मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम् ।
पूजयित्वाथ तान् नत्वा राम स्तुत्वा प्रयत्नत ॥ ५६ ॥

यातासि भवन विष्णोर्योगिगम्य सनातनम् ।
इतोऽह गन्तुमिच्छामि राम द्रष्टु त्वरान्विता ॥ ५७ ॥

यूय पिदध्वमक्षीणि गमिष्यथ बहिर्गुहाम् ।
तथैव चक्रुस्ते वेगाद्गता पूर्वस्थित वनम् ॥ ५८ ॥

सापि त्यक्त्वा गुहा शीघ्र ययौ राघवसन्निधिम् ।
तत्र राम ससुग्रीव लक्ष्मण च ददर्श ह ॥ ५९ ॥

कृत्वा प्रदक्षिण राम प्रणम्य बहुश सुधी ।
आनन्दगद्गदया वाचा प्रेमभिन्नतनूरुहा ॥ ६० ॥

यह सब देखकर उस योगिनीको बडा हर्ष हुआ और वह वानरोसे बोली— 'पहले तुम इच्छानुसार फल-मूलादि खाकर अमृतमय जल पान करो। फिर मेरे पास आना, तब मै आरम्भसे तुम्हे अपना सब वृत्तान्त सुनाऊँगी।'' तब उन वानरोने 'बहुत अच्छा' कह यथेष्ट फल-मूलादि खाकर जल पीया और फिर प्रसन्नचित्तसे उस देवीके पास आकर हाथ जोडकर खडे हो गये।

तदनन्तर वह दिव्यदर्शना योगिनी हनूमान्‌जीसे इस प्रकार कहने लगी— ॥ ४८—५० ॥ ''पूर्वकालमे विश्वकर्माकी हेमा नामवाली एक दिव्यरूपिणी पुत्री थी। उस सुन्दरीने अपने नृत्यसे श्रीमहादेवजीको प्रसन्न किया ॥ ५१ ॥ प्रसन्न होनेपर श्रीशङ्करने उसे यह विशाल और दिव्य नगर (रहनेके लिये) दिया। यहाँ वह सुन्दर दाँतोवाली हजारो वर्ष रही ॥ ५२ ॥ मै उसकी सखी दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री हूँ। मेरा नाम स्वयम्प्रभा है। मुझे मोक्षकी इच्छा है। अत मै सर्वदा विष्णुभगवान्‌की उपासनामे तत्पर रहती हूँ। पूर्वकालमे जब वह ब्रह्मलोकको जाने लगी, तब उसने मुझसे कहा कि 'तू सब प्रकारके प्राणियोसे रहित इस स्थानमे ही रहकर तपस्या कर ॥ ५३-५४ ॥ त्रेतायुगमे साक्षात् अव्यय नारायण राजा दशरथके यहाँ जन्म लेकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वनमे विचरेगे ॥ ५५ ॥ उनकी भार्याको ढूँढते हुए कुछ वानर तेरी गुहामे आयेगे। उनका भली प्रकार सत्कार कर तू रामचन्द्रजीकी (उनके पास जाकर) प्रयत्नपूर्वक वन्दना और स्तुति करके भगवान् विष्णुके नित्यधामको चली जायगी, जो योगियोको ही प्राप्त होनेयोग्य है।' अत अब मै तुरत ही भगवान् रामका दर्शन करनेके लिये जाना चाहती हूँ ॥ ५६-५७ ॥ तुमलोग अपनी-अपनी आँखे मूँद लो, अभी गुहाके बाहर पहुँच जाओगे।''

उन्होने ऐसा ही किया और तुरत ही पहले वनमे पहुँच गये ॥ ५८ ॥ इधर वह योगिनी भी उस गुहाको छोडकर तत्काल श्रीरघुनाथजीके पास आयी और वहाँ सुग्रीव तथा लक्ष्मणजीके सहित उनका दर्शन किया ॥ ५९ ॥

उस बुद्धिमतीने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा कर उन्हे बारम्बार प्रणाम किया और फिर पुलकित-तनु होकर गद्गदवाणीसे इस प्रकार कहने लगी— ॥ ६० ॥

दासी तवाह राजेन्द्र दर्शनार्थमिहागता।
बहुवर्षसहस्राणि तप्त मे दुश्चर तप ॥ ६१ ॥

गुहाया दर्शनार्थ ते फलित मेऽद्य तत्तप ।
अद्य हित्वा नमस्यामि मायाया परत स्थितम् ॥ ६२ ॥

सर्वभूतेषु चालक्ष्य बहिरन्तरवस्थितम् ।
योगमायाजवनिकाच्छन्नो मानुषविग्रह ॥ ६३ ॥

न लक्ष्यसेऽज्ञानदृशा शैलूष इव रूपधृक् ।
महाभागवताना त्व भक्तियोगविधित्सया ॥ ६४ ॥

अवतीर्णोऽसि भगवन् कथ जानामि तामसी ।
लोके जानातु य कश्चित्तव तत्त्व रघूत्तम ॥ ६५ ॥

ममैतदेव रूप ते सदा भातु हृदालये ।
राम ते पादयुगल दर्शित मोक्षदर्शनम् ॥ ६६ ॥

अदर्शन भवार्णाना सन्मार्गपरिदर्शनम् ।
धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पित ।
अकिञ्चनधन त्वाद्य नाभिधातु जनोऽर्हति ॥ ६७ ॥

निवृत्तगुणमार्गाय निष्किञ्चनधनाय ते ॥ ६८ ॥

नम स्वात्माभिरामाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
कालरूपिणमीशानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ६९ ॥

सम चरन्त सर्वत्र मन्ये त्वा पुरुष परम् ।
देव ते चेष्टित कश्चिन्न वेद नृविडम्बनम् ॥ ७० ॥

न तेऽस्ति कश्चिद्दयितो द्वेष्यो वापर एव च ।
त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वा पश्यन्ति तथाविधम् ॥ ७१ ॥

अजस्याकर्तुरीशस्य देवतिर्यङ्नरादिषु ।
जन्मकर्मादिक यद्यत्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ७२ ॥

हे राजाधिराज ! मै आपकी दासी आपके दर्शनोके लिये यहाँ आयी हूँ, मैने आपका दर्शन पानेके लिये ही गुहामे रहकर सहस्रो वर्षोसे बडी कठोर तपस्या की है। आज मेरा वह तप सफल हो गया। अहो ! आज (यह कैसा शुभ दिन है कि) मै साक्षात् मायातीत तथा समस्त भूतोमे अलक्षितभावसे बाहर-भीतर विराजमान आप परमेश्वरको प्रणाम कर रही हूँ। आप अपने शुद्धस्वरूपको योगमायासे आवृत कर मनुष्य-शरीरमे प्रकट हुए है। अत जिस प्रकार मायिकरूप धारण करनेवाले मायावीको साधारण पुरुष नही देख सकते उसी प्रकार आपके शुद्धस्वरूपको अज्ञानी लोग नही देख सकते। हे भगवन् ! आपने महान् भगवद्भक्तोके भक्तियोगका विधान करनेके लिये ही अवतार लिया है। मै तमोगुणी बुद्धिवाली आपको कैसे जान सकती हूँ ? हे रघुश्रेष्ठ ! ससारमे जो कोई आपका परमतत्त्व जानते हो वे उसे भले ही जाना करे, मेरे हृदयभवनमे तो सदा आपका यही रूप विराजमान रहे। हे राम ! आज मुझे आपके उन मोक्षदायक चरणकमलोका दर्शन हुआ है, जो ससाररूपी सरितासे पार करनेवाले और सन्मार्गका ज्ञान करानेवाले है।

"हे आदिपुरुष ! जो मनुष्य धन, पुत्र, कलत्र और विभूति आदिके मदसे उन्मत्त हो रहा है, वह आपकी स्तुति नही कर सकता, क्योकि आप तो अकिञ्चनोके ही सर्वस्व है ॥ ६१—६७ ॥ जो गुणोकी पहुँचसे बाहर, निष्किञ्चनोके धन, अपने आत्मस्वरूपमे ही रमण करनेवाले और (स्वरूपसे) निर्गुण तथा (आरोपसे) सगुण है, उन आपको मै बारम्बार प्रणाम करती हूँ। मै आपको कालरूपसे सबका नियन्ता, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, सर्वत्र समानभावसे व्याप्त तथा परात्पर पुरुष मानती हूँ। हे देव ! मानव-चरित्रोका अनुकरण करते हुए आप जो-जो लीलाएँ करते है, उनका मर्म कोई भी नही जान सकता ॥ ६८—७० ॥ प्रभो ! आपका न कोई प्रिय है, न अप्रिय है और न उदासीन है। आपकी मायासे जिनके अन्त करण आवत है वे ही लोग (अपनी-अपनी भावनाके अनुसार) आपको वैसा देखते है ॥ ७१ ॥ आप अजन्मा, अकर्ता और ईश्वर है। आपके जो देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि योनियोमे जन्म और कर्म होते है वह आपकी महान् लीला ही है ॥ ७२ ॥

त्वामाहुरक्षर जात कथाश्रवणसिद्धये ।
केचित्कोसलराजस्य तपस फलसिद्धये ॥ ७३ ॥

कौसल्यया प्रार्थ्यमान जातमाहु परे जना ।
दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितो विभु ॥ ७४ ॥

ब्रह्मणा नररूपेण जातोऽयमिति केचन ।
शृण्वन्ति गायन्ति च ये कथास्ते रघुनन्दन ॥ ७५ ॥

पश्यन्ति तव पादाब्ज भवार्णवसुतारणम् ।
त्वन्मायागुणबद्धाह व्यतिरिक्त गुणाश्रयम् ॥ ७६ ॥

कथ त्वा देव जानीया स्तोतु वाविषय विभुम् ।
नमस्यामि रघुश्रेष्ठ बाणासनशरान्वितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सुग्रीवादिभिरन्वितम् ॥ ७७ ॥

एव स्तुतो रघुश्रेष्ठ प्रसन्न प्रणताघहृत् ।
उवाच योगिनीं भक्ता किं ते मनसि काङ्क्षितम् ॥ ७८ ॥

सा प्राह राघव भक्त्या भक्ति ते भक्तवत्सल ।
यत्र कुत्रापि जाताया निश्चला देहि मे प्रभो ॥ ७९ ॥

त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न ।
जिह्वा मे रामरामेति भक्त्या वदतु सर्वदा ॥ ८० ॥

मानस श्यामल रूप सीतालक्ष्मणसयुतम् ।
धनुर्बाणधर पीतवासस मुकुटोज्ज्वलम् ॥ ८१ ॥

अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारै कौस्तुभकुण्डलै ।
भान्त स्मरतु मे राम वर नान्य वृणे प्रभो ॥ ८२ ॥

श्रीराम उवाच

भवत्वेव महाभागे गच्छ त्व बदरीवनम् ।
तत्रैव मा स्मरन्ती त्व त्यक्त्वेद भूतपञ्चकम् ।
मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ॥ ८३ ॥

"कहते है, आप अविनाशी ईश्वरने (अपनी कीर्ति फैलाकर) कथा-श्रवणकी सिद्धिके लिये ही अवतार लिया । कोई यह भी कहते है कि कोसलाधिपति महाराज दशरथको उनकी तपस्याका फल देनेके लिये आपने जन्म लिया है ॥ ७३ ॥ किन्ही लोगोका कहना है कि आप कौसल्याजीकी प्रार्थनासे प्रकट हुए है तथा किन्ही-किन्हीका मत ऐसा भी है कि ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर भूमिके भारभूत राक्षसोका नाश करनेके लिये ही आप सर्वव्यापक होते हुए भी मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए है । हे रघुनन्दन ! जो लोग आपकी कथाओको सुनेगे या कहेगे वे अवश्य ही ससार-सागरको पार करनेके लिये नौकारूप आपके चरण-कमलोका दर्शन करेगे । हे देव ! मै आपकी मायाके गुणोके वशीभूत हूँ, फिर उन गुणोसे अत्यन्त पृथक् और उनके आश्रयरूप आपको मै कैसे जान सकती हूँ ? ऐसे ही वाणीके विषय न होनेके कारण मै आप विभुकी स्तुति भी कैसे कर सकती हूँ ? अत भाई लक्ष्मण और सुग्रीवादि (पार्षदो) के सहित आप धनुर्बाणधारी रघुश्रेष्ठको मै केवल प्रणाम करती हूँ ?" ॥ ७४—७७ ॥

उसके इस प्रकार स्तुति करनेसे प्रणतपापापहारी श्रीरघुनाथजी अति प्रसन्न हुए और उस अनन्यभक्ता योगिनीसे बोले—"तेरी हार्दिक इच्छा क्या है ?" ॥ ७८ ॥

उसने अति भक्तिपूर्वक श्रीरघुनाथजीसे कहा—"हे भक्तवत्सल प्रभो ! मै जहाँ कही भी जन्म लूँ आप मुझे अपनी अविचल भक्ति दीजिये ॥ ७९ ॥ प्रत्येक जन्ममे मेरा सग आपक भक्तोसे ही हो, ससारी लोगोसे न हो और मेरी जिह्वा सदा भक्तिपूर्वक 'राम-राम' ऐसा रटा करे ॥ ८० ॥ और हे राम ! मेरा मन आपकी उस शोभायमान श्यामल मूर्तिका श्रीसीताजी और लक्ष्मणके सहित सर्वदा चिन्तन करता रहे, जो धनुष-बाण धारण किये हुए है तथा जो पीताम्बरधारी, मुकुट-विभूषित एव भुजबद, नूपुर, मोतियोकी माला, कौस्तुभमणि और कुण्डलोसे सुशोभित हैं । हे प्रभो ! इसके सिवा मै और कोई वर नही माँगती" ॥ ८१-८२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे महाभागे ! ऐसा ही होगा । अब तू बद्रिकाश्रमको जा, वहाँ मेरा स्मरण करती हुई तू शीघ्र ही इस पाञ्चभौतिक शरीरको छोडकर मुझ परमात्माको ही प्राप्त हो जायगी ॥ ८३ ॥

श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पं
गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम्।
तीर्थं तदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती
त्यक्त्वा कलेवरमवाप परं पदं सा ॥ ८४ ॥

रघुनाथजीके ये अमृतके समान मधुर वचन सुनकर स्वयंप्रभा उसी समय पुण्यक्षेत्र बद्रिकाश्रमको चली गयी जहाँ बहुत-से बेरोंके वृक्ष लगे हुए हैं। वहाँ अपने अन्तःकरणमें श्रीरघुनाथजीका स्मरण करती हुई वह अन्तमें शरीर-पात होनेपर परमपदको प्राप्त हुई ॥ ८४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

वानरोंका प्रायोपवेशन और सम्पातिसे भेंट

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र समासीना वृक्षखण्डेषु वानराः ।
चिन्तयन्तो विमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्शिताः ॥ १ ॥

तत्रोवाचाङ्गदः कांश्चिद्वानरान् वानरर्षभः ।
भ्रमतां गह्वरेऽस्माकं मासो नूनं गतोऽभवत् ॥ २ ॥

सीता नाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम् ।
यदि गच्छाम किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति ॥ ३ ॥

विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति ।
मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः ॥ ४ ॥

इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत् ।
तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः ॥ ५ ॥

मातृकल्पां भ्रातृभार्यां पापात्मानुभवत्यसौ ।
न गच्छेयमतः पार्श्वं तस्य वानरपुङ्गवाः ॥ ६ ॥

त्यक्ष्यामि जीवितं चात्र येन केनापि मृत्युना ।
इत्यश्रुनयनं केचिद्दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः ॥ ७ ॥

व्यथिताः साश्रुनयना युवराजमथाब्रुवन् ॥ ८ ॥

किमर्थं तव शोकोऽत्र वयं ते प्राणरक्षकाः ।
भवामो निवसामोऽत्र गुहायां भयवर्जिताः ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! इधर, सीताजीकी खोजसे थके हुए वानरगण उस गुहाके समीप सघन वृक्षोंवाले स्थानपर बैठकर (सीताको न पानेके कारण) मोहित होकर आपसमें सोचने लगे ॥ १ ॥ उस समय वानरश्रेष्ठ अङ्गदजीने कुछ वानरोंसे कहा—"मालूम होता है इस कन्दरामें घूमते-घूमते हमारा एक मास अवश्य पूरा हो गया ॥ २ ॥ परन्तु अभीतक हमें सीताजी नहीं मिलीं। हम वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाका पालन नहीं कर सके। अब यदि हम किष्किन्धापुरीको लौट चलें तो वह हमें अवश्य मार डालेगा ॥ ३ ॥ विशेषतः अपने शत्रुके पुत्र मुझे तो वह इस मिषसे अवश्य ही मार डालेगा। मुझमें उसका प्रेम कहाँ हो सकता है? मेरी रक्षा तो श्रीरामचन्द्रजीने ही की है ॥ ४ ॥ अब मुझसे श्रीरघुनाथजीका कार्य नहीं सधा, अतः मेरा वध करनेके लिये उस दुरात्मा सुग्रीवको निश्चय ही यह अच्छा बहाना मिल जायगा ॥ ५ ॥ वह पापात्मा अपने बड़े भाईकी पत्नीको, जो उसकी माताके समान है, भोगता है, अतः हे वानरश्रेष्ठो! मैं अब उसके पास तो जाऊँगा नहीं ॥ ६ ॥ किसी-न-किसी उपायसे यहीं अपने जीवनका अन्त कर दूँगा।"

इस प्रकार उन्हें नेत्रोंमें जल भरे देखकर कितने ही प्रमुख वानरोंको बड़ा खेद हुआ और उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर युवराजसे कहा— ॥ ७-८ ॥ "आप इतना शोक क्या करते हैं, हम सब आपके प्राणोंकी रक्षा करेंगे और निर्भय होकर इस गुहामें ही रहेंगे ॥ ९ ॥

सर्वसौभाग्यसहित पुर देवपुरोपमम्।
शनै परस्पर वाक्य वदता मारुतात्मज ॥ १० ॥

श्रुत्वाङ्गद समालिङ्ग्य प्रोवाच नयकोविद ।
विचार्यते किमर्थ ते दुर्विचारो न युज्यते ॥ ११ ॥

राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्व हितारापुत्रोऽतिवल्लभ ।
रामस्य लक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयि नित्य प्रवर्धते ॥ १२ ॥

अतो न राघवाद्भीतिस्तव राज्ञो विशेषत ।
अह तव हिते सक्तो वत्स नान्य विचारय ॥ १३ ॥

गुहावासश्च निर्भेद्य इत्युक्त वानरैस्तु यत्।
तदेतद्रामबाणानामभेद्य किं जगत्त्रये ॥ १४ ॥

ये त्वा दुर्बोधयन्त्येते वानरा वानरर्षभ।
पुत्रदारादिक त्यक्त्वा कथ स्थास्यन्ति ते त्वया ॥ १५ ॥

अन्यद्गुह्यतम वक्ष्ये रहस्य शृणु मे सुत।
रामो न मानुषो देव साक्षान्नारायणोऽव्यय ॥ १६ ॥

सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी।
लक्ष्मणो भुवनाधार साक्षाच्छेष फणीश्वर ॥ १७ ॥

ब्रह्मणा प्रार्थिता सर्वे रक्षोगणविनाशने।
मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षका ॥ १८ ॥

वय च पार्षदा सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिन ।
मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि ॥ १९ ॥

वय वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया।
वय तु तपसा पूर्वमाराध्य जगता पतिम् ॥ २० ॥

तेनैवानुगृहीता स्म पार्षदत्वमुपागता ।
इदानीमपि तस्यैव सेवा कृत्वैव मायया ॥ २१ ॥

पुनर्वैकुण्ठमासाद्य सुख स्थास्यामहे वयम्।
इत्यङ्गदमथाश्वास्य गता विन्ध्य महाचलम् ॥ २२ ॥

विचिन्वन्तोऽथ शनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधे ।
तीरे महेन्द्राख्यगिरे पवित्र पादमाययु ॥ २३ ॥

इसमे जो नगर है वह अमरावतीपुरीके समान समस्त सुख-सामग्रियोसे सम्पन्न है।'' इस प्रकार उनके आपसमे धीरे-धीरे कहे हुए ये शब्द नीतिनिपुण श्रीहनूमान्जीके कानोमे पडे तो उन्होने अङ्गदजीको हृदयसे लगाकर कहा—''अङ्गद! तुम ऐसी चिन्ता क्यो करते हो, तुम्हे किसी प्रकारकी दुर्भावना न करनी चाहिये। तुम ताराके अत्यन्त लाडिले लाल हो, अत महाराज सुग्रीवको भी तुम बहुत प्रिय हो। और श्रीरामचन्द्रजीकी तो तुममे नित्यप्रति लक्ष्मणजीसे भी अधिक प्रीति बढती जाती है॥ १०—१२ ॥ इसलिये तुम्हे श्रीरघुनाथजी या राजा सुग्रीवसे किसी प्रकारका खटका न होना चाहिये और फिर मै भी सब प्रकार तुम्हारा हित करनेमे तत्पर हूँ। अत हे वत्स! तुम किसी ऐसी-वैसी बातकी चिन्ता मत करो ॥ १३ ॥ और इन वानरोने जो कहा कि 'गुहामे किसी प्रकारका खटका न होगा' सो त्रिलोकीमे ऐसी कौन-सी वस्तु है जो भगवान् रामके बाणोके लिये अभेद्य हो? ॥ १४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! जो वानरगण तुम्हे यह बुरी सलाह दे रहे है, वे भी अपनी स्त्री और बालकोको छोडकर तुम्हारे साथ कैसे रह सकेगे? ॥ १५ ॥

इसके सिवा, बेटा! एक अत्यन्त गुप्त रहस्य और बताता हूँ, सावधान होकर सुनो—भगवान् राम कोई साधारण मनुष्य नही है। वे साक्षात् निर्विकार नारायणदेव है॥ १६ ॥ भगवती सीताजी जगन्मोहिनी माया है और लक्ष्मणजी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागनाथ शेषजी है॥ १७ ॥ ये सब ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे राक्षसोका नाश करनेके लिये माया-मानवरूपसे उत्पन्न हुए है। इनमेसे प्रत्येक त्रिलोकोकी रक्षा करनेमे समर्थ है ॥ १८ ॥ हम सब भी वैकुण्ठलोकमे रहनेवाले भगवान् विष्णुके पार्षद है। जब परमात्माने अपनी इच्छासे मनुष्यरूप धारण किया तो हम भी उन्हीकी मायाशक्तिसे वानररूपसे उत्पन्न हो गये। पूर्वकालमे हमने तपस्याद्वारा श्रीजगदीश्वरकी आराधना की थी, तब उन्हीकी कृपासे हम उनके पार्षद हुए थे। अब भी हम मायाकी प्रेरणासे उन्हीकी सेवा करते हुए अन्तमे फिर बैकुण्ठमे जाकर आनन्दपूर्वक (उन्हीके साथ) रहेगे।''

इस प्रकार अङ्गदजीको ढाँढस बँधाकर वे सब विन्ध्याचल पर्वतपर गये॥ १९—२२ ॥ फिर धीरे-धीरे श्रीजानकीजीको खोजते हुए दक्षिण-समुद्रके तटपर महेन्द्रपर्वतकी पवित्र तराईमे पहुँचे ॥ २३ ॥

दृष्ट्वा समुद्रं दुष्पारमगाधं भयवर्धनम्।
वानरा भयसन्त्रस्ता किं कुर्म इति वादिनः ॥ २४ ॥

निषेदुरुदधेस्तीरे सर्वे चिन्तासमन्विताः।
मन्त्रयामासुरन्योन्यमङ्गदाद्या महाबलाः ॥ २५ ॥

भ्रमतो मे वने मासो गतोऽत्रैव गुहान्तरे।
न दृष्टो रावणो वाद्य सीता वा जनकात्मजा ॥ २६ ॥

सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येव न संशयः।
सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम् ॥ २७ ॥

इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः।
उपाविविशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः ॥ २८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र महेन्द्राद्रिगुहान्तरात्।
निर्गत्य शनकैरागाद्गृध्रः पर्वतसन्निभः ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा प्रायोपवेशेन स्थितान्वानरपुङ्गवान्।
उवाच शनकैर्गृध्रः प्राप्तो भक्ष्योऽद्य मे बहुः ॥ ३० ॥

एकैकशः क्रमात्सर्वान् भक्षयामि दिने दिने।
श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः ॥ ३१ ॥

भक्षयिष्यति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः।
रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किञ्चिद्धरीश्वराः ॥ ३२ ॥

सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि।
वृथानेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम् ॥ ३३ ॥

अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः।
मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दम ॥ ३४ ॥

सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम्।
के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम् ॥ ३५ ॥

जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम्।
उच्यतां वो भयं मा भून्मत्तः प्लवगसत्तमाः ॥ ३६ ॥

तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ।
रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ ३७ ॥

वहाँ पहुँचनेपर वे अपार, अगाध और भयको बढानेवाले समुद्रको देखकर भयभीत हो गये और एक-दूसरेसे कहने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? ॥ २४ ॥ अङ्गद आदि समस्त महापराक्रमी वानर अति चिन्ताग्रस्त होकर समुद्रतटपर बैठ गये और आपसमे सलाह करने लगे— ॥ २५ ॥ 'अहो ! वनमे घूमते-घूमते हमे एक मास तो उस गुहामे ही बीत गया। परन्तु रावण अथवा जनकनन्दिनी सीताजीको हम अभीतक नही देख सके ॥ २६ ॥ राजा सुग्रीव बडा दुर्दण्ड है वह हमे निस्सन्देह मार डालेगा। सुग्रीवके हाथमे मरनेकी अपेक्षा तो प्रायोपवेशन-(अन्न-जल छोडकर मर जाने-) हीमे हमारा अधिक कल्याण है' ॥ २७ ॥ ऐसा निर्णय करके वे सब जहाँ-तहाँ कुशा बिछाकर मरनेका निश्चय कर वही बैठ गये ॥ २८ ॥

इसी समय महेन्द्रपर्वतकी कन्दरासे निकलकर वहाँ एक पर्वताकार गृध्र धीरे-धीरे चलकर आया ॥ २९ ॥ उन बडे-बडे वानरोको प्रायोपवेशनके लिये बैठे देख वह मन्द स्वरमे कहने लगा—"आज मुझे (एक साथ ही) बहुत-सा भक्ष्य प्राप्त हो गया ॥ ३० ॥ अब मै इन सबको नित्यप्रति क्रमश एक-एक करके खाऊँगा।'

गृध्रके ये वचन सुनकर वे समस्त वानर भयभीत होकर कहने लगे— ॥ ३१ ॥ "अहो ! निस्सन्देह अब यह गृध्र हम सबको खा जायगा। हे वानरश्वरगण ! हमसे न तो भगवान् रामका ही कुछ काम सधा और न राजा सुग्रीवका या अपना ही कुछ हित हुआ, अब हम व्यर्थ इसके हाथसे मरकर यमलोकको जायेगे ॥ ३२-३३ ॥ अहो ! धर्मात्मा जटायु धन्य है, जिस बुद्धिमान्ने श्रीरामके कार्यमे अपने प्राण दे दिये। देखो, उस शत्रुदमनने वह मोक्षपद प्राप्त कर लिया जो योगियोको भी दुर्लभ है" ॥ ३४ ॥

वानरोके कहे हुए इस वाक्यको सुनकर सम्पाति बोला—"हे कपिश्रेष्ठगण ! आपलोग कौन है, जो आपसमे मेरे कानोको अमृतके समान प्रिय लगनेवाला मेरे भाईका 'जटायु' नाम ले रहे है। आप मुझसे किसी प्रकारका भय न करके अपना वृत्तान्त कहिये" ॥ ३५-३६ ॥

तब श्रीमान् अङ्गदजी उठकर उस गृध्रके पास गये और बोले—"दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी भाई लक्ष्मण

सीतया भार्यया सार्ध विचचार महावने ।
तस्य सीता हता साध्वी रावणेन दुरात्मना ॥ ३८ ॥

मृगया निर्गते रामे लक्ष्मणे च हता बलात् ।
रामरामेति क्रोशन्ती श्रुत्वा गृध्र प्रतापवान् ॥ ३९ ॥

जटायुर्नाम पक्षीन्द्रो युद्ध कृत्वा सुदारुणम् ।
रावणेन हतो वीरो राघवार्थ महाबल ॥ ४० ॥

रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात् ।
राम सुग्रीवमासाद्य सख्य कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ४१ ॥

सुग्रीवचोदितो हत्वा वालिन सुदुरासदम् ।
राज्य ददौ वानराणा सुग्रीवाय महाबल ॥ ४२ ॥

सुग्रीव प्रेषयामास सीताया परिमार्गणे ।
अस्मान्वानरवृन्दान्वै महासत्त्वान्महाबल ॥ ४३ ॥

मासादर्वाड्निवर्तध्व नोचेत्प्राणान्हरामि व ।
इत्याज्ञया भ्रमन्तोऽस्मिन्वने गह्वरमध्यगा ॥ ४४ ॥

गतो मासो न जानीम सीता वा रावण च वा ।
मर्तु प्रायोपविष्टा स्मस्तीरे लवणवारिधे ॥ ४५ ॥

यदि जानासि हे पक्षिन्सीता कथय न शुभाम् ।
अङ्गदस्य वच श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानस ॥ ४६ ॥

उवाच मत्प्रियो भ्राता जटायु प्लवगेश्वरा ।
बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया ॥ ४७ ॥

वाक्साहाय्य करिष्येऽह भवता प्लवगेश्वरा ।
भ्रातु सलिलदानाय नयध्व मा जलान्तिकम् ॥ ४८ ॥

पश्चात्सर्व शुभ वक्ष्ये भवता कार्यसिद्धये ।
तथेति निन्युस्ते तीर समुद्रस्य विहङ्गमम् ॥ ४९ ॥

सोऽपि तत्सलिले स्नात्वा भ्रातुर्दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
पुन स्वस्थानमासाद्य स्थितो नीतो हरीश्वरै ।
सम्पाति कथयामास वानरान्परिहर्षयन् ॥ ५० ॥

और प्राणप्रिया सीताके सहित घोर दण्डकारण्यमे विचर रहे थे। वहाँ उनकी साध्वी भार्या सीताको दुरात्मा रावण हर ले गया ॥ ३७-३८ ॥ जिस समय राम और लक्ष्मण मृगयाके लिये गये हुए थे उसी समय वह बलात् उन्हे ले चला। उस समय वे 'हा राम ! हा राम !' कहकर रोने लगी। उनका शब्द सुनकर महाप्रतापी पक्षिराज गृध्रवर जटायुने रघुनाथजीके लिये रावणसे घोर युद्ध किया, किन्तु अन्तमे वे महाबलवान् वीरवर रावणके हाथमे मारे गये ॥ ३९-४० ॥ फिर स्वय श्रीरामचन्द्रजीने उनका दाह-सस्कार किया और उन्होने तत्काल भगवान् राममे (लीन होकर) सायुज्य मोक्ष प्राप्त किया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी सुग्रीवके पास आये और अग्निको साक्षी बनाकर उनसे मित्रता की ॥ ४१ ॥ फिर सुग्रीवके कहनेस महाबली रामजीने अति दुर्जय वालीको मारा और वानरोका राज्य सुग्रीवको दिया ॥ ४२ ॥ महाबली सुग्रीवन हमारे-जैसे अनेको महापराक्रमी वानरोको सीताकी खोजके लिये भेजा है ॥ ४३ ॥ और यह कह दिया है कि 'सब लोग एक मासके भीतर ही लौट आना नही तो मै तुम्हारे प्राण हर लूँगा।' उनकी आज्ञासे इस वनमे घूमते हुए हम एक गुहामे चले गये ॥ ४४ ॥ वहाँ हमारा मास समाप्त हो गया किन्तु अभीतक हमे न तो सीताका पता चला है और न रावणका। अत अब हम प्रायोपवेशन करके मरनेके लिये इस क्षार (खारी) समुद्रके तटपर बैठे है ॥ ४५ ॥ हे पक्षिन् ! यदि तुम्हे शुभलक्षणा सीताका कुछ पता हो तो बतलाओ।''

अङ्गदके ये वचन सुनकर सम्पाति चित्तमे प्रसन्न होकर बोला—''हे कपीश्वरो ! जटायु मेरा परम प्रिय भाई था। आज कई सहस्र वर्षोके अनन्तर मैने भाईका समाचार सुना है ॥ ४६-४७ ॥ हे वानरो ! मै बातोसे अवश्य आपलोगोकी कुछ सहायता करूँगा। पहले भाईको जलाञ्जलि देनेके लिये मुझे जलके पास ले चलो ॥ ४८ ॥ फिर आपलोगोकी कार्य-सिद्धिके लिये जो ठीक होगा वह सब बतलाऊँगा।''

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे सम्पातिको समुद्र-तटपर ले गये ॥ ४९ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने जलमे स्नानकर भाईको जलाञ्जलि दी। तदनन्तर वानरगण उसे उसके स्थानपर ले गये। वहाँ बैठकर सम्पाति (अपने

लङ्का नाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि ।
तत्राशोकवने सीता राक्षसीभि सुरक्षिता ॥ ५१ ॥

समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरत ।
दृश्यते मे न सन्देह सीता च परिदृश्यते ॥ ५२ ॥

गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र सशयितु क्षमम् ।
शतयोजनविस्तीर्ण समुद्र यस्तु लङ्घयेत् ॥ ५३ ॥

स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम् ।
अहमेव दुरात्मान रावण हन्तुमुत्सहे ।
भ्रातुर्हन्तारमेकाकी किन्तु पक्षविवर्जित ॥ ५४ ॥

यतध्वमतियत्नेन लङ्घितु सरिता पतिम् ।
ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावण राक्षसाधिपम् ॥ ५५ ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धु शतयोजनायत
लङ्का प्रविश्याथ विदेहकन्यकाम् ।
दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधि पुन-
स्तर्तु समर्थ कतमो विचार्यताम् ॥ ५६ ॥

वचनसे) वानरोको आनन्दित करता हुआ बोला— ॥ ५० ॥ "त्रिकूट-पर्वतपर लङ्का नामकी एक नगरी है। वहाँ श्रीसीताजी अशोकवनमे राक्षसियाकी देख-रेखमे रहती है ॥ ५१ ॥ वह लङ्कापुरी यहाँस सौ योजनकी दूरीपर समुद्रके बीचमे हे। इसमे सन्देह नही, मुझे तो वह और सीताजी यहीसे दीख रही है ॥ ५२ ॥ आपलोग इसमे सन्देह न करे। गृध्र होनेके कारण मेरी दृष्टि बहुत दूरतक जाती है। आपमेसे जो कोई सौ योजन समुद्रको लाँघ सकता हो वही निश्चय जानकीजीको देखकर आ सकता है। मेरे भाईको मारनेवाले इस दुरात्मा रावणको मारनेमे तो मै अकेला ही समर्थ हूँ, परन्तु (करूँ क्या ?) मेरे पख नही रहे ॥ ५३-५४ ॥ आपलोग किसी-न-किसी तरह समुद्र लाँघनेका प्रयत्न कीजिये, फिर राक्षसराज रावणको तो श्रीरघुनाथजी स्वय मार डालेगे ॥ ५५ ॥ आपलोग अब यह विचार करे कि आपमेसे ऐसा शक्तिशाली कौन है जो सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघकर लङ्कामे जाय और श्रीजानकीजीसे मिलकर तथा उनके साथ सम्भाषण कर फिर समुद्र पार करके लौट आवे" ॥ ५६ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

★

अष्टम सर्ग

सम्पातिकी आत्मकथा

श्रीमहादेव उवाच

अथ ते कौतुकाविष्टा सम्पातिं सर्ववानरा ।
पप्रच्छुर्भगवन् ब्रूहि स्वमुदन्त त्वमादित ॥ १ ॥

सम्पाति कथयामास स्ववृत्तान्त पुरा कृतम् ।
अह पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ ॥ २ ॥

बलेन दर्पितावावा बलजिज्ञासया खगौ ।
सूर्यमण्डलपर्यन्त गन्तुमुत्पतितौ मदात् ॥ ३ ॥

बहुयोजनसाहस्र गतौ तत्र प्रतापित ।
जटायुस्त परित्रातु पक्षैराच्छाद्य मोहत ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! यह सुनकर उन सब वानरोने बडे कुतूहलमे भरकर सम्पातिसे पूछा—"भगवन् ! आप आरम्भसे ही अपना वृत्तान्त सुनाइये" ॥ १ ॥ तब सम्पातिने पहले जेसा-जैसा किया था, वह सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—पूर्वकालमे म और भाई जटायु जिस समय पूर्ण युवा थे, बलके गर्वसे उन्मत्त होकर यह जाननेके लिये कि हममे कितना बल है, बडे घमण्डसे आकाशमे सूर्यमण्डलपर्यन्त जानेको उडे ॥ २-३ ॥ जब हम कई सहस्र योजन ऊँचे चले गये तो जटायु (सूर्यके तेजसे) जलने लगा। मै उसकी रक्षाके लिये मोहवश उसे अपने पखोसे ढककर चलने लगा और

स्थितोऽहं रश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन्विन्ध्यमूर्धनि ।
पतितो दूरपतनान्मूर्च्छितोऽहं कपीश्वराः ॥ ५ ॥

दिनत्रयात्पुनः प्राणसहितो दग्धपक्षकः ।
देशं वा गिरिकूटान्वा न जाने भ्रान्तमानसः ॥ ६ ॥

शनैरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा तत्राश्रमं शुभम् ।
शनैः शनैराश्रमस्य समीपं गतवानहम् ॥ ७ ॥

चन्द्रमा नाम मुनिराड् दृष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत् ।
सम्पाते किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम् ॥ ८ ॥

जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि ।
दग्धौ किमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे ॥ ९ ॥

ततः स्वचेष्टितं सर्वं कथयित्वातिदुःखितः ।
अब्रवं मुनिशार्दूल दह्येऽहं दाववह्निना ॥ १० ॥

कथं धारयितुं शक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो ।
इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां दयार्द्रविलोचनः ॥ ११ ॥

शृणु वत्स वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ।
देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः ॥ १२ ॥

कर्म प्रवर्तते देहेऽहंबुद्ध्या पुरुषस्य हि ।
अहङ्कारस्त्वनादिः स्यादविद्यासम्भवो जडः ॥ १३ ॥

चिच्छायया सदा युक्तस्तप्तायःपिण्डवत्सदा ।
तेन देहस्य तादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत् ॥ १४ ॥

देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहङ्कृतेर्बलात् ।
तन्मूल एष संसारः सुखदुःखादिसाधकः ॥ १५ ॥

आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्यातादात्म्यतः सदा ।
देहोऽहं कर्मकर्ताहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा ॥ १६ ॥

जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बद्ध्यतेऽवशः ।
ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम् ॥ १७ ॥

अन्तमें सूर्यकी किरणोंसे पंख जल जानेके कारण यहाँ विन्ध्याचलके शिखरपर गिर पड़ा और हे कपीश्वरो ! बहुत ऊँचेसे गिरनेके कारण मूर्च्छित हो गया ॥ ४-५ ॥ जब तीन दिन पश्चात् मुझे चेत हुआ तो पंख जल जानेसे मेरा चित्त भ्रममें पड़ गया और मैं यह कुछ भी न जान सका कि यह कौन-सा देश अथवा गिरिशिखर है ॥ ६ ॥

फिर धीरे-धीरे नेत्र खोलनेपर मुझे वहाँ एक सुन्दर आश्रम दिखायी दिया। तब मैं शनैः-शनैः उस आश्रमके पास गया ॥ ७ ॥ वहाँ चन्द्रमा नामक मुनीश्वर रहते थे। उन्होंने मुझे देखकर विस्मयपूर्वक कहा—"सम्पाते ! यह क्या, तुम्हें आज इस प्रकार विरूप किसने कर दिया ? ॥ ८ ॥ मैं तुम्हें पहलेसे ही जानता हूँ, तुम तो बड़े बलवान् हो फिर तुम्हारे पंख कैसे जल गये ? यदि तुम ठीक समझो तो अपना सब वृत्तान्त कहो" ॥ ९ ॥

तब मैंने उन मुनिश्रेष्ठको अपनी सब करतूत सुनायी और फिर अति दुःखित होकर उनसे कहा—"अब मैं दावाग्निमें जल मरूँगा ॥ १० ॥ क्योंकि हे प्रभो ! बिना पंखोंके मैं किस प्रकार जीवन धारण कर सकता हूँ ?"

मेरे इस प्रकार कहनेपर मुनिवर दयावश नेत्रोंमें जल भरकर मेरी ओर देखते हुए बोले— ॥ ११ ॥ "बच्चा ! अब तुम मेरी बात सुनो। उसे सुनकर तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही करना। इस दुःखका आश्रय देह ही है और देह कर्मजन्य है ॥ १२ ॥ पुरुष जब देहमें अहं-बुद्धि करता है तभी कर्मकी प्रवृत्ति होती है, और यह अविद्या-जनित जड अहंकार अनादि है ॥ १३ ॥ (अग्निमें) तप्त लोहपिण्डके समान यह अहंकार सर्वदा चिदाभाससे व्याप्त है। उस चिदाभासविशिष्ट अहंकारका देहसे तादात्म्य (ऐक्य) होनेके कारण देह चेतनायुक्त होता है ॥ १४ ॥ अहंकारके कारण ही आत्माको 'मैं देह हूँ' यह बुद्धि होती है और उसीके कारण यह सुख-दुःखादिका देनेवाला जन्म-मरणरूप संसार प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ निर्विकार आत्माके साथ देहके इस मिथ्या तादात्म्यसे ही जीव सर्वदा यह संकल्प करके कि 'मैं देह हूँ और कर्मोंका करनेवाला हूँ' नाना प्रकारके कर्म करता है तथा विवश होकर उनके फलोंसे बँधता है। और इस प्रकार पाप-पुण्यके वशीभूत होकर सदा ऊँची-नीची योनियोंमें भ्रमता रहता

कृत मयाधिक पुण्य यज्ञदानादि निश्चितम् ।
स्वर्ग गत्वा सुख भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान्भवेत् ॥ १८ ॥

तथैवाध्यासतस्तत्र चिर भुक्त्वा सुख महत् ।
क्षीणपुण्य पतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदित ॥ १९ ॥

पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसयुत ।
भूमौ पतित्वा व्रीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिर पुन ॥ २० ॥

भूत्वा चतुर्विध भोज्य पुरुषैर्भुज्यते तत ।
रेतो भूत्वा पुनस्तेन ऋतौ स्त्रीयोनिसिञ्चित ॥ २१ ॥

योनिरक्तेन सयुक्त जरायुपरिवेष्टितम् ।
दिनेनैकेन कलल भूत्वा रूढत्वमाप्नुयात् ॥ २२ ॥

तत्पुन पञ्चरात्रेण बुद्बुदाकारतामियात् ।
सप्तरात्रेण तदपि मासपेशित्वमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

पक्षमात्रेण सा पेशी रुधिरेण परिप्लुता ।
तस्या एवाङ्कुरोत्पत्ति पञ्चविशतिरात्रिषु ॥ २४ ॥

ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवशस्तथोदरम् ।
पञ्चधाङ्गानि चैकैक जायन्ते मासत क्रमात् ॥ २५ ॥

पाणिपादौ तथा पार्श्व कटिर्जानु तथैव च ।
मासद्वयात्प्रजायन्ते क्रमेणैव न चान्यथा ॥ २६ ॥

त्रिभिर्मासै प्रजायन्ते अङ्गाना सन्धय क्रमात् ।
सर्वाङ्गुल्य प्रजायन्ते क्रमान्मासचतुष्टये ॥ २७ ॥

नासा कर्णौ च नेत्रे च जायन्ते पञ्चमासत ।
दन्तपङ्क्तिर्नखा गुह्य पञ्चमे जायते तथा ॥ २८ ॥

अर्वाक्षण्मासतश्छिद्र कर्णयोर्भवति स्फुटम् ।
पायुर्मेढमुपस्थ च नाभिश्चापि भवेन्नृणाम् ॥ २९ ॥

सप्तमे मासि रोमाणि शिर केशास्तथैव च ।
विभक्तावयवत्व च सर्व सम्पद्यतेऽष्टमे ॥ ३० ॥

जठरे वर्धते गर्भ स्त्रिया एव विहङ्गम ।
पञ्चमे मासि चैतन्य जीव प्राप्नोति सर्वश ॥ ३१ ॥

है ॥ १६-१७ ॥ वह ऐसे सकल्प करने लगता है कि मैने यज्ञ, दान आदि बहुत-से पुण्यकर्म किये है। अत मै निश्चय ही स्वर्गमे जाकर सुख भोगूँगा ॥ १८ ॥ ऐसे अध्याससे वह वहाँ (जाकर) चिरकालतक महान् सुख भोगता है और अन्तमे पुण्यक्षय हो जानेपर प्रारब्धकी प्रेरणासे, इच्छा न रहते हुए भी, नीचे गिरता है ॥ १९ ॥

"पहले वह चन्द्रमण्डलपर गिरता है। वहाँसे (चन्द्ररश्मियोके द्वारा) कुहिरेके साथ पृथ्वीपर आकर बहुत दिनोतक व्रीहि आदि धान्योमे रहता है ॥ २० ॥ फिर वह (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य) चार प्रकारके अन्नरूपसे पुरुषोद्वारा खाया जाता है और वीर्यरूपमे परिणत हो जाता है। तदनन्तर वह उसके द्वारा ऋतुकालमे स्त्रीकी योनिमे डाला जाता है ॥ २१ ॥ योनिमे स्थित रजसे मिलकर वह एक दिनमे ही झिल्लीसे लिपटे हुए कललके रूपमे परिणत होकर कुछ कठिन-सा हो जाता है ॥ २२ ॥ फिर पाँच रात्रिमे वह बुद्बुदाकार हो जाता है और सात रात्रि बीतनेपर मासपेशीके समान (अण्डाकार) हो जाता है ॥ २३ ॥ पद्रह दिनके भीतर उस पेशीमे रुधिर भर जाता है और पचीस रात्रिके पश्चात् उसमे अकुर उत्पन्न होने लगते है ॥ २४ ॥ एक मास हो जानेपर उसमे एक-एक करके क्रमश ग्रीवा, सिर, कन्धे, रीढकी हड्डी और पेट—ये पाँच अङ्ग उत्पन्न हो जाते है ॥ २५ ॥ फिर दो महीनेमे क्रमश हाथ, पाँव पसलियाँ, कमर और घुटन बन जाते है। इस क्रममे कभी भेद नही पडता ॥ २६ ॥ इसी क्रमसे तीन महीनेमे उसमे अङ्गोकी सन्धियाँ तथा चार महीनेमे समस्त अङ्गुलियाँ उत्पन्न हो जाती है ॥ २७ ॥ पाँच मास होनेपर नाक, कान और नेत्र बनते है तथा पाँचवे मासमे ही दन्तावली, नख और गुह्य स्थान भी उत्पन्न होते है ॥ २८ ॥ छठे मासके आरम्भमे ही कानोके छिद्र स्पष्ट हो जाते है तथा इसी समय गुदा, स्त्री-पुरुषके भेदसे योनि अथवा लिग तथा नाभि उत्पन्न होते है ॥ २९ ॥ सातवे महीनेमे रोम और सिरके केश प्रकट होते है तथा आठवे महीनेमे सब अङ्गोपाङ्ग अलग-अलग स्पष्ट हो जाते है ॥ ३० ॥

"हे पक्षिन् ! इस प्रकार स्त्रीके गर्भाशयमे गर्भ बढता है। जिस समय पाँचवाँ महीना होता है उसी समय जीवको

नाभिसूत्राल्परन्ध्रेण मातृभुक्तान्नसारत ।
वर्धते गर्भग पिण्डो न म्रियेत स्वकर्मत ॥ ३२ ॥

स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वकर्माणि सर्वश ।
जठरानलतप्तोऽयमिद वचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

नानायोनिसहस्रेषु जायमानोऽनुभूतवान् ।
पुत्रदारादिसम्बन्ध कोटिश पशुबान्धवान् ॥ ३४ ॥

कुटुम्बभरणासक्त्या न्यायान्यायैर्धनार्जनम् ।
कृत नाकरव विष्णुचिन्ता स्वप्नेऽपि दुर्भग ॥ ३५ ॥

इदानीं तत्फल भुञ्जे गर्भदु ख महत्तरम् ।
अशाश्वते शाश्वतवद्देहे तृष्णासमन्वित ॥ ३६ ॥

अकार्याण्येव कृतवान्न कृत हितमात्मन ।
इत्येव बहुधा दु खमनुभूय स्वकर्मत ॥ ३७ ॥

कदा निष्क्रमण मे स्याद्गर्भान्निरयसन्निभात् ।
इत ऊर्ध्व नित्यमह विष्णुमेवानुपूजये ॥ ३८ ॥

इत्यादि चिन्तयञ्जीवो योनियन्त्रप्रपीडित ।
जायमानोऽतिदु खेन नरकात्पातकी यथा ॥ ३९ ॥

पूतिव्रणान्निपतित कृमिरेष इवापर ।
ततो बाल्यादिदु खानि सर्व एव विभुञ्जते ॥ ४० ॥

त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानि च ।
न वर्णितानि मे गृध्र यौवनादिषु सर्वत ॥ ४१ ॥

एव देहोऽहमित्यस्मादध्यासान्निरयादिकम् ।
गर्भवासादिदु खानि भवन्त्यभिनिवेशत ॥ ४२ ॥

तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मान प्रकृते परम् ।
ज्ञात्वा देहादिममता त्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत् ॥ ४३ ॥

जाग्रदादिविनिर्मुक्त सत्यज्ञानादिलक्षणम् ।
शुद्ध बुद्ध सदा शान्तमात्मानमवधारयेत् ॥ ४४ ॥

चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे ।
देह पततु वारब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु ॥ ४५ ॥

चेतना-शक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ३१ ॥ गर्भस्थित पिण्ड अपनी नाभिमे लगे हुए नालके सूक्ष्म छिद्रसे प्राप्त माताके खाये हुए अन्नके रससे बढता है और अपने कर्म-वश मरता नही है ॥ ३२ ॥ उस समय अपने सम्पूर्ण पूर्व-जन्मोका और कर्मोका स्मरण करके जठरानलस सन्तप्त हुआ यह जीव इस प्रकार कहता है— ॥ ३३ ॥ "पहले कई सहस्र योनियोमे उत्पन्न होकर मैने करोडो बन्धु-बान्धव, पशुवर्ग और स्त्री-पुत्रादिके सम्बन्धका अनुभव किया है ॥ ३४ ॥ मुझ अभागेने उस समय स्वप्नमे भी भगवान् विष्णुका स्मरण नही किया, बस, अपन कुटुम्बके भरण-पोषणमे आसक्त होकर न्याय अथवा अन्यायसे धन कमानेमे ही लगा रहा ॥ ३५ ॥ अब उसका फलस्वरूप यह अति महान् गर्भ-दु ख भोग रहा हूँ और इस नश्वर देहको नित्य-सा समझकर इसकी तृष्णामे फँसा हुआ हूँ ॥ ३६ ॥ मै सदा अकार्य कर्म ही करता रहा, कभी अपना हित-साधन नही किया । अत अपने कर्मानुसार मे इसी प्रकार बहुत-से दु ख भोगता रहा ॥ ३७ ॥ अब न जाने इस नरकतुल्य गर्भसे मै कब निकलूँगा । फिर तो मै सर्वदा श्रीविष्णुभगवान्‌की ही उपासना करूँगा" ॥ ३८ ॥ ऐसी ही चिन्ता करते-करते वह जीव योनियन्त्रसे पीडित होता हुआ अति कष्टसे जन्म लेता हे, जेसे कोई पापी जीव नरकसे निकलता हो ॥ ३९ ॥ उस समय यह दुर्गन्धित व्रण (घाव) से गिरे हुए एक कीडेके समान होता है । फिर इसे बाल्यादि अवस्थाओके क्लेश भोगने पडते है । इस प्रकार सभी देहधारियोको ये कष्ट उठान पडते है ॥ ४० ॥

"हे गृध्र । इसके पीछे होनेवाले युवावस्था आदिके सब दु ख तूने भी स्वय देखे ही है और भी सब इन्हे जानते ही हे, इसलिये मैने इनका वर्णन नही किया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार 'मै देह हूँ' इस अभ्यासस उत्पन्न हुए देहाभिमानके कारण जीवको नरक और गर्भवास आदि अनेक दु ख उठाने पडते है ॥ ४२ ॥ अत मनुष्यको चाहिये कि अपने आत्माको प्रकृतिसे अतीत तथा स्थूल-सूक्ष्म दोनो प्रकारके शरीरोसे पृथक् जानकर देहादिकी ममता छोडकर आत्म-ज्ञानसम्पन्न हो ॥ ४३ ॥ आत्माको सर्वदा जाग्रत् आदि अवस्थाओसे रहित, सत्-चित्स्वरूप तथा शुद्ध, बुद्ध और शान्तरूप जाने ॥ ४४ ॥ चेतनस्वरूप आत्माका ज्ञान हो जानेपर जब अज्ञानजनित मोह नष्ट हो जाता है तो फिर यह देह प्रारब्ध-कर्मके वेगसे रहे अथवा जाय योगीको किसी

योगिनो न हि दु ख वा सुख वाज्ञानसम्भवम् ।
तस्माद्देहेन सहितो यावत्प्रारब्धसङ्क्षय ॥ ४६ ॥

तावत्तिष्ठ सुखेन त्व धृतकञ्चुकसर्पवत् ।
अन्यद्वक्ष्यामि ते पक्षिन् शृणु मे परम हितम् ॥ ४७ ॥

त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्यय ।
रावणस्य वधार्थाय दण्डकानागमिष्यति ॥ ४८ ॥

सीतया भार्यया सार्ध लक्ष्मणेन समन्वित ।
तत्राश्रमे जनकजा भ्रातृभ्या रहिते वने ॥ ४९ ॥

रावणश्चोरवन्नीत्वा लङ्काया स्थापयिष्यति ।
तस्या सुग्रीवनिर्देशाद्वानरा परिमार्गणे ॥ ५० ॥

आगमिष्यन्ति जलधेस्तीर तत्र समागम ।
त्वया तै कारणवशाद्भविष्यति न सशय ॥ ५१ ॥

तदा सीतास्थितिं तेभ्य कथयस्व यथार्थत ।
तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ ॥ ५२ ॥

सम्पातिरुवाच

बोधयामास मा चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वर ।
पश्यन्तु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ ॥ ५३ ॥

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीता द्रक्ष्यथ निश्चयम् ।
यत्न कुरुध्व दुर्लङ्घ्यसमुद्रस्य विलङ्घने ॥ ५४ ॥

यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमित
　　ससारवारानिधि
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परम
　　विष्णो पद शाश्वतम् ।
तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगता
　　रामस्य भक्ता प्रिया
यूय किं न समुद्रमात्रतरणे
　　शक्ता कथ वानरा ॥ ५५ ॥

प्रकारका अज्ञानजन्य सुख-दु ख नही होता ।

"अत जबतक तेरा प्रारब्ध क्षय न हो तबतक काँचुलीसहित सर्पके समान आनन्दपूर्वक देह धारण करके रह । इसके अतिरिक्त हे पक्षिन् ! तेरे परम हितकी एक बात और बतलाता हूँ, सुन ॥ ४५—४७ ॥ त्रेता-युगमे अविनाशी नारायणदेव महाराज दशरथके यहाँ अवतार लेकर रावणका वध करनेके लिये अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके सहित दण्डकारण्यमे आयेगे ॥ ४८ ॥ वहाँ दोनो भाइयोके तपोवनसे चले जानेपर रावण श्रीजानकीजीको सूने आश्रमसे चोरके समान ले जाकर लकामे रखेगा । तदनन्तर वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे उन्हे खोजते हुए कुछ वानरगण समुद्रतटपर आयेगे, वहाँ किसी कारण-विशेषसे तेरे साथ उनका समागम होगा—इसमे सन्देह नही ॥ ४९—५१ ॥ तब तू उन्हे सीताजीका ठीक-ठीक पता बतला देना । बस, उसी समय तेरे फिर नये पख उत्पन्न हो जायँगे" ॥ ५२ ॥

सम्पाति बोला— (हे वानरेश्वरगण !) इस प्रकार मुझे चन्द्र नामक मुनीश्वरने समझाया । (इससे मै शान्त होकर इस समयकी प्रतीक्षामे रहने लगा ।) देखिये अब मेरे यह अति कोमल नवीन पख निकल आये है ॥ ५३ ॥ आपलोगोका कल्याण हो, अब मै जाना चाहता हूँ । इसमे सन्देह नही, आपलोग सीताजीको अवश्य देखेगे । केवल इस दुर्लङ्घ्य समुद्रके लाँघनेका प्रयत्न कीजिये ॥ ५४ ॥ हे वानरगण ! जिनके नामके स्मरणमात्रसे बडे दुष्टजन भी इस अपार ससार-सागरको पार करके भगवान् विष्णुके सनातन परमपदको प्राप्त कर लेते है, आपलोग तो, त्रिलोकीकी स्थिति करनेवाले उन्ही भगवान् रामके प्रिय भक्तगण है । फिर इस क्षुद्र समुद्रमात्रको पार करनेमे आप क्यो समर्थ न होगे ? ॥ ५५ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डेऽष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

★

नवम सर्ग

समुद्रोल्लङ्घनकी मन्त्रणा

श्रीमहादेव उवाच

गते विहायसा गृध्रराजे वानरपुङ्गवा ।
हर्षेण महताविष्टा सीतादर्शनलालसा ॥ १ ॥

ऊचु समुद्र पश्यन्तो नक्रचक्रभयङ्करम् ।
तरङ्गादिभिरुन्नद्धमाकाशमिव दुर्ग्रहम् ॥ २ ॥

परस्परमवोचन्वै कथमेन तरामहे ।
उवाच चाङ्गदस्तत्र शृणुध्व वानरोत्तमा ॥ ३ ॥

भवन्तोऽत्यन्तबलिन शूराश्च कृतविक्रमा ।
को वात्र वारिधि तीर्त्वा राजकार्य करिष्यति ॥ ४ ॥

एतेषा वानराणा स प्राणदाता न सशय ।
तदुत्तिष्ठतु मे शीघ्र पुरतो यो महाबल ॥ ५ ॥

वानराणा च सर्वेषा रामसुग्रीवयोरपि ।
स एव पालको भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

इत्युक्ते युवराजेन तूष्णीं वानरसैनिका ।
आसन्नोचु किञ्चिदपि परस्परविलोकिन ॥ ७ ॥

अङ्गद उवाच

उच्यता वै बल सर्वै प्रत्येक कार्यसिद्धये ।
केन वा साध्यते कार्य जानीमस्तदनन्तरम् ॥ ८ ॥

अङ्गदस्य वच श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा बल पृथक् ।
योजनाना दशारभ्य दशोत्तरगुण जगु ॥ ९ ॥

शतादर्वाग्जाम्बवास्तु प्राह मध्ये वनौकसाम् ।
पुरा त्रिविक्रमे देवे पाद भूमानलक्षणम् ॥ १० ॥

त्रि सप्तकृत्वोऽहमगा प्रदक्षिणविधानत ।
इदानीं वार्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलङ्घितुम् ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति। गृध्रराज सम्पातिके आकाश-मार्गसे चले जानेपर सीताजीके दर्शनोके लिये अति उत्कण्ठित वानरगण (उनका पता लग जानेके कारण) अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १ ॥ किन्तु जब उन्होने नाको और भँवर आदिके कारण अत्यन्त भयङ्कर उत्ताल तरगोसे उछलते हुए तथा आकाशके समान दुर्लङ्घ्य समुद्रकी ओर देखा तो वे आपसमे कहने लगे कि हम इसे किस प्रकार पार कर सकेगे। तब अङ्गदजीने कहा—"हे वानरश्रेष्ठगण। सुनिये— ॥ २-३ ॥ आपलोग सभी अत्यन्त बलवान्, शूरवीर और पराक्रमी है। अत आपमसे ऐसा कौन है जो समुद्र लाँघकर राजकार्य सम्पन्न करे ॥ ४ ॥ वह नि सन्देह इन समस्त वानरोको प्राण-दान करनेवाला होगा। अत जो महाबलवान् वीर ऐसा हो वह शीघ्र ही मेरे सामने आवे ॥ ५ ॥ इसमे कोई सन्देह नही, वही सम्पूर्ण वानरोकी, सुग्रीवकी और स्वय भगवान् रामकी भी रक्षा करनेवाला होगा" ॥ ६ ॥

युवराज अङ्गदके इस प्रकार कहनेपर समस्त वानर-सेनापति चुपचाप बैठे रहे, किसीके मुखसे एक शब्द भी न निकला, परस्पर एक-दूसरेका मुख ताकते रह गये ॥ ७ ॥

अङ्गद बोले—अच्छा, इस कार्यको करनेके लिये सब लोग अपनी शक्तिका वर्णन करो। तब इस बातका पता चल जायगा कि इसे कौन साध सकेगा ॥ ८ ॥

अङ्गदजीकी यह बात सुनकर सब वानर-वीर पृथक्-पृथक् अपना बल बतलाने लगे। उनमेसे एक-एकने दस योजनसे लेकर क्रमश दस-दस योजन अधिक जानेतककी अपनी सामर्थ्य बतायी ॥ ९ ॥ अन्तमे, उन सब वनचरोमेसे जाम्बवान्ने अपनी शक्ति सौ योजनके भीतरतक जानेकी बतायी। वे बोले—"पूर्वकालमे जब भगवान्ने त्रिविक्रम अवतार लिया था तो मै उनके पृथ्वीके बराबर परिमाणवाले चरणके चारो ओर परिक्रमा करनेके लिये इक्कीस बार फिरा था। किन्तु अब मुझे वृद्धावस्थाने दबा लिया है इसलिये मै समुद्रको नही लाँघ सकता" ॥ १०-११ ॥

अङ्गदोऽप्याह मे गन्तु शक्य पार महोदधे ।
पुनर्लङ्घनसामर्थ्य न जानाम्यस्ति वा न वा ॥ १२ ॥

तमाह जाम्बवान्वीरस्त्व राजा नो नियामक ।
न युक्त त्वा नियोक्तु मे त्व समर्थोऽसि यद्यपि ॥ १३ ॥

अङ्गद उवाच

एव चेत्पूर्ववत्सर्वे स्वप्स्यामो दर्भविष्टरे ।
केनापि न कृत कार्य जीवितु च न शक्यते ॥ १४ ॥

तमाह जाम्बवान्वीरो दर्शयिष्यामि ते सुत ।
येनास्माक कार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरणे च ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा जाम्बवान्प्राह हनूमन्तमवस्थितम् ।
हनूमन्कि रहस्तूर्ष्णी स्थीयते कार्यगौरवे ॥ १६ ॥

प्राप्तेऽज्ञेनेव सामर्थ्य दर्शयाद्य महाबल ।
त्व साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रम ॥ १७ ॥

रामकार्यार्थमेव त्व जनितोऽसि महात्मना ।
जातमात्रेण ते पूर्व दृष्ट्वोद्यन्त विभावसुम् ॥ १८ ॥

पक्व फल जिघृक्षामीत्युत्प्लुत बालचेष्टया ।
योजनाना पञ्चशत पतितोऽसि ततो भुवि ॥ १९ ॥

अतस्त्वद्बलमाहात्म्य को वा शक्नोति वर्णितुम् ।
उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्य न पाहि सुव्रत ॥ २० ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्य हनूमानतिहर्षित ।
चकार नाद सिहस्य ब्रह्माण्ड स्फोटयन्निव ॥ २१ ॥

बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापर ।
लङ्घयित्वा जलनिधि कृत्वा लङ्का च भस्मसात् ॥ २२ ॥

रावण सकुल हत्वानेष्ये जनकनन्दिनीम् ।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावण वामपाणिना ॥ २३ ॥

लङ्का सपर्वता धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम् ।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥ २४ ॥

अङ्गदजीने भी कहा—"मै इस महासागरके पार तो जा सकता हूँ, किन्तु फिर लौटनेकी सामर्थ्य है या नही यह नही जानता" ॥ १२ ॥ तब वीरवर जाम्बवान्ने उनसे कहा—"अङ्गदजी ! इस कार्यके करनेमे यद्यपि आप सर्वथा समर्थ है तथापि आपको इस कार्यमे नियुक्त करना हमे ठीक नही जँचता, क्योकि आप हमारे नायक और नियामक है" ॥ १३ ॥

अङ्गद बोले—"यदि ऐसी बात है, तो हम सबको (प्रायोपवेशनका सकल्प करके) फिर पूर्ववत् कुशासनो-पर ही पड रहना चाहिये, क्योकि यह काम तो किसीसे हुआ नही, फिर जीवन भी कैसे रह सकता है" ॥ १४ ॥

तब वीरवर जाम्बवान्ने कहा—'बेटा ! जिसके हाथसे हमारा यह कार्य बहुत शीघ्र ही सिद्ध होगा, उस वीरको मैं तुझे दिखलाता हूँ" ॥ १५ ॥

यो कहकर जाम्बवान्ने वहाँ बैठे हुए हनुमान्जीसे कहा—"हे हनूमन् ! इस महान् कार्यके उपस्थित होनेपर आप इस प्रकार अनजानके समान चुपचाप एकान्तमे क्यो बैठे है ? हे महावीर ! आप साक्षात् पवनदेवके पुत्र है और उन्हीके समान पराक्रमी है, अत आज अपनी सामर्थ्य दिखलाइये ॥ १६-१७ ॥ महात्मा वायुने राम-कार्यके लिये ही आपको उत्पन्न किया है । जिस समय आपका जन्म हुआ था उसी समय आप सूर्यको उदय हुआ देखकर 'इस पके फलको लेना चाहिये' इस इच्छासे बाललीलासे ही पाँच सौ योजन ऊँचे उछलकर पृथ्वीपर गिरे थे ॥ १८-१९ ॥ अत ऐसा कौन है जो आपके बलका माहात्म्य वर्णन कर सके । हे सुव्रत ! आप खडे हो जाइये और यह रामकार्य करके हम सबकी रक्षा कीजिये" ॥ २० ॥

जाम्बवान्के ये वचन सुनकर हनूमान्जी अति प्रसन्न हुए और उन्होने समस्त ब्रह्माण्डको मानो कम्पायमान करते हुए घोर सिहनाद किया ॥ २१ ॥ दूसरे त्रिविक्रम भगवान्के समान वे पर्वताकार हो गये, (और कहने लगे—) "हे वानरो ! मै समुद्रको लाँघकर लकाको भस्म कर डालूँगा और रावणको उसके कुलसहित मारकर श्रीजानकीजीको ले आऊँगा, अथवा कहो तो, रावणके गलेमे रस्सी डालकर और लकाको त्रिकूट पर्वतसहित बाये हाथपर उठाकर भगवान् रामके आगे ले जाकर डाल

श्रुत्वा हनुमतो वाक्य जाम्बवानिदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वैवागच्छ भद्र ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ॥ २५ ॥

पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् ।
कल्याण भवताद्भद्र गच्छतस्ते विहायसा ॥ २६ ॥

गच्छन्त रामकार्यार्थ वायुस्त्वामनुगच्छतु ।
इत्याशीर्भि समामन्त्र्य विसृष्ट प्लवगाधिपै ॥ २७ ॥

महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुतदर्शन ॥ २८ ॥

महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा
सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्र ।
महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहु-
र्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतै ॥ २९ ॥

दूँ, या केवल शुभलक्षणा जानकीजीको देखकर ही चला आऊँ' ॥ २२—२४ ॥

हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर जाम्बवान्‌ने कहा—"हे वीर ! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा जानकीजीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ ॥ २५ ॥ फिर रामचन्द्रजीके साथ जाकर अपना पुरुषार्थ दिखलाना। हे भद्र ! आकाशमार्गसे जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो ॥ २६ ॥ रामकार्यके लिये जाते समय वायु तुम्हारा अनुगमन करे।"

इस प्रकार आशीर्वादोसे अभिनन्दन करते हुए वानर-यूथपोके विदा करनेपर हनुमान्‌जी महेन्द्रपर्वतके शिखरपर चढ गये। वहाँ उन्होने अद्भुत रूप धारण किया ॥ २७-२८ ॥ उस समय समस्त प्राणियोको वायुपुत्र महात्मा हनुमान्‌जी महान् पर्वतराजके समान विशालकाय, सुवर्णवर्ण अरुण (बालसूर्य) के समान मनोहर मुखवाले और महान् सर्पराजके समान दीर्घ भुजाओवाले दिखलायी देने लगे ॥ २९ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे किष्किन्धाकाण्डे नवम सर्ग ॥ ९ ॥

★

समाप्तमिद किष्किन्धाकाण्डम्

★

ॐ

अध्यात्मरामायण



सुन्दरकाण्ड



प्रथम सर्ग

हनुमान्‌जीका समुद्रोल्लङ्घन और लका-प्रवेश

श्रीमहादेव उवाच

शतयोजनविस्तीर्ण समुद्र मकरालयम्।
लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मज ॥ १ ॥

ध्यात्वा राम परात्मानमिद वचनमब्रवीत्।
पश्यन्तु वानरा सर्वे गच्छन्त मा विहायसा ॥ २ ॥

अमोघ रामनिर्मुक्त महाबाणमिवाखिला ।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥ ३ ॥

कृतार्थोऽह कृतार्थोऽह पुन पश्यामि राघवम्।
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन् ॥ ४ ॥

नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपार याति तत्पदम्।
किं पुनस्तस्य दूतोऽह तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिक ॥ ५ ॥

तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम्।
इत्युक्त्वा हनुमान्बाहू प्रसार्यायतवालधि ॥ ६ ॥

ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टि सन्नाकुञ्चितपदद्वय ।
दक्षिणाभिमुखस्तूर्ण पुप्लुवेऽनिलविक्रम ॥ ७ ॥

आकाशात्त्वरित देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम स ।
दृष्ट्वानिलसुत देवा गच्छन्त वायुवेगत ॥ ८ ॥

परीक्षणार्थ सत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन्।
गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रम ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति। आनन्दघन श्रीहनुमान्‌जी सौ योजनतक फैले हुए और मकरादि दुष्ट जल-जन्तुओसे पूर्ण समुद्रको लाँघनेके लिये उद्यत हो परमात्मा रामका स्मरण कर इस प्रकार बोले—"हे वानरगण। तुम सब इस ओर देखो। मै भगवान् रामके छोडे हुए अमोघ बाणके समान आकाश-मार्गसे जाता हूँ। मै आज ही रामप्रिया जनकनन्दिनी श्रीसीताजीको देखूँगा ॥ १—३ ॥ निश्चय ही, अब मै कृतकार्य होकर ही पुन श्रीरघुनाथजीका दर्शन करूँगा। प्राण-प्रयाणके समय जिनके नामका एक बार स्मरण करनेसे ही मनुष्य अपार ससार-सागरको पार कर उनके परमधामको चला जाता है, फिर मै उन्हीका दूत उनके अवयवरूप अँगुलीकी अँगूठी लिये हुए अपने हृदयमे उन्हीका ध्यान करता हुआ इस तुच्छ समुद्रको लाँघ जाऊँ तो इसमे कौन-सी बडी बात है?" ऐसा कह श्रीहनुमान्‌जीने अपनी बाँहे फैलायी और पूँछको सीधा किया तथा तुरत ही गरदनको सीधा एव दृष्टिको ऊपरकी ओर कर पाँव सिकोड लिये और दक्षिणकी ओर मुख करके वायु-वेगसे उडान लगायी ॥ ४—७ ॥

उस समय वे देवताओके देखते-देखते आकाश-मार्गसे बडे तीव्र वेगसे जा रहे थे। पवनपुत्र हनुमान्‌जीको इस प्रकार वायु-वेगसे जाते देख देवताओने उनकी सामर्थ्यकी परीक्षाके लिये आपसमे इस प्रकार कहा—'यह महाशक्तिशाली वानर वायुके समान तीव्र वेगसे जा

लङ्का प्रवेष्टु शक्तो वा न वा जानीमहे बलम् ।
एव विचार्य नागाना मातर सुरसाभिधाम् ॥ १० ॥

अब्रवीद्देवतावृन्द कौतूहलसमन्वित ।
गच्छ त्व वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्न समाचर ॥ ११ ॥

ज्ञात्वा तस्य बल बुद्धि पुनरेहि त्वरान्विता ।
इत्युक्ता सा ययौ शीघ्र हनुमद्विघ्नकारणात् ॥ १२ ॥

आवृत्य मार्ग पुरत स्थित्वा वानरमब्रवीत् ।
एहि मे वदन शीघ्र प्रविशस्व महामते ॥ १३ ॥

देवैस्त्व कल्पितो भक्ष्य क्षुधासम्पीडितात्मन ।
तामाह हनुमान्मातरह रामस्य शासनात् ॥ १४ ॥

गच्छामि जानकीं द्रष्टु पुनरागम्य सत्वर ।
रामाय कुशल तस्या कथयित्वा त्वदाननम् ॥ १५ ॥

निवेक्ष्ये देहि मे मार्ग सुरसायै नमोऽस्तु ते ।
इत्युक्त्वा पुनरेवाह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥ १६ ॥

प्रविश्य गच्छ मे वक्त्र नो चेत्त्वा भक्षयाम्यहम् ।
इत्युक्तो हनुमानाह मुख शीघ्र विदारय ॥ १७ ॥

प्रविश्य वदन तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वित ।
इत्युक्त्वा योजनायामदेहो भूत्वा पुर स्थित ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा हनूमतो रूप सुरसा पञ्चयोजनम् ।
मुख चकार हनुमान् द्विगुण रूपमादधत् ॥ १९ ॥

ततश्चकार सुरसा योजनाना च विंशतिम् ।
वक्त्र चकार हनुमास्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥ २० ॥

ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम् ।
वक्त्र तदा हनूमास्तु बभूवाङ्गुष्ठसन्निभ ॥ २१ ॥

प्रविश्य वदन तस्या पुनरेत्य पुर स्थित ।
प्रविष्टो निर्गतोऽह ते वदन देवि ते नम ॥ २२ ॥

एव वदन्त दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
गच्छ साधय रामस्य कार्य बुद्धिमता वर ॥ २३ ॥

रहा है ॥ ८—९ ॥ किन्तु पता नही यह लङ्कामे घुस सकेगा या नही। अत इसके बलका पता लगाना चाहिये।' परस्पर ऐसा विचारकर उन्होने कुतूहलवश नागमाता सुरसासे कहा—"सुरसे! तुम अभी जाकर इस वानरश्रेष्ठके मार्गमे कुछ विघ्न खडा करो और इसकी बल-बुद्धिका पता लगाकर तुरत लौट आओ।" देवताओंके इस प्रकार कहनेपर वह तुरत ही हनुमान्‌जीको विघ्न उपस्थित करनेके लिये गयी ॥ १०—१२ ॥ वह उनके मार्गको सामनेसे रोककर खडी हो गयी और बोली—"हे महामते! आओ, शीघ्र ही मेरे मुखमे प्रवेश करो, मै भूखसे अत्यन्त व्याकुल थी, अत देवताओने तुम्हे मेरा भक्ष्य बनाया है।" तब हनुमान्‌जीने उसस कहा—"हे मात! मे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे जानकीजीको देखनेके लिये जा रहा हूँ। वहॉसे शीघ्र ही लौटकर श्रीरघुनाथजीको उनका कुशल-समाचार सुनाकर फिर मै तेरे मुखमे प्रवेश करूँगा। हे सुरसे! मै तुझे प्रणाम करता हूँ, तू मेरा मार्ग छोड दे।" इसपर सुरसाने फिर कहा—"मुझे बडी भूख लगी है। अत एक बार मेरे मुखमे प्रवेश करके फिर चले जाना, नही तो मै तुम्हे खा जाऊँगी।" तब हनुमान्‌जीने कहा—'अच्छा तो शीघ्र ही अपना मुख खोल। मै अभी तेरे मुखमे घुसकर तुरत ही लकाको चला जाऊँगा।" ऐसा कह हनुमान्‌जी अपना शरीर एक योजन लम्बा-चौडा बनाकर सामने खडे हो गये ॥ १३—१८ ॥

हनुमान्‌जीका वह रूप देखकर सुरसाने अपना मुख पॉच योजन फैलाया, तब हनुमान्‌जीने अपना शरीर उससे दूना कर लिया ॥ १९ ॥ फिर सुरसाने अपना मुख बीस योजनका किया तो हनुमान्‌जीने अपना देह तीस योजन कर लिया ॥ २० ॥ इसपर जब सुरसाने अपना मुख पचास योजन फैलाया तो हनुमान्‌जी अँगूठेके समान छोटे-से आकारके हो गये और चट उसके मुखमे जाकर बाहर निकल आये तथा उसके सामने खडे होकर बोले—"हे देवि! मै तुम्हारे मुखमे जाकर फिर निकल आया हूँ, अब तुम्हे नमस्कार है" ॥ २१-२२ ॥ हनुमान्‌जीको इस प्रकार कहते देख सुरसा बोली—"हे बुद्धिमानोमें श्रेष्ठ! जाओ, श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करो।

देवै सम्प्रेषिताह ते बल जिज्ञासुभि कपे ।
दृष्ट्वा सीता पुनर्गत्वा राम द्रक्ष्यसि गच्छ भो ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोक वायुसुत पुन ।
जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट् ॥ २५ ॥

समुद्रोऽप्याह मैनाक मणिकाञ्चनपर्वतम् ।
गच्छत्येष महासत्त्वो हनूमान्मारुतात्मज ॥ २६ ॥

रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थ तस्य त्व सचिवो भव ।
सगरैर्वर्द्धितो यस्मात्पुराह सागरोऽभवम् ॥ २७ ॥

तस्यान्वये बभूवासौ रामो दाशरथि प्रभु ।
तस्य कार्यार्थसिद्ध्यर्थ गच्छत्येष महाकपि ॥ २८ ॥

त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूर्ण त्वयि विश्रम्य गच्छतु ।
स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नत ॥ २९ ॥

नानामणिमयै शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृति ।
प्राह यान्त हनूमन्त मैनाकोऽह महाकपे ॥ ३० ॥

समुद्रेण समादिष्टस्त्वद्विश्रामाय मारुते ।
आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि मे ॥ ३१ ॥

विश्रम्यात्र क्षण पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् ।
एवमुक्तोऽथ त प्राह हनूमान्मारुतात्मज ॥ ३२ ॥

गच्छतो रामकार्यार्थ भक्षण मे कथ भवेत् ।
विश्रामो वा कथ मे स्याद्गन्तव्य त्वरित मया ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा स्पृष्टशिखर कराग्रेण ययौ कपि ।
किञ्चिद्दूर गतस्यास्य छाया छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ ३४ ॥

सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा ।
आकाशगामिना छायामाक्रम्याकृष्य भक्षयेत् ॥ ३५ ॥

तया गृहीतो हनुमाश्चिन्तयामास वीर्यवान् ।
केनेद मे कृत वेगरोधन विघ्नकारिणा ॥ ३६ ॥

हे वानर ! देवतालोग तुम्हारा बल जानना चाहते थे । अत उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा था । मुझे निश्चय है कि तुम सीताजीको देखकर फिर शीघ्र ही रघुनाथजीसे मिलोगे । अब तुम जाओ' ॥ २३-२४ ॥

ऐसा कहकर सुरसा देवलोकको चली गयी और श्रीहनुमान्जी फिर आकाश-मार्गसे पक्षिराज गरुडके समान चलने लगे ॥ २५ ॥ इसी समय समुद्रने भी सुवर्ण और मणियोसे युक्त मैनाक पर्वतसे कहा—"देखो, ये महाशक्तिशाली पवनपुत्र हनुमान्जी रामकार्यके लिये जा रहे है, तुम उनकी सहायता करो। पूर्वकालमे मुझे सगरपुत्रोने बढाया था इसीसे मै सागर कहलाता हूँ ॥ २६-२७ ॥ ये दशरथनन्दन भगवान् राम उन्हींके वशमे प्रकट हुए है और ये कपिराज उन्हीका कार्य सिद्ध करनेके लिये जा रहे है ॥ २८ ॥ तुम तुरन ही जलसे ऊपर उठ जाओ, जिससे ये तुम्हारे ऊपर कुछ देर विश्राम लेकर आगे जायँ ।" तब मैनाक पर्वत 'बहुत अच्छा' कह तुरत अपने अनेक मणिमय शिखरोसे पानीसे ऊपर बहुत ऊँचा निकल आया । और उन शृगोके ऊपर मनुष्याकारसे स्थित होकर उसने जाते हुए हनुमान्जीसे कहा—"हे महाकपे ! मै मैनाक हूँ ! हे मारुते ! समुद्रने मुझे तुम्हे विश्राम देनेके लिये आज्ञा दी है। आओ, मेरे ये अमृत-तुल्य पके फलोको खाकर ॥ २९—३१ ॥ कुछ देर यहाँ विश्राम करके फिर आनन्दपूर्वक चले जाना ।" मैनाकके इस प्रकार कहनेपर पवनपुत्र हनुमान्जी बोले— ॥ ३२ ॥ "रामकार्यके लिये जाते हुए मै भोजनादि कैसे कर सकता हूँ ? और मुझे जल्दी ही जाना है, अत विश्रामका अवकाश भी कहाँ है ? ॥ ३३ ॥

ऐसा कह कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी (मैनाकका मान रखनेके लिये) उसके शिखरको केवल अँगुलीसे छूकर आगे चल दिये। वे कुछ ही आगे बढे थे कि उनकी छायाको एक छायाग्रहने पकड लिया ॥ ३४ ॥ वह सिंहिका नामकी एक घोर राक्षसी थी जो सदा जलमे रहकर आकाशमे जाते हुए जीवोकी छाया पकडकर उन्हे खीच लेती थी और खा जाया करती थी ॥ ३५ ॥ उससे पकडे जानेपर महापराक्रमी श्रीहनुमान्जी सोचने लगे—'यह ऐसा कौन विघ्नकारक है जिसने मेरा वेग रोक

दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते ।
एव विचिन्त्य हनूमानधो दृष्टि प्रसारयत् ॥ ३७ ॥

तत्र दृष्ट्वा महाकाया सिहिका घोररूपिणीम् ।
पपात सलिले तूर्ण पद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥ ३८ ॥

पुनरुत्प्लुत्य हनुमान्दक्षिणाभिमुखो ययौ ।
ततो दक्षिणमासाद्य कूल नानाफलद्रुमम् ॥ ३९ ॥

नानापक्षिमृगाकीर्ण नानापुष्पलतावृतम् ।
ततो ददर्श नगर त्रिकूटाचलमूर्धनि ॥ ४० ॥

प्राकारैर्बहुभिर्युक्त परिखाभिश्च सर्वत ।
प्रवेक्ष्यामि कथ लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४१ ॥

रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽह लङ्का रावणपालिताम् ।
एव विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्का जगाम स ॥ ४२ ॥

धृत्वा सूक्ष्म वपुर्द्वार प्रविवेश प्रतापवान् ।
तत्र लङ्कापुरी साक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥ ४३ ॥

प्रविशन्त हनूमन्त दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत् ।
कस्त्व वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम् ॥ ४४ ॥

प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान्कर्तुमिच्छति ।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम् ॥ ४५ ॥

हनुमानपि ता वाममुष्टिनावज्ञयाहनत् ।
तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम् ॥ ४६ ॥

उत्थाय प्राह सा लङ्का हनूमन्त महाबलम् ।
हनूमन् गच्छ भद्र ते जिता लङ्का त्वयानघ ॥ ४७ ॥

पुराह ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविशतिपर्यये ।
त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्यय ॥ ४८ ॥

जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि ।
भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽय मया क्वचित् ॥ ४९ ॥

लिया ? दिखायी तो यहाँ कोई देता नही, इससे मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है। ऐसे सोचते-सोचते उन्होने अपनी दृष्टि नीचेकी ओर की तो उन्हे वहाँ बडा विकराल रूप और स्थूल शरीरवाली सिहिका राक्षसी दिखलायी दी। उसे देखते ही वे तुरत जलमे कूद पडे और बडे क्रोधसे उसे लातोसे ही मार डाला ॥ ३६—३८ ॥ इसके पश्चात् हनुमान्जी फिर उछलकर दक्षिणकी ओर चलने लगे और समुद्रके दक्षिणतटपर पहुँच गये, जहाँ नाना प्रकारके फलवाले वृक्ष लगे हुए थे ॥ ३९ ॥ और जो तरह-तरहके पक्षियो और मृगोसे पूर्ण तथा विविध भाँतिकी पुष्पलताओसे आवृत था। वहाँ पहुँचकर उन्होने त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई लकापुरी देखी जो सब ओरसे अनेको परकोटो और खाइयोसे घिरी हुई थी। उसे देखकर वे सोचने लगे कि मुझे किस प्रकार इस नगरमे जाना चाहिये ॥ ४०-४१ ॥ फिर निश्चय किया कि मै रात्रिके समय सूक्ष्म शरीर धारण कर इस रावणप्रतिपालित लकापुरीमे प्रवेश करूँगा। यह विचारकर वे वही ठहर गये और फिर (रात्रि होनेपर) लकाकी ओर चले ॥ ४२ ॥

जिस समय महाप्रतापी श्रीहनुमान्जीने सूक्ष्म शरीर धारणकर नगरके द्वारमे प्रवेश किया उस समय वहाँ साक्षात् लकापुरी राक्षसीका रूप धारण किये खडी थी ॥ ४३ ॥ उसने हनुमान्जीको नगरमे जाते देख डाँटा और पूछा—"तू कौन है जो इस रात्रिके समय मुझ लकिनीका अनादर कर चोरके समान वानररूपसे नगरमे जा रहा है ? और (यहाँ) तू क्या करना चाहता है ?" ऐसा कह उसने क्रोधसे आँखे लाल कर उनके लात मारी ॥ ४४-४५ ॥ तब हनुमान्जीने उसकी अवज्ञा करते हुए उसे बाये हाथका घूँसा मारा, जिससे वह बहुत-सा रुधिर वमन करती हुई पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ४६ ॥ फिर कुछ देर पीछे लकिनीने उठकर महाबली हनुमान्जीसे कहा—"हे हनुमन् ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, हे अनघ ! तुम लकापुरीको जीत चुके ॥ ४७ ॥ पूर्वकालमे मुझसे श्रीब्रह्माजीने कहा था कि 'अट्ठाईसवे चतुर्युगके त्रेतायुगमे अविनाशी नारायणदेव दशरथकुमार रामरूपसे अवतीर्ण होगे और उनकी योगमाया महाराज जनकके घरमे सीताजी होकर प्रकट होगी, क्योकि मैने पहले कभी उनसे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की

सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम् ।
तत्र सीता महामाया रावणोऽपहरिष्यति ॥ ५० ॥

पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति ।
सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान्प्रेषयिष्यति ॥ ५१ ॥

तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम् ।
त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना ॥ ५२ ॥

तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदानघे ।
तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥ ५३ ॥

तस्मात्त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयानघ ।
रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥ ५४ ॥

तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कुला ।
अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशपा नाम मध्यगः ॥ ५५ ॥

तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता ।
दृष्ट्वैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥ ५६ ॥

धन्याहमप्यद्य चिराय राघव-
स्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचिनी ।
तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम
प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥ ५७ ॥

उल्लङ्घितेऽब्धौ पवनात्मजेन
धरासुतायाश्च दशाननस्य ।
पुस्फोर वामाक्षि भुजश्च तीव्रं
रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ॥ ५८ ॥

थी ॥ ४८-४९ ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी भाई लक्ष्मण और भार्या सीताके सहित महावन (दण्डकारण्य) मे जायँगे। वहाँ महामायारूपिणी श्रीसीताजीको रावण हर ले जायगा ॥ ५० ॥ तदनन्तर रामके साथ सुग्रीवकी मित्रता होगी और सुग्रीव जानकीजीकी खोजके लिये वानरोको भेजेगा ॥ ५१ ॥ उनमेसे एक वानर रात्रिके समय तेरे पास आयेगा। वह तुझसे तिरस्कृत होनेपर तेरे मुक्का मारेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे ! जिस समय तू उसके प्रहारसे व्याकुल हो जायगी उसी समय रावणका अन्त होगा— इसमे सन्देह नही ॥ ५३ ॥ अतः हे निष्पाप हनुमन् ! तुमने (मुझ) लकाको जीत लिया तो सभीको जीत लिया। रावणके अन्तःपुरमे एक अत्युत्तम क्रीडावन है ॥ ५४ ॥ उसमे दिव्य वृक्षोसे सम्पन्न एक अशोकवाटिका है। उसके बीचो-बीचमे एक अति विशाल शिंशपा (सीसमका) वृक्ष है ॥ ५५ ॥ श्रीजानकीजी वहीपर भयकर राक्षसियोके पहरेमे रहती है। तुम उनका दर्शन कर शीघ्र ही श्रीरघुनाथजीको उनका समाचार सुनाओ ॥ ५६ ॥ आज बहुत दिनोमे मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी ससार-बन्धनको नष्ट करनेवाली स्मृति हुई है और उनके भक्तका अति दुर्लभ सङ्ग प्राप्त हुआ है। अतः आज मै धन्य हूँ। मेरे हृदयमे विराजमान वे दशरथनन्दन राम मुझपर सदा प्रसन्न रहे'' ॥ ५७ ॥

पवननन्दन हनुमान्जीके समुद्र लाँघते ही पृथ्वीपुत्री श्रीसीताजी और रावणकी बायी भुजा और बाये नेत्र तथा इन्द्रियातीत श्रीरामचन्द्रजीके दाये अङ्ग बडे जोरसे फडकने लगे ॥ ५८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

हनुमान्‌जीका वाटिकामे जाना तथा रावणका सीताजीको भय दिखलाना

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम्।
रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परित पुरीम्॥ १॥

सीतान्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम्।
तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान्कपि ॥ २॥

नापश्यज्जानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काभिभाषितम्।
जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम्॥ ३॥

सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम्।
नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्णप्रासादशोभिताम्॥ ४॥

फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम्।
विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्ष मरुत्सुत ॥ ५॥

ददर्शाभ्रलिहं तत्र चैत्यप्रासादमुत्तमम्।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो मणिस्तम्भशतान्वितम्॥ ६॥

समतीत्य पुनर्गत्वा किञ्चिद्दूरं स मारुति।
ददर्श शिंशपावृक्षमत्यन्तनिविडच्छदम्॥ ७॥

अदृष्टातपमाकीर्णं स्वर्णवर्णविहङ्गमम्।
तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थिता जनकनन्दिनीम्॥ ८॥

ददर्श हनुमान् वीरो देवतामिव भूतले।
एकवेणीं कृशा दीना मलिनाम्बरधारिणीम्॥ ९॥

भूमौ शयाना शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम्।
त्रातार नाधिगच्छन्तीमुपवासकृशां शुभाम्॥ १०॥

शाखान्तच्छदमध्यस्थो ददर्श कपिकुञ्जर।
कृतार्थोऽह कृतार्थोऽह दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम्॥ ११॥

मयैव साधित कार्य रामस्य परमात्मन।
तत किलकिलाशब्दो बभूवान्त पुराद्बहि ॥ १२॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति। तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जी अति सुशोभिता लकापुरीमे गये और सूक्ष्म शरीर धारण कर रात्रिमे नगरमे सब ओर घूमते रहे॥ १॥ सीताजीका पता लगानेके लिये वे राजमन्दिरमे घुस गये, वहाँ सब ओर ढूँढनेपर भी जब उन्हे जानकीजी न मिली तो उन्हे लकिनीका कथन याद आया और वे तुरत ही अति मनोज्ञ अशोकवाटिकामे पहुँचे॥ २-३॥ वह वाटिका कल्पवृक्षोसे पूर्ण थी, उसकी बावडियोकी सीढियाँ रत्नजटित थी, उसमे नाना प्रकारके पक्षी और मृगगण विचर रहे थे तथा सुवर्णनिर्मित महलोकी अपूर्व शोभा थी॥ ४॥ वह वाटिका फलोके भारसे झुकी हुई शाखाओवाले वृक्षोसे घिरी हुई थी। वहाँ प्रत्येक वृक्षके नीचे जानकीजीको ढूँढते-ढूँढते पवननन्दन हनुमान्‌जीने एक अति सुन्दर देवालय देखा। वह इतना ऊँचा था कि उसके शिखर बादलोसे टकराते थे। सैकडो मणिमय-स्तम्भोसे युक्त उस देवालयको देखकर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ॥ ५-६॥ उससे कुछ और आगे बढे तो उन्होंने एक अत्यन्त घने पत्तोंवाला शिशपा (सीसमका) वृक्ष देखा॥ ७॥ उसके नीचे धूप कभी नही जाती थी और वह सुनहरी पक्षियोसे आकीर्ण था। वीरवर हनुमान्‌जीने देखा कि उस वृक्षके नीचे श्रीजानकीजी पृथ्वीपर स्थित देवताके समान राक्षसियोसे घिरी हुई बैठी है। उनके बालोकी जुडकर एक वेणी हो गयी है, वे अत्यन्त दुर्बल और दीन-अवस्थामे है तथा मैले-कुचैले वस्त्र धारण किये हुए है॥ ८-९॥ ऐसी अवस्थामे पृथ्वीपर पडी हुई वे अतिशोकपूर्वक 'राम-राम' कह रही है। उन्हे अपना कोई रक्षक भी दिखायी नही देता और वे उपवास करनेसे अति दुर्बल हो गयी है॥ १०॥

कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जी शाखाओके पत्तोमे छिपकर उन्हे देखने लगे और मन-ही-मन कहने लगे कि 'आज जानकीजीको देखकर मै कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। अहा। परमात्मा रामका कार्य मेरे ही द्वारा सिद्ध हुआ।' इसी समय अन्त पुरमेसे बडे किलकिला शब्दकी आवाज

किमेतदिति संल्लीनो वृक्षपत्रेषु मारुति ।
आयान्त रावण तत्र स्त्रीजनै परिवारितम् ॥ १३ ॥

दशास्य विशतिभुज नीलाञ्जनचयोपमम् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्न पत्रखण्डेष्वलीयत ॥ १४ ॥

रावणो राघवेणाशु मरण मे कथ भवेत् ।
सीतार्थमपि नायाति राम किं कारण भवेत् ॥ १५ ॥

इत्येव चिन्तयन्नित्य राममेव सदा हृदि ।
तस्मिन्दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिप ॥ १६ ॥

स्वप्ने रामेण सन्दिष्ट कश्चिदागत्य वानर ।
कामरूपधर सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥

इति दृष्ट्वाद्भुत स्वप्न स्वात्मन्येवानुचिन्त्य स ।
स्वप्न कदाचित्सत्य स्यादेव तत्र करोम्यहम् ॥ १८ ॥

जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दु खिता नितरामहम् ।
करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानर ॥ १९ ॥

इत्येव चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् ।
नूपुराणा किङ्किणीना श्रुत्वा शिञ्जितमङ्गना ॥ २० ॥

सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा ।
अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा ॥ २१ ॥

रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याह सुमध्यमे ।
मा दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे ॥ २२ ॥

रामो वनचराणा हि मध्ये तिष्ठति सानुज ।
कदाचिद्दृश्यते कैश्चित्कदाचिन्नैव दृश्यते ॥ २३ ॥

मया तु बहुधा लोका प्रेषितास्तस्य दर्शने ।
न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणा समन्तत ॥ २४ ॥

किं करिष्यसि रामेण नि स्पृहेण सदा त्वयि ।
त्वया सदालिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा ॥ २५ ॥

आयी ॥ ११-१२ ॥ तब हनुमान्‌जीने यह सोचकर कि 'यह क्या गडबड है' वृक्षके पत्तोमे छिपे-छिपे देखा कि स्त्रियोसे घिरा हुआ रावण उसी ओर आ रहा है ॥ १३ ॥ उसके दस मुख, बीस भुजा और कज्जल-समूहके समान काले शरीरको देखकर हनुमान्‌जीको बडा विस्मय हुआ और वे पत्तोमे छिप गये ॥ १४ ॥

रावणको सदा यही चिन्ता रहती थी कि 'किस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे जल्दी-से-जल्दी मेरा मरण हो, न जाने क्या कारण है कि वे अभीतक सीताके लिये भी नही आये ?' इस प्रकार निरन्तर भगवान् रामका ही हृदयमे स्मरण रहनेसे राक्षसराज रावणने उसी दिन शेषरात्रिमे स्वप्नमे देखा कि रामका सन्देश लेकर आया हुआ कोई स्वेच्छारूपधारी वानर सूक्ष्म शरीरसे वृक्षकी शाखापर बैठा हुआ देख रहा है ॥ १५—१७ ॥ इस अद्भुत स्वप्नको देखकर उसने अपने मनमे सोचा—'कदाचित् यह स्वप्न ठीक ही हो, अत अब अशोकवनमे चलकर मुझे एक काम करना चाहिये—मै जानकीजीको अपने वाग्बाणोसे बेधकर अत्यन्त दु खी करूँ, जिससे वह वानर यह सब देखकर रमचन्द्रजीको सुनावे' ॥ १८-१९ ॥

यह सोचकर वह तुरत सीताजीके पास चला । (उसके साथकी स्त्रियोके) नूपुर (पायजेब) और किंकिणी (करधनी) आदिकी झनकार सुनकर सुन्दर कटिवाली कल्याणी सीताजी घबडाकर अपने शरीरको सिकोड नीचेको मुख करके बैठ गयी। उस समय उनके नेत्रोमे जल भर आया और हृदय भगवान् राममे लग गया ॥ २०-२१ ॥ सीताजीको देखकर रावण बोला—"हे कमनीय कटि और सुन्दर भृकुटिवाली ! तू मुझे देखकर वृथा क्यो इतनी सिकुडती है ? ॥ २२ ॥ अब, राम तो अपने भाईके साथ वनचरोमे रहता है, वह कभी तो किसीको दिखायी देता है और कभी दिखायी भी नही देता ॥ २३ ॥ मैने तो उसे देखनेके लिये कितने ही लोग भेजे, किन्तु बहुत प्रयत्नपूर्वक सब ओर देखनेपर भी वह उनको कही दिखायी नही दिया ॥ २४ ॥ अब रामसे तुझे क्या काम है ? वह तो तुझसे सदा उदासीन रहता है । सदा तेरे पास रहते हुए और सदा तुझसे आलिगित होते हुए भी

हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते।
त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघव ॥ २६ ॥

भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधम ।
त्वमानीता मया साध्वी दु खशोकसमाकुला ॥ २७ ॥

इदानीमपि नायाति भक्तिहीन कथ व्रजेत्।
नि सत्त्वो निर्ममो मानी मूढ पण्डितमानवान् ॥ २८ ॥

नराधम त्वद्विमुख किं करिष्यसि भामिनि।
त्वय्यतीव समासक्त मा भजस्वासुरोत्तमम् ॥ २९ ॥

देवगन्धर्वनागाना यक्षकिन्नरयोषिताम्।
भविष्यसि नियोक्त्री त्व यदि मा प्रतिपद्यसे ॥ ३० ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा सीतामर्षसमन्विता।
उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥ ३१ ॥

राघवाद्बिभ्यता नून भिक्षुरूप त्वया धृतम्।
रहिते राघवाभ्या त्व शुनीव हविरध्वरे ॥ ३२ ॥

हृतवानसि मा नीच तत्फल प्राप्स्यसेऽचिरात्।
यदा रामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥ ३३ ॥

उसके हृदयमे अभीतक तेरे प्रति स्नेह नही हुआ। रामको तुझसे जितने भोग प्राप्त हुए है और तुझमे जितने गुण है उन सबको भोगकर भी वह कृतघ्न, गुणहीन और अधम कभी उनकी याद भी नही करता। देखो, मै तुम्हे हर ले आया, तुम उसकी सुशीला पत्नी हो और इस समय दु ख-शोकसे व्याकुल हो रही हो तो भी वह अभीतक नही आया, जब उसे तुझमे प्रेम ही नही है तो आता कैसे ? वह सर्वथा असमर्थ, ममताशून्य, अभिमानी, मूर्ख और अपनेको बडा बुद्धिमान् माननेवाला है ॥ २५-२८ ॥ हे भामिनि। अपनेसे उदासीन उस नराधमसे तुझे क्या लेना है ?* देख, मै राक्षसश्रेष्ठ तुझसे अत्यन्त प्रेम करता हूँ, अत तू मुझे ही अगीकार कर ॥ २९ ॥ यदि तू मेरे अधीन रहेगी तो देव, गन्धर्व, नाग, यक्ष और किन्नर आदिकी स्त्रियोका शासन करेगी" ॥ ३० ॥

रावणके ये वचन सुनकर सीताजीको बडा क्रोध हुआ। उन्होने सिर नीचा कर लिया और बीचमे तृण रखकर † कहा ॥ ३१ ॥ "अरे नीच! इसमे सन्देह नही, श्रीरघुनाथजीसे डरकर ही तूने भिक्षुका रूप धारण किया था और उन दोनो रघुश्रेष्ठोकी अनुपस्थितिमे ही, कुत्ता जिस प्रकार सूनी यज्ञशालासे हवि ले जाता है उसी प्रकार तू मुझे हर लाया है, सो बहुत शीघ्र ही उसका फल पायेगा। जिस समय भगवान् रामकी बाणवर्षासे विदीर्ण

* यहाँ २३ से २८ श्लोकतक रावणने गूढभावसे निन्दाके मिषसे भगवान् रामकी स्तुति की है। इनका तात्पर्य इस प्रकार है—

राम अपने भाईके सहित वनवासी तपस्वियोमे रहते है। उनमेसे वे (ध्यान-धारणादिद्वारा) कभी किसीको दिखायी देते है और कभी (ध्यान-धारणासे भी) दिखायी नही देते ॥ २३ ॥ मैने तो उनका साक्षात्कार करनेके लिये कई बार अपनी इन्द्रियोको उधर लगाया है किन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी मुझे उनका साक्षात्कार नही हुआ ॥ २४ ॥ (तुम साक्षात् योगमाया हो, परब्रह्मरूप रामके साथ तुम्हारा सदा सहवास है और उसके साथ तादात्म्य भी है किन्तु) फिर भी वह सर्वदा नि स्पृह और असग है। उसे तुम्हारी परवा नही है ॥ २५ ॥ नि स्पृह और असग होनेसे परब्रह्मरूप रामको तुम मायारूपिणीसे बन्धन भी नही होता और न वह तुम्हारे (मायाके) गुण या भोगोमे ही फँसता है ॥ २६ ॥ साख्यवादीगण (उपचारसे) उसे भोक्ता भी कहते है तथापि उन्हीके मतानुसार जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य इस श्रुतिके अनुसार वह मै भोक्ता हूँ ऐसा अभिमान नही करता। इसी प्रकार वह कृतघ्न (किये हुए कर्मोका नाश करनेवाला), निर्गुण (सत्त्व, रज, तमसे रहित) और अधम (न धमति शब्दविषयो भवति—जो शब्दका विषय न हो अर्थात् अशब्द) भी है ॥ २७ ॥ उसकी मायापर प्रीति नही है इसलिये वह अभीतक नही आया। इससे रावण अपनेको लक्ष्य करके कहता है कि वह अब भी मेरे हृदयमे नही आता, क्योकि भक्तिहीन होनेसे मेरा हृदय उसतक कैसे पहुँच सकता है ? वह निर्गुण, ममतारहित अमानी, मूढ (म्=शिव +उ =ब्रह्मा ताभ्याम् ऊढ —ध्यानविषयन्नीत अर्थात् शिव और ब्रह्माके ध्येय) और विद्वानोमे सम्मानित है ॥ २८ ॥ नराधम (नरा अधमा यस्मात् स नराधम मनुष्य जिससे अधम हैं अर्थात् पुरुषोत्तम), विमुख (माया-पराङ्मुख)।

† पतिव्रता स्त्रीको पर-पुरुषसे प्रत्यक्ष वार्तालाप नही करना चाहिये। यदि कोई अनिवार्य प्रसग आ पडे तो भी कोई जड वस्तु ही बीचमें रख लेनी चाहिये। इस नियमके अनुसार ही सीताजीने बीचमें तृण रखा था।

ज्ञास्यसेऽमानुष राम गमिष्यसि यमान्तिकम् ।
समुद्र शोषयित्वा वा शरैर्बद्ध्वाथ वारिधिम् ॥ ३४ ॥

हन्तु त्वा समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वित ।
आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम ॥ ३५ ॥

त्वा सपुत्र सहबल हत्वा नेष्यति मा पुरम् ।
श्रुत्वा रक्ष पति क्रुद्धो जानक्या परुषाक्षरम् ॥ ३६ ॥

वाक्य क्रोधसमाविष्ट खड्गमुद्यम्य सत्वर ।
हन्तु जनकराजस्य तनया ताम्रलोचन ॥ ३७ ॥

मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता ।
त्यजैना मानुषीं दीना दु खिता कृपणा कृशाम् ॥ ३८ ॥

देवगन्धर्वनागाना बह्व्य सन्ति वराङ्गना ।
त्वामेव वरयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचना ॥ ३९ ॥

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृतानना ।
यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना ।
तथा यतध्व त्वरित तर्जनादरणादिभि ॥ ४० ॥

द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत् ।
तदा सर्वसुखोपेता राज्य भोक्ष्यति सा मया ॥ ४१ ॥

यदि मासद्वयादूर्ध्व मच्छय्या नाभिनन्दति ।
तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्त पुरालयम् ।
राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्य स्वतर्जनै ॥ ४३ ॥

तत्रैका जानकीमाह यौवन ते वृथा गतम् ।
रावणेन समासाद्य सफल तु भविष्यति ॥ ४४ ॥

अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि ।
इदानीं छेद्यतामङ्ग विभज्य च पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥

अन्या तु खड्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता ।
अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ॥ ४६ ॥

होकर तू यमलोकको जायगा, उस समय ही तू अमानव रामको जानेगा । अरे राक्षसाधम ! इसमे सन्देह नही, तू शीघ्र ही देखेगा कि तुझे युद्धमे मारनेके लिये भाई लक्ष्मणसहित भगवान् राम समुद्रको सुखाकर अथवा उसपर बाणोका पुल बनाकर यहाँ आयेगे ॥ ३२—३५ ॥ और तुझे पुत्र और सेनाके सहित मारकर मुझे अयोध्यापुरी ले जायेगे ।"

जानकीजीके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रावणको अत्यन्त क्रोध हुआ और वह क्रोधसे नेत्र लाल कर तुरत ही खड्ग खीचकर जनकनन्दिनी सीताजीको मारनेपर उतारू हो गया ॥ ३६-३७ ॥ तब, पतिके हितमे तत्पर रहनेवाली महारानी मन्दोदरीने अपने पतिको रोकते हुए कहा—"पतिदेव ! इस दीना, क्षीणा, दु खिया एव कातर मानवीको छोड दीजिये ॥ ३८ ॥ आपके लिये तो देवता, गन्धर्व और नागादिकोकी ऐसी अनेको मदमत्तनयना मनोहारिणी महिलाएँ हैं, जो बडे चावसे आपहीको वरण करना चाहती है" ॥ ३९ ॥

तब रावणने बहुत-सी विकराल वदनवाली राक्षसियोसे कहा—"हे निशाचरियो ! भय अथवा आदर जिस उपायसे भी सीता कामनायुक्त होकर शीघ्र ही मेरे अधीन हो जाय, तुम सब लोग वही करो ॥ ४० ॥ यदि दो महीनेके भीतर वह मेरे वशीभूत हो जायगी तो सर्व-सुख-सम्पन्न होकर वह मेरे साथ राज्य भोगेगी ॥ ४१ ॥ और यदि दो महीनेतक भी यह मेरी शय्यापर आना स्वीकार न करे तो इस मानवीको मारकर मेरा प्रात कालका कलेवा बना देना" ॥ ४२ ॥

ऐसा कह रावण अपनी स्त्रियोके साथ अन्त पुरको चला गया और राक्षसियाँ सीताजीके पास आकर उन्हे अपने-अपने उपायोसे भयभीत करने लगीं ॥ ४३ ॥ उनमेसे एक बोली—"जानकि ! तेरा यौवन वृथा ही गया, यदि तू रावणका सहवास करे तो यह सफल हो जाय" ॥ ४४ ॥ दूसरीने क्रोध दिखाते हुए कहा—"जानकि ! अब (हमारी बात माननेमे) देर क्यो करती है ?' इसी प्रकार कोई खड्ग निकालकर जानकीजीको मारनेके लिये तैयार होकर बोली कि "इसके अगोको काटकर अभी अलग-अलग कर डालो ।" तथा कोई भयकर मुखवाली राक्षसी अपना मुख फाडकर डराने

एव ता भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः ।
निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

शृणुध्व दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्य वो हित भवेत् ॥ ४८ ॥

न भीषयध्व रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् ।
इदानीमेव मे स्वप्ने राम कमललोचन ॥ ४९ ॥

आरुह्यैरावत शुभ्र लक्ष्मणेन समागत ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वा हत्वा रावणमाहवे ॥ ५० ॥

आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्धनि ।
रावणो गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बर ॥ ५१ ॥

अगाहत्पुत्रपौत्रैश्च कृत्वा वदनमालिकाम् ।
विभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानस ॥ ५२ ॥

सेवा करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसयुत ।
सर्वथा रावण रामो हत्वा सकुलमञ्जसा ॥ ५३ ॥

विभीषणायाधिपत्य दत्त्वा सीतां शुभाननाम् ।
अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न सशय ॥ ५४ ॥

त्रिजटाया वच श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रिय ।
तूष्णीमासस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागता ॥ ५५ ॥

तर्जिता राक्षसीभि सा सीता भीतातिविह्वला ।
त्रातार नाधिगच्छन्ती दु खेन परिमूर्च्छिता ॥ ५६ ॥

अश्रुभि पूर्णनयना चिन्तयन्तीदमब्रवीत् ।
प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मा न सशय ।
इदानीमेव मरण केनोपायेन मे भवेत् ॥ ५७ ॥

एव सुदु खेन परिप्लुता सा
विमुक्तकण्ठ रुदती चिराय ।
आलम्ब्य शाखा कृतनिश्चया मृतौ
न जानती कञ्चिदुपायमङ्गना ॥ ५८ ॥

लगी ॥ ४५-४६ ॥ तब सीताजीको इस प्रकार डराती हुई उन विकृतवदना राक्षसियोको रोककर त्रिजटा नामकी एक वृद्धा राक्षसी बोली— ॥ ४७ ॥ ''अरी दुष्टा राक्षसियो। मेरी बात सुनो, इसीसे तुम्हारा हित होगा ॥ ४८ ॥ तुम इन रोती-बिलखती जानकीजीको मत डराओ, बल्कि इन्हे नमस्कार करो। मैने अभी-अभी स्वप्नमे देखा है कि कमललोचन भगवान् राम लक्ष्मणके साथ श्वेत ऐरावत हाथीपर चढकर आये है और मैने उन्हे सम्पूर्ण लकापुरीको जलाकर तथा रावणको युद्धमे मारकर सीताजीको अपनी गोदमे लिये पर्वत-शिखरपर बैठे हुए देखा है। रावण गलेमे मुण्डमाला पहने, शरीरमे तैल लगाये, नगा होकर अपने पुत्र-पौत्रोके साथ गोबरके कुण्डमे डुबकी लगा रहा है और विभीषण प्रसन्नचित्तसे रघुनाथजीके पास बैठा हुआ अति भक्तिपूर्वक उनकी चरण-सेवा कर रहा है। इससे निश्चय होता है कि रामचन्द्रजी अनायास ही रावणका कुलसहित नाश कर विभीषणको लकाका राज्य देगे और सुमुखी सीताको गोदमे बिठाकर निस्सन्देह अपने नगरको चले जायेगे' ॥ ४९—५४ ॥

त्रिजटाके ये वचन सुनकर राक्षसियाँ डर गयी। वे चुपचाप जहाँ-तहाँ बैठ गयी और कुछ देर पीछे उन्हे नीद आ गयी ॥ ५५ ॥ राक्षसियोके डरानेसे सीताजी अत्यन्त भयभीत और विह्वल हो गयी और अपना कोई सहायक न देखकर वे दु खसे मूर्च्छित हो गयी ॥ ५६ ॥ फिर आँखोमे आँसू भरकर अति चिन्ताकुल होकर इस प्रकार कहने लगीं—''इसमे सन्देह नही, प्रात काल होते ही राक्षसियाँ मुझे खा जायँगी। ऐसा कौन उपाय है जिससे मुझे अभी मौत आ जाय'' ॥ ५७ ॥ इस प्रकार मौतका निश्चय करके भी उसका कोई साधन न देखकर कल्याणी सीता वृक्षकी शाखा पकडे हुए अत्यन्त दु खसे भरकर बहुत देरतक फूट-फूटकर रोती रही ॥ ५८ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे सुन्दरकाण्डे द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

★

तृतीय सर्ग

जानकीजीसे भेट, वाटिका-विध्वस और ब्रह्मपाश-बन्धन

श्रीमहादेव उवाच

उद्बन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीर राघव विना।
जीवितेन फल किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यत ॥ १ ॥

दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति।
एव निश्चितबुद्धि ता मरणायाथ जानकीम्॥ २ ॥

विलोक्य हनुमान्किञ्चिद्विचार्यैतदभाषत।
शनै शनै सूक्ष्मरूपो जानक्या श्रोत्रग वच ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकुवशसम्भूतो राजा दशरथो महान्।
अयोध्याधिपतिस्तस्य चत्वारो लोकविश्रुता ॥ ४ ॥

पुत्रा देवसमा सर्वे लक्षणैरुपलक्षिता।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा॥ ५ ॥

ज्येष्ठो राम पितुर्वाक्याद्दण्डकारण्यमागत।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह॥ ६ ॥

उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्या महामना।
तत्र नीता महाभागा सीता जनकनन्दिनी॥ ७ ॥

रहिते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
ततो रामोऽतिदु खार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम्॥ ८ ॥

जटायुष पक्षिराजमपश्यत्पतित भुवि।
तस्मै दत्त्वा दिव शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत्॥ ९ ॥

सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मन ।
तद्भार्याहारिण हत्वा वालिन रघुनन्दन ॥ १० ॥

राज्येऽभिषिच्य सुग्रीव मित्रकार्य चकार स ।
सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान्वानरप्रभु ॥ ११ ॥

प्रेषयामास परितो वानरान्परिमार्गणे।
सीतायास्तत्र चैकोऽह सुग्रीवसचिवो हरि ॥ १२ ॥

सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लङ्घ्य शतयोजनम्।
समुद्र नगरीं लङ्का विचिन्वञ्जानकीं शुभाम्॥ १३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! इस प्रकार रोते-रोते सीताजीने सोचा—"अच्छा तो, मै फॉसी लगाकर ही अपना शरीर क्यो न छोड दूँ ? इन राक्षसियोके बीचमे रहकर रघुनाथजीके बिना जीनेसे लाभ ही क्या है ? ॥ १ ॥ फॉसी लगानेके लिये मेरी लबी बेणी पर्याप्त होगी।" जानकीजीको इस प्रकार मरनेका निश्चय करती देख सूक्ष्मरूपधारी श्रीहनुमान्‌जी हृदयमे कुछ विचारकर उनके कानोमे पडनेयोग्य धीमी वाणीसे शनै-शनै इस प्रकार कहने लगे॥ २-३ ॥ "इक्ष्वाकु-वशमे उत्पन्न हुए अयोध्याधिपति महाराज दशरथ बडे प्रतापी थे। उनके त्रिलोकीमे विख्यात चार पुत्र हुए। वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारो ही देवताओके समान शुभ लक्षणोसे सम्पन्न है॥ ४-५ ॥ उनमेसे बडे भाई राम भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताके सहित अपने पिताकी आज्ञासे दण्डकारण्यमे आये थे। वे महामना वहाँ गौतमी नदीके तीरपर पञ्चवटी-आश्रममे रहते थे। उस आश्रमसे श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमे दुरात्मा रावण महाभागा जनकनन्दिनी सीताजीको ले गया। तब अति शोकाकुल भगवान् रामने जानकीजीको इधर-उधर ढूँढते हुए पृथ्वीपर पडे पक्षिराज जटायुको देखा। उसे तुरत ही दिव्यधाम पहुँचाकर वे ऋष्यमूक-पर्वतपर आये॥ ६—९ ॥ वहाँ आकर आत्मदर्शी भगवान् रामने सुग्रीवसे मित्रता की और उसकी स्त्रीका हरण करनेवाले दुष्ट वालीको मारकर उसे राज्यपदपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार श्रीरघुनन्दनने मित्रका कार्य सिद्ध किया। वानरराज सुग्रीवने भी समस्त वानरोको बुलाकर सब ओर सीताजीकी खोज करनेके लिये भेजा। उन्हीमेसे एक मै भी सुग्रीवका मन्त्री वानर हूँ। मै सम्पातिके कथनानुसार सौ योजन समुद्र लॉघकर तुरत लङ्कापुरीमे आया और यहाँ सर्वत्र शुभलक्षणा सीताजीको

शनैरशोकवनिका विचिन्वञ् शिंशपातरुम्।
अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसम्प्लुताम् ॥ १४ ॥

रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः ।
इत्युक्त्वोपरराामाथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥ १५ ॥

सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमाययौ ।
किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम् ॥ १६ ॥

स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत्।
निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत्कुतो भ्रमः ॥ १७ ॥

येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम्।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥ १८ ॥

श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान्पत्रखण्डतः ।
अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः ॥ १९ ॥

कलविङ्कप्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः ।
ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥ २० ॥

दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः ।
मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः ॥ २१ ॥

इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीदधोमुखी ।
पुनरप्याह तां सीतां देवि यत्त्वं विशङ्कसे ॥ २२ ॥

नाहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मयि स्थिताम्।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः ॥ २३ ॥

सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे।
वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने ॥ २४ ॥

तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम्।
वानराणां मनुष्याणां सङ्गतिर्घटते कथम् ॥ २५ ॥

यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे ।
तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः ॥ २६ ॥

ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः ।
सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ ॥ २७ ॥

ढूँढा। शनैः-शनैः अशोकवाटिकामें ढूँढते-ढूँढते मैंने यह शिंशपा वृक्ष देखा और यहाँ रामचन्द्रजीकी महारानी देवी जानकीजीको अतिक्लेशसे शोक करते पाया। इनके दर्शनसे मेरा यहाँ आना सफल हो गया।'' ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् श्रीहनुमान्‌जी मौन हो गये ॥ १०—१५ ॥

क्रमशः ये सब बातें सुनकर सीताजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगीं, 'मैंने जो आकाशमें शब्द सुना है वह क्या वायुका उच्चारण किया हुआ है ? ॥ १६ ॥ अथवा स्वप्न या मेरे मनकी भ्रान्ति है ? अथवा यह सब सत्य ही तो नहीं है, क्योंकि दुःखके कारण नींद तो मुझे आती नहीं, (फिर स्वप्न कैसे हो सकता है ?) और मैं प्रत्यक्ष सुन रही हूँ इसलिये यह भ्रम भी कैसे हो सकता है ? (अतः निश्चय ही यह सब यथार्थ है) ॥ १७ ॥ सुतरां, जिसने मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले ये वचन कहे हैं वह प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हो' ॥ १८ ॥

जानकीजीके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जी शनैः-शनैः उस वृक्षके पत्र-भागसे उतरकर सीताजीके सामने खड़े हो गये ॥ १९ ॥ उस समय उन्होंने अरुण वदन, पीतवर्ण और कलविंक (चटक) पक्षीके बराबर आकारवाले वानरके रूपसे धीरेसे सामने आकर सीताजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ २० ॥ उसे देखकर जानकीजीको यह भय हुआ कि मुझे फँसानेके लिये मायासे वानररूप धारणकर यह रावण ही आया है ॥ २१ ॥ यह सोचकर वे चुपचाप नीचेको मुख किये बैठी रहीं। तब हनुमान्‌जीने सीताजीसे फिर कहा—''देवि ! आप जैसी आशंका कर रही हैं मैं वह नहीं हूँ। हे मातः ! मेरे विषयमें आपको जो शङ्का हो रही है उसे दूर करें। हे शुभप्रदे ! मैं तो कोसलाधिपति परमात्मा रामका दास और वानरराज सुग्रीवका मन्त्री हूँ तथा हे शोभने ! सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणस्वरूप पवनदेवका मैं पुत्र हूँ'' ॥ २२—२४ ॥

यह सुनकर श्रीजानकीजीने हाथ बाँधे खड़े हुए हनुमान्‌जीसे कहा—''तुम जो कहते हो कि मैं श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ, सो भला वानर और मनुष्योंकी मित्रता कैसे हो सकती है ?'' तब सामने खड़े हुए हनुमान्‌जीने प्रसन्न होकर जानकीजीसे कहा ॥ २५-२६ ॥ शबरीकी प्रेरणासे परम बुद्धिमान् भगवान् राम ऋष्यमूक पर्वतपर आये। उस पर्वतपर बैठे हुए सुग्रीवने जब

भीतो मा प्रेषयामास ज्ञातु रामस्य हृद्गतम्।
ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वा गतोऽह रामसन्निधिम् ॥ २८ ॥

ज्ञात्वा रामस्य सद्भाव स्कन्धोपरि निधाय तौ।
नीत्वा सुग्रीवसामीप्य सख्य चाकरव तयो ॥ २९ ॥

सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना त रघूत्तम।
जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३० ॥

सुग्रीव वानराणा स प्रेषयामास वानरान्।
दिग्भ्यो महाबलान्वीरान्भवत्या परिमार्गणे ॥ ३१ ॥

गच्छन्त राघवो दृष्ट्वा मामभाषत सादरम् ॥ ३२ ॥

त्वयि कार्यमशेष मे स्थित मारुतनन्दन।
ब्रूहि मे कुशल सर्व सीतायै लक्ष्मणस्य च ॥ ३३ ॥

अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम्।
सीतायै दीयता साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा प्रददौ मह्य कराग्रादङ्गुलीयकम्।
प्रयत्नेन मयानीत देवि पश्याङ्गुलीयकम् ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा प्रददौ देव्यै मुद्रिका मारुतात्मज।
नमस्कृत्य स्थितो दूराद्बद्धाञ्जलिपुटो हरि ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्किता तदा।
मुद्रिका शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा ॥ ३७ ॥

कपे मे प्राणदाता त्व बुद्धिमानसि राघवे।
भक्तोऽसि प्रियकारी त्व विश्वासोऽस्ति तवैव हि ॥ ३८ ॥

नो चेन्मत्सन्निधि चान्य पुरुष प्रेषयेत्कथम्।
हनूमन्दृष्टमखिल मम दु खादिक त्वया ॥ ३९ ॥

सर्व कथय रामाय यथा मे जायते दया।
मासद्वयावधि प्राणा स्थास्यन्ति मम सत्तम ॥ ४० ॥

नागमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मा खल।
अत शीघ्र कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वित ॥ ४१ ॥

वानरानीकपै सार्धं हत्वा रावणमाहवे।
सपुत्रं सबल रामो यदि मा मोचयेत्प्रभु ॥ ४२ ॥

(दूरहीसे) राम और लक्ष्मणको आते देखा तो मनमे भय मानकर मुझे उनका आशय जाननेके लिये भेजा। तब मैं ब्रह्मचारीका वेष बनाकर रामजीके पास आया ॥ २७-२८ ॥ और उनका शुद्ध भाव जानकर उन्हे कन्धेपर चढा सुग्रीवके पास ले गया तथा (राम और सुग्रीव) दोनोकी मित्रता करा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवकी पत्नीको वालीने छीन लिया था। रघुनाथजीने उसे एक ही बाणसे मारकर सुग्रीवको वानरोके राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। तब सुग्रीवने आपकी खोजके लिये बडे-बडे वीर और पराक्रमी वानरोको दिशा-विदिशाओमे भेजा ॥ ३०-३१ ॥ उस समय मुझे चलता देख श्रीरघुनाथजीने मुझसे आदरपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ 'हे पवननन्दन! मेरा सब काम तुम्हारे ऊपर निर्भर है। तुम सीताजीसे मेरी और लक्ष्मणकी सब कुशल कहना ॥ ३३ ॥ तथा अपनी पहचानके लिये मेरी यह उत्तम अँगूठी जिसपर मेरे नामके अक्षर खुदे हुए है, सीताजीको अति सावधानीसे दे देना' ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन्होने अपनी अँगुलीसे उतारकर वह अँगूठी मुझे दी। मैं उसे बडी सावधानीसे लाया हूँ। देवि! आप यह अँगूठी देखिये" ॥ ३५ ॥ ऐसा कह हनुमान्‌जीने वह अँगूठी देवी जानकीजीको दे दी और नमस्कार कर हाथ जोडे हुए दूर खडे हो गये ॥ ३६ ॥ उस रामनामाङ्किता मुद्रिकाको देखकर सीताजी अति आनन्दित हुई और उसे सिरसे लगाकर नेत्रोसे आनन्दाश्रु बहाने लगी ॥ ३७ ॥

तदनन्तर वे कहने लगी—"कपिवर! तुम मेरे प्राणदाता हो। तुम बडे ही बुद्धिमान् और रघुनाथजीके भक्त तथा प्रियकारी हो। मुझे निश्चय है, उनको भी तुम्हारा ही पूर्ण विश्वास है ॥ ३८ ॥ यदि ऐसा न होता तो तुम पर-पुरुषको वे मेरे पास क्यो भेजते? हनुमन्! मेरी सारी आपदाएँ तुमने देख ही ली हैं ॥ ३९ ॥ रामको ये सब बाते सुना देना जिससे उन्हे मुझपर दया उत्पन्न हो। हे साधुश्रेष्ठ! अब मेरे प्राण दो ही मास और रहेगे ॥ ४० ॥ यदि इस बीचमे रघुनाथजी न आये तो यह दुष्ट मुझे खा जायगा। अत यदि भगवान् राम वानरराज सुग्रीवके सहित अन्य वानरयूथपोंको लेकर तुरत ही रावणको पुत्र और सेनाके सहित सग्राममें मारकर मुझे छुडायेंगे तो ही

तत्तस्य सदृश वीर्यं वीर वर्णय वर्णितम्।
यथा मा तारयेद्रामो हत्वा शीघ्र दशाननम्॥ ४३॥

तथा यतस्व हनुमन्वाचा धर्ममवाप्नुहि।
हनूमानपि तामाह देवि दृष्टो यथा मया॥ ४४॥

राम सलक्ष्मण शीघ्रमागमिष्यति सायुध ।
सुग्रीवेण ससैन्येन हत्वा दशमुख बलात्॥ ४५॥

समानेष्यति देवि त्वामयोध्या नात्र सशय ।
तमाह जानकी राम कथ वारिधिमाततम्॥ ४६॥

तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपै सह।
हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ॥ ४७॥

आयास्यत ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वर ।
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम्॥ ४८॥

निर्दहिष्यति रक्षौघास्त्वत्कृते नात्र सशय ।
अनुज्ञा देहि मे देवि गच्छामि त्वरयान्वित ॥ ४९॥

द्रष्टु राम सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम्।
देवि किञ्चिदभिज्ञान देहि मे येन राघव ॥ ५०॥

विश्वसेन्मा प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुक ।
तत किञ्चिद्विचार्याथ सीता कमललोचना॥ ५१॥

विमुच्य केशपाशान्ते स्थित चूडामणि ददौ।
अनेन विश्वसेद्रामस्त्वा कपीन्द्र सलक्ष्मण ॥ ५२॥

अभिज्ञानार्थमन्यच्च वदामि तव सुव्रत।
चित्रकूटगिरौ पूर्वमेकदा रहसि स्थित ।
मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दन ॥ ५३॥

ऐन्द्र काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत्।
मत्पादाङ्गुष्ठमारक्त विददारामिषाशया॥ ५४॥

ततो राम प्रबुद्ध्याथ दृष्ट्वा पाद कृतव्रणम्।
केन भद्रे कृत चैतद्विप्रिय मे दुरात्मना॥ ५५॥

उनका यह पुरुषार्थ ठीक होगा। और तभी तुम इस वर्णन किये पुरुषार्थका वर्णन करना। हे हनुमन्! तुम भी ऐसी युक्तिसे उनसे सब बाते कहना जिससे वे शीघ्र ही रावणको मारकर मेरा उद्धार करे। ऐसा करके तुम भी वाचिक पुण्य प्राप्त करो।''

तब हनुमान्‌जीने उनसे कहा—''देवि! मैंने जैसा कुछ देखा है उससे तो यही प्रतीत होता है कि लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजो शीघ्र ही अस्त्र-शस्त्र लेकर सेनायुक्त सुग्रीवके सहित आयेगे और रावणको बलपूर्वक मारकर तुम्हे अयोध्या ले जायेगे। देवि! इसमे किसी प्रकारका सन्देह नही है।''

इसपर जानकीजी कहने लगी, ''भगवान् राम अमेयात्मा हैं, (उनके शरीरका कोई माप नही है, वे सर्वव्यापक है) किन्तु वानर-यूथपोके साथ वे किस प्रकार समुद्रको पार करके यहाँ आयेगे?'' हनुमान्‌जी बोले—''वे दोनो नरश्रेष्ठ मेरे कन्धोपर चढकर आयेगे और वानरराज सुग्रीव सेनासहित इस विस्तीर्ण समुद्रको आकाश-मार्गसे एक क्षणमे पारकर तुम्हे प्राप्त करनेके लिये सम्पूर्ण राक्षस-समूहको भस्म कर डालेगे। इसमे तनिक भी सन्देह नही है। हे देवि! अब मुझे आज्ञा दो, मैं अभी-अभी अनुजसहित भगवान् रामका दर्शन करनेके लिये जाता हूँ और उन्हे तुरत तुम्हारे पास लानेका प्रयत्न करता हूँ। देवि! मुझे कोई ऐसा चिह्न दो जिससे श्रीरघुनाथजी मेरा विश्वास करे। उसे लेकर मैं बडी सावधानीसे उत्सुकतापूर्वक उनके पास जाऊँगा।''

तब कमललोचना सीताजीने कुछ सोच-विचारकर अपने केशपाशमें स्थित चूडामणिको निकाला और उसे हनुमान्‌जीको देकर कहा—'हे कपिवर! इससे भगवान् राम और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास करेंगे॥ ४१—५२॥ हे सुव्रत! उनको विश्वास दिलानेके लिये एक बात और बतलाती हूँ—एक दिन चित्रकूट पर्वतपर श्रीरघुनाथजी एकान्तमे मेरी गोदमे सिर रखे सो रहे थे॥ ५३॥ इसी समय इन्द्रका पुत्र (जयन्त) काक-वेषमे वहाँ आया और मासके लोभसे मेरे पैरके लाल-लाल अँगूठेको अपनी चोच तथा पजोसे फाड डाला॥ ५४॥ तदनन्तर जब श्रीरामचन्द्रजी जागे तो मेरे पैरमे घाव हुआ देखकर बोले—''प्रिये! किस दुरात्माने मेरा यह अप्रिय किया

इत्युक्त्वा पुरतोऽपश्यद्वायसं मां पुनः पुनः ।
अभिद्रवन्तं रक्ताक्तनखतुण्डं चुकोप ह ॥ ५६ ॥

तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत् ।
चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलत् ॥ ५७ ॥

अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन्पुनः ।
इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ॥ ५८ ॥

रामस्य पादयोरग्रेऽपतद्भीत्या दयानिधेः ।
शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज ।
सव्यं दत्त्वा गतः काक एवं पौरुषवानपि ॥ ६० ॥

उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः ।
हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ॥ ६१ ॥

देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः ।
करिष्यति क्षणाद्भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ॥ ६२ ॥

जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः ।
अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥ ६३ ॥

श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत् ।
मेरुमन्दरसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम् ॥ ६४ ॥

दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम् ।
हर्षेण महताविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम् ॥ ६५ ॥

समर्थोऽसि महासत्त्व द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम् ।
राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम् ॥ ६६ ॥

बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात्पारणं मम ।
भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे ॥ ६७ ॥

है ? ॥ ५५ ॥ वे यह कह ही रहे थे कि उन्होंने अपने सामने उस कौएको बारम्बार मेरी ओर आते देखा। उसकी चोंच और पंजे रुधिरसे सने हुए थे। उसे देखकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ५६ ॥ उन्होंने तुरत ही एक तृण उठाया और उसपर दिव्यास्त्रका प्रयोग करके उस प्रज्वलित अस्त्रको लीलासे ही उस कौएकी ओर फेंक दिया। तब वह काक भी भयभीत होकर भागा और त्रिलोकीमें भटकता फिरा, किन्तु जब इन्द्र, ब्रह्मा आदिसे भी उसकी रक्षा न हो सकी तो बहुत ही डरता-डरता दयानिधान भगवान् रामके चरणोंमें गिरा। उसे शरणागत देख श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा— ॥ ५७—५९ ॥ 'मेरा यह अस्त्र अमोघ है (यह कभी व्यर्थ नहीं जा सकता)। अतः तू केवल अपनी एक आँख देकर यहाँसे चला जा।' तब वह काक अपनी बायीं आँख देकर चला गया। जो ऐसे पुरुषार्थी हैं वे ही श्रीरघुनाथजी न जाने इस समय क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ?'

सीताजीका यह कथन सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—'देवि! जिस समय श्रीरघुनाथजीको तुम्हारे यहाँ होनेका पता चलेगा उस समय इस राक्षस-मण्डल-मण्डिता लङ्काको वे एक क्षणमें ही भस्म कर डालेंगे" ॥ ६०—६२ ॥

जानकीजीने कहा—"वत्स! तुम अत्यन्त सूक्ष्म शरीरवाले हो, अतः राक्षसोंसे कैसे लड़ सकोगे ? और सब वानर भी तो तुम्हारे ही समान होंगे ?" ॥ ६३ ॥

देवी जानकीजीके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जीने उन्हें अपना पूर्वरूप दिखलाया जो मेरु और मन्दर पर्वतके समान अति विशाल और राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥ ६४ ॥ हनुमान्‌जीको महापर्वतके समान विशालकाय देखकर सीताजीको अपार आनन्द हुआ और वे उन कपिश्रेष्ठसे कहने लगीं— ॥ ६५ ॥ "हे महासत्त्व! तुम बड़े ही सामर्थ्यवान् हो, अच्छा, अब तुम शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीके पास जाओ, अन्यथा तुझ महाबली वीरको राक्षसियाँ देख लेंगी, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो" ॥ ६६ ॥ हनुमान्‌जीको भूख लगी हुई थी। वे बोले—"देवि! आपका दर्शन कर चुका, अब मुझे

तथेत्युक्त स जानक्या भक्षयित्वा फल कपि ।
तत प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य स ।
किञ्चिद्दूरमथो गत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत् ॥ ६८ ॥

कार्यार्थमागतो दूत स्वामिकार्याविरोधत ।
अन्यत्किञ्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव स ॥ ६९ ॥

अतोऽह किञ्चिदन्यच्च कृत्वा दृष्ट्वाथ रावणम् ।
सम्भाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥

इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान्महाबल ।
उत्पाट्याशोकवनिका निर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ॥ ७१ ॥

सीताश्रयनग त्यक्त्वा वन शून्य चकार स ।
उत्पाटयन्त विपिन दृष्ट्वा राक्षसयोषित ॥ ७२ ॥

अपृच्छञ् जानकीं कोऽसौ वानराकृतिरुद्भट ॥ ७३ ॥

जानक्युवाच

भवत्य एव जानन्ति माया राक्षसनिर्मिताम् ।
नाहमेन विजानामि दु खशोकसमाकुला ॥ ७४ ॥

इत्युक्तास्त्वरित गत्वा राक्षस्यो भयपीडिता ।
हनूमता कृत सर्व रावणाय न्यवेदयन् ॥ ७५ ॥

देव कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत् ।
सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिका क्षणात् ।
उत्पाट्य चैत्यप्रासाद बभञ्जामितविक्रम ॥ ७६ ॥

प्रासादरक्षिण सर्वान्हत्वा तत्रैव तस्थिवान् ।
तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्ग महाप्रियम् ॥ ७७ ॥

किङ्करान्प्रेषयामास नियुत राक्षसाधिप ।
निमग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसस्थित ॥ ७८ ॥

हनुमान्पर्वताकारो लोहस्तम्भकृतायुध ।
किञ्चिल्लाङ्गूलचलनो रक्तास्यो भीषणाकृति ॥ ७९ ॥

आपतन्त महासङ्घ राक्षसाना ददर्श स ।
चकार सिहनाद च श्रुत्वा ते मुमुहुर्भृशम् ॥ ८० ॥

आपके सामने लगे हुए फलोसे पारण करना है'' ॥ ६७ ॥ तब जानकीजीके 'बहुत अच्छा' कहनेपर कपिवरने वे फल खाये और उनके विदा करनेपर उन्हे प्रणाम करके चल दिये। फिर कुछ दूर चलनेपर उन्होने अपने मनमे सोचा ॥ ६८ ॥ ''जो दूत अपने स्वामीके कार्यके लिये आकर उसमे किसी प्रकारका विघ्न न करनेवाला कोई और कार्य न करके यो ही चला जाता है वह अधम ही है ॥ ६९ ॥ अत मै कुछ और भी करूँगा और रावणसे मिलकर तथा बातचीत कर फिर श्रीरघुनाथजीके दर्शनार्थ जाऊँगा'' ॥ ७० ॥

मनमे ऐसा निश्चय कर महाबली हनुमान्‌जीने वृक्षोको उखाडकर अशोकवाटिकाको एक क्षणमे ही वृक्षहीन कर दिया ॥ ७१ ॥ जिसके नीचे श्रीसीताजी बैठी थी उस वृक्षको छोडकर शेष समस्त वाटिकाको उन्होने उजाड डाला। उन्हे वन उजाडते देख राक्षसियोने जानकीजीसे पूछा, ''यह वानराकार विकट वीर कौन है ?'' ॥ ७२-७३ ॥

जानकीजी बोलीं—इस राक्षसी मायाको आप ही लोग जाने। दु ख और शोकसे आतुर मै क्या जानूँ ? ॥ ७४ ॥ जानकीजीके इस प्रकार कहनेपर भयपीडिता राक्षसियोने रावणके पास जा उसे हनुमान्‌जी-की सारी करतूत कह सुनायी ॥ ७५ ॥ वे कहने लगी—''देव ! एक बडे पराक्रमी वानराकार प्राणीने सीताजीसे सम्भाषण कर एक क्षणमे ही सारी अशोकवाटिका उजाड दी है। उस महापराक्रमीने मन्दिरके प्रासादको भी तोड डाला और उसके सब रक्षकोको मारकर इस समय भी वह वही बैठा हुआ है।'' वनविध्वसका यह महान् अप्रिय समाचार सुनकर राक्षसराज रावण तुरत उठा और उसने दस लाख सेवकोको भेजा। इधर, पर्वताकार हनुमान्‌जी लोहेके खम्भको शस्त्ररूपसे लिये हुए उस टूटे-फूटे मन्दिरके प्रथम भागमे बैठे थे। उनकी पूँछ कुछ-कुछ हिल रही थी, तथा मुख अरुणवर्ण और आकृति भयानक थी ॥ ७६—७९ ॥ राक्षसोके समूहको आया देख उन्होने घोर सिहनाद किया,

हनूमन्तमथो दृष्ट्वा राक्षसा भीषणाकृतिम् ।
निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघै सर्वराक्षसघातिनम् ॥ ८१ ॥

तत उत्थाय हनुमान्मुद्गरेण समन्तत ।
निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथप ॥ ८२ ॥

निहतान्किङ्कराञ्श्रुत्वा रावण क्रोधमूर्च्छित ।
पञ्च सेनापतींस्तत्र प्रेषयामास दुर्मदान् ॥ ८३ ॥

हनूमानपि तान्सर्वाल्लोहस्तम्भेन चाहनत् ।
तत क्रुद्धो मन्त्रिसुतान्प्रेषयामास सप्त स ॥ ८४ ॥

आगतानपि तान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वर ।
क्षणान्नि शेषतो हत्वा लोहस्तम्भेन मारुति ॥ ८५ ॥

पूर्वस्थानमुपाश्रित्य प्रतीक्षन् राक्षसान् स्थित ।
ततो जगाम बलवान्कुमारोऽक्ष प्रतापवान् ॥ ८६ ॥

तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाकाशे समुद्गर ।
गगनात्त्वरितो मूर्ध्नि मुद्गरेण व्यताडयत् ॥ ८७ ॥

हत्वा तमक्ष नि शेष बल सर्व चकार स ॥ ८८ ॥

तत श्रुत्वा कुमारस्य वध राक्षसपुङ्गव ।
क्रोधेन महताविष्ट इन्द्रजेतारमब्रवीत् ॥ ८९ ॥

पुत्र गच्छाम्यह तत्र यत्रास्ते पुत्रहा रिपु ।
हत्वा तमथवा बद्ध्वा आनयिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ९० ॥

इन्द्रजित्पितर प्राह त्यज शोक महामते ।
मयि स्थिते किमर्थ त्व भाषसे दु खित वच ॥ ९१ ॥

बद्ध्वानेष्ये द्रुत तात वानर ब्रह्मपाशत ।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्वृत ॥ ९२ ॥

जगाम वायुपुत्रस्य समीप वीरविक्रम ।
ततोऽतिगर्जित श्रुत्वा स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ९३ ॥

उत्पपात नभोदेश गरुत्मानिव मारुति ।
ततो भ्रमन्त नभसि हनूमन्त शिलीमुखै ॥ ९४ ॥

जिसे सुनकर वे सब अत्यन्त स्तब्ध हो गये ॥ ८० ॥ फिर सम्पूर्ण राक्षसोको मारनेवाले भीषणाकार हनुमान्जीको देखकर राक्षसोने उनपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोडे ॥ ८१ ॥ तदनन्तर, यूथपति गजराज जैसे मच्छरोको मसल डालता है वैसे ही हनुमान्जीने उठकर अपने मुद्गरसे एक क्षणमे ही सबको चारो ओरसे पीस डाला ॥ ८२ ॥

अपने किङ्करोका मरण सुनकर रावण क्रोधसे पागल हो गया और उसने वहाँ पाँच बडे बाँके सेनापतियोको (अपनी सेनाके साथ) भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमान्जीने अपने लोह-स्तम्भसे तुरत ही उन सबको मार डाला । तब उसने अति क्रोधित होकर सात मन्त्रिपुत्रोको भेजा ॥ ८४ ॥ वानराधीश पवननन्दनने वहाँ आनेपर उन सबको भी पहलेकी भाँति एक क्षणमे ही उस लोहस्तम्भसे मार डाला ॥ ८५ ॥ और अपने पूर्वस्थानमे ही बैठकर अन्य राक्षसोके आनेकी बाट देखने लगे । तब अति बलवान् और प्रतापशाली राजकुमार अक्ष आया ॥ ८६ ॥ उसे देखकर हनुमान्जी अपना मुद्गर लेकर आकाशमे उड गये और बडे वेगसे ऊपरसे ही उसके मस्तकपर मुद्गरका प्रहार किया । इस प्रकार अक्षको मारकर उसकी सेनाका भी नामो-निशान मिटा दिया ॥ ८७-८८ ॥

राजकुमार अक्षके वधका वृत्तान्त पाकर राक्षसराज रावण अत्यन्त क्रोधमे भरकर इन्द्रजित्से बोला— "बेटा ! जहाँ मेरे पुत्रको मारनेवाला मेरा शत्रु है मै वहाँ जाता हूँ और उसे मारकर या बाँधकर तेरे पास लाता हूँ" ॥ ८९-९० ॥ इन्द्रजित्ने पितासे कहा—"हे महामते ! शोक न कीजिये, मेरे रहते हुए आप ऐसे दु खमय वचन क्यो बोलते है ? ॥ ९१ ॥ मै उस वानरको शीघ्र ही ब्रह्मपाशमे बाँधकर लिये आता हूँ ।" ऐसा कह वह महापराक्रमी वीर रथपर चढा और बहुत-से राक्षसोके साथ पवनपुत्र हनुमान्के पास पहुँचा । तब, वीर्यवान् हनुमान्जी भयङ्कर सिहनाद सुन हाथमे स्तम्भ लिये गरुडके समान आकाशमे उड गये । उन्हे आकाशमे उडते

विद्ध्वा तस्य शिरोभागमिषुभिश्चाष्टभि पुन ।
हृदय पादयुगल षड्भिरेकेन वालधिम् ॥ ९५ ॥
भेदयित्वा ततो घोर सिहनादमथाकरोत् ।
ततोऽतिहर्षाद्धनुमान् स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ९६ ॥
जघान सारथि साश्व रथ चाचूर्णयत्क्षणात् ।
ततोऽन्य रथमादाय मेघनादो महाबल ॥ ९७ ॥
शीघ्र ब्रह्मास्त्रमादाय बद्ध्वा वानरपुङ्गवम् ।
निनाय निकट राज्ञो रावणस्य महाबल ॥ ९८ ॥

देख इन्द्रजित्ने आठ बाणोसे उनके सिरको बीधा, फिर छ बाणोसे उनके हृदय और दोनो चरणोको तथा एकसे उनकी पूँछको बीधकर वह घोर सिहनाद करने लगा। तब महाबलवान् हनुमान्जीने भी अति प्रसन्नतासे स्तम्भ उठाकर एक क्षणमे ही उसके सारथीको मार डाला और घोडोके सहित उसके रथको चूर्ण कर दिया। तब महाबली मेघनाद (इन्द्रजित्) ने दूसरे रथपर चढकर तुरत ही वानरश्रेष्ठ हनुमान्जीको ब्रह्मपाशसे बॉध लिया और उन्हे राक्षसराज रावणके पास ले गया ॥ ९२—९८ ॥

यस्य नाम सतत जपन्ति ये-
ऽज्ञानकर्मकृतबन्धन क्षणात् ।
सद्य एव परिमुच्य तत्पद
यान्ति कोटिरविभासुर शिवम् ॥ ९९ ॥
तस्यैव रामस्य पदाम्बुज सदा
हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुति ।
सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धन
किं तस्य पाशैरितैश्च बन्धनै ॥ १०० ॥

जिनके नामका निरन्तर जप करनेवाले भक्तजन एक क्षणमे ही अज्ञानकृत बन्धनको काटकर करोडो सूर्येकि समान प्रकाशमान उनके परम कल्याणमय पदको तत्काल प्राप्त कर लेते है, उन्हीं भगवान् रामके चरणकमलोको सदा अपने हृदयकमलमे धारण करनेसे हनुमान्जी सदा ही समस्त बन्धनोसे छूटे हुए है। उनका ब्रह्मपाश अथवा और किसी बन्धनसे क्या हो सकता है ? ॥ ९९-१०० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे सुन्दरकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

हनुमान् और रावणका सवाद तथा लङ्कादहन

श्रीमहादेव उवाच

यान्त कपीन्द्र धृतपाशबन्धन
विलोकयन्त नगर विभीतवत् ।
अताडयन्मुष्टितलै सुकोपना
पौरा समन्तादनुयान्त ईक्षितुम् ॥ १ ॥
ब्रह्मास्त्रमेन क्षणमात्रसङ्गम
कृत्वा गत ब्रह्मवरेण सत्वरम् ।
ज्ञात्वा हनूमानपि फल्गुरज्जुभि-
र्धृतो ययौ कार्यविशेषगौरवात् ॥ २ ॥
सभान्तरस्थस्य च रावणस्य त
पुरो निधायाह बलारिजित्तदा ।
बद्धो मया ब्रह्मवरेण वानर
समागतोऽनेन हता महासुरा ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! ब्रह्मपाशसे बँधे हुए श्रीहनुमान्जी जब डरे हुएके समान नगर देखते जा रहे थे, उस समय उन्हे देखनेके लिये इधर-उधरसे इकट्ठे हुए पुरवासी उनके पीछे-पीछे चलते हुए उन्हे क्रोधपूर्वक घूँसोंसे मारने लगे ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे ब्रह्मास्त्र हनुमान्जीके शरीरका क्षणभरके लिये स्पर्श कर तुरत चला गया। यह बात जानकर भी श्रीहनुमान्जी विशेष कार्य सम्पादन करनेके लिये तुच्छ रस्सियोसे ही बँधे हुए रावणके पास चले गये ॥ २ ॥ तब इन्द्रजित् उन्हे सभामे स्थित रावणके सामने ले गया और बोला—"मैं इस वानरको ब्रह्माके वरके प्रभावसे बॉध लाया हूँ, इसीने हमारे बडे-बडे वीर राक्षस मारे है ॥ ३ ॥ महाराज !

यद्युक्तमत्रार्य विचार्य मन्त्रिभि-
विधीयतामेष न लौकिको हरि ।
ततो विलोक्याह स राक्षसेश्वर
प्रहस्तमग्रे स्थितमञ्जनाद्रिभम् ॥ ४ ॥

मन्त्रियोके साथ विचारकर इसके लिये जैसा उचित समझे वैसा विधान करे । यह कोई साधारण वानर नही है ।" तब राक्षसराज रावणने सामने बेठे हुए कज्जलगिरिके समान कृष्णवर्ण प्रहस्तसे कहा— ॥ ४ ॥

प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागत
किमत्र कार्य कुत एव वानर ।
वन किमर्थ सकल विनाशित
हता किमर्थ मम राक्षसा बलात् ॥ ५ ॥

"प्रहस्त ! इस बदरसे पूछो तो सही, यह यहाँ क्यो आया है ? इसका क्या कार्य है ? यह कहाँसे आया है ? इसने मेरा सारा वन क्यो उजाड डाला ? और मेरे राक्षस वीरोको बलात् क्यो मारा ?" ॥ ५ ॥

तत प्रहस्तो हनुमन्तमादरात्
पप्रच्छ केन प्रहितोऽसि वानर ।
भय च ते मास्तु विमोक्ष्यसे मया
सत्य वदस्वाखिलराजसन्निधौ ॥ ६ ॥

तब प्रहस्तने हनुमान्‌जीसे आदरपूर्वक पूछा—"वानर ! तुम्हे किसने भेजा है ? तुम डरो मत, राजराजेश्वरके सामने सब बात सच-सच बतला दो, फिर मै तुम्हे छुडा दूँगा" ॥ ६ ॥

ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजो रिपु
निरीक्ष्य लोकत्रयकण्टकासुरम् ।
वक्तु प्रचक्रे रघुनाथसत्कथा
क्रमेण राम मनसा स्मरन्मुहु ॥ ७ ॥

तब अपने शत्रु त्रिलोकीके कण्टकरूप राक्षसराज रावणको देखकर पवननन्दन हनुमान्‌जीने हृदयमे बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर अति हर्षित हो क्रमसे रघुनाथजीकी सुन्दर कथा कहनी आरम्भ की ॥ ७ ॥

शृणु स्फुट देवगणाद्यमित्र हे
रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थिते ।
यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया
भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धवि ॥ ८ ॥

वे कहने लगे—"हे देवादिके शत्रु रावण ! तुम साफ-साफ सुनो, कुत्ता जिस प्रकार हविको चुरा ले जाता है उसी प्रकार तुमने अपना नाश करानेके लिये जिन अखिलेश्वरकी साध्वी भार्याको हर लिया है, मै उन्ही सर्वान्तर्यामी भगवान् रामका दूत हूँ ॥ ८ ॥

स राघवोऽभ्येत्य मतङ्गपर्वत
सुग्रीवमैत्रीमनलस्य सन्निधौ ।
कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिन
सुग्रीवमेवाधिपतिं चकार तम् ॥ ९ ॥

उन श्रीरघुनाथजीने मतङ्गपर्वतपर आकर अग्निके साक्ष्यमे सुग्रीवसे मित्रता की और एक ही बाणसे वालीको मारकर सुग्रीवको वानरोका राजा बना दिया ॥ ९ ॥

स वानराणामधिपो महाबली
महाबलैर्वानरयूथकोटिभि ।
रामेण सार्ध सह लक्ष्मणेन भो
प्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥ १० ॥

हे रावण ! इस समय वे महाबली वानरराज और भी करोडो महाशूरवीर वानर-यूथोके साथ राम और लक्ष्मणके सहित अति क्रोधयुक्त हो प्रवर्षण पर्वतपर विराजमान है ॥ १० ॥

सञ्चोदितास्तेन महाहरीश्वरा
धरासुता मार्गयितु दिशो दश ।
तत्राहमेक पवनात्मज कपि
सीता विचिन्वञ्छनकै समागत ॥ ११ ॥

उन्होने श्रीजानकीजीको ढूँढनेके लिये दसो दिशाओमे बडे-बडे वानरेश्वर भेजे है । उन्हीमेसे एक वानर मै वायुका पुत्र हूँ मै सीताजीका धीरे-धीरे ढूँढता हुआ यहाँ आया हूँ ॥ ११ ॥

दृष्टा मया पद्मपलाशलोचना
सीता कपित्वाद्विपिन विनाशितम्।
दृष्ट्वा ततोऽह रभसा समागता-
न्मा हन्तुकामान् धृतचापसायकान् ॥ १२ ॥
मया हतास्ते परिरक्षित वपु
प्रियो हि देहोऽखिलदेहिना प्रभो।
ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मा तत
समागमन्मेघनिनादनामक ॥ १३ ॥
स्पृष्ट्वैव मा ब्रह्मवरप्रभावत-
स्त्यक्त्वा गत सर्वमवैमि रावण।
तथाप्यह बद्ध इवागतो हित
प्रवक्तुकाम करुणारसार्द्रधी ॥ १४ ॥
विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिं
न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण।
दैवीं गतिं ससृतिमोक्षहेतुकीं
समाश्रयात्यन्तहिताय देहिन ॥ १५ ॥
त्व ब्रह्मणो ह्युत्तमवशसम्भव
पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धव।
देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो
नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो नहि ॥ १६ ॥
शरीरबुद्धीन्द्रियदु खसन्तति-
र्न ते न च त्व तव निर्विकारत।
अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्तते-
रसत्त्वमस्या स्वपतो हि दृश्यवत् ॥ १७ ॥
इद तु सत्य तव नास्ति विक्रिया
विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वत।
यथा नभ सर्वगत न लिप्यते
तथा भवान्देहगतोऽपि सूक्ष्मक।
देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गत-
स्त्वात्मेति बुद्ध्वाखिलबन्धभाग्भवेत् ॥ १८ ॥
चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो
ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते।
देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो
न प्राण आत्मानिल एष एव स ॥ १९ ॥

मै कमलदललोचना जानकीजीका दर्शन कर चुका हूँ, फिर अपने वानर-स्वभावसे मैने वन उजाड दिया और जब मैने राक्षसोको बडे वेगसे धनुष-बाण आदि लेकर अपनेको मारनेके लिये आते देखा, तो उन्हे मारकर अपनी शरीर-रक्षा की, क्योकि हे राजन्! अपना शरीर तो सभी देहधारियोको प्यारा होता है। फिर यह मेघनाद नामक राक्षस मुझे ब्रह्मपाशमे बाँधकर यहाँ ले आया ॥ १२-१३ ॥ हे रावण! मै यद्यपि यह जानता था कि ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे वह ब्रह्मपाश मुझे छूते ही चला गया, तथापि करुणावश तुम्हारे हितकी बात बतानेके लिये मै बँधे हुएके समान यहाँ चला आया ॥ १४ ॥ हे रावण! तुम विवेकपूर्वक ससारकी गतिका विचार करो, राक्षसी बुद्धिको अङ्गीकार मत करो और ससार-बन्धनसे छुटानेवाली प्राणियोकी अत्यन्त हितकारिणी दैवी गतिका आश्रय लो ॥ १५ ॥ तुम ब्रह्माजीके अति उत्तम वशमे उत्पन्न हुए हो तथा पुलस्त्यनन्दन विश्रवाके पुत्र और कुबेरके भाई हो, अत देखो, तुम तो देहात्मबुद्धिसे भी राक्षस नही हो, फिर आत्मबुद्धिसे राक्षस नही हो—इसमे तो कहना ही क्या है? ॥ १६ ॥ (तुम वास्तवमे कौन हो सो मै बतलाता हूँ—) तुम सर्वथा निर्विकार हो, इसलिये शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दु खादि—ये न तुम्हारे (गुण) है और न तुम स्वय हो। इन सबका कारण अज्ञान है और स्वप्नदृश्यके समान ये सब असत् है ॥ १७ ॥ यह बिलकुल सत्य हे कि तुम्हारे आत्मस्वरूपमे कोई विकार नही है। क्योकि अद्वितीय होनेसे उसमे कोई विकारका कारण ही नही है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र होनेसे भी (किसी पदार्थके गुण-दोषसे) लिप्त नही होता, उसी प्रकार तुम देहमे रहते हुए भी सूक्ष्मरूप होनेसे उसके सुख-दु खादि विकारोसे लिप्त नही होते। 'आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीरसे मिला हुआ है' ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनोका कारण होती है ॥ १८ ॥ और 'मै चिन्मात्र अजन्मा अविनाशी तथा आनन्दस्वरूप ही हूँ' इस बुद्धिसे जीव मुक्त हो जाता है। पृथ्वीका विकार होनेसे देह भी अनात्मा है और प्राण वायुरूप ही है, अत यह भी आत्मा नही है ॥ १९ ॥

मनोऽप्यहङ्कारविकार एव नो
न चापि बुद्धि प्रकृतेर्विकारजा ।
आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवा-
न्देहादिसङ्घाद्व्यतिरिक्त ईश्वर ॥ २० ॥
निरञ्जनो मुक्त उपाधित सदा
ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते ।
अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधन
वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ॥ २१ ॥
विष्णोर्हि भक्ति सुविशोधन धिय-
स्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् ।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्तत
सम्यग्विदित्वा परम पद व्रजेत् ॥ २२ ॥
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं
राम पुराण प्रकृते पर विभुम् ।
विसृज्य मौर्ख्य हृदि शत्रुभावना
भजस्व राम शरणागतप्रियम् ।
सीता पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो
राम नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥ २३ ॥
राम परात्मानमभावयञ्जनो
भक्त्या हृदिस्थ सुखरूपमद्वयम् ।
कथ पर तीरमवाप्नुयाज्जनो
भवाम्बुधेर्दु खतरङ्गमालिन ॥ २४ ॥
नो चेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना
ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् ।
नयस्यधोऽध स्वकृतैश्च पातकै-
र्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति ॥ २५ ॥
श्रुत्वामृतास्वादसमानभाषित
तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुर ।
अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वर
जगाद रक्तान्तविलोचनो ज्वलन् ॥ २६ ॥
कथ ममाग्रे विलपस्यभीतवत्
प्लवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधी ।
क एष राम कतमो वनेचरो
निहन्मि सुग्रीवयुत नराधमम् ॥ २७ ॥

अहकारका कार्य मन अथवा प्रकृतिके विकारसे उत्पन्न हुई बुद्धि भी आत्मा नही है । आत्मा तो चिदानन्दस्वरूप, अविकारी तथा देहादि सङ्घातसे पृथक् और उसका स्वामी है ॥ २० ॥ वह निर्मल और सर्वदा उपाधिरहित है, उसका इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य ससारसे मुक्त हो जाता है । अत हे महामते ! मै तुम्हे आत्यन्तिक मोक्षका साधन बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ २१ ॥ भगवान् विष्णुकी भक्ति बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध करनेवाली है, उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है । आत्मज्ञानसे शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और उससे दृढ बोध हो जानेसे मनुष्य परमपद प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ इसलिये तुम प्रकृतिसे परे, पुराणपुरुष, सर्वव्यापक आदिनारायण, लक्ष्मीपति, हरि, भगवान् रामका भजन करो । अपने हृदयमे स्थित शत्रुभावरूप मूर्खताको छोड दो और शरणागतवत्सल रामका भजन करो । सीताजीको आगे कर अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोके सहित भगवान् रामकी शरण जाकर उन्हे नमस्कार करो । इससे तुम भयसे छूट जाओगे ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपने हृदयमे स्थित अद्वितीय सुखस्वरूप परमात्मा रामका भक्तिपूर्वक ध्यान नही करता वह दु ख-तरङ्गावलिसे पूर्ण इस ससार-समुद्रका पार कैसे पा सकता है ? ॥ २४ ॥ यदि तुम भगवान् रामका भजन न करोगे तो अज्ञानरूपी अग्निसे जलते हुए अपने-आपको शत्रुके समान सुरक्षित नही रख सकोगे और उसे अपने किये हुए पापोसे उत्तरोत्तर नीचेकी ओर ही ले जाओगे, फिर तुम्हारे मोक्षकी कोई सम्भावना न रहेगी" ॥ २५ ॥

पवनसुतके इस अमृतसदृश मधुर भाषणको सुनकर राक्षसराज रावण उसे सहन न कर सका और अत्यन्त क्रोधसे नेत्र लालकर मन-ही-मन जलता हुआ हनुमान्‌जीसे बोला— ॥ २६ ॥ "अरे दुष्टबुद्धे ! तू वानरोमे अधम है । मेरे सामने इस प्रकार निर्भयके समान कैसे प्रलाप कर रहा है ? यह राम और वनचर सुग्रीव है क्या चीज ? उस नराधमको तो सुग्रीवके सहित मै ही मार डालूँगा ॥ २७ ॥

त्वा चाद्य हत्वा जनकात्मजा ततो
निहन्मि राम सहलक्ष्मण तत ।
सुग्रीवमग्रे बलिन कपीश्वर
सवानर हन्म्यचिरेण वानर ।
श्रुत्वा दशग्रीववच स मारुति-
र्विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम् ॥ २८ ॥

न मे समा रावणकोटयोऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रम ।
श्रुत्वातिकोपेन हनूमतो वचो
दशाननो राक्षसमेवमब्रवीत् ॥ २९ ॥

पार्श्वे स्थित मारय खण्डश कपिं
पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवा ।
निवारयामास ततो विभीषणो
महासुर सायुधमुद्यत वधे ।
राजन्वधार्हो न भवेत्कथञ्चन
प्रतापयुक्ते परराजवानर ॥ ३० ॥

हतेऽस्मिन्वानरे दूते वार्ता को वा निवेदयेत् ।
रामाय त्व यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थित ॥ ३१ ॥

अतो वधसम किञ्चिदन्यच्चिन्तय वानरे ।
सचिह्नो गच्छतु हरिर्य दृष्ट्वायास्यति द्रुतम् ॥ ३२ ॥

राम सुग्रीवसहितस्ततो युद्ध भवेत्तव ।
विभीषणवच श्रुत्वा रावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥ ३३ ॥

वानराणा हि लाङ्गूले महामानो भवेत्किल ।
अतो वस्त्रादिभि पुच्छ वेष्टयित्वा प्रयत्नत ॥ ३४ ॥

वह्निना योजयित्वैन भ्रामयित्वा पुरेऽभित ।
विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपा ॥ ३५ ॥

तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकश ।
तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लाङ्गूल मारुतेर्दृढम् ॥ ३६ ॥

पुच्छाग्रे किञ्चिदनल दीपयित्वाथ राक्षसा ।
रज्जुभि सुदृढ बद्ध्वा धृत्वा त बलिनोऽसुरा ॥ ३७ ॥

समन्ताद् भ्रामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिन ।
तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहु ॥ ३८ ॥

ऐ वानर ! पहले तो आज तुझे ही मारूँगा, फिर जानकीका वध करूँगा, तदनन्तर लक्ष्मणके सहित रामको मारूँगा और उनसे पहले उस बडे बली वानरराज सुग्रीवको उसकी वानरसेनाके सहित कुछ ही देरमे मार डालूँगा।'' रावणके ये वचन सुनकर हनुमान्जी अपने बढे हुए क्रोधसे उसे जलाते हुए-से बोले— ॥ २८ ॥ ''अरे अधम ! मेरी समानता तो करोड रावण भी नही कर सकते, जानता नही, मै भगवान् रामका दास हूँ, मेरे पराक्रमका कोई ठिकाना नही है।'' हनुमान्जीके ये वचन सुनकर रावणने अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपनी बगलमे खडे हुए एक राक्षससे कहा—'अरे ! इस वानरके टुकडे-टुकडे करके मार डाल, जिससे सब राक्षस, मित्र तथा बन्धुगण इस कौतुकको देखे।' तब विभीषणने, हथियार लेकर मारनेके लिये तैयार हुए उस प्रचण्ड राक्षसको रोककर कहा—''राजन् ! प्रतापी पुरुषोको अन्य राज्यके वानर-दूतको किसी प्रकार भी न मारना चाहिये ॥ २९-३० ॥ यदि यह वानर-दूत मारा गया तो जिनका वध करनेके लिये आप उद्यत हुए है उन रामको यह समाचार कौन सुनावेगा ? ॥ ३१ ॥ अत इस वानरके लिये, वधके समान ही कोई और दण्ड निश्चय कीजिये, जिसका चिह्न लेकर यह वानर जाय और उसे देखकर सुग्रीवके सहित राम तुरत ही आये और फिर उनसे आपका युद्ध हो।'' विभीषणका कथन सुनकर रावण भी यो बोला ॥ ३२-३३ ॥ ''वानरोको पूँछपर बडी ममता होती है। अत इसकी पूँछको वस्त्रादिसे खूब लपेट दो और फिर उसमे आग लगाकर इसे नगरमे चारो ओर घुमाकर छोड दो, जिससे समस्त वानरयूथपति इसकी वह दुर्दशा देखे ॥ ३४-३५ ॥

तब राक्षसोने 'बहुत अच्छा' कह हनुमान्जीकी पूँछ सनके पट्टोसे और तेलमे भीगे हुए नाना प्रकारके चिथडोसे बडी दृढतासे लपेटी, और पूँछके सिरेपर थोडी-सी आग लगाकर उन्हे दृढतापूर्वक रस्सीसे बाँधकर कुछ बलवान् राक्षस उन्हे मारते और बारम्बार तुरही बजाकर यह कहते हुए कि 'यह चोर है' नगरमे सब ओर घुमाने

हनूमतापि तत्सर्वं सोढं किञ्चिच्चिकीर्षुणा ।
गत्वा तु पश्चिमद्वारसमीपं तत्र मारुतिः ॥ ३९ ॥

सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ ।
बभूव पर्वताकारस्ततः उत्प्लुत्य गोपुरम् ॥ ४० ॥

तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् ।
विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम् ॥ ४१ ॥

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥ ४२ ॥

हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ॥ ४३ ॥

देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः ।
विभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् ॥ ४४ ॥

ततः उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान्मारुतात्मजः ।
लाङ्गूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः ॥ ४५ ॥

वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः ।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः ॥ ४६ ॥

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापा-
स्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः ।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः
सन्तप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन ॥ ४७ ॥

लगे ॥ ३६—३८ ॥ हनुमान्‌जीने भी कुछ कौतुक करनेकी इच्छासे यह सब सहन कर लिया। जिस समय वे पश्चिमद्वारपर पहुँचे उस समय तुरत ही सूक्ष्मरूप होकर उन बन्धनोंमेंसे निकल गये और फिर पर्वताकार हो उछलकर द्वारके कँगूरेपर चढ़ गये ॥ ३९-४० ॥ वहाँसे उन्होंने एक स्तम्भ उखाड़कर एक क्षणमें ही उन समस्त रक्षकोंको मार डाला और फिर अपना शेष कार्य निश्चय कर उस प्रासादके अग्रभागसे एक घरसे दूसरे घरपर छलाँग मारते हुए अपनी जलती हुई लंबी पूँछसे महल, अटारी और बन्दनवारादिसे युक्त समस्त लंकापुरीमें आग लगा दी ॥ ४१-४२ ॥ उस समय 'हा तात! हा पुत्र! हा नाथ!' कहकर सब ओर फैली हुई, महलोंके ऊपर भी चढ़ी हुई तथा अग्निमें गिरती हुई समस्त दैत्यस्त्रियाँ देवताओंके समान मालूम होती थीं। इस प्रकार हनुमान्‌जीने विभीषणके घरको छोड़कर और सारा नगर भस्म कर डाला ॥ ४३-४४ ॥ तदनन्तर पवनात्मज हनुमान्‌जी उछलकर समुद्रमें कूद पड़े और अपनी पूँछ बुझाकर स्वस्थचित्त हो गये ॥ ४५ ॥ सीताजीकी प्रार्थनासे तथा वायुका प्रिय मित्र होनेके कारण अग्निने हनुमान्‌जीकी पूँछ नहीं जलायी। उनके लिये वह अत्यन्त शीतल हो गया ॥ ४६ ॥

जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य समस्त पापोंसे छूटकर तुरत ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं उन्हीं श्रीरघुनाथजीके विशिष्ट दूतको यह प्राकृत अग्नि भला किस प्रकार ताप पहुँचा सकता था? ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

हनुमान्‌जीका सीताजीसे विदा होना और श्रीरामचन्द्रजीको उनका सन्देश सुनाना

श्रीमहादेव उवाच

ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः ।
आज्ञापयतु मां देवि भवती रामसन्निधिम् ॥ १ ॥

गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः ।
इत्युक्त्वा त्रिः परिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जीने सीताजीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहा—'देवि! आप मुझे आज्ञा दीजिये, अब मैं श्रीरघुनाथजीके पास जाता हूँ, वे शीघ्र ही भाई लक्ष्मणसहित आपसे मिलनेके लिये यहाँ आयेंगे।' ऐसा कह पवननन्दन हनुमान्‌जीने जानकीजीकी तीन परिक्रमाएँ

त्वा चाद्य हत्वा जनकात्मजा ततो
निहन्मि राम सहलक्ष्मण तत ।
सुग्रीवमग्रे बलिन कपीश्वर
सवानर हन्म्यचिरेण वानर ।
श्रुत्वा दशग्रीववच स मारुति-
र्विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम् ॥ २८ ॥

न मे समा रावणकोट्योऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रम ।
श्रुत्वातिकोपेन हनूमतो वचो
दशाननो राक्षसमेवमब्रवीत् ॥ २९ ॥

पार्श्वे स्थित मारय खण्डश कपिं
पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवा ।
निवारयामास ततो विभीषणो
महासुर सायुधमुद्यत वधे ।
राजन्वधार्हो न भवेत्कथञ्चन
प्रतापयुक्तै परराजवानर ॥ ३० ॥

हतेऽस्मिन्वानरे दूते वार्ता को वा निवेदयेत् ।
रामाय त्व यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थित ॥ ३१ ॥

अतो वधसम किञ्चिदन्यच्चिन्तय वानरे ।
सचिह्नो गच्छतु हरिर्य दृष्ट्वायास्यति द्रुतम् ॥ ३२ ॥

राम सुग्रीवसहितस्ततो युद्ध भवेत्तव ।
विभीषणवच श्रुत्वा रावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥ ३३ ॥

वानराणा हि लाङ्गूले महामानो भवेत्किल ।
अतो वस्त्रादिभि पुच्छ वेष्टयित्वा प्रयत्नत ॥ ३४ ॥

वह्निना योजयित्वैन भ्रामयित्वा पुरेऽभित ।
विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपा ॥ ३५ ॥

तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकश ।
तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लाङ्गूल मारुतेर्दृढम् ॥ ३६ ॥

पुच्छाग्रे किञ्चिदनल दीपयित्वाथ राक्षसा ।
रज्जुभि सुदृढ बद्ध्वा धृत्वा त बलिनोऽसुरा ॥ ३७ ॥

समन्ताद्भ्रामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिन ।
तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहु ॥ ३८ ॥

ऐ वानर! पहले तो आज तुझे ही मारूँगा, फिर जानकीका वध करूँगा, तदनन्तर लक्ष्मणके सहित रामको मारूँगा और उनसे पहले उस बडे बली वानरराज सुग्रीवको उसकी वानरसेनाके सहित कुछ ही देरमे मार डालूँगा।'' रावणके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जी अपने बढे हुए क्रोधसे उसे जलाते हुए-से बोले— ॥ २८ ॥ ''अरे अधम! मेरी समानता तो करोड रावण भी नही कर सकते, जानता नही, मै भगवान् रामका दास हूँ, मेरे पराक्रमका कोई ठिकाना नही है।'' हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर रावणने अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपनी बगलमे खडे हुए एक राक्षससे कहा—'अरे! इस वानरके टुकडे-टुकडे करके मार डाल, जिससे सब राक्षस, मित्र तथा बन्धुगण इस कौतुकको देखे।' तब विभीषणने, हथियार लेकर मारनेके लिये तैयार हुए उस प्रचण्ड राक्षसको रोककर कहा—''राजन्! प्रतापी पुरुषोको अन्य राज्यके वानर-दूतको किसी प्रकार भी न मारना चाहिये ॥ २९-३० ॥ यदि यह वानर-दूत मारा गया तो जिनका वध करनेके लिये आप उद्यत हुए है उन रामको यह समाचार कौन सुनावेगा? ॥ ३१ ॥ अत इस वानरके लिये, वधके समान ही कोई और दण्ड निश्चय कीजिये, जिसका चिह्न लेकर यह वानर जाय और उसे देखकर सुग्रीवके सहित राम तुरत ही आये और फिर उनसे आपका युद्ध हो।'' विभीषणका कथन सुनकर रावण भी यो बोला ॥ ३२-३३ ॥ ''वानरोको पूँछपर बडी ममता होती है। अत इसकी पूँछको वस्त्रादिसे खूब लपेट दो और फिर उसमे आग लगाकर इसे नगरमे चारो ओर घुमाकर छोड दो, जिससे समस्त वानरयूथपति इसकी वह दुर्दशा देखे ॥ ३४-३५ ॥

तब राक्षसोने 'बहुत अच्छा' कह हनुमान्‌जीकी पूँछ सनके पट्टोसे और तेलमे भीगे हुए नाना प्रकारके चिथडोसे बडी दृढतासे लपेटी, और पूँछके सिरेपर थोडी-सी आग लगाकर उन्हे दृढतापूर्वक रस्सीसे बाँधकर कुछ बलवान् राक्षस उन्हे मारते और बारम्बार तुरही बजाकर यह कहते हुए कि 'यह चार है' नगरमे सब ओर घुमाने

नूमतापि तत्सर्वं सोढं किञ्चिच्चिकीर्षुणा ।
त्वा तु पश्चिमद्वारसमीपं तत्र मारुतिः ॥ ३९ ॥

सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ ।
भूव पर्वताकारस्ततः उत्प्लुत्य गोपुरम् ॥ ४० ॥

तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् ।
विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद् गृहाद् गृहम् ॥ ४१ ॥

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥ ४२ ॥

हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ॥ ४३ ॥

देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः ।
विभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् ॥ ४४ ॥

ततः उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान्मारुतात्मजः ।
लाङ्गूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः ॥ ४५ ॥

वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः ।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः ॥ ४६ ॥

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापा-
स्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः ।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः
सन्तप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन ॥ ४७ ॥

लगे ॥ ३६—३८ ॥ हनुमान्‌जीने भी कुछ कौतुक करनेकी इच्छासे यह सब सहन कर लिया। जिस समय वे पश्चिमद्वारपर पहुँचे उस समय तुरत ही सूक्ष्मरूप होकर उन बन्धनोंमेंसे निकल गये और फिर पर्वताकार हो उछलकर द्वारके कँगूरेपर चढ़ गये ॥ ३९-४० ॥ वहाँसे उन्होंने एक स्तम्भ उखाड़कर एक क्षणमें ही उन समस्त रक्षकोंको मार डाला और फिर अपना शेष कार्य निश्चय कर उस प्रासादके अग्रभागसे एक घरसे दूसरे घरपर छलाँग मारते हुए अपनी जलती हुई लंबी पूँछसे महल, अटारी और बन्दनवारादिसे युक्त समस्त लंकापुरीमें आग लगा दी ॥ ४१-४२ ॥ उस समय 'हा तात! हा पुत्र! हा नाथ!' कहकर सब ओर फैली हुई, महलोंके ऊपर भी चढ़ी हुई तथा अग्निमें गिरती हुई समस्त दैत्यस्त्रियाँ देवताओंके समान मालूम होती थीं। इस प्रकार हनुमान्‌जीने विभीषणके घरको छोड़कर और सारा नगर भस्म कर डाला ॥ ४३-४४ ॥ तदनन्तर पवनात्मज हनुमान्‌जी उछलकर समुद्रमें कूद पड़े और अपनी पूँछ बुझाकर स्वस्थचित्त हो गये ॥ ४५ ॥ सीताजीकी प्रार्थनासे तथा वायुका प्रिय मित्र होनेके कारण अग्निने हनुमान्‌जीकी पूँछ नहीं जलायी। उनके लिये वह अत्यन्त शीतल हो गया ॥ ४६ ॥

जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य समस्त पापोंसे छूटकर तुरत ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं उन्हीं श्रीरघुनाथजीके विशिष्ट दूतको यह प्राकृत अग्नि भला किस प्रकार ताप पहुँचा सकता था? ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

हनुमान्‌जीका सीताजीसे विदा होना और श्रीरामचन्द्रजीको उनका सन्देश सुनाना

श्रीमहादेव उवाच

ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः ।
आज्ञापयतु मां देवि भवती रामसन्निधिम् ॥ १ ॥

गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः ।
इत्युक्त्वा त्रिः परिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जीने सीताजीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहा—'देवि! आप मुझे आज्ञा दीजिये अब मैं श्रीरघुनाथजीके पास जाता हूँ, वे शीघ्र ही भाई लक्ष्मणसहित आपसे मिलनेके लिये यहाँ आयेंगे।' ऐसा कह पवननन्दन हनुमान्‌जीने जानकीजीकी तीन परिक्रमाएँ

प्रणम्य प्रस्थितो गन्तुमिद वचनमब्रवीत्।
देवि गच्छामि भद्र ते तूर्ण द्रक्ष्यसि राघवम्॥ ३ ॥

लक्ष्मण च ससुग्रीव वानरायुतकोटिभि ।
तत प्राह हनूमन्त जानकी दु खकर्शिता॥ ४ ॥

त्वा दृष्ट्वा विस्मृत दु खमिदानीं त्व गमिष्यसि ।
इत पर कथ वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना॥ ५ ॥

कर उन्हे प्रणाम किया और जानेके लिये कुछ दूर चलकर बोले—"देवि! मै जाता हूँ, आपका शुभ हो, आप शीघ्र ही सुग्रीव और करोडो अन्य वानरोके सहित भगवान् राम और लक्ष्मणको देखेगी।" तब दु खसे दुर्बल हुई जानकीने हनुमान्‌जीसे कहा—"तुम्हे देखकर मै अपना दु ख भूल गयी थी। अब तुम जा रहे हो, अब श्रीरामचन्द्रजीका समाचार सुने बिना मै कैसे रहूँगी?" ॥ १—५ ॥

मारुतिरुवाच

यद्येव देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रत ।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि॥ ६ ॥

हनुमान्‌जी बोले—हे देवि! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करे तो हे जनकनन्दिनी! आप मेरे कन्धेपर चढ लीजिये, मै एक क्षणमे ही श्रीरामचन्द्रजीसे आपको मिला दूँगा॥ ६॥

सीतोवाच

राम सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपञ्जरै ।
आगत्य वानरै सार्ध हत्वा रावणमाहवे॥ ७ ॥

मा नयेद्यदि रामस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती।
अतो गच्छ कथ चापि प्राणान्सन्धारयाम्यहम्॥ ८ ॥

सीताजीने कहा—यदि श्रीरामचन्द्रजी समुद्रको सुखाकर या उसे बाणोसे बॉधकर यहॉ वानरोके साथ आये और रावणको युद्धमे मारकर मुझे ले जायँ तो इससे उन्हे अमर कीर्ति प्राप्त होगी। इसलिये तुम जाओ, मै जैसे-तैसे प्राण धारण करूँगी॥ ७-८॥

इति प्रस्थापितो वीर सीतया प्रणिपत्य ताम्।
जगाम पर्वतस्याग्रे गन्तु पार महोदधे ॥ ९ ॥

तत्र गत्वा महासत्त्व पादाभ्या पीडयन् गिरिम्।
जगाम वायुवेगेन पर्वतश्च महीतलम्॥ १० ॥

गतो महीसमानत्व त्रिंशद्योजनमुच्छ्रित ।
मारुतिर्गगनान्त स्थो महाशब्द चकार स ॥ ११ ॥

त श्रुत्वा वानरा सर्वे ज्ञात्वा मारुतिमागतम्।
हर्षेण महताविष्टा शब्द चक्रुर्महास्वनम्॥ १२ ॥

शब्देनैव विजानीम कृतकार्य समागत ।
हनूमानेव पश्यध्व वानरा वानरर्षभम्॥ १३ ॥

एव ब्रुवत्सु वीरेषु वानरेषु स मारुति ।
अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्नि वानरानिदमब्रवीत्॥ १४ ॥

दृष्टा सीता मया लङ्का धर्षिता च सकानना।
सम्भाषितो दशग्रीवस्ततोऽह पुनरागत ॥ १५ ॥

सीताजीसे इस प्रकार विदा हो वीरवर हनुमान् उन्हे प्रणामकर महासागरके पार जानेके लिये पर्वत-शिखरपर चढ गये॥ ९॥ वहॉ पहुँचकर महावीर हनुमान्‌जी पर्वतको अपने पैरोसे दबाकर वायुवेगसे चले और (उनके दबानेसे) वह तीस योजन ऊँचा पर्वत पृथ्वीमे घुसकर समतल हो गया। हनुमान्‌जीने आकाशमे जाते समय बडा घोर शब्द किया॥ १०-११॥ उसे सुनकर सब वानरगण यह जानकर कि हनुमान्‌जी लौट रहे है, बडे आनन्दमे भरकर घोर शब्द करने लगे॥ १२॥ (वे आपसमे कहने लगे—) "इस सिहनादसे ही मालूम होता है कि हनुमान्‌जी कार्य सिद्ध करके लौटे है। हे वानरगण! देखो, देखो, ये कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ही तो है"॥ १३॥ वानरवीरोके इस प्रकार कहते-कहते हनुमान्‌जी उस गिरिशिखरपर उतर आये और उनसे यो कहने लगे॥ १४॥ "मैने सीताजीको देखा, अशोकवनसहित लकाका विध्वस किया और रावणसे भी बातचीत की। उसके पश्चात् मै यहॉ आया हूँ॥ १५॥

इदानीमेव गच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम्।
इत्युक्ता वानरा सर्वे हर्षेणालिङ्ग्य मारुतिम् ॥ १६ ॥

केचिच्चुचुम्बुर्लाङ्गूल ननृतु केचिदुत्सुका ।
हनूमता समेतास्ते जग्मु प्रस्रवण गिरिम् ॥ १७ ॥

गच्छन्तो ददृशुर्वीरा वन सुग्रीवरक्षितम्।
मधुसज्ञ तदा प्राहुरङ्गद वानरर्षभा ॥ १८ ॥

क्षुधिता स्मो वय वीर देह्यनुज्ञा महामते।
भक्षयाम फलान्यद्य पिबामोऽमृतवन्मधु ॥ १९ ॥

सन्तुष्टा राघव द्रष्टु गच्छामोऽद्यैव सानुजम् ॥ २० ॥

अङ्गद उवाच

हनूमान्कृतकार्योऽय पिबतैतत्प्रसादत ।
जक्षध्व फलमूलानि त्वरित हरिसत्तमा ॥ २१ ॥

तत प्रविश्य हरय पातुमारेभिरे मधु।
रक्षिणस्ताननादृत्य दधिवक्त्रेण नोदितान् ॥ २२ ॥

पिबतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभा ।
ततस्तान्मुष्टिभि पादैश्चूर्णयित्वा पपुर्मधु ॥ २३ ॥

ततो दधिमुख क्रुद्ध सुग्रीवस्य स मातुल ।
जगाम रक्षिभि सार्ध यत्र राजा कपीश्वर ॥ २४ ॥

गत्वा तमब्रवीद्देव चिरकालाभिरक्षितम्।
नष्ट मधुवन तेऽद्य कुमारेण हनूमता ॥ २५ ॥

श्रुत्वा दधिमुखेनोक्त सुग्रीवो हृष्टमानस ।
दृष्ट्वागतो न सन्देह सीता पवननन्दन ॥ २६ ॥

नो चेन्मधुवन द्रष्टु समर्थ को भवेन्मम।
तत्रापि वायुपुत्रेण कृत कार्य न सशय ॥ २७ ॥

श्रुत्वा सुग्रीववचन हृष्टो रामस्तमब्रवीत्।
किमुच्यते त्वया राजन्वच सीताकथान्वितम् ॥ २८ ॥

सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्य देव दृष्टावनीसुता।
हनूमत्प्रमुखा सर्वे प्रविष्टा मधुकाननम् ॥ २९ ॥

अब हम इसी समय राम और सुग्रीवके पास चलेगे।'' हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर सब वानरोने अत्यन्त हर्षसे उन्हे गले लगाया, किन्हीने उनकी पूँछ चूमी और कोई अति उत्साहसे नाचने लगे। तदनन्तर हनुमान्‌जीके साथ वे सब प्रस्रवण पर्वतपर गये ॥ १६-१७ ॥

जिस समय वे वीर वानरगण जा रहे थे उनकी दृष्टि सुग्रीवद्वारा सुरक्षित मधुवनपर पडी। उसे देखकर वे अङ्गदजीसे बोले ॥ १८ ॥ ''हे वीर! हमे बडी भूख लगी है। अत हे महामते! हमे आज्ञा दीजिये जिससे आज हम इस वनके फल खाकर अमृततुल्य मधु पिये ॥ १९ ॥ उसके पश्चात् हम तृप्त होकर भाई लक्ष्मणसहित रघुनाथजीके दर्शन करनेके लिये चलेगे ॥ २० ॥

अङ्गदजी बोले—हनुमान्‌जीने कार्य सिद्ध किया है, अत हे वानरश्रेष्ठगण! इनकी कृपासे तुम शीघ्र ही फल-मूल खाओ और मधु-पान करो ॥ २१ ॥

अङ्गदजीकी आज्ञा पा वानरगण उस वनमे घुसकर दधिमुखके भेजे हुए वनरक्षकोकी उपेक्षा कर मधु पीने लगे ॥ २२ ॥ जब उन वानरोने उन्हे मधुपान करते देखकर मारा तो वे उन्हे लात और घूँसोसे कुचलकर मधु पीते रहे ॥ २३ ॥ तब सुग्रीवका मामा दधिमुख अन्य वनरक्षकोके साथ अति क्रुद्ध हो जहाँ वानरराज सुग्रीव थे वहाँ गया ॥ २४ ॥ वहाँ पहुँचकर वह बोला—''राजन्! तुमने चिरकालसे जिस मधुवनकी रक्षा की थी उसे आज युवराज अङ्गद और हनुमान्‌ने उजाड डाला'' ॥ २५ ॥ दधिमुखकी बात सुनकर सुग्रीव प्रसन्न होकर कहने लगे—''इसमे सन्देह नहीं पवनकुमार सीताजीको देख आये है, नही तो, मेरे मधुवनकी ओर देखनेकी भला किसे सामर्थ्य थी? और उनमे भी निस्सन्देह यह कार्य किया हनुमान्‌जीने ही है ॥ २६-२७ ॥

सुग्रीवके वचन सुनकर भगवान् रामने प्रसन्न हो उनसे पूछा—''राजन्! यह सीता-सम्बन्धी तुम क्या बात कह रहे हो?'' ॥ २८ ॥ सुग्रीवने कहा—''भगवन्! मालूम होता है भूमिसुता जानकीजीका पता लग गया है, क्योकि हनुमान् आदि समस्त वानरगण मधुवनमे घुसकर

भक्षयन्ति स्म सकल ताडयन्ति स्म रक्षिण ।
अकृत्वा देवकार्य ते द्रष्टु मधुवन मम ॥ ३० ॥

न समर्थास्ततो देवी दृष्टा सीतेति निश्चितम् ।
रक्षिणो वो भय मास्तु गत्वा ब्रूत ममाज्ञया ॥ ३१ ॥

वानरानङ्गदमुखानानयध्व ममान्तिकम् ।
श्रुत्वा सुग्रीववचन गत्वा ते वायुवेगत ॥ ३२ ॥

हनूमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति सुग्रीव सरामो लक्ष्मणान्वित ॥ ३३ ॥

युष्मानतीव हृष्टास्ते त्वरयन्ति महाबला ।
तथेत्यम्बरमासाद्य ययुस्ते वानरोत्तमा ॥ ३४ ॥

हनूमन्त पुरस्कृत्य युवराज तथाङ्गदम् ।
रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम् ॥ ३५ ॥

हनूमान् राघव प्राह दृष्टा सीता निरामया ।
साष्टाङ्ग प्रणिपत्याग्रे राम पश्चाद्धरीश्वरम् ॥ ३६ ॥

कुशल प्राह राजेन्द्र जानकी त्वा शुचान्विता ।
अशोकवनिकामध्ये शिशपामूलमाश्रिता ॥ ३७ ॥

राक्षसीभि परिवृता निराहारा कृशा प्रभो ।
हा राम राम रामेति शोचन्ती मलिनाम्बरा ॥ ३८ ॥

एकवेणी मया दृष्टा शनैराश्वासिता शुभा ।
वृक्षशाखान्तरे स्थित्वा सूक्ष्मरूपेण ते कथाम् ॥ ३९ ॥

जन्मारभ्य तवात्यर्थ दण्डकागमन तथा ।
दशाननेन हरण जानक्या रहिते त्वयि ॥ ४० ॥

सुग्रीवेण यथा मैत्री कृत्वा वालिनिबर्हणम् ।
मार्गणार्थ च वैदेह्या सुग्रीवेण विसर्जिता ॥ ४१ ॥

महाबला महासत्त्वा हरयो जितकाशिन ।
गता सर्वत्र सर्वे वै तत्रैकोऽहमिहागत ॥ ४२ ॥

अह सुग्रीवसचिवो दासोऽह राघवस्य हि ।
दृष्टा यज्जानकी भाग्यात्प्रयास फलितोऽद्य मे ॥ ४३ ॥

उसके फल खा रहे है और उसके रक्षकोको मारते है। बिना आपका कार्य किये तो वे मेरे मधुवनकी ओर देख भी नही सकते थे। अत यह निश्चय होता है कि वे देवी जानकीजीसे मिल आये है। रक्षको ! तुम डरो मत, उन्हे जाकर मेरी आज्ञा सुनाओ और उन अङ्गदादि वानरोको मेरे पास ले आओ। सुग्रीवकी आज्ञा सुनकर वे वायुवेगसे चले और हनुमान् आदिसे कहा—"महाराजकी आज्ञा है, आपलोग तुरत वहाँ जाइये, क्योकि राम और लक्ष्मणके सहित महाराज सुग्रीव आपलोगोसे मिलना चाहते है। हे महावीरगण ! आपलोगोसे प्रसन्न होकर वे आपको बहुत शीघ्र बुला रहे है।" तब वे वानरश्रेष्ठ 'बहुत अच्छा' कह आकाशमे चढकर चलने लगे। वे सब वानरगण हनुमान् और युवराज अङ्गदको आगे कर चले और तुरत ही राम और सुग्रीवके सामने पृथ्वीपर उतर आये ॥ २९—३५ ॥

हनुमान्‌जीने पहले श्रीरघुनाथजीको और फिर वानरराज सुग्रीवको साष्टाङ्ग प्रणाम कर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"मै सीताजीको सकुशल देख आया हूँ ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र ! शोकमग्ना जानकीजीने आपको अपना कुशल समाचार सुनानेके लिये कहा है। वे अशोकवाटिकाके बीचमे शिशपा वृक्षके तले बैठी है, और हे प्रभो ! सदा राक्षसियोसे घिरी रहती है, अन्न-जल छोड देनेके कारण वे अत्यन्त दुर्बल हो गयी है और निरन्तर 'हा राम ! हा राम !' हा राम ! कहकर शोक करती रहती है, उनके वस्त्र मलिन हो गये है तथा बालोकी मिलकर एक वेणी हो गयी है—ऐसी अवस्थामे मैने सीताजीको देखा और धीरे-धीरे उन्हे ढाँढस बँधाया। वहाँ जाकर पहले मैने सूक्ष्मरूपसे वृक्षके पत्तोमे छिपे-छिपे सक्षेपमे आपकी सब कथा सुनायी, जिस प्रकार जन्मसे लेकर आपका दण्डकारण्यमे आना हुआ, आपकी अनुपस्थितिमे रावणने सीताजीको हरा तथा जिस प्रकार सुग्रीवसे मित्रता कर आपने वालीको मारा—(वह सब सुनाकर फिर मैने कहा कि) सुग्रीवद्वारा सीताजीकी खोजके लिये भेजे हुए बडे बलवान्, पराक्रमी और विजयशाली वानरगण सब दिशाओमे गये हैं और उनमेसे एक मै सुग्रीवका मन्त्री और रघुनाथजीका दास यहाँ आया हूँ। आज भाग्यवश मैने जानकीजीको देख लिया। अत मेरा प्रयास सफल हो गया ॥ ३७—४३ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य सीता विस्फारितेक्षणा ।
केन वा कर्णपीयूष श्रावित मे शुभाक्षरम् ॥ ४४ ॥

यदि सत्य तदायातु मद्दर्शनपथ तु स ।
ततोऽह वानराकार सूक्ष्मरूपेण जानकीम् ॥ ४५ ॥

प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा दूरादेव स्थित प्रभो ।
पृष्टोऽह सीतया कस्त्वमित्यादि बहुविस्तरम् ॥ ४६ ॥

मया सर्व क्रमेणैव विज्ञापितमरिन्दम ।
पश्चान्मयार्पित देव्यै भवद्दत्ताङ्गुलीयकम् ॥ ४७ ॥

तेन मामतिविश्वस्ता वचन चेदमब्रवीत् ।
यथा दृष्टास्मि हनुमन्पीड्यमाना दिवानिशम् ॥ ४८ ॥

राक्षसीना तर्जनैस्तत्सर्व कथय राघवे ।
मयोक्त देवि रामोऽपि त्वच्चिन्तापरिनिष्ठित ॥ ४९ ॥

परिशोचत्यहोरात्र त्वद्वार्ता नाधिगम्य स ।
इदानीमेव गत्वाह स्थितिं रामाय ते ब्रुवे ॥ ५० ॥

राम श्रवणमात्रेण सुग्रीवेण सलक्ष्मण ।
वानरानीकपै सार्धमागमिष्यति तेऽन्तिकम् ॥ ५१ ॥

रावण सकुल हत्वा नेष्यति त्वा स्वक पुरम् ।
अभिज्ञा देहि मे देवि यथा मा विश्वसेद्विभु ॥ ५२ ॥

इत्युक्ता सा शिरोरत्न चूडापाशे स्थित प्रियम् ।
दत्त्वा काकेन यद्वृत्त चित्रकूटगिरौ पुरा ॥ ५३ ॥

तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशल ब्रूहि राघवम् ।
लक्ष्मण ब्रूहि मे किञ्चिद्दुरुक्त भाषित पुरा ॥ ५४ ॥

तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषित कुलनन्दन ।
तारयेन्मा यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वित ॥ ५५ ॥

इत्युक्त्वा रुदती सीता दु खेन महतावृता ।
मयाप्याश्वासिता राम वदता सर्वमेव ते ॥ ५६ ॥

तत प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागत ।
तदागमनवेलायामशोकवनिका प्रियाम् ॥ ५७ ॥

"मेरा यह कथन सुनकर सीताजीके नेत्र खिल गये और वे कहने लगी—"मुझे ये कर्णामृतरूप शुभ सवाद किसने सुनाया है ? यदि यह सब सत्य है—(मुझे भ्रम नही हुआ है) तो इस सवादको सुनानेवाला मेरे सामने आवे।" हे प्रभो ! तब मै सूक्ष्मरूपसे बदरके आकारमे उनके सामने उपस्थित हुआ और दूरहीसे प्रणाम कर हाथ जोडकर खडा हो गया। तब जानकीजीने मुझस 'तुम कौन हो ?' इत्यादि बहुत-सी बाते पूछी ॥ ४४—४६ ॥ और हे शत्रुदमन ! मैने उन्हे क्रमश सब बाते बतला दी। इसके पश्चात् मैने उन्हे आपकी दी हुई ॲगूठी निवेदन की ॥ ४७ ॥ इससे उन्हे मुझपर पूर्ण विश्वास हो गया और वे मुझसे इस प्रकार कहने लगी—"हनुमन् ! जिस प्रकार इन राक्षसियोके त्राससे तुमने मुझे अहर्निश दु ख उठाते देखा है वह सब ज्यो-का-त्यो रघुनाथजीको सुना देना।" मैने कहा—"देवि ! रघुनाथजी भी तुम्हारी ही चिन्तासे ग्रस्त रहते है और तुम्हारा समाचार न मिलनेसे रात-दिन तुम्हारी ही चिन्ता करते रहते है। मै अभी जाकर उन्हे तुम्हारी स्थिति सुनाऊँगा ॥ ४८—५० ॥ और रघुनाथजी उसे सुनते ही सुग्रीव, लक्ष्मण और अन्यान्य वानर सेनापतियोके साथ तुम्हारे पास आयेगे ॥ ५१ ॥ तथा रावणको कुटुम्बसहित मारकर तुम्हे अपनी राजधानी अयोध्याको ले जायँगे। हे देवि ! तुम मुझे कोई ऐसा चिह्न दो जिससे भगवान् मेरा विश्वास करे" ॥ ५२ ॥ मेरे इस प्रकार कहनेपर उन्होने अपने केशपाशमे स्थित अपनी प्रिया चूडामणि दी और पहले चित्रकूट पर्वतपर काकके साथ जो कुछ हुआ था वह सब भी सुनाया तथा नेत्रोमे जल भरकर कहा—"रघुनाथजीसे मेरी कुशल कहना और लक्ष्मणजीसे कहना कि हे कुलनन्दन ! मैने पहले तुमसे जो कुछ कठोर वचन कहे थे उन अज्ञानवश कहे हुए वाक्योके लिये मुझे क्षमा करे। इसके सिवा जिस प्रकार रघुनाथजी कृपा करके मेरा उद्धार करे वही चेष्टा करना" ॥ ५३—५५ ॥

"ऐसा कहकर सीताजी महान् दु खमे भरकर रोने लगी, मैने भी उन्हे आपका सब वृत्तान्त सुनाकर ढाँढस बँधाया और फिर उनसे विदा होकर आपके पास चला आया। आती बार मैने रावणकी प्रिय अशोकवाटिका

उत्पाट्य राक्षसास्तत्र बहून्हत्वा क्षणादहम्।
रावणस्य सुत हत्वा रावणेनाभिभाष्य च ॥ ५८ ॥

लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यागम क्षणात्।
श्रुत्वा हनूमतो वाक्य रामोऽत्यन्तप्रहृष्टधी ॥ ५९ ॥

उजाड दी और एक क्षणमे ही बहुत-से राक्षस मार डाले। रावणके पुत्रको भी मारा और रावणसे वार्तालाप कर लकाको सब ओरसे जलाकर फिर क्षणभरमे ही यहाँ चला आया।''

हनुमान्‌जीके ये वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी अति प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ५६—५९ ॥

हनूमस्ते कृत कार्य देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकार न पश्यामि तव प्रत्युपकारिण ॥ ६० ॥

''हनुमन्! तुमने जो कार्य किया है वह देवताओसे भी होना कठिन है, मै इसके बदलेमे तुम्हारा क्या उपकार करूँ—सो नहीं जानता ॥ ६० ॥

इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्व मम मारुते।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढ वानरपुङ्गवम् ॥ ६१ ॥

लो, मै अभी तुम्हे अपना सर्वस्व सौपता हूँ।'' ऐसा कह उन्होने वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको खीचकर गाढ आलिङ्गन किया ॥ ६१ ॥

सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठ परा प्रीतिमवाप स।
हनूमन्तमुवाचेद राघवो भक्तवत्सल ॥ ६२ ॥

उनके नेत्रोमे जल भर आया और हृदयमे परम प्रेम उमडने लगा। तब भक्तवत्सल रघुनाथजीने हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ ६२ ॥

परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभ परमात्मन।
अतस्त्व मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥ ६३ ॥

''ससारमे मुझ परमात्माका आलिङ्गन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, वानरश्रेष्ठ! (तुम्हे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है) अत तुम मेरे परम भक्त और प्रिय हो'' ॥ ६३ ॥

यत्पादपद्मयुगल तुलसीदलाद्यै
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुला प्रयान्ति।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती
रामेण वायुतनय कृतपुण्यपुञ्ज ॥ ६४ ॥

हे पार्वति! जिनके चरणारविन्दयुगलको तुलसीदल आदिसे पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपद प्राप्त करते है, उन्ही रामने जिनके शरीरका आलिङ्गन किया उन पवित्र कर्म करनेवाले पवनपुत्रके विषयमे क्या कहा जाय? ॥ ६४ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे सुन्दरकाण्डे पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

★

समाप्तमिद सुन्दरकाण्डम्।

★

ॐ

अध्यात्मरामायण



युद्धकाण्ड



प्रथम सर्ग

वानर-सेनाका प्रस्थान

श्रीमहादेव उवाच

यथावद्भाषित वाक्य श्रुत्वा रामो हनूमत ।
उवाचानन्तर वाक्य हर्षेण महतावृत ॥ १ ॥

कार्य कृत हनुमता देवैरपि सुदुष्करम् ।
मनसापि यदन्येन स्मर्तु शक्य न भूतले ॥ २ ॥

शतयोजनविस्तीर्ण लङ्घयेत्क पयोनिधिम् ।
लङ्का च राक्षसैर्गुप्ता को वा धर्षयितु क्षम ॥ ३ ॥

भृत्यकार्य हनुमता कृत सर्वमशेषत ।
सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति ॥ ४ ॥

अह च रघुवशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वर ।
जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिता स्मो हनूमता ॥ ५ ॥

सर्वथा सुकृत कार्य जानक्या परिमार्गणम् ।
समुद्र मनसा स्मृत्वा सीदतीव मनो मम ॥ ६ ॥

कथ नक्रझषाकीर्ण समुद्र शतयोजनम् ।
लङ्घयित्वा रिपु हन्या कथ द्रक्ष्यामि जानकीम् ॥ ७ ॥

श्रुत्वा तु रामवचन सुग्रीव प्राह राघवम् ।
समुद्र लङ्घयिष्यामो महानक्रझषाकुलम् ॥ ८ ॥

लङ्का च विधमिष्यामो हनिष्यामोऽद्य रावणम् ।
चिन्ता त्यज रघुश्रेष्ठ चिन्ता कार्यविनाशिनी ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! हनुमान्‌जीके ज्यो-के-त्यो कहे हुए वाक्योको सुननेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने अति हर्षसे भरकर ये वचन कहे— ॥ १ ॥ "हनुमान्‌जीने जो कार्य किया है उसका करना देवताओको भी अति कठिन है, पृथ्वीतलपर और कोई तो उसका मनसे भी स्मरण नही कर सकता ॥ २ ॥ भला, ऐसा कौन है जो सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लॉघने और राक्षसोसे सुरक्षिता लङ्कापुरीका ध्वस करनेमे समर्थ हो ? ॥ ३ ॥ हनुमान्‌ने सुग्रीवके समग्र सेवक-धर्मको खूब निभाया। ससारमे ऐसा न कोई हुआ और न आगे होगा ही ॥ ४ ॥ हनूमान्‌ने जानकीजीको देखकर आज मुझको तथा रघुवश, लक्ष्मण और सुग्रीव आदि सभीको बचा लिया है ॥ ५ ॥ जानकीजीकी खोजका कार्य तो बिलकुल ठीक हो गया, किन्तु समुद्रकी याद आनेसे मेरा मन व्यथित-सा होने लगता है ॥ ६ ॥ नाके और मकरोसे भरे हुए सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लॉघकर मै शत्रुको कैसे मारूँगा ? और जानकीजीको कैसे देख सकूँगा ?" ॥ ७ ॥

श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर सुग्रीव उनसे बोला—"हम बडे-बडे नाके और मछलियोसे पूर्ण समुद्रको लॉघ जायँगे और शीघ्र ही लङ्काको विध्वसकर रावणका भी नाश करेगे। रघुनाथजी ! आप चिन्ता छोडिये, चिन्ता तो कार्य बिगाडनेवाली होती है ॥ ८-९ ॥

एतान्पश्य महासत्त्वान् शूरान्वानरपुङ्गवान्।
त्वत्प्रियार्थं समुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपि पावकम्॥ १०॥

समुद्रतरणे बुद्धिं कुरुष्व प्रथमं ततः।
दृष्ट्वा लङ्कां दशग्रीवो हत इत्येव मन्महे॥ ११॥

नहि पश्याम्यहं कञ्चित्त्रिषु लोकेषु राघव।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे॥ १२॥

सर्वथा नो जयो राम भविष्यति न संशयः।
निमित्तानि च पश्यामि तथा भूतानि सर्वशः॥ १३॥

सुग्रीववचनं श्रुत्वा भक्तिवीर्यसमन्वितम्।
अङ्गीकृत्याब्रवीद्रामो हनूमन्तं पुरः स्थितम्॥ १४॥

येन केन प्रकारेण लङ्घयामो महार्णवम्।
लङ्कास्वरूपं मे ब्रूहि दुःसाध्यं देवदानवैः॥ १५॥

ज्ञात्वा तस्य प्रतीकारं करिष्यामि कपीश्वर।
श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्विनयान्वितः॥ १६॥

उवाच प्राञ्जलिर्देव यथा दृष्टं ब्रवीमि ते।
लङ्का दिव्या पुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता॥ १७॥

स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता।
परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः॥ १८॥

नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता।
गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः॥ १९॥

पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः।
उत्तरे द्वारि तिष्ठन्ति साश्ववाहाः सपत्तयः॥ २०॥

तिष्ठन्त्यर्बुदसङ्ख्याकाः प्राच्यामपि तथैव च।
रक्षिणो राक्षसा वीरा द्वारं दक्षिणमाश्रिताः॥ २१॥

मध्यकक्षेऽप्यसङ्ख्याता गजाश्वरथपत्तयः।
रक्षयन्ति सदा लङ्कां नानास्त्रकुशलाः प्रभो॥ २२॥

सङ्क्रमैर्विविधैर्लङ्का शतघ्नीभिश्च संयुता।
एवं स्थितेऽपि देवेश शृणु मे तत्र चेष्टितम्॥ २३॥

आप इन महापराक्रमी और शूरवीर वानरवीरोंको देखिये। ये आपका प्रिय करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करनेको भी तैयार हैं॥ १०॥ पहले समुद्रपार करनेका विचार कीजिये, फिर लङ्काके तो दर्शन होते ही हम रावणको मरा हुआ ही समझते हैं॥ ११॥ हे राघव! त्रिलोकीमें मुझे ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता जो आपके धनुष ग्रहण करनेपर युद्धमें सामने डटा रहे॥ १२॥ हे राम! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं सब प्रकारसे जीत हमारी ही होगी, क्योंकि मुझे सब ओर ऐसे ही कारण (शकुन) दिखायी दे रहे हैं'' ॥ १३॥

सुग्रीवके ये भक्ति और पुरुषार्थसे भरे वचन सुनकर भगवान् रामने उन्हें सादर स्वीकार किया और फिर सामने खड़े हुए हनुमान्‌जीसे कहा— ॥ १४॥'हम जैसे-तैसे समुद्र तो पार करेंगे ही, किन्तु तुम लङ्काका रूप तो बताओ। सुना है, उसे जीतना तो देवता और दानवोंको भी अत्यन्त कठिन है॥ १५॥ हे कपीश्वर! उसका स्वरूप विदित होनेपर मैं उसका कोई प्रतीकार सोचूँगा।'

रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जीने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—''देव! मैंने जैसा कुछ देखा है वह आपसे निवेदन करता हूँ। दिव्यपुरी लङ्का त्रिकूटपर्वतके शिखरपर बसी हुई है॥ १६-१७॥ उसका सोनेका परकोटा है और उसमें सोनेकी ही अट्टालिकाएँ हैं तथा वह निर्मल जलसे भरी खाइयोंसे घिरी हुई है॥ १८॥ अनेकों उपवनोंके कारण उसकी अत्यन्त शोभा हो रही है और उसमें जहाँ-तहाँ बहुत-सी बावड़ियाँ तथा विचित्र शोभासम्पन्न मणिस्तम्भयुक्त भवन शोभायमान हैं॥ १९॥ उसके पश्चिमद्वारपर हजारों गजारोही, उत्तरद्वारपर पैदल सेनाके सहित बहुत-से घुड़सवार, पूर्वद्वारपर एक अरब राक्षस वीर और दक्षिणद्वारपर भी इतने ही रक्षक रहते हैं॥ २०-२१॥ हे प्रभो! उसके मध्यभागमें भी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी असंख्य सेना रहकर नगरकी रक्षा करती है। वे सब नाना प्रकारके शस्त्र चलानेमें अत्यन्त कुशल हैं॥ २२॥ इस प्रकार लङ्कामें जानेका मार्ग नाना प्रकारके संक्रम (सुरंग) और शतघ्नियों (तोपों) से सुरक्षित है, किन्तु हे देवेश्वर! यह सब कुछ होते हुए भी मैंने जो कुछ किया है वह सुनिये॥ २३॥

दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हत ।
दग्ध्वा लङ्का पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया ॥ २४ ॥

शतघ्न्य सङ्क्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम ।
देव त्वद्दर्शनादेव लङ्का भस्मीकृता भवेत् ॥ २५ ॥

प्रस्थान कुरु देवेश गच्छामो लवणाम्बुधे ।
तीर सह महावीरैर्वानरौघै समन्तत ॥ २६ ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यमुवाच रघुनन्दन ।
सुग्रीव सैनिकान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ॥ २७ ॥

इदानीमेव विजयो मुहूर्त परिवर्तते ।
अस्मिन्मुहूर्ते गत्वाह लङ्का राक्षससङ्कुलाम् ॥ २८ ॥

सप्राकारा सुदुर्धर्षा नाशयामि सरावणाम् ।
आनेष्यामि च सीता मे दक्षिणाक्षि स्फुरत्यध ॥ २९ ॥

प्रयातु वाहिनी सर्वा वानराणा तरस्विनाम् ।
रक्षन्तु यूथपा सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयो ॥ ३० ॥

हनूमन्तमथारुह्य गच्छाम्यग्रेऽङ्गद तत ।
आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्व मया सह ॥ ३१ ॥

गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च ।
नलो नील सुषेणश्च जाम्बवाश्च तथापरे ॥ ३२ ॥

सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनाया शत्रुघातिन ।
इत्याज्ञाप्य हरीन् राम प्रतस्थे सहलक्ष्मण ॥ ३३ ॥

सुग्रीवसहितो हर्षात्सेनामध्यगतो विभु ।
वारणेन्द्रनिभा सर्वे वानरा कामरूपिण ॥ ३४ ॥

क्ष्वेलन्त परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणा दिशम् ।
भक्षयन्तो ययु सर्वे फलानि च मधूनि च ॥ ३५ ॥

ब्रुवन्तो राघवस्याग्रे हनिष्यामोऽद्य रावणम् ।
एव ते वानरश्रेष्ठा गच्छन्त्यतुलविक्रमा ॥ ३६ ॥

हरिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते रघूत्तमौ ।
नक्षत्रै सेवितौ यद्वच्चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥ ३७ ॥

मैने रावणकी चौथाई सेना मार डाली और लङ्कापुरीको जलाकर उसका सोनेका महल नष्ट कर दिया ॥ २४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! सक्रमो और तोपोको मैने तोड डाला। हे देव ! (मुझे तो विश्वास है) आपकी दृष्टि पडते ही लङ्का भस्मीभूत हो जायगी ॥ २५ ॥ हे देवेश्वर ! अब चलनेकी तैयारी कीजिये। हम सब ओरसे महाबलवान् वानर-वीरोकी सेना लेकर क्षार (खारे पानीके) समुद्रके तटपर चले' ॥ २६ ॥

हनुमान्जीका कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीने कहा— 'सुग्रीव ! सब सैनिकोको इसी समय कूच करनेकी आज्ञा दो, क्योकि इस समय विजयनामक मुहूर्त्त बीत रहा है। इस मुहूर्त्तमे जाकर मै राक्षससकुलित लङ्काको, जो परकोटे आदिके कारण अति दुर्जय है, रावणके सहित नष्ट कर दूँगा और सीताजीको ले आऊँगा। इस समय मेरी दायी आँखका नीचेका भाग फडक रहा है ॥ २७—२९ ॥ इसी समय बलवान् वानरोकी सम्पूर्ण सेना चले, जो यूथपति हो वे अपने-अपने यूथकी आगे-पीछे और इधर-उधरसे रक्षा करे ॥ ३० ॥ मै हनुमान्के कन्धेपर चढकर सबसे आगे चलता हूँ, उसके पीछे लक्ष्मण अगदके ऊपर चढकर चले और हे सुग्रीव ! तुम मेरे साथ चलो ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण और जाम्बवान् तथा शत्रुओका नाश करनेवाले और भी समस्त सेनापतिगण सेनाके चारो ओर चल।'' वानरोको इस प्रकार आज्ञा दे श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित कूच किया ॥ ३२-३३ ॥

भगवान् राम अति हर्षसे सुग्रीवके साथ सेनाके बीचमे जा रहे थे। समस्त वानरगण गजराजके समान बडे डीलवाले और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे ॥ ३४ ॥ वे सब बडे वेगसे उछलते-कूदते, गरजते और फल तथा मधु खाते दक्षिण दिशाको चले ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वे अतुल पराक्रमी वानरश्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीके सामने 'हम आज ही रावणको मार डालेगे' एसा कहते हुए जा रहे थे ॥ ३६ ॥ हनुमान् और अगदके कन्धोपर जाते हुए वे दोनो रघुश्रेष्ठ ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो

आवृत्य पृथिवीं कृत्स्ना जगाम महती चमू ।
प्रस्फोटयन्त पुच्छाग्रानुद्वहन्तश्च पादपान् ॥ ३८ ॥

शैलानारोहयन्तश्च जग्मुर्मारुतवेगत ।
असङ्ख्याताश्च सर्वत्र वानरा परिपूरिता ॥ ३९ ॥

हृष्टास्ते जग्मुरत्यर्थ रामेण परिपालिता ।
गता चमूर्दिवारात्र क्वचिन्नासजत क्षणम् ॥ ४० ॥

काननानि विचित्राणि पश्यन्मलयसह्ययो ।
ते सह्य समतिक्रम्य मलय च तथा गिरिम् ॥ ४१ ॥

आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्र भीमनि स्वनम् ।
अवतीर्य हनूमन्त राम सुग्रीवसयुत ॥ ४२ ॥

सलिलाभ्याशमासाद्य रामो वचनमब्रवीत् ।
आगता स्मो वय सर्वे समुद्र मकरालयम् ॥ ४३ ॥

इतो गन्तुमशक्य नो निरुपायेन वानरा ।
अत्र सेनानिवेशोऽस्तु मन्त्रयामोऽस्य तारणे ॥ ४४ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचन सुग्रीव सागरान्तिके ।
सेना न्यवेशयत्क्षिप्र रक्षिता कपिकुञ्जरै ॥ ४५ ॥

ते पश्यन्तो विषेदुस्त सागर भीमदर्शनम् ।
महोन्नततरङ्गाढ्य भीमनक्रभयङ्करम् ॥ ४६ ॥

अगाध गगनाकार सागर वीक्ष्य दु खिता ।
तरिष्याम कथ घोर सागर वरुणालयम् ॥ ४७ ॥

हन्तव्योऽस्माभिरद्यैव रावणो राक्षसाधम ।
इति चिन्ताकुला सर्वे रामपार्श्वे व्यवस्थिता ॥ ४८ ॥

राम सीतामनुस्मृत्य दु खेन महतावृत ।
विलप्य जानकीं सीता बहुधा कार्यमानुष ॥ ४९ ॥

अद्वितीयश्चिदात्मैक परमात्मा सनातन ।
यस्तु जानाति रामस्य स्वरूप तत्त्वतो जन ॥ ५० ॥

त न स्पृशति दु खादि किमुतानन्दमव्ययम् ।
दु खहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादय ॥ ५१ ॥

आकाश-मण्डलमे नक्षत्रोसे सुसेवित सूर्य और चन्द्रमा हो ॥ ३७ ॥ वह महान् सेना सम्पूर्ण पृथिवीको घेरकर चल रही थी। वानरगण अपनी पूँछ फटकारते और पेडोको उखाडते हुए पर्वतोपर उछलते-कूदते वायुवेगसे जा रहे थे। उस समय सब ओर असख्य वानर भरे हुए दीख पडते थे ॥ ३८-३९ ॥ भगवान् रामसे सुरक्षित होकर वे प्रसन्नतापूर्वक बडी तेजीसे जा रहे थे। वह वानर-सेना रात-दिन चलती थी, कही एक क्षणको भी न रुकती थी ॥ ४० ॥ अन्तमे वे सब लोग मलयाचल और सह्याद्रिके विचित्र वनोको देखते हुए उन दोनो पर्वतोको पार कर क्रमश भयङ्कर गर्जना करनेवाले समुद्रके तटपर पहुँच गये। तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीके कन्धेसे उतरकर सुग्रीवके साथ जलके निकट आये और बोले—"हे वानरगण ! हमलोग मकरादिसे पूर्ण समुद्रके तटपर तो आ गये, किन्तु अब आगे बिना कोई विशेष उपाय किये हम नही जा सकते। अत अब यही सेनाकी छावनी डाली जाय। हमलोग समुद्र पार करनेके विषयमे परस्पर परामर्श करेगे" ॥ ४१—४४ ॥

रामके वचन सुनकर सुग्रीवने तुरत ही समुद्रके निकट सेनाका पडाव डाला और बहुत-से प्रधान-प्रधान वानर-वीर उनकी रक्षा करने लगे ॥ ४५ ॥ वे लोग उत्ताल तरङ्गोसे पूर्ण तथा दारुण नाके आदिके कारण भयङ्कर समुद्रको देखकर मन-ही-मन विषाद करने लगे ॥ ४६ ॥ उस आकाशके समान अगाध समुद्रको देखकर उन्हे बडा दु ख हुआ और वे सोचने लगे कि 'हम इस घोर वरुणालयको कैसे पार करेगे ॥ ४७ ॥ राक्षसाधम रावणको तो हमे आज ही मारना है (पर मारे कैसे ?)' इस प्रकार सब लोग अति चिन्ताग्रस्त हो श्रीरघुनाथजीके पास बैठ गये ॥ ४८ ॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी भी सीताकी यादकर महान् दु खमे डूब गये। वे यद्यपि एक अद्वितीय चिन्मात्र परमात्मा सनातन पुरुष थे, तथापि कार्यवश मनुष्यरूप होनेके कारण जानकीजीके लिये नाना प्रकारसे विलाप करने लगे। जो पुरुष परमात्मा रामका वास्तविक स्वरूप जानता है उसे भी दु खादि स्पर्श नही कर सकते, फिर आनन्द-स्वरूप अविनाशी भगवान् रामकी तो बात ही क्या

अज्ञानलिङ्गान्येतानि कुत सन्ति चिदात्मनि ।
देहाभिमानिनो दु ख न देहस्य चिदात्मन ॥ ५२ ॥

सम्प्रसादे द्वयाभावात्सुखमात्र हि दृश्यते ।
बुद्ध्याद्यभावात्संशुद्धे दु ख तत्र न दृश्यते ।
अतो दु खादिक सर्व बुद्धेरेव न सशय ॥ ५३ ॥

राम परात्मा पुरुष पुराणो
नित्योदितो नित्यसुखो निरीह ।
तथापि मायागुणसङ्गतोऽसौ
सुखीव दु खीव विभाव्यतेऽबुधै ॥ ५४ ॥

है ? दु ख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि सब अज्ञानके ही चिह्न है, चिदात्मा राममे ये कैसे हो सकते हैं ? देहका दु ख देहाभिमानीको ही होता है, चेतन आत्माको नही ॥ ४९—५२ ॥ समाधि-अवस्थामे द्वैत-प्रपञ्चका अभाव हो जानेके कारण वहाँ केवल सुखका ही साक्षात्कार होता है। उस अवस्थामे बुद्धि आदिका अभाव हो जानेसे शुद्ध आत्मामे दु खका लेश भी दिखायी नही देता। अत इसमे सन्देह नही ये दु खादि सब बुद्धिके ही धर्म है ॥ ५३ ॥ भगवान् राम परमात्मा, पुराणपुरुष, नित्यप्रकाश-स्वरूप, नित्यसुख-स्वरूप और निरीह है, किन्तु अज्ञानी पुरुषोको वे मायिक गुणोके सम्बन्धसे सुखी या दु खी-से प्रतीत होते है ॥ ५४ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

★

द्वितीय सर्ग

रावणद्वारा विभीषणका तिरस्कार

श्रीमहादेव उवाच

लङ्काया रावणो दृष्ट्वा कृत कर्म हनूमता ।
दुष्कर दैवतैर्वापि ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुख ॥ १ ॥
आहूय मन्त्रिण सर्वानिद वचनमब्रवीत् ।
हनूमता कृत कर्म भवद्भिर्दृष्टमेव तत् ॥ २ ॥
प्रविश्य लङ्का दुर्धर्षा दृष्ट्वा सीता दुरासदाम् ।
हत्वा च राक्षसान्वीरानक्ष मन्दोदरीसुतम् ॥ ३ ॥
दग्ध्वा लङ्कामशेषेण लङ्घयित्वा च सागरम् ।
युष्मान्सर्वानतिक्रम्य स्वस्थोऽगात्पुनरेव स ॥ ४ ॥
किं कर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूय मन्त्रविशारदा ।
मन्त्रयध्व प्रयत्नेन यत्कृत मे हित भवेत् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इधर लङ्कामे श्रीहनुमान्‌जीका देवताओके लिये भी दुष्कर कृत्य देख रावणने अपने समस्त मन्त्रियोको बुलाकर लज्जासे सिर नीचा करके कहा—"हनुमान्‌ने जो-जो कर्म किया वह सब आपलोगोने देखा ही है ॥ १-२ ॥ वह दुष्प्रवेश्य लङ्कामे घुसकर सर्वथा दुष्प्राप्य सीतासे मिला तथा उसने अन्य राक्षस वीरोके साथ मन्दोदरीके पुत्र अक्षको मारकर सम्पूर्ण लङ्काको जला दिया और फिर आप सब लोगोका तिरस्कार कर कुशलपूर्वक समुद्र-लॉघकर लौट गया ॥ ३-४ ॥ आप सब लोग नीति-निपुण है, अत अब हमे क्या करना चाहिये और क्या करनेसे हमारा हित हो सकता है—इसका प्रयत्नपूर्वक विचार कीजिये" ॥ ५ ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा राक्षसास्तमथाब्रुवन् ।
देव शङ्का कुतो रामात्तव लोकजितो रणे ॥ ६ ॥
इन्द्रस्तु बद्ध्वा निक्षिप्त पुत्रेण तव पत्तने ।
जित्वा कुबेरमानीय पुष्पक भुज्यते त्वया ॥ ७ ॥

रावणके वचन सुनकर राक्षसोने उससे कहा—"देव ! आपको रामसे क्या शका है ? आपने तो युद्धमे समस्त लोकोको जीत लिया है ॥ ६ ॥ आपके पुत्रने इन्द्रको बॉधकर अपनी राजधानीमे डाल लिया था और आप स्वय भी कुबेरको जीतकर उसका पुष्पक विमान

यमो जित कालदण्डाद्भय नाभूत्तव प्रभो ।
वरुणो हुङ्कृतेनैव जित सर्वेऽपि राक्षसा ॥ ८ ॥

मयो महासुरो भीत्या कन्या दत्त्वा स्वय तव ।
त्वद्वशे वर्ततेऽद्यापि किमुतान्ये महासुरा ॥ ९ ॥

हनूमद्धर्षण यत्तु तदवज्ञाकृत च न ।
वानरोऽय किमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥ १० ॥

इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षण तेन किं भवेत् ।
वय प्रमत्ता किं तेन वञ्चिता स्मो हनूमता ॥ ११ ॥

जानीमो यदि त सर्वे कथ जीवन् गमिष्यति ।
आज्ञापय जगत्कृत्स्नमवानरममानुषम् ॥ १२ ॥

कृत्वायास्यामहे सर्वे प्रत्येक वा नियोजय ।
कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावण राक्षसेश्वरम् ॥ १३ ॥

आरब्ध यत्त्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम् ।
न दृष्टोऽसि तदा भाग्यात्त्व रामेण महात्मना ॥ १४ ॥

यदि पश्यति रामस्त्वा जीवन्नायासि रावण ।
रामो न मानुषो देव साक्षान्नारायणोऽव्यय ॥ १५ ॥

सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी ।
राक्षसाना विनाशाय त्वयानीता सुमध्यमा ॥ १६ ॥

विषपिण्डमिवागीर्य महामीनो यथा तथा ।
आनीता जानकी पश्चात्त्वया किं वा भविष्यति ॥ १७ ॥

यद्यप्यनुचित कर्म त्वया कृतमजानता ।
सर्व सम करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥ १८ ॥

कुम्भकर्णवच श्रुत्वा वाक्यमिन्द्रजिदब्रवीत् ।
देहि देव ममानुज्ञा हत्वा राम सलक्ष्मणम् ।
सुग्रीव वानराश्चैव पुनर्यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥ १९ ॥

लाकर भोगते है ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! आपने यमराजको भी जीत लिया, उसके कालदण्डसे भी आपको कोई भय नही हुआ तथा वरुण और समस्त राक्षसोको आपने हुकारसे ही जीत लिया था ॥ ८ ॥ और महासुरोकी तो बात ही क्या है, स्वय मयासुर भी आपके भयसे आपको अपनी कन्या देकर आजतक आपके अधीन बना हुआ है ॥ ९ ॥ हनुमान्ने जो हमारा तिरस्कार किया है वह तो हमारी ही उपेक्षासे हुआ है । हमने यह सोचकर कि यह वानर है इसे पुरुषार्थ दिखानेमे क्या रखा है उसकी उपेक्षा कर दी थी, नही तो वह हमारी अवज्ञा क्या कर सकता था ? ॥ १० ॥ अत असावधान रहनेके कारण यदि हमे हनुमान्ने ठग लिया तो इससे क्या हुआ ? यदि हम सब उसे जानते तो वह जीता हुआ कैसे जा सकता था ? आप हमे आज्ञा दीजिये, हम सब अभी जाकर पृथ्वीको वानर और मनुष्योसे शून्य कर आते है । अथवा हममेसे एक-एकको ही इस कार्यके लिये नियुक्त कीजिये ।''

तदनन्तर राक्षसराज रावणसे कुम्भकर्ण बोला— ॥ ११—१३ ॥ ''आपने जो कार्य आरम्भ किया है वह केवल आपका नाश करनेके लिये ही है। सौभाग्यवश इतना ही अच्छा हुआ कि सीताजीको चुरानेके समय महात्मा रामने आपको नही देखा ॥ १४ ॥ हे रावण ! यदि उस समय राम आपको देख लेते तो आप जीते-जागते नही लौट सकते थे । राम कोई साधारण मनुष्य नही है, वे साक्षात् अव्यय नारायणदेव है ॥ १५ ॥ भगवान् रामकी पत्नी यशस्विनी सीताजी साक्षात् भगवती लक्ष्मी है, उस सुन्दरीको आप राक्षसोके नाशके लिये ही लाये है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार कोई महामत्स्य विषका पिण्ड निगल जाय उसी प्रकार आप (अपने नाशके लिये) जानकीको ले आये हैं, न जाने आगे क्या होना है ? ॥ १७ ॥ यद्यपि आपने अनजानमे यह बडा ही अनुचित कार्य किया है, तथापि आप शान्त होइये, मै सब काम ठीक किये देता हूँ ॥ १८ ॥ कुम्भकर्णके ये वचन सुनकर इन्द्रजित् बोला—'प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मै अभी लक्ष्मणके सहित राम, सुग्रीव और समस्त वानरोको मारकर आपके पास लौट आता हूँ'' ॥ १९ ॥

तत्रागतो भागवतप्रधानो
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
श्रीरामपादद्वय एकतानः
प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः ॥ २० ॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्या-
न्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ।
विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो
दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥ २१ ॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राज-
स्तथा महापार्श्वमहोदरौ तौ ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ २२ ॥

सीताभिधानेन महाग्रहेण
ग्रस्तोऽसि राजन् न च ते विमोक्षः ।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन
दत्त्वाभिरामाय सुखी भव त्वम् ॥ २३ ॥

यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा
लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम् ।
छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो-
स्तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि ॥ २४ ॥

यावन्नगाभाः कपयो महाबला
हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः ।
लङ्कां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते
तावद्द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥ २५ ॥

जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं
गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शङ्करेण ।
न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः
पातालल्लोकानपि सम्प्रविष्टः ॥ २६ ॥

शुभं हितं पवित्रं च विभीषणवचः खलः ।
प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम् ॥ २७ ॥

इसी समय वहाँ भागवत-प्रधान बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणजी आये। उनके अन्तःकरणकी वृत्ति एकाग्रता-पूर्वक भगवान् रामके चरणयुगलमें लगी हुई थी। वहाँ आकर वे देवशत्रु रावणको प्रणाम कर उसके पास बैठ गये ॥ २० ॥ वहाँ बैठकर उन्होंने एक बार कुम्भकर्ण आदि समस्त मदोन्मत्त राक्षसोंको अति विस्मयके साथ देखा। फिर यह भी देखा कि रावण कामातुर है, (वह किसीकी माननेवाला नहीं है)। तथापि अति निर्मल-बुद्धि होनेसे वे अपने कर्तव्यमें सावधान थे, इसलिये उन्होंने रावणसे कहा— ॥ २१ ॥ "हे राजन्! युद्धमें रघुनाथजीके सामने कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ तथा अतिकाय आदि कोई भी नहीं ठहर सकते ॥ २२ ॥

हे राजन्! आपको सीता नामक एक प्रबल ग्रहने ग्रस्त कर लिया है, इससे आपका छुटकारा इस तरह नहीं हो सकता। अब आप उसे सत्कारपूर्वक बहुत-से धनके साथ श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दीजिये और सुखी हो जाइये ॥ २३ ॥ जबतक श्रीरामचन्द्रजीके तीक्ष्ण बाण लंकामें व्याप्त होकर राक्षसोंके सिर नहीं काटते, तबतक ही उचित है कि आप उन्हें जानकीजी सौंप दें ॥ २४ ॥ नख और दाढ़ोंसे ही लड़नेवाले, सिंहके समान महाबलवान् वे पर्वताकार वानरगण जबतक लंकामें फैलकर उसे नष्ट-भ्रष्ट नहीं करते तभीतक आप सीताजीको जल्दी-से-जल्दी श्रीरघुनाथजीको सौंप दीजिये ॥ २५ ॥ नहीं तो, भले ही इन्द्र और शंकर भी आपकी रक्षा करें अथवा देवराज इन्द्र और मृत्यु भी आपको गोदमें लेकर बचायें या आप पाताललोकमें भी घुस जायँ, तो भी रामसे आप जीवित नहीं बच सकते' ॥ २६ ॥

विभीषणके इन शुभ, हितकर और पवित्र वचनोंको दुष्ट रावणने इसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जैसे मरनेवाला पुरुष औषध ग्रहण नहीं करता ॥ २७ ॥ बल्कि

कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाब्रवीत्।
मद्दत्तभोगै पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि ॥ २८ ॥

प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिण ।
मित्रभावेन शत्रुर्मे जातो नास्त्यत्र सशय ॥ २९ ॥

अनार्येण कृतघ्नेन सङ्गतिर्मे न युज्यते।
विनाशमभिकाङ्क्षन्ति ज्ञातीना ज्ञातय सदा ॥ ३० ॥

योऽन्यस्त्वेवविध ब्रूयाद्वाक्यमेक निशाचर ।
हन्मि तस्मिन् क्षणे एव धिक् त्वा रक्ष कुलाधमम् ॥ ३१ ॥

रावणेनैवमुक्त सन्परुष स विभीषण ।
उत्पपात सभामध्याद्गदापाणिर्महाबल ॥ ३२ ॥

चतुर्भिर्मन्त्रिभि सार्ध गगनस्थोऽब्रवीद्वच ।
क्रोधेन महताविष्टो रावण दशकन्धरम्।
मा विनाशमुपैहि त्व प्रियवादिनमेव माम् ॥ ३३ ॥

धिक्करोषि तथापि त्व ज्येष्ठो भ्राता पितु सम ।
कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये ॥ ३४ ॥

काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी।
तावुभावागतावत्र भूमेर्भारापनुत्तये ॥ ३५ ॥

तेनैव प्रेरितस्त्व तु न शृणोषि हित मम।
श्रीराम प्रकृते साक्षात्परस्तात्सर्वदा स्थित ॥ ३६ ॥

बहिरन्तश्च भूताना सम सर्वत्र सस्थित ।
नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामल ॥ ३७ ॥

यथा नानाप्रकारेषु वृक्षेष्वेको महानल ।
तत्तदाकृतिभेदेन भिद्यतेऽज्ञानचक्षुषाम् ॥ ३८ ॥

पञ्चकोशादिभेदेन तत्तन्मय इवाबभौ।
नीलपीतादियोगेन निर्मल स्फटिको यथा ॥ ३९ ॥

स एव नित्यमुक्तोऽपि स्वमायागुणबिम्बित ।
काल प्रधान पुरुषोऽव्यक्त चेति चतुर्विध ॥ ४० ॥

वह दुष्ट दैत्य कालकी प्रेरणासे विभीषणसे इस प्रकार कहने लगा—"देखो, यह मेरे ही दिये हुए भोगोसे पुष्ट होकर और मेरे ही पास रहकर भी मुझ अपने हित-कर्ताके ही विरुद्ध चलता है, नि सन्देह यह मित्ररूपसे मेरा शत्रु ही प्रकट हुआ है ॥ २८-२९ ॥ इस अनार्य और कृतघ्नका मेरे साथ रहना ठीक नही है। प्राय यह देखनेमे आता है कि जातिवाले अपने ही जाति-भाइयोके नाशकी सदा इच्छा किया करते है ॥ ३० ॥ यदि कोई और राक्षस ऐसा एक भी वाक्य कहता तो मै उसे उसी क्षण मार डालता। अरे नीच! तू राक्षसकुलमे अत्यन्त अधम है, तुझे धिक्कार है" ॥ ३१ ॥

रावणके इस प्रकार कटुवचन कहनेपर महाबली विभीषण हाथमे गदा लेकर सभासे उडे ॥ ३२ ॥ और अपने चार मन्त्रियोके साथ आकाशमे स्थित होकर अत्यन्त क्रोधमे भरकर दशशीश रावणसे कहा— ॥ ३३ ॥ "मै तुम्हारे हितकी बात कहनेवाला हूँ, फिर भी तुम मुझे धिक्कारते हो! तथापि मै चाहता हूँ कि तुम्हारा नाश न हो, क्योकि तुम मेरे बडे भाई हो, अत पिताके समान हो। तुम्हारा काल रघुनाथजीके रूपसे महाराज दशरथके घरमे प्रकट हो गया है ॥ ३४ ॥ और महाशक्ति काली 'सीता' नामसे जनकजीकी पुत्री हुई है। ये दोनो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही यहाँ आये है ॥ ३५ ॥ उन्हीकी प्रेरणासे तुम मेरा हितकर वचन नही सुनते। भगवान् राम सर्वदा साक्षात् प्रकृतिसे परे है ॥ ३६ ॥ वे प्राणियोके बाहर-भीतर सर्वत्र समानभावसे स्थित है और नित्य निर्मल होते हुए भी नाम-रूप आदि भेदसे विभिन्न-से भासते है ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार अज्ञानी पुरुषोकी दृष्टिमे एक ही महाग्नि नाना प्रकारके वृक्षोमे उनके आकार-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, अथवा जैसे शुद्ध स्फटिकमणि नील-पीतादि रगोकी सन्निधिमात्रसे ही नील-पीत आदि वर्णोवाली प्रतीत होती है, वैसे ही पञ्चकोश आदिके भेदसे आत्मा तद्रूप-सा भासता है ॥ ३८-३९ ॥ वे (श्रीभगवान् ही) नित्यमुक्त होकर भी अपनी मायाके गुणोमे प्रतिबिम्बित होकर काल, प्रधान, पुरुष और अव्यक्त इन चार प्रकारके नामोसे कहे जाते

प्रधानपुरुषाभ्या स जगत्कृत्स्न सृजत्यज ।
कालरूपेण कलना जगत कुरुतेऽव्यय ॥ ४१ ॥

कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया ॥ ४२ ॥

ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्वधार्थमिहागत ।
तदन्यथा कथ कुर्यात्सत्यसकल्प ईश्वर ॥ ४३ ॥

हनिष्यति त्वा रामस्तु सपुत्रबलवाहनम् ।
हन्यमान न शक्नोमि द्रष्टु रामेण रावण ॥ ४४ ॥

त्वा राक्षसकुल कृत्स्न ततो गच्छामि राघवम् ।
मयि याते सुखीभूत्वा रमस्व भवने चिरम् ॥ ४५ ॥

विभीषणो रावणवाक्यत क्षणा-
द्विसृज्य सर्व सपरिच्छद गृहम् ।
जगाम रामस्य पदारविन्दयो
सेवाभिकाङ्क्षी परिपूर्णमानस ॥ ४६ ॥

है ॥ ४० ॥ वे अजन्मा होकर भी प्रधान और पुरुषरूपसे सम्पूर्ण जगत्की रचना करते है और अविनाशी होकर भी कालरूपसे जगत्का सहार करते है ॥ ४१ ॥ वे ही कालरूपी भगवान् ब्रह्माकी प्रार्थनासे आपका वध करनेके लिये मायासे रामरूप होकर यहाँ आये है। ईश्वर सत्यसकल्प है, इसलिये वे अपनी प्रतिज्ञाको अन्यथा कैसे कर सकते है ॥ ४२-४३ ॥ अत राम अवश्य ही आपको पुत्र, सेना और वाहनादिके सहित मारेगे। हे रावण ! मै रामद्वारा सम्पूर्ण राक्षसवश और आपका सहार होता नही देख सकता। अत मै रघुनाथजीके पास जाता हूँ। मेरे चले जानेपर आप आनन्दपूर्वक अपने महलमे बहुत समयतक भोग भोगना" ॥ ४४-४५ ॥

इस प्रकार, सन्तुष्टचित्त विभीषण रावणके कठोर भाषणसे एक क्षणमे ही समस्त सामग्रीके सहित अपने घरको छोडकर भगवान् रामके चरणकमलोकी सेवाकी कामनासे उनके पास चले गये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

विभीषणकी शरणागति, समुद्रका त्रास तथा सेतु-बन्धका आरम्भ

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभि सह ।
आगत्य गगने रामसम्मुखे समवस्थित ॥ १ ॥

उच्चैरुवाच भो स्वामिन् राम राजीवलोचन ।
रावणस्यानुजोऽह ते दारहर्तुर्विभीषण ॥ २ ॥

नाम्ना भ्रात्रा निरस्तोऽह त्वामेव शरण गत ।
हितमुक्त मया देव तस्य चाविदितात्मन ॥ ३ ॥

सीता रामाय वैदेहीं प्रेषयेति पुन पुन ।
उक्तोऽपि न शृणोत्येव कालपाशवश गत ॥ ४ ॥

हन्तु मा खड्गमादाय प्राद्रवद्राक्षसाधम ।
ततोऽचिरेण सचिवैश्चतुर्भि सहितो भयात् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तदनन्तर महाभाग विभीषण अपने चार मन्त्रियोके साथ आकर आकाशमे श्रीरघुनाथजीके सामने उपस्थित हुए ॥ १ ॥ और ऊँचे स्वरसे कहने लगे—"हे कमलनयन प्रभो राम ! मै आपकी भार्याका हरण करनेवाले रावणका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मुझे भाईने निकाल दिया है, इसलिये मै आपकी शरणमे आया हूँ। हे देव ! मैने उस अज्ञानीके हितकी बात कही थी ॥ २-३ ॥ उससे बार-बार कहा है कि 'तुम विदेहनन्दिनी सीताको रामके पास भेज दो,' तथापि कालके वशीभूत होनेके कारण वह कुछ सुनता ही नही है ॥ ४ ॥ इस समय वह राक्षसाधम मुझे तलवारसे मारनेके लिये दौडा, तब मै भयसे तुरत ही अपने चार मन्त्रियोके सहित ससार-पाशसे मुक्त होनेके लिये

त्वामेव भवमोक्षाय मुमुक्षु शरण गत ।
विभीषणवच श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

विश्वासार्हो न ते राम मायावी राक्षसाधम ।
सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्यानुजो बली ॥ ७ ॥

मन्त्रिभि सायुधैरस्मान् विवरे निहनिष्यति ।
तदाज्ञापय मे देव वानरैर्हन्यतामयम् ॥ ८ ॥

ममैव भाति ते राम बुद्ध्या किं निश्चित वद ।
श्रुत्वा सुग्रीववचन राम सस्मितमब्रवीत् ॥ ९ ॥

यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ लोकान्सर्वान्सहेश्वरान् ।
निमिषार्धेन सहन्या सृजामि निमिषार्धत ॥ १० ॥

अतो मयाभय दत्त शीघ्रमानय राक्षसम् ॥ ११ ॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभय सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रत मम ॥ १२ ॥

रामस्य वचन श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानस ।
विभीषणमथानाय्य दर्शयामास राघवम् ॥ १३ ॥

विभीषणस्तु साष्टाङ्ग प्रणिपत्य रघूत्तमम् ।
हर्षगद्गदया वाचा भक्त्या च परयान्वित ॥ १४ ॥

राम श्याम विशालाक्ष प्रसन्नमुखपकजम् ।
धनुर्बाणधर शान्त लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ १५ ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्तोतु समुपचक्रमे ॥ १६ ॥

विभीषण उवाच

नमस्ते राम राजेन्द्र नम सीतामनोरम ।
नमस्ते चण्डकोदण्ड नमस्ते भक्तवत्सल ॥ १७ ॥

नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायामिततेजसे ।
सुग्रीवमित्राय च ते रघूणा पतये नम ॥ १८ ॥

जगदुत्पत्तिनाशाना कारणाय महात्मने ।
त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमो नम ॥ १९ ॥

मुमुक्षु होकर आपकी ही शरणमे चला आया हूँ।"

विभीषणके ये वचन सुनकर सुग्रीवने कहा—॥ ५-६ ॥ 'हे राम ! इस मायावी राक्षसाधमका कुछ विश्वास न करना चाहिये। (यदि कोई और होता तब कोई विशेष चिन्ताकी बात भी नही थी, किन्तु) यह तो सीताका हरण करनेवाले रावणका ही छोटा भाई है और वैसे भी बहुत बलवान् दिखायी देता है ॥ ७ ॥ यह अपने सशस्त्र मन्त्रियोके साथ किसी समय एकान्तमे हमे मार डालेगा। अत हे प्रभो ! मुझे आज्ञा दीजिये मैं इसे वानरोसे मरवा डालूँ ॥ ८ ॥ हे राम ! मुझे तो ऐसा ही जँचता है, आपका इस विषयमे क्या निश्चय है, सो कहिये।' सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकराकर कहा— ॥ ९ ॥ "हे कपिश्रेष्ठ ! यदि मेरी इच्छा हो तो मै आधे निमेषमे ही लोकपालोके सहित सम्पूर्ण लोकोको नष्ट कर सकता हूँ और आधे निमेषमे ही सबको रच सकता हूँ, अत (तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो) मै इस राक्षसको अभयदान देता हूँ, तुम इसे शीघ्र ही ले आओ ॥ १०-११ ॥ मेरा यह नियम है कि जो एक बार भी मेरी शरण आकर 'मै तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे अभय माँगता है, उसे मै समस्त प्राणियोसे निर्भय कर देता हूँ" ॥ १२ ॥

रामके ये वचन सुनकर सुग्रीवने अति प्रसन्नचित्तसे विभीषणको लाकर रघुनाथजीसे मिलाया ॥ १३ ॥ विभीषणने रघुनाथजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हर्षसे गद्गदकण्ठ हो परम भक्तिपूर्वक हाथ जोडकर शान्तमूर्ति प्रसन्नवदनारविन्द विशालनयन श्यामसुन्दर धनुर्बाणधारी भगवान् रामकी लक्ष्मणजीके सहित स्तुति करनी आरम्भ की ॥ १४—१६ ॥

विभीषण बोले—'हे राजराजेश्वर राम ! आपको नमस्कार है। हे सीताके मनमे रमण करनेवाले ! आपको नमस्कार है। हे प्रचण्डधनुर्धर ! आपको नमस्कार है। हे भक्तवत्सल ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे अनन्त, शान्त, अतुलतेजोमय, सुग्रीवसखा रघुकुलनायक भगवान् राम ! आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो ससारकी उत्पत्ति और नाशके कारण हैं, त्रिलोकीके गुरु और अनादिकालीन गृहस्थ* हैं उन महात्मा रामको बारम्बार

* प्रकृतिरूपा पत्नीके साथ भगवान्का अनादि सम्बन्ध है, इसलिये वे अनादि गृहस्थ है।

त्वमादिर्जगता राम त्वमेव स्थितिकारणम् ।
त्वमन्ते निधनस्थान स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि ॥ २० ॥

चराचराणा भूताना बहिरन्तश्च राघव ।
व्याप्यव्यापकरूपेण भवान् भाति जगन्मय ॥ २१ ॥

त्वन्मायया हतज्ञाना नष्टात्मानो विचेतस ।
गतागत प्रपद्यन्ते पापपुण्यवशात्सदा ॥ २२ ॥

तावत्सत्य जगद्भाति शुक्तिकारजत यथा ।
यावन्न ज्ञायते ज्ञान चेतसानन्यगामिना ॥ २३ ॥

त्वदज्ञानात्सदा युक्ता पुत्रदारगृहादिषु ।
रमन्ते विषयान्सर्वानन्ते दु खप्रदान्विभो ॥ २४ ॥

त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमो रक्षो वरुणश्च तथानिल ।
कुबेरश्च तथा रुद्रस्त्वमेव पुरुषोत्तम ॥ २५ ॥

त्वमणोरप्यणीयाश्च स्थूलात् स्थूलतर प्रभो ।
त्व पिता सर्वलोकाना माता धाता त्वमेव हि ॥ २६ ॥

आदिमध्यान्तरहित परिपूर्णोऽच्युतोऽव्यय ।
त्व पाणिपादरहितश्चक्षु श्रोत्रविवर्जित ॥ २७ ॥

श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्व खरान्तक ।
कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्व निर्गुणो निरुपाश्रय ॥ २८ ॥

निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वर ।
षड्भावरहितोऽनादि पुरुष प्रकृते पर ॥ २९ ॥

मायया गृह्यमाणस्त्व मनुष्य इव भाव्यसे ।
ज्ञात्वा त्वा निर्गुणमज वैष्णवा मोक्षगामिन ॥ ३० ॥

अह त्वत्पादसद्भक्तिनि श्रेणीं प्राप्य राघव ।
इच्छामि ज्ञानयोगाख्य सौधमारोढुमीश्वर ॥ ३१ ॥

नम सीतापते राम नम कारुणिकोत्तम ।
रावणारे नमस्तुभ्य त्राहि मा भवसागरात् ॥ ३२ ॥

नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे राम ! आप ससारकी उत्पत्ति और स्थितिके कारण है तथा अन्तमे आप ही उसके लयस्थान हैं, आप अपने इच्छानुसार विहार करनेवाले है ॥ २० ॥ हे राघव ! चराचर भूतोके भीतर और बाहर व्याप्य-व्यापक-रूपसे आप विश्वरूप ही भास रहे है ॥ २१ ॥ आपकी मायाने जिनका सदसद्विवेक हर लिया है, वे नष्ट-बुद्धि मूढ पुरुष अपने पाप-पुण्यके वशीभूत होकर ससारमे बारम्बार आते-जाते रहते है ॥ २२ ॥ जबतक मनुष्य एकाग्रचित्तसे आपके ज्ञानस्वरूपको नही जानता तभीतक सीपीमे चाँदीके समान यह ससार सत्य प्रतीत होता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! आपको न जाननेसे ही लोग पुत्र, स्त्री और गृह आदिमे आसक्त होकर अन्तमे दु ख देनेवाले विषयोमे सुख मानते है ॥ २४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आप ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण और वायु हैं तथा आप ही कुबेर और रुद्र है ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! आप अणु-से-अणु और महान्-से-महान् हैं तथा आप ही समस्त लोकोके पिता, माता और धाता (धारण-पोषण करनेवाले) है ॥ २६ ॥ आप आदि, मध्य और अन्तसे रहित सर्वत्र परिपूर्ण अच्युत और अविनाशी है । आप हाथ-पाँवसे रहित तथा नेत्र और कर्णहीन है ॥ २७ ॥ तथापि हे खरान्तक ! आप सब कुछ देखनेवाले, सब कुछ सुननेवाले, सब कुछ ग्रहण करनेवाले और बडे वेगवान् हैं। हे प्रभो ! आप अन्नमय आदि पाँचो कोशोसे रहित तथा निर्गुण और निराश्रय है ॥ २८ ॥ आप निर्विकल्प, निर्विकार और निराकार है, आपका कोई प्रेरक नही है, आप (उत्पत्ति, वृद्धि, परिणाम, क्षय, जीर्णता और नाश—इन) छ भाव-विकारोसे रहित है तथा प्रकृतिसे अतीत अनादि पुरुष है ॥ २९ ॥ मायाके कारण ही आप साधारण मनुष्यके समान प्रतीत होते है, वैष्णवजन आपको निर्गुण और अजन्मा जानकर मोक्ष प्राप्त करते है ॥ ३० ॥ हे राघव ! हे प्रभो ! मैं आपके चरण-कमलकी विशुद्ध भक्तिरूप सीढी पाकर ज्ञानयोग नामक राजभवनके शिखरपर चढना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ हे कारुणिकश्रेष्ठ सीतापते राम ! आपको नमस्कार है, हे रावणारे ! आपको बारम्बार नमस्कार है, आप इस ससार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये" ॥ ३२ ॥

तत प्रसन्न प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सल ।
वर वृणीष्व भद्र ते वाञ्छित वरदोऽस्म्यहम् ॥ ३३ ॥

तब भक्तवत्सल भगवान् रामने प्रसन्न होकर कहा—"विभीषण ! तेरा कल्याण हो, मै तुझे वर देना चाहता हूँ, अत तेरी जो इच्छा हो वही वर माँग ले" ॥ ३३ ॥

विभीषण उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव ।
त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न सशय ॥ ३४ ॥

नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृश शुचि ।
नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात् ॥ ३५ ॥

कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञान भक्तिलक्षणम् ।
त्वद्ध्यान परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥ ३६ ॥

न याचे राम राजेन्द्र सुख विषयसम्भवम् ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥ ३७ ॥

विभीषण बोले—"हे रघुनन्दन ! मै तो आपके चरणोका दर्शन पाकर ही धन्य और कृतकृत्य हो गया, मुझे जो कुछ पाना था वह मिल गया। अब तो मै नि सन्देह मुक्त हो गया ॥ ३४ ॥ हे राम ! आपकी मनोहर मूर्तिका दर्शन करनेसे आज मेरे समान कोई धन्य और पवित्र नही है, अब इस ससारमे (किसी भी प्रकार) मेरी समता करनेवाला कोई नही है ॥ ३५ ॥ हे रघुनन्दन ! कर्म-बन्धनको नष्ट करनेके लिये आप मुझे अपनी भक्तिसे प्राप्त होनेवाला ज्ञान और अपने परमार्थ-स्वरूपका साक्षात् करानेवाला ध्यान दीजिये ॥ ३६ ॥ हे राजराजेश्वर राम ! मुझे विषयजन्य सुखकी इच्छा नही है, मै तो यही चाहता हूँ कि आपके चरण-कमलोमे सर्वदा मेरी आसक्तिरूपा भक्ति बनी रहे" ॥ ३७ ॥

ओमित्युक्त्वा पुन प्रीतो राम प्रोवाच राक्षसम् ।
शृणु वक्ष्यामि ते भद्र रहस्य मम निश्चितम् ॥ ३८ ॥

मद्भक्ताना प्रशान्ताना योगिनो वीतरागिणाम् ।
हृदये सीतया नित्य वसाम्यत्र न सशय ॥ ३९ ॥

तस्मात्त्व सर्वदा शान्त सर्वकल्मषवर्जित ।
मा ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्य घोरससारसागरात् ॥ ४० ॥

स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु लिखेद्य शृणुयादपि ।
मत्प्रीतये ममाभीष्ट सारूप्य समवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥

तब रघुनाथजीने 'तथास्तु' कहकर विभीषणसे प्रसन्न होकर कहा—"भद्र ! सुनो, मै तुम्हे अपना निश्चित रहस्य सुनाता हूँ ॥ ३८ ॥ जो मेरे शान्तस्वभाव, विरक्त और योगनिष्ठ भक्त है, उनके हृदयमे मै सीताजीके सहित सदा रहता हूँ—इसमे सन्देह नही ॥ ३९ ॥ अत तुम सर्वदा शान्त और पापरहित रहकर मेरा ध्यान करनेसे घोर ससार-सागरसे पार हो जाओगे ॥ ४० ॥ जो पुरुष मुझे प्रसन्न करनेके लिये इस स्तोत्रको पढता, लिखता अथवा सुनता है वह मेरा प्रिय सारूप्यपद प्राप्त करता है" ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मण प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान् ।
पश्यत्विदानीमेवैष मम सन्दर्शने फलम् ॥ ४२ ॥

लङ्काराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात् ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ ४३ ॥

यावन्मम कथा लोके तावद्राज्य करोत्वसौ ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम् ॥ ४४ ॥

लङ्काराज्याधिपत्यार्थमभिषेक रमापति ।
कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषत ॥ ४५ ॥

विभीषणसे ऐसा कह भक्तवत्सल श्रीरामने लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण ! यह अभी मेरे दर्शनका फल देखे ॥ ४२ ॥ तुम समुद्रसे जल ले आओ, मै इसे लकाके राज्यपर अभिषिक्त किये देता हूँ। जबतक चन्द्र-सूर्य और पृथ्वीकी स्थिति है तथा जबतक लोकमे मेरी कथा रहेगी तबतक यह लकाका राज्य करेगा।"

ऐसा कह श्रीरमापतिने लक्ष्मणजीसे कलशमे जल मँगवाया और मन्त्रियो तथा विशेषत लक्ष्मणजीसे उसे लकाके राज्यपदपर अभिषिक्त कराया ॥ ४३—४५ ॥

साधु साध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ।
सुग्रीवोऽपि परिष्वज्य विभीषणमथाब्रवीत् ॥ ४६ ॥

विभीषण वय सर्वे रामस्य परमात्मन ।
किङ्करास्तत्र मुख्यस्त्व भक्त्या रामपरिग्रहात् ।
रावणस्य विनाशे त्व साहाय्य कर्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥

विभीषण उवाच

अह कियान्सहायत्वे रामस्य परमात्मन ।
किंतु दास्य करिष्येऽह भक्त्या शक्त्या ह्यमायया ॥ ४८ ॥

दशग्रीवेण सन्दिष्ट शुको नाम महासुर ।
सस्थितो ह्यम्बरे वाक्य सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ ४९ ॥

त्वामाह रावणो राजा भ्रातर राक्षसाधिप ।
महाकुलप्रसूतस्त्व राजासि वनचारिणाम् ॥ ५० ॥

मम भ्रातृसमानस्त्व तव नास्त्यर्थविप्लव ।
अह यदहर भार्या राजपुत्रस्य किं तव ॥ ५१ ॥

किष्किन्धा याहि हरिभिर्लङ्का शक्या न दैवतै ।
प्राप्तु किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपै ॥ ५२ ॥

त प्रापयन्त वचन तूर्णमुत्प्लुत्य वानरा ।
प्रापद्यन्त तदा क्षिप्र निहन्तु दृढमुष्टिभि ॥ ५३ ॥

वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत् ।
न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान्वारय प्रभो ॥ ५४ ॥

राम श्रुत्वा तदा वाक्य शुकस्य परिदेवितम् ।
मा वधिष्टेति रामस्तान्वारयामास वानरान् ॥ ५५ ॥

पुनरम्बरमासाद्य शुक सुग्रीवमब्रवीत् ।
ब्रूहि राजन्दशग्रीव किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम् ॥ ५६ ॥

सुग्रीव उवाच

यथा वाली मम भ्राता तथा त्व राक्षसाधम ।
हन्तव्यस्त्व मया यत्नात्सपुत्रबलवाहन ॥ ५७ ॥

ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्या हत्वा क्व यास्यसि ।
ततो रामाज्ञया धृत्वा शुक बध्वान्वरक्षयत् ॥ ५८ ॥

उस समय समस्त वानर प्रसन्न होकर 'धन्य है, धन्य है' ऐसा कहने लगे, और सुग्रीवने विभीषणको गले लगाकर कहा— ॥ ४६ ॥ "विभीषण ! हम सब परमात्मा रामके दास है, तथापि तुम हम सबमे प्रधान हो, क्योकि तुमने केवल भक्तिसे ही उनकी शरण ली है। अब तुम्हे रावणका नाश करानेमे हमारी सहायता करनी चाहिये" ॥ ४७ ॥

विभीषण बोले—मै परमात्मा रामकी क्या सहायता कर सकता हूँ, तथापि मुझसे जैसी कुछ बनेगी निष्कपट होकर भक्तिभावसे उनकी सेवा करता रहूँगा ॥ ४८ ॥

इसी समय रावणका भेजा हुआ शुक नामका महादैत्य आकाशमे स्थित होकर सुग्रीवसे इस प्रकार बोला ॥ ४९ ॥ "राक्षसराज रावण तुम्हे अपने भाईके समान मानते हैं, उन्होने तुम्हारे लिये कहा है कि तुम बडे कुलमे उत्पन्न हुए हो और वानरोके राजा हो ॥ ५० ॥ तुम मेरे भाईके समान हो और तुम्हारा कोई स्वार्थघात भी नही हुआ है। यदि मैने किसी राजकुमारकी स्त्रीको हर ही लिया तो उससे तुम्हे क्या ? ॥ ५१ ॥ अत तुम अपने वानरोके सहित किष्किन्धाको लौट जाओ। लकाको पाना तो देवताओके लिये भी कठिन है, फिर अल्पशक्ति मनुष्य और वानरयूथपोकी तो बात ही क्या है ?" ॥ ५२ ॥ जिस समय शुक इस प्रकार सन्देश सुना रहा था, वानरोने अपने सुदृढ घूँसोसे मारनेके लिये उसे तुरत ही उछलकर पकड लिया ॥ ५३ ॥ वानरोके मारनेपर शुकने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"हे राजेन्द्र ! (विज्ञजन) दूतको मारा नही करते, अत हे प्रभो ! इन वानरोको रोकिये" ॥ ५४ ॥ शुकका यह करुणायुक्त वचन सुनकर रामने 'इसे मत मारो' ऐसा कहकर वानरोको रोक दिया ॥ ५५ ॥ तब शुकने फिर आकाशमे चढकर सुग्रीवसे कहा—"हे राजन् ! मै जाता हूँ, कहिये, रावणको आपकी ओरसे क्या उत्तर दूँ ?" ॥ ५६ ॥

सुग्रीवने कहा—उससे कहना, जिस प्रकार मैने अपने भाई वालीको मारा था, हे राक्षसाधम ! उसी प्रकार तू भी अपने पुत्र, सेना और वाहनादिके सहित मेरे हाथसे मारा जायगा। तू हमारे रामचन्द्रजीकी भार्याका हरण करके अब कहाँ जा सकता है ? तदनन्तर भगवान् रामकी आज्ञासे शुकको पकड उन्होने बन्धनमे डालकर वानरोकी रक्षामे छोड दिया ॥ ५७-५८ ॥

शार्दूलोऽपि तत पूर्व दृष्ट्वा कपिबल महत्।
यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षस ॥ ५९ ॥

दीर्घचिन्तापरो भूत्वा नि श्वसन्नास मन्दिरे।
तत समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचन ॥ ६० ॥

पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम्।
नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थ ममानघ ॥ ६१ ॥

जानाति मानुषोऽय मे किं करिष्यति वानरै ।
अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥ ६२ ॥

पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वरा ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धर ॥ ६३ ॥

तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम्।
सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥

पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम्।
इदानीं भस्मसात्कुर्या समुद्र सरिता पतिम् ॥ ६५ ॥

एव ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना।
चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसावृता ॥ ६६ ॥

चुक्षुभे सागरो वेला भयाद्योजनमत्यगात्।
तिमिनक्रझषा मीना प्रतप्ता परितत्रसु ॥ ६७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक्।
दिव्याभरणसम्पन्न स्वभासा भासयन् दिश ॥ ६८ ॥

स्वान्त स्थदिव्यरत्नानि कराभ्या परिगृह्य स ।
पादयो पुरत क्षिप्त्वा रामस्योपायन बहु ॥ ६९ ॥

दण्डवत्प्रणिपत्याह राम रक्तान्तलोचनम्।
त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक ॥ ७० ॥

जडोऽह राम ते सृष्ट सृजता निखिल जगत्।
स्वभावमन्यथा कर्तु क शक्तो देवनिर्मितम् ॥ ७१ ॥

शुकसे पहले ही शार्दूल नामक राक्षसने वानरोकी महान् सेना देखकर रावणसे उसका यथावत् वर्णन कर दिया था ॥ ५९ ॥ यह सब सुनकर रावणको बडी चिन्ता हुई और वह दीर्घ नि श्वास छोडता अपने महलमे बैठा रहा। इसी समय भगवान् रामने समुद्रकी ओर देखकर क्रोधसे नेत्र लाल कर कहा— ॥ ६० ॥ "लक्ष्मण। यह समुद्र कैसा दुष्ट है ? मै इसके तीरपर आया हूँ, किन्तु हे अनघ। इस दुरात्माने दर्शन करके भी मेरा अभिनन्दन नही किया ॥ ६१ ॥ यह समझता है, 'यह एक मनुष्य ही तो है, वानरोके साथ मिलकर भी यह मेरा क्या कर सकता है ?' सो हे महाबाहो। देखो, आज मै इसे सुखाये डालता हूँ ॥ ६२ ॥ फिर वानरगण निश्चिन्त होकर पैदल ही इसके पार चले जायँगे।" ऐसा कह भगवान् रामने क्रोधसे नेत्र लाल कर अपना धनुष चढाया और तूणीरसे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण निकाल कर उसे धनुषपर रखकर खीचते हुए कहा— ॥ ६३-६४ ॥ "समस्त प्राणी रामके बाणका पराक्रम देखे, मै इसी समय नदीपति समुद्रको भस्म किये डालता हूँ" ॥ ६५ ॥

भगवान् रामके ऐसा कहते ही वन और पर्वतादिके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी हिलने लगी तथा आकाश और दिशाओमे अन्धकार छा गया ॥ ६६ ॥ समुद्र क्षुभित हो गया और भयके कारण अपने तटसे एक योजन आगे बढ आया, तथा बडे-बडे मत्स्य, नाके, मकर और मछलियाँ सन्तप्त होकर भयभीत हो गये ॥ ६७ ॥ इसी समय नाना प्रकारके दिव्य आभूषण धारण किये दिव्यरूपधारी समुद्र, हाथोमे अपने ही भीतर स्थित दिव्य रत्न लिये, अपने प्रकाशसे दसो दिशाओको प्रकाशित करता, स्वय उपस्थित हुआ और भगवान् रामचन्द्रजीके चरणोके आगे नाना प्रकारके उपहार रख, जिनके नेत्रोके मध्यभाग क्रोधसे लाल हो रहे है उन रघुनाथजीको साष्टाङ्ग दण्डवत् कर बोला—'हे त्रैलोक्यरक्षक जगत्पति राम। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ६८—७० ॥ हे राम। सम्पूर्ण ससारकी रचना करते समय आपने मुझे जड ही बनाया था, फिर आपके बनाये स्वभावको कोई कैसे बदल सकता

स्थूलानि पञ्चभूतानि जडान्येव स्वभावत ।
सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञा लङ्घयन्ति न ॥ ७२ ॥

तामसादहमो राम भूतानि प्रभवन्ति हि ।
कारणानुगमात्तेषा जडत्व तामस स्वत ॥ ७३ ॥

निर्गुणस्त्व निराकारो यदा मायागुणान्प्रभो ।
लीलयाङ्गीकरोषि त्व तदा वैराजनामवान् ॥ ७४ ॥

गुणात्मनो विराजश्च सत्त्वाद्देवा बभूविरे ।
रजोगुणात्प्रजेशाद्या मन्योर्भूतपतिस्तव ॥ ७५ ॥

त्वामह मायया छन्न लीलया मानुषाकृतिम् ॥ ७६ ॥

जडबुद्धिर्जडो मूर्ख कथ जानामि निर्गुणम् ।
दण्ड एव हि मूर्खाणा सन्मार्गप्रापक प्रभो ॥ ७७ ॥

भूतानाममरश्रेष्ठ पशूना लगुडो यथा ।
शरण ते व्रजामीश शरण्य भक्तवत्सल ।
अभय देहि मे राम लङ्कामार्ग ददामि ते ॥ ७८ ॥

है ? ॥ ७१ ॥ पाँचो स्थूल भूतोको आपने स्वभावसे जड ही बनाया है, वे आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नही कर सकते ॥ ७२ ॥ हे राम ! भूत तामस अहकारसे उत्पन्न होते हैं, अत अपने कारणका अनुगमन करनेसे उनमे तमोरूप जडत्व तो स्वत सिद्ध है ॥ ७३ ॥ हे प्रभो ! आप निर्गुण और निराकार हैं। जिस समय आप लीलासे ही मायिक गुणोको अङ्गीकार करते है उस समय आपका नाम 'वैराज' पड जाता है ॥ ७४ ॥ उस गुणमय विराट्के सात्त्विकाशसे देवगण, राजसाशसे प्रजापतिगण और तामसाशसे रुद्रगण उत्पन्न होते है ॥ ७५ ॥ हे नाथ ! लीलावश मायासे आच्छन्न होकर मनुष्यरूप हुए आप निर्गुण परमात्माको मै जडबुद्धि मूर्ख कैसे जान सकता हूँ, हे अमरश्रेष्ठ प्रभो ! पशुओको जैसे लाठी ठीक-ठीक मार्गमे ले जाती है उसी प्रकार (मुझ-जैसे) मूर्ख जीवोके लिये तो दण्ड ही सन्मार्गपर लानेवाला होता है। हे भक्तवत्सल भगवान् राम ! आप शरणागतरक्षककी मै शरण हूँ। आप मुझे अभयदान दीजिये। मै आपको लङ्कामे जानेका मार्ग दूँगा ॥ ७६—७८ ॥

श्रीराम उवाच

अमोघोऽय महाबाण कस्मिन्देशे निपात्यताम् ।
लक्ष्य दर्शय मे शीघ्र बाणस्यामोघपातिन ॥ ७९ ॥

रामस्य वचन श्रुत्वा करे दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघव वाक्यमब्रवीत् ॥ ८० ॥

रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुत ।
प्रदेशस्तत्र बहव पापात्मानो दिवानिशम् ॥ ८१ ॥

बाधन्ते मा रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यता शर ।
रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमण्डलम् ॥ ८२ ॥

हत्वा पुन समागत्य तूणीरे पूर्ववत्स्थित ।
ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठ सागरो विनयान्वित ॥ ८३ ॥

नल सेतु करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मण ।
सुतो धीमान्समर्थोऽस्मिन्कार्ये लब्धवरो हरि ॥ ८४ ॥

कीर्तिं जानन्तु ते लोका सर्वलोकमलापहाम् ।
इत्युक्त्वा राघव नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम् ॥ ८५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—मेरा यह महाबाण व्यर्थ जानेवाला नही है, अत इसे किस ओर चलावे, शीघ्र ही मुझे इस अमोघ बाणका लक्ष्य बताओ ॥ ७९ ॥

रामका यह वचन सुनकर और उनके हाथमे वह महाबाण देखकर महातेजस्वी समुद्रने रघुनाथजीसे कहा— ॥ ८० ॥ "हे राम ! उत्तरकी ओर एक 'द्रुमकुल्य' नामक देश है। वहाँ बहुत-से पापी रहते है। वे मुझे रात-दिन पीडा पहुँचाते है। हे रघुश्रेष्ठ ! आप अपना यह बाण वही गिराइये।" तदनन्तर रामका छोडा हुआ वह बाण एक क्षणमे ही समस्त आभीर-मण्डलको मारकर फिर पूर्ववत् तरकशमे लौट आया। तब समुद्रने रघुनाथजीसे अति विनीत भावसे कहा— ॥ ८१—८३ ॥ "हे राम ! विश्वकर्माका पुत्र नल मेरे जलपर पुल निर्माण करे। वह चतुर वानर वरके प्रभावसे इस कार्यको करनेमे समर्थ है ॥ ८४ ॥ इससे सब लोग आपकी ससार-मलापहारिणी कीर्ति जान जायँगे।" रघुनाथजीसे इस प्रकार कह समुद्र उन्हे प्रणामकर अन्तर्धान हो गया ॥ ८५ ॥

ततो रामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वित ।
नलमीज्ञापयच्छीघ्रं वानरै सेतुबन्धने ॥ ८६ ॥
ततोऽतिहृष्ट प्लवगेन्द्रयूथपै-
र्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नल ।
बबन्ध सेतु शतयोजनायत
सुविस्तृत पर्वतपादपैर्दृढम् ॥ ८७ ॥

तदनन्तर सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीने नलको वानरोकी सहायतासे तुरत पुल बाँधनेकी आज्ञा दी ॥ ८६ ॥ तब नलने, महापर्वतके समान अन्य वानरयूथपतियोके साथ, अति प्रसन्नतापूर्वक पर्वत और वृक्षादिकोसे एक सौ योजन लबा अति विस्तीर्ण और सुदृढ पुल बनाया ॥ ८७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

समुद्र-तरण, लङ्का-निरीक्षण तथा रावण-शुक-सवाद

श्रीमहादेव उवाच

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वर शिवम् ।
सस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोकहिताय च ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! सेतुबन्धके आरम्भ होनेपर भगवान् रामने रामेश्वर महादेवकी स्थापना कर उनका पूजन करते हुए लोकहितके लिये इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

प्रणमेत्सेतुबन्ध यो दृष्ट्वा रामेश्वर शिवम् ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥

सेतुबन्धे नर स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वर हरम् ।
सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नर ॥ ३ ॥

आनीय गङ्गासलिल रामेशमभिषिच्य च ।
समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसशयम् ॥ ४ ॥

"जो पुरुष रामेश्वर शिवका दर्शन कर सेतुबन्धको प्रणाम करेगा वह मेरी कृपासे ब्रह्महत्या आदि पापोसे मुक्त हो जायगा ॥ २ ॥ यदि कोई पुरुष सेतुबन्धमे स्नान कर रामेश्वर महादेवके दर्शन करे और फिर सकल्पपूर्वक काशी जाकर वहाँसे गङ्गाजल लावे तथा उससे रामेश्वरका अभिषेक कर उस जलके पात्रको समुद्रमे डाल दे तो वह नि सन्देह ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है" ॥ ३-४ ॥

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विशति ॥ ५ ॥

तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविशति ।
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविशतिरिति श्रुतम् ॥ ६ ॥

पञ्चमेन त्रयोविशद्योजनानि समन्तत ।
बबन्ध सागरे सेतु नलो वानरसत्तम ॥ ७ ॥

तेनैव जग्मु कपयो योजनाना शत द्रुतम् ।
असङ्ख्याता सुवेलाद्रिं रुरुधु प्लवगोत्तमा ॥ ८ ॥

सुना जाता है वानरश्रेष्ठ नलने पहले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाईस योजन और पाँचवे दिन तेईस योजन समुद्रपर पुल बाँधा ॥ ५—७ ॥ उसी पुलसे वानरगण तुरत ही सौ योजन समुद्रके उस पार चले गये। और फिर असख्य वानरवीरोने सुवेल-पर्वतको घेर लिया ॥ ८ ॥

आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गद तथा ।
दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचल महत् ॥ ९ ॥

फिर, श्रीरामकी लङ्का देखनेकी इच्छा होनेपर रामचन्द्रजी हनुमान्के और लक्ष्मणजी अङ्गदके ऊपर

दृष्ट्वा लङ्का सुविस्तीर्णा नानाचित्रध्वजाकुलाम् ।
चित्रप्रासादसम्बाधा स्वर्णप्राकारतोरणाम् ॥ १० ॥

परिखाभि शतघ्नीभि सङ्क्रमैश्च विराजिताम् ।
प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धर ॥ ११ ॥

मन्त्रिभि सहितो वीरै किरीटदशकोज्ज्वल ।
नीलाद्रिशिखराकार कालमेघसमप्रभ ॥ १२ ॥

रत्नदण्डै सितच्छत्रैरनेकै परिशोभित ।
एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुक ॥ १३ ॥

वानरैस्ताडित सम्यग् दशाननमुपागत ।
प्रहसन् रावण प्राह पीडित किं परै शुक ॥ १४ ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत् ।
सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रव ते वचन यथा ।
तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मा क्षणात्तत ॥ १५ ॥

मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तु लोप्तु प्रचक्रमु ।
ततो मा राम रक्षेति क्रोशन्त रघुपुङ्गव ॥ १६ ॥

विसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोऽह कपीश्वरै ।
ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद्वानर बलम् ॥ १७ ॥

राक्षसाना बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ।
नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥ १८ ॥

पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतर कुरु ।
सीता वास्मै प्रयच्छाशु युद्ध वा दीयता प्रभो ॥ १९ ॥

मामाह रामस्त्व ब्रूहि रावण मद्वच शुक ।
यद्बल च समाश्रित्य सीता मे हृतवानसि ॥ २० ॥

तद्दर्शय यथाकाम ससैन्य सहबान्धव ।
श्व काले नगरीं लङ्का सप्राकारा सतोरणाम् ॥ २१ ॥

राक्षस च बल पश्य शरैर्विध्वसित मया ।
घोररोषमह मोक्ष्ये बल धारय रावण ॥ २२ ॥

बैठकर उस महान् पर्वतपर चढ गये ॥ ९ ॥ उन्होने देखा कि लङ्कापुरी अति विस्तीर्ण है। वह नाना प्रकारकी ध्वजाओ, विचित्र प्रासादो तथा सुवर्णनिर्मित परकोटो और तोरणोसे सुसज्जित है ॥ १० ॥ वह (सब ओरसे) खाइयो, तोपो और सक्रमो (सुरगो) से सुशोभित है। उसके एक राजभवनके ऊपर अति विस्तृत भागमे अपने वीर मन्त्रियोके सहित रावण बैठा है। उसके सिरोपर दस मुकुट सुशोभित है, वह नीलाचलके शिखरके समान आकारवाला एव श्याम मेघकी-सी आभावाला है ॥ ११-१२ ॥ नाना प्रकारके रत्नदण्डयुक्त श्वेत छत्रोसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही है। इसी समय भगवान् रामद्वारा बाँधकर छोडा हुआ शुक नामक दैत्य वानरोसे भली प्रकार मार खाकर रावणके पास पहुँचा। उसे देखकर रावणने हँसते हुए पूछा, "शुक ! क्या शत्रुओने तुम्हे कुछ कष्ट पहुँचाया है ?" ॥ १३-१४ ॥

रावणके वचन सुनकर शुकने कहा—"समुद्रके उत्तरतटपर जाकर ज्यो ही मै आपका सन्देश सुनाने लगा त्यो ही कुछ वानरोने उछलकर मुझे तत्क्षण पकड लिया ॥ १५ ॥ और मुझे घूँसो, नखो एव दाँतोसे मारने तथा लुप्त करनेका आयोजन करने लगे। तब, 'हे राम ! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार मुझे पुकारते सुन रघुश्रेष्ठ रामने कहा, 'इसे छोड दो।' इससे उन वानरोने मुझे छोड दिया। तब मैं वानरोकी सेना देखकर बडा डरता-डरता यहाँ आया हूँ ॥ १६-१७ ॥ मेरे विचारसे देव और दानवोके समान राक्षसोके दलबल और वानरोकी सेनामे किसी प्रकार मेल नही हो सकता ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! वे शीघ्र ही नगरके परकोटेपर आनेवाले है, आप दोनोमेसे कोई एक काम कीजिये—या तो उन्हे सीता दे दीजिये और या उनके साथ युद्ध कीजिये ॥ १९ ॥ रामने मुझसे कहा है कि 'शुक ! रावणसे मेरी ओरसे कहना कि जिस शक्तिके भरोसे तुमने हमारी जानकीको हरा है उसे भली प्रकार अपनी सेना और बन्धु-बान्धवोके सहित मुझे दिखलाना। तू कल ही प्राकार और तोरणादिके सहित लकापुरी और राक्षसोकी सेनाको मेरे बाणोसे विध्वस्त हुई देखेगा। रावण ! उस समय मै भयकर क्रोध छोडूँगा, तू अपने बलको स्थिर

इत्युक्त्वोपररामाथ राम कमललोचन ।
एकस्थानगता यत्र चत्वार पुरुषर्षभा ॥ २३ ॥
श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषण ।
एत एव समर्थास्ते लङ्का नाशयितु प्रभो ॥ २४ ॥
उत्पाट्य भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानरा ।
तस्य यादृग् बल दृष्ट रूप प्रहरणानि च ॥ २५ ॥
वधिष्यति पुर सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रय ।
पश्य वानरसेना तामसङ्ख्याता प्रपूरिताम् ॥ २६ ॥
गर्जन्ति वानरास्तत्र पश्य पर्वतसन्निभा ।
न शक्यास्ते गणयितु प्राधान्येन ब्रवीमि ते ॥ २७ ॥
एष योऽभिमुखो लङ्का नदस्तिष्ठति वानर ।
यूथपाना सहस्राणा शतेन परिवारित ॥ २८ ॥
सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलो नामाग्निनन्दन ।
एष पर्वतशृङ्गाभ पद्मकिञ्जल्कसन्निभ ॥ २९ ॥
स्फोटयत्यभिसरब्धो लाङ्गूल च पुन पुन ।
युवराजोऽङ्गदो नाम वालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ॥ ३० ॥
येन दृष्टा जनकजा रामस्यातीववल्लभा ।
हनूमानेष विख्यातो हतो येन तवात्मज ॥ ३१ ॥
श्वेतो रजतसङ्काशो महाबुद्धिपराक्रम ।
तूर्ण सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानर ॥ ३२ ॥
यस्त्वेष सिहसङ्काश पश्यत्यतुलविक्रम ।
रम्भो नाम महासत्त्वो लङ्का नाशयितु क्षम ॥ ३३ ॥
एष पश्यति वै लङ्का दिधक्षन्निव वानर ।
शरभो नाम राजेन्द्र कोटियूथपनायक ॥ ३४ ॥
पनसश्च महावीर्यो मैन्दश्च द्विविदस्तथा ।
नलश्च सेतुकर्तासौ विश्वकर्मसुतो बली ॥ ३५ ॥
वानराणा वर्णने वा सङ्ख्याने वा क ईश्वर ।
शूरा सर्वे महाकाया सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिण. ॥ ३६ ॥
शक्ता सर्वे चूर्णयितु लङ्का रक्षोगणै सह ।
एतेषा बलसङ्ख्यान प्रत्येक वच्मि ते शृणु ॥ ३७ ॥

रखना' ॥ २०—२२ ॥ ऐसा कहकर कमलनयन भगवान् राम चुप हो गये ।

"हे प्रभो ! और सब वानर एक ओर रहे तो भी, एक साथ मिल जानेपर, लकाको जडसे उखाडकर उसे भस्म और नष्ट करनेमे तो राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण—ये चार पुरुषश्रेष्ठ ही पर्याप्त है । और मैने, जैसे उनके बल, रूप और अस्त्र-शस्त्रादि देखे है उससे तो यही मालूम होता है कि और तीनो अन्यत्र रहे, अकेले राम ही समस्त नगरको नष्ट कर सकते है । अब सब ओर फैली हुई वनरोकी उस असख्य सेनाको देखिये ॥ २३—२६ ॥ देखिये, ये पर्वतसदृश वानरवीर कैसे गर्ज रहे है । इन्हे गिना नही जा सकता, इसलिये मै आपको इनमेसे प्रधान-प्रधान बतलाता हूँ ॥ २७ ॥ यह वानर जो लकाकी ओर देखकर बारम्बार गर्ज रहा है और एक लाख यूथपतियोसे घिरा हुआ है, वानरराज सुग्रीवका सेनापति अग्निनन्दन 'नील' है। जो कमल-केशरकी-सी आभावाला तथा पर्वत-शिखरके समान विशालकाय है एव रोषपूर्वक बारम्बार अपनी पूँछ पटक रहा है, वह अति वीर्यवान् वालिपुत्र युवराज 'अङ्गद' है ॥ २८—३० ॥ जिसने रामकी अत्यन्त प्रिया जनक-नन्दिनी सीताको देखा और आपके पुत्रका वध किया, यह वही विख्यात वीर 'हनुमान्' है ॥ ३१ ॥ जिसकी कान्ति चाँदीके समान शुक्ल वर्ण है, जो बडी शीघ्रतासे सुग्रीवके पास आकर फिर लौट जाता है तथा जो महाबुद्धिमान्, पुरुषार्थी और सिहके समान अतुलित पराक्रमी वानर इधर देख रहा है वह 'रम्भ' है । लकाको नष्ट करनेमे यह अकेला ही समर्थ है ॥ ३२-३३ ॥ हे राजेश्वर ! यह दूसरा वानर, जो लकाकी ओर इस प्रकार देखता है मानो जला ही डालेगा, करोड यूथपतियोका नायक 'शरभ' है ॥ ३४ ॥ इनके अतिरिक्त महापराक्रमी पनस, मैन्द, द्विविद और सेतु बाँधनेवाला विश्वकर्माका पुत्र महाबली नल—ये सब भी प्रधान-प्रधान योद्धा है ॥ ३५ ॥ इन वानरोका वर्णन करने और गिननेकी सामर्थ्य किसमे है । ये सभी बडे शूरवीर, विशालकाय और युद्धके लिये उत्सुक है ॥ ३६ ॥ राक्षसोके सहित लकाको चूर्ण करनेमे ये सभी समर्थ है । अब मै इनमेसे प्रत्येककी सेनाकी सख्या बतलाता हूँ,

एषा कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च ।
तथा शङ्खसहस्राणि तथार्बुदशतानि च ॥ ३८ ॥

सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत्प्रकीर्तितम् ।
अन्येषां तु बलं नाहं वक्तुं शक्तोऽस्मि रावण ॥ ३९ ॥

रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः ।
सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका ॥ ४० ॥

ताभ्यामेव समुत्पन्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तस्माद्रामश्च सीता च जगतस्तस्थुषश्च तौ ॥ ४१ ॥

पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत् ।
अजानता त्वयानीता जगन्मातैव जानकी ॥ ४२ ॥

क्षणनाशिनि संसारे शरीरे क्षणभङ्गुरे ।
पञ्चभूतात्मके राजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥ ४३ ॥

मलमांसास्थिदुर्गन्धभूयिष्ठेऽहङ्कृतालये ।
कैवास्था व्यतिरिक्तस्य काये तव जडात्मके ॥ ४४ ॥

यत्कृते ब्रह्महत्यादिपातकानि कृतानि ते ।
भोगभोक्ता तु यो देहः स देहोऽत्र पतिष्यति ॥ ४५ ॥

पुण्यपापे समायातो जीवेन सुखदुःखयोः ।
कारणे देहयोगादिनात्मनः कुरुतोऽनिशम् ॥ ४६ ॥

यावद्देहोऽस्मि कर्तास्मीत्यात्माहंकुरुतेऽवशः ।
अध्यासात्तावदेव स्याज्जन्मनाशादिसम्भवः ॥ ४७ ॥

तस्मात्त्वं त्यज देहादावभिमानं महामते ।
आत्मातिनिर्मलः शुद्धो विज्ञानात्माचलोऽव्ययः ॥ ४८ ॥

स्वाज्ञानवशतो बन्धं प्रतिपद्य विमुह्यति ।
तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वात्मानं सदा स्मर ॥ ४९ ॥

सावधान होकर सुनिये ॥ ३७ ॥ इनमेसे प्रत्येकके नीचे इक्कीस हजार करोड, हजारो शख और सैकडो अरब सेना है ॥ ३८ ॥

"हे रावण ! यह तो मैंने सुग्रीवके मन्त्रियोकी ही सेना बतायी है, उनके अतिरिक्त औरोंकी सेना गिनानेमे तो मै सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ ३९ ॥ राम भी कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, वे साक्षात् आदिनारायण परमात्मा हैं, और सीताजी जगत्की कारणरूपा साक्षात् जगद्रूपिणी चित्-शक्ति हैं ॥ ४० ॥ इन दोनोसे ही समस्त स्थावर-जङ्गम ससार उत्पन्न हुआ है, अत राम और सीता स्थावर-जङ्गम जगत्के माता-पिता हैं। हे पृथिवीपते ! सोचो तो, उनका वैरी कोई कैसे हो सकता है ? आप जिस जानकीको अनजानमें ले आये हैं, वे साक्षात् जगन्माता ही हैं ॥ ४१-४२ ॥ हे राजन् ! क्षण-क्षणमे नष्ट होनेवाले ससारमे चौबीस तत्त्वो * के समूहरूप इस क्षणभगुर पाञ्चभौतिक शरीरमे जिसमे मल, मास, अस्थि आदि दुर्गन्धियुक्त पदार्थोंकी ही अधिकता है और जो अहकारका आश्रयस्थान तथा जडरूप है आप क्या आस्था करते है ? आप तो इससे सर्वथा पृथक् हैं ॥ ४३-४४ ॥ हाय ! जिस शरीरके लिये आपने ब्रह्महत्यादि अनेको पाप किये है, सम्पूर्ण भोगोका भोक्ता वह शरीर तो यही पडा रह जायगा ! ॥ ४५ ॥ सुख-दु खके कारणरूप (पूर्व-जन्मकृत) पाप-पुण्य जीवके साथ ही जाते हैं और वे ही देह-सम्बन्ध आदिके द्वारा जीवको अहर्निश सुख-दु खकी प्राप्ति कराते हैं ॥ ४६ ॥ जबतक अज्ञानजन्य अध्यासके कारण जीव 'मैं देह हूँ, मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा अभिमान करता है तभीतक उसे विवश होकर जन्म-मृत्यु आदि भोगने पडते है ॥ ४७ ॥ अत हे महामते ! आप देह आदिमे अभिमान छोडिये। आत्मा तो अत्यन्त निर्मल, शुद्ध-स्वरूप, विज्ञानमय, अविचल और अविकारी है ॥ ४८ ॥ अपने अज्ञानके कारण ही वह बन्धनमे पडकर मोहको प्राप्त होता है। अत आप आत्माको शुद्ध भावसे जानकर नित्य

* प्रकृति बुद्धि अहकार ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चभूत और शब्द-स्पर्श आदि उनके पाँच विषय—ये सब मिलाकर चौबीस तत्त्व कहलाते है।

विरतिं भज सर्वत्र पुत्रदारगृहादिषु।
निरयेष्वपि भोग स्याच्छ्वशूकरतनावपि ॥ ५० ॥

देह लब्ध्वा विवेकाढ्य द्विजत्व च विशेषत ।
तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम् ॥ ५१ ॥

को विद्वानात्मसात्कृत्वा देह भोगानुगो भवेत्।
अतस्त्व ब्राह्मणो भूत्वा पौलस्त्यतनयश्च सन् ॥ ५२ ॥

अज्ञानीव सदा भोगाननुधावसि किं मुधा।
इत पर वा त्यक्त्वा त्व सर्वसङ्ग समाश्रय ॥ ५३ ॥

राममेव परात्मान भक्तिभावेन सर्वदा।
सीता समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ॥ ५४ ॥

विमुक्त सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक प्रयास्यसि ।
नो चेद्गमिष्यसेऽधोऽध पुनरावृत्तिवर्जित ।
अङ्गीकुरुष्व मद्वाक्य हितमेव वदामि ते ॥ ५५ ॥

सत्सङ्गति कुरु भजस्व हरि शरण्य
श्रीराघव मरकतोपलकान्तिकान्तम्।
सीतासमेतमनिश धृतचापबाण
सुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेविताङ्घ्रिम् ॥ ५६ ॥

उसीका स्मरण कीजिये ॥ ४९ ॥ पुत्र, स्त्री और गृह आदि सभीसे उपराम हो जाइये, क्योकि भोग तो कुत्ते और शूकरादिकी योनिमे तथा नरकादिमे भी मिल सकते है ॥ ५० ॥ सदसद्-विवेक-बुद्धिसे युक्त मनुष्य-शरीर पाकर, उसमे भी विशेषत द्विजत्व पाकर और अति दुर्लभ कर्मभूमि भारतवर्षमे जन्म ग्रहण कर, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो देहमे आत्मबुद्धि कर भोगोका सेवन करेगा ?

"अत आप ब्राह्मण-शरीर और सो भी पुलस्त्यनन्दन विश्रवाके पुत्र होकर अज्ञानीके समान सदा ही इन भोगोकी ओर व्यर्थ क्यो दौडते है ? आजसे आप सब प्रकारका सग छोडकर अति भक्तिभावसे सदा परमात्मा रामका ही आश्रय लीजिये और सीताजीको भगवान् रामके अर्पण कर उनके चरणकमलोकी सेवा कीजिये ॥ ५१—५४ ॥ यदि आप ऐसा करेगे तो सब पापोसे छूटकर विष्णुलोक प्राप्त करेगे, नही तो पुन ऊपर लौटनेसे वञ्चित रहकर उत्तरोत्तर नीचेके लोकोमे ही जाते रहेगे। मै आपके हितकी ही बात कहता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये ॥ ५५ ॥ हे रावण! आप अहर्निश सत्सग कीजिये और जिनके शरीरकी कान्ति मरकतमणिके समान है तथा सुग्रीव, लक्ष्मण और विभीषण जिनके चरणकमलोकी सेवा कर रहे है, उन शरणागतवत्सल, धनुर्बाणधारी श्रीरघुनाथजीका सीताजीके सहित भजन कीजिये" ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे चतुर्थ सर्ग ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

शुकका पूर्व चरित्र, माल्यवान्का रावणको समझाना तथा वानर-राक्षस-सग्राम

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा शुकमुखोद्गीत वाक्यमज्ञाननाशनम्।
रावण क्रोधताम्राक्षो दहन्निव तमब्रवीत् ॥ १ ॥

अनुजीव्य सुदुर्बुद्धे गुरुवद्भाषसे कथम्।
शासिताह त्रिजगता त्व मा शिक्षन्न लज्जसे ॥ २ ॥

इदानीमेव हन्मि त्वा किन्तु पूर्वकृत तव।
स्मरामि तेन रक्षामि त्वा यद्यपि वधोचितम् ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! शुकके मुखसे निकले हुए इन अज्ञाननाशक वचनोको सुनकर रावण क्रोधसे मानो जलता हुआ उससे आँखे लाल करके बोला— ॥ १ ॥ "अरे दुर्बुद्धे! मेरे ही टुकडोसे पलकर तू इस प्रकार गुरुकी भाँति कैसे बोलता है ? तीनो लोकोका शासन करनेवाला तो मै हूँ, मुझे उपदेश देते हुए तुझको लज्जा नही आती ? ॥ २ ॥ तू यद्यपि वध करनेयोग्य है और मै तुझे अभी मार डालता, परन्तु तेरे पूर्व कृत्योको

इतो गच्छ विमूढ त्वमेव श्रोतु न मे क्षमम्।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा वेपमानो गृह ययौ॥ ४ ॥

शुकोऽपि ब्राह्मण पूर्व ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित्तम ।
वानप्रस्थविधानेन वने तिष्ठन् स्वकर्मकृत्॥ ५ ॥

देवानामभिवृद्ध्यर्थ विनाशाय सुरद्विषाम्।
चकार यज्ञविततिमविच्छिन्ना महामति ॥ ६ ॥

राक्षसाना विरोधोऽभूच्छुको देवहितोद्यत ।
वज्रदंष्ट्र इति ख्यातस्तत्रैको राक्षसो महान्॥ ७ ॥

अन्तर प्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यत ।
कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपद मुने ॥ ८ ॥

तेन सम्पूजितोऽगस्त्यो भोजनार्थ निमन्त्रित ।
गते स्नातु मुनौ कुम्भसम्भवे प्राप्य चान्तरम्॥ ९ ॥

अगस्त्यरूपधृक् सोऽपि राक्षस शुकमब्रवीत्।
यदि दास्यसि मे ब्रह्मन् भोजन देहि सामिषम्॥ १० ॥

बहुकाल न भुक्त मे मास छागाङ्गसम्भवम्।
तथेति कारयामास मासभोज्य सविस्तरम्॥ ११ ॥

उपविष्टे मुनौ भोक्तु राक्षसोऽतीव सुन्दरम्।
शुकभार्यावपुर्धृत्वा ता चान्तर्मोहयन् खल ॥ १२ ॥

नरमास ददौ तस्मै सुपक्व बहुविस्तरम्।
दत्त्वैवान्तर्दधे रक्षस्ततो दृष्ट्वा चुकोप स ॥ १३ ॥

अमेध्य मानुष मासमगस्त्य शुकमब्रवीत्।
अभक्ष्य मानुष मास दत्तवानसि दुर्मते॥ १४ ॥

मह्य त्व राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्व मानुषाशन ।
इति शप्त शुको भीत्या प्राहागस्त्य मुने त्वया॥ १५ ॥

इदानीं भाषित मेऽद्य मास देहीति विस्तरम्।
तथैव दत्त भो देव किं मे शाप प्रदास्यसि॥ १६ ॥

याद करके मैं तुझे छोडे देता हूँ॥ ३ ॥ अरे मूढ ! तू तुरत यहाँसे टल जा, मैं ऐसी बाते नही सुनना चाहता।'' रावणके ये वचन सुनकर शुक 'महाराजकी बडी कृपा है' ऐसा कहकर काँपता हुआ अपने घर चला गया॥ ४ ॥

पूर्वजन्ममे शुक एक वेदज्ञ और ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण था तथा वानप्रस्थ-विधिसे अपने धर्म-कर्ममे तत्पर हुआ वनमे रहता था॥ ५ ॥ इस महामतिने देवताओकी वृद्धि और दैत्योके नाशके लिये लगातार बहुत-से बडे-बडे यज्ञ किये॥ ६ ॥ अत देवताओके हितमे लगे रहनेके कारण शुकका राक्षसोसे विरोध हो गया। उस समय वज्रदंष्ट्र नामक एक महान् राक्षस शुकका अपकार करनेपर उतारू होकर अवसर देखने लगा।

एक दिन मुनिवर शुकके आश्रममे महर्षि अगस्त्य पधारे॥ ७-८ ॥ शुकने अगस्त्यजीकी पूजा कर उन्हे भोजनके लिये निमन्त्रित किया। जिस समय महर्षि अगस्त्य स्नानके लिये गये हुए थे उस राक्षस (वज्रदंष्ट्र) ने अपना मौका देखकर अगस्त्यका रूप बनाया और शुकसे कहा—''ब्रह्मन् ! यदि तुम मुझे भोजन कराना चाहते हो तो मासयुक्त अन्न खिलाओ॥ ९-१० ॥ मैने बहुत दिनोसे छाग (बकरे) का मास नही खाया है।'' तब शुकने 'जो आज्ञा' कह बडी तैयारीसे मासमय भोजन बनवाया॥ ११ ॥

जिस समय मुनि भोजन करने बैठे उस दुष्ट राक्षसने शुककी पत्नीका अति सुन्दर रूप धारण किया और उसे (शुककी स्त्रीको) आश्रमके भीतर ही मूर्च्छित कर मुनिवरको नाना प्रकारसे बनाया हुआ नरमास परोसा। उसे परोसकर वह राक्षस अन्तर्धान हो गया। मुनिवर अगस्त्य अपने आगे अभक्ष्य नरमास देखकर अति क्रोधित हुए और शुकसे बोले—''हे दुर्मते ! तुमने मुझे अभक्ष्य नरमास खानेको दिया है, अत तुम मनुष्यभोजी राक्षस होकर रहो।'' अगस्त्यजीके इस प्रकार शाप देनेपर शुकने डरते-डरते कहा—''मुने ! आपने अभी कहा था कि आज मुझे नाना प्रकारका मास खानेको दो, हे देव ! मैने आपके आज्ञानुसार ही आपको मास दिया है फिर आप मुझे शाप क्यो देते हैं ?'' ॥ १२—१६ ॥

श्रुत्वा शुकस्य वचन मुहूर्त ध्यानमास्थित ।
ज्ञात्वा रक्ष कृत सर्व तत प्राह शुक सुधी ॥ १७ ॥

तवापकारिणा सर्व राक्षसेन कृत त्विदम् ।
अविचार्यैव मे दत्त शापस्ते मुनिसत्तम ॥ १८ ॥

तथापि मे वचोऽमोघमेवमेव भविष्यति ।
राक्षस वपुरास्थाय रावणस्य सहायकृत् ॥ १९ ॥

तिष्ठ तावद्यदा रामो दशाननवधाय हि ।
आगमिष्यति लङ्काया समीप वानरै सह ॥ २० ॥

प्रेषितो रावणेन त्व चारो भूत्वा रघूत्तमम् ।
दृष्ट्वा शापाद्विनिर्मुक्तो बोधयित्वा च रावणम् ॥ २१ ॥

तत्त्वज्ञान ततो मुक्त पर पदमवाप्स्यसि ।
इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिना शुको ब्राह्मणसत्तम ॥ २२ ॥

बभूव राक्षस सद्यो रावण प्राप्य सस्थित ।
इदानीं चाररूपेण दृष्ट्वा राम सहानुजम् ॥ २३ ॥

रावण तत्त्वविज्ञान बोधयित्वा पुनर्द्रुतम् ।
पूर्ववद्ब्राह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसै सह ॥ २४ ॥

तत समागमद्वृद्धो माल्यवान् राक्षसो महान् ।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातु प्रिय पिता ॥ २५ ॥

प्राह त राक्षस वीर प्रशान्तेनान्तरात्मना ।
शृणु राजन्वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥ २६ ॥

यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा ।
तदादि पुर्या दृश्यन्ते निमित्तानि दशानन ॥ २७ ॥

घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदत शृणु ।
खरस्तनितनिर्घोषा मेघा अतिभयङ्करा ॥ २८ ॥

शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा ।
रुदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥ २९ ॥

कालिका पाण्डुरैर्दन्तै प्रहसत्यग्रत स्थिता ।
खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलै सह ॥ ३० ॥

शुकके वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अगस्त्यजीने एक मुहूर्ततक ध्यानस्थ होकर राक्षसकी सब करतूत जान ली। तब वे शुकसे बोले— ॥ १७ ॥ "हे मुनिश्रेष्ठ! यह सब करतूत तुम्हारे अपकार-कर्ता राक्षसकी है, मैने तुम्हे बिना विचारे ही शाप दे दिया ॥ १८ ॥ तथापि मेरा वचन वृथा जानेवाला नही है, इसलिये होगा ऐसा ही। तुम राक्षसका शरीर धारण कर रावणकी तबतक सहायता करते रहो जबतक कि उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी वानरोके सहित लकाके समीप न आये ॥ १९-२० ॥ इसके पश्चात् तुम रावणके भेजनेसे उसके दूत होकर रघुनाथजीके पास जाओगे और उनका दर्शन कर शापसे मुक्त हो जाओगे, फिर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश कर मुक्त होकर परमपद प्राप्त करोगे।"

मुनिवर अगस्त्यके ऐसा कहनेपर विप्रवर शुक राक्षस होकर तुरत रावणके पास आकर रहने लगे। इस समय रावणके दूतरूपसे लक्ष्मणसहित भगवान् रामका दर्शन कर तथा रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश दे वे फिर शीघ्र ही पूर्ववत् ब्राह्मण-शरीर हो वानप्रस्थोके साथ रहने लगे ॥ २१—२४ ॥

(शुकके चले जानेपर) राजा रावणकी माताका प्रिय पिता अति बुद्धिमान् और नीतिनिपुण वृद्ध राक्षस माल्यवान् वहाँ आया ॥ २५ ॥ वह शान्तचित्तसे उस राक्षसवीर (रावण) से बोला—"हे राजन्! मेरी प्रार्थना सुनिये, फिर आपकी जैसी इच्छा हो वह करना ॥ २६ ॥ हे दशानन! जबसे नगरमे राम-भार्या जानकीका प्रवेश हुआ है तभीसे यहाँ बडे भयकर नाशकारी हेतु दिखायी दे रहे हैं, सो मैं आपको बतलाता हूँ, सुनिये—अति भयकर मेघगण तीक्ष्ण कडकके साथ गर्जते हैं और सर्वदा लङ्काके ऊपर गर्म-गर्म रक्तकी वर्षा करते है। देवमूर्तियाँ रोती हैं, उनके शरीरमे पसीना आ जाता है और वे अपने स्थानसे स्खलित हो जाती है ॥ २७—२९ ॥ कालिका राक्षसोके आगे अपने पीले-पीले दाँत निकालकर हँसती है, गौओके गधे उत्पन्न होते है और चूहे न्योले तथा बिल्लीसे एव सर्प

मार्जारेण तु युध्यन्ति पन्नगा गरुडेन तु।
करालो विकटो मुण्ड पुरुष कृष्णपिङ्गल ॥ ३१ ॥

कालो गृहाणि सर्वेषा काले काले त्ववेक्षते।
एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च ॥ ३२ ॥

अत कुलस्य रक्षार्थं शान्ति कुरु दशानन।
सीता सत्कृत्य सधना रामायाशु प्रयच्छ भो ॥ ३३ ॥

राम नारायण विद्धि विद्वेष त्यज राघवे।
यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥ ३४ ॥

तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुष।
भजस्व भक्तिभावेन राम सर्वहृदालयम् ॥ ३५ ॥

यद्यपि त्व दुराचारो भक्त्या पूतो भविष्यसि।
मद्वाक्य कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥ ३६ ॥

तत्तु माल्यवतो वाक्य हितमुक्त दशानन।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागत ॥ ३७ ॥

मानव कृपण राममेक शाखामृगाश्रयम्।
समर्थं मन्यसे केन हीन पित्रा मुनिप्रियम् ॥ ३८ ॥

रामेण प्रेषितो नून भाषसे त्वमनर्गलम्।
गच्छ वृद्धोऽसि बन्धुस्त्व सोढ सर्वं त्वयोदितम् ॥ ३९ ॥

इतो मत्कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव।
इत्युक्त्वा सर्वसचिवै सहित प्रस्थितस्तदा ॥ ४० ॥

प्रासादाग्रे समासीन पश्यन्वानरसैनिकान्।
युद्धायायोजयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ॥ ४१ ॥

रामोऽपि धनुरादाय लक्ष्मणेन समाहृतम्।
दृष्ट्वा रावणमासीन कोपेन कलुषीकृत ॥ ४२ ॥

किरीटिन समासीन मन्त्रिभि परिवेष्टितम्।
शशाङ्कार्धनिभेनैव बाणेनैकेन राघव ॥ ४३ ॥

गरुडसे युद्ध करते है। समस्त राक्षसोके घरोको समय-समयपर काले और पीले रगका एक महाभयङ्कर विकरालवदन मुण्डित-केश कालपुरुष देखा करता है। इस प्रकार ये तथा और भी बहुत-से अपशकुन उत्पन्न होते और दिखायी देते है ॥ ३०—३२ ॥ अत हे दशशीश ! अपने कुलकी रक्षाके लिये इनकी शान्ति कीजिये और तुरत ही सीताको सत्कारपूर्वक बहुत-से धनके सहित रघुनाथजीको दे दीजिये ॥ ३३ ॥ रामको आप साक्षात् नारायण समझिये, इसलिये उनमे द्वेषभाव छोड दीजिये। इन रघुनाथजीके चरण-कमलरूप नौकाका आश्रय लेकर भक्तिसे पवित्र अन्त करण हुए योगीजन ससारसागरको पार कर जाते है। अत ये कोई साधारण पुरुष नही है। ये सबके अन्त करणोमे विराजमान है, आप भक्तिभावसे इन रघुनाथजीका भजन कीजिये ॥ ३४-३५ ॥ यद्यपि आपका आचरण अच्छा नही है, तथापि उनकी भक्तिसे आप पवित्र हो जायँगे। हे राजेन्द्र ! अपने कुलकी कुशलताके लिये मेरा यह वचन मान लीजिये'' ॥ ३६ ॥

किन्तु माल्यवान्के ये हितकर वाक्य दुष्टचित्त रावणको सहन न हुए, क्योकि वह कालके वशीभूत हो रहा था ॥ ३७ ॥ वह बोला—''इस बेचारे एक तुच्छ मनुष्य रामको, जिसने बदरका आश्रय लिया हुआ है और जिसे उसके पिताने भी निकाल दिया है, तुम किस बातमे समर्थ मानते हो ? वह तो केवल वनवासी मुनिजनोका ही प्यारा है ॥ ३८ ॥ मालूम होता है, तुम्हे रामने ही भेजा है इसीलिये तुम इस प्रकार ऊटपटाग बाते बनाते हो। जाओ, तुम बूढे और अपने सगे-सम्बन्धी हो इसीलिये मैने तुम्हारी सब बाते सहन कर ली है ॥ ३९ ॥ किन्तु अब तुम्हारे वचन मेरे कानोको जलाते हैं।'' ऐसा कहकर वह अपने समस्त मन्त्रियोसहित वहाँसे चल दिया ॥ ४० ॥ और अपने राजभवनके सर्वोच्च तलपर बैठकर वानरसैनिकोको देखता हुआ अपने आस-पास बैठे हुए राक्षसोको युद्धके लिये नियुक्त करने लगा ॥ ४१ ॥

इधर, रामचन्द्रजीने रावणको बैठा देख अति क्रोधातुर हो लक्ष्मणजीका लाया हुआ धनुष उठाया ॥ ४२ ॥ वह सिरपर मुकुट धारण किये अपने अनेको मन्त्रियोसे घिरा हुआ बैठा था। भगवान् रामने

श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा ।
चिच्छेद निमिषार्धेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४४ ॥

लज्जितो रावणस्तूर्णं विवेश भवनं स्वकम् ।
आहूय राक्षसान् सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान् खलः ॥ ४५ ॥

वानरैः सह युद्धाय नोदयामास सत्वरः ।
ततो भेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः ॥ ४६ ॥

महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः ।
खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः ॥ ४७ ॥

लक्षिताः सर्वतो लङ्काः प्रतिद्वारमुपाययुः ।
तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः ॥ ४८ ॥

उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च ।
तरूंश्चोत्पाट्य विविधान्युद्धाय हरियूथपाः ॥ ४९ ॥

प्रेक्षमाणा रावणस्य तान्यनीकानि भागशः ।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ ५० ॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः ।
ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ॥ ५१ ॥

कोटीशतयुताश्चान्ये रुरुधुर्नगरं भृशम् ।
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥ ५२ ॥

रामो जयत्यतिबलो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः ॥ ५३ ॥

इत्येवं घोषयन्तश्च समं युयुधिरेऽरिभिः ।
हनूमानङ्गदश्चैव कुमुदो नील एव च ॥ ५४ ॥

नलश्च शरभश्चैव मैन्दो द्विविद एव च ।
जाम्बवान्दधिवक्त्रश्च केसरी तार एव च ॥ ५५ ॥

अन्ये च बलिनः सर्वे यूथपाश्च प्लवङ्गमाः ।
द्वाराण्युत्प्लुत्य लङ्कायाः सर्वतो रुरुधुर्भृशम् ।
तदा वृक्षैर्महाकाया पर्वताग्रैश्च वानराः ॥ ५६ ॥

निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः ।
राक्षसाश्च तदा भीमा द्वारेभ्यः सर्वतो रुषा ॥ ५७ ॥

आधे निमेषमे ही एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसके हजारो श्वेत छत्र और दसो मुकुट काट डाले। यह बडा आश्चर्य-सा हो गया ॥ ४३-४४ ॥ इससे लज्जित होकर रावण तुरत अपने घरमे घुस गया, और उस दुष्टने शीघ्र ही प्रहस्त आदि मुख्य-मुख्य राक्षसोको बुलाकर वानरोके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी।

तब राक्षस लोग भेरी, मृदग, पणव, आनक और गोमुख आदि बाजे बजाते भैसो, ऊँटो, गधो, सिहो और व्याघ्रोपर चढकर खड्ग, शूल, धनुष, पाश, यष्टि (डडे), तोमर और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रोसे सुसज्जित हो लङ्काके प्रत्येक द्वारपर आ गये। भगवान् रामने वानरोको पहले ही आज्ञा दे दी थी ॥ ४५—४८ ॥ अत वे पर्वतोकी शिलाएँ तथा बडे-बडे शिखर उठाकर और नाना प्रकारके वृक्ष उखाडकर युद्धके लिये चले और रावणकी वह पृथक्-पृथक् सेना देखकर रघुनाथजीका प्रिय कार्य करनेके लिये लङ्कापर चढ गये ॥ ४९-५० ॥

उनमेसे कोई सहस्रयूथपति, कोई कोटियूथप और कोई शतकोटि-यूथनायक थे। उन वानरोने उछलते-कूदते और गर्जते हुए वृक्ष, पर्वतशिखर और मुट्ठियाँ तानकर नगरको सब ओरसे घेर लिया ॥ ५१-५२ ॥

'महाबली राम और वीरवर लक्ष्मणकी जय हो, रघुनाथजीसे सुरक्षित राजा सुग्रीवकी जय हो, इस प्रकार शब्द करते हुए वे शत्रुओसे लडने लगे। हनुमान्, अङ्गद, कुमुद, नील, नल, शरभ, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, दधिमुख, केसरी, तार तथा अन्य समस्त बलवान् वानर और यूथपतियोने उछल-उछलकर लङ्काके सब द्वारोको चारो ओरसे घेर लिया। तब वे महाकाय वानरगण वृक्ष, पर्वतशिखर और नख तथा दाँतोसे अति वेगपूर्वक उन राक्षसोको मारने लगे।

तब, महाभयानक और बडे-बडे डीलवाले महाबली राक्षसगण भी अति रोषपूर्वक सब द्वारोसे निकलकर

निर्गत्य भिन्दिपालैश्च खड्गै शूलै परश्वधै ।
निजघ्नुर्वानरानीक महाकाया महाबला ॥ ५८ ॥

राक्षसाश्च तथा जघ्नुर्वानरा जितकाशिन ।
तदा बभूव समरो मासशोणितकर्दम ॥ ५९ ॥

रक्षसा वानराणा च सम्बभूवाद्भुतोपम ।
ते हयैश्च गजैश्चैव रथै काञ्चनसन्निभै ॥ ६० ॥

रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिण ॥ ६१ ॥

राक्षसान्वानरा जघ्नुर्वानराश्चैव राक्षसा ।
रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दिविजाशजा ॥ ६२ ॥

बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव ।
सीताभिमर्शपापेन रावणेनाभिपालितान् ॥ ६३ ॥

हतश्रीकान्हतबलान् राक्षसान् जघ्नुरोजसा ।
चतुर्थाशावशेषेण निहत राक्षस बलम् ॥ ६४ ॥

स्वसैन्य निहत दृष्ट्वा मेघनादोऽथ दुष्टधी ।
ब्रह्मदत्तवर श्रीमानन्तर्धान गतोऽसुर ॥ ६५ ॥

सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्तत ।
नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन् ॥ ६६ ॥

ववर्ष शरजालानि तदद्भुतमिवाभवत् ।
रामोऽपि मानयन्ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदा वर ॥ ६७ ॥

क्षण तूष्णीमुवासाथ ददर्श पतित बलम् ।
वानराणा रघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसन्निभ ॥ ६८ ॥

चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुर क्षणात् ।
भस्मीकरोमि मे पश्य बलमद्य रघूत्तम ॥ ६९ ॥

मेघनादोऽपि तच्छ्रुत्वा रामवाक्यमतन्द्रित ।
तूर्ण जगाम नगर मायया मायिकोऽसुर ॥ ७० ॥

पतित वानरानीक दृष्ट्वा रामोऽतिदु खित ।
उवाच मारुतिं शीघ्र गत्वा क्षीरमहोदधिम् ॥ ७१ ॥

भिन्दिपाल, खड्ग, शूल और परशु आदि विविध अस्त्र-शस्त्रोसे वानर-सेनापर प्रहार करने लगे ॥ ५३—५८ ॥ इसी प्रकार विजयी वानरवीर भी राक्षसोको मारने लगे। उस समय वहाँ राक्षसो और वानरोका बडा विचित्र युद्ध छिड गया, जिससे उस रणभूमिमे रक्त और मासकी कीच हो गयी। वीर राक्षसकेसरी घोडो, हाथियो और सुवर्णमय रथोपर चढकर अपने शब्दसे दसो दिशाओको गुजायमान करते हुए लड रहे थे और राक्षस तथा वानर दोनो ही परस्पर एक-दूसरेको जीतना चाहते थे ॥ ५९—६१ ॥ वानरगण राक्षसोको और राक्षसलोग वानरोको मारने लगे। विष्णुरूप भगवान् रामकी दृष्टि पडनेसे देवताओके अशसे उत्पन्न हुए वानरगण बडे प्रबल हो गये, और मानो अमृतपान कर अति हर्षसे उत्साहपूर्वक, सीताजीको (हरण करते समय) स्पर्श करनेके कारण महापापी रावणसे पालित निस्तेज और बलहीन राक्षसोको मारने लगे। धीरे-धीरे राक्षसोकी सेना नष्ट होकर केवल एक चौथाई रह गयी ॥ ६२—६४ ॥

अपनी सेनाको नष्ट हुई देख ब्रह्माजीके वरसे श्रीसम्पन्न हुआ दुष्टबुद्धि राक्षस मेघनाद अन्तर्धान हो गया ॥ ६५ ॥ वह दैत्य सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलानेमे कुशल था। अत वह आकाशमे चढकर ब्रह्मास्त्रद्वारा वानर-सेनाको दलित करता हुआ सब ओर नाना प्रकारके शस्त्र और बाणसमूह बरसाने लगा। यह बडा आश्चर्य-सा होने लगा। अस्त्रवेत्ताओमे श्रेष्ठ भगवान् राम भी ब्रह्मास्त्रका मान रखनेके लिये एक क्षणतक चुपचाप वानर-सेनाका पतन देखते रहे। अन्तमे वे रघुश्रेष्ठ क्रोधसे अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे ॥ ६६—६८ ॥ और बोले—"लक्ष्मण! मेरा धनुष तो लाओ, मै एक क्षणमे ही इस दुष्ट दानवको ब्रह्मास्त्रसे भस्म कर डालूँगा। हे रघुश्रेष्ठ! आज तुम मेरा पराक्रम देखना" ॥ ६९ ॥

मेघनाद भी बहुत सावधान था, रामचन्द्रजीके ये वाक्य सुनते ही वह महामायावी दैत्य मायापूर्वक तुरत अपने नगरको चला गया ॥ ७० ॥ वानर-सेनाको नष्ट हुई देख श्रीरामचन्द्रजी अति दु खित होकर हनुमान्‌जीसे बोले—

तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भव ।
तमानय द्रुत गत्वा सञ्जीवय महामते ॥ ७२ ॥

वानरौघान्महासत्त्वान्कीर्तिस्ते सुस्थिरा भवेत् ।
आज्ञा प्रमाणमित्युक्त्वा जगामानिलनन्दन ॥ ७३ ॥

आनीय च गिरि सर्वान्वानरान्वानरर्षभ ।
जीवयित्वा पुनस्तत्र स्थापयित्वाययौ द्रुतम् ॥ ७४ ॥

पूर्ववद्भैरव नाद वानराणा बलौघत ।
श्रुत्वा विस्मयमापन्नो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७५ ॥

राघवो मे महान् शत्रु प्राप्तो देवविनिर्मित ।
हन्तु त समरे शीघ्र गच्छन्तु मम यूथपा ॥ ७६ ॥

मन्त्रिणो बान्धवा शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिण ।
सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरित मम शासनात् ॥ ७७ ॥

ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरव प्राणविप्लवात् ।
तान्हनिष्याम्यह सर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ॥ ७८ ॥

तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदा ।
अतिकाय प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ ॥ ७९ ॥

देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
अपरे बलिन सर्वे ययुर्युद्धाय वानरै ॥ ८० ॥

एते चान्ये च बहव शूरा शतसहस्रश ।
प्रविश्य वानर सैन्य ममन्थुर्बलदर्पिता ॥ ८१ ॥

भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च बाणै खड्गै परश्वधै ।
अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥ ८२ ॥

ते पादपै पर्वताग्रैर्नखदंष्ट्रैश्च मुष्टिभि ।
प्राणैर्विमोचयामासु सर्वराक्षसयूथपान् ॥ ८३ ॥

रामेण निहता केचित्सुग्रीवेण तथापरे ।
हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना ।
यूथपैर्वानराणा ते निहता सर्वराक्षसा ॥ ८४ ॥

रामतेज समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन् ।
रामशक्तिविहीनानामेव शक्ति कुतो भवेत् ॥ ८५ ॥

"हनुमान्! तुम तुरत ही क्षीर-सागरपर जाओ। वहाँ द्रोणाचल नामक पर्वत है, जिसपर नाना प्रकारकी दिव्य ओषधियाँ उत्पन्न होती है। हे महामते! तुम झटपट जाकर उस पर्वतको ले आओ और इन महापराक्रमी वानरयूथोको जीवित करो। इससे तुम्हारी कीर्ति अविचल हो जायगी।" यह सुनकर पवनकुमार 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर चल दिये ॥ ७१—७३ ॥ और तुरत ही उस पर्वतको लाकर (उसकी ओषधियोसे) समस्त वानरोको जीवित कर उसे फिर वही रख आये ॥ ७४ ॥

तब वानर-सेनाका फिर पूर्ववत् भयानक शब्द सुनकर रावण अति विस्मित होकर कहने लगा ॥ ७५ ॥ "देवताओका प्रकट किया हुआ यह राम मेरा महान् शत्रु आया है। इसे युद्धमे मारनेके लिये मेरे सेनापति, मन्त्री, बन्धु-बान्धव तथा और भी जो शूरवीर मेरा हित चाहते हो, वे सब मेरी आज्ञा मानकर तुरत जायँ ॥ ७६-७७ ॥ जो डरपोक अपने प्राणोके भयसे युद्ध करने नही जायँगे, अपनी आज्ञा न माननेवाले उन सबको मैं मार डालूँगा" ॥ ७८ ॥ रावणकी यह आज्ञा सुनकर अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर, देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तक और नरान्तक आदि रणकुशल वीर तथा और भी समस्त बलवान् योद्धा भयभीत होकर वानरोके साथ युद्ध करनेके लिये चले ॥ ७९-८० ॥ ये तथा और भी बहुत-से सैकडो-सहस्रो शूर-वीर अपने-अपने बलके गर्वसे उन्मत्त हो वानरसेनामे घुसकर उसे दलित करने लगे ॥ ८१ ॥ वे भुशुण्डि, भिन्दिपाल, बाण, खड्ग, परशु तथा और भी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे वानर-यूथपतियोपर प्रहार करने लगे ॥ ८२ ॥

इधर, वानरवीर भी वृक्षो, पर्वतशिखरो, नखों, दाढों और मुट्ठियोसे समस्त राक्षस-यूथपोको निष्प्राण करने लगे ॥ ८३ ॥ उन राक्षसोमेसे कोई श्रीरामके हाथसे, कोई सुग्रीवके द्वारा, कोई हनुमान् और अङ्गदके द्वारा, कोई महात्मा लक्ष्मणजीके हाथसे और कोई अन्यान्य वानर-यूथपोके द्वारा मारे गये। इस प्रकार उन समस्त राक्षसोका अन्त हो गया ॥ ८४ ॥ राम-तेजके समावेशसे वानरगण अत्यन्त प्रबल हो रहे थे। राम-शक्तिसे शून्य होनेपर इनमें

सर्वेश्वर सर्वमयो विधाता
मायामनुष्यत्वविडम्बनेन ।
सदा चिदानन्दमयोऽपि रामो
युद्धादिलीला वितनोति मायाम् ॥ ८६ ॥

इतनी सामर्थ्य कैसे हो सकती थी ? ॥ ८५ ॥ भगवान् राम सर्वेश्वर, सर्वमय, सबके नियन्ता और सर्वदा चिदानन्दमय है, तथापि मायासे मानव-चरित्रका अनुकरण करते हुए युद्धादि लीलाका विस्तार करते है ॥ ८६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

लक्ष्मण-मूर्च्छा, राम-रावण-सग्राम, हनुमान्जीका ओषधि लेने जाना और रावण-कालनेमि-सवाद

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा युद्धे बल नष्टमतिकायमुख महत् ।
रावणो दु खसन्तप्त क्रोधेन महतावृत ॥ १ ॥

निधायेन्द्रजित लङ्कारक्षणार्थ महाद्युति ।
स्वय जगाम युद्धाय रामेण सह राक्षस ॥ २ ॥

दिव्य स्यन्दनमारुह्य सर्वशस्त्रास्त्रसयुतम् ।
राममेवाभिदुद्राव राक्षसेन्द्रो महाबल ॥ ३ ॥

वानरान्बहुशो हत्वा बाणैराशीविषोपमै ।
पातयामास सुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥ ४ ॥

गदापाणि महासत्त्व तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ।
उत्ससर्ज महाशक्तिं मयदत्ता विभीषणे ॥ ५ ॥

तामापतन्तीमालोक्य विभीषण विघातिनीम् ।
दत्ताभयोऽय रामेण वधार्हो नायमासुर ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणो भीम चापमादाय वीर्यवान् ।
विभीषणस्य पुरत स्थितोऽकम्प इवाचल ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! युद्धमे अतिकाय आदि राक्षसोकी महती सेनाको नष्ट हुई सुन रावण अति दु खातुर हो महान् क्रोधसे भर गया ॥ १ ॥ और वह महातेजस्वी राक्षस लङ्काकी रक्षाके लिये इन्द्रजित्को नियुक्त कर स्वय रघुनाथजीसे लडनेके लिये चला ॥ २ ॥ महाबली राक्षसराज समस्त शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित एक दिव्य रथपर आरूढ हो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर ही दौडा ॥ ३ ॥ उसने अपने सर्पके समान उग्र बाणोसे बहुत-से वानरोको मारकर सुग्रीव आदि यूथपतियोको भी पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥ फिर महापराक्रमी विभीषणको वहाँ गदा लिये खडा देख उसने उसकी ओर मयदानवकी दी हुई महान् शक्ति छोडी ॥ ५ ॥ उस शक्तिको विभीषणका नाश करनेके लिये बढती देख 'रामने इसे अभय दिया है, यह असुरकुमार वध किये जानेयोग्य नही है' ऐसा कहते हुए महावीर्यवान् लक्ष्मणजी अपना प्रचण्ड धनुष लेकर विभीषणके आगे पर्वतके समान अचल होकर खडे हो गये ॥ ६-७ ॥

सा शक्तिर्लक्ष्मणतनु विवेशामोघशक्तित ।
यावन्त्य शक्तयो लोके मायाया सम्भवन्ति हि ॥ ८ ॥

तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मन ।
मायाशक्त्या भवेत्कि वा शेषाशस्य हरेस्तनो ॥ ९ ॥

तथापि मानुष भावमापन्नस्तदनुव्रत ।
मूर्च्छित पतितो भूमौ तमादातु दशानन ॥ १० ॥

उस शक्तिकी सामर्थ्य अमोघ (कभी व्यर्थ न जानेवाली) थी, अत वह लक्ष्मणजीके शरीरमे घुस गयी। ससारमे मायासे जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती है, महात्मा लक्ष्मणजी उन सबके आधार भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत शेषनागके अशावतार है। उनका उस मायाशक्तिसे क्या बिगड सकता था ? ॥ ८-९ ॥ तथापि इस समय मनुष्यभाव अगीकार करनेमे उसका अनुकरण करते हुए

हस्तैस्तोलयितु शक्तो न बभूवातिविस्मित ।
सर्वस्य जगत सार विराज परमेश्वरम् ॥ ११ ॥

कथ लोकाश्रय विष्णु तोलयेल्लघुराक्षस ।
ग्रहीतुकाम सौमित्रिं रावण वीक्ष्य मारुति ॥ १२ ॥

आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि ॥ १३ ॥

आस्यैश्च नेत्रश्रवणैरुद्वमन् रुधिर बहु ।
विघूर्णमाननयनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १४ ॥

अथ लक्ष्मणमादाय हनूमान् रावणार्दितम् ।
आनयद्रामसामीप्य बाहुभ्या परिगृह्य तम् ॥ १५ ॥

हनूमत सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वर ।
लघुत्वमगमद्देवो गुरूणा गुरुरप्यज ॥ १६ ॥

सा शक्तिरपि त त्यक्त्वा ज्ञात्वा नारायणाशजम् ।
रावणस्य रथ प्रागाद्रावणोऽपि शनैस्तत ॥ १७ ॥

सज्ञामवाप्य जग्राह बाणासनमथो रुषा ।
राममेवाभिदुद्राव दृष्ट्वा रामोऽपि त क्रुधा ॥ १८ ॥

आरुह्य जगता नाथो हनूमन्त महाबलम् ।
रथस्थ रावण दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघव ॥ १९ ॥

ज्याशब्दमकरोत्तीव्र वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ।
रामो गम्भीरया वाचा राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥ २० ॥

राक्षसाधम तिष्ठाद्य क्व गमिष्यसि मे पुर ।
कृत्वापराधमेव मे सर्वत्र समदर्शिन ॥ २१ ॥

येन बाणेन निहता राक्षसास्ते जनालये ।
तेनैव त्वा हनिष्यामि तिष्ठाद्य मम गोचरे ॥ २२ ॥

श्रीरामस्य वच श्रुत्वा रावणो मारुतात्मजम् ।
वहन्त राघव सङ्ख्ये शरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥ २३ ॥

हतस्यापि शरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनो स्वतेजसा ।
व्यवर्धत पुनस्तेजो ननर्द च महाकपि ॥ २४ ॥

ततो दृष्ट्वा हनूमन्त सव्रण रघुसत्तम ।
क्रोधमाहारयामास कालरुद्र इवापर ॥ २५ ॥

वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडे। लक्ष्मणजीको ले जानेके लिये रावण उन्हे अपने हाथोसे उठानेमे सफल न हुआ, अत उसे बडा ही विस्मय हुआ। भला, जो सम्पूर्ण जगत्का सार परमेश्वर विराट् पुरुष है उस निखिल लोकाधार विष्णुको एक क्षुद्र राक्षस कैसे उठा सकता था।

जब हनुमान्जीने देखा कि रावण लक्ष्मणजीको ले जाना चाहता है तो उन्होने अति क्रुद्ध होकर उसकी छातीमें एक वज्र-सदृश घूँसा मारा। उस घूँसेके आघातसे रावण घुटनोके बल पृथ्वीपर गिर पडा॥ १०—१३ ॥ और अपने मुख, नेत्र और कानोसे बहुत-सा रुधिर वमन करता हुआ घूमती हुई आँखोसे रथके पिछले भागमे बैठ गया॥ १४ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी रावणद्वारा आहत लक्ष्मणजीको अपनी भुजाओपर उठाकर श्रीरामचन्द्रजीके पास ले आये॥ १५ ॥ हनुमान्जीके लिये, उनके सौहार्द और भक्तिभावके कारण वे अजन्मा और प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर (लक्ष्मणजी) भारी-से-भारी होनेपर भी अत्यन्त लघु (हलके) हो गये॥ १६ ॥ श्रीलक्ष्मणजीको साक्षात् नारायणका अश जानकर वह शक्ति भी उन्हे छोडकर फिर रावणके रथपर चली गयी। इधर, रावणको भी जब धीरे-धीरे कुछ चेत हुआ तो उसने अत्यन्त क्रोधसे अपना धनुष उठाया और रामचन्द्रजीकी ओर दौडा। उसे (अपनी ओर आता) देख जगत्पति भगवान् राम अति क्रुद्ध होकर महाबली हनुमान्जीके कन्धेपर चढे और रावणको रथमे बैठा देख उसकी ओर दौडे॥ १७—१९ ॥ भगवान् रामने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका ऐसा कठोर शब्द किया जो मानो वज्रको भी चूर्ण करनेवाला था और फिर अति गम्भीर वाणीसे राक्षसराज रावणसे ऐसा कहा— ॥ २० ॥ 'अरे राक्षसाधम! जरा ठहर तो, मुझ सर्वत्र समदर्शीका ऐसा अपराध करके तू कहाँ जा सकता है? ॥ २१ ॥ अरे! तू तनिक मेरे सामने खडा रह, जिस बाणसे मैंने जनस्थानमे (खर-दूषणादिसे युद्ध करते समय) तेरे राक्षसोको मारा था आज उसीसे तुझे भी मार डालूँगा' ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर रावणने उन्हे वहन करनेवाले हनुमान्जीके बडे तीखे बाण मारे॥ २३ ॥ किन्तु उन तीक्ष्ण बाणोके लगनेपर भी पवनपुत्रका तेज अपने प्रभावसे बराबर बढता ही गया और वे महान् कपीश्वर बडे जोरसे गरजने लगे॥ २४ ॥ जब रघुनाथजीने

साश्व रथ ध्वज सूत शस्त्रौघ धनुरञ्जसा ।
छत्र पताका तरसा चिच्छेद शितसायकै ॥ २६ ॥

ततो महाशरेणाशु रावण रघुसत्तम ।
विव्याध वज्रकल्पेन पाकारिरिव पर्वतम् ॥ २७ ॥

रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च ।
हस्तान्निपतितश्चापस्त समीक्ष्य रघूत्तम ॥ २८ ॥

अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीट रविप्रभम् ।
अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडित ॥ २९ ॥

प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्व पश्यसि बल मम ।
रामबाणेन सविद्धो हतदर्पोऽथ रावण ॥ ३० ॥

महत्या लज्जया युक्तो लङ्का प्राविशदातुर ।
रामोऽपि लक्ष्मण दृष्ट्वा मूर्च्छित पतित भुवि ॥ ३१ ॥

मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह ।
तत प्राह हनूमन्त वत्स जीवय लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥

महौषधी समानीय पूर्ववद्वानरानपि ।
तथेति राघवेणोक्तो जगामाशु महाकपि ॥ ३३ ॥

हनूमान्वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोदधिम् ।
एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन् ॥ ३४ ॥

रामेण प्रेषितो देव हनूमान् क्षीरसागरम् ।
गतो नेतु लक्ष्मणस्य जीवनार्थ महौषधी ॥ ३५ ॥

श्रुत्वा तच्चारवचन राजा चिन्तापरोऽभवत् ।
जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृह क्षणात् ॥ ३६ ॥

गृहागत समालोक्य रावण विस्मयान्वित ।
कालनेमिरुवाचेद प्राञ्जलिर्भयविह्वल ।
अर्घ्यादिक तत कृत्वा रावणस्याग्रत स्थित ॥ ३७ ॥

किं ते करोमि राजेन्द्र किमागमनकारणम् ।
कालनेमिमुवाचेद रावणो दु खपीडित ॥ ३८ ॥

ममापि कालवशत कष्टमेतदुपस्थितम् ।
मया शक्त्या हतो वीरो लक्ष्मण पतितो भुवि ॥ ३९ ॥

हनुमान्‌जीको क्षत-विक्षत देखा तो दूसरे कालरुद्रके समान बडा भयकर क्रोध धारण किया ॥ २५ ॥ और अपने तीक्ष्ण बाणोसे बडी फुर्तीके साथ सुगमतासे ही रावणके घोडेसहित रथ, ध्वजा, सारथी, शस्त्रसमूह, धनुष, छत्र और पताका आदि काट डाले ॥ २६ ॥ फिर इन्द्रने जैसे पर्वतोपर आक्रमण किया था वैसे ही उन्होने एक वज्रतुल्य महाबाणसे रावणको वेध डाला ॥ २७ ॥ भगवान् रामका बाण लगनेसे वह वीर विचलित हो गया, उसे मूर्च्छा आ गयी और उसके हाथसे धनुष छूट गया। उसकी ऐसी दशा देखकर रघुनाथजीने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका सूर्यसदृश प्रकाशमान मुकुट काट डाला और कहा—'रावण ! तुम मेरे बाणसे पीडित हो, अत मै तुम्हे आज्ञा देता हूँ, इस समय तुम जाओ ॥ २८-२९ ॥ आज लङ्कामे जाकर विश्राम करो, फिर कल मेरा पराक्रम देखना।'

तब श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे विद्ध होनेके कारण सारा दर्प चूर्ण हो जानेपर रावणने लज्जित और व्याकुल हो लङ्कामे प्रवेश किया। इधर रामचन्द्रजी भी लक्ष्मणजीको मूर्च्छित-अवस्थामे पृथिवीपर पडे देख मनुष्यभावका आश्रय ले लीलासे शोक करने लगे और हनुमान्‌जीसे बोले—'वत्स ! पहली तरह ही (द्रोणाचलसे) महौषधि लाकर लक्ष्मण और वानरोको जीवित करो।' रघुनाथजीके इस प्रकार कहनेपर महाकपि हनुमान्‌जी 'बहुत अच्छा' कह एक क्षणमे ही महासागरको पार कर वायुवेगसे चले। इसी समय रावणके गुप्तचरोने उससे कहा— ॥ ३०—३४ ॥ "स्वामिन् ! रामने हनुमान्‌को क्षीर-समुद्रपर भेजा है और वह लक्ष्मणको जीवित करनेके लिये महौषधि लेने गया है" ॥ ३५ ॥ उनके ये वचन सुनकर राक्षसराज अति चिन्तातुर हुआ और उसी क्षण रात्रिमे ही अकेला कालनेमिके घर गया ॥ ३६ ॥

रावणको घर आया देख कालनेमिको बडा आश्चर्य हुआ, वह उसे अर्घ्यादि दे उसके सामने खडा हो गया और अति भयभीत हो हाथ जोडकर बोला ॥ ३७ ॥ 'राज-राजेश्वर ! आज किस निमित्तसे आना हुआ ? कहिये, मै आपकी क्या सेवा करूँ ?'' वब रावणने अति दु खित होकर कालनेमिसे कहा ॥ ३८ ॥ "आज कालक्रमसे मुझे भी यह कष्ट उपस्थित हो गया। मेरी शक्तिसे आहत

त जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गत ।
यथा तस्य भवेद्विघ्नस्तथा कुरु महामते ॥ ४० ॥

मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम् ।
कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे ॥ ४१ ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम् ।
रावणेश वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वत ॥ ४२ ॥

प्रिय ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम् ।
मारीचस्य यथारण्ये पुराभून्मृगरूपिण ॥ ४३ ॥

तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन ।
हता पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते ॥ ४४ ॥

घातयित्वासुरकुल जीवितेनापि किं तव ।
राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना ॥ ४५ ॥

सीता प्रयच्छ रामाय राज्य देहि विभीषणे ।
वन याहि महाबाहो रम्य मुनिगणाश्रयम् ॥ ४६ ॥

स्नात्वा प्रात शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिका क्रिया ।
तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रह ॥ ४७ ॥

विसृज्य सर्वत सङ्गमितरान्विषयान्बहि ।
बहि प्रवृत्ताक्षगण शनै प्रत्यक् प्रवाहय ॥ ४८ ॥

प्रकृतेर्भिन्नमात्मान विचारय सदानघ ।
चराचर जगत्कृत्स्न देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥ ४९ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त दृश्यते श्रूयते च यत् ।
सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥ ५० ॥

सर्गस्थितिविनाशाना जगद्वृक्षस्य कारणम् ।
लोहितश्वेतकृष्णादिप्रजा सृजति सर्वदा ॥ ५१ ॥

कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिसातृष्णादिकन्यका ।
मोहयन्त्यनिश देवमात्मान स्वैर्गुणैर्विभुम् ॥ ५२ ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे ।
आरोप्य स्ववश कृत्वा तेन क्रीडति सर्वदा ॥ ५३ ॥

होकर वीर लक्ष्मण पृथिवीपर गिर पडा है ॥ ३९ ॥ उसे जीवित करनेके लिये हनुमान् ओषधि लेने गया है। हे महामते ! तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे उसके लानेमें विघ्न खडा हो जाय ॥ ४० ॥ तुम मायासे मुनि-वेष बनाकर हनुमान्‌को मोहित करो जिससे (उस ओषधिके प्रयोगका) समय निकल जाय। यह कार्य करके फिर अपने घर लौट आना'' ॥ ४१ ॥

रावणके वचन सुनकर कालनेमिने उससे कहा— 'महाराज रावण ! मेरी बात सुनिये और उसे यथार्थ समझकर धारण कीजिये ॥ ४२ ॥ मै आपका प्रिय करूँगा ही, उसके लिये मैं अपने प्राणोकी परवा नही करता, (तथापि उससे क्या लाभ होगा ?) हे दशानन ! इसमे सन्देह नही जो कुछ दण्डकारण्यमे मृगरूपधारी मारीचका हुआ था वही दशा मेरी भी होगी। देखिये, आपके पुत्र, पौत्र और अनेको सगे-सम्बन्धी राक्षसलोग मारे गये ॥ ४३-४४ ॥ इस प्रकार राक्षस-वशका नाश कराकर आपके जीवन, राज्य, सीता अथवा इस जड देहसे भी क्या लाभ है ? ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! आप रामचन्द्रजीको सीता और विभीषणको राज्य देकर मुनिगणसेवित सुरम्य तपोवनको जाइये ॥ ४६ ॥ वहाँ प्रात काल शुद्ध जलमें स्नानकर तथा सन्ध्योपासनादि नित्य-कर्मोसे निवृत्त हो एकान्त देशमे सुखमय आसनसे बैठिये ॥ ४७ ॥ और सब ओरसे नि सङ्ग हो बाह्य विषयोको छोड अपनी बाह्य वृत्तिवाली इन्द्रियोको धीरे-धीरे अन्तर्मुख कीजिये ॥ ४८ ॥ हे अनघ ! अपने आत्माको सदा प्रकृतिसे भिन्न विचारिये। देह, बुद्धि और इन्द्रियादिसे युक्त सम्पूर्ण चराचर जगत् अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब (कीटविशेष) पर्यन्त जो कुछ दिखायी या सुनायी देता है वह सब प्रकृति है और वही माया भी कहलाती है ॥ ४९-५० ॥ वही सर्वदा ससाररूपी वृक्षकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकी कारणरूप श्वेत (सात्त्विक), लोहित (राजस) और कृष्णवर्ण (तामस) प्रजा उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ तथा वही अपने गुणोसे अहर्निश सर्वव्यापक आत्मदेवको मोहितकर काम-क्रोधादि पुत्रो और हिंसा-तृष्णादि कन्याओको उत्पन्न करती है ॥ ५२ ॥ वह कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि अपने गुणोको अपने प्रभु आत्मामे आरोपित कर उसे अपने वशीभूत कर उससे सदा

शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्त पश्यतीव सदा बहि ।
विस्मृत्य च स्वमात्मान मायागुणविमोहित ॥ ५४ ॥

यदा सद्गुरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा ।
निवृत्तदृष्टिरात्मान पश्यत्येव सदा स्फुटम् ॥ ५५ ॥

जीवन्मुक्त सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणै ।
त्वमप्येव सदात्मान विचार्य नियतेन्द्रिय ॥ ५६ ॥

प्रकृतेरन्यमात्मान ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि ।
ध्यातु यद्यसमर्थोऽसि सगुण देवमाश्रय ॥ ५७ ॥

हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते ।
मृदुश्लक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह सस्थितम् ॥ ५८ ॥

वीरासन विशालाक्ष विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ।
किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥

नूपुरै कटकैर्भान्त तथैव वनमालया ।
लक्ष्मणेन धनुर्द्वन्द्वकरेण परिसेवितम् ॥ ६० ॥

एव ध्यात्वा सदात्मान राम सर्वहृदि स्थितम् ।
भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र सशय ॥ ६१ ॥

शृणु वै चरित तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधी ।
एव चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ।
क्षणादेव विनश्यन्ति यथाग्नेस्तूलराशय ॥ ६२ ॥

भजस्व राम परिपूर्णमेक
विहाय वैर निजभक्तियुक्त ।
हृदा सदा भावितभावरूप-
मनामरूप पुरुष पुराणम् ॥ ६३ ॥

खेलती रहती है ॥ ५३ ॥ जिससे युक्त होकर आत्मा मायिक गुणोसे मोहित होकर अपने स्वरूपको भूल जाता है, और नित्य शुद्ध होता हुआ भी सदा बाह्य विषयोको देखने लगता है ॥ ५४ ॥ जिस समय सद्गुरुका साक्षात्कार होता है और वे उसे निर्मल ज्ञानदृष्टिसे जाग्रत् करते है उस समय वह बाह्य विषयोसे अपनी दृष्टि हटाकर अपने-आपको ही स्पष्ट देखता है ॥ ५५ ॥ और फिर यह देहधारी जीव जीवन्मुक्त होकर प्राकृत गुणोसे छूट जाता है ।

हे रावण ! आप सयतेन्द्रिय होकर इसी प्रकार अपने वास्तविक आत्मस्वरूपका चिन्तन कीजिये ॥ ५६ ॥ इससे आत्माको प्रकृतिसे भिन्न जानकर आप मुक्त हो जायँगे । और यदि आप इस प्रकार ध्यान करनेमे असमर्थ हो तो सगुण-भगवान्का आश्रय लीजिये ॥ ५७ ॥ (उस सगुण ध्यानकी विधि इस प्रकार है) हृदयकमलकी कर्णिकाओमे मणिगणजटित अति मृदुल और स्वच्छ सुवर्ण-सिहासनपर जो जानकीजीसहित विराजमान है, जो वीरासनसे बैठे है, जिनके नेत्र अति विशाल और वस्त्र विद्युल्लताके समान तेजोमय हैं तथा जो किरीट, हार, केयूर और कौस्तुभमणि आदि आभूषणोसे सुशोभित है, नूपुर, कटक और वनमाला आदिसे जिनकी अपूर्व शोभा हो रही है तथा लक्ष्मणजी अपने हाथोमे दो धनुष (एक अपना और एक प्रभु रामका) लिये जिनकी सेवामे खडे है, उन सबके हृदयमे विराजमान अपने आत्मरूप भगवान् रामका इस प्रकार सर्वदा अत्यन्त भक्तिपूर्वक ध्यान करनेसे आप मुक्त हो जायँगे—इसमे सन्देह नही ॥ ५८—६१ ॥ नित्य अनन्यबुद्धि होकर उनके भक्तोके मुखारविन्दसे उनके पवित्र चरित्र सुनिये । ऐसा करनेसे आपके पूर्वकृत महान् पाप भी एक क्षणमे ही इस प्रकार भस्म हो जायँगे जैसे अग्निसे रूईका ढेर भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥ जो सर्वत्र परिपूर्ण है उन अद्वितीय भगवान् रामके साथ वैर छोडकर आत्मप्रेमपूर्वक उन नाम-रूपरहित पुराणपुरुषकी हृदयमे सगुणभावसे भावना कर उनका सर्वदा भजन कीजिये' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

त जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गत ।
यथा तस्य भवेद्विघ्नस्तथा कुरु महामते ॥ ४० ॥

मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम् ।
कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे ॥ ४१ ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम् ।
रावणेश वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वत ॥ ४२ ॥

प्रिय ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम् ।
मारीचस्य यथारण्ये पुराभून्मृगरूपिण ॥ ४३ ॥

तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन ।
हता पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते ॥ ४४ ॥

घातयित्वासुरकुल जीवितेनापि किं तव ।
राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना ॥ ४५ ॥

सीता प्रयच्छ रामाय राज्य देहि विभीषणे ।
वन याहि महाबाहो रम्य मुनिगणाश्रयम् ॥ ४६ ॥

स्नात्वा प्रात शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिका क्रिया ।
तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रह ॥ ४७ ॥

विसृज्य सर्वत सङ्गमितरान्विषयान्बहि ।
बहि प्रवृत्ताक्षगण शनै प्रत्यक् प्रवाहय ॥ ४८ ॥

प्रकृतेर्भिन्नमात्मान विचारय सदानघ ।
चराचर जगत्कृत्स्न देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥ ४९ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त दृश्यते श्रूयते च यत् ।
सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥ ५० ॥

सर्गस्थितिविनाशाना जगद्वृक्षस्य कारणम् ।
लोहितश्वेतकृष्णादिप्रजा सृजति सर्वदा ॥ ५१ ॥

कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिसातृष्णादिकन्यका ।
मोहयन्त्यनिश देवमात्मान स्वैर्गुणैर्विभुम् ॥ ५२ ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे ।
आरोप्य स्ववश कृत्वा तेन क्रीडति सर्वदा ॥ ५३ ॥

होकर वीर लक्ष्मण पृथिवीपर गिर पडा है ॥ ३९ ॥ उसे जीवित करनेके लिये हनुमान् ओषधि लेने गया है। हे महामते ! तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे उसके लानेमे विघ्न खडा हो जाय ॥ ४० ॥ तुम मायासे मुनि-वेष बनाकर हनुमान्‌को मोहित करो जिससे (उस ओषधिके प्रयोगका) समय निकल जाय। यह कार्य करके फिर अपने घर लौट आना'' ॥ ४१ ॥

रावणके वचन सुनकर कालनेमिने उससे कहा— 'महाराज रावण ! मेरी बात सुनिये और उसे यथार्थ समझकर धारण कीजिये ॥ ४२ ॥ मै आपका प्रिय करूँगा ही, उसके लिये मै अपने प्राणोकी परवा नहीं करता, (तथापि उससे क्या लाभ होगा ?) हे दशानन ! इसमे सन्देह नही जो कुछ दण्डकारण्यमे मृगरूपधारी मारीचका हुआ था वही दशा मेरी भी होगी। देखिये, आपके पुत्र, पौत्र और अनेको सगे-सम्बन्धी राक्षसलोग मारे गये ॥ ४३-४४ ॥ इस प्रकार राक्षस-वशका नाश कराकर आपके जीवन, राज्य, सीता अथवा इस जड देहसे भी क्या लाभ है ? ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! आप रामचन्द्रजीको सीता और विभीषणको राज्य देकर मुनिगणसेवित सुरम्य तपोवनको जाइये ॥ ४६ ॥ वहाँ प्रात काल शुद्ध जलमें स्नानकर तथा सन्ध्योपासनादि नित्य-कर्मोसे निवृत्त हो एकान्त देशमें सुखमय आसनसे बैठिये ॥ ४७ ॥ और सब ओरसे नि सङ्ग हो बाह्य विषयोको छोड अपनी बाह्य वृत्तिवाली इन्द्रियोको धीरे-धीरे अन्तर्मुख कीजिये ॥ ४८ ॥ हे अनघ ! अपने आत्माको सदा प्रकृतिसे भिन्न विचारिये। देह, बुद्धि और इन्द्रियादिसे युक्त सम्पूर्ण चराचर जगत् अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब (कीटविशेष) पर्यन्त जो कुछ दिखायी या सुनायी देता है वह सब प्रकृति है और वही माया भी कहलाती है ॥ ४९-५० ॥ वही सर्वदा ससाररूपी वृक्षकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकी कारणरूप श्वेत (सात्त्विक), लोहित (राजस) और कृष्णवर्ण (तामस) प्रजा उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ तथा वही अपने गुणोसे अहर्निश सर्वव्यापक आत्मदेवको मोहितकर काम-क्रोधादि पुत्रो और हिंसा-तृष्णादि कन्याओको उत्पन्न करती है ॥ ५२ ॥ वह कतृत्व और भोक्तृत्व आदि अपने गुणोको अपने प्रभु आत्मामें आरोपित कर उसे अपने वशीभूत कर उससे सदा

शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्त पश्यतीव सदा बहि ।
विस्मृत्य च स्वमात्मान मायागुणविमोहित ॥ ५४ ॥

यदा सद्गुरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा ।
निवृत्तदृष्टिरात्मान पश्यत्येव सदा स्फुटम् ॥ ५५ ॥

जीवन्मुक्त सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणै ।
त्वमप्येव सदात्मान विचार्य नियतेन्द्रिय ॥ ५६ ॥

प्रकृतेरन्यमात्मान ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि ।
ध्यातु यद्यसमर्थोऽसि सगुण देवमाश्रय ॥ ५७ ॥

हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते ।
मृदुश्लक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह सस्थितम् ॥ ५८ ॥

वीरासन विशालाक्ष विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ।
किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥

नूपुरै कटकैर्भान्त तथैव वनमालया ।
लक्ष्मणेन धनुर्द्वन्द्वकरेण परिसेवितम् ॥ ६० ॥

एव ध्यात्वा सदात्मान राम सर्वहृदि स्थितम् ।
भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र सशय ॥ ६१ ॥

शृणु वै चरित तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधी ।
एव चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ।
क्षणादेव विनश्यन्ति यथाग्नेस्तूलराशय ॥ ६२ ॥

भजस्व राम परिपूर्णमेक
विहाय वैर निजभक्तियुक्त ।
हृदा सदा भावितभावरूप-
मनामरूप पुरुष पुराणम् ॥ ६३ ॥

खेलती रहती है ॥ ५३ ॥ जिससे युक्त होकर आत्मा मायिक गुणोसे मोहित होकर अपने स्वरूपको भूल जाता है, और नित्य शुद्ध होता हुआ भी सदा बाह्य विषयोको देखने लगता है ॥ ५४ ॥ जिस समय सद्गुरुका साक्षात्कार होता है और वे उसे निर्मल ज्ञानदृष्टिसे जाग्रत् करते है उस समय वह बाह्य विषयोसे अपनी दृष्टि हटाकर अपने-आपको ही स्पष्ट देखता है ॥ ५५ ॥ और फिर यह देहधारी जीव जीवन्मुक्त होकर प्राकृत गुणोसे छूट जाता है ।

हे रावण ! आप सयतेन्द्रिय होकर इसी प्रकार अपने वास्तविक आत्मस्वरूपका चिन्तन कीजिये ॥ ५६ ॥ इससे आत्माको प्रकृतिसे भिन्न जानकर आप मुक्त हो जायँगे । और यदि आप इस प्रकार ध्यान करनेमे असमर्थ हो तो सगुण-भगवान्का आश्रय लीजिये ॥ ५७ ॥ (उस सगुण ध्यानकी विधि इस प्रकार है) हृदयकमलकी कर्णिकाओमे मणिगणजटित अति मृदुल और स्वच्छ सुवर्ण-सिहासनपर जो जानकीजीसहित विराजमान है, जो वीरासनसे बैठे है, जिनके नेत्र अति विशाल और वस्त्र विद्युल्लताके समान तेजोमय है तथा जो किरीट, हार, केयूर और कौस्तुभमणि आदि आभूषणोसे सुशोभित है, नूपुर, कटक और वनमाला आदिसे जिनकी अपूर्व शोभा हो रही है तथा लक्ष्मणजी अपने हाथोमे दो धनुष (एक अपना और एक प्रभु रामका) लिये जिनकी सेवामे खडे है, उन सबके हृदयमे विराजमान अपने आत्मरूप भगवान् रामका इस प्रकार सर्वदा अत्यन्त भक्तिपूर्वक ध्यान करनेसे आप मुक्त हो जायँगे—इसमे सन्देह नही ॥ ५८—६१ ॥ नित्य अनन्यबुद्धि होकर उनके भक्तोके मुखारविन्दसे उनके पवित्र चरित्र सुनिये । ऐसा करनेसे आपके पूर्वकृत महान् पाप भी एक क्षणमे ही इस प्रकार भस्म हो जायँगे जैसे अग्निसे रूईका ढेर भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥ जो सर्वत्र परिपूर्ण है उन अद्वितीय भगवान् रामके साथ वैर छोडकर आत्मप्रेमपूर्वक उन नाम-रूपरहित पुराणपुरुषकी हृदयमे सगुणभावसे भावना कर उनका सर्वदा भजन कीजिये' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

कालनेमिका कपट, हनुमान्‌जीद्वारा उसका वध, लक्ष्मणजीका सचेत होना और रावणका कुम्भकर्णको जगाना

श्रीमहादेव उवाच

कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम्।
जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत्॥ १ ॥

निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम्।
परैः किञ्चिद्‌गृहीत्वा त्वं भाषसे रामकिंकरः॥ २ ॥

कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रुधा।
न रोचते मे वचनं यदि गत्वा करोमि तत्॥ ३ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं कालनेमिर्महासुरः।
नोदितो रावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात्॥ ४ ॥

स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत्।
तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः॥ ५ ॥

गच्छतो मार्गमासाद्य वायुसूनोर्महात्मनः।
ततो गत्वा ददर्शाथ हनूमानाश्रमं शुभम्॥ ६ ॥

चिन्तयामास मनसा श्रीमान्पवननन्दनः।
पुरा न दृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम्॥ ७ ॥

मार्गो विभ्रंशितो वा मे भ्रमो वा चित्तसम्भवः।
यद्वाविश्याश्रमपदं दृष्ट्वा मुनिमशेषतः॥ ८ ॥

पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम्।
इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सर्वतो योजनायतम्॥ ९ ॥

आश्रमं कदलीशालखर्जूरपनसादिभिः।
समावृतं पक्वफलैर्नम्रशाखैश्च पादपैः॥ १० ॥

वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मललक्षणम्।
तस्मिन्महाश्रमे रम्ये कालनेमिः स राक्षसः॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! जैसे अग्निसे तपाया हुआ घृत जल डालनेसे छुनछुनाने लगता है वैसे ही कालनेमिके ये अमृततुल्य वचन सुनकर रावण जल उठा और क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये॥ १॥ वह कहने लगा—"अरे! मालूम होता है तू शत्रुसे कुछ लेकर ही इस प्रकार रामके दासकी भाँति बातें बनाता है। याद रख, मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले तुझ दुष्टको मैं अभी मार डालूँगा"॥ २॥ तब कालनेमिने रावणसे कहा—"देव! क्रोधकी क्या बात है? यदि आपको मेरा कथन अच्छा नहीं लगता तो मैं अभी जाकर (आप जैसा कहते हैं) वही करता हूँ"॥ ३॥ इतना कह महादैत्य कालनेमि रावणकी ही प्रेरणासे हनुमान्‌जीके कार्यमें विघ्न करनेके लिये वहाँसे तुरत चल दिया॥ ४॥

उसने हिमालयकी तराईमें पहुँचकर उधरसे जाते हुए वायुपुत्र महात्मा हनुमान्‌के मार्गमें एक तपोवन बनाया और वहाँ वह दुष्ट स्वयं मुनिवेष बनाकर शिष्यवर्गसे घिरकर बैठ गया।

जिस समय हनुमान्‌जी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने वह सुन्दर आश्रम देखा॥ ५-६॥ उसे देखकर श्रीमान् पवननन्दन मन-ही-मन सोचने लगे, 'मैंने पहले तो यह उत्तम मुनिमण्डल देखा नहीं था॥ ७॥ क्या मैं मार्ग भूल गया हूँ या मेरे चित्तमें कोई भ्रम हो गया है? अथवा चलो, इस आश्रममें चलकर सब मुनीश्वरोंका दर्शन करूँ और जल पीऊँ, तदुपरान्त पर्वतश्रेष्ठ द्रोणाचलपर चलूँगा।' ऐसा विचार वे उस आश्रममें गये, वह सब ओरसे एक योजन विस्तारवाला था तथा उसमें सब ओर पके हुए फलोंसे जिनकी शाखाएँ झुकी हुई हैं ऐसे कदली, शाल, खजूर और कटहल आदिके वृक्ष लगे हुए थे॥ ८—१०॥ वह शुद्ध और निर्मल आश्रम वैरभावसे सर्वथा रहित था। उस अति सुरम्य महाश्रममें राक्षस

इन्द्रयोग समास्थाय चकार शिवपूजनम् ।
हनूमानभिवाद्याह गौरवेण महासुरम् ॥ १२ ॥

भगवन् रामदूतोऽह हनूमान्नाम नामत ।
रामकार्येण महता क्षीराब्धि गन्तुमुद्यत ॥ १३ ॥

तृषा मा बाधते ब्रह्मन्नुदक कुत्र विद्यते ।
यथेच्छ पातुमिच्छामि कथ्यता मे मुनीश्वर ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा मारुतेर्वाक्य कालनेमिस्तमब्रवीत् ।
कमण्डलुगत तोय मम त्व पातुमर्हसि ॥ १५ ॥

भुङ्क्ष्व चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम् ।
निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा ॥ १६ ॥

भूत भव्य भविष्य च जानामि तपसा स्वयम् ।
उत्थितो लक्ष्मण सर्वे वानरा रामवीक्षिता ॥ १७ ॥

तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे ।
न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम् ॥ १८ ॥

तथेत्याज्ञापयामास वटु मायाविकल्पितम् ।
वटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ॥ १९ ॥

निमील्य चाक्षिणी तोय पीत्वागच्छ ममान्तिकम् ।
उपदेक्ष्यामि ते मन्त्र येन द्रक्ष्यसि चौषधी. ॥ २० ॥

तथेति दर्शित शीघ्र वटुना सलिलाशयम् ।
प्रविश्य हनुमास्तोयमपिबन्मीलितेक्षण ॥ २१ ॥

ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् ।
अग्रसत्त महावेगान्मारुतिं घोररूपिणी ॥ २२ ॥

ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा ।
दारयामास हस्ताभ्या वदन सा ममार ह ॥ २३ ॥

ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपधराङ्गना ।
धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

कालनेमि इन्द्रजाल विद्याका आश्रय कर शिवजीका पूजन कर रहा था। हनुमान्‌जीने उस महादैत्यको बडे गौरवसे नमस्कार कर कहा— ॥ ११-१२ ॥ "भगवन्! मै भगवान् रामका दूत हूँ, मेरा नाम हनुमान् है और मै श्रीरामचन्द्रजीके एक महान् कार्यसे क्षीरसागरको जा रहा हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्मन्! मुझे बहुत प्यास लगी हुई है, मै खूब जल पीना चाहता हूँ। हे मुनीश्वर! कृपया बतलाइये यहाँ जल कहाँ है?" ॥ १४ ॥

हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर कालनेमिने कहा— "तुम मेरे कमण्डलुका जल पी सकते हो ॥ १५ ॥ यहाँ ये फल मौजूद है, इन्हे खाओ और फिर सुखपूर्वक यहाँ विश्राम लेकर कुछ सो लो, ऐसी जल्दी मत करो ॥ १६ ॥ मै अपने तपोबलसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो कालोकी बात जानता हूँ। इस समय रामचन्द्रजीके देखनेसे ही लक्ष्मणजी और समस्त वानरगण सचेत होकर उठ बैठे है" ॥ १७ ॥ यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—"मुझे बडे जोरकी प्यास लगी हुई है, इस कमण्डलुके जलसे वह शान्त नही हो सकती, अत मुझे जलाशय ही दिखला दीजिये" ॥ १८ ॥ तब 'अच्छी बात है' ऐसा कहकर उसने एक माया-कल्पित ब्रह्मचारीको आज्ञा दी, "ब्रह्मचारिन्! हनुमान्‌जीको वह विस्तृत जलाशय दिखला दो" ॥ १९ ॥ (फिर हनुमान्‌जीसे बोला—) "देखो, तुम आँखे मूँदकर जल पीना और फिर तुरत मेरे पास चले आना। मै तुम्हे एक मन्त्रका उपदेश करूँगा, जिससे तुम ओषधिको देख सकोगे" ॥ २० ॥

तब बटुने 'जो आज्ञा' कह तुरत ही जलाशय दिखला दिया। उसमे घुसकर हनुमान्‌जी आँखे मूँदकर जल पीने लगे ॥ २१ ॥ इतनेहीमे वहाँ एक महामायाविनी घोररूपिणी मकरी आकर बडी शीघ्रतासे महाकपि हनुमान्‌जीको निगलने लगी ॥ २२ ॥ हनुमान्‌जीने उस मकरीको अपनेको निगलते देख अति क्रुद्ध हो अपने हाथोसे उसका मुख फाड डाला, जिससे वह तत्काल मर गयी ॥ २३ ॥

इसी समय आकाशमे एक दिव्यरूपधारिणी स्त्री दिखलायी दी, उसका नाम धान्यमाली था। वह

त्वत्प्रसादादह शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर।
शप्ताह मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे॥ २५॥

आश्रमे यस्तु ते दृष्ट कालनेमिर्महासुर ।
रावणप्रहितो मार्गे विघ्न कर्तु तवानघ॥ २६॥

मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसक ।
जहि दुष्ट गच्छ शीघ्र द्रोणाचलमनुत्तमम्॥ २७॥

गच्छाम्यह ब्रह्मलोक त्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा।
इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्ग हनूमानप्यथाश्रमम्॥ २८॥

आगत त समालोक्य कालनेमिरभाषत।
किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम॥ २९॥

गृहाण मत्तो मन्त्रास्त्व देहि मे गुरुदक्षिणाम्।
इत्युक्तो हनुमान्मुष्टि दृढ बद्ध्वाह राक्षसम्॥ ३०॥

गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम्।
विसृज्य मुनिवेष स कालनेमिर्महासुर ॥ ३१॥

युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानत ।
महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिना रिपु ॥ ३२॥

जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार स ।
तत क्षीरनिधि गत्वा दृष्ट्वा द्रोण महागिरिम्॥ ३३॥

अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वर ।
गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम्॥ ३४॥

उवाच हनुमान् राममानीतोऽय महागिरि ।
यद्युक्त कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते॥ ३५॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्य राम सन्तुष्टमानस ।
गृहीत्वा चौषधी शीघ्र सुषेणेन महामति ॥ ३६॥

चिकित्सा कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने।
तत सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मण ॥ ३७॥

हनुमान्जीसे बोली— ॥ २४॥ "हे कपीश्वर! आपकी कृपासे मै आज शापमुक्त हो गयी। पहले मै एक अप्सरा थी। किसी कारणवश मुझे एक मुनीश्वरने शाप दिया था। (इसीसे मै मकरी हो गयी थी) ॥ २५॥ इस आश्रममे आपने जिस पुरुषको देखा है, वह कालनेमि नामक महादैत्य है। हे अनघ! इसे रावणने आपके मार्गमे विघ्न डालनेके लिये भेजा है॥ २६॥ यह मुनिवेष धारण करनेवाला वस्तुत कोई मुनि नही है, बल्कि ब्राह्मणोकी हिंसा करनेवाला है। इस दुष्टको शीघ्र ही मारकर आप पर्वतश्रेष्ठ द्रोणाचलको जाइये॥ २७॥ मै आपके स्पर्शसे निष्पाप होकर अब ब्रह्मलोकको जाती हूँ।" ऐसा कह वह स्वर्गलोकको चली गयी और हनुमान्जी भी आश्रमको चले॥ २८॥

हनुमान्जीको आये देख कालनेमिने कहा—"हे वानरश्रेष्ठ! अब बहुत विलम्ब करनेसे तुम्हे क्या लाभ है? ॥ २९॥ लो, मुझसे मन्त्र ग्रहण करो और मुझे गुरुदक्षिणा दो।" उसके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्जीने अपनी मुट्ठी कसकर बाँधी और उस राक्षससे कहा— ॥ ३०॥ "लो दक्षिणा तो यह लो"—ऐसा कह उसके एक मुक्का मारा। उसके लगते ही महादैत्य कालनेमि मुनिवेष त्याग कर नाना प्रकारकी मायाओसे पवनपुत्रके साथ लडने लगा। किन्तु हनुमान्जी तो महामायावी (मायापति भगवान् राम) के दूत और इन तुच्छ मायावी राक्षसोके शत्रु थे, (उनपर इन तुच्छ मायाओका क्या प्रभाव हो सकता था?) ॥ ३१-३२॥ उन्होने उसके सिरमे एक मुक्का मारा जिससे मस्तक फट जानेके कारण वह तुरत मर गया।

तदनन्तर वे क्षीर-समुद्रपर पहुँचे और महापर्वत द्रोणाचलको देखा। किन्तु उन्हे वह ओषधि न मिली। अत फौरन ही उस पर्वतको उखाड लिया और उसे वायुवेगसे रामचन्द्रजीके पास ले जाकर उनसे कहा—"हे देवेश्वर! मै इस महापर्वतको ले आया हूँ। आप जो उचित समझे शीघ्र ही करे, इस कार्यमे विलम्ब करना ठीक नहीं है"॥ ३३—३५॥

हनुमान्जीका यह वचन सुनकर भगवान् राम अति प्रसन्न हुए और उन महामति प्रभुने तुरत ही उस पर्वतसे ओषधि लेकर सुषेणसे महात्मा लक्ष्मणकी चिकित्सा करायी। तब नीदसे उठे हुएके समान लक्ष्मणजीने सचेत

तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन ।
इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघव ॥ ३८ ॥

मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे ।
निरामय प्रपश्यामि लक्ष्मण भ्रातर मम ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा वानरै सार्ध सुग्रीवेण समन्वित ।
विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थित ॥ ४० ॥

पाषाणै पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानरा ।
युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययु सर्वे युयुत्सव ॥ ४१ ॥

रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुर ।
मातङ्ग इव सिहेन गरुडेनेव पन्नग ॥ ४२ ॥

अभिभूतोऽगमद्राजा राघवेण महात्मना ।
सिहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥

मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्व पितामह ।
मानुषो हि न मा हन्तु शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन ॥ ४४ ॥

ततो नारायण साक्षान्मानुषोऽभून्न सशय ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा मा हन्तु समुपस्थित ॥ ४५ ॥

अनरण्येन यत्पूर्व शप्तोऽह राक्षसेश्वर ।
उत्पत्स्यते च मद्वशे परमात्मा सनातन ॥ ४६ ॥

तेन त्व पुत्रपौत्रैश्च बान्धवैश्च समन्वित ।
हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मा दिव गत ॥ ४७ ॥

स एव राम सजातो मदर्थे मा हनिष्यति ।
कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावश गत ॥ ४८ ॥

त विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम् ।
इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्ण गत्वा तु यत्नत ॥ ४९ ॥

विबोध्य कुम्भश्रवण निन्यू रावणसन्निधिम् ।
नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि सस्थित ॥ ५० ॥

तमाह रावणो राजा भ्रातर दीनया गिरा ।
कुम्भकर्ण निबोध त्व महत्कष्टमुपस्थितम् ॥ ५१ ॥

होकर कहा— ॥ ३६-३७ ॥ "अरे दुष्ट दशानन ! खडा रह, खडा रह, तू जायगा कहाँ ? मै तुझे अभी मारे डालता हूँ ।" उन्हे इस प्रकार कहते देख रघुनाथजीने उनका सिर सूँघकर हनुमान्‌जीसे कहा—"हे वत्स ! हे महाकपे ! आज तुम्हारी कृपासे ही मे अपने भाई लक्ष्मणको सकुशल देख रहा हूँ" ॥ ३८-३९ ॥ हनुमान्‌जीसे इस प्रकार कह श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव और अन्यान्य वानरोके साथ विभीषणकी सम्मतिसे युद्धकी तैयारी करने लगे ॥ ४० ॥ तब युद्धके लिये अत्यन्त उत्सुक समस्त वानरगण पाषाण वृक्ष और पर्वतशिखर आदि लेकर लडनेके लिये चले ॥ ४१ ॥

इधर, भगवान् रामके बाणोसे विद्ध होकर महाराक्षस रावण ऐसा व्याकुल हो रहा था जैसे सिहसे हाथी और गरुडसे सर्प हो जाता है । अत वह राक्षसराज महात्मा रामसे परास्त होकर लङ्कापुरीमे गया और अपने राजसिहासनपर बैठकर राक्षसोसे इस प्रकार कहने लगा— ॥ ४२-४३ ॥ "पूर्वकालमे पितामह ब्रह्माजीने मेरी मृत्यु मनुष्यके ही हाथसे बतलायी थी, किन्तु ससारमे ऐसा कोई मनुष्य नही है जो मुझे मार सके ॥ ४४ ॥ अत इसमे सन्देह नही साक्षात् नारायणहीने मनुष्यका अवतार लिया है और वे दशरथकुमार राम होकर मुझे मारनेके लिये आये है ॥ ४५ ॥ पूर्वकालमे मुझे जो अनरण्यने शाप दिया था कि 'हे राक्षसराज ! मेरे वशमे सनातन पुरुष परमात्मा अवतार लेगे और उन्हीके हाथसे तुम नि सन्देह अपने पुत्र, पौत्र और बान्धवोके सहित मारे जाओगे' और ऐसा कहकर वह स्वर्गको चला गया था, सो उन्ही रामने मेरे लिये अवतार लिया है और ये मुझे अवश्य मारेगे । हमारा भाई कुम्भकर्ण तो बडा ही मूढ है, वह सदा ही निद्राके वशीभूत रहता है ॥ ४६—४८ ॥ तुम उस महावीरको जगाकर मेरे पास ले आओ ।" रावणके इस प्रकार कहनेपर वे महाकाय राक्षसगण तुरत ही गये और प्रयत्नपूर्वक कुम्भकर्णको जगाकर रावणके पास ले आये । वहाँ पहुँचनेपर वह राजाको प्रणामकर आसनपर बैठ गया ॥ ४९-५० ॥

तब राजा रावणने अत्यन्त दीन-वाणीसे उस अपने भाईसे कहा—"कुम्भकर्ण ! इस समय हमारे ऊपर बडा

त्वत्प्रसादादह शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर ।
शप्ताह मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥ २५ ॥

आश्रमे यस्तु ते दृष्ट कालनेमिर्महासुर ।
रावणप्रहितो मार्गे विघ्न कर्तु तवानघ ॥ २६ ॥

मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसक ।
जहि दुष्ट गच्छ शीघ्र द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ २७ ॥

गच्छाम्यह ब्रह्मलोक त्वत्स्पर्शाद्धुतकल्मषा ।
इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्ग हनूमानप्यथाश्रमम् ॥ २८ ॥

आगत त समालोक्य कालनेमिरभाषत ।
किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम ॥ २९ ॥

गृहाण मत्तो मन्त्रास्त्व देहि मे गुरुदक्षिणाम् ।
इत्युक्तो हनुमान्मुष्टि दृढ बद्ध्वाह राक्षसम् ॥ ३० ॥

गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम् ।
विसृज्य मुनिवेष स कालनेमिर्महासुर ॥ ३१ ॥

युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानत ।
महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिना रिपु ॥ ३२ ॥

जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार स ।
तत क्षीरनिधि गत्वा दृष्ट्वा द्रोण महागिरिम् ॥ ३३ ॥

अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वर ।
गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम् ॥ ३४ ॥

उवाच हनुमान् राममानीतोऽय महागिरि ।
यद्युक्त कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते ॥ ३५ ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्य राम सन्तुष्टमानस ।
गृहीत्वा चौषधी शीघ्र सुषेणेन महामति ॥ ३६ ॥

चिकित्सा कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने ।
तत सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मण ॥ ३७ ॥

हनुमान्‌जीसे बोली— ॥ २४ ॥ "हे कपीश्वर ! आपकी कृपासे मैं आज शापमुक्त हो गयी। पहले मै एक अप्सरा थी। किसी कारणवश मुझे एक मुनीश्वरने शाप दिया था। (इसीसे मै मकरी हो गयी थी) ॥ २५ ॥ इस आश्रममे आपने जिस पुरुषको देखा है, वह कालनेमि नामक महादैत्य है। हे अनघ ! इसे रावणने आपके मार्गमे विघ्न डालनेके लिये भेजा है॥ २६ ॥ यह मुनिवेष धारण करनेवाला वस्तुत कोई मुनि नही है, बल्कि ब्राह्मणोकी हिंसा करनेवाला है। इस दुष्टको शीघ्र ही मारकर आप पर्वतश्रेष्ठ द्रोणाचलको जाइये ॥ २७ ॥ मै आपके स्पर्शसे निष्पाप होकर अब ब्रह्मलोकको जाती हूँ।" ऐसा कह वह स्वर्गलोकको चली गयी और हनुमान्‌जी भी आश्रमको चले ॥ २८ ॥

हनुमान्‌जीको आये देख कालनेमिने कहा—"हे वानरश्रेष्ठ ! अब बहुत विलम्ब करनेसे तुम्हे क्या लाभ है ? ॥ २९ ॥ लो, मुझसे मन्त्र ग्रहण करो और मुझे गुरुदक्षिणा दो।" उसके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने अपनी मुट्ठी कसकर बाँधी और उस राक्षससे कहा— ॥ ३० ॥ "लो दक्षिणा तो यह लो"—ऐसा कह उसके एक मुक्का मारा। उसके लगते ही महादैत्य कालनेमि मुनिवेष त्याग कर नाना प्रकारकी मायाओसे पवनपुत्रके साथ लडने लगा। किन्तु हनुमान्‌जी तो महामायावी (मायापति भगवान् राम) के दूत और इन तुच्छ मायावी राक्षसोके शत्रु थे, (उनपर इन तुच्छ मायाओका क्या प्रभाव हो सकता था ?) ॥ ३१-३२ ॥ उन्होने उसके सिरमे एक मुक्का मारा जिससे मस्तक फट जानेके कारण वह तुरत मर गया।

तदनन्तर वे क्षीर-समुद्रपर पहुँचे और महापर्वत द्रोणाचलको देखा। किन्तु उन्हे वह ओषधि न मिली। अत फौरन ही उस पर्वतको उखाड लिया और उसे वायुवेगसे रामचन्द्रजीके पास ले जाकर उनसे कहा—"हे देवेश्वर ! मैं इस महापर्वतको ले आया हूँ। आप जो उचित समझे शीघ्र ही करे, इस कार्यमे विलम्ब करना ठीक नहीं है"॥ ३३—३५ ॥

हनुमान्‌जीका यह वचन सुनकर भगवान् राम अति प्रसन्न हुए और उन महामति प्रभुने तुरत ही उस पर्वतसे ओषधि लेकर सुषेणसे महात्मा लक्ष्मणकी चिकित्सा करायी। तब नीदसे उठे हुएके समान लक्ष्मणजीने सचेत

तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन ।
इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघव ॥ ३८ ॥

मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे ।
निरामय प्रपश्यामि लक्ष्मण भ्रातर मम ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा वानरै सार्ध सुग्रीवेण समन्वित ।
विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थित ॥ ४० ॥

पाषाणै पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानरा ।
युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययु सर्वे युयुत्सव ॥ ४१ ॥

रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुर ।
मातङ्ग इव सिहेन गरुडेनेव पन्नग ॥ ४२ ॥

अभिभूतोऽगमद्राजा राघवेण महात्मना ।
सिहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥

मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्व पितामह ।
मानुषो हि न मा हन्तु शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन ॥ ४४ ॥

ततो नारायण साक्षान्मानुषोऽभून्न सशय ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा मा हन्तु समुपस्थित ॥ ४५ ॥

अनरण्येन यत्पूर्व शप्तोऽह राक्षसेश्वर ।
उत्पत्स्यते च मद्वशे परमात्मा सनातन ॥ ४६ ॥

तेन त्व पुत्रपौत्रैश्च बान्धवैश्च समन्वित ।
हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मा दिव गत ॥ ४७ ॥

स एव राम सजातो मदर्थे मा हनिष्यति ।
कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावश गत ॥ ४८ ॥

त विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम् ।
इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्ण गत्वा तु यत्नत ॥ ४९ ॥

विबोध्य कुम्भश्रवण निन्यू रावणसन्निधिम् ।
नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि सस्थित ॥ ५० ॥

तमाह रावणो राजा भ्रातर दीनया गिरा ।
कुम्भकर्ण निबोध त्व महत्कष्टमुपस्थितम् ॥ ५१ ॥

होकर कहा— ॥ ३६-३७ ॥ "अरे दुष्ट दशानन ! खडा रह, खडा रह, तू जायगा कहाँ ? मै तुझे अभी मारे डालता हूँ ।" उन्हे इस प्रकार कहते देख रघुनाथजीने उनका सिर सूँघकर हनुमान्‌जीसे कहा—"हे वत्स ! हे महाकपे ! आज तुम्हारी कृपासे ही मे अपने भाई लक्ष्मणको सकुशल देख रहा हूँ" ॥ ३८-३९ ॥ हनुमान्‌जीसे इस प्रकार कह श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव और अन्यान्य वानरोके साथ विभीषणकी सम्मतिसे युद्धकी तैयारी करने लगे ॥ ४० ॥ तब युद्धके लिये अत्यन्त उत्सुक समस्त वानरगण पाषाण वृक्ष और पर्वतशिखर आदि लेकर लडनेके लिये चले ॥ ४१ ॥

इधर, भगवान् रामके बाणोसे विद्ध होकर महाराक्षस रावण ऐसा व्याकुल हो रहा था जैसे सिहसे हाथी और गरुडसे सर्प हो जाता है । अत वह राक्षसराज महात्मा रामसे परास्त होकर लङ्कापुरीमे गया और अपने राजसिहासनपर बैठकर राक्षसोसे इस प्रकार कहने लगा— ॥ ४२-४३ ॥ "पूर्वकालमे पितामह ब्रह्माजीने मेरी मृत्यु मनुष्यके ही हाथसे बतलायी थी, किन्तु ससारमे ऐसा कोई मनुष्य नही है जो मुझे मार सके ॥ ४४ ॥ अत इसमे सन्देह नही साक्षात् नारायणहीने मनुष्यका अवतार लिया है और वे दशरथकुमार राम होकर मुझे मारनेके लिये आये है ॥ ४५ ॥ पूर्वकालमे मुझे जो अनरण्यने शाप दिया था कि 'हे राक्षसराज ! मेरे वशमे सनातन पुरुष परमात्मा अवतार लेगे और उन्हीके हाथसे तुम नि सन्देह अपने पुत्र, पौत्र और बान्धवोके सहित मारे जाओगे' और ऐसा कहकर वह स्वर्गको चला गया था, सो उन्ही रामने मेरे लिये अवतार लिया है और ये मुझे अवश्य मारेगे । हमारा भाई कुम्भकर्ण तो बडा ही मूढ है, वह सदा ही निद्राके वशीभूत रहता है ॥ ४६—४८ ॥ तुम उस महावीरको जगाकर मेरे पास ले आओ ।" रावणके इस प्रकार कहनेपर वे महाकाय राक्षसगण तुरत ही गये और प्रयत्नपूर्वक कुम्भकर्णको जगाकर रावणके पास ले आये । वहाँ पहुँचनेपर वह राजाको प्रणामकर आसनपर बैठ गया ॥ ४९-५० ॥

तब राजा रावणने अत्यन्त दीन-वाणीसे उस अपने भाईसे कहा—"कुम्भकर्ण ! इस समय हमारे ऊपर बडा

त्वत्प्रसादादह शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर ।
शप्ताह मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥ २५ ॥

आश्रमे यस्तु ते दृष्ट कालनेमिर्महासुर ।
रावणप्रहितो मार्गे विघ्न कर्तु तवानघ ॥ २६ ॥

मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसक ।
जहि दुष्ट गच्छ शीघ्र द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ २७ ॥

गच्छाम्यह ब्रह्मलोक त्वत्स्पर्शाद्धुतकल्मषा ।
इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्ग हनूमानप्ययाश्रमम् ॥ २८ ॥

आगत त समालोक्य कालनेमिरभाषत ।
किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम ॥ २९ ॥

गृहाण मत्तो मन्त्रास्त्व देहि मे गुरुदक्षिणाम् ।
इत्युक्तो हनुमान्मुष्टि दृढ बद्ध्वाह राक्षसम् ॥ ३० ॥

गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम् ।
विसृज्य मुनिवेष स कालनेमिर्महासुर ॥ ३१ ॥

युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानत ।
महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिना रिपु ॥ ३२ ॥

जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार स ।
तत क्षीरनिधि गत्वा दृष्ट्वा द्रोण महागिरिम् ॥ ३३ ॥

अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वर ।
गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम् ॥ ३४ ॥

उवाच हनुमान् राममानीतोऽय महागिरि ।
यद्युक्त कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते ॥ ३५ ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्य राम सन्तुष्टमानस ।
गृहीत्वा चौषधी शीघ्र सुषेणेन महामति ॥ ३६ ॥

चिकित्सा कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने ।
तत सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मण ॥ ३७ ॥

हनुमान्‌जीसे बोली— ॥ २४ ॥ "हे कपीश्वर ! आपकी कृपासे मै आज शापमुक्त हो गयी। पहले मै एक अप्सरा थी। किसी कारणवश मुझे एक मुनीश्वरने शाप दिया था। (इसीसे मै मकरी हो गयी थी) ॥ २५ ॥ इस आश्रममे आपने जिस पुरुषको देखा है, वह कालनेमि नामक महादैत्य है। हे अनघ ! इसे रावणने आपके मार्गमे विघ्न डालनेके लिये भेजा है ॥ २६ ॥ यह मुनिवेष धारण करनेवाला वस्तुत कोई मुनि नही है, बल्कि ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाला है। इस दुष्टको शीघ्र ही मारकर आप पर्वतश्रेष्ठ द्रोणाचलको जाइये ॥ २७ ॥ मै आपके स्पर्शसे निष्पाप होकर अब ब्रह्मलोकको जाती हूँ।" ऐसा कह वह स्वर्गलोकको चली गयी और हनुमान्‌जी भी आश्रमको चले ॥ २८ ॥

हनुमान्‌जीको आये देख कालनेमिने कहा—"हे वानरश्रेष्ठ ! अब बहुत विलम्ब करनेसे तुम्हे क्या लाभ है ? ॥ २९ ॥ लो, मुझसे मन्त्र ग्रहण करो और मुझे गुरुदक्षिणा दो।" उसके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने अपनी मुट्ठी कसकर बाँधी और उस राक्षससे कहा— ॥ ३० ॥ "लो दक्षिणा तो यह लो"—ऐसा कह उसके एक मुक्का मारा। उसके लगते ही महादैत्य कालनेमि मुनिवेष त्याग कर नाना प्रकारकी मायाओसे पवनपुत्रके साथ लडने लगा। किन्तु हनुमान्‌जी तो महामायावी (मायापति भगवान् राम) के दूत और इन तुच्छ मायावी राक्षसोके शत्रु थे, (उनपर इन तुच्छ मायाओका क्या प्रभाव हो सकता था ?) ॥ ३१-३२ ॥ उन्होने उसके सिरमे एक मुक्का मारा जिससे मस्तक फट जानेके कारण वह तुरत मर गया।

तदनन्तर वे क्षीर-समुद्रपर पहुँचे और महापर्वत द्रोणाचलको देखा। किन्तु उन्हे वह ओषधि न मिली। अत फौरन ही उस पर्वतको उखाड लिया और उसे वायुवेगसे रामचन्द्रजीके पास ले जाकर उनसे कहा—"हे देवेश्वर ! मै इस महापर्वतको ले आया हूँ। आप जो उचित समझे शीघ्र ही करे, इस कार्यमे विलम्ब करना ठीक नहीं है"॥ ३३—३५ ॥

हनुमान्‌जीका यह वचन सुनकर भगवान् राम अति प्रसन्न हुए और उन महामति प्रभुने तुरत ही उस पर्वतसे ओषधि लेकर सुषेणसे महात्मा लक्ष्मणकी चिकित्सा करायी। तब नीदसे उठे हुएके समान लक्ष्मणजीने सचेत

तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन।
इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघव ॥ ३८ ॥

मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे।
निरामय प्रपश्यामि लक्ष्मण भ्रातर मम ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा वानरै सार्ध सुग्रीवेण समन्वित ।
विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थित ॥ ४० ॥

पाषाणै पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानरा ।
युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययु सर्वे युयुत्सव ॥ ४१ ॥

रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुर ।
मातङ्ग इव सिहेन गरुडेनेव पन्नग ॥ ४२ ॥

अभिभूतोऽगमद्राजा राघवेण महात्मना।
सिहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥

मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्व पितामह ।
मानुषो हि न मा हन्तु शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन ॥ ४४ ॥

ततो नारायण साक्षान्मानुषोऽभून्न सशय ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा मा हन्तु समुपस्थित ॥ ४५ ॥

अनरण्येन यत्पूर्व शप्तोऽह राक्षसेश्वर।
उत्पत्स्यते च मद्वशे परमात्मा सनातन ॥ ४६ ॥

तेन त्व पुत्रपौत्रैश्च बान्धवैश्च समन्वित ।
हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मा दिव गत ॥ ४७ ॥

स एव राम सजातो मदर्थे मा हनिष्यति।
कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावश गत ॥ ४८ ॥

त विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम्।
इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्ण गत्वा तु यत्नत ॥ ४९ ॥

विबोध्य कुम्भश्रवण निन्यू रावणसन्निधिम्।
नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि सस्थित ॥ ५० ॥

तमाह रावणो राजा भ्रातर दीनया गिरा।
कुम्भकर्ण निबोध त्व महत्कष्टमुपस्थितम् ॥ ५१ ॥

होकर कहा— ॥ ३६-३७ ॥ "अरे दुष्ट दशानन ! खडा रह, खडा रह, तू जायगा कहाॅ ? मै तुझे अभी मारे डालता हूँ।" उन्हे इस प्रकार कहते देख रघुनाथजीने उनका सिर सूँघकर हनुमान्‌जीसे कहा—"हे वत्स ! हे महाकपे ! आज तुम्हारी कृपासे ही मे अपने भाई लक्ष्मणको सकुशल देख रहा हूँ" ॥ ३८-३९ ॥ हनुमान्‌जीसे इस प्रकार कह श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव और अन्यान्य वानरोके साथ विभीषणकी सम्मतिसे युद्धकी तैयारी करने लगे ॥ ४० ॥ तब युद्धके लिये अत्यन्त उत्सुक समस्त वानरगण पाषाण वृक्ष और पर्वतशिखर आदि लेकर लडनेके लिये चले ॥ ४१ ॥

इधर, भगवान् रामके बाणोसे विद्ध होकर महाराक्षस रावण ऐसा व्याकुल हो रहा था जैसे सिहसे हाथी और गरुडसे सर्प हो जाता है। अत वह राक्षसराज महात्मा रामसे परास्त होकर लङ्कापुरीमे गया और अपने राजसिहासनपर बैठकर राक्षसोसे इस प्रकार कहने लगा— ॥ ४२-४३ ॥ "पूर्वकालमे पितामह ब्रह्माजीने मेरी मृत्यु मनुष्यके ही हाथसे बतलायी थी, किन्तु ससारमे ऐसा कोई मनुष्य नही है जो मुझे मार सके ॥ ४४ ॥ अत इसमे सन्देह नही साक्षात् नारायणहीने मनुष्यका अवतार लिया है और वे दशरथकुमार राम होकर मुझे मारनेके लिये आये है ॥ ४५ ॥ पूर्वकालमे मुझे जो अनरण्यने शाप दिया था कि 'हे राक्षसराज ! मेरे वशमे सनातन पुरुष परमात्मा अवतार लेगे और उन्हीके हाथसे तुम नि सन्देह अपने पुत्र, पौत्र और बान्धवोके सहित मारे जाओगे' और ऐसा कहकर वह स्वर्गको चला गया था, सो उन्ही रामने मेरे लिये अवतार लिया है और ये मुझे अवश्य मारेगे। हमारा भाई कुम्भकर्ण तो बडा ही मूढ है, वह सदा ही निद्राके वशीभूत रहता है ॥ ४६—४८ ॥ तुम उस महावीरको जगाकर मेरे पास ले आओ।" रावणके इस प्रकार कहनेपर वे महाकाय राक्षसगण तुरत ही गये और प्रयत्नपूर्वक कुम्भकर्णको जगाकर रावणके पास ले आये। वहाॅ पहुँचनेपर वह राजाको प्रणामकर आसनपर बैठ गया ॥ ४९-५० ॥

तब राजा रावणने अत्यन्त दीन-वाणीसे उस अपने भाईसे कहा—"कुम्भकर्ण ! इस समय हमारे ऊपर बडा

रामेण निहता शूरा पुत्रा पौत्राश्च बान्धवा ।
किं कर्तव्यमिदानीं मे मृत्युकाल उपस्थिते ॥ ५२ ॥

एष दाशरथी राम सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्र सबलस्तीर्त्वा मूल न परिकृन्तति ॥ ५३ ॥

ये राक्षसा मुख्यतमास्ते हता वानरैर्युधि ।
वानराणा क्षय युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥ ५४ ॥

नाशयस्व महाबाहो यदर्थ परिबोधित ।
भ्रातुरर्थे महासत्त्व कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ ५५ ॥

श्रुत्वा तद्रावणेन्द्रस्य वचन परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो जहासोच्चैर्वचन चेदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

पुरा मन्त्रविचारे ते गदित यन्मया नृप ।
तदद्य त्वामुपगत फल पापस्य कर्मण ॥ ५७ ॥

पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायण पर ।
सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे ॥ ५८ ॥

एकदाह वने सानौ विशालाया स्थितो निशि ।
दृष्टो मया मुनि साक्षान्नारदो दिव्यदर्शन ॥ ५९ ॥

तमब्रव महाभाग कुतो गन्तासि मे वद ।
इत्युक्तो नारद प्राह देवाना मन्त्रणे स्थित ॥ ६० ॥

तत्रोत्पन्नमुदन्त ते वक्ष्यामि शृणु तत्त्वत ।
युवाभ्या पीडिता देवा सर्वे विष्णुमुपागता ॥ ६१ ॥

ऊचुस्ते देवदेवेश स्तुत्वा भक्त्या समाहिता ।
जहि रावणमक्षोभ्य देव त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ ६२ ॥

मानुषेण मृतिस्तस्य कल्पिता ब्रह्मणा पुरा ।
अतस्त्व मानुषो भूत्वा जहि रावणकण्टकम् ॥ ६३ ॥

तथेत्याह महाविष्णु सत्यसङ्कल्प ईश्वर ।
जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुत ॥ ६४ ॥

सकट है, सो तुम सुनो ॥ ५१ ॥ रामने हमारे बडे-बडे वीर, पुत्र, पौत्र और बन्धु-बान्धवगण मार डाले है। भाई ! इस समय मेरा मृत्युकाल आ गया है, अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ ५२ ॥ यह महाबली दशरथकुमार राम सुग्रीवके सहित दलबलके साथ समुद्र पारकर सब ओरसे हमारी जड काट रहा है ॥ ५३ ॥ हमारे जो मुख्य-मुख्य राक्षस थे वे सब युद्धमे वानरोके हाथसे मारे गये, किन्तु इस युद्धमे हमे वानरोका क्षय होता कभी दिखायी नही देता ॥ ५४ ॥ हे महाबाहो ! तुम इनका नाश करो, मैने इसीलिये तुम्हे जगाया है। हे महावीर ! अपने भाईके लिये इस दुष्कर कार्यको करो'' ॥ ५५ ॥

राजा रावणके ये दु खमय वचन सुनकर कुम्भकर्ण बडे जोरसे ठट्टा मारकर हँसा और इस प्रकार कहने लगा— ॥ ५६ ॥ ''राजन् ! आपने जब पहले सम्मति की थी, उस समय मैने जो कुछ कहा था आपके पापका वह फल आज उपस्थित हो ही गया ॥ ५७ ॥ मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि राम साक्षात् परब्रह्म नारायण है और सीताजी योगमाया है, किन्तु आप तो समझानेपर भी नही समझते ॥ ५८ ॥ एक दिन मै रात्रिके समय वनमे एक विशाल शिलापर बैठा था। इसी समय मैने दिव्यमूर्ति साक्षात् नारद मुनिको देखा ॥ ५९ ॥ उन्हे देखकर मैंने कहा—''हे महाभाग ! कहिये, इस समय आप कहाँ जा रहे है।'' मेरे इस प्रकार पूछनेपर नारदजीने कहा—''मैं अभीतक देवताओकी एक गुप्त गोष्ठीमे था ॥ ६० ॥ वहाँ जो कुछ हुआ वह मै तुम्हे ज्यो-का-त्यो सुनाता हूँ। तुम दोनो भाइयोसे अत्यन्त पीडित होकर समस्त देवगण विष्णुभगवान्‌के पास गये ॥ ६१ ॥ और उन देवदेवेश्वरकी अत्यन्त भक्ति और एकाग्रतासे स्तुति कर कहने लगे—'हे देव ! इस रावणके आगे हमारी कुछ नहीं चलती। आप इस त्रिलोकीके काँटेका शीघ्र ही सहार कीजिये ॥ ६२ ॥ पूर्वकालमे ब्रह्माजीने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे निश्चित की है, अत आप मनुष्य होकर इस रावणरूप कण्टकको नष्ट कीजिये' ॥ ६३ ॥ तब सत्यसकल्प भगवान् विष्णुने 'बहुत अच्छा' कहा। अब वे रघुकुलमे अवतीर्ण होकर

स हनिष्यति व सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनि ।
अतो जानीहि राम त्व पर ब्रह्म सनातनम् ॥ ६५ ॥

त्यज वैर भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम् ।
भजतो भक्तिभावेन प्रसीदति रघूत्तम ॥ ६६ ॥

भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तिहीनेन यत्किञ्चित्कृत सर्वमसत्समम् ॥ ६७ ॥

अवतारा सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिण ।
तेषा सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमय शिव ॥ ६८ ॥

राम भजन्ति निपुणा मनसा वचसानिशम् ।
अनायासेन ससार तीर्त्वा यान्ति हरे पदम् ॥ ६९ ॥

ये राममेव सतत भुवि शुद्धसत्त्वा
ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्त ।
मुक्तास्त एव भवभोगमहाहिपाशै
सीतापते पदमनन्तसुख प्रयान्ति ॥ ७० ॥

राम-नामसे विख्यात हुए है ॥ ६४ ॥ वे तुम सबको मारेगे ।'' ऐसा कहकर नारद मुनि चले गये ।

''अत आप रामको सनातन परब्रह्म ही जानिये ॥ ६५ ॥ और वैर छोडकर उन मायामानवरूप भगवान्का भजन कीजिये। श्रीरघुनाथजी भक्तिभावसे भजन करनेवालेसे प्रसन्न हो जाते है ॥ ६६ ॥ भक्ति ही ज्ञानकी जननी और मोक्षको देनेवाली है । भक्तिहीन पुरुष जो कुछ करता है वह सब न कियेके समान ही है ॥ ६७ ॥ भगवान् विष्णुके अनेको अवतार हुए है और वे सभी अपने स्वरूपके अनुसार लीला करनेवाले थे। किन्तु यह शिवस्वरूप ज्ञानमय रामावतार वैसे एक सहस्र अवतारोके समान है ॥ ६८ ॥ जो लोग रात-दिन मन और वचनसे भगवान् रामका भली प्रकार भजन करते है वे बिना प्रयास ही ससारको पारकर श्रीहरिके परम धामको जाते हैं ॥ ६९ ॥ जो शुद्धचित्त महानुभाव इस भूमण्डलमे निरन्तर रामका ही ध्यान करते और उन्हीके चरित्र पढते है वे ही सासारिक विषयरूप महान् नागपाशसे छूटकर श्रीसीतापतिके अनन्त सुखमय चरणकमलोको प्राप्त होते हैं'' ॥ ७० ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

★

अष्टम सर्ग

कुम्भकर्ण-वध

श्रीमहादेव उवाच

कुम्भकर्णवच श्रुत्वा भ्रुकुटीविकटानन ।
दशग्रीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥ १ ॥

त्वमानीतो न मे ज्ञानबोधनाय सुबुद्धिमान् ।
मया कृत समीकृत्य युध्यस्व यदि रोचते ॥ २ ॥

नोचेद्गच्छ सुषुप्त्यर्थं निद्रा त्वा बाधतेऽधुना ।
रावणस्य वच श्रुत्वा कुम्भकर्णो महाबल ॥ ३ ॥

रुष्टोऽयमिति विज्ञाय तूर्ण युद्धाय निर्ययौ ।
स लङ्घयित्वा प्राकार महापर्वतसन्निभ ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! कुम्भकर्णके ये वचन सुनकर रावणका मुख और भृकुटि (क्रोधसे) विकराल हो गये । और उसने मानो आसनसे उछलते हुए इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥ 'मै जानता हूँ तुम बडे बुद्धिमान् हो, किन्तु इस समय मैने तुम्हे ज्ञानोपदेश करनेके लिये नही बुलाया है। यदि तुम्हे अच्छा लगे तो मेरे कृत्यको ठीक मानकर युद्ध करो ॥ २ ॥ नही तो जाओ शयन करो, तुम्हे इस समय नीद सता रही होगी ।'

रावणके ये वचन सुनकर महाबली कुम्भकर्ण, यह जानकर कि रावण रुष्ट हो गया है, तुरत युद्धके लिये चल पडा । वह महापर्वतके समान विशालकाय राक्षस नगरके

निर्ययौ नगरात्तूर्णं भीषयन्हरिसैनिकान्।
स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन्॥ ५ ॥

वानरान्कालयामास बाहुभ्यां भक्षयन् रुषा।
कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा सपक्षमिव पर्वतम्॥ ६ ॥

दुद्रुवुर्वानराः सर्वे कालान्तकमिवाखिलाः।
भ्रमन्तं हरिवाहिन्यां मुद्गरेण महाबलम्॥ ७ ॥

कालयन्तं हरीन्वेगाद्भक्षयन्तं समन्ततः।
चूर्णयन्तं मुद्गरेण पाणिपादैरनेकधा॥ ८ ॥

कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा गदापाणिर्विभीषणः।
ननाम चरणं तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य बुद्धिमान्॥ ९ ॥

विभीषणोऽहं भ्रातुर्मे दयां कुरु महामते।
रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः॥ १० ॥

सीतां देहीति रामाय रामः साक्षाज्जनार्दनः।
न शृणोति च मां हन्तुं खड्गमुद्यम्य चोक्तवान्॥ ११ ॥

धिक् त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं रामं शरणमागतः॥ १२ ॥

तच्छ्रुत्वा कुम्भकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम्।
समालिङ्ग्य च वत्स त्वं जीव रामपदाश्रयात्॥ १३ ॥

कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च।
महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम्॥ १४ ॥

गच्छ तात ममेदानीं दृश्यते न च किञ्चन।
मदीयो वा परो वापि मदमत्तविलोचनः॥ १५ ॥

इत्युक्तोऽश्रुमुखो भ्रातुश्चरणावभिवन्द्य सः।
रामपार्श्वमुपागत्य चिन्तापर उपस्थितः॥ १६ ॥

कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेषयन्हरीन्।
चचार वानरीं सेनां कालयन् गन्धहस्तिवत्॥ १७ ॥

दृष्ट्वा तं राघवः क्रुद्धो वायव्यं शस्त्रमादरात्।
चिक्षेप कुम्भकर्णाय तेन चिच्छेद रक्षसः॥ १८ ॥

परकोटेको लाँघकर बाहर आया (क्योंकि अत्यन्त दीर्घकाय होनेके कारण वह नगरके संकुचित द्वारोंमें होकर नहीं निकल सकता था।) और सम्पूर्ण वानर सैनिकोंको भयभीत करते हुए उसने बड़ा घोर शब्द किया जिससे समुद्र भी गूँज उठा॥ ३—५॥ फिर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो अपनी भुजाओंसे वानरोंको निगल-निगलकर नष्ट करने लगा। तब तो जिस प्रकार समस्त प्राणी यमराजको देखकर भागते हैं उसी प्रकार सपक्ष पर्वतके समान विशालकाय कुम्भकर्णको देखकर समस्त वानरगण भागने लगे।

इसी समय, महाबली कुम्भकर्णको मुद्गर धारण कर वानरसेनामें घूमते, ठौर-ठौर वानरोंको मारते, उन्हें अत्यन्त वेगसे भक्षण करते और अपने मुद्गर तथा लात और घूँसोंसे नाना प्रकार कुचलते देख परम बुद्धिमान् गदापाणि विभीषणने उस अपने ज्येष्ठ भ्राताके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ६—९॥ और कहा—"हे महामते! मैं आपका भाई विभीषण हूँ, आप मुझपर दया करें। भाई! मैंने रावणको बारम्बार समझाया कि राम साक्षात् विष्णुभगवान् हैं, तुम उन्हें सीताजीको सौंप दो, किन्तु उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी और मुझे मारनेके लिये तलवार खींचकर कहा कि 'तुझे धिक्कार है, तू यहाँसे टल जा।' पापी मन्त्रियोंसे घिरे हुए भाई रावणने ऐसा कहकर मेरे लात मारी तब मैं अपने चार मन्त्रियोंके सहित भगवान् रामकी शरणमें चला आया"॥ १०—१२॥

ऐसा सुन कुम्भकर्णने भी अपने भाईको आया जान उन्हें हृदयमें लगाया और कहा—"वत्स! भगवान् रामके चरणका आश्रय पाकर अपने कुलकी रक्षा और राक्षसोंके कल्याणके लिये तुम चिरकालतक जीवित रहो। पूर्वकालमें मैंने नारदजीसे सुना था कि तुम बड़े ही भगवद्भक्त हो॥ १३-१४॥ भैया! अब तुम जाओ, मेरे नेत्र मदसे मतवाले हो रहे हैं, अतः इस समय मुझे अपना-पराया कुछ नहीं सूझता"॥ १५॥ भाई कुम्भकर्णके इस प्रकार कहनेपर विभीषणके नेत्रोंमें जल भर आया और वे उसके चरणोंमें प्रणाम कर चिन्ताग्रस्त हो भगवान् रामके पास आकर खड़े हो गये॥ १६॥ इधर कुम्भकर्ण भी मदमत्त गजराजके समान अपने हाथ और पैरोंसे वानरोंको रौंदता हुआ समस्त वानर-सेनामें घूमने लगा॥ १७॥

कुम्भकर्णको देखकर श्रीरघुनाथजीने क्रुद्ध हो वायव्यास्त्र चढ़ाया और उसे सावधानीसे उसकी ओर छोड़

समुद्गर दक्षहस्त तेन घोर ननाद स ।
स हस्त पतितो भूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥ १९ ॥

पर्यन्तमाश्रिता सवे वानरा भयवेपिता ।
रामराक्षसयोर्युद्ध पश्यन्त पर्यवस्थिता ॥ २० ॥

कुम्भकर्णश्छिन्नहस्त शालमुद्यम्य वेगत ।
समरे राघव हन्तु दुद्राव तमथोऽच्छिनत् ॥ २१ ॥

शालेन सहित वामहस्तमैन्द्रेण राघव ।
छिन्नबाहुमथायान्त नर्दन्त वीक्ष्य राघव ॥ २२ ॥

द्वावर्धचन्द्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम् ।
चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ ॥ २३ ॥

निकृत्तपाणिपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषण ।
वडवामुखवद्वक्त्र व्यादाय रघुनन्दनम् ॥ २४ ॥

अभिदुद्राव निनदन्राहुश्चन्द्रमस यथा ।
अपूरयच्छितैश्च सायकैस्तद्मुखोत्तम ॥ २५ ॥

शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयङ्कर ।
अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्र शरमनुत्तमम् ॥ २६ ॥

वज्राशनिसम रामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ।
स तत्पर्वतसङ्काश स्फुरत्कुण्डलदंष्ट्रकम् ॥ २७ ॥

चकर्त रक्षोऽधिपते शिरो वृत्रमिवाशनि ।
तच्छिर पतित लङ्काद्वारि कायो महोदधौ ॥ २८ ॥

शिरोऽस्य रोधयद्द्वार कायो नक्राद्यचूर्णयत् ।
ततो देवा सऋषयो गन्धर्वा पन्नगा खगा ॥ २९ ॥

सिद्धा यक्षा गुह्यकाश्च अप्सरोभिश्च राघवम् ।
ईडिरे कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाभिनन्दिता ॥ ३० ॥

आजगाम तदा राम द्रष्टु देवमुनीश्वर ।
नारदो गगनात्तूर्ण स्वभासा भासयन्दिश ॥ ३१ ॥

राममिन्दीवरश्याममुदाराङ्ग धनुर्धरम् ।
ईषत्ताम्रविशालाक्षमैन्द्रास्त्राञ्चितबाहुकम् ॥ ३२ ॥

दिया। उस अस्त्रसे उन्होने उस राक्षसका मुद्गरसहित दाहिना हाथ काट डाला। इससे वह महाभयकर गर्जना करने लगा। उसका वह (कटा हुआ) हाथ अनेको वानरोको कुचलता हुआ पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १८-१९ ॥ तब, इधर-उधर खडे हुए समस्त वानरगण भयसे कॉपते हुए भगवान् राम और राक्षस कुम्भकर्णका युद्ध देखने लगे ॥ २० ॥ अपने दाये हाथके कट जानेपर कुम्भकर्ण युद्धमे रघुनाथजीको मारनेके लिये एक शाल-वृक्ष उठाकर बडे वेगसे दौडा। किन्तु रघुनाथजीने ऐन्द्र शस्त्रसे शालसहित उसका बायॉ हाथ भी काट डाला। दोनो भुजाओके कट जानेपर भी जब श्रीरामचन्द्रजीने उसे गर्ज-गर्जकर अपनी ओर आते देखा तो दो अत्यन्त तीक्ष्ण अर्द्धचन्द्राकार बाण चढाकर उसके दोनो चरण भी काट डाले। वे दोनो चरण बडा शब्द करते हुए लङ्काके द्वारपर गिरे ॥ २१—२३ ॥ हाथ-पॉवोके कट जानेपर भी महाभयानक कुम्भकर्ण राहु जैसे चन्द्रमाकी ओर दौडता है वैसे ही घोडीके समान मुख फाडकर चिग्घाडता हुआ भगवान् रामकी ओर दौडा। किन्तु रघुनाथजीने उसे अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोसे भर दिया ॥ २४-२५ ॥ बाणोसे मुख भर जानेपर वह अति भयकर राक्षस चिल्लाने लगा। तब रघुनाथजीने सूर्यके समान देदीप्यमान अति उत्तम ऐन्द्र बाण चढाया और वह वज्रके समान कठोर बाण उस राक्षसका वध करनेके लिये छोडा। इन्द्रके वज्रने जिस प्रकार वृत्रासुरका सिर काटा था, उसी प्रकार उस बाणने उसका पर्वत-सदृश सिर, जिसमे कुण्डल और दाढे चमक रही थी, काट डाला। कुम्भकर्णका सिर लङ्काके द्वारपर और उसका धड समुद्रमे गिरा ॥ २६—२८ ॥ उस मस्तकने लङ्काके द्वारको रोक लिया और धडने बहुत-से नाके आदि जलजन्तुओको कुचल डाला। इस प्रकार कुम्भकर्णके मारे जानेपर ऋषियोके सहित देवगण तथा अप्सराओके सहित गन्धर्व, नाग, पक्षी, सिद्ध, यक्ष और गुह्यक आदि अति प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीपर पुष्पावली बरसाते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २९-३० ॥

इसी समय अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाओको प्रकाशित करते हुए देवर्षि नारद भगवान् रामका दर्शन करनेके लिये तुरत ही आकाशसे आये ॥ ३१ ॥ जो नीलकमलके समान श्यामवर्ण, अति मनोहरमूर्ति और धनुष धारण किये हुए है, जिनके नेत्र अति विशाल और

दयार्द्रदृष्ट्या पश्यन्त वानराञ्छरपीडितान्।
दृष्ट्वा गद्गदया वाचा भक्त्या स्तोतु प्रचक्रमे ॥ ३३ ॥

नारद उवाच

देवदेव जगन्नाथ परमात्मन् सनातन।
नारायणाखिलाधार विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥

विशुद्धज्ञानरूपोऽपि त्व लोकानतिवञ्चयन्।
मायया मनुजाकार सुखदु खादिमानिव ॥ ३५ ॥

त्व मायया गुह्यमान सर्वेषा हृदि सस्थित ।
स्वयज्योति स्वभावस्त्व व्यक्त एवामलात्मनाम् ॥ ३६ ॥

उन्मीलयन् सृजस्येतन्नेत्रे राम जगत्त्रयम्।
उपसह्रियते सर्व त्वया चक्षुर्निमीलनात् ॥ ३७ ॥

यस्मिन्सर्वमिद भाति यतश्चैतच्चराचरम्।
यस्मान्न किञ्चिल्लोकेऽस्मिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नम ॥ ३८ ॥

प्रकृतिं पुरुष काल व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम्।
य जानन्ति मुनिश्रेष्ठास्तस्मै रामाय ते नम ॥ ३९ ॥

विकाररहित शुद्ध ज्ञानरूप श्रुतिर्जगौ।
त्वा सर्वजगदाकारमूर्ति चाप्याह सा श्रुति· ॥ ४० ॥

विरोधो दृश्यते देव वैदिको वेदवादिनाम्।
निश्चय नाधिगच्छन्ति त्वत्प्रसाद विना बुधा ॥ ४१ ॥

मायया क्रीडतो देव न विरोधो मनागपि।
रश्मिजाल रवेर्यद्वद्दृश्यते जलवद् भ्रमात् ॥ ४२ ॥

भ्रान्तिज्ञानात्तथा राम त्वयि सर्व प्रकल्प्यते।
मनसोऽविषयो देव रूप ते निर्गुण परम् ॥ ४३ ॥

कथ दृश्य भवेद्देव दृश्याभावे भजेत्कथम्।
अतस्तवावतारेषु रूपाणि निपुणा भुवि ॥ ४४ ॥

भजन्ति बुद्धिसम्पन्नास्तरन्त्येव भवार्णवम्।
कामक्रोधादयस्तत्र बहव परिपन्थिन ॥ ४५ ॥

कुछ अरुणवर्ण है तथा भुजाएँ ऐन्द्रास्त्रसे सुशोभित हैं, जो अपनी दयामयी दृष्टिसे बाणोसे पीडित वानरोकी ओर देख रहे है, उन भगवान् रामका दर्शन कर श्रीनारदजी भक्तिसे गद्गदकण्ठ हो इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ३२-३३ ॥

नारदजी बोले—हे देवाधिदेव! हे जगत्पते! हे परमात्मन्! हे सनातन पुरुष! हे नारायण! हे सर्वाधार! हे विश्वसाक्षिन्! आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं, तथापि लोकोकी वञ्चना करनेके लिये आप अपनी मायासे मनुष्याकार धारणकर सुखी-दु खी-से दिखायी देते हैं ॥ ३५ ॥ आप अपनी मायासे आच्छादित होकर (अन्तर्यामीरूपसे) सबके अन्त -करणोमे स्थित हैं। आप स्वभावसे ही स्वयप्रकाश हैं और शुद्धचित्त व्यक्तियोको ही आपका साक्षात्कार होता है ॥ ३६ ॥ हे राम! आप नेत्र खोलकर ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकीकी रचना कर देते है और आपके नेत्र मूँदते ही इस सबका लय हो जाता है ॥ ३७ ॥ जिसमे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भास रहा है, जिससे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा जिसके अतिरिक्त ससारमे और कुछ भी नही है, वह ब्रह्म आप ही है, आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ जिन्हे मुनिश्रेष्ठगण प्रकृति, पुरुष, काल और व्यक्ताव्यक्तस्वरूप जानते हैं उन्हीं श्रीरामरूप आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ श्रुतिने विकाररहित, शुद्ध और ज्ञानस्वरूप कहकर आपका वर्णन किया है और वही आपको सम्पूर्ण जगद्रूप भी बतलाती है ॥ ४० ॥ हे देव! इस प्रकार वेदवादियोको यह वैदिक (वेद-वचनोमे) विरोध दिखायी देता है, किन्तु आपकी कृपाके बिना तो विज्ञजन भी किसी निश्चयपर नहीं पहुँचते ॥ ४१ ॥ हे देव! आप मायासे ही लीला कर रहे हैं, अत इन वेदवाक्योमें कुछ भी विरोध नही है। जिस प्रकार सूर्यका किरणसमूह भ्रमसे जलके समान प्रतीत होता है, हे राम! उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् अज्ञानसे ही आपमे कल्पित हुआ है, आपका वास्तविक निर्गुण रूप तो मनका अविषय है ॥ ४२-४३ ॥ हे देव! वह किस प्रकार किसीको दिखायी दे सकता है? और दिखायी न देनेसे कोई उसका भजन भी कैसे कर सकता है? अत ससारमे बुद्धिमान् और निपुणलोग आपके अवतार-स्वरूपोका ही चिन्तन करते हैं और वे ज्ञानसम्पन्न होकर ससार-सागरको पार कर ही लेते हैं। इस भक्तिमार्गमें

भीषयन्ति सदा चेतो मार्जारा मूषक यथा ।
त्वन्नाम स्मरता नित्य त्वद्रूपमपि मानसे ॥ ४६ ॥

त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम् ।
त्वद्भक्तसङ्गिना राम ससारो गोष्पदायते ॥ ४७ ॥

अतस्ते सगुण रूप ध्यात्वाह सर्वदा हृदि ।
मुक्तश्चरामि लोकेषु पूज्योऽह सर्वदैवतै ॥ ४८ ॥

राम त्वया महत्कार्य कृत देवहितेच्छया ।
कुम्भकर्णवधेनाद्य भूभारोऽय गत प्रभो ॥ ४९ ॥

श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे ।
हनिष्यसेऽथ राम त्व परश्वो दशकन्धरम् ॥ ५० ॥

पश्यामि सर्वं देवेश सिद्धै सह नभोगत ।
अनुगृह्णीष्व मा देव गमिष्यामि सुरालयम् ॥ ५१ ॥

इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य नारदो भगवानृषि ।
ययौ देवै पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥ ५२ ॥

भ्रातर निहत श्रुत्वा कुम्भकर्ण महाबलम् ।
रावण शोकसन्तप्तो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ५३ ॥

मूर्च्छित पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह ।
पितृव्य निहत श्रुत्वा पितर चातिविह्वलम् ॥ ५४ ॥

इन्द्रजित्प्राह शोकार्त त्यज शोक महामते ।
मयि जीवति राजेन्द्र मेघनादे महाबले ॥ ५५ ॥

दु खस्यावसर कुत्र देवान्तक महामते ।
व्येतु ते दु खमखिल स्वस्थो भव महीपते ॥ ५६ ॥

सर्वं समीकरिष्यामि हनिष्यामि च वै रिपून् ।
गत्वा निकुम्भिला सद्यस्तर्पयित्वा हुताशनम् ॥ ५७ ॥

लब्ध्वा रथादिक तस्मादजेयोऽह भवाम्यरे ।
इत्युक्त्वा त्वरित गत्वा निर्दिष्ट हवनस्थलम् ॥ ५८ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपन ।
निकुम्भिलास्थले मौनी हवनायोपचक्रमे ॥ ५९ ॥

काम, क्रोध आदि बहुत-से विघ्न भी होते हैं ॥ ४४-४५ ॥ वे बिल्ली जिस प्रकार चूहेको डराती है उसी प्रकार चित्तको सर्वदा भयभीत करते रहते है, हे राम! जो लोग निरन्तर आपका नाम-स्मरण करते है, आपके रूपका हृदयमे ध्यान करते हैं, आपकी पूजामे तत्पर रहते है, आपके कथामृतका पान करते रहते हैं तथा आपके भक्तोका सङ्ग करते हैं उनके लिये यह ससार (जो कि समुद्रके समान दुस्तर है) गोखुरके समान तुच्छ हो जाता है ॥ ४६-४७ ॥ अत मैं हृदयमे सर्वदा आपके सगुण रूपका ध्यान करता हुआ जीवन्मुक्त होकर लोकान्तरोमे विचरता हूँ और समस्त देवताओसे पूजित होता हूँ ॥ ४८ ॥ हे राम! आपने देवहितकी कामनासे यह बहुत बडा काम किया है, हे प्रभो! इस कुम्भकर्णके वधसे आज पृथिवीका (बहुत-कुछ) भार उतर गया ॥ ४९ ॥ कल लक्ष्मणजी युद्धमे इन्द्रजित्को मारेगे और परसो आप रावणका वध करेगे ॥ ५० ॥ हे देवेश्वर! मै सिद्धोके साथ आकाशमे स्थित होकर यह सब चरित्र देखूँगा। हे देव! आप मुझपर दयादृष्टि रखे, अब मैं स्वर्गलोकको जाता हूँ ॥ ५१ ॥ ऐसा कह मुनिवर भगवान् नारदजी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पा देवताओसे पूजित हो पापहीन ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ५२ ॥

बिना प्रयास ही अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् रामद्वारा महाबली भाई कुम्भकर्णको मारा गया सुन रावण अत्यन्त शोकाकुल हुआ और मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पडा तथा (मूर्च्छा निवृत्त होनेपर) उठकर विलाप करने लगा। तब इन्द्रजित्ने अपने चचाको मारा गया और पिताको अति विह्वल सुन अपने शोकाकुल पितासे कहा—"हे महामते! शोक दूर कीजिये। हे राजेन्द्र! मुझ महाबली मेघनादके जीते हुए आपके दु खका कारण ही कहाँ है? हे देवताओके कालस्वरूप महाबुद्धिमान् पृथिवीपते! अपना समस्त दु ख छोडकर आप शान्त होइये ॥ ५३—५६ ॥ मैं अभी सब कुछ ठीक किये देता हूँ, इन शत्रुओको मै अवश्य मार डालूँगा। इस समय मै निकुम्भिला गुफामे जाता हूँ, वहाँ अग्निको तृप्तकर रथ आदि प्राप्त करूँगा, इससे मैं शत्रुओके लिये अजेय हो जाऊँगा।" ऐसा कह वह निर्दिष्ट यज्ञशालामे गया ॥ ५७-५८ ॥ उस निकुम्भिला (नामकी देवी) के स्थानमे उसने रक्तवर्ण वस्त्र, रक्त पुष्पोकी माला और रक्त चन्दनका लेप धारण कर हवन करना आरम्भ किया ॥ ५९ ॥

विभीषणोऽथ तच्छ्रुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम्।
प्राह रामाय सकल होमारम्भ दुरात्मन ॥ ६० ॥

समाप्यते चेद्धोमोऽय मेघनादस्य दुर्मते ।
तदाजेयो भवेद्राम मेघनाद सुरासुरै ॥ ६१ ॥

अत शीघ्र लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम्।
आज्ञापय मया सार्ध लक्ष्मण बलिना वरम्।
हनिष्यति न सन्देहो मेघनाद तवानुज ॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

अहमेवागमिष्यामि हन्तुमिन्द्रजित रिपुम्।
आग्नेयेन महास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना ॥ ६३ ॥

विभीषणोऽपि त प्राह नासावन्यैर्निहन्यते।
यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जित ॥ ६४ ॥

तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मन ।
लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्त्वया सह ॥ ६५ ॥

तदादि निद्राहारादीन्न जानाति रघूत्तम।
सेवार्थ तव राजेन्द्र ज्ञात सर्वमिद मया ॥ ६६ ॥

तदाज्ञापय देवेश लक्ष्मण त्वरया मया।
हनिष्यति न सन्देह शेष साक्षाद्धराधर ॥ ६७ ॥

त्वमेव साक्षाज्जगतामधीशो
नारायणो लक्ष्मण एव शेष ।
युवा धराभारनिवारणार्थ
जातौ जगन्नाटकसूत्रधारौ ॥ ६८ ॥

जब विभीषणको मेघनादके इस कार्यका पता लगा तब उन्होने उस दुरात्माके होमारम्भका सारा समाचार श्रीरामचन्द्रजीको सुनाया ॥ ६० ॥ (और कहा—) "हे राम! यदि दुरात्मा मेघनादका यह होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो वह देवता या असुर किसीसे भी नही जीता जा सकेगा ॥ ६१ ॥ अत मै शीघ्र ही लक्ष्मणजीके द्वारा उस रावण-कुमारका वध कराये देता हूँ। आप बलवानोमे श्रेष्ठ श्रीलक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये। इसमे सन्देह नही, आपके छोटे भाई लक्ष्मणजी मेघनादको अवश्य मार डालेगे" ॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—समस्त राक्षसोको मारनेवाले महान् आग्नेय-अस्त्रसे अपने शत्रु इन्द्रजित्को मारनेके लिये मैं स्वय ही आऊँगा ॥ ६३ ॥

तब विभीषणने कहा—'यह राक्षस किसी औरसे नहीं मारा जा सकता। जिसने बारह वर्षतक निद्रा और आहारको छोड दिया हो, ब्रह्माजीने इस दुरात्माकी मृत्यु उसीके हाथ निश्चित की है। हे रघुनाथजी! ये लक्ष्मणजी जबसे अयोध्यासे निकलकर आपके साथ आये हैं, तभीसे, आपकी सेवामे लगे रहनेके कारण, ये निद्रा और आहारादि तो जानते ही नही। हे राजेन्द्र! मैं ये सब बाते जानता हूँ ॥ ६४—६६ ॥ अत हे देवेश्वर! आप शीघ्र ही लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये। ये साक्षात् धराधारी शेषनाग है, इसमे सन्देह नहीं, उस राक्षसको ये अवश्य मार डालेगे ॥ ६७ ॥ आप ही साक्षात् जगत्पति नारायण है और लक्ष्मणजी ही शेषनाग है। आप दोनो इस ससाररूपी नाटकके सूत्रधार है और पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही आपने जन्म लिया है" ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डेऽष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

मेघनाद-वध

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणवच श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत्।
जानामि तस्य रौद्रस्य माया कृत्स्ना विभीषण ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीने कहा—"विभीषण! उस महाभयङ्कर दैत्यकी मैं सारी माया जानता हूँ ॥ १ ॥

स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबल ।
जानामि लक्ष्मणस्यापि स्वरूप मम सेवनम् ॥ २ ॥

ज्ञात्वैवासमह तूष्णीं भविष्यत्कार्यगौरवात् ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मण प्राह रामो ज्ञानवता वर ॥ ३ ॥

गच्छ लक्ष्मण सैन्येन महता जहि रावणिम् ।
हनूमत्प्रमुखै सर्वैर्यूथपै सह लक्ष्मण ॥ ४ ॥

जाम्बवानृक्षराजोऽय सह सैन्येन सवृत ।
विभीषणश्च सचिवै सह त्वामभियास्यति ॥ ५ ॥

अभिज्ञस्तस्य देशस्य जानाति विवराणि स ।
रामस्य वचन श्रुत्वा लक्ष्मण सविभीषण ॥ ६ ॥

जग्राह कार्मुक श्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रम ।
रामपादाम्बुज स्पृष्ट्वा हृष्ट सौमित्रिरब्रवीत् ॥ ७ ॥

अद्य मत्कार्मुकान्मुक्ता शरा निर्भिद्य रावणिम् ।
गमिष्यन्ति हि पाताल स्नातु भोगवतीजले ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा स सौमित्रि परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।
इन्द्रजिन्निधनाकाङ्क्षी ययौ त्वरितविक्रम ॥ ९ ॥

वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात् ।
विभीषणश्च सहितो मन्त्रिभिस्त्वरित ययौ ॥ १० ॥

जाम्बवत्प्रमुखा ऋक्षा सौमित्रिं त्वरयान्वयु ।
गत्वा निकुम्भिलादेश लक्ष्मणो वानरै सह ॥ ११ ॥

अपश्यद्बलसङ्घात दूराद्राक्षससङ्कुलम् ।
धनुरायम्य सौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रम ॥ १२ ॥

अङ्गदेन च वीरेण जाम्बवान् राक्षसाधिप ।
तदा विभीषण प्राह सौमित्रिं पश्य राक्षसान् ॥ १३ ॥

यदेतद्राक्षसानीक मेघश्याम विलोक्यते ।
अस्यानीकस्य महतो भेदने यत्नवान् भव ॥ १४ ॥

राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यस्मिन् भिन्ने दृश्यो भविष्यति ।
अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥ १५ ॥

वह ब्रह्मास्त्र-विद्याका जाननेवला, बडा शूरवीर, मायावी और महाबली है। तथा लक्ष्मण मेरी जैसी सेवा करते है मै उसका स्वरूप भी जानता हूँ (अर्थात् मुझे यह पता है कि मेरी सेवाके कारण उन्होने निद्रा और आहार आदिको छोड रखा है) ॥ २ ॥ किन्तु इस आगामी कार्यकी कठिनताका विचार करते ही मैने यह सब जान-बूझकर भी अभीतक कुछ नही कहा।''

विभीषणसे इस प्रकार कह ज्ञानियोमे श्रेष्ठ भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ ''भैया लक्ष्मण ! तुम और हनुमान् आदि समस्त यूथपति, बहुत बडी सेनाके साथ जाओ और रावणके पुत्र मेघनादको मारो ॥ ४ ॥ अपनी सेनाके सहित ऋक्षराज जाम्बवान् और मन्त्रियोके सहित विभीषण तुम्हारे साथ जायँगे ॥ ५ ॥ ये विभीषण उससे परिचित है और उसके छिपनेकी समस्त कन्दराओ-को जानते है, (अत इनसे तुम्हे उसका पता लगानेमे बहुत सहायता मिलेगी) ।'' रामचन्द्रजीके वचन सुनकर महापराक्रमी लक्ष्मणजीने विभीषणको साथ ले अपना एक दूसरा उत्तम धनुष उठाया और अति प्रसन्नतापूर्वक भगवान् रामके चरणकमलका स्पर्श कर कहा ॥ ६-७ ॥ ''प्रभो ! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण रावण-पुत्र इन्द्रजित्के शरीरको भेदकर भोगवती (पाताल-गङ्गा) के जलमे स्नान करनेके लिये पाताल-लोकको चले जायँगे'' ॥ ८ ॥

रघुनाथजीसे इस प्रकार कह सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीने उनकी परिक्रमा की और इन्द्रजित्को मारनेके लिये बडी तेजीसे चले ॥ ९ ॥ उनके पीछे हजारो वानरोके साथ हनुमान्जी और मन्त्रियोके सहित विभीषणने भी बडी शीघ्रतासे कूच किया ॥ १० ॥ तथा जाम्बवान् आदि रीछ भी तुरत ही श्रीलक्ष्मणजीके साथ चले। जिस समय वानरोके सहित लक्ष्मणजी निकुम्भिलाके स्थानपर पहुँचे, उन्होने दूरसे ही वहाँ राक्षसोकी बडी भारी सेना एकत्रित देखी। तब महापराक्रमी लक्ष्मणजी धनुष चढाकर सावधान हो गये ॥ ११-१२ ॥ उनके साथ ही वीरवर अङ्गदके सहित जाम्बवान् भी सावधान हो गये। तब राक्षसराज विभीषणजीने लक्ष्मणजीसे कहा—''लक्ष्मणजी ! इन राक्षसोको देखिये। सामने जो मेघके समान श्यामवर्ण राक्षस-सेना दिखायी दे रही है, इस प्रबल अनीकको नष्ट करनेका यत्न कीजिये ॥ १३-१४ ॥ इसके नष्ट हो जानेपर राक्षसराज रावणाका पुत्र इन्द्रजित् भी दिखायी देने लगेगा।

जहि वीर दुरात्मान हिंसापरमधार्मिकम् ।
विभीषणवच श्रुत्वा लक्ष्मण शुभलक्षण ॥ १६ ॥

ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुत प्रति ।
पाषाणै पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च हरियूथपा ॥ १७ ॥

निर्जघ्नु सर्वतो दैत्यास्तेऽपि वानरयूथपान् ।
परश्वधै शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरै ॥ १८ ॥

निर्जघ्नुर्वानरानीक तदा शब्दो महानभूत् ।
स सम्प्रहारस्तुमुल सजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥ १९ ॥

इन्द्रजित्स्वबल सर्वमर्द्यमान विलोक्य स ।
निकुम्भिला च होम च त्यक्त्वा शीघ्र विनिर्गत ॥ २० ॥

रथमारुह्य सधनु क्रोधेन महतागमत् ।
समाह्वयन् स सौमित्रिं युद्धाय रणमूर्धनि ॥ २१ ॥

सौमित्रे मेघनादोऽह मया जीवन्न मोक्ष्यसे ।
तत्र दृष्ट्वा पितृव्य स प्राह निष्ठुरभाषणम् ॥ २२ ॥

इहैव जात सवृद्ध साक्षाद् भ्राता पितुर्मम ।
यस्त्व स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागत ॥ २३ ॥

कथ द्रुह्यसि पुत्राय पापीयानसि दुर्मति ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मण दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठत स्थितम् ॥ २४ ॥

उद्यदायुधनिस्त्रिशे रथे महति सस्थित ।
महाप्रमाणमुद्यम्य घोर विस्फारयन्धनु ॥ २५ ॥

अद्य वो मामका बाणा प्राणान्पास्यन्ति वानरा ।
तत शर दाशरथि सन्धायामित्रकर्षण ॥ २६ ॥

ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्ध सर्प इव श्वसन् ।
इन्द्रजिद्रक्तनयनो लक्ष्मण समुदैक्षत ॥ २७ ॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहत शरै ।
मुहूर्तमभवन्मूढ पुन प्रत्याहतेन्द्रिय ॥ २८ ॥

इस कर्मके समाप्त होनेसे पहले ही तुरत धावा कर दीजिये ॥ १५ ॥ हे वीर ! इस हिंसापरायण दुरात्मा पापीको आप शीघ्र ही मार डालिये ।''

विभीषणके वचन सुनकर शुभलक्षण लक्ष्मणने राक्षस-राजकुमार मेघनादकी ओर बाण बरसाने आरम्भ किये तथा वानर-यूथपति भी सब ओरसे पत्थर, पर्वत-शिखर और वृक्षादिसे दैत्योपर प्रहार करने लगे । इसी प्रकार राक्षसोने भी वानरयूथपतियो और वानर-सेनापर परशु, तीक्ष्ण बाण, खड्ग, यष्टि और तोमरादि शस्त्रोसे आक्रमण किया । तब वहॉ बडा भारी कोलाहल हुआ और राक्षस तथा वानरोमे बडा घमासान युद्ध छिड गया ॥ १६—१९ ॥

अपनी सेनाको इस प्रकार दलित होते देख इन्द्रजित् निकुम्भिला और होमको छोडकर बाहर आया ॥ २० ॥ और तुरत ही रथपर चढ अत्यन्त क्रोधसे हाथमे धनुष ले रणभूमिमे सामने आया तथा लक्ष्मणजीको युद्धके लिये ललकारते हुए बोला— ॥ २१ ॥ ''लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूँ, अब तुम मुझसे जीवित नही बच सकते ।'' फिर वहॉ अपने चचा विभीषणको देखकर वह कठोर शब्दोमे कहने लगा ॥ २२ ॥ ''तुम इस लङ्कापुरीमे ही उत्पन्न हुए हो और इसीमे रहकर इतने बडे हुए हो तथा मेरे पिताके सगे भाई हो, किंतु अब तुमने अपने स्वजनोको छोडकर शत्रुओका दासत्व स्वीकार किया है ! ॥ २३ ॥ मै तुम्हारे पुत्रके समान हूँ, न जाने तुम कैसे मुझसे द्रोह कर रहे हो ? अवश्य ही तुम बडे पापी और दुरात्मा हो ।'' ऐसा कह उसने हनुमान्‌जीकी पीठपर बैठे हुए लक्ष्मणजीकी ओर देखा ॥ २४ ॥ तथा जिसमे नाना प्रकारके तीक्ष्ण शस्त्र उपस्थित थे उस महान् रथमे बैठे हुए उस दैत्यने एक बडा लम्बा धनुष उठाकर उसकी भयङ्कर टकार की ॥ २५ ॥ और बोला ''अरे वानरो ! आज मेरे बाण तुम्हारे प्राणोको पियेगे ।'' तब क्रोधसे सर्पके समान फुफकारते हुए, शत्रुका दमन करनेवाले, दशरथकुमार लक्ष्मणजीने भी अपने धनुषपर एक बाण चढाकर उसे मेघनादपर छोडा । इधर इन्द्रजित्‌ने भी क्रोधसे लाल-लाल नेत्र कर लक्ष्मणणजीकी ओर देखा ॥ २६-२७ ॥

श्रीलक्ष्मणजीके छोडे हुए इन्द्रवज्रके समान महाकठोर बाणोके लगनेसे वह एक मुहूर्तके लिये अचेत

दद‍र्शावस्थित वीर वीरो दशरथात्मजम् ।
सोऽभिचक्राम सौमित्रिं क्रोधसरक्तलोचन ॥ २९ ॥

शरान्धनुषि सन्धाय लक्ष्मण चेदमब्रवीत् ।
यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मे पराक्रम ॥ ३० ॥

अद्य त्वा दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थित ।
इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ॥ ३१ ॥

दशभिश्च हनूमन्त तीक्ष्णधारै शरोत्तमै ।
तत शरशतेनैव सम्प्रयुक्तेन वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

क्रोधद्विगुणसरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ।
लक्ष्मणोऽपि तथा शत्रु शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥

तस्य बाणै सुसविद्ध कवच काञ्चनप्रभम् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे तिलश पतित भुवि ॥ ३४ ॥

तत शरसहस्रेण सङ्क्रुद्धो रावणात्मज ।
बिभेद समरे वीर लक्ष्मण भीमविक्रमम् ॥ ३५ ॥

व्यशीर्यतापतद्दिव्य कवच लक्ष्मणस्य च ।
कृतप्रतिकृतान्योन्य बभूवतुरभिद्रुतौ ॥ ३६ ॥

अभीक्ष्ण नि श्वसन्तौ तौ युध्येता तुमुल पुन ।
शरसवृतसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥ ३७ ॥

सुदीर्घकाल तौ वीरावन्योन्य निशितै शरै ।
अयुध्येता महासत्त्वौ जयाजयविवर्जितौ ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मण पञ्चभि शरै ।
रावणे सारथि साश्व रथ च समचूर्णयत् ॥ ३९ ॥

चिच्छेद कार्मुक तस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ।
सोऽन्यत्तु कार्मुक भद्र सज्य चक्रे त्वरान्वित ॥ ४० ॥

तच्चापमपि चिच्छेद लक्ष्मणस्त्रिभिराशुगै ।
तमेव छिन्नधन्वान विव्याधानेकसायकै ॥ ४१ ॥

पुनरन्यत्समादाय कार्मुक भीमविक्रम ।
इन्द्रजिल्लक्ष्मण बाणै शितैरादित्यसन्निभै ॥ ४२ ॥

बिभेद वानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिश ।
तत ऐन्द्र समादाय लक्ष्मणो रावणि प्रति ॥ ४३ ॥

हो गया। फिर चेत होनेपर उसने अपने सामने दशरथनन्दन वीरवर लक्ष्मणजीको खडे देखा। उन्हे देखकर वह राक्षस क्रोधसे नेत्र लाल कर उनकी ओर दौडा ॥ २८-२९ ॥ तथा अपने धनुषपर बाण चढाकर उनसे यो कहने लगा, ''यदि तूने पहले युद्धमे मेरा पराक्रम न देखा हो तो मै तुझे अभी दिखाये देता हूँ, तू जरा स्थिरतापूर्वक खडा रह।'' ऐसा कह उस महावीर्यवान्ने सात बाणोसे लक्ष्मणजीको, बडी पैनी धारवाले दस बाणोसे हनुमान्जीको और क्रोधसे दूने उत्साहके साथ भली प्रकार छोडे हुए सौ बाणोसे विभीषणको वेध डाला। इधर लक्ष्मणजी भी शत्रुपर बाणोकी वर्षा-सी करने लगे ॥ ३०—३३ ॥ उनके बाणोसे छिन्न-भिन्न होकर मेघनादका सुवर्णकी-सी आभावाला कवच तिल-तिल होकर रथके पिछले भागमे गिर पडा और फिर वहाँसे पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ३४ ॥ तब रावणकुमार मेघनादने सग्राममे अत्यन्त क्रोधित हो महापराक्रमी लक्ष्मणजीको हजारो बाणोसे बीध डाला ॥ ३५ ॥ इससे लक्ष्मणजीका दिव्य कवच भी छिन्न-भिन्न होकर गिर पडा। इस प्रकार वे दोनो ही एक-दूसरेकी क्रियाका प्रतिकार करते हुए आपसमे लडने लगे ॥ ३६ ॥ वे दोनो ही बारम्बार दीर्घ नि श्वास छोडते हुए बडा घोर युद्ध करने लगे। उनके शरीरोके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब ओरसे बाणोसे छिन्न-भिन्न होकर लोहू-लुहान हो गये ॥ ३७ ॥ वे दोनो महापराक्रमी वीर बडी देरतक एक-दूसरेपर तीखे-तीखे बाण छोडकर लडते रहे। उनमेसे किसीकी भी जय अथवा पराजय न हुई ॥ ३८ ॥

इतनेमे ही वीरवर लक्ष्मणने पाँच बाण छोडकर मेघनादके सारथि और घोडोके सहित रथको चूर्ण कर डाला ॥ ३९ ॥ और अपने हाथकी सफाई दिखलाते हुए उसका धनुष भी काट डाला। तब मेघनादने तुरत ही दूसरा उत्तम धनुष चढाया ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीने तीन बाणोसे उसे भी काट डाला और धनुषहीन हुए उस राक्षसको भी अनेक बाणोसे बीध दिया ॥ ४१ ॥ फिर भीमविक्रम इन्द्रजित्ने एक और धनुष लेकर सूर्यके समान चमकीले और पैने बाणोसे सम्पूर्ण दिशाओको व्याप्त करते हुए लक्ष्मणजी तथा समस्त वानरोको वेध डाला। तब लक्ष्मणजीने ऐन्द्र बाण निकालकर उसे मेघनादकी ओर

सन्धायाकृष्य कर्णान्त कार्मुक दृढनिष्ठुरम्।
उवाच लक्ष्मणो वीर स्मरन् रामपदाम्बुजम् ॥ ४४ ॥

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेन जहि रावणिम् ॥ ४५ ॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाद्विकृष्य तमजिह्मगम्।
लक्ष्मण समरे वीर ससर्जेन्द्रजित प्रति ॥ ४६ ॥

स शर सशिरस्त्राण श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्।
प्रमथ्येन्द्रजित कायात्पातयामास भूतले ॥ ४७ ॥

तत प्रमुदिता देवा कीर्तयन्तो रघूत्तमम्।
ववर्षु पुष्पवर्षाणि स्तुवन्तश्च मुहुर्मुहु ॥ ४८ ॥

जहर्ष शक्रो भगवान्सह देवैर्महर्षिभि ।
आकाशेऽपि च देवाना शुश्रुवे दुन्दुभिस्वन ॥ ४९ ॥

विमल गगन चासीत्स्थिराभूद्विश्वधारिणी।
निहत रावणि दृष्ट्वा जयजल्पसमन्वित ॥ ५० ॥

गतश्रम स सौमित्रि शङ्खमापूरयद्रणे।
सिहनाद तत कृत्वा ज्याशब्दमकरोद्विभु ॥ ५१ ॥

तेन नादेन सहृष्टा वानराश्च गतश्रमा ।
वानरेन्द्रैश्च सहित स्तुवद्भिर्हृष्टमानसै ॥ ५२ ॥

लक्ष्मण परितुष्टात्मा ददर्शाभ्येत्य राघवम्।
हनूमद्राक्षसाभ्या च सहितो विनयान्वित ॥ ५३ ॥

ववन्दे भ्रातर राम ज्येष्ठ नारायण विभुम्।
त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हतो रावणिराहवे ॥ ५४ ॥

श्रुत्वा तल्लक्ष्मणाद्भक्त्या तमालिङ्ग्य रघूत्तम ।
मूर्ध्न्यवघ्राय मुदित सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥

लक्ष्य बाँधकर धनुषपर चढाया और उस कठोर धनुषको कर्णपर्यन्त खीचकर वीरवर लक्ष्मणजी हृदयमे भगवान् रामके चरणकमलोका स्मरण करते हुए बोले— ॥ ४२—४४ ॥ ''यदि दशरथनन्दन भगवान् राम परम धार्मिक, सत्यकी मर्यादा रखनेवाले और त्रिलोकीमे प्रतिद्वन्द्वी (मुकाबिला करनेवाले) से रहित है तो हे बाण। तू इस मेघनादको मार डाल'' ॥ ४५ ॥ वीरवर लक्ष्मणजीने रणभूमिमे ऐसा कह उस सीधे जानेवाले बाणको कानतक खीचकर इन्द्रजित्की ओर छोड दिया ॥ ४६ ॥ उस बाणने शीर्षत्राणके सहित इन्द्रजित्के कान्तिमान् मस्तकको, जिसमे अति उज्ज्वल कुण्डल झिलमिला रहे थे, काटकर धडसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४७ ॥

इस प्रकार मेघनादके मारे जानेपर देवगण प्रसन्न होकर रघुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीका गुण गाने और उनकी बारम्बार प्रशसा कर पुष्प बरसाने लगे ॥ ४८ ॥ देवता और महर्षियोके सहित भगवान् इन्द्र अति हर्षित हुए। उस समय आकाशमण्डलमे भी देवताओके नगाडोका शब्द सुनायी देने लगा ॥ ४९ ॥ रावणके पुत्र मेघनादको मारा गया देख सर्वत्र जय-जयकार शब्द भर गया। आकाश निर्मल हो गया और जगद्धात्री धरणी स्थिर हो गयी ॥ ५० ॥ जब लक्ष्मणजीकी थकान उतर गयी तो उन्होने शङ्ख बजाकर रणभूमिको गुञ्जायमान कर दिया और फिर भयङ्कर सिहनाद कर अपने धनुषकी टङ्कार की ॥ ५१ ॥ उस सिहनादसे समस्त वानरगण अति आनन्दित और श्रमहीन हो गये। फिर प्रसन्नचित्त वानर-वीरोसे प्रशसित होते हुए श्रीलक्ष्मणजीने उन सबके साथ प्रसन्न-मनसे श्रीरघुनाथजीके पास आ उनका दर्शन किया। श्रीलक्ष्मणजीने हनुमान् और विभीषणके सहित अति विनयपूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्राता साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् रामको प्रणाम कर कहा—''हे रघुश्रेष्ठ! आपकी कृपासे इन्द्रजित् युद्धमे मारा गया'' ॥ ५२—५४ ॥

लक्ष्मणजीके ये भक्तिमय वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी-ने अति प्रसन्न होकर उनका आलिङ्गन किया और फिर प्रेमपूर्वक सिर सूँघकर कहा— ॥ ५५ ॥

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म ते दुष्कर कृतम् ।
मेघनादस्य निधने जित सर्वमरिन्दम ॥ ५६ ॥

अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीर कथञ्चिद्विनिपातित ।
नि सपत्न कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावण ॥ ५७ ॥

पुत्रशोकान्मया योद्धु त हनिष्यामि रावणम् ॥ ५८ ॥

मेघनाद हत श्रुत्वा लक्ष्मणेन महाबलम् ।
रावण पतितो भूमौ मूर्च्छित पुनरुत्थित ।
विललापातिदीनात्मा पुत्रशोकेन रावण ॥ ५९ ॥

पुत्रस्य गुणकर्माणि सस्मरन्पर्यदेवयत् ।
अद्य देवगणा सर्वे लोकपाला महर्षय ॥ ६० ॥

हतमिन्द्रजित ज्ञात्वा सुख स्वप्स्यन्ति निर्भया ।
इत्यादि बहुश पुत्रलालसो विललाप ह ॥ ६१ ॥

तत परमसक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिप ।
उवाच राक्षसान्सर्वान्निनाशयिषुराहवे ॥ ६२ ॥

स पुत्रवधसन्तप्त शूर क्रोधवश गत ।
सवीक्ष्य रावणो बुद्ध्या हन्तु सीता प्रदुद्रुवे ॥ ६३ ॥

खड्गपाणिमथायान्त क्रुद्ध दृष्ट्वा दशाननम् ।
राक्षसीमध्यगा सीता भयशोकाकुलाभवत् ॥ ६४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य सचिवो बुद्धिमान् शुचि ।
सुपार्श्वो नाम मेधावी रावण वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥

ननु नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ।
वेदविद्याव्रतस्नात स्वकर्मपरिनिष्ठित ॥ ६६ ॥

अनेकगुणसम्पन्न कथ स्त्रीवधमिच्छसि ।
अस्माभि सहितो युद्धे हत्वा राम च लक्ष्मणम् ।
प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्त स न्यवर्तत ॥ ६७ ॥

ततो दुरात्मा सुहृदा निवेदित
वच सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावण ।

लक्ष्मण ! तुम धन्य हो। मै तुम्हारे इस कार्यसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, आज तुमने बडा ही कठिन कार्य किया है। हे शत्रुदमन ! इस मेघनादके मारे जानेसे हमने मानो सभी कुछ जीत लिया ॥ ५६ ॥ तुमने तीन दिन और तीन रात्रितक निरन्तर सग्राम कर किसी प्रकार उस महान् योद्धाको मार डाला। इससे आज तुमने मुझे शत्रुहीन कर दिया। अब पुत्र-शोकसे व्याकुल हुआ रावण मुझसे लडने आयगा, सो उसे मै मार डालूँगा'' ॥ ५७-५८ ॥

महाबली मेघनादको लक्ष्मणजीद्वारा मारा गया सुन रावण मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडा और फिर मूर्च्छासे उठनेपर पुत्र-शोकसे अत्यन्त दीन होकर विलाप करने लगा ॥ ५९ ॥ पुत्रके गुण और कर्मोका स्मरण कर वह अत्यन्त शोक करने लगा। 'आज समस्त देवता, लोकपाल और महर्षिगण इन्द्रजित्को मारा गया सुनकर निर्भयतापूर्वक सुखसे सोयेगे' इस प्रकार पुत्रकी आसक्तिवश वह भॉति-भॉतिसे विलाप करने लगा ॥ ६०-६१ ॥ तदनन्तर राक्षसराज रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने शत्रुओको युद्धमे नष्ट करानेकी कामनासे समस्त राक्षसोसे बातचीत करने लगा ॥ ६२ ॥

फिर, शूरवीर रावण पुत्र-शोकसे व्याकुल हो अपनी बुद्धिसे कुछ सोचकर क्रोधपूर्वक सीताजीको मारनेके लिये दौडा (अर्थात् शोक और क्रोधके कारण वह ऐसे निन्द्य कर्मको ही अपना कर्तव्य मान बैठा) ॥ ६३ ॥ रावणको हाथमे खड्ग लिये क्रोधपूर्वक अपनी ओर आता देख राक्षसियोके बीचमे बैठी हुई सीताजी भयभीत हो गयी ॥ ६४ ॥ इसी समय रावणके सुपार्श्व नामक मन्त्रीने, जो परम बुद्धिमान्, शुद्धहृदय और विचारवान् था, उससे कहा— ॥ ६५ ॥ ''अहो दशानन ! यह क्या ? आप तो साक्षात् विश्रवानन्दन कुबेरजीके छोटे भाई है, वेदविद्यामे निपुण और यज्ञान्तमे स्नान करनेवाले एव स्वधर्मपरायण हैं ॥ ६६ ॥ इस प्रकार अनेक गुणसम्पन्न होकर भी आप स्त्री-वध करना कैसे चाहते है ? हम सबको साथ लेकर आप राम और लक्ष्मणको युद्धमे मारकर बहुत शीघ्र जानकीको प्राप्त कर लेगे।'' सुपार्श्वके इस प्रकार समझानेपर रावण लौट आया ॥ ६७ ॥

तदनन्तर दुरात्मा रावण अपने बन्धुके कहे हुए धर्मानुकूल वाक्योको ग्रहणकर शोकसे मूढबुद्धि हो तुरत

गृह जगामाशु शुचा विमूढधी
पुन सभा च प्रययौ सुहृद्वृत ॥ ६८ ॥

अपने घर गया और फिर दूसरे दिन अपने बन्धु-बान्धवोके साथ सभामे आया ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे नवम सर्ग ॥ ९ ॥

दशम सर्ग

रावणका यज्ञ-विध्वस तथा उसका मन्दोदरीको समझाना

श्रीमहादेव उवाच

स विचार्य सभामध्ये राक्षसै सह मन्त्रिभि ।
निर्ययौ येऽवशिष्टास्तै राक्षसै सह राघवम् ॥ १ ॥

शलभ शलभैर्युक्त प्रज्वलन्तमिवानलम् ।
ततो रामेण निहता सर्वे ते राक्षसा युधि ॥ २ ॥

स्वय रामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेन वक्षसि ।
व्यथितस्त्वरित लङ्का प्रविवेश दशानन ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा रामस्य बहुश पौरुष चाप्यमानुषम् ।
रावणो मारुतेश्चैव शीघ्र शुक्रान्तिक ययौ ॥ ४ ॥

नमस्कृत्य दशग्रीव शुक्र प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
भगवन् राघवेणैव लङ्का राक्षसयूथपै ॥ ५ ॥

विनाशिता महादैत्या निहता पुत्रबान्धवा ।
कथ मे दु खसन्दोहस्त्वयि तिष्ठति सद्गुरौ ॥ ६ ॥

इति विज्ञापितो दैत्यगुरु प्राह दशाननम् ।
होम कुरु प्रयत्नेन रहसि त्व दशानन ॥ ७ ॥

यदि विघ्नो न चेद्धोमे तर्हि होमानलोत्थित ॥ ८ ॥

महान् रथश्च वाहाश्च चापतूणीरसायका ।
सम्भविष्यन्ति तैर्युक्तस्त्वमजेयो भविष्यसि ॥ ९ ॥

गृहाण मन्त्रान्मद्दत्तान् गच्छ होम कुरु द्रुतम् ।
इत्युक्तस्त्वरित गत्वा रावणो राक्षसाधिप ॥ १० ॥

गुहा पातालसदृशीं मन्दिरे स्वे चकार ह ।
लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नत ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! फिर रावण सभामे अपने राक्षस-मन्त्रियोके साथ विचार कर पतङ्ग जिस प्रकार अन्यान्य पतङ्गोके साथ प्रज्वलित अग्निपर गिरता है, उसी प्रकार बचे-खुचे राक्षसोको लेकर रघुनाथजीके पास चला, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने उन समस्त राक्षसोको युद्धमे मार डाला ॥ १-२ ॥ और स्वय रावण भी हृदयमे भगवान् रामका तीक्ष्ण बाण लगनेसे व्याकुल हो तुरत लङ्कामे लौट आया ॥ ३ ॥

भगवान् राम और हनुमान्‌जीके बहुत-से अतिमानुष पौरुष देखकर रावण अति शीघ्रतासे शुक्राचार्यजीके पास गया ॥ ४ ॥ और उन्हे नमस्कार कर वह हाथ जोडकर कहने लगा—"भगवन् ! रामने समस्त राक्षस-यूथपोके सहित लङ्कापुरी नष्ट कर दी और जितने बडे-बडे दैत्य और मेरे बन्धु-बान्धव थे वे सभी मार डाले। आप-जैसे सद्गुरुके रहते हमे यह महान् दु ख क्यो देखना पडा ?" ॥ ५-६ ॥ रावणके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने उससे कहा—"हे दशानन ! तुम जैसे हो सके वैसे किसी एकान्त देशमे हवन करो ॥ ७ ॥ यदि तुम्हारे हवनमे कोई विघ्न न हुआ तो उस होमाग्निसे एक बहुत बडा रथ, घोडे, धनुष, तरकश और बाण उत्पन्न होगे। उन्हे पाकर तुम अजेय हो जाओगे ॥ ८-९ ॥ मेरे दिये हुए मन्त्रोको ग्रहण करो और इनसे तुरत जाकर हवन करो।"

शुक्राचार्यजीके इस प्रकार कहनेपर राक्षसराज रावणने तुरत ही जाकर अपने महलमे एक पातालके समान गम्भीर गुहा तैयार करायी और बडी सावधानीसे लङ्काके सब

होमद्रव्याणि सम्पाद्य यान्युक्तान्यभिचारिके ।
गुहा प्रविश्य चैकान्ते मौनी होम प्रचक्रमे ॥ १२ ॥

उत्थित धूममालोक्य महान्त रावणानुज ।
रामाय दर्शयामास होमधूम भयाकुल ॥ १३ ॥

पश्य राम दशग्रीवो होम कर्तुं समारभत् ।
यदि होम समाप्त स्यात्तदाजेयो भविष्यति ॥ १४ ॥

अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाशु हरीश्वरान् ।
तथेति राम सुग्रीवसम्मतेनाङ्गद कपिम् ॥ १५ ॥

हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेश महाबलान् ।
प्राकार लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम् ॥ १६ ॥

दशकोट्य प्लवङ्गाना गत्वा मन्दिररक्षकान् ।
चूर्णयामासुरश्वाश्च गजाश्च न्यहनन् क्षणात् ॥ १७ ॥

ततश्च सरमा नाम प्रभाते हस्तसज्ञया ।
विभीषणस्य भार्या सा होमस्थानमसूचयत् ॥ १८ ॥

गुहापिधानपाषाणमङ्गद पादघट्टनै ।
चूर्णयित्वा महासत्त्व प्रविवेश महागुहाम् ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा दशानन तत्र मीलिताक्ष दृढासनम् ।
ततोऽङ्गदाज्ञया सर्वे वानरा विविशुर्द्रुतम् ॥ २० ॥

तत्र कोलाहल चक्रुस्ताडयन्तश्च सेवकान् ।
सम्भारांश्चिक्षिपुस्तस्य होमकुण्डे समन्तत ॥ २१ ॥

स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलाद्रुषा ।
तेनैव सञ्जघानाशु हनूमान् प्लवगाग्रणी ॥ २२ ॥

घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्तत ।
न जहौ रावणो ध्यान हतोऽपि विजिगीषया ॥ २३ ॥

प्रविश्यान्त पुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तर ।
समानयत्केशबन्धे धृत्वा मन्दोदरीं शुभाम् ॥ २४ ॥

द्वारोके फाटक आदि बद करा दिये ॥ १०-११ ॥ तथा शास्त्रोमे अभिचार कर्मोकी जो-जो हवन-सामग्रियाँ बतायी गयी हैं वे सब एकत्रित की और गुहामे घुसकर एकान्तमे मौनावलम्बनपूर्वक होम करने लगा ॥ १२ ॥

तब रावणके छोटे भाई विभीषणने बडा भारी धुआँ उठते देख अति भयभीत हो उसे श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया ॥ १३ ॥ (और कहा—) "हे राम ! देखिये, दशशीशने हवन करना आरम्भ किया है, यदि यह हवन (निर्विघ्न) समाप्त हो गया तो वह अजेय हो जायगा ॥ १४ ॥ अत इसमे विघ्न डालनेके लिये शीघ्र ही वानर-सेनापतियोको भेजिये।" तब रघुनाथजीने 'अच्छा' कहकर सुग्रीवकी सम्मतिसे कपिवर अङ्गद और हनुमान् आदि महाबलवान् वानर-वीरोको आज्ञा दी। वे सब नगरके परकोटेको लाँघकर रावणके महलपर पहुँचे ॥ १५-१६ ॥ इन दस करोड वानरोने वहाँ पहुँचकर महलके द्वारपालोको चूर्ण कर डाला और एक क्षणमे ही बहुत-से घोडो तथा हाथियोका सहार कर दिया ॥ १७ ॥

(इस प्रकार लङ्कामे रातभर बडा भारी कोलाहल मचा रहा।) प्रात काल होते ही विभीषणकी भार्या सरमाने हाथके सकेतसे होमस्थान बतला दिया ॥ १८ ॥ गुहाको ढँकनेके लिये उसके मुखपर रखे हुए पत्थरको महापराक्रमी अङ्गद पैरकी ठोकरसे चूर-चूरकर उस महाकन्दरामे घुस गये ॥ १९ ॥ वहाँ उन्होने रावणको नेत्र मूँदे, दृढ आसन लगाये बैठे देखा। तदनन्तर अङ्गदजीकी आज्ञासे समस्त वानरगण तुरत उस गुहामे घुस गये ॥ २० ॥ गुहामे घुसकर वे सेवकोको पीटने और बडा भारी कोलाहल करने लगे तथा जहाँ-तहाँ रखी हुई यज्ञ-सामग्रीको उन्होने हवनकुण्डमे डाल दिया ॥ २१ ॥ वानराग्रणी हनुमान्‌जीने अति रोषपूर्वक बलात् रावणके हाथसे स्रुवा छीनकर उसीसे उसपर आघात किया ॥ २२ ॥ वानरगण रावणपर इधर-उधरसे दाँतो और लकडियोसे प्रहार कर रहे थे, किन्तु उसने विजयकी कामनासे इस प्रकार आहत होनेपर भी अपना ध्यान नही छोडा ॥ २३ ॥

अब अत्यन्त वेगवान् अङ्गदजी अन्त पुरमे जाकर तुरत ही शुभलक्षणा मन्दोदरीको चोटी पकडकर ले

रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत् ।
विददाराङ्गदस्तस्या कञ्चुक रत्नभूषितम् ॥ २५ ॥

मुक्ता विमुक्ता पतिता समन्ताद्रत्नसञ्चयै ।
श्रोणिसूत्र निपतित त्रुटित रत्नचित्रितम् ॥ २६ ॥

कटिप्रदेशाद्विस्रस्ता नीवी तस्यैव पश्यत ।
भूषणानि च सर्वाणि पतितानि समन्तत ॥ २७ ॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टै प्लवङ्गमै ।
मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम् ॥ २८ ॥

क्रोशन्ती करुण दीना जगाद दशकन्धरम् ।
निर्लज्जोऽसि परैरेव केशपाशे विकृष्यते ॥ २९ ॥

भार्या तवैव पुरत किं जुहोषि न लज्जसे ।
हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभि ॥ ३० ॥

मर्तव्य तेन तत्रैव जीवितान्मरण वरम् ।
हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते बत वानरै ॥ ३१ ॥

त्वयि जीवति मे दु खमीदृश च कथ भवेत् ।
भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया ॥ ३२ ॥

श्रुत्वा तद्देवित राजा मन्दोदर्या दशानन ।
उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन् ॥ ३३ ॥

जघानाङ्गदमव्यग्र कटिदेशे दशानन ।
तदोत्सृज्य ययु सर्वे विध्वस्य हवन महत् ॥ ३४ ॥

रामपार्श्वमुपागम्य तस्थु सर्वे प्रहर्षिता ॥ ३५ ॥

रावणस्तु ततो भार्यामुवाच परिसान्त्वयन् ।
दैवाधीनमिद भद्रे जीवता किं न दृश्यते ।
त्यज शोक विशालाक्षि ज्ञानमालम्ब्य निश्चितम् ॥ ३६ ॥

अज्ञानप्रभव शोक शोको ज्ञानविनाशकृत् ।
अज्ञानप्रभवाहन्धी शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३७ ॥

तन्मूल पुत्रदारादिसम्बन्ध ससृतिस्तत ।
हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादय ॥ ३८ ॥

आये ॥ २४ ॥ और रावणके सामने ही उन्होने अनाथके समान विलाप करती हुई मन्दोदरीकी रत्नजटित कञ्चुकी (चोली) फाड डाली ॥ २५ ॥ उसके मोती टूट-टूटकर रत्नसमूहके सहित सब ओर बिखर गये, (इसी प्रकार) मन्दोदरीकी रत्नजटित करधनी भी टूटकर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ २६ ॥ रावणके देखते-देखते ही उसके अधोवस्त्रका बन्धन ढीला पडकर कटि-प्रदेशसे खिसक गया और समस्त आभूषण जहाँ-तहाँ गिर गये ॥ २७ ॥ ऐसे ही अन्यान्य वानरगण भी कुतूहलवश देव और गन्धर्व आदिकी कन्याओको (जो रावणकी पत्नियाँ थी) पकड लाये। तब मन्दोदरी रावणके सामने अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ २८ ॥ और करुणावश अति दीन होकर रावणसे कहने लगी, "अहो ! तुम बडे निर्लज्ज हो। तुम्हारे सामने ही शत्रुगण तुम्हारी भार्याको चोटी पकडकर खीच रहे है, और फिर भी तुम हवन कर रहे हो ! क्या तुम्हे लज्जा नही आती ? जिसकी भार्याको उसीके सामने पापी शत्रुगण मारते हो उसे तो वही मर जाना चाहिये। उसके जीनेसे तो मरना ही अच्छा है। हा मेघनाद ! आज तेरी माता वानरोके हाथोमे पडकर क्लेश पा रही है ? ॥ २९—३१ ॥ बेटा ! तेरे जीते रहनेपर मुझे यह दु ख क्यो देखना पडता ? मेरे पतिने तो अपना जीवन बचानेके लिये अपनी स्त्री और लज्जासे भी मुँह मोड लिया है !" ॥ ३२ ॥

मन्दोदरीका यह विलाप सुनकर राक्षसराज रावण हाथमे खड्ग लेकर 'अरे, देवीको छोडो' यो कहता हुआ उठा ॥ ३३ ॥ रावणने उठते ही अङ्गदजीकी कमरमे प्रहार किया। तब समस्त वानरगण उसका महायज्ञ विध्वस कर वहाँसे चल दिये ॥ ३४ ॥ और सब-के-सब अति प्रसन्न हो रघुनाथजीके पास आ उपस्थित हुए ॥ ३५ ॥

तब रावण अपनी भार्या मन्दोदरीको ढाँढस बँधाते हुए बोला—'हे कल्याणि ! ये सुख-दु खादि दैवके अधीन है—जीता हुआ प्राणी क्या नही देखता ? अत हे विशालनयनि ! इस निश्चित ज्ञानका आश्रयकर तुम शोक छोड दो ॥ ३६ ॥ शोक अज्ञानसे होता है और वह ज्ञानको नष्ट कर देता है। शरीरादि अनात्म-पदार्थोमे अह-बुद्धि भी अज्ञानसे ही होती है ॥ ३७ ॥ इस मिथ्या अहकारके कारण ही पुत्र, स्त्री आदिका सम्बन्ध होता है और इन सम्बन्धोमे आस्था होनेसे ही, जन्म-मरणरूप ससार तथा

अज्ञानप्रभवा ह्येते जन्ममृत्युजरादय ।
आत्मा तु केवल शुद्धो व्यतिरिक्तो ह्यलेपक ॥ ३९ ॥

आनन्दरूपो ज्ञानात्मा सर्वभावविवर्जित ।
न सयोगो वियोगो वा विद्यते केनचित्सत ॥ ४० ॥

एव ज्ञात्वा स्वमात्मान त्यज शोकमनिन्दिते ।
इदानीमेव गच्छामि हत्वा राम सलक्ष्मणम् ॥ ४१ ॥

आगमिष्यामि नोचेन्मा दारयिष्यति सायकै ।
श्रीरामो वज्रकल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पदम् ॥ ४२ ॥

तदा त्वया मे कर्तव्या क्रिया मच्छासनात्प्रिये ।
सीता हत्वा मया सार्धं त्व प्रवेक्ष्यसि पावकम् ॥ ४३ ॥

एव श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्यातिदु खिता ।
उवाच नाथ मे वाक्य शृणु सत्य तथा कुरु ॥ ४४ ॥

शक्यो न राघवो जेतु त्वया चान्यै कदाचन ।
रामो देववर साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वर ॥ ४५ ॥

मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनु वैवस्वत प्रभु ।
ररक्ष सकलापद्भ्यो राघवो भक्तवत्सल ॥ ४६ ॥

राम कूर्मोऽभवत्पूर्व लक्षयोजनविस्तृत ।
समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम् ॥ ४७ ॥

हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना ।
क्रोडरूपेण वपुषा क्षोणीमुद्धरता क्वचित् ॥ ४८ ॥

त्रिलोककण्टक दैत्य हिरण्यकशिपु पुरा ।
हतवान्नारसिहेन वपुषा रघुनन्दन ॥ ४९ ॥

विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलि बद्ध्वा जगत्त्रयम् ।
आक्रम्यादात्सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तम ॥ ५० ॥

राक्षसा क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भरावहा ।
तान्हत्वा बहुशो रामो भुव जित्वा ह्यदान्मुने ॥ ५१ ॥

स एव साम्प्रत जातो रघुवशे परात्पर ।
भवदर्थे रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागत ॥ ५२ ॥

हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह और स्पृहा आदि होते हैं ॥ ३८ ॥ ये जन्म, मृत्यु और जरा आदि अवस्थाएँ अज्ञानजन्य ही है। आत्मा तो एकमात्र, शुद्ध, सबसे पृथक् और असग है ॥ ३९ ॥ वह आनन्दस्वरूप, ज्ञानमय और समस्त भावोसे रहित है। उस सत्यस्वरूपका कभी किसीसे सयोग-वियोग नही होता ॥ ४० ॥ हे अनिन्दिते ! अपने आत्माका ऐसा स्वरूप जानकर तुम शोक छोड दो, मै अभी जाता हूँ, और या तो लक्ष्मणसहित रामको मारकर ही आऊँगा या श्रीराम ही अपने वज्रसदृश बाणोसे मुझे छिन्न-भिन्न कर देगे। तब मै उनके पदको प्राप्त होऊँगा ॥ ४१-४२ ॥ हे प्रिये ! मेरी आज्ञासे तब तुम मेरे लिये एक काम करना, तुम सीताको मारकर मेरे [शवके] साथ अग्निमे प्रवेश कर जाना" ॥ ४३ ॥

रावणके ये वचन सुनकर मन्दोदरीने अति दु खित होकर कहा—"प्रभो ! मै आपसे ठीक-ठीक बात कहती हूँ, आप उसे सुनकर वैसा ही कीजिये ॥ ४४ ॥ राम तुमसे अथवा और भी किसीसे कभी नही जीते जा सकते। देवाधिदेव भगवान् राम साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियामक है ॥ ४५ ॥ भक्तवत्सल रघुनाथजीने ही कल्पके आरम्भमे मत्स्यरूप होकर वैवस्वतमनुकी समस्त आपत्तियोसे रक्षा की थी ॥ ४६ ॥ भगवान् राम ही पूर्वकालमे एक लक्ष्य योजन विस्तारवाले कच्छप हुए थे और समुद्र-मन्थनके समय इन्हींने अपनी पीठपर सुमेरु पर्वतको धारण किया था ॥ ४७ ॥ किसी समय वराहरूप धारण कर पृथ्वीका उद्धार करते समय इन्ही महात्माने महादुराचारी हिरण्याक्ष दैत्यको मारा था ॥ ४८ ॥ इन रघुनन्दनने ही नृसिह-शरीरसे त्रिलोकीके कण्टकरूप हिरण्यकशिपु दैत्यको मारा था ॥ ४९ ॥ और इन्ही रघुश्रेष्ठने (वामन-अवतारमे) बलिको बाँधकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको तीन ही पगोसे मापकर अपने सेवक इन्द्रको द दिया था ॥ ५० ॥ जिस समय राक्षसगण क्षत्रियरूपसे उत्पन्न होकर पृथ्वीके भाररूप हुए तब इन्हीने परशुरामरूपसे उन्हे कई बार सग्राममे मारा और पृथ्वीको जीतकर उसे कश्यपमुनिको दे दिया ॥ ५१ ॥ इस समय वे ही परात्पर प्रभु रघुवशमे रामरूपसे अवतीर्ण होकर आपके लिये मनुष्यरूप हुए है ॥ ५२ ॥

तस्य भार्या किमर्थं वा हृता सीता वनाद्बलात्।
मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्यापि निधनाय च॥ ५३॥

इतः परं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे।
विभीषणाय राज्यं तु दत्त्वा गच्छामहे वनम्॥ ५४॥

मन्दोदरीवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
कथं भद्रे रणे पुत्रान् भ्रातॄन् राक्षसमण्डलम्॥ ५५॥

घातयित्वा राघवेण जीवामि वनगोचरः।
रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः॥ ५६॥

विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम्।
जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम्।
ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात्॥ ५७॥

रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम्।
विमुच्य त्वां तु संसारादृमिष्यामि सह प्रिये॥ ५८॥

परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः।
तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे॥ ५९॥

प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम्॥ ६०॥

क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुतं भ्रमाढ्यं
दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम्।
और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं
संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि॥ ६१॥

आपने उनकी स्त्री सीताको मेरे पुत्रके नाशके लिये और अपनी भी मौत बुलानेके लिये भला, बलात् तपोवनसे क्यों चुरा लिया? ॥ ५३ ॥ आप अब भी जानकीको रघुनाथजीके पास भेज दीजिये, फिर विभीषणको राज्य देकर हम वनको चलेंगे'' ॥ ५४ ॥

मन्दोदरीके वचन सुनकर रावण बोला—''अयि भद्रे! युद्धमें रघुनाथजीसे अपने पुत्र, भ्राता और राक्षस-समूहका नाश कराकर भला मैं वनवासी होकर कैसे जीवन काट सकता हूँ? अब तो मैं भी रामके साथ युद्ध करूँगा और उनके शीघ्रगामी बाणोंसे विद्ध होकर उन विष्णुभगवान्‌के परमधामको जाऊँगा। मैं रामको साक्षात् विष्णु और जानकीको भगवती लक्ष्मी जानता हूँ। और यह जानकर ही कि 'रामके हाथसे मरकर उनका परम-पद प्राप्त करूँगा' मैं जनकनन्दिनी सीताको बलात् तपोवनसे ले आया था। हे प्रिये! अब मैं तुम्हें छोड़कर अपने अन्यान्य राक्षस-वीरोंके साथ संसारसे कूच करूँगा॥ ५५—५८॥ और मुमुक्षुगण जिस परमानन्दमयी विशुद्ध गतिका सेवन करते हैं, संग्राममें भगवान् रामके हाथसे मरकर मैं उसी गतिको प्राप्त करूँगा॥ ५९॥ इस प्रकार अपने समस्त पाप-पुञ्जका प्रक्षालन कर मैं दुर्लभ मोक्ष-पद प्राप्त करूँगा॥ ६०॥ जिसमें (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक) पाँच क्लेश ही तरंगें हैं, भ्रम ही भँवरें हैं, स्त्री, पुत्र, स्वजन, विभव और बन्धु आदि मत्स्य हैं, अपना क्रोध ही बड़वानल है तथा जिसके भीतर कामरूपी जाल फैला हुआ है, उस संसार-सागरको पार कर अब मैं श्रीहरिके निकट जाऊँगा'' ॥ ६१ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे दशमः सर्गः॥ १०॥

★

एकादश सर्ग

राम-रावण-संग्राम और रावणका वध

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा राज्ञीं मन्दोदरीं तदा।
रावणः प्रययौ योद्धुं रामेण सह संयुगे॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! महारानी मन्दोदरीको प्रेमपूर्वक इस प्रकार समझा-बुझाकर रावण श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करनेके लिये रणभूमिको

दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः ।
चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूबरम् ॥ २ ॥

पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तं भयावहम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रसहितं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ३ ॥

निश्चक्रामाथ सहसा रावणो भीषणाकृतिः ।
आयान्तं रावणं दृष्ट्वा भीषणं रणकर्कशम् ॥ ४ ॥

सन्त्रस्ताभूत्तदा सेना वानरी रामपालिता ॥ ५ ॥

हनूमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ ।
आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥ ६ ॥

मुष्टिबन्धं दृढं बद्ध्वा ताडयामास वेगतः ।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्रथे ॥ ७ ॥

मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः ।
उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः ॥ ८ ॥

हनूमानाह तं धिङ्मां यस्त्वं जीवसि रावण ।
त्वं तावन्मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण ॥ ९ ॥

पश्चान्मया हतः प्राणान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः ।
तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनापि ताडितः ॥ १० ॥

विघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ ।
सञ्ज्ञामवाप्य कपिराड् रावणं हन्तुमुद्यतः ॥ ११ ॥

ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः ।
हनूमानङ्गदश्चैव नलो नीलस्तथैव च ॥ १२ ॥

चत्वारः समवेत्याग्रे दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
अग्निवर्णं तथा सर्परोमाणं खड्गरोमकम् ॥ १३ ॥

तथा वृश्चिकरोमाणं निर्जघ्नुः क्रमशोऽसुरान् ।
चत्वारश्चतुरो हत्वा राक्षसान् भीमविक्रमान् ।
सिंहनादं पृथक् कृत्वा रामपार्श्वमुपागताः ॥ १४ ॥

चला ॥ १ ॥ वह महाभयंकर राक्षसोंसे घिरकर एक सुदृढ़ रथपर सवार हुआ। उस रथमें सोलह पहिये तथा वरूथ[1] और कूबर[2] लगे हुए थे ॥ २ ॥ वह पिशाचके समान मुखवाले गधोंके जुते रहनेसे अति भयानक जान पड़ता था तथा सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एवं समस्त युद्ध-सामग्रीसे सम्पन्न था ॥ ३ ॥ इस प्रकार महाभयंकर राक्षसराज रावण लङ्कापुरीसे निकला।

युद्धमें अत्यन्त निष्ठुर भीषणाकार रावणको आता देख भगवान् -रामसे सुरक्षित वानर-सेना भयभीत हो गयी ॥ ४-५ ॥ तब हनुमान्‌जी रावणसे युद्ध करनेके लिये उछलकर सामने आये। वहाँ आते ही अतुलित पराक्रमी पवनकुमारने कसकर मुट्ठी बाँधी और बड़े वेगसे उस राक्षसकी छातीमें प्रहार किया। उस घूँसेके लगते ही वह रथमें घुटनोंके बल गिर गया ॥ ६-७ ॥ एक मुहूर्त मूर्च्छित रहनेके अनन्तर रावणको फिर चेत हुआ। तब उसने हनुमान्‌जीसे कहा—"मैं मानता हूँ, तू वास्तवमें बड़ा शूरवीर है" ॥ ८ ॥

हनुमान्‌जीने कहा—"अरे रावण! मुझे धिक्कार है कि (मेरा घूँसा खाकर भी) तू जीता रह गया। अच्छा, अब तू मेरी छातीमें घूँसा मार ॥ ९ ॥ फिर मेरा घूँसा लगनेपर तू प्राण छोड़ देगा, इसमें सन्देह नहीं।" तब रावणने 'अच्छा' ऐसा कहकर उनकी छातीमें घूँसा मारा ॥ १० ॥ उसके लगनेसे उनके नेत्र घूमने लगे और वे कुछ तिलमिला उठे। फिर चेत होनेपर कपिराज हनुमान्‌जी रावणको मारनेके लिये तैयार हुए ॥ ११ ॥ तब राक्षसराज रावण भयभीत होकर कहीं अन्यत्र चला गया। हनुमान्, अङ्गद, नल और नील इन—चारोंने एकत्र होकर अपने सामने अग्निवर्ण, सर्परोमा, खड्गरोमा और वृश्चिकरोमा नामक चार राक्षसोंको खड़े देखा। तब उन चारोंने क्रमशः इन चारों महापराक्रमी राक्षसोंको मार डाला और फिर पृथक्-पृथक् गरजते हुए श्रीरघुनाथजीके पास आ खड़े हुए ॥ १२—१४ ॥

१—रथकी रक्षाके लिये बना हुआ लोहे आदिका आवरण। २—रथका वह भाग जिसपर जूआ बाँधा जाता है।

तत क्रुद्धो दशग्रीव सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ १५ ॥

विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत ।
दशग्रीवो रथस्थस्तु राम वज्रोपमै शरै ॥ १६ ॥

आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयद ।
रामस्य पुरत सर्वान्वानरानपि विव्यथे ॥ १७ ॥

तत पावकसङ्काशै शरै काञ्चनभूषणै ।
अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीव समाहित ॥ १८ ॥

रथस्थ रावण दृष्ट्वा भूमिष्ठ रघुनन्दनम् ।
आहूय मातलि शक्रो वचन चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

रथेन मम भूमिष्ठ शीघ्र याहि रघूत्तमम् ।
त्वरित भूतल गत्वा कुरु कार्य ममानघ ॥ २० ॥

एवमुक्तोऽथ त नत्वा मातलिर्देवसारथि ।
ततो हयैश्च सयोज्य हरितै स्यन्दनोत्तमम् ॥ २१ ॥

स्वर्गाज्जयार्थ रामस्य ह्युपचक्राम मातलि ।
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ॥ २२ ॥

रथोऽय देवराजस्य विजयाय तव प्रभो ।
प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्र च भूषितम् ॥ २३ ॥

अभेद्य कवच खड्ग दिव्यतूणीयुग तथा ।
आरुह्य च रथ राम रावण जहि राक्षसम् ॥ २४ ॥

मया सारथिना देव वृत्र देवपतिर्यथा ।
इत्युक्तस्त परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥ २५ ॥

आरुरोह रथ रामो लोकॉल्लक्ष्म्या नियोजयन् ।
ततोऽभवन्महायुद्ध भैरव रोमहर्षणम् ॥ २६ ॥

महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमत ।
आग्नेयेन च आग्नेय दैव दैवेन राघव ॥ २७ ॥

अस्त्र राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
ततस्तु ससृजे घोर राक्षस चास्त्रमस्त्रवित् ।
क्रोधेन [illegible] रावण ॥ २८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रूर दशग्रीव (रावण) क्रुद्ध होकर दाँतोसे ओठ चबाता हुआ आँखे फाडकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर ही दौडा। रावण रथमे चढा हुआ था (और श्रीरघुनाथजी रथहीन थे, तो भी) वह, मेघ जिस प्रकार जलकी धाराएँ बरसाता है वैसे ही महाभयकर वज्र-सदृश बाणोसे श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करने लगा और भगवान् रामके सामने ही उसने समस्त वानरोको भी व्यथित कर दिया ॥ १५—१७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी भी सावधान होकर रणभूमिमे रावणपर अग्निके समान तेजस्वी सुवर्ण-भूषित बाणोकी वर्षा करने लगे। इन्द्रने जब देखा कि रावण रथपर चढा हुआ है और श्रीरघुनाथजी पृथिवीपर ही खडे है तो उसने अपने सारथि मातलिको बुलाकर कहा— ॥ १८-१९ ॥ "हे अनघ! देखो रघुनाथजी पृथिवीपर खडे है, तुम तुरत मेरा रथ लेकर भूर्लोकमे उनके पास जाओ और मेरा कार्य करो" ॥ २० ॥

इन्द्रकी यह आज्ञा पाकर देवसारथि मातलिने उन्हे नमस्कार किया और उनके उत्तम रथमे हरे रगके घोडे जोतकर भगवान् रामकी विजयके लिये स्वर्गसे चलकर उनके पास उपस्थित हुआ तथा उनसे हाथ जोडकर बोला—"हे रघुश्रेष्ठ! मुझे देवराज इन्द्रने भेजा है ॥ २१-२२ ॥ हे प्रभो! यह रथ इन्द्रका ही है, इसे उन्होने आपकी विजयके लिये भेजा है। हे महाराज! इसके साथ ही यह अति शोभायमान ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भी भेजे है। हे राम! मुझ सारथिके साथ, इन्द्रने जिस प्रकार वृत्रासुरका वध किया था उसी प्रकार हे देव! आप इस रथपर आरूढ होकर राक्षस रावणका वध कीजिये।"

मातलिके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया ॥ २३—२५ ॥ और सम्पूर्ण लोकोको श्रीसम्पन्न करते हुए उसपर आरूढ हुए। फिर महात्मा राम और बुद्धिमान् रावणका महाभयानक और रोमाञ्चकारी घोर युद्ध होने लगा। अस्त्र-विद्यामे परम कुशल श्रीरामचन्द्रजीने रावणके आग्नेयास्त्रको आग्नेयास्त्रसे और दैवास्त्रको दैवास्त्रसे काट डाला। तब अस्त्रविद्याविशारद रावणने अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो श्रीरामचन्द्रजीपर महाभयकर राक्षसास्त्र छोडा ॥ २६—२८ ॥

रावणस्य धनुर्मुक्ता सर्पा भूत्वा महाविषा ।
शरा काञ्चनपुङ्खाभा राघव परितोऽपतन् ॥ २९ ॥

तै शरै सर्पवदनैर्वमद्भिरनल मुखै ।
दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाभवन् ॥ ३० ॥

राम सर्पास्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान् ।
सौपर्णमस्त्र तद्घोर पुर प्रावर्तयद्रणे ॥ ३१ ॥

रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिण ।
चिच्छिदु सर्पबाणास्तान्समन्तात्सर्पशत्रव ॥ ३२ ॥

अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धर ।
अभ्यवर्षत्ततो राम घोराभि शरवृष्टिभि ॥ ३३ ॥

तत पुन शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा तु घोरेण मातलि प्रत्यविध्यत ॥ ३४ ॥

पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतु च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावण क्रोधमूर्च्छित ॥ ३५ ॥

विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणा पितरस्तथा ।
आर्त्ताकार हरि दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षय ॥ ३६ ॥

व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवु सविभीषणा ।
दशास्यो विशतिभुज प्रगृहीतशरासन ॥ ३७ ॥

ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वत ।
रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसरक्तलोचन ॥ ३८ ॥

कोप चकार सदृश निर्दहन्निव राक्षसम् ।
धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥ ३९ ॥

गृहीत्वा पाणिना बाण कालानलसमप्रभम् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्या ददृशे रिपुमन्तिके ॥ ४० ॥

पराक्रम दर्शयितु तेजसा प्रज्वलन्निव ।
प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यत ॥ ४१ ॥

विकृष्य चाप रामस्तु रावण प्रतिविध्य च ।
हर्षयन्वानरानीक कालान्तक इवाबभौ ॥ ४२ ॥

क्रुद्ध रामस्य वदन दृष्ट्वा शत्रु प्रधावत ।
तत्रसु सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा ॥ ४३ ॥

रावणके धनुषसे छूटे हुए बाण, जो सुवर्णमय पखसे भासमान हो रहे थे, महाविषधर सर्प होकर श्रीरघुनाथजीके चारो ओर गिरने लगे ॥ २९ ॥ जिनके मुखसे अग्निकी लपटे निकल रही थी, रावणके उन सर्पमुख बाणोसे उस समय सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ व्याप्त हो गयी ॥ ३० ॥ रामने जब रणभूमिमे सब ओर सर्पोको व्याप्त देखा तो महाभयकर गारुडास्त्र छोडा ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए वे बाण सर्पोके शत्रु गरुड होकर जहाँ-तहाँ सर्परूप बाणोको काटने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भगवान् रामद्वारा अपने शस्त्रको नष्ट हुआ देख रावणने उनके ऊपर भयकर बाण-वर्षा की ॥ ३३ ॥ और फिर लीला-विहारी भगवान् रामको अति तीव्र बाणावलीसे पीडित कर मातलिको वेध डाला ॥ ३४ ॥ (इतना ही नही) क्रोधसे उन्मत्त हुए रावणने रथकी सुवर्णमयी ध्वजा काटकर उसके पृष्ठभागपर गिरा दी और इन्द्रके घोडोको भी हताहत कर दिया ॥ ३५ ॥

भगवान्‌को इस आपत्तिमे देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और पितर आदि विषादग्रस्त हो गये तथा महर्षिगण मन-ही-मन दु ख मानने लगे ॥ ३६ ॥ विभीषणके सहित समस्त वानर-यूथपतिगण अति चिन्तित हुए। उस समय हाथमे धनुष-बाण लिये दस मुख और बीस भुजाओवाला रावण मैनाक पर्वतके समान दीख पडता था। भगवान् रामके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, उनकी त्योरी चढ गयी और उस राक्षसको मानो जला डालेगे ऐसा क्रोध करते हुए उन्होने इन्द्र-धनुषके समान एक विचित्र धनुष उठाया तथा हाथमे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण लेकर अपने नेत्रोसे समीपवर्ती शत्रुकी ओर इस प्रकार निहारा मानो भस्म कर देगे ॥ ३७—४० ॥ कालरूपी भगवान् रामने अपने तेजसे प्रज्वलित-से हो सम्पूर्ण लोकोके सामने अपना पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ उन्होने अपना धनुष खीचकर रावणको बीध डाला। और वे सम्पूर्ण वानर-सेनाको आनन्दित करते हुए लोकान्तकारी कालके समान सुशोभित होने लगे ॥ ४२ ॥

शत्रुपर धावा करते हुए भगवान् रामका क्रोधयुक्त मुख देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथिवी

तत क्रुद्धो दशग्रीव सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ १५ ॥
विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत ।
दशग्रीवो रथस्थस्तु राम वज्रोपमै शरै ॥ १६ ॥
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयद ।
रामस्य पुरत सर्वान्वानरानपि विव्यथे ॥ १७ ॥
तत पावकसङ्काशै शरै काञ्चनभूषणै ।
अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीव समाहित ॥ १८ ॥
रथस्थ रावण दृष्ट्वा भूमिष्ठ रघुनन्दनम् ।
आहूय मातलि शक्रो वचन चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥
रथेन मम भूमिष्ठ शीघ्र याहि रघूत्तमम् ।
त्वरित भूतल गत्वा कुरु कार्य ममानघ ॥ २० ॥
एवमुक्तोऽथ त नत्वा मातलिर्देवसारथि ।
ततो हयैश्च सयोज्य हरितै स्यन्दनोत्तमम् ॥ २१ ॥
स्वर्गाज्जयार्थ रामस्य ह्युपचक्राम मातलि ।
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ॥ २२ ॥
रथोऽय देवराजस्य विजयाय तव प्रभो ।
प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्र च भूषितम् ॥ २३ ॥
अभेद्य कवच खड्ग दिव्यतूणीयुग तथा ।
आरुह्य च रथ राम रावण जहि राक्षसम् ॥ २४ ॥
मया सारथिना देव वृत्र देवपतिर्यथा ।
इत्युक्तस्त परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥ २५ ॥
आरुरोह रथ रामो लोकॉल्लक्ष्म्या नियोजयन् ।
ततोऽभवन्महायुद्ध भैरव रोमहर्षणम् ॥ २६ ॥
महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमत ।
आग्नेयेन च आग्नेय दैव दैवेन राघव ॥ २७ ॥
अस्त्र राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
ततस्तु ससृजे घोर राक्षस चास्त्रमस्त्रवित् ।
क्रोधेन [illegible] गवण ॥ २८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रूर दशग्रीव (रावण) क्रुद्ध होकर दाँतोसे ओठ चबाता हुआ आँखे फाडकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर ही दौडा। रावण रथमे चढा हुआ था (और श्रीरघुनाथजी रथहीन थे, तो भी) वह, मेघ जिस प्रकार जलकी धाराएँ बरसाता है वैसे ही महाभयकर वज्र-सदृश बाणोसे श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करने लगा और भगवान् रामके सामने ही उसने समस्त वानरोको भी व्यथित कर दिया ॥ १५—१७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी भी सावधान होकर रणभूमिमे रावणपर अग्निके समान तेजस्वी सुवर्ण भूषित बाणोकी वर्षा करने लगे। इन्द्रने जब देखा कि रावण रथपर चढा हुआ है और श्रीरघुनाथजी पृथिवीपर ही खडे है तो उसने अपने सारथि मातलिको बुलाकर कहा— ॥ १८-१९ ॥ "हे अनघ! देखो रघुनाथजी पृथिवीपर खडे है तुम तुरत मेरा रथ लेकर भूर्लोकमे उनके पास जाओ और मेरा कार्य करो" ॥ २० ॥

इन्द्रकी यह आज्ञा पाकर देवसारथि मातलिने उन्हें नमस्कार किया और उनके उत्तम रथमे हरे रगके घोडे जोतकर भगवान् रामकी विजयके लिये स्वर्गसे चलकर उनके पास उपस्थित हुआ तथा उनसे हाथ जोडकर बोला—"हे रघुश्रेष्ठ! मुझे देवराज इन्द्रने भेजा है ॥ २१-२२ ॥ हे प्रभो! यह रथ इन्द्रका ही है, इसे उन्होने आपकी विजयके लिये भेजा है। हे महाराज! इसके साथ ही यह अति शोभायमान ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भी भेजे है। हे राम! मुझ सारथिके साथ, इन्द्रने जिस प्रकार वृत्रासुरका वध किया था उसी प्रकार हे देव! आप इस रथपर आरूढ होकर राक्षस रावणका वध कीजिये।"

मातलिके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया ॥ २३—२५ ॥ और सम्पूर्ण लोकोको श्रीसम्पन्न करते हुए उसपर आरूढ हुए। फिर महात्मा राम और बुद्धिमान् रावणका महाभयानक और रोमाञ्चकारी घोर युद्ध होने लगा। अस्त्र-विद्यामे परम कुशल श्रीरामचन्द्रजीने रावणके आग्नेयास्त्रको आग्नेयास्त्रसे और दैवास्त्रको दैवास्त्रसे काट डाला। तब अस्त्रविद्याविशारद रावणने अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो श्रीरामचन्द्रजीपर महाभयकर राक्षसास्त्र छोडा ॥ २६—२८ ॥

रावणस्य धनुर्मुक्ता सर्पा भूत्वा महाविषा ।
शरा काञ्चनपुङ्खाभा राघव परितोऽपतन् ॥ २९ ॥
तै शरै सर्पवदनैर्वमद्भिरनल मुखै ।
दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाभवन् ॥ ३० ॥
राम सर्पास्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान् ।
सौपर्णमस्त्र तद्घोर पुर प्रावर्तयद्रणे ॥ ३१ ॥
रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिण ।
चिच्छिदु सर्पबाणास्तान्समन्तात्सर्पशत्रव ॥ ३२ ॥
अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धर ।
अभ्यवर्षत्ततो राम घोराभि शरवृष्टिभि ॥ ३३ ॥
तत पुन शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा तु घोरेण मातलि प्रत्यविध्यत ॥ ३४ ॥
पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतु च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावण क्रोधमूर्च्छित ॥ ३५ ॥
विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणा पितरस्तथा ।
आर्त्ताकार हरि दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षय ॥ ३६ ॥
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवु सविभीषणा ।
दशास्यो विशतिभुज प्रगृहीतशरासन ॥ ३७ ॥
ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वत ।
रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसरक्तलोचन ॥ ३८ ॥
कोप चकार सदृश निर्दहन्निव राक्षसम् ।
धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥ ३९ ॥
गृहीत्वा पाणिना बाण कालानलसमप्रभम् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्या ददृशे रिपुमन्तिके ॥ ४० ॥
पराक्रम दर्शयितु तेजसा प्रज्वलन्निव ।
प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यत ॥ ४१ ॥
विकृष्य चाप रामस्तु रावण प्रतिविध्य च ।
हर्षयन्वानरानीक कालान्तक इवाबभौ ॥ ४२ ॥
क्रुद्ध रामस्य वदन दृष्ट्वा शत्रु प्रधावत ।
तत्रसु सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा ॥ ४३ ॥

रावणके धनुषसे छूटे हुए बाण, जो सुवर्णमय पखसे भासमान हो रहे थे, महाविषधर सर्प होकर श्रीरघुनाथजीके चारो ओर गिरने लगे ॥ २९ ॥ जिनके मुखसे अग्निकी लपटे निकल रही थी, रावणके उन सर्पमुख बाणोसे उस समय सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ व्याप्त हो गयी ॥ ३० ॥ रामने जब रणभूमिमे सब ओर सर्पोको व्याप्त देखा तो महाभयकर गारुडास्त्र छोडा ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए वे बाण सर्पोके शत्रु गरुड होकर जहाँ-तहाँ सर्परूप बाणोको काटने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भगवान् रामद्वारा अपने शस्त्रको नष्ट हुआ देख रावणने उनके ऊपर भयकर बाण-वर्षा की ॥ ३३ ॥ और फिर लीला-विहारी भगवान् रामको अति तीव्र बाणावलीसे पीडित कर मातलिको वेध डाला ॥ ३४ ॥ (इतना ही नही) क्रोधसे उन्मत्त हुए रावणने रथकी सुवर्णमयी ध्वजा काटकर उसके पृष्ठभागपर गिरा दी और इन्द्रके घोडोको भी हताहत कर दिया ॥ ३५ ॥

भगवान्‌को इस आपत्तिमे देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और पितर आदि विषादग्रस्त हो गये तथा महर्षिगण मन-ही-मन दु ख मानने लगे ॥ ३६ ॥ विभीषणके सहित समस्त वानर-यूथपतिगण अति चिन्तित हुए। उस समय हाथमे धनुष-बाण लिये दस मुख और बीस भुजाओवाला रावण मैनाक पर्वतके समान दीख पडता था। भगवान् रामके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, उनकी त्यौरी चढ गयी और उस राक्षसको मानो जला डालेगे ऐसा क्रोध करते हुए उन्होने इन्द्र-धनुषके समान एक विचित्र धनुष उठाया तथा हाथमे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण लेकर अपने नेत्रोसे समीपवर्ती शत्रुकी ओर इस प्रकार निहारा मानो भस्म कर देगे ॥ ३७—४० ॥ कालरूपी भगवान् रामने अपने तेजसे प्रज्वलित-से हो सम्पूर्ण लोकोके सामने अपना पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ उन्होने अपना धनुष खीचकर रावणको बीध डाला। और वे सम्पूर्ण वानर-सेनाको आनन्दित करते हुए लोकान्तकारी कालके समान सुशोभित होने लगे ॥ ४२ ॥

शत्रुपर धावा करते हुए भगवान् रामका क्रोधयुक्त मुख देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथिवी

तत क्रुद्धो दशग्रीव सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ १५ ॥
विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत ।
दशग्रीवो रथस्थस्तु राम वज्रोपमै शरै ॥ १६ ॥
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयद ।
रामस्य पुरत सर्वान्वानरानपि विव्यथे ॥ १७ ॥
तत पावकसङ्काशै शरै काञ्चनभूषणै ।
अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीव समाहित ॥ १८ ॥
रथस्थ रावण दृष्ट्वा भूमिष्ठ रघुनन्दनम् ।
आहूय मातलि शक्रो वचन चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥
रथेन मम भूमिष्ठ शीघ्र याहि रघूत्तमम् ।
त्वरित भूतल गत्वा कुरु कार्य ममानघ ॥ २० ॥
एवमुक्तोऽथ त नत्वा मातलिर्देवसारथि ।
ततो हयैश्च सयोज्य हरितै स्यन्दनोत्तमम् ॥ २१ ॥
स्वर्गाज्जयार्थ रामस्य ह्युपचक्राम मातलि ।
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ॥ २२ ॥
रथोऽय देवराजस्य विजयाय तव प्रभो ।
प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्र च भूषितम् ॥ २३ ॥
अभेद्य कवच खड्ग दिव्यतूणीयुग तथा ।
आरुह्य च रथ राम रावण जहि राक्षसम् ॥ २४ ॥
मया सारथिना देव वृत्र देवपतिर्यथा ।
इत्युक्तस्त परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥ २५ ॥
आरुरोह रथ रामो लोकॉल्लक्ष्म्या नियोजयन् ।
ततोऽभवन्महायुद्ध भैरव रोमहर्षणम् ॥ २६ ॥
महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमत ।
आग्नेयेन च आग्नेय दैव दैवेन राघव ॥ २७ ॥
अस्त्र राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
ततस्तु ससृजे घोर राक्षस चास्त्रमस्त्रवित् ।
क्रोधेन [illegible] रावण ॥ २८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रूर दशग्रीव (रावण) क्रुद्ध होकर दॉतोसे ओठ चबाता हुआ ऑखे फाडकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर ही दौडा। रावण रथमे चढा हुआ था (और श्रीरघुनाथजी रथहीन थे, तो भी) वह, मेघ जिस प्रकार जलकी धाराऍ बरसाता है वेसे ही महाभयकर वज्र-सदृश बाणोसे श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करने लगा और भगवान् रामके सामने ही उसने समस्त वानरोको भी व्यथित कर दिया ॥ १५—१७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी भी सावधान होकर रणभूमिमे रावणपर अग्निके समान तेजस्वी सुवर्ण भूषित बाणोकी वर्षा करने लगे। इन्द्रने जब देखा कि रावण रथपर चढा हुआ है और श्रीरघुनाथजी पृथिवीपर ही खडे है तो उसने अपने सारथि मातलिको बुलाकर कहा— ॥ १८-१९ ॥ "हे अनघ! देखो रघुनाथजा पृथिवीपर खडे है तुम तुरत मेरा रथ लेकर भूलोंकमे उनके पास जाओ और मेरा कार्य करो" ॥ २० ॥

इन्द्रकी यह आज्ञा पाकर देवसारथि मातलिने उन्हे नमस्कार किया और उनके उत्तम रथमे हरे रगके घोडे जोतकर भगवान् रामकी विजयके लिये स्वर्गसे चलकर उनके पास उपस्थित हुआ तथा उनसे हाथ जोडकर बोला—"हे रघुश्रेष्ठ! मुझे देवराज इन्द्रने भेजा है ॥ २१-२२ ॥ हे प्रभो! यह रथ इन्द्रका ही है, इसे उन्होने आपकी विजयके लिये भेजा है। हे महाराज! इसके साथ ही यह अति शोभायमान ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भी भेजे है। हे राम! मुझ सारथिके साथ, इन्द्रने जिस प्रकार वृत्रासुरका वध किया था उसी प्रकार हे देव! आप इस रथपर आरूढ होकर राक्षस रावणका वध कीजिये।"

मातलिके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया ॥ २३—२५ ॥ और सम्पूर्ण लोकोको श्रीसम्पन्न करते हुए उसपर आरूढ हुए। फिर महात्मा राम और बुद्धिमान् रावणका महाभयानक और रोमाञ्चकारी घोर युद्ध होने लगा। अस्त्र-विद्यामे परम कुशल श्रीरामचन्द्रजीने रावणके आग्नेयास्त्रको आग्नेयास्त्रसे और दैवास्त्रको दैवास्त्रसे काट डाला। तब अस्त्रविद्याविशारद रावणने अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो श्रीरामचन्द्रजीपर महाभयकर राक्षसास्त्र छोडा ॥ २६—२८ ॥

रावणस्य धनुर्मुक्ता सर्पा भूत्वा महाविषा ।
शरा काञ्चनपुङ्खाभा राघव परितोऽपतन् ॥ २९ ॥

तै शरै सर्पवदनैर्वमद्भिरनल मुखै ।
दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाभवन् ॥ ३० ॥

राम सर्पास्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान् ।
सौपर्णमस्त्र तद्घोर पुर प्रावर्तयद्रणे ॥ ३१ ॥

रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिण ।
चिच्छिदु सर्पबाणास्तान्समन्तात्सर्पशत्रव ॥ ३२ ॥

अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धर ।
अभ्यवर्षत्ततो राम घोराभि शरवृष्टिभि ॥ ३३ ॥

तत पुन शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा तु घोरेण मातलि प्रत्यविध्यत ॥ ३४ ॥

पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतु च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावण क्रोधमूर्च्छित ॥ ३५ ॥

विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणा पितरस्तथा ।
आर्त्ताकार हरि दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षय ॥ ३६ ॥

व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवु सविभीषणा ।
दशास्यो विशतिभुज प्रगृहीतशरासन ॥ ३७ ॥

ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वत ।
रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसरक्तलोचन ॥ ३८ ॥

कोप चकार सदृश निर्दहन्निव राक्षसम् ।
धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥ ३९ ॥

गृहीत्वा पाणिना बाण कालानलसमप्रभम् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्या ददृशे रिपुमन्तिके ॥ ४० ॥

पराक्रम दर्शयितु तेजसा प्रज्वलन्निव ।
प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यत ॥ ४१ ॥

विकृष्य चाप रामस्तु रावण प्रतिविध्य च ।
हर्षयन्वानरानीक कालान्तक इवाबभौ ॥ ४२ ॥

क्रुद्ध रामस्य वदन दृष्ट्वा शत्रु प्रधावत ।
तत्रसु सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा ॥ ४३ ॥

रावणके धनुषसे छूटे हुए बाण, जो सुवर्णमय पखसे भासमान हो रहे थे, महाविषधर सर्प होकर श्रीरघुनाथजीके चारो ओर गिरने लगे ॥ २९ ॥ जिनके मुखसे अग्निकी लपटे निकल रही थी, रावणके उन सर्पमुख बाणोसे उस समय सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ व्याप्त हो गयी ॥ ३० ॥ रामने जब रणभूमिमे सब ओर सर्पोको व्याप्त देखा तो महाभयकर गारुडास्त्र छोडा ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए वे बाण सर्पोके शत्रु गरुड होकर जहाँ-तहाँ सर्परूप बाणोको काटने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भगवान् रामद्वारा अपने शस्त्रको नष्ट हुआ देख रावणने उनके ऊपर भयकर बाण-वर्षा की ॥ ३३ ॥ और फिर लीला-विहारी भगवान् रामको अति तीव्र बाणावलीसे पीडित कर मातलिको वेध डाला ॥ ३४ ॥ (इतना ही नही) क्रोधसे उन्मत्त हुए रावणने रथकी सुवर्णमयी ध्वजा काटकर उसके पृष्ठभागपर गिरा दी और इन्द्रके घोडोको भी हताहत कर दिया ॥ ३५ ॥

भगवान्‌को इस आपत्तिमे देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और पितर आदि विषादग्रस्त हो गये तथा महर्षिगण मन-ही-मन दु ख मानने लगे ॥ ३६ ॥ विभीषणके सहित समस्त वानर-यूथपतिगण अति चिन्तित हुए। उस समय हाथमे धनुष-बाण लिये दस मुख और बीस भुजाओवाला रावण मैनाक पर्वतके समान दीख पडता था। भगवान् रामके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, उनकी त्यौरी चढ गयी और उस राक्षसको मानो जला डालेगे ऐसा क्रोध करते हुए उन्होने इन्द्र-धनुषके समान एक विचित्र धनुष उठाया तथा हाथमे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण लेकर अपने नेत्रोसे समीपवर्ती शत्रुकी ओर इस प्रकार निहारा मानो भस्म कर देगे ॥ ३७—४० ॥ कालरूपी भगवान् रामने अपने तेजसे प्रज्वलित-से हो सम्पूर्ण लोकोके सामने अपना पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ उन्होने अपना धनुष खीचकर रावणको बीध डाला। और वे सम्पूर्ण वानर-सेनाको आनन्दित करते हुए लोकान्तकारी कालके समान सुशोभित होने लगे ॥ ४२ ॥

शत्रुपर धावा करते हुए भगवान् रामका क्रोधयुक्त मुख देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथिवी

राम दृष्ट्वा महारौद्रमुत्पाताश्च सुदारुणान्।
त्रस्तानि सर्वभूतानि रावण चाविशद्भयम्॥ ४४॥

विमानस्था सुरगणा सिद्धगन्धर्वकिन्नरा।
ददृशु सुमहायुद्ध लोकसवर्तकोपमम्।
ऐन्द्रमस्त्र समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत्॥ ४५॥

मूर्धानो रावणस्याथ बहवो रुधिरोक्षिता।
गगनात्प्रपतन्ति स्म तालादिव फलानि हि॥ ४६॥

न दिन न च वै रात्रिर्न सन्ध्या न दिशोऽपि वा।
प्रकाशन्ते न तद्रूप दृश्यते तत्र सङ्गरे॥ ४७॥

ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानस।
शतमेकोत्तर छिन्न शिरसा चैकवर्चसाम्॥ ४८॥

न चैव रावण शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात्।
तत सर्वास्त्रविद्धीर कौसल्यानन्दवर्धन॥ ४९॥

अस्त्रैश्च बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघव।
यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमा॥ ५०॥

त एते निष्फल याता रावणस्य निपातने।
इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो विभीषण॥ ५१॥

उवाच राघव वाक्य ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ।
विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरासि च॥ ५२॥

उत्पत्स्यन्ति पुन शीघ्रमित्याह भगवानज।
नाभिदेशेऽमृत तस्य कुण्डलाकारसस्थितम्॥ ५३॥

तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्।
विभीषणवच श्रुत्वा राम शीघ्रपराक्रम॥ ५४॥

पावकास्त्रेण सयोज्य नाभि विव्याध रक्षस।
अनन्तर च चिच्छेद शिरासि च महाबल॥ ५५॥

बाहूनपि च सरब्धो रावणस्य रघूत्तम।
ततो घोरा महाशक्तिमादाय दशकन्धर॥ ५६॥

विभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्वल।
चिच्छेद राघवो बाणैस्ता शितैर्हेमभूषितै॥ ५७॥

डगमगाने लगी॥ ४३॥ रामको अति रौद्ररूप और इन दारुण उत्पातोको देखकर समस्त जीवोमे त्रास छा गया और रावणके अन्त करणमे भी आतक समा गया॥ ४४॥ उस समय देवता, सिद्ध, गन्धर्व और किन्नरगण विमानोपर चढे हुए ससारके महाप्रलयके समान इस घोर युद्धको देख रहे थे। इसी बीचमे श्रीरामचन्द्रजीने ऐन्द्रास्त्र छोडकर रावणके सिर काट डाले॥ ४५॥ तब रावणके बहुत-से सिर रुधिरसे लथपथ हो आकाश-मण्डलसे इस प्रकार गिरने लगे जैसे ताल-वृक्षसे उसके फल गिरते है॥ ४६॥ उस समय दिन, रात, सन्ध्या अथवा दिशाएँ आदि कुछ भी स्पष्ट नही जान पडती थी तथा उस सग्राम-भूमिमे रावणका रूप भी दिखायी नही देता था (केवल कटे हुए सिर ही दीख पडते थे)॥ ४७॥

तब तो श्रीरामचन्द्रजीको बडा ही विस्मय हुआ। (वे सोचने लगे) 'मैने समान-तेज-सम्पन्न एक सौ एक सिर काटे है॥ ४८॥ किन्तु फिर भी रावण प्राणनाशसे शान्त हुआ दिखायी नही देता।' तब अनेक अस्त्रोसे युक्त सर्वास्त्रविशारद धीरवीर कौसल्यानन्दन रघुनाथजीने विचारा—"मैने जिन-जिन बाणोसे बडे-बडे तेजस्वी और पराक्रमी दैत्योको मारा था, इस रावणका वध करनेमे वे सभी निष्फल हो गये।"

भगवान् रामको इस प्रकार चिन्ताग्रस्त देख उनके पास खडे हुए विभीषणने कहा—"भगवन्! ब्रह्माजीने इसे एक वर दिया था। उन्होने कहा था कि 'इसकी भुजाएँ और सिर बारम्बार काट दिये जानेपर भी फिर तुरत नये उत्पन्न हो जायँगे।' इसके नाभिदेशमे कुण्डलाकारसे अमृत रखा हुआ है॥ ४९—५३॥ उसे आप आग्नेयास्त्रसे सुखा डालिये, तभी इसकी मृत्यु हो जायगी।" विभीषणके वचन सुनकर शीघ्रपराक्रमी भगवान् रामने अपने धनुषपर आग्नेयास्त्र चढाकर उस राक्षसकी नाभिमे मारा और फिर महाबली रघुनाथजीने क्रोधित होकर उसके सिर और भुजाएँ काट डाली।

इसपर रावणने अत्यन्त क्रोधातुर हो विभीषणको मारनेके लिये एक महाभयानक शक्ति छोडी। किन्तु रघुनाथजीने उसे तुरत ही सुवर्णमण्डित तीक्ष्ण बाणोसे काट डाला॥ ५४—५७॥

दशग्रीवशिरश्छेदात्तदा तेजो विनिर्गतम्।
म्लानरूपो बभूवाथ छिन्नै शीर्षैर्भयङ्करै ॥ ५८ ॥

एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्या रावणो बभौ ।
रावणस्तु पुन क्रुद्धो नानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभि ॥ ५९ ॥

ववर्ष राम त रामस्तथा बाणैर्ववर्ष च ।
ततो युद्धमभूद्घोर तुमुल लोमहर्षणम् ॥ ६० ॥

अथ सस्मारयामास मातली राघव तदा ।
विसृजास्त्र वधायास्य ब्राह्म शीघ्र रघूत्तम ॥ ६१ ॥

विनाशकाल प्रथितो य सुरै सोऽद्य वर्तते ।
उत्तमाङ्ग न चैतस्य छेत्तव्य राघव त्वया ॥ ६२ ॥

नैव शीर्ष्णि प्रभो वध्यो वध्य एव हि मर्मणि ।
तत सस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातले ॥ ६३ ॥

जग्राह स शर दीप्त नि श्वसन्तमिवोरगम् ।
यस्य पार्श्वे तु पवन फले भास्करपावकौ ॥ ६४ ॥

शरीरमाकाशमय गौरवे मेरुमन्दरौ ।
पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजस ॥ ६५ ॥

जाज्वल्यमान वपुषा भात भास्करवर्चसा ।
तमुग्रमस्त्र लोकाना भयनाशनमद्भुतम् ॥ ६६ ॥

अभिमन्त्र्य ततो रामस्त महेषु महाभुज ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥ ६७ ॥

तस्मिन्सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ।
सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥ ६८ ॥

स रावणाय सङ्क्रुद्धो भृशमानम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तस्तमस्त्र मर्मघातिनम् ॥ ६९ ॥

स वज्र इव दुर्द्धर्षो वज्रपाणिविसर्जित ।
कृतान्त इव घोरास्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥ ७० ॥

स निमग्नो महाघोर शरीरान्तकर पर ।
बिभेद हृदय तूर्ण रावणस्य महात्मन ॥ ७१ ॥

रावणस्याहरत्प्राणान्विवेश धरणीतले ।
स शरो रावण हत्वा रामतूणीरमाविशत् ॥ ७२ ॥

रावणके सिर काटे जानेसे उसका तेज निकल गया और वह उन भयङ्कर सिरोके कट जानेसे विरूप दिखायी देने लगा ॥ ५८ ॥ अब, रावणके एक मुख्य सिर और दो भुजाएँ रह गयी थी। किन्तु फिर भी वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगवान् रामपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगा। इसी प्रकार रामने भी उसपर भयकर बाणवर्षा की। फिर तो वहाँ अत्यन्त रोमाञ्चकारी घमासान युद्ध छिड गया ॥ ५९-६० ॥

तब मातलिने श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण दिलाया कि "हे रघुश्रेष्ठ ! इसका वध करनेके लिये आप शीघ्र ही ब्रह्मास्त्र छोडिये ॥ ६१ ॥ देवताओने इसके नाशका जो समय निश्चित किया है वह इस समय वर्तमान है। हे रघुनन्दन ! आप इसका मस्तक न काटियेगा ॥ ६२ ॥ (क्योकि) हे प्रभो ! यह सिर काटनेसे नही मर सकता, बल्कि (हृदयरूप) मर्मस्थानके विद्ध होनेपर ही इसका अन्त हो सकता है।" मातलिके इन वाक्योसे स्मरण दिलाये जानेपर भगवान् रामने फुफकारते हुए सर्पके समान एक परम तेजस्वी बाण निकाला। उसके पार्श्वभागमे पवनकी, नोकपर सूर्य और अग्निकी, गुरुता (भारीपन) मे सुमेरु और मन्दराचलकी तथा गाँठोमे महातेजस्वी लोकपालोकी स्थापना की गयी थी, एव उसका स्वरूप आकाशमय था ॥ ६३—६५ ॥ उसका आकार अत्यन्त देदीप्यमान होनेके कारण वह सूर्यके समान प्रकाशमान था। महाबाहु भगवान् रामने सम्पूर्ण लोकोका भय दूर करनेवाले उस अत्यन्त उग्र और अद्भुत अस्त्रको धनुर्वेदोक्त विधिसे अभिमन्त्रित कर अपने धनुषपर चढाया ॥ ६६-६७ ॥ भगवान् रामद्वारा उस उत्तम बाणके चढाये जानेपर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथ्वी काँपने लगी ॥ ६८ ॥ इसी समय उन्होने अत्यन्त क्रुद्ध हो धनुषको भली प्रकार खींच बडी सावधानीसे वह मर्मघातक बाण रावणपर छोड दिया ॥ ६९ ॥ वह कालके समान अति भयकर मुखवाला और वज्रपाणि इन्द्रद्वारा छोडे हुए वज्रके समान अति असह्य बाण रावणके वक्ष स्थलमे लगा ॥ ७० ॥ वह शरीरान्तकारी महाभयकर बाण उस महाकाय रावणके शरीरमे घुस गया और उसने तुरत ही उसका हृदय फाड डाला ॥ ७१ ॥ उसने रावणके प्राणोका अन्त कर दिया और फिर पृथ्वीमे घुस गया। इस प्रकार रावणका वध करनेके उपरान्त वह बाण फिर भगवान् रामके तरकशमे चला आया ॥ ७२ ॥

तस्य हस्तात्पपाताशु सशर कार्मुक महत् ।
गतासुर्भ्रमिवेगेन राक्षसेन्द्रोऽपतद्भुवि ॥ ७३ ॥

त दृष्ट्वा पतित भूमौ हतशेषाश्च राक्षसा ।
हतनाथा भयत्रस्ता दुद्रुवु सर्वतोदिशम् ॥ ७४ ॥

दशग्रीवस्य निधन विजय राघवस्य च ।
ततो विनेदु सहृष्टा वानरा जितकाशिन ॥ ७५ ॥

वदन्तो रामविजय रावणस्य च तद्वधम् ।
अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभि ॥ ७६ ॥

पपात पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि ।
तुष्टुवुर्मुनय सिद्धाश्चारणाश्च दिवौकस ॥ ७७ ॥

अथान्तरिक्षे ननृतु सर्वतोऽप्सरसो मुदा ।
रावणस्य च देहोत्थ ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥ ७८ ॥

प्रविवेश रघुश्रेष्ठ देवाना पश्यता सताम् ।
देवा ऊचुरहो भाग्य रावणस्य महात्मन ॥ ७९ ॥

वय तु सात्त्विका देवा विष्णो कारुण्यभाजना ।
भयदु खादिभिर्व्याप्ता ससारे परिवर्तिन ॥ ८० ॥

अय तु राक्षस क्रूरो ब्रह्महातीव तामस ।
परदाररतो विष्णुद्वेषी तापसहिंसक ॥ ८१ ॥

पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान् ।
एव ब्रुवत्सु देवेषु नारद प्राह सुस्मित ॥ ८२ ॥

शृणुतात्र सुरा यूय धर्मतत्त्वविचक्षणा ।
रावणो राघवद्वेषादनिश हृदि भावयन् ॥ ८३ ॥

भृत्यै सह सदा रामचरित द्वेषसयुत ।
श्रुत्वा रामात्स्वनिधन भयात्सर्वत्र राघवम् ॥ ८४ ॥

पश्यन्ननुदिन स्वप्ने राममेवानुपश्यति ।
क्रोधोऽपि रावणस्याशु गुरुबोधाधिकोऽभवत् ॥ ८५ ॥

रामेण निहतश्चान्ते निर्धूताशेषकल्मष ।
रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धन ॥ ८६ ॥

बाणके लगते ही रावणका बडा भारी धनुष बाणसहित तुरत उसके हाथसे गिर गया और वह राक्षसराज प्राणरहित हो चक्कर खाकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ७३ ॥ उसे पृथ्वीपर गिरा देख मरनेसे बचे हुए राक्षसगण अनाथ हो जानेसे भयभीत होकर चारो ओर भाग गये ॥ ७४ ॥

तब, विजय-विभूषित वानरगण अति प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीकी जय और रावणकी उस पराजयका बखान करते हुए 'भगवान् रामकी जय और रावणका क्षय' का घोष करने लगे। तथा आकाश-मण्डलमे दिव्य दुन्दुभियोका गम्भीर नाद होने लगा ॥ ७५-७६ ॥ भगवान् रामपर सब ओरसे फूलोकी वर्षा होने लगी तथा मुनि, सिद्ध, चारण और देवगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥ फिर आकाशमे सब ओर अप्सराएँ प्रसन्नतापूर्वक नाचने लगी। (इसी समय) रावणके देहसे एक सूर्यके समान प्रकाशमान ज्योति निकली और वह सब देवताओके देखते-देखते श्रीरघुनाथजीमे प्रवेश कर गयी। यह देखकर देवगण कहने लगे—"अहो ! महात्मा रावणका बडा भाग्य है ॥ ७८-७९ ॥ हम देवगण सत्त्वगुणप्रधान है और श्रीविष्णुभगवान्के कृपापात्र है, फिर भी हम भय ओर दु खादिसे व्याप्त होकर ससारमे भटका करते है ॥ ८० ॥ और यह रावण महाक्रूर राक्षस ह, (यही नही) यह ब्रह्मघाती, अत्यन्त तमोगुणी, परस्त्रीपरायण, भगवद्-विरोधी और तपस्वियोका पीडित करनेवाला भी है ॥ ८१ ॥ किन्तु देखो, यह सबके देखते-देखते भगवान् राममे ही लीन हो गया।"

देवगणके इस प्रकार कहनपर नारदजीने मुसकराते हुए कहा— ॥ ८२ ॥ "हे देवगण ! तुमलोग धर्मके तत्त्वको भली प्रकार जाननेवाले हो, अत (इस विषयमे मेरा मत) सुनो। रघुनाथजीसे द्वेष रहनेके कारण रावण अहर्निश अपने सेवकोसहित द्वेषपूर्वक हृदयमे सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी ही भावना रखता था, तथा रामके हाथसे अपना वध सुनकर सर्वत्र रामहीको देखता हुआ स्वप्नमे भी उन्हीको देखता था। इस प्रकार रावणका क्रोध भी उसके लिये गुरुके उपदेशसे कही अधिक उपयोगी हुआ ॥ ८३—८५ ॥ अन्तमे स्वय भगवान् रामके हाथसे मारे जानेके कारण उसके समस्त पाप धुल गये थे। अत बन्धनहीन हो जानेसे उसने राममे सायुज्य

पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपर-
दारेषु सक्तो यदि स्या-
न्नित्य स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलक
भावयन्सम्परेत ।
भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनिता-
नेकदोषैर्विमुक्त
सद्यो रामस्य विष्णो सुरवरविनुत
याति वैकुण्ठमाद्यम् ॥ ८७ ॥

मोक्ष प्राप्त किया। ॥ ८६ ॥ यद्यपि कोई पुरुष (पहलेका) महापापी, दुराचारी तथा परधन और परस्त्रीमे आसक्त भी हो तथापि यदि नित्यप्रति प्रेममे अथवा भयसे रघुकुल-तिलक भगवान् रामका चिन्तन करता हुआ प्राणत्याग करता है तो वह शुद्ध-चित्त होकर सैकडो जन्मके उपार्जित नाना दु खोसे छूटकर शीघ्र ही विष्णुस्वरूप भगवान् रामके देवेन्द्रवन्दित आदिस्थान वैकुण्ठलोकको चला जाता है ॥ ८७ ॥

हत्वा युद्धे दशास्य त्रिभुवनविषम
वामहस्तेन चाप
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृत
भ्रामयन्बाणमेकम् ।
आरक्तोपान्तनेत्र शरदलितवपु
सूर्यकोटिप्रकाशो
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुत
पातु मा वीरराम ॥ ८८ ॥

जो त्रिलोकीके कण्टकस्वरूप रावणको युद्धमे मारकर अपने बाये हाथसे धनुषको पृथिवीपर टेके हुए खडे है तथा दूसरे हाथमे एक बाण लेकर उसे घुमा रहे है, जिनके नेत्रोके उपान्तभाग कुछ लाल हो रहे है, बाणोसे छिन्न-भिन्न हुआ शरीर करोडा सूर्योके समान प्रकाशित हो रहा है और उन्नत देह वीरश्रीसे सुशोभित है, वे देवराज इन्द्रद्वारा वन्दित वीरवर राम मेरी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे एकादश सर्ग ॥ ११ ॥

★

द्वादश सर्ग

विभीषणका राज्याभिषेक और सीताजीकी अग्नि-परीक्षा

श्रीमहादेव उवाच

रामो विभीषण दृष्ट्वा हनूमन्त तथाङ्गदम्।
लक्ष्मण कपिराज च जाम्बवन्त तथा परान् ॥ १ ॥
परितुष्टेन मनसा सर्वानेवाब्रवीद्वच ।
भवता बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजीने विभीषण, हनुमान्, अगद, लक्ष्मण वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान् तथा अन्यान्य वीरोकी ओर देख सभी लोगोसे प्रसन्न-चित्तसे कहा—"आपलोगोके बाहुबलसे आज मैने रावणको मार दिया ॥ १-२ ॥

कीर्ति स्थास्यति व पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
कीर्तयिष्यन्ति भवता कथा त्रैलोक्यपावनीम् ॥ ३ ॥
मयोपेता कलिहरा यास्यन्ति परमा गतिम्।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा रावण पतित भुवि ॥ ४ ॥
मन्दोदरीमुखा सर्वा स्त्रियो रावणपालिता ।
पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्य पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥

आप सब लोगोकी पवित्र कीर्ति जबतक सूर्य और चन्द्र रहेगे तबतक स्थिर रहेगी और जो लोग मेरेसहित आप सबकी कलि-कल्मष-नाशिनी त्रिलोकपावनी पवित्र कथाका कीर्तन करेगे वे परमपदको प्राप्त होगे।"

इसी समय रावणको पृथिवीपर गिरा देख उससे सुरक्षित मन्दोदरी आदि समस्त स्त्रियाँ उसके पास (आकर गिर गयी तथा शोकसे विलाप करने लगी ॥ ३—५ ॥

विभीषण शुशोचार्त शोकेन महतावृत ।
पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत् ॥ ६ ॥

रामस्तु लक्ष्मण प्राह बोधयस्व विभीषणम् ।
करोतु भ्रातृसस्कार किं विलम्बेन मानद ॥ ७ ॥

स्त्रियो मन्दोदरीमुख्या पतिता विलपन्ति च ।
निवारयतु ता सर्वा राक्षसी रावणप्रिया ॥ ८ ॥

एवमुक्तोऽथ रामेण लक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् ।
उवाच मृतकोपान्ते पतित मृतकोपमम् ॥ ९ ॥

शोकेन महताविष्ट सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
य शोचसि त्व दु खेन कोऽय तव विभीषण ॥ १० ॥

त्व वास्य कतम सृष्टे पुरेदानीमत परम् ।
यद्वत्तोयौघपतिता सिकता यान्ति तद्वशा ॥ ११ ॥

सयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिन ।
यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ १२ ॥

एव भूतेषु भूतानि प्रेरितानीशमायया ।
त्व चेमे वयमन्ये च तुल्या कालवशोद्भवा ॥ १३ ॥

जन्ममृत्यू यदा यस्मात्तदा तस्माद्भविष्यत ।
ईश्वर सर्वभूतानि भूतै सृजति हन्त्यज ॥ १४ ॥

आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैर्निरपेक्षोऽपि बालवत् ।
देहेन देहिनो जीवा देहाद्देहोऽभिजायते ॥ १५ ॥

बीजादेव यथा बीज देहान्य इव शाश्वत ।
देहिदेहविभागोऽयमविवेककृत पुरा ॥ १६ ॥

नानात्व जन्म नाशश्च क्षयो वृद्धि क्रिया फलम् ।
द्रष्टुराभान्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रिया ॥ १७ ॥

विभीषण भी महान् शोकाकुल हो आर्तभावसे चिन्ताग्रस्त हो गये और रावणके पास गिरकर नाना प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ तब श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीसे कहा—"हे मानद ! विभीषणको समझाओ कि वह भाईका (और्ध्वदैहिक) सस्कार करे, अब व्यर्थ देरी करनेसे क्या लाभ है ? ॥ ७ ॥ और मन्दोदरी आदि स्त्रियाँ पछाड खा-खाकर विलाप कर रही है, सो उन रावणकी प्रेयसी राक्षसियोको (समझाकर) ऐसा करनेसे रोके" ॥ ८ ॥

भगवान् रामके इस प्रकार कहनेपर श्रीलक्ष्मणजी मृतक रावणके समीप मरे हुएके समान पडे हुए विभीषणके पास आये और उससे कहने लगे ॥ ९ ॥ इस समय विभीषण महान् शोकाकुल थे । उनसे श्रीलक्ष्मणजी इस प्रकार बोले—"विभीषण ! जिसके लिये तुम दु खी होकर शोक कर रहे हो यह तुम्हारा कौन है ? ॥ १० ॥ तथा तुम भी अपने जन्मसे पूर्व इस समय अथवा इससे आगे इसके क्या हो ? जिस प्रकार जलके प्रवाहमे पडी हुई बालू उसके अधीन आती-जाती रहती है, उसी प्रकार देहधारी प्राणी कालके वशीभूत हुए ही सयोग और वियोगको प्राप्त होते है । जिस प्रकार बीजोसे अन्य बीज उत्पन्न होते और नष्ट भी हो जाते है, उसी प्रकार भगवान्की मायासे प्रेरित समस्त प्राणी अन्य प्राणियोसे उत्पन्न होते और मरते रहते हैं । तुम, हम, ये और अन्य सब भी समानभावसे कालके वशीभूत ही उत्पन्न हुए है ॥ ११—१३ ॥ जन्म और मृत्यु जिस समय जिससे होनेवाले है, उस समय उसीके द्वारा हो जायँगे । अजन्मा ईश्वर ही, किसी प्रकारकी इच्छा न रहते हुए भी, बालकके समान (केवल विनोदार्थ) अपने रचे हुए अस्वतन्त्र प्राणियोसे समस्त प्राणियोको उत्पन्न करता और नष्ट कर देता है । जीव देह-सयोगके कारण ही देही कहलाता है और देह अन्य (माता-पिताके) देहसे ही उत्पन्न होता है, जैसे कि एक बीजसे दूसरा बीज । सनातन आत्मा तो देहसे पृथक्-सा है । वास्तवमे तो यह देह और देहीका विभाग भी पहलेहीसे अविवेकके ही कारण है ॥ १४—१६ ॥ जिस प्रकार अग्निमे लकडीके विकार दिखायी देते हैं उसी प्रकार साक्षी आत्मामे भिन्नता, जन्म, मरण, क्षय, वृद्धि, कर्म और कर्मफल आदि प्रतीत होते है, जो वास्तमे

त इमे देहसयोगादात्मना भान्त्यसद्ग्रहात् ।
यथा यथा तथा चान्यद्ध्यायतोऽसत्सदाग्रहात् ॥ १८ ॥

प्रसुप्तस्यानहम्भावात्तदा भाति न ससृति ।
जीवतोऽपि तथा तद्वद्विमुक्तस्यानहङ्कृते ॥ १९ ॥

तस्मान्मायामनोधर्म जह्यहम्ममताभ्रमम् ।
रामभद्रे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥ २० ॥

सर्वभूतात्मनि परे मायामानुषरूपिणि ।
बाह्येन्द्रियार्थसम्बन्धात्त्याजयित्वा मन शनै ॥ २१ ॥

तत्र दोषान्दर्शयित्वा रामानन्दे नियोजय ।
देहबुद्ध्या भवेद्भ्राता पिता माता सुहृत्प्रिय ॥ २२ ॥

विलक्षण यदा देहाज्जानात्यात्मानमात्मना ।
तदा क कस्य वा बन्धुर्भ्राता माता पिता सुहृत् ॥ २३ ॥

मिथ्याज्ञानवशाज्जाता दारागारादय सदा ।
शब्दादयश्च विषया विविधाश्चैव सम्पद ॥ २४ ॥

बल कोशो भृत्यवर्गो राज्य भूमि सुतादय ।
अज्ञानजत्वात्सर्वे ते क्षणसङ्गमभङ्गुरा ॥ २५ ॥

अथोत्तिष्ठ हृदा राम भावयन् भक्तिभावितम् ।
अनुवर्तस्व राज्यादि भुञ्जन्प्रारब्धमन्वहम् ॥ २६ ॥

भूत भविष्यदभजन्वर्तमानमथाचरन् ।
विहरस्व यथान्याय भवदोषैर्न लिप्यसे ॥ २७ ॥

आज्ञापयति रामस्त्वा यद्भ्रातु साम्परायिकम् ।
तत्कुरुष्व यथाशास्त्र रुदतीश्चापि योषित ॥ २८ ॥

निवारय महाबुद्धे लङ्का गच्छन्तु मा चिरम् ।
श्रुत्वा यथावद्वचन लक्ष्मणस्य विभीषण ॥ २९ ॥

त्यक्त्वा शोक च मोह च रामपार्श्वमुपागमत् ।
विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहित वच ॥ ३० ॥

रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तर पर्यभाषत ।
नृशसमनृत क्रूर त्यक्तधर्मव्रत प्रभो ॥ ३१ ॥

उसके धर्म नही है ॥ १७ ॥ मिथ्या भ्रान्तिके कारण आत्माके साथ देहका सयोग माननेसे जिस प्रकार ये (सब धर्म) (सत्यवत्) भासते हैं वैसे ही सत्य (आत्मा) का निश्चय कर उसीका ध्यान करते रहनेसे ये असत्य प्रतीत होने लगते हैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार गाढ निद्रामे सोये हुए पुरुषको अहकारका अभाव हो जानेसे प्रपञ्चकी प्रतीति नही होती उसी प्रकार अहकारहीन मुक्त पुरुषको जीते हुए ही प्रपञ्चका भान नहीं होता ॥ १९ ॥

"अत तुम अहता-ममता एव भ्रान्तिरूप मायामय-मनोधर्मोंको त्यागो और इन्द्रियोके बाह्य विषयोसे अपने मनका सम्बन्ध छुडाकर उसे धीरे-धीरे अपने आत्मस्वरूप सर्वभूतान्तर्यामी परमेश्वर माया-मानवरूप भगवान् राममे स्थिर करो ॥ २०-२१ ॥ (चित्तको) बाह्य विषयोमे दोष दिखाकर उसे रामानन्दमे नियुक्त कर दो, ये माता, पिता, भ्राता, सुहृद् और स्नेहीजन तो देह-बुद्धिसे ही होते है ॥ २२ ॥ जिस समय अपने विशुद्ध अन्त करणद्वारा मनुष्य आत्माको देहसे पृथक् जान लेता है उस समय कौन किसका माता, पिता, भाई, बन्धु अथवा सुहृद् है ? ॥ २३ ॥ ये स्त्री और गृह आदि, शब्दादि विषय, नाना प्रकारकी सम्पत्ति, बल, कोष, सेवकगण, राज्य, पृथिवी और पुत्रादि तो सदा मिथ्या ज्ञानके कारण ही उत्पन्न हुए हैं और अज्ञानजन्य होनेके कारण वे सब क्षणभङ्गुर है ॥ २४-२५ ॥ अत अब खडे हो जाओ और हृदयमे भक्तिभावित भगवान् रामका स्मरण करते हुए निरन्तर प्रारब्धभोगोमे तत्पर हो राज्यादिका पालन करो ॥ २६ ॥ भूत और भविष्यत्की चिन्ता न करते हुए तथा वर्तमानका अनुगमन करते हुए न्यायानुकूल आचरण करो। इससे तुम ससार-दोषसे लिप्त न होगे ॥ २७ ॥ भगवान् राम तुम्हे आज्ञा देते हैं कि अपने भाईका जो कुछ और्ध्वदैहिक कर्म हो वह सब शास्त्रानुसार करो और हे महाबुद्धे ! इन रोती हुई स्त्रियोको यहाँसे अलग करो, ये सब लकापुरीको जायँ इसमे देरी न हो।"

लक्ष्मणजीके यथार्थ वचन सुनकर विभीषण शोक और मोहको छोडकर भगवान् रामके पास आये। धर्मज्ञ विभीषणने चित्तमे कुछ सोच-विचारकर श्रीरामचन्द्रजीका ही अनुवर्तन करनेके लिये यो धर्मार्थयुक्त उत्तर दिया—"प्रभो ! यह रावण बडा दुष्ट, मिथ्यावादी, क्रूर

नार्होऽस्मि देव संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम्।
श्रुत्वा तद्वचनं प्रीतो रामो वचनमब्रवीत्॥ ३२॥

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥ ३३॥

रामाज्ञां शिरसा धृत्वा शीघ्रमेव विभीषणः।
सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिं राज्ञीं मन्दोदरीं तदा॥ ३४॥

सान्त्वयामास धर्मात्मा धर्मबुद्धिर्विभीषणः।
त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थं स्वबान्धवान्॥ ३५॥

चित्यां निवेश्य विधिवत्पितृमेधविधानतः।
आहिताग्नेर्यथा कार्यं रावणस्य विभीषणः॥ ३६॥

तथैव सर्वमकरोद्बन्धुभिः सह मन्त्रिभिः।
ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः॥ ३७॥

स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भाभिमिश्रितान्।
उदकेन च सम्मिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम्॥ ३८॥

प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं प्रणम्य च।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः॥ ३९॥

गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा।
प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः॥ ४०॥

रामपार्श्वमुपागत्य तदातिष्ठद्विनीतवत्।
रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः॥ ४१॥

हर्षं लेभे रिपून्हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः।
मातलिश्च तदा रामं परिक्रम्याभिवन्द्य च॥ ४२॥

अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा।
ततो हृष्टमना रामो लक्ष्मणं चेदमब्रवीत्॥ ४३॥

विभीषणाय मे लङ्काराज्यं दत्तं पुरैव हि।
इदानीमपि गत्वा त्वं लङ्कामध्ये विभीषणम्॥ ४४॥

अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद्विधिपूर्वकम्।
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः॥ ४५॥

लङ्कां सुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः।
अभिषेकं शुभं चक्रे राक्षसेन्द्रस्य धीमतः॥ ४६॥

और समस्त धर्मव्रत आदिसे रहित था। हे देव! इस परस्त्रीगामीका संस्कार करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ।" उसके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर कहा—"भैया! वैर तो मरनेतक ही होता है, सो अब हमारा काम हो चुका, अब तो यह जैसा तुम्हारा है वैसा ही मेरा है। अतः इसका संस्कार करो"॥ २८—३३॥

तब विभीषणने भगवान् रामकी आज्ञा सिरपर धारणकर तुरत ही शान्त वचनोंसे महाबुद्धिशालिनी रानी मन्दोदरीको ढाँढस बँधाया और तदनन्तर धर्मबुद्धि धर्मात्मा धर्मज्ञ विभीषणने अपने बन्धु-बान्धवोंसे संस्कारके लिये शीघ्रता करनेको कहा॥ ३४-३५॥ विभीषणने पितृमेधकी विधिसे शवको विधिपूर्वक चितापर रखा और जिस प्रकार अग्निहोत्रीका होना चाहिये उसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धवोंके और मन्त्रियोंके साथ मिलकर उन्होंने रावणके सब (अन्त्येष्टि) संस्कार किये। तत्पश्चात् विभीषणने उसे विधिवत् अग्निदान दिया॥ ३६-३७॥ फिर स्नानकर गीले वस्त्रसे तिल और दूब मिले जलसे विधिवत् जलाञ्जलि दी॥ ३८॥ तथा जलाञ्जलि देनेके अनन्तर पृथिवीपर सिर रखकर उसे प्रणाम किया और उन स्त्रियोंको बारम्बार सान्त्वनाके वचन कहकर ढाँढस बँधाया॥ ३९॥ (और कहा कि) 'अब तुम जाओ।' तब वे सब लङ्कापुरीको चली गयीं। समस्त राक्षसियोंके नगरमें चले जानेपर विभीषण भगवान् रामके पास आकर अति विनीतभावसे खड़े हो गये। सेना, सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित भगवान् रामको भी शत्रुओंका नाश कर चुकनेपर बड़ा आनन्द हुआ, जैसा कि वृत्रासुरको मारनेके अनन्तर इन्द्रको हुआ था।

तदनन्तर, मातलिने श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की और उन्हें प्रणाम कर उनकी आज्ञा पा आकाश-मार्गसे स्वर्गलोकको चला गया। तब श्रीरघुनाथजीने प्रसन्न-चित्तसे श्रीलक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा—॥ ४०—४३॥ "मैंने तो पहले ही विभीषणको लङ्काका राज्य दे दिया है, तथापि तुम इस समय भी लङ्कामें जाकर विभीषणका ब्राह्मणोंके द्वारा मन्त्र-पाठपूर्वक विधिवत् अभिषेक कराओ।" भगवान् रामकी ऐसी आज्ञा पा वानरोंके सहित श्रीलक्ष्मणजी तुरत ही लङ्कापुरीको गये तथा समुद्रके जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलशोंसे महाबुद्धिमान् राक्षसराज विभीषणका मङ्गलमय अभिषेक किया॥ ४४—४६॥

तत पौरजनै सार्धं नानोपायनपाणिभि ।
विभीषण ससौमित्रिरुपायनपुरस्कृत ॥ ४७ ॥

दण्डप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मण ।
रामो विभीषण दृष्ट्वा प्राप्तराज्य मुदान्वित ॥ ४८ ॥

कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत सहानुज ।
सुग्रीव च समालिङ्ग्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४९ ॥

सहायेन त्वया वीर जितो मे रावणो महान् ।
विभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो मयानघ ॥ ५० ॥

तत प्राह हनूमन्त पार्श्वस्थ विनयान्वितम् ।
विभीषणस्यानुमतेर्गच्छ त्व रावणालयम् ॥ ५१ ॥

जानक्यै सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम् ।
जानक्या प्रतिवाक्य मे शीघ्रमेव निवेदय ॥ ५२ ॥

तब, पुरवासियोके साथ हाथोमे नाना प्रकारकी भेटे लिये लक्ष्मणजीके सहित विभीषणने बहुत-सा उपहार आगे रख लीलाविहारी भगवान् रामको दण्डवत्-प्रणाम किया। विभीषणको राज्य प्राप्त हुआ देख श्रीरामचन्द्रजी बडे प्रसन्न हुए और भाई लक्ष्मणके सहित अपनेको कृतकृत्य-सा मानने लगे। तदनन्तर भगवान् रामने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर कहा— ॥ ४७—४९ ॥ "हे वीर ! तुम्हारी सहायतासे ही मैने महाबली रावणको जीता है और हे अनघ ! (उसीसे) विभीषणको भी लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त किया है" ॥ ५० ॥ फिर पास ही बडे विनीत भावसे खडे हुए हनुमान्‌जीसे कहा—"तुम विभीषणकी सम्मतिसे रावणके महलमे जाओ ॥ ५१ ॥ और जानकीजीको रावणके वध आदिका समस्त वृत्तान्त सुनाओ, फिर वह जो कुछ उत्तर दे वह मुझे सुनाना" ॥ ५२ ॥

एवमाज्ञापितो धीमान् रामेण पवनात्मज ।
प्रविवेश पुरीं लङ्का पूज्यमानो निशाचरै ॥ ५३ ॥

प्रविश्य रावणगृह शिशपामूलमाश्रिताम् ।
ददर्श जानकीं तत्र कृशा दीनामनिन्दिताम् ॥ ५४ ॥

राक्षसीभि परिवृता ध्यायन्तीं राममेव हि ।
विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मज ॥ ५५ ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वो भक्त्याग्रत स्थित ।
त दृष्ट्वा जानकी तूर्णीं स्थित्वा पूर्वस्मृतिं ययौ ॥ ५६ ॥

ज्ञात्वा त रामदूत सा हर्षात्सौम्यमुखी बभौ ।
स ता सौम्यमुखीं दृष्ट्वा तस्यै पवननन्दन ।
रामस्य भाषित सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५७ ॥

देवि राम ससुग्रीवो विभीषणसहायवान् ।
कुशली वानराणा च सैन्यैश्च सहलक्ष्मण ॥ ५८ ॥

रावण ससुत हत्वा सबल सह मन्त्रिभि ।
त्वामाह कुशल रामो राज्ये कृत्वा विभीषणम् ॥ ५९ ॥

बुद्धिमान् पवननन्दनने, भगवान् रामकी ऐसी आज्ञा पा राक्षसोसे पूजित हो, लङ्कापुरीमे प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ फिर रावणके महलमे जाकर शिशपावृक्षके तले बैठी हुई अति दुर्बल और दु खिनी अनिन्दिता जनकनन्दिनीको देखा ॥ ५४ ॥ वे राक्षसियोसे घिरी हुई थी और एकमात्र भगवान् रामका ही ध्यान कर रही थी। पवनकुमारने अति विनयावनत होकर उन्हे प्रणाम किया ॥ ५५ ॥ और अत्यन्त नम्रतापूर्वक भक्तिभावसे हाथ जोडकर सामने खडे हो गये। उन्हे देखकर जानकीजी (पहले तो कुछ देर) चुप रही, फिर उन्हे पूर्वस्मृति हो आयी ॥ ५६ ॥ और उन्हे रामका दूत जानकर उनका मुख हर्षसे खिल गया। हनुमान्‌जीने उन्हे प्रसन्नमुखी देख उनसे रामका सारा सन्देश कहना आरम्भ किया ॥ ५७ ॥ (वे बोले—) "देवि ! विभीषण जिनके सहायक है वे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सुग्रीव और वानर-सेनाके सहित कुशलपूर्वक है ॥ ५८ ॥ उन भगवान् रामने पुत्र, सेना और मन्त्रियोके सहित रावणको मारकर तथा लङ्काका राज्य विभीषणको देकर तुम्हे अपनी कुशल भेजी है" ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा भर्तु प्रिय वाक्य हर्षगद्गदया गिरा ।
किं ते प्रिय करोम्यद्य न पश्यामि जगत्त्रये ॥ ६० ॥

पतिका यह प्रिय सन्देश सुन श्रीसीताजी हर्षसे गद्गद वाणीसे बोली—"भैया ! मै तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ?

सम ते प्रियवाक्यस्य रत्नान्याभरणानि च ।
एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गम ॥ ६१ ॥

रत्नौघाद्विविधाद्वापि देवराज्याद्विशिष्यते ।
हतशत्रु विजयिन राम पश्यामि सुस्थिरम् ॥ ६२ ॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम् ।
सर्वे सौम्या गुणा सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिता ॥ ६३ ॥

राम द्रक्ष्यामि शीघ्र मामाज्ञापयतु राघव ।
तथेति ता नमस्कृत्य ययौ द्रष्टु रघूत्तमम् ॥ ६४ ॥

जानक्या भाषित सर्व रामस्याग्रे न्यवेदयत् ।
यन्निमित्तोऽयमारम्भ कर्मणा च फलोदय ॥ ६५ ॥

ता देवीं शोकसन्तप्ता द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ।
एवमुक्तो हनुमता रामो ज्ञानवता वर ॥ ६६ ॥

मायासीता परित्यक्तु जानकीमनले स्थिताम् ।
आदातु मनसा ध्यात्वा राम प्राह विभीषणम् ॥ ६७ ॥

गच्छ राजन् जनकजामानयाशु ममान्तिकम् ।
स्नाता विरजवस्त्राढ्या सर्वाभरणभूषिताम् ॥ ६८ ॥

विभीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा जगाम सहमारुति ।
राक्षसीभि सुवृद्धाभि स्नापयित्वा तु मैथिलीम् ॥ ६९ ॥

सर्वाभरणसम्पन्नामारोप्य शिबिकोत्तमे ।
याष्टीकैर्बहुभिर्गुप्ता कञ्चुकोष्णीषिभि शुभाम् ॥ ७० ॥

ता द्रष्टुमागता सर्वे वानरा जनकात्मजाम् ।
तान्वारयन्तो बहव सर्वतो वेत्रपाणय ॥ ७१ ॥

कोलाहल प्रकुर्वन्तो रामपार्श्वमुपाययु ।
दृष्ट्वा ता शिबिकारूढा दूरादथ रघूत्तम ॥ ७२ ॥

विभीषण किमर्थ ते वानरान्वारयन्ति हि ।
पश्यन्तु वानरा सर्वे मैथिलीं मातर यथा ॥ ७३ ॥

तुम्हारे प्रिय वाक्योके समान मुझे त्रिलोकीमे कोई रत्न-आभूषणादि भी दिखायी नही देते। (जिन्हे देकर तुमसे उऋण होऊँ) ।'' जानकीजीके इस प्रकार कहनेपर वानरश्रेष्ठ हनुमान्जी बोले ॥ ६०-६१ ॥ ''मात ! मै शत्रुके नष्ट होनेपर स्वस्थ-चित्तसे विराजमान विजयशाली श्रीरामका दर्शन करता हूँ—यह मेरे लिये नाना प्रकारकी रत्नराशि और देवराज्यसे भी बढकर है'' ॥ ६२ ॥ उनके ये वचन सुनकर मिथिलेशकुमारीने मारुतिसे कहा—''हे सौम्य ! जितने शुभ गुण हैं वे सब तुम्हींमे वर्तमान हैं ॥ ६३ ॥ अब, मैं रघुनाथजीके दर्शन करूँगी, वे शीघ्र ही मुझे भी आज्ञा दे ।'' तब हनुमान्जी 'बहुत अच्छा' कह उन्हे प्रणाम कर श्रीरघुनाथजीके दर्शनोके लिये चल दिये ॥ ६४ ॥

(वहाँ पहुँचकर) हनुमान्जीने श्रीरामचन्द्रजीके आगे जानकीजीका सारा सम्भाषण कह सुनाया (और कहा—) ''भगवन् ! जिनके लिये यह युद्धादि सम्पूर्ण कर्म आरम्भ हुए थे और जो उन समस्त कर्मोकी फलस्वरूपा है, अब उन शोकसन्तप्ता मिथिलेशनन्दिनी देवी जानकीको आप देखिये ।'' हनुमान्जीके इस प्रकार कहनेपर ज्ञानियोमे श्रेष्ठ भगवान् रामने माया-सीताको त्यागनेके लिये और अग्निस्थिता जानकीको ग्रहण करनेके लिये मनसे विचार करते हुए विभीषणसे कहा— ॥ ६५—६७ ॥ ''राजन् ! तुम जाओ और तुरत ही जानकीको स्नान करा, शुद्ध निर्मल वस्त्र पहना तथा सम्पूर्ण आभूषणोसे सुसज्जित कर मेरे पास ले आओ'' ॥ ६८ ॥

यह सुनकर विभीषण हनुमान्जीको साथ ले तुरत ही चले और शुभलक्षणा जानकीजीको बडी-बूढी राक्षसियोंद्वारा स्नान करा, सम्पूर्ण वस्त्राभूषणोसे सुसजित होनेपर एक सुन्दर पालकीपर चढाया और फिर उन्हे, जामा-पगडी आदिसे बने-ठने बहुत-से छडीदारोसे सुरक्षित कर ले चले ॥ ६९-७० ॥ उस समय सीताजीको देखनेके लिये सब वानर दौड आये। उन्हे चारो ओरसे रोकते तथा (हटो-हटो कहकर) बडा कोलाहल करते बहुत-से छडीदार रामचन्द्रजीके पास ले आये। रघुनाथजीने दूरसे ही सीताजीको पालकीपर चढी देखकर कहा— ॥ ७१-७२ ॥ ''विभीषण ! तुम्हारे ये छडीदार वानरोको क्यों रोकते हैं ? समस्त वानरगण जानकीका

पादचारेण सायातु जानकी मम सन्निधिम्।
श्रुत्वा तद्रामवचन शिबिकादवरुह्य सा ॥ ७४ ॥

पादचारेण शनकैरागता रामसन्निधिम्।
रामोऽपि दृष्ट्वा ता मायासीता कार्यार्थनिर्मिताम् ॥ ७५ ॥

अवाच्यवादान्बहुश प्राह ता रघुनन्दन ।
अमृष्यमाणा सा सीता वचन राघवोदितम् ॥ ७६ ॥

लक्ष्मण प्राह मे शीघ्र प्रज्वालय हुताशनम्।
विश्वासार्थ हि रामस्य लोकाना प्रत्ययाय च ॥ ७७ ॥

राघवस्य मत ज्ञात्वा लक्ष्मणोऽपि तदैव हि।
महाकाष्ठचय कृत्वा ज्वालयित्वा हुताशनम् ॥ ७८ ॥

रामपार्श्वमुपागम्य तस्थौ तूष्णीमरिन्दम ।
तत सीता परिक्रम्य राघव भक्तिसयुता ॥ ७९ ॥

पश्यता सर्वलोकाना देवराक्षसयोषिताम्।
प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ॥ ८० ॥

बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपगा।
यथा मे हृदय नित्य नापसर्पति राघवात् ॥ ८१ ॥

तथा लोकस्य साक्षी मा सर्वत पातु पावक ।
एवमुक्त्वा तदा सीता परिक्रम्य हुताशनम् ॥ ८२ ॥

विवेश ज्वलन दीप्त निर्भयेन हृदा सती ॥ ८३ ॥

दृष्ट्वा ततो भूतगणा ससिद्धा
सीता महावह्निगता भृशार्ता ।
परस्पर प्राहुरहो स सीता
राम श्रिय स्वा कथमत्यजज्ज्ञ ॥ ८४ ॥

माताके समान दर्शन करे ॥ ७३ ॥ और जानकीजी मेरे पास पैदल चलकर आये।"

रामजीके ये वचन सुन श्रीसीताजी पालकीसे उतर पडी और धीरे-धीरे पैदल ही श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँची। भगवान् रामने कार्यवश रची हुई मायासीताको देखकर उनसे बहुत-सी न कहनेयोग्य (उनके चरित्रके विषयमे सन्देहयुक्त) बाते कही। श्रीरघुनाथजीद्वारा कहे हुए उन वाक्योको सहन न कर सकनेके कारण सीताजीने लक्ष्मणजीसे कहा—"भगवान् रामके विश्वासके लिये और लोकोको निश्चय करानेके लिये तुम शीघ्र ही मेरे लिये अग्नि प्रज्वलित करो" ॥ ७४—७७ ॥ श्रीरघुनाथजीकी भी सम्मति समझकर शत्रुदमन लक्ष्मणजीने उसी समय बडा भारी काष्ठसमूह इकट्ठा किया और उसमे अग्नि प्रज्वलित कर चुपचाप रामजीके पास आकर खडे हो गये। तब सीताजीने भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की ॥ ७८-७९ ॥ और फिर श्रीमिथिलेशकुमारीने समस्त लोको तथा देव और राक्षसोकी स्त्रियोके देखते-देखते देवता और ब्राह्मणोको नमस्कार कर अग्निके पास जा हाथ जोडकर इस प्रकार कहा—"यदि मेरा हृदय श्रीरघुनाथजीको छोडकर कभी अन्यत्र नही जाता तो समस्त लोकोके साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करे" ऐसा कह सतीशिरोमणि श्रीसीताजी अग्निकी परिक्रमा कर निर्भय चित्तसे उस प्रज्वलित अग्निमे घुस गयी ॥ ८०—८३ ॥

उस समय सीताजीको महाप्रचण्ड अग्निमे प्रविष्ट हुई देख समस्त सिद्ध और भूतगण अत्यन्त व्याकुल हो गये और आपसमे कहने लगे—"अहो! सब कुछ जानते हुए भी श्रीरामचन्द्रजीने अपनी लक्ष्मी सीताजीको कैसे छोड दिया?" ॥ ८४ ॥

—★—

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे द्वादश सर्ग ॥ १२ ॥

—★—

त्रयोदश सर्ग

देवताओंका भगवान् रामकी स्तुति करना, सीताजीसहित अग्निदेवका प्रकट होना, अयोध्याके लिये प्रस्थान

श्रीमहादेव उवाच

ततः शक्रः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा ।
कुबेरश्च महातेजाः पिनाकी वृषवाहनः ॥ १ ॥

ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मुनिभिः सिद्धचारणैः ।
ऋषयः पितरः साध्या गन्धर्वाप्सरसोरगाः ॥ २ ॥

एते चान्ये विमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्र राघवः ।
अब्रुवन्परमात्मानं रामं प्राञ्जलयश्च ते ॥ ३ ॥

कर्ता त्वं सर्वलोकानां साक्षी विज्ञानविग्रहः ।
वसूनामष्टमोऽसि त्वं रुद्राणां शङ्करो भवान् ॥ ४ ॥

आदिकर्तासि लोकानां ब्रह्मा त्वं चतुराननः ।
अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्रभास्करौ ॥ ५ ॥

लोकानामादिरन्तोऽसि नित्य एकः सदोदितः ।
सदा शुद्धः सदा बुद्धः सदा मुक्तोऽगुणोऽद्वयः ॥ ६ ॥

त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः ।
त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः ॥ ७ ॥

रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह ।
त्वयाद्य निहतो दुष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम् ॥ ८ ॥

एवं स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात्पितामहः ।
अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथे स्थितम् ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इसी समय सहस्राक्ष इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महातेजस्वी वृषभ-वाहन महादेवजी, मुनि, सिद्ध और चारणोंके सहित ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी, पितृगण, ऋषि, साध्य, गन्धर्व, अप्सराएँ और नागगण—ये सब तथा और भी अन्यान्य देवगण श्रेष्ठ विमानोंपर चढ़कर जहाँ श्रीरघुनाथजी थे आये। और वे सब हाथ जोड़कर परमात्मा श्रीरामसे बोले ॥ १—३ ॥ "आप समस्त लोकोंके कर्ता, सबके साक्षी और विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं तथा वसुओंमें अष्टम वसु और रुद्रोंमें श्रीमहादेवजी हैं ॥ ४ ॥ आप ही समस्त लोकोंके आदिकर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी हैं, अश्विनीकुमार आपकी घ्राणेन्द्रिय हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं ॥ ५ ॥ सब लोकोंके आदि (उत्पत्तिस्थान) और अन्त (लयस्थान) आप ही हैं तथा आप नित्यस्वरूप, एक सदोदित (आविर्भाव-तिरोभावसे रहित नित्यप्रकाशस्वरूप), नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त, निर्गुण और अद्वितीय हैं ॥ ६ ॥ हे राम ! जो लोग आपकी मायासे आच्छादित हैं उन्हें आप मनुष्यरूप प्रतीत होते हैं, किन्तु जो आपका नामस्मरण करते हैं उन्हें तो आप सर्वदा चैतन्य स्वरूप ही भासते हैं ॥ ७ ॥ रावणने हमारे तेजके सहित हमारा स्थान भी छीन लिया था, सो आज वह दुष्ट आपके हाथसे मारा गया और हमें फिर अपना पद प्राप्त हो गया" ॥ ८ ॥ देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर साक्षात् पितामह ब्रह्माजी अति विनम्र होकर सत्यपथपर स्थित भगवान् रामसे बोले— ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥ १० ॥

ब्रह्माजी बोले—"हे राम ! सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्थितिके कारण, आत्मज्ञानियोंद्वारा हृदयमें ध्यान किये जानेवाले, त्याज्य और ग्राह्यरूप द्वन्द्वसे रहित, सबसे परे अद्वितीय, सत्तामात्र, सबके हृदयमें विराजमान, साक्षीस्वरूप आप विष्णुभगवान्को मैं प्रणाम करता

प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्व सशयबन्ध विषयौघान्।
पश्यन्तीश य गतमोहा यतयस्त
वन्दे राम रत्नकिरीट रविभासम्॥ ११ ॥

मायातीत माधवमाद्य जगदादिं
मानातीत मोहविनाश मुनिवन्द्यम्।
योगिध्येय योगविधान परिपूर्ण
वन्दे राम रञ्जितलोक रमणीयम्॥ १२ ॥

भावाभावप्रत्ययहीन भवमुख्यै-
र्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम्।
नित्य शुद्ध बुद्धमनन्त प्रणवाख्य
वन्दे राम वीरमशेषासुरदावम्॥ १३ ॥

त्व मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेत सहचारी ॥ १४ ॥

त्वामाद्यन्त लोकततीना परमीश
लोकाना नो लौकिकमानैरधिगम्यम्।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीय
वन्दे राम सुन्दरमिन्दीवरनीलम्॥ १५ ॥

को वा ज्ञातु त्वामतिमान गतमान
मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम्।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्द
वन्दे राम भवमुखवन्द्य सुखकन्दम्॥ १६ ॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बै प्रतिपाद्य
नित्यानन्द निर्विषयज्ञानमनादिम्।

हूँ॥ १० ॥ मोहहीन सन्यासीगण निश्चित बुद्धिके द्वारा प्राण और अपानको हृदयमे रोककर तथा अपने सम्पूर्ण सशय-बन्धन और विषय-वासनाओका छेदन कर जिस ईश्वरका दर्शन करते है उन रत्नकिरीटधारी सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ११ ॥ जो मायासे परे, लक्ष्मीके पति, सबके आदिकारण, जगत्के उत्पत्ति-स्थान, प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे परे, मोहका नाश करनेवाले, मुनिजनोसे वन्दनीय, योगियोसे ध्यान किये जानेयोग्य, योगमार्गके प्रवर्तक, सर्वत्र परिपूर्ण और सम्पूर्ण ससारको आनन्दित करनेवाले है उन परम सुन्दर भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १२ ॥ जो भाव और अभावरूप दोनो प्रकारकी प्रतीतियोसे रहित हैं तथा जिनके युगलचरणकमलोका योगपरायण शङ्कर आदि पूजन करते है और जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध और अनन्त है, सम्पूर्ण दानवोके लिये दावानलके समान उन ओकारनामक वीरवर रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १३ ॥ हे राम ! आप मेरे प्रभु है और मेरे सम्पूर्ण प्रार्थित कार्योंको पूर्ण करनेवाले हैं, आप देश-कालादि मान (परिमाण) से रहित, नारायणस्वरूप, अखिल विश्वको धारण करनेवाले, भक्तिसे प्राप्य, अपने स्वरूपका ध्यान किये जानेपर ससार-भयको दूर करनेवाले और योगाभ्याससे शुद्ध हुए चित्तमे विहार करनेवाले है॥ १४॥ आप इस लोक-परम्पराके आदि और अन्त (अर्थात् उत्पत्ति और प्रलयके स्थान) है, सम्पूर्ण लोकोके महेश्वर है, आप किसी भी लौकिक प्रमाणसे जाने नही जा सकते, आप तो भक्ति और श्रद्धासम्पन्न पुरुषोद्वारा ही भजन किये जानेयोग्य है, ऐसे नीलकमलके समान श्यामसुन्दर आप श्रीरामचन्द्रजीको मै प्रणाम करता हूँ॥ १५॥ हे लक्ष्मीपते ! आप प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे परे तथा सर्वथा निर्मान हैं। मायामे आसक्त कौन प्राणी आपको जाननेमे समर्थ हो सकता है ? आप महर्षियोके माननीय हैं, तथा (कृष्णावतारके समय) वृन्दावनमे अखिल देवसमूहकी वन्दना करते हुए भी रामरूपसे शिव आदि देवताओके स्वय वन्दनीय हैं, ऐसे आप आनन्दघन भगवान् रामको मै प्रणाम करता हूँ॥ १६ ॥ जो नाना शास्त्र और वेदसमूहसे प्रतिपादित नित्य आनन्दस्वरूप निर्विकल्प ज्ञान-

मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम्॥ १७॥

श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात्॥ १८॥

श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः
स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम्।
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं
रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम्॥ १९॥

प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं
प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः।
गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं
पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने॥ २०॥

विधाय मायाजनकात्मजां हरे
दशाननप्राणविनाशनाय च।
हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवै-
र्निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो॥ २१॥

तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी
कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता।
ततोऽतिहृष्टः परिगृह्य जानकीं
रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम्॥ २२॥

स्वाङ्के समावेश्य सदानपायिनीं
श्रियं त्रिलोकीजननीं श्रियः पतिः।
दृष्ट्वाथ रामं जनकात्मजायुतं
श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा।
भक्त्या गिरा गद्गदया समेत्य
कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे॥ २३॥

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभाभिधानम्।

स्वरूप और अनादि है तथा जिन्होंने मेरा कार्य करनेके लिये मनुष्यरूप धारण किया है उन मरकतमणिके समान नीलवर्ण मथुरानाथ* भगवान् रामको प्रणाम करता हूँ॥ १७॥ जो मनुष्य इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्याममूर्ति भगवान् रामका ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके कहे हुए इस ब्रह्मज्ञान-विधायक आद्य स्तोत्रका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा वह ध्यानशील पुरुष सकल पापोंसे मुक्त हो जायगा"॥ १८॥

लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजीकी यह स्तुति सुन लोकसाक्षी अग्निदेवने अपनी गोदमें निर्मल अरुण कान्तिसे सुशोभित और लाल वस्त्र तथा दिव्य आभूषणोंसे विभूषित विदेहपुत्री जानकीजीको लिये (प्रकट होकर) शरणागत दुःखहारी श्रीरघुनाथजीसे कहा—"रघुवीर! पहले तपोवनमें मुझे सौंपी हुई देवी जानकीको अब ग्रहण कीजिये॥ १९-२०॥

हे हरे! रावणका प्राणहरण करनेके लिये अपनी मायामयी सीता रचकर रावणको उसके पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित मार डाला। हे प्रभो! ऐसा करके आपने पृथिवीका भार उतार दिया॥ २१॥ वह प्रतिबिम्बरूपिणी मायासीता, जिस कार्यके लिये रची गयी थी उसे पूरा करके अब अदृश्य हो गयी है।" अग्निदेवके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अति प्रसन्न हो उनका पूजन कर प्रसन्नवदना जानकीजीको ग्रहण किया॥ २२॥ फिर लक्ष्मीपति भगवान् रामने अपनेसे कभी विलग न होनेवाली जगज्जननी जानकीको गोदमें बैठा लिया। उस समय जनकनन्दिनी सीताजीके सहित भगवान् रामको कान्तिसे सुशोभित देख देवराज इन्द्र अति प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर भक्ति-गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे॥ २३॥

इन्द्र बोले—जो नीलकमलकी-सी आभावाले हैं, संसाररूप वनके लिये जिनका नाम दावानलके समान है,

* यहाँ भगवान् रामको 'मथुरानाथ' कहकर श्रीराम और कृष्णकी अभिन्नता प्रकट की है।

भवानीहृदा भावितानन्दरूपं
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम्॥ २४॥
सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यम्।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम्॥ २५॥
प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं
प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम्।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं
कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम्॥ २६॥
सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं
सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं
विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये॥ २७॥
महायोगमायाविशेषानुयुक्तो
विभासीश लीलानराकारवृत्तिः।
त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः
सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके॥ २८॥
अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो
न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः।
इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्
त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः॥ २९॥
स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं
धराभारभूतासुरानीकदावम्।
शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं
दुरावारपारं भजे राघवेशम्॥ ३०॥
सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं
विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम्।
किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं
भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम्॥ ३१॥
लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे
समासीनमङ्के समाधाय सीताम्।

श्रीपार्वतीजी जिनके आनन्दस्वरूपका हृदयमें ध्यान करती हैं, जो (जन्म-मरणरूप) संसारसे छुड़ानेवाले हैं और शङ्करादि देवोंके आश्रय हैं उन भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ २४॥ जो देवमण्डलके दुःखसमूहका नाश करनेके एकमात्र कारण हैं तथा जो मनुष्यरूपधारी, आकारहीन और स्तुति किये जानेयोग्य हैं, पृथिवीका भार उतारनेवाले उन परमेश्वर परानन्दरूप पूजनीय भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ २५॥ जो शरणागतोंको सब प्रकारका आनन्द देनेवाले और उनके आश्रय हैं, जिनका नाम शरणागत भक्तोंके सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है, जिनका तप और योग एवं बड़े-बड़े योगीश्वरोंकी भावनाओंद्वारा चिन्तन किया जाता है तथा जो सुग्रीवादिके मित्र हैं, उन मित्ररूप भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ २६॥ जो भोगपरायण लोगोंसे सदा दूर रहते हैं और योगनिष्ठ पुरुषोंके सदा समीप ही विराजते हैं, श्रीजानकीजीके लिये आनन्दस्वरूप उन चिदानन्दघन श्रीरघुनाथजीको मैं सर्वदा भजता हूँ॥ २७॥ हे भगवन्! आप अपनी महान् योगमायाके गुणोंसे युक्त होकर लीलासे ही मनुष्यरूप प्रतीत हो रहे हैं। जिनके कर्ण आपकी इन आनन्दमयी लीलाओंके कथामृतसे पूर्ण होते हैं वे संसारमें नित्यानन्दरूप हो जाते हैं॥ २८॥ प्रभो! मैं तो सम्मान और सोमपानके उन्मादसे मतवाला हो रहा था, सर्वेश्वरताके अभिमानवश मैं अपने आगे किसीको कुछ भी नहीं समझता था। अब आपके चरणकमलोंकी कृपासे मेरा त्रिलोकाधिपतित्वका अभिमान चूर हो गया॥ २९॥ जो चमचमाते हुए रत्नजटित भुजबन्ध और हारोंसे सुशोभित हैं, पृथिवीके भाररूप राक्षसोंके लिये दावानलके समान हैं, जिनका शरच्चन्द्रके समान मुख और अति मनोहर नेत्रकमल हैं तथा जिनका आदि-अन्त जानना अत्यन्त कठिन है उन रघुनाथजीको मैं भजता हूँ॥ ३०॥ जिनके शरीरकी इन्द्रनील मणि और मेघके समान श्याम कान्ति है, जिन्होंने विराध आदि राक्षसोंको मारकर सम्पूर्ण लोकोंमें शान्ति स्थापित की है उन किरीटादिसे सुशोभित और श्रीमहादेवजीके परम धन रघुकुलेश्वर रामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ॥ ३१॥ जो तेजोमय सुवर्णके-से वर्णवाली और बिजलीके समान कान्तिमयी जानकीजीको गोदमें

स्फुरद्धेमवर्णा तडित्पुञ्जभास
भजे रामचन्द्र निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥ ३२ ॥

लिये करोडो चन्द्रमाओके समान देदीप्यमान सिहासनपर विराजमान है उन निर्दु ख और आलस्यहीन भगवान् रामको मै भजता हूँ ॥ ३२ ॥

तत प्रोवाच भगवान्भवान्या सहितो भव ।
राम कमलपत्राक्ष विमानस्थो नभ स्थले ॥ ३३ ॥

आगमिष्याम्ययोध्याया द्रष्टु त्वा राज्यसत्कृतम् ।
इदानीं पश्य पितरमस्य देहस्य राघव ॥ ३४ ॥

ततोऽपश्यद्विमानस्थ रामो दशरथ पुर ।
ननाम शिरसा पादौ मुदा भक्त्या सहानुज ॥ ३५ ॥

आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय राम दशरथोऽब्रवीत् ।
तारितोऽस्मि त्वया वत्स ससाराद्दु खसागरात् ॥ ३६ ॥

इत्युक्त्वा पुनरालिङ्ग्य ययौ रामेण पूजित ।
रामोऽपि देवराज त दृष्ट्वा प्राह कृताञ्जलिम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर आकाशमे विमानपर बैठे हुए भवानीसहित भगवान् शकरने कमलदललोचन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ ३३ ॥ "हे रघुनन्दन! मै आपको राज्याभिषिक्त होते देखनेके लिये अयोध्यापुरीमे आऊँगा, इस समय आप अपने इस शरीरके पिता (दशरथ) का दर्शन कीजिये" ॥ ३४ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने अपने सामने विमानपर बैठे हुए महाराज दशरथको देखा। (उन्हे देखते ही) उन्होने प्रसन्न होकर भाई लक्ष्मणके सहित भक्तिपूर्वक चरणोमे सिर रखकर प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ दशरथजीने श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगा लिया और उनका सिर सूँघकर कहा—"बेटा! तुमने मुझे ससाररूप दु खसमुद्रसे पार कर दिया" ॥ ३६ ॥ ऐसा कह श्रीरामको फिर हृदयसे लगा और उनसे पूजित हो दशरथजी चले गये।

मत्कृते निहतान्सङ्ख्ये वानरान्पतितान् भुवि ।
जीवयाशु सुधावृष्ट्या सहस्राक्ष ममाज्ञया ॥ ३८ ॥

तथेत्यमृतवृष्ट्या तान् जीवयामास वानरान् ।
ये ये मृता मृधे पूर्व ते ते सुप्तोत्थिता इव ।
पूर्ववद्बलिनो हृष्टा रामपार्श्वमुपाययु ॥ ३९ ॥

नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि ।
विभीषणस्तु साष्टाङ्ग प्रणिपत्याब्रवीद्वच ॥ ४० ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने देवराज इन्द्रको हाथ जोडे खडा देखकर कहा— ॥ ३७ ॥ "हे सहस्राक्ष! मेरी आज्ञासे तुम अमृत बरसाकर मेरे लिये युद्धमे मरकर पृथ्वीपर गिरे हुए वानरोको तुरत जीवित कर दो ॥ ३८ ॥ (ऐसा सुन देवराजने) 'बहुत अच्छा' कह अमृत बरसाकर उन सब वानरोको जीवित कर दिया। जो-जो वानर पहले युद्धमे मारे गये थे वे सभी सोकर उठे हुएके समान पहलेकी भाँति ही बलवान् और प्रसन्न होकर भगवान् रामके पास चले आये ॥ ३९ ॥ किन्तु वहाँ (युद्धमे मरकर गिरे हुए) राक्षसगण अमृतका स्पर्श होनेपर भी नही उठे।*

देव मामनुगृह्णीष्व मयि भक्तिर्यदा तव ।
मङ्गलस्नानमद्य त्व कुरु सीतासमन्वित ॥ ४१ ॥

अलङ्कृत्य सह भ्राता श्वो गमिष्यामहे वयम् ।
विभीषणवच श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूत्तम ॥ ४२ ॥

इसी समय विभीषणने साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा— ॥ ४० ॥ भगवन्! आपकी मुझपर अत्यन्त प्रीति है, अत इतनी कृपा कीजिये कि आज श्रीसीताजीके सहित मङ्गल-स्नान कीजिये ॥ ४१ ॥ फिर कल भाई लक्ष्मणके सहित वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित हो हम सब

* अमृतका स्वाभाविक गुण जीवनदान करना है, अत अमृतका स्पर्श होनेपर भी राक्षसोके जीवित न होनेसे स्वभाव-विपर्ययका दोष आता है। परन्तु भगवदिच्छाका प्रभाव इतना प्रबल है कि उसके आगे कुछ भी असम्भव नही है, भगवान्की इच्छा न होनेसे अमृतका प्रभाव भी बाधित हो गया। इसके अतिरिक्त इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि साक्षात् भगवान् रामके द्वारा मारे जानेके कारण राक्षस मुक्त हो गये थे। इसलिये अमृतका ससर्ग भी उन्हे फिर जीवित न कर सका।

सुकुमारोऽतिभक्तो मे भरतो मामवेक्षते ।
जटावल्कलधारी स शब्दब्रह्मसमाहित ॥ ४३ ॥

कथ तेन विना स्नानमलङ्कारादिक मम ।
अत सुग्रीवमुख्यास्त्व पूजयाशु विशेषत ॥ ४४ ॥

पूजितेषु कपीन्द्रेषु पूजितोऽह न सशय ।
इत्युक्तो राघवेणाशु स्वर्णरत्नाम्बराणि च ॥ ४५ ॥

ववर्ष राक्षसश्रेष्ठो यथाकाम यथारुचि ।
ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रामो रत्नैश्च यूथपान् ॥ ४६ ॥

अभिनन्द्य यथान्याय विससर्ज हरीश्वरान् ।
विभीषणसमानीत पुष्पक सूर्यवर्चसम् ॥ ४७ ॥

आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ।
अङ्के निधाय वैदेहीं लज्जमाना यशस्विनीम् ॥ ४८ ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ।
अब्रवीच्च विमानस्थ श्रीराम सर्ववानरान् ॥ ४९ ॥

सुग्रीव हरिराज च अङ्गद च विभीषणम् ।
मित्रकार्य कृत सर्व भवद्भि सह वानरै ॥ ५० ॥

अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्ट गन्तुमर्हथ ।
सुग्रीव प्रतियाह्याशु किष्किन्धा सर्वसैनिकै ॥ ५१ ॥

स्वराज्ये वस लङ्काया मम भक्तो विभीषण ।
न त्वा धर्षयितु शक्ता सेन्द्रा अपि दिवौकस ॥ ५२ ॥

अयोध्या गन्तुमिच्छामि राजधानीं पितुर्मम ।
एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबला ॥ ५३ ॥

ऊचु प्राञ्जलय सर्वे राक्षसश्च विभीषण ।
अयोध्या गन्तुमिच्छामस्त्वया सह रघूत्तम ॥ ५४ ॥

दृष्ट्वा त्वामभिषिक्त तु कौसल्यामभिवाद्य च ।
पश्चाद्वृणीमहे राज्यमनुज्ञा देहि न प्रभो ॥ ५५ ॥

रामस्तथेति सुग्रीव वानरै सविभीषण ।
पुष्पक सहनूमाश्च शीघ्रमारोह साम्प्रतम् ॥ ५६ ॥

चलेगे।'' विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले— ॥ ४२ ॥ ''मेरा भाई भरत अति सुकुमार और मेरा भक्त है, वह जटा-वल्कल धारण किये भगवन्नाममे तत्पर हुआ मेरी बाट देखता होगा ॥ ४३ ॥ उससे मिले बिना मै कैसे स्नान अथवा वस्त्राभूषण धारण कर सकता हूँ ? अत अब तुम शीघ्र ही सुग्रीवादि वानरोका ही विशेष सत्कार कर दो ॥ ४४ ॥ इन वानर-वीरोका सत्कार होनेसे मेरा ही सत्कार होगा—इसमे सन्देह नही।''

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर राक्षसश्रेष्ठ विभीषणने वानरोको उनकी इच्छा और रुचिके अनुसार बहुत-से रत्न और वस्त्रादि मुक्तहस्तसे दिये। इस प्रकार उन सब वानर-यूथपतियोको रत्नादिसे सत्कृत देख श्रीरामचन्द्रजीने सबकी यथायोग्य बडाई की और उन्हे विदा किया। फिर वे, सकुचाती हुई यशस्विनो जानकीजीको गोदमे ले महापराक्रमी धनुर्धर भाई लक्ष्मणके सहित, विभीषणके लाये हुए सूर्यके समान तेजस्वी अति उत्तम पुष्पक विमानपर आरूढ हुए। विमानपर बैठकर भगवान् रामने वानरराज सुग्रीव, अङ्गद, विभीषण और समस्त वानरोसे कहा—''आपलोगोने अन्य समस्त वानर-वीरोके सहित, मित्रका जो कुछ कार्य होता है वह खूब निभाया है ॥ ४५—५० ॥ अब मेरे आज्ञानुसार आप अपने-अपने इच्छित स्थानोको जाइये। सुग्रीव ! तुम अपने समस्त सैनिकोके सहित शीघ्र ही किष्किन्धाको जाओ ॥ ५१ ॥ विभीषण ! तुम मेरी भक्तिमे तत्पर रहकर अपने राज्यपर लकामे रहो। अब इन्द्रके सहित देवगण भी तुम्हारा बाल बाँका नही कर सकते ॥ ५२ ॥ अब मै अपने पिताजीकी राजधानी अयोध्यापुरीको जाना चाहता हूँ।''

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर वे समस्त महाबली वानरगण तथा राक्षसराज विभीषण हाथ जोडकर बोले—''हे रघुश्रेष्ठ ! हम सब आपके साथ अयोध्या चलना चाहते है ॥ ५३-५४ ॥ हे प्रभो ! हम आपको राज्याभिषिक्त हुआ देखकर और माता कौसल्याकी वन्दना कर फिर अपना राज्य ग्रहण करेगे, आप हमे (साथ चलनेकी) आज्ञा दीजिये'' ॥ ५५ ॥ तब रामचन्द्रजीने कहा—''बहुत अच्छा, सुग्रीव ! अब वानरोके सहित तुम शीघ्र ही विभीषण और हनुमान्को

ततस्तु पुष्पक दिव्य सुग्रीव सह सेनया।
विभीषणश्च सामात्य सर्वे चारुरुहुर्द्रुतम्॥ ५७॥

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेर परमासनम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा॥ ५८॥

बभौ तेन विमानेन हसयुक्तेन भास्वता।
प्रहृष्टश्च तदा रामश्चतुर्मुख इवापर॥ ५९॥

ततो बभौ भास्करबिम्बतुल्य
कुबेरयान तपसानुलब्धम्।
रामेण शोभा नितरा प्रपेदे
सीतासमेतेन सहानुजेन॥ ६०॥

साथ लेकर इस विमानपर चढो'' ॥ ५६ ॥ तब सेनाके सहित सुग्रीव और मन्त्रियोके सहित विभीषण—ये सभी बडी शीघ्रतासे दिव्य विमान पुष्पकपर चढ गये ॥ ५७ ॥

उन सबके आरूढ हो जानेपर वह कुबेरका परम यान भगवान् रामकी आज्ञा पा आकाश-मार्गसे उड चला ॥ ५८ ॥ उस तेजस्वी विमानपर जाते हुए भगवान् राम बडे प्रसन्न हुए और ऐसे सुशोभित हुए मानो दूसरे ब्रह्माजी हसपर चढे जा रहे हो ॥ ५९ ॥ उस समय, वह तपस्यासे प्राप्त हुआ कुबेरका यान सूर्यबिम्बके समान सुशोभित होने लगा तथा श्रीसीताजी और भाई लक्ष्मणके सहित भगवान् रामके कारण तो उसकी शोभा और भी अधिक बढ गयी ॥ ६० ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे त्रयोदश सर्ग ॥ १३ ॥

★

चतुर्दश सर्ग

अयोध्या-यात्रा, भरद्वाज मुनिका आतिथ्य तथा भरत-मिलाप

श्रीमहादेव उवाच

पातयित्वा ततश्चक्षु सर्वतो रघुनन्दन।
अब्रवीन्मैथिलीं सीता राम शशिनिभाननाम्॥ १॥

त्रिकूटशिखराग्रस्था पश्य लङ्का महाप्रभाम्।
एता रणभुव पश्य मासकर्दमपङ्किलाम्॥ २॥

असुराणा प्लवङ्गानामत्र वैशसन महत्।
अत्र मे निहत शेते रावणो राक्षसेश्वर॥ ३॥

कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्या सर्वे चात्र निपातिता।
एष सेतुर्मया बद्ध सागरे सलिलाशये॥ ४॥

एतच्च दृश्यते तीर्थ सागरस्य महात्मन।
सेतुबन्धमिति ख्यात त्रैलोक्येन च पूजितम्॥ ५॥

एतत्पवित्र परम दर्शनात्पातकापहम्।
अत्र रामेश्वरो देवो मया शम्भु प्रतिष्ठित॥ ६॥

अत्र मा शरण प्राप्तो मन्त्रिभिश्च विभीषण।
एषा सुग्रीवनगरी किष्किन्धा चित्रकानना॥ ७॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! तदनन्तर सब ओर दृष्टि डालकर श्रीरघुनाथजीने मिथिलेशकुमारी चन्द्रमुखी सीताजीसे कहा— ॥ १ ॥ "प्रिये! त्रिकूट पर्वतकी चोटीपर बसी हुई यह परम प्रकाशमयी लकापुरी देखो और यह मासमयी कीचडसे भरी हुई रणभूमि देखो ॥ २ ॥ यहाँ राक्षसो और वानरोका बडा भारी सहार हुआ है। यही मेरे हाथसे मरकर राक्षसराज रावण गिरा था ॥ ३ ॥ और यही कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि समस्त राक्षस-वीर मारे गये है। यह मैने जलपूर्ण समुद्रपर पुल बाँधा था ॥ ४ ॥ देखो, इस विशाल समुद्रपर यह सेतुबन्ध नामसे विख्यात तीर्थ दिखायी देता है, जो तीनो लोकोसे पूजनीय है ॥ ५ ॥ यह अत्यन्त पवित्र है और दर्शनमात्रसे ही सम्पूर्ण पापोको नष्ट करनेवाला है। यहाँ मैने श्रीरामेश्वर महादेवकी स्थापना की है ॥ ६ ॥ यही मन्त्रियोके सहित विभीषण मेरी शरणमे आया था। (और देखो) यह विचित्र उपवनोवाली सुग्रीवकी राजधानी किष्किन्धापुरी

तत्र रामाज्ञया ताराप्रमुखा हरियोषित ।
आनयामास सुग्रीव सीताया प्रियकाम्यया ॥ ८ ॥

ताभि सहोत्थित शीघ्र विमान प्रेक्ष्य राघव ।
प्राह चाद्रिमृष्यमूक पश्य वाल्यत्र मे हत ॥ ९ ॥

एषा पञ्चवटी नाम राक्षसा यत्र मे हता ।
अगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्य पश्याश्रमपदे शुभे ॥ १० ॥

एते ते तापसा सर्वे दृश्यन्ते वरवर्णिनि ।
असौ शैलवरो देवि चित्रकूट प्रकाशते ॥ ११ ॥

अत्र मा कैकयीपुत्र प्रसादयितुमागते ।
भरद्वाजाश्रम पश्य दृश्यते यमुनातटे ॥ १२ ॥

एषा भागीरथी गङ्गा दृश्यते लोकपावनी ।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ॥ १३ ॥

एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणाम कुरु भामिनि ।
एव क्रमेण सम्प्राप्तो भरद्वाजाश्रम हरि ॥ १४ ॥

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्या रघुनन्दन ।
भरद्वाज मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुज प्रभु ॥ १५ ॥

पप्रच्छ मुनिमासीन विनयेन रघूत्तम ।
शृणोषि कच्चिद्भरत कुशल्यास्ते सहानुज ॥ १६ ॥

सुभिक्षा वर्ततेऽयोध्या जीवन्ति च हि मातर ।
श्रुत्वा रामस्य वचन भरद्वाज प्रहृष्टधी ॥ १७ ॥

प्राह सर्वे कुशलिनो भरतस्तु महामना ।
फलमूलकृताहारो जटावल्कलधारक ॥ १८ ॥

पादुके सकल न्यस्य राज्य त्वा सुप्रतीक्षते ।
यद्यत्कृत त्वया कर्म दण्डके रघुनन्दन ॥ १९ ॥

राक्षसाना विनाश च सीताहरणपूर्वकम् ।
सर्व ज्ञात मया राम तपसा ते प्रसादत ॥ २० ॥

त्व ब्रह्म परम साक्षादादिमध्यान्तवर्जित ।
त्वमग्रे सलिल सृष्ट्वा तत्र सुप्तोऽसि भूतकृत् ॥ २१ ॥

है'' ॥ ७ ॥ किष्किन्धामे पहुँचनेपर भगवान् रामकी आज्ञासे सीताजीको प्रसन्न करनेके लिये सुग्रीव अपनी तारा आदि स्त्रियोको ले आये ॥ ८ ॥ जब रघुनाथजीने विमानको तुरत ही उन सबको लेकर चलते देखा तो वे (फिर सीताजीसे) कहने लगे—''यह ऋष्यमूक पर्वत देखो, यहाँ मैंने वालीको मारा था ॥ ९ ॥ इधर, पञ्चवटी है जहाँ मैने (खर-दूषणादि) राक्षसोका सहार किया था। देखो, ये मुनिवर अगस्त्य और सुतीक्ष्णके अति पवित्र आश्रम है ॥ १० ॥ हे सुन्दर वर्णवाली ! देखो, ये वे सब तपस्वीगण दिखायी दे रहे है और हे देवि ! यह पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूट दीख रहा है ॥ ११ ॥ यही मुझे मनानेके लिये कैकेयीके पुत्र भरत आये थे, और देखो, वह यमुनाजीके तटपर भरद्वाज मुनिका आश्रम दिखलायी दे रहा है ॥ १२ ॥ ये त्रिलोकपावनी भागीरथी गङ्गाजी दीख रही है और हे सीते ! (सूर्यवशी राजाओके किये हुए यज्ञोके) यूपो (यज्ञस्तम्भो) से युक्त यह सरयू नदी दिखायी दे रही है ॥ १३ ॥ हे सुन्दरि ! देखो, वह अयोध्यापुरी दीख रही है, उसे प्रणाम करो।'' इस प्रकार भगवान् राम क्रमसे भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचे ॥ १४ ॥

श्रीरघुनाथजीने चौदहवे वर्षके समाप्त होनेपर पञ्चमी तिथिको मुनिवर भरद्वाजके दर्शन कर उन्हे भाई लक्ष्मणसहित प्रणाम किया ॥ १५ ॥ फिर आश्रममे विराजमान मुनिवरसे रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने अति नम्रतापूर्वक पूछा—''आपने कुछ सुना है, भाई शत्रुघ्नसहित भरत कुशलसे है न ? ॥ १६ ॥ अयोध्यामे सुकाल तो है ? और हमारी माताएँ अभी जीवित है न ?''

भगवान् रामके ये वचन सुनकर भरद्वाज मुनिने प्रसन्न होकर कहा—''आपके यहाँ सब कुशल है। महामना भरतजी तो जटा-वल्कल धारण किये फल-मूलादिसे निर्वाह करते हुए राज्यका सारा भार आपकी पादुकाओको सौपकर आपहीकी प्रतीक्षा कर रहे है। हे रघुनन्दन ! आपने दण्डकारण्यमे जो-जो कार्य किये है तथा सीता-हरण होनेपर जैसे-जैसे राक्षसोका वध किया है वह सब आपकी कृपासे मैने तपोबलसे जान लिया है ॥ १७—२० ॥ आप आदि अन्त और मध्यसे रहित साक्षात् परब्रह्म है। आप समस्त भूतोको रचनेवाले है। आपने सबसे पहले जलरचकर उसपर शयन किया था।

नारायणोऽसि विश्वात्मन्नराणामन्तरात्मक ।
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामह ॥ २२ ॥

अतस्त्व जगतामीश सर्वलोकनमस्कृत ।
त्व विष्णुर्जानकी लक्ष्मी शेषोऽय लक्ष्मणाभिध ॥ २३ ॥

आत्मना सृजसीद त्वमात्मन्येवात्ममायया ।
न सज्जसे नभोवत्त्व चिच्छक्त्या सर्वसाक्षिक ॥ २४ ॥

बहिरन्तश्च भूताना त्वमेव रघुनन्दन ।
पूर्णोऽपि मूढदृष्टीना विच्छिन्न इव लक्ष्यसे ॥ २५ ॥

जगत्त्व जगदाधारस्त्वमेव परिपालक ।
त्वमेव सर्वभूताना भोक्ता भोज्य जगत्पते ॥ २६ ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यत्स्मर्यते वा रघूत्तम ।
त्वमेव सर्वमखिल त्वद्विनान्यन्न किञ्चन ॥ २७ ॥

माया सृजति लोकाश्च स्वगुणैरहमादिभि ।
त्वच्छक्तिप्रेरिता राम तस्मात्त्वय्युपचर्यते ॥ २८ ॥

यथा चुम्बकसान्निध्याच्चलन्त्येवायसादय ।
जडास्तथा त्वया दृष्टा माया सृजति वै जगत् ॥ २९ ॥

देहद्वयमदेहस्य तव विश्व रिरक्षिषो ।
विराट् स्थूल शरीर ते सूत्र सूक्ष्ममुदाहृतम् ॥ ३० ॥

विराज सम्भवन्त्येते अवतारा सहस्रश ।
कार्यान्ते प्रविशन्त्येव विराज रघुनन्दन ॥ ३१ ॥

अवतारकथा लोके ये गायन्ति गृणन्ति च ।
अनन्यमनसो मुक्तिस्तेषामेव रघूत्तम ॥ ३२ ॥

त्व ब्रह्मणा पुरा भूमेर्भारहाराय राघव ।
प्रार्थितस्तपसा तुष्टस्त्व जातोऽसि रघो कुले ॥ ३३ ॥

देवकार्यमशेषेण कृत ते राम दुष्करम् ।
बहुवर्षसहस्राणि मानुष देहमाश्रित ॥ ३४ ॥

हे विश्वात्मन् ! आप समस्त मनुष्योके अन्तरात्मा है, अत आप नारायण है। आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी सम्पूर्ण लोकोके पितामह है ॥ २१-२२ ॥ अत आप समस्त लोकोसे वन्दित और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी है। आप साक्षात् विष्णुभगवान् है, जानकीजी लक्ष्मी है और ये लक्ष्मणजी शेषनाग है ॥ २३ ॥ आप अधिष्ठानरूपसे अपने भीतर ही अपनी मायाके द्वारा स्वय अपने-आपसे ही इस सम्पूर्ण जगत्को रचते है, किन्तु आकाशके समान किसीसे भी लिप्त नही होते। आप अपनी चित्-शक्तिसे सबके साक्षी है ॥ २४ ॥ हे रघुनन्दन ! समस्त प्राणियोके भीतर और बाहर आप ही व्याप्त है, इस प्रकार पूर्ण होनेपर भी आप मूढ-बुद्धियोको परिच्छिन्न-(एकदेशी) से दिखायी देते है ॥ २५ ॥ हे जगत्पते ! आप ही जगत्, जगत्के आधार और उसका पालन करनेवाले है, तथा आप ही समस्त प्राणियोके (कालरूपसे) भोक्ता और (अन्नरूपसे) भोज्य है ॥ २६ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! जो कुछ भी दिखायी देता है तथा जो कुछ सुना और स्मरण किया जाता है वह सब आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कुछ भी नही है ॥ २७ ॥ हे राम ! आपकी शक्तिसे प्रेरित होकर ही माया अपने अहङ्कारादि गुणोसे सम्पूर्ण लोकोको रचती है, इसीलिये इन सबकी रचनाका आपहीमे आरोप किया जाता है ॥ २८ ॥ जिस प्रकार चुम्बककी सन्निधिसे लोहा आदि जड पदार्थ भी चलायमान हो जाते है उसी प्रकार आपकी दृष्टि पडनेसे ही माया सम्पूर्ण जगत्की रचना करती है ॥ २९ ॥ विश्वकी रक्षा करनेके इच्छुक आप देहहीन होकर भी दो देहवाले है। आपका स्थूल शरीर 'विराट्' और सूक्ष्म शरीर 'सूत्र' कहलाता है ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन ! आपके विराट् शरीरसे ही ये सहस्रो अवतार उत्पन्न होते है और अपना कार्य समाप्त कर फिर उसीमे लीन हो जाते है ॥ ३१ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! ससारमे जो लोग अनन्य चित्तसे आपके अवतारोकी कथा गाते और सुनते है उनकी तो मुक्ति अवश्य ही हो जाती है ॥ ३२ ॥ हे राघव ! पूर्वकालमे ब्रह्माजीने आपसे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर ही आपने रघुकुलमे अवतार लिया है ॥ ३३ ॥ हे राम ! जो अत्यन्त दुष्कर था, देवताओका वह सब काम आपने कर दिया। अब कई सहस्र वर्षतक मनुष्य-देहमे

कुर्वन्दुष्करकर्माणि लोकद्वयहिताय च ।
पापहारीणि भुवन यशसा पूरयिष्यसि ॥ ३५ ॥

प्रार्थयामि जगन्नाथ पवित्र कुरु मे गृहम् ।
स्थित्वाद्य भुक्त्वा सबल श्वो गमिष्यसि पत्तनम् ॥ ३६ ॥

तथेति राघवोऽतिष्ठत्तस्मिन्नाश्रम उत्तमे ।
ससैन्य पूजितस्तेन सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ३७ ॥

ततो रामश्चिन्तयित्वा मुहूर्त प्राह मारुतिम् ।
इतो गच्छ हनूमस्त्वमयोध्या प्रति सत्वर ॥ ३८ ॥

जानीहि कुशली कश्चिज्जनो नृपतिमन्दिरे ।
शृङ्गवेरपुर गत्वा ब्रूहि मित्र गुह मम ॥ ३९ ॥

जानकीलक्ष्मणोपेतमागत मा निवेदय ।
नन्दिग्राम ततो गत्वा भ्रातर भरत मम ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा ब्रूहि सभार्यस्य सभ्रातु कुशल मम ।
सीतापहरणादीनि रावणस्य वधादिकम् ॥ ४१ ॥

ब्रूहि क्रमेण मे भ्रातु सर्व तत्र विचेष्टितम् ।
हत्वा शत्रुगणान्सर्वान्सभार्य सहलक्ष्मण ॥ ४२ ॥

उपयाति समृद्धार्थ सह ऋक्षहरीश्वरै ।
इत्युक्त्वा तत्र वृत्तान्त भरतस्य विचेष्टितम् ॥ ४३ ॥

सर्व ज्ञात्वा पुन शीघ्रमागच्छ मम सन्निधिम् ।
तथेति हनुमास्तत्र मानुष वपुरास्थित ॥ ४४ ॥

नन्दिग्राम ययौ तूर्ण वायुवेगेन मारुति ।
गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन् भुजगोत्तमम् ॥ ४५ ॥

शृङ्गवेरपुर प्राप्य गुहमासाद्य मारुति ।
उवाच मधुर वाक्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४६ ॥

रामो दाशरथि श्रीमान्सखा ते सह सीतया ।
सलक्ष्मणस्त्वा धर्मात्मा क्षेमी कुशलमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

अनुज्ञातोऽद्य मुनिना भरद्वाजेन राघव ।
आगमिष्यति त देव द्रक्ष्यसि त्व रघूत्तमम् ॥ ४८ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा सम्प्रहृष्टतनूरुहम् ।
उत्पपात महावेगो वायुवेगेन मारुति ॥ ४९ ॥

स्थित रहकर दोनो लोकोके कल्याणके लिये बहुत-से कठिन और पाप-नाशक कार्य करते हुए आप सम्पूर्ण लोकोको अपने सुयशसे परिपूर्ण करेगे ॥ ३४-३५ ॥ हे जगन्नाथ ! मेरी यह प्रार्थना है कि आज सेनासहित यहाँ ठहरकर और भोजन कर मेरा घर पवित्र कीजिये । फिर कल अपनी राजधानीमे पधारे ॥ ३६ ॥ तब रघुनाथजी 'बहुत अच्छा' कह मुनिवर भरद्वाजसे सत्कृत हो सेना, सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित उस अत्युत्तम आश्रममे ठहर गये ॥ ३७ ॥

इस समय एक मुहूर्त विचारकर भगवान् रामने श्रीमारुतिसे कहा—"हनुमन् ! तुम शीघ्र ही यहाँसे अयोध्याको जाओ ॥ ३८ ॥ और यह मालूम करो कि राजमन्दिरमे सब कुशलसे तो हैं ? शृङ्गवेरपुरमे जाकर मेरे मित्र गुहसे बातचीत करना ॥ ३९ ॥ और उसे जानकी और लक्ष्मणके सहित मेरे आनेकी सूचना देना । तत्पश्चात् नन्दिग्राममे जाकर मेरे भाई भरतसे मिलकर उसे स्त्री और भाईसहित मेरी कुशल सुनाना । वहाँ भैया भरतको सीता-हरणसे लेकर रावणके वध आदिपर्यन्त मेरी समस्त लीलाएँ क्रमसे सुनाना और कहना कि रामचन्द्रजी समस्त शत्रुओको मारकर सफल-मनोरथ हो स्त्री और लक्ष्मणके सहित रीछ और वानरोके साथ आ रहे है । यह सब वृत्तान्त उसे सुनाकर और भरतकी सभी चेष्टाओका पता लगाकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आना ।"

तब हनुमान्जी 'बहुत अच्छा' कह मनुष्य-शरीर धारण कर तुरत ही वायुवेगसे नन्दिग्रामको चले, मानो किसी श्रेष्ठ सर्पको पकडनेके लिये गरुडजी जाते हो ॥ ४०—४५ ॥ शृङ्गवेरपुर पहुँचनेपर श्रीमारुतिने गुहके पास जाकर अति प्रसन्न चित्तसे मीठी बोलीमे कहा— ॥ ४६ ॥ "तुम्हारे मित्र परम धार्मिक एव क्षेमयुक्त दशरथकुमार श्रीमान् रामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणके सहित अपनी कुशल कही है ॥ ४७ ॥ आज मुनिवर भरद्वाजकी आज्ञा लेकर श्रीरघुनाथजी आयेगे तब तुम्हे भी उन रघुश्रेष्ठ भगवान् रामका दर्शन होगा" ॥ ४८ ॥

जिसे हर्षसे रोमाञ्च हो रहा था ऐसे गुहसे इस प्रकार कह महातेजस्वी और अत्यन्त वेगशाली हनुमान्जी फिर

सोऽपश्यद्रामतीर्थं च सरयूं च महानदीम्।
तामतिक्रम्य हनुमान्नन्दिग्राम ययौ मुदा॥ ५०॥

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्॥ ५१॥

मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम्।
फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम्॥ ५२॥

पादुके ते पुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम्।
मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः॥ ५३॥

वृतं देहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम्।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः॥ ५४॥

यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम्।
अनुशोचसि काकुत्स्थः स त्वां कुशलमब्रवीत्॥ ५५॥

प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम्।
अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः॥ ५६॥

समरे रावणं हत्वा रामः सीतामवाप्य च।
उपयाति समृद्धार्थः ससीतः सहलक्ष्मणः॥ ५७॥

एवमुक्तो महातेजा भरतो हर्षमूर्च्छितः।
पपात भुवि चास्वस्थः कैकेयीप्रियनन्दनः॥ ५८॥

आलिङ्ग्य भरतः शीघ्रं मारुतिं प्रियवादिनम्।
आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेच भरतः कपिम्॥ ५९॥

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम्॥ ६०॥

गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं वरम्।
सर्वाभरणसम्पन्ना मुग्धाः कन्यास्तु षोडश॥ ६१॥

एवमुक्त्वा पुनः प्राह भरतो मारुतात्मजम्।
बहूनीमानि वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्॥ ६२॥

शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्।
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे॥ ६३॥

वायुवेगसे उडे॥ ४९॥ (कुछ दूर जानेपर) उन्होंने रामतीर्थ (अयोध्या) और महानदी सरयूके दर्शन किये। उसे भी पार कर हनुमान्‌जी अति प्रसन्न चित्तसे नन्दिग्रामको चले॥ ५०॥ अयोध्यासे एक कोसकी दूरीपर भरतजीको अति दीन और दुर्बल अवस्थामें चीरवस्त्र और कृष्णमृगचर्म धारण किये, आश्रममें निवास करते, शरीरमें भस्म रमाये, जटाजूट और वल्कलवस्त्र धारण किये, फल-मूलादि भोजनकर भगवान् रामके ध्यानमें तत्पर हुए, रामचन्द्रजीकी उन दोनों पादुकाओंको आगे रखकर पृथिवीका शासन करते तथा काषाय-वस्त्रधारी मन्त्रियों और मुख्य-मुख्य पुरवासियोंसे घिरे हुए साक्षात् मूर्तिमान् धर्मके समान देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जी हाथ जोडकर बोले—॥ ५१—५४॥ "हे भरतजी! जिन दण्डकारण्यवासी तपोनिष्ठ भगवान् रामका आप चिन्तन करते हैं तथा जिनके लिये आप इतना अनुताप करते हैं उन ककुत्स्थनन्दन रामने तुम्हें अपनी कुशल कहला भेजी है॥ ५५॥ हे देव! आप यह दारुण शोक त्यागिये। मैं आपको अति प्रिय समाचार सुनाता हूँ। आप इसी मुहूर्तमें अपने भाई रामसे मिलेंगे॥ ५६॥ भगवान् राम युद्धमें रावणको मारकर और सीताजीको प्राप्तकर सफल-मनोरथ हो सीता और लक्ष्मणजीके सहित आ रहे हैं"॥ ५७॥

श्रीहनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर कैकेयीके प्रिय पुत्र महातेजस्वी भरतजी हर्षसे मूर्च्छित हो अपनी सुध-बुध भुला पृथिवीपर गिर पडे॥ ५८॥ (फिर सँभलकर उठनेके अनन्तर) भरतजीने तुरत ही प्रियवादी हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया और आनन्दके कारण उमडे हुए अश्रुजलसे उन वानरश्रेष्ठको सींचने लगे॥ ५९॥ (और बोले—) "भैया! तुम कोई देवता हो या मनुष्य हो जो दया करके यहाँ आये हो? हे सौम्य! इस प्रिय समाचारके सुनानेके बदले मैं तुम्हें एक लक्ष गौ, अच्छे-अच्छे सौ गाँव और समस्त आभूषणोंसे युक्त परम सुन्दरी सोलह कन्याएँ देता हूँ"॥ ६०-६१॥ ऐसा कह श्रीभरतजीने हनुमान्‌जीसे फिर कहा—"आज, भयंकर वनमें जानेके कितने ही वर्ष बीतनेपर मैं अपने प्रभुका यह प्रिय समाचार सुन रहा हूँ। आज मुझे यह कल्याणमयी लौकिक कहावत बहुत ठीक मालूम होती है कि 'जीवित

एति जीवन्तमानन्दो नर वर्षशतादपि ।
राघवस्य हरीणा च कथमासीत्समागम ॥ ६४ ॥

तत्त्वमाख्याहि भद्र ते विश्वसेय वचस्तव ।
एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना ॥ ६५ ॥

आचचक्षेऽथ रामस्य चरित कृत्स्नश क्रमात् ।
श्रुत्वा तु परमानन्द भरतो मारुतात्मजात् ॥ ६६ ॥

आज्ञापयच्छत्रुहण मुदा युक्त मुदान्वित ।
दैवतानि च यावन्ति नगरे रघुनन्दन ॥ ६७ ॥

नानोपहारबलिभि पूजयन्तु महाधिय ।
सूता वैतालिकाश्चैव बन्दिन स्तुतिपाठका ॥ ६८ ॥

वारमुख्याश्च शतशो निर्यान्त्वद्यैव सङ्घश ।
राजदारास्तथामात्या सेना हस्त्यश्वपत्तय ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणाश्च तथा पौरा राजानो ये समागता ।
निर्यान्तु राघवस्याद्य द्रष्टु शशिनिभाननम् ॥ ७० ॥

भरतस्य वच श्रुत्वा शत्रुघ्नपरिचोदिता ।
अलञ्चक्रुश्च नगरीं मुक्तारत्नमयोज्ज्वलै ॥ ७१ ॥

तोरणैश्च पताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा ।
अलङ्कुर्वन्ति वेश्मानि नानाबलिविचक्षणा ॥ ७२ ॥

निर्यान्ति वृन्दश सर्वे रामदर्शनलालसा ।
हयाना शतसाहस्र गजानामयुत तथा ॥ ७३ ॥

रथाना दशसाहस्र स्वर्णसूत्रविभूषितम् ।
पारमेष्ठीन्युपादाय द्रव्याण्युच्चावचानि च ॥ ७४ ॥

ततस्तु शिबिकारूढा निर्ययू राजयोषित ।
भरत पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलि ॥ ७५ ॥

शत्रुघ्नसहितो राम पादचारेण निर्ययौ ।
तदैव दृश्यते दूराद्विमान चन्द्रसन्निभम् ॥ ७६ ॥

पुष्पक सूर्यसङ्काश मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ।
एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ॥ ७७ ॥

सुग्रीवश्च कपिश्रेष्ठो मन्त्रिभिश्च विभीषण ।
दृश्यते पश्यत जना इत्याह पवनात्मज ॥ ७८ ॥

रहनेपर सौ वर्षमे भी मनुष्यको आनन्द मिल सकता है ।' तुम्हारा शुभ हो, तुम यह सच-सच बताओ कि श्रीरघुनाथजीके साथ वानरोका समागम कैसे हुआ ? जिससे मैं तुम्हारे वचनका पूर्ण विश्वास करूँ ।''

महात्मा भरतजीके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीका क्रमश सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया। मारुतिसे वह चरित्र सुनकर श्रीभरतजीको अत्यन्त आनन्द हुआ ॥ ६२—६६ ॥ और उन्होने अति प्रसन्न होकर आनन्दमग्न शत्रुघ्नजीको आज्ञा दी कि ''हे रघुनन्दन ! नगरमे जितने देवता है महाबुद्धि पण्डितजन उन सबका नाना प्रकारकी भेट और बलि आदि देकर पूजन करे। सूत, वैतालिक, स्तुति-गान करनेवाले वन्दीजन और मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ आज ही सैकडोकी सख्यामे टोली बनाकर नगरके बाहर निकले। इनके अतिरिक्त राज-महिलाएँ, मन्त्रिगण, हाथी-घोडे और पदाति आदि सेना, ब्राह्मणलोग, पुरवासी और यहाँ आये हुए समस्त राजालोग भी श्रीरघुनाथजीका मुखचन्द्र निहारनेके लिये नगरके बाहर चले ॥ ६७—७० ॥

भरतजीके वचन सुनकर शत्रुघ्नजीकी प्रेरणासे नाना प्रकारकी रचनाओमे कुशल पुरवासियोने अपने घरोको सजाना आरम्भ किया तथा अनेक प्रकारके उज्ज्वल मोतियो और रत्नोकी वन्दनवारोसे एव चित्र-विचित्र पताकाओसे अयोध्यापुरीको सजा दिया ॥ ७१-७२ ॥ तब, भगवान् रामके दर्शनोकी लालसासे सब लोग अनेको टोलियाँ बनाकर उनकी भेटके लिये एक लाख घोडे, दस सहस्र हाथी और सुनहरी बागडोरोसे विभूषित दस सहस्र रथ आदि बहुत-सी ऐश्वर्य-सूचक छोटी-बडी वस्तुएँ लेकर नगरके बाहर निकलने लगे ॥ ७३-७४ ॥ उनके पीछे पालकीमे चढकर राजमहिलाएँ चली और फिर श्रीरघुनाथजीसे मिलनेके लिये भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजी सिरपर भगवान्‌की पादुकाएँ रखकर हाथ जोडे हुए पैरो-पैरो चले। इसी समय दूरहीसे ब्रह्माजीका मनोनिर्मित चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पक विमान दिखायी दिया। उसे देखकर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—''अरे लोगो ! देखो, इसी विमानमे श्रीजानकीजीके सहित दोनो वीर भ्राता राम और लक्ष्मण तथा कपिश्रेष्ठ सुग्रीव और मन्त्रियोके सहित विभीषण दिखायी दे रहे

ततो हर्षसमुद्भूतो नि स्वनो दिवमस्पृशत्।
स्त्रीबालयुववृद्धाना रामोऽयमिति कीर्तनात् ॥ ७९ ॥

रथकुञ्जरवाजिस्था अवतीर्य महीं गता ।
ददृशुस्ते विमानस्थ जना सोममिवाम्बरे ॥ ८० ॥

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुख ।
ततो विमानाग्रगत भरतो राघव मुदा ॥ ८१ ॥

ववन्दे प्रणतो राम मेरुस्थमिव भास्करम्।
ततो रामाभ्यनुज्ञात विमानमपतद्भुवि ॥ ८२ ॥

आरोपितो विमान तद्भरत सानुजस्तदा ।
राममासाद्य मुदित पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ८३ ॥

समुत्थाप्य चिराद्दृष्ट भरत रघुनन्दन ।
भ्रातर स्वाङ्कमारोप्य मुदा त परिषस्वजे ॥ ८४ ॥

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं नाम कीर्तयन्।
अभ्यवादयत प्रीतो भरत प्रेमविह्वल ॥ ८५ ॥

सुग्रीव जाम्बवन्त च युवराज तथाङ्गदम्।
मैन्दद्विविदनीलाश्च ऋषभ चैव सस्वजे ॥ ८६ ॥

सुषेण च नल चैव गवाक्ष गन्धमादनम्।
शरभ पनस चैव भरत परिषस्वजे ॥ ८७ ॥

सर्वे ते मानुष रूप कृत्वा भरतमादृता ।
पप्रच्छु कुशल सौम्या प्रहृष्टाश्च प्लवङ्गमा ॥ ८८ ॥

तत सुग्रीवमालिङ्ग्य भरत प्राह भक्तित ।
त्वत्सहायेन रामस्य जयोऽभूद्रावणो हत ॥ ८९ ॥

त्वमस्माक चतुर्णा तु भ्राता सुग्रीव पञ्चम ।
शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ॥ ९० ॥

सीतायाश्चरणौ पश्चाद्ववन्दे विनयान्वित ।
रामो मातरमासाद्य विवर्णा शोकविह्वलाम् ॥ ९१ ॥

जग्राह प्रणत पादौ मनो मातु प्रसादयन्।
कैकेयीं च सुमित्रा च ननामेतरमातरौ ॥ ९२ ॥

भरत पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते।
योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसयुत ॥ ९३ ॥

है'' ॥ ७५—७८ ॥ तब तो 'राम ये है, राम ये है' ऐसा कहनेसे स्त्री, बालक, युवा और वृद्धोका हर्षके कारण ऐसा शब्द हुआ कि जिससे आकाश गूँज उठा ॥ ७९ ॥ जो लोग रथ, हाथी और घोडोपर चढे हुए थे वे उतरकर पृथिवीपर खडे हो गये। उस समय वे सभी लोग विमानपर चढे हुए भगवान् रामको आकाशमे चन्द्रमाके समान देखने लगे ॥ ८० ॥

फिर प्रसन्नचित्त भरतजीने विमानपर बैठे हुए श्रीरघुनाथजीके सम्मुख हो उन्हे सुमेरु पर्वतपर प्रकट हुए सूर्यके समान अति विनीतभावसे हर्षपूर्वक प्रणाम किया। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विमान पृथिवीपर उतरा ॥ ८१-८२ ॥ तदनन्तर भगवान् रामने भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजीको भी विमानपर चढा लिया, रामचन्द्रजीके निकट पहुँचनेपर भरतजीने अति आनन्दित हो उन्हे फिर प्रणाम किया ॥ ८३ ॥ तब बहुत दिनोमे देखे हुए भाई भरतको रघुनाथजीने तुरत ही उठाकर प्रसन्नतासे गोदमे लेकर आलिङ्गन किया ॥ ८४ ॥ फिर प्रेमसे विह्वल हुए भरतजीने लक्ष्मणजीसे मिलकर श्रीसीताजीको अपना नाम उच्चारण करते हुए प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ८५ ॥ तत्पश्चात् भरतजीने सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील और ऋषभको तथा सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनसको भी हृदयसे लगाया ॥ ८६-८७ ॥ इस प्रकार भरतजीसे सत्कार पाकर प्रसन्न हुए उन सौम्य वानरोने मनुष्यरूप धारणकर उनकी कुशल पूछी ॥ ८८ ॥ तब भरतजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर अति प्रेमपूर्वक कहा—''सुग्रीव! तुम्हारी सहायतासे ही श्रीरामचन्द्रजीकी विजय हुई और रावण मारा गया, अत हम चारोके तुम पाँचवे भाई हो।'' तदनन्तर शत्रुघ्नजीने लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीको प्रणामकर अति विनीत भावसे सीताजीके चरणोकी वन्दना की। फिर श्रीरामचन्द्रजीने शोकके कारण अति व्याकुल और कृश हुई माता कौसल्याके पास जाकर अति विनीत भावसे उनके चरण छुए और उनके चित्तको प्रसन्न किया तथा अपनी विमाता कैकेयी और सुमित्राको भी नमस्कार किया ॥ ८९—९२ ॥ तदुपरान्त भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीकी भली प्रकार पूजा की हुई पादुकाओको भक्तिपूर्वक उनके चरणोमे पहना दिया ॥ ९३ ॥

राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यातितं तव ।
अद्य मे सफलं जन्म फलितो मे मनोरथः ॥ ९४ ॥

यत्पश्यामि समायातमयोध्यां त्वामहं प्रभो ।
कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥ ९५ ॥

त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् ।
इति ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा सर्वे कपीश्वराः ॥ ९६ ॥

मुमुचुर्नेत्रजं तोयं प्रशशंसुर्मुदान्विताः ।
ततो रामः प्रहृष्टात्मा भरतं स्वाङ्कगं मुदा ॥ ९७ ॥

ययौ तेन विमानेन भरतस्याश्रमं तदा ।
अवरुह्य तदा रामो विमानाग्र्यान्महीतलम् ॥ ९८ ॥

अब्रवीत्पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह ।
अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम् ॥ ९९ ॥

रामो वसिष्ठस्य गुरोः पदाम्बुजं
नत्वा यथा देवगुरोः शतक्रतुः ।
दत्त्वा महार्हासनमुत्तमं गुरो-
रुपाविवेशाथ गुरोः समीपतः ॥ १०० ॥

(और कहा—) "प्रभो! मुझे धरोहररूपसे सौंपे हुए आपके इस राज्यको मैं फिर आपहीको सौंपता हूँ, आज मैं आपको अयोध्यामें आया हुआ देखता हूँ—इससे मेरा जन्म सफल हो गया और मेरी सारी कामनाएँ पूरी हो गयीं। हे जगन्नाथ! आपके प्रतापसे मैंने अन्न-भण्डार, सेना और कोशादि पहलेसे दसगुने कर दिये हैं। अब आप अपने नगरका स्वयं पालन कीजिये।" भरतजीको इस प्रकार कहते देख सभी मुख्य-मुख्य वानर हर्षसे आँसू गिराते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे।

तब श्रीरामचन्द्रजी अति हर्षपूर्वक भरतजीको गोदमें लिये उसी विमानपर चढ़े हुए भरतजीके आश्रमको गये। वहाँ विमानश्रेष्ठ पुष्पकसे नीचे पृथिवीपर उतरकर भगवान् रामने उससे कहा—"जाओ, मैं आज्ञा देता हूँ—अब, तुम धनपति कुबेरका अनुसरण करते हुए उन्हींको वहन करो" ॥ ९४—९९ ॥ फिर, इन्द्र जैसे बृहस्पतिजीकी वन्दना करते हैं वैसे ही श्रीरामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठजीके चरणकमलोंमें प्रणाम कर और उन्हें एक अति सुन्दर बहुमूल्य आसन दे स्वयं भी उन्हींके पास बैठ गये ॥ १०० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदश सर्ग

श्रीराम-राज्याभिषेक

श्रीमहादेव उवाच

ततस्तु कैकयीपुत्रो भरतो भक्तिसंयुतः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ॥ १ ॥

माता मे सत्कृता राम दत्तं राज्यं त्वया मम ।
ददामि तत्ते च पुनर्यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥

इत्युक्त्वा पादयोर्भक्त्या साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ।
बहुधा प्रार्थयामास कैकेय्या गुरुणा सह ॥ ३ ॥

तथेति प्रतिजग्राह भरताद्राज्यमीश्वरः ।
मायामाश्रित्य सकलां नरचेष्टामुपागतः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! फिर कैकेयीपुत्र भरतजीने शीश झुकाये अञ्जलि बाँधकर अति भक्तिपूर्वक ज्येष्ठ भ्राता रामजीसे कहा— ॥ १ ॥ "हे राम! आपने मुझे राज्य दिया था, इससे मेरी माताका सत्कार तो हो चुका। अब, जैसे आपने मुझे दिया था वैसे ही मैं फिर आपहीको उसे सौंपता हूँ" ॥ २ ॥ ऐसा कह उन्होंने चरणोंमें भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम कर (राज्य स्वीकार करनेके लिये) कैकेयी और गुरुजीके सहित बहुत कुछ प्रार्थना की ॥ ३ ॥ तब अपनी मायाको आश्रय कर सब प्रकारकी मनुष्य-लीलाएँ करनेमें प्रवृत्त हुए भगवान् रामने 'बहुत अच्छा' कह भरतजीसे राज्य ले लिया ॥ ४ ॥

स्वाराज्यानुभवो यस्य सुखज्ञानैकरूपिण ।
निरस्तातिशयानन्दरूपिण परमात्मन ॥ ५ ॥
मानुषेण तु राज्येन किं तस्य जगदीशितु ।
यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण त्रिलोकी नश्यति क्षणात् ॥ ६ ॥
यस्यानुग्रहमात्रेण भवन्त्याखण्डलश्रिय ।
लीलासृष्टमहासृष्टे कियदेतद्रमापते ॥ ७ ॥
तथापि भजता नित्य कामपूरविधित्सया ।
लीलामानुषदेहेन सर्वमप्यनुवर्तते ॥ ८ ॥
तत शत्रुघ्नवचनान्निपुण श्मश्रुकृन्तक ।
सम्भाराश्चाभिषेकार्थमानीता राघवस्य हि ॥ ९ ॥
पूर्व तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महात्मनि ।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥ १० ॥
विशोधितजट स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपन ।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ ११ ॥
प्रतिकर्म च रामस्य लक्ष्मणश्च महामति ।
कारयामास भरत सीताया राजयोषित ॥ १२ ॥
महार्हवस्त्राभरणैरलञ्चक्रु सुमध्यमाम् ।
ततो वानरपत्नीना सर्वासामेव शोभना ॥ १३ ॥
अकारयत कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ।
तत स्यन्दनमादाय शत्रुघ्नवचनात्सुधी ॥ १४ ॥
सुमन्त्र सूर्यसङ्काश योजयित्वाग्रत स्थित ।
आरुरोह रथ राम सत्यधर्मपरायण ॥ १५ ॥
सुग्रीवो युवराजश्च हनुमाश्च विभीषण ।
स्नात्वा दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥ १६ ॥
राममन्वीयुरग्रे च रथाश्वगजवाहना ।
सुग्रीवपत्न्य सीता च ययुर्यानै पुर महत् ॥ १७ ॥
वज्रपाणिर्यथा देवैर्हरिताश्वरथे स्थित ।
प्रययौ रथमास्थाय तथा रामो महत्पुरम् ॥ १८ ॥
सारथ्य भरतश्चक्रे रत्नदण्ड महाद्युति ।
श्वेतातपत्र शत्रुघ्नो लक्ष्मणो व्यजन दधे ॥ १९ ॥

जिन्हे हर समय स्वर्गीय राज्यका अनुभव होता है उन एकमात्र सुख और ज्ञानस्वरूप समस्त विषयानन्दोसे रहित परमानन्दमूर्ति परमात्मा जगदीश्वरको तुच्छ मानवी राज्यसे क्या काम है ? जिनके भृकुटि-विलासमात्रसे तीनो लोक एक क्षणमे नष्ट हो जाते है ॥ ५-६ ॥ जिनकी कृपासे इन्द्रकी राज्यलक्ष्मी प्राप्त होती है तथा जिन्होने लीलासे ही यह महान् सृष्टि रची है उन लक्ष्मीपतिके लिये यह (अयोध्याका राज्य) कितना है ? ॥ ७ ॥ तथापि अपने भक्तोकी कामनाओको सदैव पूर्ण करनेके लिये वे माया-मानवदेहसे सर्वदा सभी कुछ अभिनय करते है ॥ ८ ॥

तब शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे कुशल क्षौरकार (नाई) बुलाया गया और रघुनाथजीके अभिषेकके लिये सामग्री इकट्ठी की गयी ॥ ९ ॥ पहले भरतजीने और फिर महात्मा लक्ष्मणजीने स्नान किया, तदुपरान्त वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण नहाये ॥ १० ॥ फिर जटाजूटके कट जानेपर श्रीरघुनाथजीने स्नान किया और रग-विरगी मालाओ, अङ्गरागो तथा बहुमूल्य वस्त्रोसे सुसज्जित हो वे अपनी कान्तिसे देदीप्यमान होकर विराजमान हुए ॥ ११ ॥ महामति लक्ष्मण और भरतने श्रीरामचन्द्रजीको विभूषित कराया और राजमहिलाओने सीताजीका शृङ्गार किया ॥ १२ ॥ उन्होने उस सुन्दरीको नाना प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणोसे सुसज्जित किया। तदनन्तर पुत्रवत्सला शोभामयी कौसल्याजीने अति प्रसन्न होकर समस्त वानरपत्नियोका भी शृङ्गार कराया।

इसी समय शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे बुद्धिमान् सुमन्त्रने सूर्यके समान तेजस्वी रथ जोडकर सामने ला खडा किया। तब सत्यधर्मपरायण भगवान् राम उस रथपर चढे ॥ १३—१५ ॥ उस समय सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान् और विभीषण स्नानादि कर दिव्य वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित हो रथ, घोडे और हाथी आदि वाहनोपर चढकर श्रीरामचन्द्रजीके आगे-पीछे चले तथा सुग्रीवकी पत्नियाँ और सीताजी सुन्दर पालकियोपर बैठकर अति विशाल अयोध्यापुरीको चली ॥ १६-१७ ॥ जिस प्रकार हरितवर्ण घोडोके रथमे बैठकर वज्रपाणि इन्द्र देवताओके साथ चलते है उसी प्रकार भगवान् राम रथपर चढकर महापुरी अयोध्याको चले ॥ १८ ॥ तब महातेजस्वी भरतजीने सारथी होकर रथ चलाया, शत्रुघ्नजीने रत्नजटित दण्डयुक्त

चामर च समीपस्थो न्यवीजयदरिन्दम ।
शशिप्रकाश त्वपर जग्राहासुरनायक ॥ २० ॥

दिविजै सिद्धसङ्घैश्च ऋषिभिर्दिव्यदर्शनै ।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनि ॥ २१ ॥

मानुष रूपमास्थाय वानरा गजवाहना ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च मृदङ्गपणवानकै ॥ २२ ॥

प्रययौ राघवश्रेष्ठस्ता पुरीं समलङ्कृताम् ।
ददृशुस्ते समायान्त राघव पुरवासिन ॥ २३ ॥

दूर्वादलश्यामतनु महार्ह-
किरीटरत्नाभरणाञ्चिताङ्गम् ।
आरक्तकञ्जायतलोचनान्त
दृष्ट्वा ययुर्मोदमतीव पुण्या ॥ २४ ॥

विचित्ररत्नाञ्चितसूत्रनद्ध-
पीताम्बर पीनभुजान्तरालम् ।
अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारै-
र्विरोचमान रघुनन्दन प्रजा ॥ २५ ॥

सुग्रीवमुख्यैर्हरिभि प्रशान्तै-
र्निषेव्यमाण रवितुल्यभासम् ।
कस्तूरिकाचन्दनलिप्तगात्र
निवीतकल्पद्रुमपुष्पमालम् ॥ २६ ॥

श्रुत्वा स्त्रियो राममुपागत मुदा
प्रहर्षवेगोत्कलिताननश्रिय ।
अपास्य सर्व गृहकार्यमाहित
हर्म्याणि चैवारुरुहु स्वलङ्कृता ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा हरिं सर्वदृगुत्सवाकृतिं
पुष्पै किरन्त्य स्मितशोभितानना ।
दृग्भि पुनर्नेत्रमनोरसायन
स्वानन्दमूर्तिं मनसाभिरेभिरे ॥ २८ ॥

राम स्मितस्निग्धदृशा प्रजास्तथा
पश्यन्प्रजानाथ इवापर प्रभु ।

श्वेत छत्र लिया और लक्ष्मणजीने व्यजन (पङ्खा) धारण किया ॥ १९ ॥ एक ओर पास ही स्थित शत्रुदमन सुग्रीवने और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषणने चन्द्रमाके समान कान्तियुक्त चँवर डुलाया ॥ २० ॥ उस समय भगवान् रामकी स्तुति करते हुए दिव्यदर्शन देवताओ, सिद्धसमूहो और ऋषियोकी सुमधुर ध्वनि सुनायी देने लगी ॥ २१ ॥

वानरगण मनुष्यरूप धारणकर हाथियोपर सवार हुए। इस प्रकार रघुश्रेष्ठ भगवान् राम सहनाई, शङ्ख, मृदङ्ग, ताशे और नगाडे आदि बाजोके घोषके साथ भली प्रकार सजायी हुई अयोध्यापुरीमे गये। उस समय पुरवासी लोग श्रीरघुनाथजीको आते हुए देखने लगे ॥ २२-२३ ॥ वे महाभाग पुरजन दूर्वादलके समान श्याम-शरीर, महामूल्य मुकुट और रत्नजटित आभूषणोसे विभूषित, कमलके समान कुछ अरुणवर्ण विशाल नयनोवाले, रग-विरगे रत्नोसे युक्त (सुनहरी) तारके कामका पीताम्बर धारण किये, विशाल वक्ष स्थलवाले, बहुमूल्य मोतियोके दिव्य हारोसे सुशोभित, सुग्रीवादि शान्तस्वभाव वानरोसे सेवित, सूर्यके समान तेजस्वी, समस्त शरीरमे कस्तूरी और चन्दनका लेप किये तथा कल्पवृक्षके पुष्पोकी माला धारण किये श्रीरघुनाथजीको देखकर परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥ २४—२६ ॥

जब स्त्रियोने भगवान् रामको आते सुना तो प्रसन्नतासे महान् हर्षके कारण उनके मुखकी कान्ति उज्ज्वल हो गयी और वे जिस गृहकार्यमे लगी हुई थी उसे छोड भली प्रकार सज-धजकर अपने-अपने घरोके ऊपर चढ गयी ॥ २७ ॥ सुमधुर मुसकानसे जिनका मुख मनोहर हो रहा है वे पुरनारियाँ, सबके नयनानन्द-स्वरूप भगवान् रामको देखकर, फूलोकी वर्षा करने लगी और फिर उन्होने, नेत्र और मनको प्रिय लगनेवाली उस आनन्दमयी मूर्तिको नेत्रोद्वारा हृदयमे ले जाकर, मनसे आलिङ्गन किया ॥ २८ ॥ इस प्रकार विष्णुस्वरूप भगवान् राम दूसरे प्रजापतिके समान मुसकानयुक्त मनोहर दृष्टिसे अपनी

शनैर्जगामाथ पितु स्वलङ्कृत
गृह महेन्द्रालयसन्निभ हरि ॥ २९ ॥

प्रविश्य वेश्मान्तरसस्थितो मुदा
रामो ववन्दे चरणौ स्वमातु ।
क्रमेण सर्वा पितृयोषित प्रभु-
र्ननाम भक्त्या रघुवशकेतु ॥ ३० ॥

प्रजाको देखते हुए धीरे-धीरे भली प्रकार सजाये हुए अपने पिताके इन्द्रभवनके समान महलमे गये ॥ २९ ॥ राजमहलके भीतर जाकर श्रीरामचन्द्रजीने अतिप्रसन्न चित्तसे अपनी माता (कौसल्या) के चरणोकी वन्दना की और फिर उन रघुवशशिरोमणि प्रभुने क्रमश सभी विमाताओको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३० ॥

ततो भरतमाहेद राम सत्यपराक्रम ।
सर्वसम्पत्समायुक्त मम मन्दिरमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

मित्राय वानरेन्द्राय सुग्रीवाय प्रदीयताम् ।
सर्वेभ्य सुखवासार्थ मन्दिराणि प्रकल्पय ॥ ३२ ॥

रामेणैव समादिष्टो भरतश्च तथाकरोत् ।
उवाच च महातेजा सुग्रीव राघवानुज ॥ ३३ ॥

राघवस्याभिषेकार्थ चतु सिन्धुजल शुभम् ।
आनेतु प्रेषयस्वाशु दूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥ ३४ ॥

प्रेषयामास सुग्रीवो जाम्बवन्त मरुत्सुतम् ।
अङ्गद च सुषेण च ते गत्वा वायुवेगत ॥ ३५ ॥

जलपूर्णान् शातकुम्भकलशांश्च समानयन् ।
आनीत तीर्थसलिल शत्रुघ्नो मन्त्रिभि सह ॥ ३६ ॥

राघवस्याभिषेकार्थ वसिष्ठाय न्यवेदयत् ।
ततस्तु प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणै सह ॥ ३७ ॥

राम रत्नमये पीठे ससीत सन्यवेशयत् ।
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गौतमस्तथा ॥ ३८ ॥

वाल्मीकिश्च तथा चक्रु सर्वे रामाभिषेचनम् ।
कुशाग्रतुलसीयुक्तपुण्यगन्धजलैर्मुदा ॥ ३९ ॥

अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठ वासव वसवो यथा ।
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणै श्रेष्ठै कन्याभि सह मन्त्रिभि ॥ ४० ॥

सर्वौषधिरसैश्चैव दैवतैर्नभसि स्थितै ।
चतुर्भिर्लोकपालैश्च स्तुवद्भि सगणैस्तथा ॥ ४१ ॥

तब सत्यपराक्रमी भगवान् रामने भरतजीसे कहा— "मेरा सर्वसम्पत्तियुक्त श्रेष्ठ महल मेरे मित्र वानरराज सुग्रीवको दो तथा और सबके लिये भी सुखपूर्वक रहने-योग्य महल बताओ" ॥ ३१-३२ ॥ श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर भरतजीने वैसा ही किया, फिर महातेजस्वी भरतजीने सुग्रीवसे कहा— ॥ ३३ ॥ "श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये चारो समुद्रोका मङ्गलमय जल लानेके लिये तुरत ही शीघ्रगामी दूत भेजिये" ॥ ३४ ॥ तब सुग्रीवने जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद और सुषेणको भेजा। वे तुरत ही वायुवेगसे जाकर सुवर्णकलशोमे जल भरकर ले आये। उनके लाये हुए तीर्थजलको मन्त्रियोके सहित शत्रुघ्नजीने भगवान् रामके अभिषेकके लिये वसिष्ठजीको निवेदन कर दिया। तब ब्राह्मणोके सहित वयोवृद्ध जितेन्द्रिय वसिष्ठजीने सीताजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीको रत्नसिहासनपर बैठाया और फिर वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम तथा वाल्मीकि आदि समस्त महर्षियोने अति प्रसन्न होकर कुश और तुलसीके सहित पवित्र गन्धयुक्त जलसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक किया ॥ ३५—३९ ॥ फिर ऋत्विजो, श्रेष्ठ ब्राह्मणो, कन्याओ और मन्त्रियोके सहित उन महर्षियोने आकाशस्थित देवताओ तथा अपने-अपने गणोके सहित चारो लोकपालोके स्तुति करते हुए सर्वौषधिके रसोसे भी श्रीरघुनाथजीका इस प्रकार अभिषेक किया जैसे वसुओंने इन्द्रका किया था ॥ ४०-४१ ॥

छत्र च तस्य जग्राह शत्रुघ्न पाण्डुर शुभम् ।
सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ तौ दधतु श्वेतचामरे ॥ ४२ ॥

उस समय शत्रुघ्नजीने भगवान् रामके ऊपर अति सुन्दर श्वेत छत्र लगाया और सुग्रीव तथा विभीषणने श्वेत चामर धारण किये ॥ ४२ ॥

माला च काञ्चनीं वायुर्ददौ वासवचोदित ।
सर्वरत्नसमायुक्त मणिकाञ्चनभूषितम् ॥ ४३ ॥
ददौ हार नरेन्द्राय स्वय शक्रस्तु भक्तित ।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणा ॥ ४४ ॥
देवदुन्दुभयो नेदु पुष्पवृष्टि पपात खात् ।
नवदूर्वादलश्याम पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ४५ ॥
रविकोटिप्रभायुक्तकिरीटेन विराजितम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्य पीताम्बरसमावृतम् ॥ ४६ ॥
दिव्याभरणसम्पन्न दिव्यचन्दनलेपनम् ।
अयुतादित्यसङ्काश द्विभुज रघुनन्दनम् ॥ ४७ ॥
वामभागे समासीना सीता काञ्चनसन्निभाम् ।
सर्वाभरणसम्पन्ना वामाङ्के समुपस्थिताम् ॥ ४८ ॥
रक्तोत्पलकराम्भोजा वामेनालिङ्ग्य सस्थितम् ।
सर्वातिशयशोभाढ्य दृष्ट्वा भक्तिसमन्वित ॥ ४९ ॥
उमया सहितो देव शङ्करो रघुनन्दनम् ।
सर्वदेवगणैर्युक्त स्तोतु समुपचक्रमे ॥ ५० ॥

श्रीमहादेव उवाच

नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय
नीलोत्पलश्यामलकोमलाय ।
किरीटहाराङ्गदभूषणाय
सिहासनस्थाय महाप्रभाय ॥ ५१ ॥
त्वमादिमध्यान्तविहीन एक
सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम् ।
स्वमायया तेन न लिप्यसे त्व
यत्स्वे सुखेऽजस्त्ररतोऽनवद्य ॥ ५२ ॥
लीला विधत्से गुणसवृतस्त्व
प्रपन्नभक्तानुविधानहेतो ।
नानावतारै सुरमानुषाद्यै
प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम् ॥ ५३ ॥
स्वांशेन लोक सकल विधाय त
बिभर्षि च त्व तदध फणीश्वर ।

इन्द्रकी प्रेरणासे वायुने सुवर्णमयी माला दी और फिर स्वय इन्द्रने भी अति भक्तिपूर्वक महाराज रामको एक सम्पूर्ण रत्नोसे युक्त और मणि तथा सुवर्णसे विभूषित हार दिया। तदनन्तर, देवता और गन्धर्वोने गान आरम्भ किया और अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥ ४३-४४ ॥ तथा आकाशसे देव-दुन्दुभियोके घोषके साथ पुष्पोकी वर्षा होने लगी। फिर नवीन दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलदलके समान विशालनयन, करोडो सूर्योके समान प्रकाशयुक्त मुकुटसे सुशोभित, करोडो कामदेवोके समान कमनीय, पीताम्बर-परिवेष्टित, दिव्याभरण-विभूषित, दिव्यचन्दन-चर्चित, हजारो सूर्योके समान तेजस्वी, सबसे अधिक शोभायमान द्विभुज रघुनाथजीको अपनी बायी ओर करकमलमे रक्तकमल धारण किये बैठी हुई सर्वाभूषणविभूषिता सुवर्णवर्णा सीताजीको अपनी बायी भुजासे आलिङ्गन किये देख पार्वतीजीसहित भगवान् शङ्कर भक्तिभावसे भरकर समस्त देवताओके सहित स्तुति करने लगे ॥ ४५—५० ॥

श्रीमहादेवजी बोले—नीलकमलके समान सुकोमल श्यामशरीरवाले, किरीट, हार और भुजबन्ध आदिसे विभूषित तथा अपनी शक्ति (श्रीसीताजी) के सहित सिहासनपर विराजमान महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी-को नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे राम ! आप आदि, अन्त और मध्यसे रहित अद्वितीय हैं, अपनी मायासे आप ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना, पालन और सहार करते हैं, तो भी उससे लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप निरन्तर स्वानन्दमग्न और अनिन्द्य हैं ॥ ५२ ॥ अपनी मायाके गुणोसे आवृत होकर आप अपने शरणागत भक्तोंको मार्ग दिखानेके लिये देव, मनुष्यादि नाना प्रकारके अवतार लेकर विचित्र लीलाएँ करते हैं। उस समय सदा ज्ञानीजन ही आपको जान पाते हैं ॥ ५३ ॥ आप अपने अशसे सम्पूर्ण लोकोकी रचना करके उन्हे शेषरूप होकर नीचेसे धारण करते हैं तथा सूर्य, वायु, चन्द्र, ओषधि और वृष्टिरूप होकर उनका नाना

उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधि-
प्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत् ॥ ५४ ॥
त्वमिह देहभृता शिखिरूप
पचसि भुक्तमशेषमजस्रम् ।
पवनपञ्चकरूपसहायो
जगदखण्डमनेन बिभर्षि ॥ ५५ ॥
चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगत यत्
तेज ईश चिदशेषतनूनाम् ।
प्राभवत्तनुभृतामिव धैर्य
शौर्यमायुरखिल तव सत्त्वम् ॥ ५६ ॥
त्व विरिञ्चिशिवविष्णुविभेदात्
कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ।
वादिना पृथगिवेश विभासि
ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम् ॥ ५७ ॥
मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेक
श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्ध ।
तथैव सर्व सदसद्विभाग-
स्त्वमेव नान्यद्भवतो विभाति ॥ ५८ ॥
यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टा-
वुत्पत्स्यते यच्च भवच्च यच्च ।
न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ
त्वया विनात परत परस्त्वम् ॥ ५९ ॥
तत्त्व न जानन्ति परात्मनस्ते
जना समस्तास्तव माययात ।
त्वद्भक्तसेवामलमानसाना
विभाति तत्त्व परमेकमैशम् ॥ ६० ॥
ब्रह्मादयस्ते न विदु स्वरूप
चिदात्मतत्त्व बहिरर्थभावा ।
ततो बुधस्त्वामिदमेव रूप
भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदु ख ॥ ६१ ॥
अह भवन्नाम गृणन्कृतार्थो
वसामि काश्यामनिश भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽह
दिशामि मन्त्र तव राम नाम ॥ ६२ ॥

प्रकारसे ऊपरसे पालन करते है ॥ ५४ ॥ आप ही जठराग्निरूप होकर (प्राण, अपान आदि) पॉच प्राणोकी सहायतासे प्राणियोके खाये हुए अन्नको पचाकर उसके द्वारा सर्वदा सम्पूर्ण जगत्का पालन करते है ॥ ५५ ॥ हे ईश ! चन्द्र, सूर्य और अग्निमे जो तेज है, समस्त प्राणियोमे जो चेतनाश है तथा देहधारियोमे जो धैर्य, शौर्य और आयुर्बल-सा दिखायी देता है वह आपहीकी सत्ता है ॥ ५६ ॥ हे राम ! भिन्न-भिन्न ईश्वरवादियोको एक आप ही ब्रह्मा, महादेव और विष्णुके तथा काल, कर्म, चन्द्रमा और सूर्यके भेदसे पृथक्-पृथक्-से भासते है ? किन्तु इसमे सन्देह नही, वास्तवमे आप है एक अद्वितीय ब्रह्म ही ॥ ५७ ॥ जिस प्रकार वेद, पुराण और लोकमे आप एक ही मत्स्यादि अनेक रूपोसे प्रसिद्ध है, उसी प्रकार ससारमे जो कुछ सत-असत्-रूप विभाग है, वह आप ही है—आपसे भिन्न और कुछ नही है ॥ ५८ ॥ इस अनन्त सृष्टिमे जो कुछ उत्पन्न हुआ है, जो उत्पन्न होगा और जो हो रहा है उस स्थावर-जगमादिरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चमे आपके बिना और कोई दिखायी नही देता । अत आप (प्रकृति आदि) परसे भी पर है ॥ ५९ ॥ हे राम ! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सब लोग आपके परमात्मस्वरूपका तत्त्व नही जानते । अत जिनका अन्त करण आपके भक्तोकी सेवाके प्रभावसे निर्मल हो गया है उन्हीको आपका अद्वितीय ईश्वररूप भासता है ॥ ६० ॥ जिनकी बाह्य पदार्थोमे सत्यबुद्धि है वे ब्रह्मादि भी आपके चित्स्वरूपको नही जानते, (फिर औरोका तो कहना ही क्या है ?) अत बुद्धिमान् पुरुष इस श्यामसुन्दरस्वरूपसे ही आपका भक्तिपूर्वक भजन करके दु खोसे पार होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ६१ ॥ प्रभो ! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मै अहर्निश पार्वतीजीके सहित काशीमे रहता हूँ और वहॉ मरणासन्न पुरुषोको उनके मोक्षके लिये आपके तारक मन्त्र 'राम' नामका उपदेश करता हूँ ॥ ६२ ॥

इम स्तव नित्यमनन्यभक्त्या
शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै ।
ते सर्वसौख्य परम च लब्ध्वा
भवत्पद यान्तु भवत्प्रसादात् ॥ ६३ ॥

(अब आपसे यही प्रार्थना है कि) जो लोग मेरे कहे इस स्तोत्रको अनन्य भक्तिसे नित्यप्रति सुने, कहे अथवा लिखे वे आपकी कृपासे सम्पूर्ण परमानन्द लाभ करके आपके निज-पदको प्राप्त हो ॥ ६३ ॥

इन्द्र उवाच

रक्षोऽधिपेनाखिलदेव सौख्य
हत च मे ब्रह्मवरेण देव ।
पुनश्च सर्व भवत प्रसादात्
प्राप्त हतो राक्षसदुष्टशत्रु ॥ ६४ ॥

इन्द्र बोले—हे देव ! ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे राक्षसराज रावणने मेरे समस्त देवोचित सुखको हर लिया था। अब उस दुष्ट शत्रु राक्षसराजके मारे जानेपर आपकी कृपासे मुझे वह सब सुख फिर प्राप्त हो गया ॥ ६४ ॥

देवा ऊचु

हता यज्ञभागा धरादेवदत्ता
मुरारे खलेनादिदैत्येन विष्णो ।
हतोऽद्य त्वया नो वितानेषु भागा
पुरावद्भविष्यन्ति युष्मत्प्रसादात् ॥ ६५ ॥

देवगण बोले—हे मुरारे ! हे विष्णो ! इस दुष्ट आदिदैत्यने ब्राह्मणोद्वारा दिये हुए हमारे समस्त यज्ञभागोको हर लिया था। अब आपने उसे मार डाला अत आपकी कृपासे अब हमे फिर पहलेके समान ही यज्ञोमे भाग मिलने लगेगे ॥ ६५ ॥

पितर ऊचु

हतोऽद्य त्वया दुष्टदैत्यो महात्मन्
गयादौ नरैर्दत्तपिण्डादिकान्न ।
बलादत्ति हत्वा गृहीत्वा समस्ता-
निदानीं पुनर्लब्धसत्त्वा भवाम ॥ ६६ ॥

पितृगण बोले—हे महात्मन् ! यह दुष्ट दैत्य गया आदि पुण्य-क्षेत्रोमे मनुष्योके दिये हुए हमारे पिण्डोदकादिको बलात् छीनकर खा लेता था, आज आपने इसे मार डाला। अत अब अपना भाग प्राप्त करके हम फिर शक्ति प्राप्त कर लेगे ॥ ६६ ॥

यक्षा ऊचु

सदा विष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्ता
वहामो दशास्य बलाद्दु खयुक्ता ।
दुरात्मा हतो रावणो राघवेश
त्वया ते वय दु खजाताद्विमुक्ता ॥ ६७ ॥

यक्ष बोले—हे रघुनाथजी ! यह रावण हमे बलात् बेगारमे लगा देता था और हम इसकी पालकी आदिमे जुतकर बडा कष्ट मानकर इसे ले चलते थे अत आज इस दुरात्माको मारकर आपने हमे अनेको दु खोसे छुडा दिया ॥ ६७ ॥

गन्धर्वा ऊचु

वय सङ्गीतनिपुणा गायन्तस्ते कथामृतम् ।
आनन्दामृतसन्दोहयुक्ता पूर्णा स्थिता पुरा ॥ ६८ ॥
पश्चाद्दुरात्मना राम रावणेनाभिविद्रुता ।
तमेव गायमानाश्च तदाराधनतत्परा ॥ ६९ ॥
स्थितास्त्वया परित्राता हतोऽद्य दुष्टराक्षस ।
एव महोरगा सिद्धा किन्नरा मरुतस्तथा ॥ ७० ॥
वसवो मुनयो गावो गुह्यकाश्च पतत्रिण ।
सप्रजापतयश्चैते तथा चाप्सरसा गणा ॥ ७१ ॥

गन्धर्व बोले—प्रभो ! हम सगीतकुशल लोग आपकी अमृततुल्य कथाओका गान करते हुए पहले आनन्दामृतसमूहसे युक्त होकर मग्न रहते थे ॥ ६८ ॥ किन्तु फिर दुरात्मा रावणद्वारा आक्रान्त होकर हम उसीके गुणगान और उसीकी सेवामे तत्पर हो गये। इस दुष्ट राक्षसको मारकर अब आपने हमे भी बचा लिया।

इसी प्रकार महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति और अप्सराओके समूह

सर्वे राम समासाद्य दृष्ट्वा नेत्रमहोत्सवम् ।
स्तुत्वा पृथक् पृथक् सर्वे राघवेणाभिवन्दिता ॥ ७२ ॥

ययु स्व स्व पद सर्वे ब्रह्मरुद्रादयस्तथा ।
प्रशसन्तो मुदा राम गायन्तस्तस्य चेष्टितम् ॥ ७३ ॥

ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्र सीतालक्ष्मणसयुतम् ।
सिहासनस्थ राजेन्द्र ययु सर्वे हृदि स्थितम् ॥ ७४ ॥

खे वाद्येषु ध्वनत्सु प्रमुदितहृदयै-
देववृन्दै स्तुवद्भि-
र्वर्षद्भि पुष्पवृष्टि दिवि मुनिनिकरै-
रीड्यमान समन्तात् ।
राम श्याम प्रसन्नस्मितरुचिरमुख
सूर्यकोटिप्रकाश
सीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहरिभि
सेव्यमानो विभाति ॥ ७५ ॥

सभी भगवान् रामके पास पृथिवीलोकमे आये और उन नयनानन्दवर्धन प्रभुके दर्शन कर उनकी पृथक्-पृथक् स्तुति की तथा उनसे प्रशसित हो अपने-अपने लोकोको चले गये। तदनन्तर ब्रह्मा और महादेव आदि भी आनन्द-पूर्वक भगवान् रामकी प्रशसा करते, उनकी लीलाओका गान करते और सिहासनपर विराजमान अभिषेकसे आर्द्र राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका सीताजी और लक्ष्मणके सहित हृदयमे ध्यान करते वहाँसे विदा हुए ॥ ६९—७४ ॥

उस समय, जब कि आकाशमे बाजे बज रहे थे, देवताओका वृन्द स्वर्गमे प्रसन्न हृदयसे स्तुति करता हुआ पुष्प बरसा रहा था। तथा महर्षि-मण्डल चारो ओर स्थित होकर स्तुति कर रहा था, करोडो सूर्योके समान प्रकाशमान प्रसन्नतायुक्त मुसकानसे मनोहर मुखवाले श्यामसुन्दर भगवान् राम सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, मुनिजन तथा वानरगणोसे सेवित होकर अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ७५ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे पञ्चदश सर्ग ॥ १५ ॥

★

षोडश सर्ग

वानरोकी विदा तथा ग्रन्थप्रशसा

श्रीमहादेव उवाच

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे ।
वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तो महीरुहा ॥ १ ॥

गन्धहीनानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चकाशिरे ।
सहस्रशतमश्वाना धेनूना च गवा तथा ॥ २ ॥

ददौ शतवृषान्पूर्व द्विजेभ्यो रघुनन्दन ।
त्रिंशत्कोटि सुवर्णस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुन ॥ ३ ॥

वस्त्राभरणरत्नानि ब्राह्मणेभ्यो मुदा तथा ।
सूर्यकान्तिसमप्रख्या सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥ ४ ॥

सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सल ।
अङ्गदाय ददौ दिव्ये ह्यङ्गदे रघुनन्दन ॥ ५ ॥

चन्द्रकोटिप्रतीकाश मणिरत्नविभूषितम् ।
सीतायै प्रददौ हार प्रीत्या रघुकुलोत्तम ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! समस्त लोकोको सुख देनेवाले राजराजेश्वर भगवान् रामके राज्याभिषिक्त होनेपर पृथिवी धन-धान्यसे पूर्ण हो गयी और वृक्ष फलयुक्त हो गये ॥ १ ॥ तथा जो पुष्प गन्धहीन थे वे भी सुगन्धयुक्त होकर शोभा पाने लगे। श्रीरघुनाथजीने (राज्याभिषिक्त होकर) पहले एक लाख घोडे, एक लाख दूध देनेवाली गौएँ और सैकडो बैल ब्राह्मणोको दिये और फिर उन्हे तीस करोड़ सुवर्णमुद्रा दिये ॥ २-३ ॥ तत्पश्चात् उन्होने प्रसन्न होकर नाना प्रकारके वस्त्र, आभूषण और रत्नादि भी ब्राह्मणोको दिये। फिर भक्तवत्सल रघुनाथजीने सब प्रकारके रत्नोसे युक्त एक सूर्यकी कान्तिके समान चमकती हुई माला अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सुग्रीवको दी और अङ्गदको दो दिव्य अगद (भुजबन्ध) दिये ॥ ४-५ ॥ तदनन्तर रघुकुल-तिलक श्रीरामचन्द्रजीने अति प्रेमभावसे करोडो चन्द्रमाओके समान प्रकाशमान अमूल्य मणि और

अवमुच्यात्मन कण्ठाद्धार जनकनन्दिनी।
अवैक्षत हरीन्सर्वान् भर्तार च मुहुर्मुहु ॥ ७ ॥

रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन्।
वैदेहि यस्य तुष्टासि देहि तस्मै वरानने॥ ८ ॥

हनूमते ददौ हार पश्यतो राघवस्य च।
तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च॥ ९ ॥

रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम्।
भक्त्या परमया तुष्ट इद वचनमब्रवीत्॥ १० ॥

हनूमस्ते प्रसन्नोऽस्मि वर वरय काङ्क्षितम्।
दास्यामि देवैरपि यद्दुर्लभ भुवनत्रये॥ ११ ॥

हनूमानपि त प्राह नत्वा राम प्रहृष्टधी ।
त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥ १२ ॥

अतस्त्वन्नाम सतत स्मरन् स्थास्यामि भूतले।
यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्॥ १३ ॥

मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽय मेऽभिकाङ्क्षित ।
रामस्तथेति त प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥ १४ ॥

कल्पान्ते मम सायुज्य प्राप्स्यसे नात्र सशय ।
तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते॥ १५ ॥

स्थित त्वामनुयास्यन्ति भोगा सर्वे ममाज्ञया।
इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्या प्रहृष्टधी ॥ १६ ॥

आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूय प्रणम्य तौ।
कृच्छ्राद्ययौ तपस्तप्तु हिमवन्त महामति ॥ १७ ॥

ततो गुह समासाद्य राम प्राञ्जलिमब्रवीत्।
सखे गच्छ पुर रम्य शृङ्गवेरमनुत्तमम्॥ १८ ॥

मामेव चिन्तयन्नित्य भुङ्क्ष्व भोगान्निजार्जितान्।
अन्ते ममैव सारूप्य प्राप्स्यसे त्व न सशय ॥ १९ ॥

रत्नोसे विभूषित एक हार श्रीजानकीजीको दिया॥ ६॥

श्रीजनकनन्दिनी उस हारको अपने गलेसे उतारकर बारबार अपने पतिदेव और वानरोकी ओर देखने लगी॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीका सकेत समझकर उनकी ओर देखते हुए कहा—"हे सुमुखि! जनक-नन्दिनि! तुम जिससे प्रसन्न हो उसे यह हार दे दो'॥ ८॥ तब सीताजीने श्रीरामचन्द्रजीके सामने ही वह हार हनुमान्‌जीको दे दिया। उस हारको पहन और गौरवान्वित हो श्रीहनुमान्‌जी अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए॥ ९॥

भगवान् रामने भी सामने हाथ जोडे खडे हुए हनुमान्‌जीसे उनकी भक्तिके कारण अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—॥ १०॥ 'हनुमन्! मै तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हे जिस वरकी इच्छा हो माँग लो। जो वर त्रिलोकीमे देवताओको भी मिलना कठिन है वह भी मै तुम्हे अवश्य दूँगा"॥ ११॥ तब हनुमान्‌जीने अत्यन्त हर्षित होकर उनसे कहा—"हे रामजी! आपका नाम-स्मरण करते हुए मेरा चित्त तृप्त नही होता॥ १२॥ अत मै निरन्तर आपका नाम-स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर रहूँ। हे राजेन्द्र! मेरा मनोवाञ्छित वर यही है कि जबतक ससारमे आपका नाम रहे तबतक मेरा शरीर भी रहे।" श्रीरामचन्द्रजीने कहा—"ऐसा ही हो, तुम जीवन्मुक्त होकर ससारमे सुखपूर्वक रहो॥ १३-१४॥ कल्पका अन्त होनेपर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमे सन्देह नहीं।" फिर जानकीजीने उनसे कहा—"हे मारुते! तुम जहाँ कही भी रहोगे वही मेरी आज्ञासे तुम्हारे पास सम्पूर्ण भोग उपस्थित हो जायँगे।" अपने प्रभु भगवान् राम और सीताजीके इस प्रकार कहनेपर महामति हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १५-१६॥ और फिर नेत्रोमे आनन्दाश्रु भर उन्हे बारबार प्रणाम कर बडी कठिनतासे, तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये॥ १७॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोडे खडे हुए गुहके पास जाकर कहा—'मित्र! अब तुम अपने परम रमणीय ग्राम शृङ्गवेरपुरको जाओ॥ १८॥ वहाँ मेरा ही चिन्तन करते हुए अपने शुभ कर्मोसे प्राप्त हुए भोगोको भोगो। इसमे सदेह नही, अन्तमे तुम मेरा ही सारूप्य प्राप्त

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च ।
राज्य च विपुल दत्त्वा विज्ञान च ददौ विभु ॥ २० ॥

रामेणालिङ्गितो हृष्टो ययौ स्वभवन गुह ।
ये चान्ये वानरा श्रेष्ठा अयोध्या समुपागता ॥ २१ ॥

अमूल्याभरणैर्वस्त्रै पूजयामास राघव ।
सुग्रीवप्रमुखा सर्वे वानरा सविभीषणा ॥ २२ ॥

यथार्ह पूजितास्तेन रामेण परमात्मना ।
प्रहृष्टमनस सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥ २३ ॥

सुग्रीवप्रमुखा सर्वे किष्किन्धा प्रययुर्मुदा ।
विभीषणस्तु सम्प्राप्य राज्य निहतकण्टकम् ॥ २४ ॥

रामेण पूजित प्रीत्या ययौ लङ्कामनिन्दित ।
राघवो राज्यमखिल शशासाखिलवत्सल ॥ २५ ॥

अनिच्छन्नपि रामेण यौवराज्येऽभिषेचित ।
लक्ष्मण परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥ २६ ॥

रामस्तु परमात्मापि कर्माध्यक्षोऽपि निर्मल ।
कर्तृत्वादि विहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा ॥ २७ ॥

स्वानन्देनापि तुष्ट सन् लोकानामुपदेशकृत् ।
अश्वमेधादियज्ञैश्च सर्वैर्विपुलदक्षिणै ॥ २८ ॥

अयजत्परमानन्दो मानुष वपुराश्रित ।
न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृत भयम् ॥ २९ ॥

न व्याधिज भय चासीद्रामे राज्य प्रशासति ।
लोके दस्युभय नासीदनर्थो नास्ति कश्चन ॥ ३० ॥

वृद्धेषु सत्सु बालाना नासीन्मृत्युभय तथा ।
रामपूजापरा सर्वे सर्वे राघवचिन्तका ॥ ३१ ॥

ववर्षुर्जलदास्तोय यथाकाल यथारुचि ।
प्रजा स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विता ॥ ३२ ॥

औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत्प्रजा ।
सर्वलक्षणसयुक्त सर्वधर्मपरायण ॥ ३३ ॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमुपास्त स ॥ ३४ ॥

करोगे'' ॥ १९ ॥ ऐसा कह भगवान् रामने उसे दिव्य आभूषण, बहुत-सा राज्य और तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया ॥ २० ॥ फिर रघुनाथजीसे आलिङ्गित होकर गुह अपने घरको गया। और भी जो-जो वानरश्रेष्ठ अयोध्यामे आये थे, श्रीरामचन्द्रजीने उन सबका भी अमूल्य वस्त्र और आभूषणोसे सत्कार किया। इस प्रकार विभीषणके सहित सुग्रीव आदि समस्त वानरगण परमात्मा रामसे यथोचित सत्कार पाकर अपने-अपने स्थानोको चले गये ॥ २१—२३ ॥

सुग्रीवादि समस्त वानरगण प्रसन्न-चित्तसे किष्किन्धाको गये और भगवान् रामसे सत्कृत हो आनन्दित विभीषण अपना निष्कण्टक राज्य पाकर प्रीतिपूर्वक लकाको गये तथा सबके ऊपर दया करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी अपने सम्पूर्ण राज्यका शासन करने लगे ॥ २४-२५ ॥

भगवान् रामने श्रीलक्ष्मणजीको उनकी इच्छा न होनेपर भी युवराजपदपर अभिषिक्त किया और वे भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक रामजीकी सेवामे रहने लगे ॥ २६ ॥ परमात्मा रामने समस्त कर्मोके साक्षी, नित्य निर्मल स्वरूप, कर्तृत्वादिसे रहित, सर्वदा निर्विकार और स्वानन्दतृप्त होकर भी समस्त लोकोको उपदेश करनेके लिये मनुष्यरूप धारण कर बडी-बडी दक्षिणाओवाले अश्वमेधादि समस्त यज्ञोका अनुष्ठान किया। महाराज रामके राज्य-शासन करते समय कभी विधवाओका क्रन्दन नही हुआ, सर्पो, व्याधियो और लुटेरोका भय नही था और न कोई अनर्थ ही होता था ॥ २७—३० ॥ वृद्धोके रहते हुए बालकोकी मृत्युका भय नही था, सब लोग भगवान् रामकी पूजा और उनका स्मरण करनेवाले थे ॥ ३१ ॥ मेघ सर्वदा ठीक समयपर यथेष्ट जल बरसाते थे, प्रजा अपना-अपना धर्म पालन करनेवाली और वर्णाश्रमके गुणोसे युक्त थी ॥ ३२ ॥ तथा श्रीरामचन्द्रजी भी अपनी प्रजाका सगे पुत्रोके समान पितृवत् पालन करते थे, इस प्रकार सर्वलक्षणसम्पन्न, सर्वधर्मपरायण भगवान् रामने दस सहस्र वर्ष राज्य-शासन किया ॥ ३३-३४ ॥

इद रहस्य धनधान्यऋद्धिम-
दीर्घायुरारोग्यकर सुपुण्यदम्।
पवित्रमाध्यात्मिकसज्ञित पुरा
रामायण भाषितमादिशम्भुना ॥ ३५ ॥
शृणोति भक्त्या मनुज समाहितो
भक्त्या पठेद्वा परितुष्टमानस ।
सर्वा समाप्नोति मनोगताशिषो
विमुच्यते पातककोटिभि क्षणात् ॥ ३६ ॥
रामाभिषेक प्रयत शृणोति यो
धनाभिलाषी लभते महद्धनम्।
पुत्राभिलाषी सुतमार्यसम्मत
प्राप्नोति रामायणमादित पठन् ॥ ३७ ॥
शृणोति योऽध्यात्मिकरामसहिता
प्राप्नोति राजा भुवमृद्धसम्पदम्।
शत्रून्विजित्यारिभिरप्रधर्षितो
व्यपेतदु खो विजयी भवेन्नृप ॥ ३८ ॥
स्त्रियोऽपि शृण्वन्त्यधिरामसहिता
भवन्ति ता जीविसुताश्च पूजिता ।
वन्ध्यापि पुत्र लभते सुरूपिण
कथामिमा भक्तियुता शृणोति या ॥ ३९ ॥
श्रद्धान्वितो य शृणुयात्पठेन्नरो
विजित्य कोप च तथा विमत्सर ।
दुर्गाणि सर्वाणि विजित्य निर्भयो
भवेत्सुखी राघवभक्तिसयुत ॥ ४० ॥
सुरा समस्ता अपि यान्ति तुष्टता
विघ्ना समस्ता अपयान्ति शृण्वताम्।
अध्यात्मरामायणमादितो नृणा
भवन्ति सर्वा अपि सम्पद परा ॥ ४१ ॥
रजस्वला वा यदि रामतत्परा
शृणोति रामायणमेतदादित ।
पुत्र प्रसूते ऋषभ चिरायुष
पतिव्रता लोकसुपूजिता भवेत् ॥ ४२ ॥
पूजयित्वा तु ये भक्त्या नमस्कुर्वन्ति नित्यश ।
सर्वे पापैर्विनिर्मुक्ता विष्णोर्यान्ति पर पदम् ॥ ४३ ॥

धन-धान्यादि समस्त वैभव देनेवाले तथा दीर्घायु, आरोग्य और पुण्यकी वृद्धि करनेवाले इस आध्यात्मिक रामायण नामक परम पवित्र और गोपनीय रहस्यको पूर्वकालमे श्रीआदिमहादेवने पार्वतीजीको सुनाया था ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक समाहितचित्तसे सुनता अथवा प्रसन्न-चित्तसे भक्तिपूर्वक पढता है वह अपने मनकी समस्त कामनाओको प्राप्त करता है और एक क्षणमे ही करोडो पापोसे मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो धनकी इच्छा रखनेवाला पुरुष इस रामाभिषेकका एकाग्र-चित्तसे श्रवण करता है वह महान् सम्पत्ति प्राप्त करता है और जो पुत्राभिलाषी इस ग्रन्थका आरम्भसे ही पाठ करता है वह सत्पुरुषोद्वारा सम्मान पानेयोग्य पुत्र पाता है ॥ ३७ ॥ जो राजा इस अध्यात्मरामायणका श्रवण करता है वह धन-धान्यसम्पन्न पृथिवी प्राप्त करता है और शत्रुओसे अपमानित न होकर सब प्रकारके दु खसे छूटकर विजय लाभ करता है ॥ ३८ ॥ स्त्रियोमे भी जो कोई इस आध्यात्मिक रामसहिताको सुनती है उनकी सन्तान चिरजीवी होती है और वे स्वय उनसे सम्मानित होती है तथा जो वन्ध्या भी इस कथाका भक्तिपूर्वक श्रवण करती है वह सुन्दर रूपवान् पुत्र प्राप्त करती है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य क्रोधको जीतकर ईर्ष्यारहित हो इसे श्रद्धापूर्वक सुनता या पढता है वह समस्त अवगुणोको जीतकर निर्भय, सुखी और रामभक्तिसे सम्पन्न हो जाता है ॥ ४० ॥ इस अध्यात्मरामायणका आरम्भसे ही श्रवण करनेवाले पुरुषोसे समस्त देवगण प्रसन्न हो जाते है, उनके सम्पूर्ण विघ्न दूर हो जाते है और उन्हे सब प्रकारकी उत्तम सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती है ॥ ४१ ॥ यदि रजस्वला स्त्री भगवान् रामका स्मरण करती हुई आदिसे ही इस रामायणका श्रवण करे तो अति उत्तम और दीर्घायु पुत्र उत्पन्न करती है और वह स्वय ससारसे सम्मानित पतिव्रता होती है ॥ ४२ ॥ जो लोग इसका भक्तिपूर्वक पूजन कर इसे नित्यप्रति नमस्कार करते है वे समस्त पापोसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होते है ॥ ४३ ॥

अध्यात्मरामचरित कृत्स्न शृण्वन्ति भक्तित ।
पठन्ति वा स्वय वक्त्रात्तेषा राम प्रसीदति ॥ ४४ ॥
राम एव पर ब्रह्म तस्मिस्तुष्टेऽखिलात्मनि ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा यद्यदिच्छति तद्भवेत् ॥ ४५ ॥
श्रोतव्य नियमेनैतद्रामायणमखण्डितम् ।
आयुष्यमारोग्यकर कल्पकोट्यघनाशनम् ॥ ४६ ॥
देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहा सर्वे महर्षय ।
रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरस्तथा ॥ ४७ ॥
अध्यात्मरामायणमेतदद्भुत
वैराग्यविज्ञानयुत पुरातनम् ।
पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये नरा-
स्तेषा भवेऽस्मिन्न पुनर्भवो भवेत् ॥ ४८ ॥
आलोड्याखिलवेदराशिमसकृ-
द्यत्तारक ब्रह्म त-
द्रामो विष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो
विज्ञाय भूतेश्वर ।
उद्धृत्याखिलसारसङ्ग्रहमिद
सक्षेपत प्रस्फुट
श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिल
प्राह प्रियायै भव ॥ ४९ ॥

जो पुरुष इस सम्पूर्ण अध्यात्मरामायणको भक्तिपूर्वक सुनते अथवा स्वय अपने मुखसे ही पढते है उनसे भगवान् राम प्रसन्न होते है ॥ ४४ ॥ भगवान् राम ही परब्रह्म हे, अत उन सर्वात्मा रामके प्रसन्न होनेपर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमेसे जिसकी इच्छा हो वही मिल सकता है ॥ ४५ ॥ इसलिये आयु और आरोग्यकी देनेवाली तथा करोडो कल्पोके पापसमूहका नाश करनेवाली इस रामायणका निरन्तर नित्यप्रति नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिये ॥ ४६ ॥ इसका श्रवण करनेसे समस्त देवगण, सम्पूर्ण ग्रह एव महर्षिगण प्रसन्न हो जाते है तथा पितृगण भी तृप्ति लाभ करते है ॥ ४७ ॥ जो पुरुष ज्ञान-वैराग्यसे युक्त इस अति अद्भुत प्राचीन अध्यात्मरामायणको पढते, लिखते अथवा सुनते है उनका इस ससारमे फिर जन्म नही होता ॥ ४८ ॥ भूतनाथ भगवान् शकरने बारबार समस्त वेद-राशिका मन्थन करके यह निश्चय किया कि तारक मन्त्र 'राम' विष्णुभगवान्‌की गुप्त मूर्ति है। अत उन्होने समस्त वेदोके सार (उपनिषदो) का सग्रहरूप यह भगवान् रामका सम्पूर्ण गुप्त तत्त्व अपनी प्रिया श्रीपार्वतीजीको सक्षेपसे सुनाया ॥ ४९ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे युद्धकाण्डे षोडश सर्ग ॥ १६ ॥

★

समाप्तमिद युद्धकाण्डम्

★

ॐ

अध्यात्मरामायण

उत्तरकाण्ड

प्रथम सर्ग

भगवान् रामके यहाँ अगस्त्यादि मुनीश्वरोका आना और रावणादि राक्षसोका पूर्वचरित्र सुनाना

जयति रघुवशतिलक कौसल्याहृदयनन्दनो राम ।
दशवदननिधनकारी दाशरथि पुण्डरीकाक्ष ॥ १ ॥

श्रीकोसल्याजीके हृदयको आनन्दित करनेवाले, दशवदन रावणको मारनेवाले, रघुवशतिलक दशरथकुमार कमलनयन भगवान् रामकी जय हो ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

अथ राम किमकरोत्कौसल्यानन्दवर्धन ।
हत्वा मृधे रावणादीन् राक्षसान्भीमविक्रम ॥ २ ॥

अभिषिक्तस्त्वयोध्याया सीतया सह राघव ।
मायामानुषता प्राप्य कति वर्षाणि भूतले ॥ ३ ॥

स्थितवान् लीलया देव परमात्मा सनातन ।
अत्यजन्मानुष लोक कथमन्ते रघूद्वह ॥ ४ ॥

एतदाख्याहि भगवन् श्रद्दधत्या मम प्रभो ।
कथापीयूषमास्वाद्य तृष्णा मेऽतीव वर्धते ।
रामचन्द्रस्य भगवन् ब्रूहि विस्तरश कथाम् ॥ ५ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—कौसल्याजीके आनन्दको बढानवाले महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमे रावणादि राक्षसोका मारकर अयोध्यापुरीमे सीताजीके सहित राज्याभिषिक्त होनेके अनन्तर कौन-सा कार्य किया ? लीलाहीसे माया-मानव भावको प्राप्त हुए वे सनातन परमात्मा पृथ्वीतलपर कितने वर्ष रहे ? तथा अन्तमे उन रघुनन्दनने इस मर्त्यलोकका किस प्रकार त्याग किया ? ॥ २—४ ॥ हे प्रभो ! मुझ श्रद्धावतीको आप यह सब वृत्तान्त सुनाइये। हे भगवन् ! श्रीरामकथामृतका आस्वादन करनेसे मेरी तृष्णा बहुत ही बढती जाती है, इसलिये आप श्रीरामचन्द्रजीकी कथा विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

राक्षसाना वध कृत्वा राज्ये राम उपस्थिते ।
आययुर्मुनय सर्वे श्रीराममभिवन्दितुम् ॥ ६ ॥

विश्वामित्रोऽसित कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिरा ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिस्तथा सप्तर्षयोऽमला ॥ ७ ॥

अगस्त्य सह शिष्यैश्च मुनिभि सहितोऽभ्यगात् ।
द्वारमासाद्य रामस्य द्वारपालमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥

ब्रूहि रामाय मुनय समागत्य बहि स्थिता ।
अगस्त्यप्रमुखा सर्वे आशीर्भिरभिनन्दितुम् ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! राक्षसोका वध करनेके अनन्तर भगवान् रामके राजपदपर विराजमान होनेपर समस्त मुनिजन उनका अभिवादन करनेके लिये आये ॥ ६ ॥ उस समय विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि तथा निर्मल स्वभाव सप्तर्षिगण और अपने शिष्यो तथा अन्यान्य मुनिजनोके सहित अगस्त्यजी आये। उन अगस्त्यजीने भगवान् रामके द्वारपर पहुँचकर द्वारपालसे कहा— ॥ ७-८ ॥ तुम महाराज रामसे जाकर कहो कि आपका आशीर्वादोसे अभिनन्दन करनेके लिये अगस्त्य आदि समस्त मुनिगण आये है और बाहर खडे हुए है ॥ ९ ॥

प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनाद् द्रुतम् ।
नमस्कृत्याब्रवीद्वाक्य विनयावनत प्रभुम् ॥ १० ॥

कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो मुनिभि सह ।
देव त्वद्दर्शनार्थाय प्राप्तो बहिरुपस्थित ॥ ११ ॥

तमुवाच द्वारपाल प्रवेशय यथासुखम् ।
पूजिता विविशुर्वेश्म नानारत्नविभूषितम् ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा रामो मुनीन् शीघ्र प्रत्युत्थाय कृताञ्जलि ।
पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्य गा निवेद्य यथाविधि ॥ १३ ॥

नत्वा तेभ्यो ददौ दिव्यान्यासनानि यथार्हत ।
उपविष्टा प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिता ॥ १४ ॥

सम्पृष्टकुशला सर्वे राम कुशलमब्रुवन् ।
कुशल ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ १५ ॥

दिष्ट्येदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिन्दम ।
न हि भार स ते राम रावणो राक्षसेश्वर ॥ १६ ॥

सधनुस्त्व हि लोकास्त्रीन् विजेतु शक्त एव हि ।
दिष्ट्या त्वया हता सर्वे राक्षसा रावणादय ॥ १७ ॥

सह्यमेतन्महाबाहो रावणस्य निबर्हणम् ।
असह्यमेतत्सम्प्राप्त रावणेर्यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

अन्तकप्रतिमा सर्वे कुम्भकर्णादयो मृधे ।
अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्ते रघुसत्तम ॥ १९ ॥

दत्ता चेय त्वयास्माक पुरा ह्यभयदक्षिणा ।
हत्वा रक्षोगणान्सङ्ख्ये कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥ २० ॥

श्रुत्वा तु भाषित तेषा मुनीना भावितात्मनाम् ।
विस्मय परम गत्वा राम प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ २१ ॥

रावणादीनतिक्रम्य कुम्भकर्णादिराक्षसान् ।
त्रिलोकजयिनो हित्वा किं प्रशसथ रावणिम् ॥ २२ ॥

ततस्तद्वचन श्रुत्वा राघवस्य महात्मन ।
कुम्भयोनिर्महातेजा राम प्रीत्या वचोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥

शृणु राम यथा वृत्त रावणे रावणस्य च ।
जन्म कर्म वरादान सङ्क्षेपाद्वदतो मम ॥ २४ ॥

तब द्वारपाल अगस्त्यजीके कहनेसे तुरत ही भगवान् रामको नमस्कार कर उनसे अति विनयपूर्वक यो कहने लगा ॥ १० ॥ वह हाथ जोडकर बोला—"देव ! आपके दर्शनोके लिये मुनियोके सहित श्रीअगस्त्यजी आये है और बाहर खडे हुए है" ॥ ११ ॥ भगवान् रामने द्वारपालसे कहा— 'उन्हे आनन्दपूर्वक भीतर ले आओ।" तब मुनियोने विधिवत् पूजित होकर नाना प्रकारके रत्नोसे विभूषित महलमे प्रवेश किया ॥ १२ ॥ भगवान् राम मुनियोको देखते ही तुरत हाथ जोडकर खडे हो गये और अर्घ्य-पाद्यादिसे उनका पूजन कर उन्हे विधिपूर्वक एक-एक गौ भेट की ॥ १३ ॥ फिर उन सबको नमस्कार कर यथायोग्य दिव्य आसन दिये। उनपर वे मुनिगण भगवान् रामसे पूजित होकर अति हर्षपूर्वक विराजमान हुए ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीद्वारा कुशल पूछे जानेपर सबने अपनी कुशल कही और उनसे बोले—"हे रघुनन्दन ! हे महाबाहो ! तुम्हारे राज्यमे तो सर्वत्र कुशल है न ? ॥ १५ ॥ हे शत्रुदमन ! आज हम बडे भाग्यसे आपको शत्रुहीन देख रहे है। हे राम ! आपके लिये राक्षसराज रावण (का मारना) कुछ भारी नही था ॥ १६ ॥ क्योकि आप धनुष धारण करनेपर तीनो लोकोको जीतनेमे भी समर्थ है। (हमारे) सौभाग्यसे आपने रावण आदि सभी राक्षसोको मार डाला ॥ १७ ॥ और हे महाबाहो ! रावणका मारना तो फिर भी सुगम था परन्तु रावणके पुत्र मेघनादका वध करना तो बडा ही दुष्कर कार्य था ॥ १८ ॥ ये कुम्भकर्णादि सभी राक्षस युद्धमे कालके समान थे। हे रघुश्रेष्ठ ! वे सब आपके कालके समान कराल बाणोसे मारे गये ॥ १९ ॥ आपने हमे तो पहले ही अभयदान दे दिया था। अब आप स्वय भी इन राक्षसोको युद्धमे मारकर कृतकृत्य हुए जीवित है" ॥ २० ॥

उन आत्मनिष्ठ मुनीश्वरोका भाषण सुन श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त विस्मित हो उनसे हाथ जोडकर पूछा ॥ २१ ॥ "हे मुनिगण ! आपलोग त्रिलोकविजयी रावण और कुम्भकर्णादि राक्षसोको छोडकर रावणके पुत्र मेघनादकी ही प्रशसा क्यो करते है ?" ॥ २२ ॥

महात्मा रघुनाथजीके ये वचन सुनकर परम तेजस्वी मुनिवर अगस्त्यजीने उनसे अति प्रीतिपूर्वक कहा— ॥ २३ ॥ "हे राम ! तुम रावण और उसके पुत्रके जन्म, कर्म और वर-प्राप्ति आदिका वृत्तान्त सुनो, मै उनका

पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मण सुत ।
तपस्तप्तु गतो विद्वान्मेरो पार्श्वे महामति ॥ २५ ॥

तृणबिन्दोराश्रमेऽसौ न्यवसन्मुनिपुङ्गव ।
तपस्तेपे महातेजा स्वाध्यायनिरत सदा ॥ २६ ॥

तत्राश्रमे महारम्ये देवगन्धर्वकन्यका ।
गायन्त्यो ननृतुस्तत्र हसन्त्यो वादयन्ति च ॥ २७ ॥

पुलस्त्यस्य तपोविघ्न चक्रु सर्वा अनिन्दिता ।
तत क्रुद्धो महातेजा व्याजहार वचो महत् ॥ २८ ॥

या मे दृष्टिपथ गच्छेत्सा गर्भ धारयिष्यति ।
ता सर्वा शापसविग्ना न त देश प्रचक्रमु ॥ २९ ॥

तृणबिन्दोस्तु राजर्षे कन्या तन्नाश्रृणोद्वच ।
विचचार मुनेरग्रे निर्भया त प्रपश्यती ॥ ३० ॥

बभूव पाण्डुरतनुर्व्यञ्जितान्त शरीरजा ।
दृष्ट्वा सा देहवैवर्ण्य भीता पितरमन्वगात् ॥ ३१ ॥

तृणबिन्दुश्च ता दृष्ट्वा राजर्षिरमितद्युति ।
ध्यात्वा मुनिकृत सर्वमवैद्विज्ञानचक्षुषा ॥ ३२ ॥

ता कन्या मुनिवर्याय पुलस्त्याय ददौ पिता ।
ता प्रगृह्याब्रवीत्कन्या बाढमित्येव स द्विज ॥ ३३ ॥

शुश्रूषणपरा दृष्ट्वा मुनि प्रीतोऽब्रवीद्वच ।
दास्यामि पुत्रमेक ते उभयोर्वंशवर्धनम् ॥ ३४ ॥

तत प्रासूत सा पुत्र पुलस्त्याल्लोकविश्रुतम् ।
विश्रवा इति विख्यात पौलस्त्यो ब्रह्मविन्मुनि ॥ ३५ ॥

तस्य शीलादिक दृष्ट्वा भरद्वाजो महामुनि ।
भार्यार्थ स्वा दुहितर ददौ विश्रवसे मुदा ॥ ३६ ॥

तस्या तु पुत्र सञ्जज्ञे पौलस्त्याल्लोकसम्मत ।
पितृतुल्यो वैश्रवणो ब्रह्मणा चानुमोदित ॥ ३७ ॥

ददौ तत्तपसा तुष्टो ब्रह्मा तस्मै वर शुभम् ।
मनोऽभिलषित तस्य धनेशत्वमखण्डितम् ॥ ३८ ॥

सक्षेपसे वर्णन करता हूँ ॥ २४ ॥ हे राम ! पूर्वकालमे सत्ययुगमे ब्रह्माके पुत्र महामति विद्वान् पुलस्त्यजी तप करनेके लिये सुमेरु पर्वतपर गये ॥ २५ ॥ वे महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ तृणबिन्दुके आश्रममे रहने लगे और वहाँ निरन्तर स्वाध्याय (प्रणव-जप) मे तत्पर रह तप करने लगे ॥ २६ ॥ उस महारमणीय आश्रममे देवता और गन्धर्वोकी सुन्दरी कन्याएँ गाती, बजाती और हँसती हुई नाचने तथा पुलस्त्यजीके तपमे विघ्न डालने लगी तब महातेजस्वी पुलस्त्यजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले— ॥ २७-२८ ॥ "जिस (देव या गन्धर्व) कन्यापर मेरी दृष्टि पड जायगी वही गर्भवती हो जायगी।" तब उस शापसे भयभीत होकर उनमेसे कोई भी उस स्थानपर न आयी ॥ २९ ॥ किन्तु राजर्षि तृणबिन्दुकी कन्याने ये वाक्य नही सुने, इसलिये वह मुनीश्वरके सामने निर्भयतापूर्वक उन्हे देखती हुई घूमती रही ॥ ३० ॥ इससे वह (गर्भावस्थाको प्राप्त होकर) पीली पड गयी, तथा उसके स्तन (स्थूल होकर) साफ प्रकट होने लगे। अपने शरीरको विवर्ण हुआ देख वह डरती हुई अपने पिताके पास आयी ॥ ३१ ॥ जब उसे महातेजस्वी, राजर्षि तृणबिन्दुने देखा तो उन्होने ध्यानद्वारा अपनी ज्ञानदृष्टिसे मुनिवर पुलस्त्यका सब कृत्य जान लिया ॥ ३२ ॥ तब पिता तृणबिन्दुने वह कन्या मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यको दी और उन्होने 'बहुत अच्छा' कह उसे स्वीकार कर लिया ॥ ३३ ॥ उसे अत्यन्त शुश्रूषापरायण देख मुनिवर पुलस्त्यने उससे प्रसन्न होकर कहा—"मै तुझे दोनो वशो (मातृपक्ष और पितृपक्ष) को बढानेवाला एक पुत्र दूँगा" ॥ ३४ ॥

तब उस कन्याने पुलस्त्यजीद्वारा एक त्रिलोक-विख्यात पुत्रको जन्म दिया, जो पुलस्त्य-पुत्र ब्रह्मवेत्ता मुनिवर विश्रवाके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३५ ॥ विश्रवाका शील-स्वभावादि देखकर महामुनि भरद्वाजने प्रसन्न होकर उन्हे अपनी पुत्री विवाह दी ॥ ३६ ॥ उससे पुलस्त्यनन्दन विश्रवाने एक त्रिलोकीमे प्रतिष्ठित पुत्र उत्पन्न किया। वह विश्रवाका पुत्र अपने पिताहीके समान था तथा ब्रह्माजीने भी उसकी प्रशसा की थी ॥ ३७ ॥ उसके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसे मनोवाञ्छित श्रेष्ठ वर देकर

ततो लब्धवर सोऽपि पितर द्रष्टुमागत ।
पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता ॥ ३९ ॥

नमस्कृत्याथ पितर निवेद्य तपस फलम् ।
प्राह मे भगवान् ब्रह्मा दत्त्वा वरमनिन्दितम् ॥ ४० ॥

निवासाय न मे स्थान दत्तवान्परमेश्वर ।
ब्रूहि मे नियत स्थान हिंसा यत्र न कस्यचित् ॥ ४१ ॥

विश्रवा अपि त प्राह लङ्कानाम पुरी शुभा ।
राक्षसाना निवासाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

त्यक्त्वा विष्णुभयाद्दैत्या विविशुस्ते रसातलम् ।
सा पुरी दुष्प्रधर्षान्यैर्मध्येसागरमास्थिता ॥ ४३ ॥

तत्र वासाय गच्छ त्व नान्यै साधिष्ठिता पुरा ।
पित्रादिष्टस्त्वसौ गत्वा ता पुरीं धनदोऽविशत् ॥ ४४ ॥

स तत्र सुचिर कालमुवास पितृसम्मत ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षस ॥ ४५ ॥

रसातलान्मर्त्यलोक चचार पिशिताशन ।
गृहीत्वा तनया कन्या साक्षाद्देवीमिव श्रियम् ॥ ४६ ॥

अपश्यद्धनद देव चरन्त पुष्पकेण स ।
हिताय चिन्तयामास राक्षसाना महामना ॥ ४७ ॥

उवाच तनया तत्र कैकसीं नाम नामत ।
वत्से विवाहकालस्ते यौवन चातिवर्तते ॥ ४८ ॥

प्रत्याख्यानाद्य भीतैस्त्व न वरैर्गृह्यसे शुभे ।
सा त्व वरय भद्र ते मुनिं ब्रह्मकुलोद्भवम् ॥ ४९ ॥

स्वयमेव तत पुत्रा भविष्यन्ति महाबला ।
ईदृशा सर्वशोभाढ्या धनदेन समा शुभे ॥ ५० ॥

तथेति साश्रम गत्वा मुनेरग्रे व्यवस्थिता ।
लिखन्ती भुवमग्रेण पादेनाधोमुखी स्थिता ॥ ५१ ॥

तामपृच्छन्मुनि का त्व कन्यासि वरवर्णिनि ।
साब्रवीत्प्राञ्जलिर्ब्रह्मन् ध्यानेन ज्ञातुमर्हसि ॥ ५२ ॥

अखण्डित धनेश्वरता दी ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजीके वरदानसे धनाध्यक्ष होकर वह उन्हीके दिये हुए महातेजस्वी पुष्पक विमानपर चढकर अपने पितासे मिलनेके लिये आया ॥ ३९ ॥ और उन्हे अपने तपका फल निवेदन कर प्रणाम करके बोला—"भगवान् ब्रह्माजीने मुझे यह अत्युत्तम वर दिया है ॥ ४० ॥ किन्तु उन परमेश्वरने मुझे रहनेके लिये कोई स्थान नही दिया। अत आप मुझे कोई ऐसा निश्चित स्थान बताइये जहाँ रहनेसे किसीकी हिंसा न हो" ॥ ४१ ॥ तब विश्रवाने उससे कहा—"(दानवोके) विश्वकर्माने लका नामकी एक सुन्दर पुरी राक्षसोके रहनेके लिये बनायी है ॥ ४२ ॥ किन्तु दैत्यलोग विष्णुभगवान्के भयसे उसे छोडकर रसातलको चले गये है। उस पुरीका किसी शत्रुसे आक्रान्त होना अत्यन्त कठिन है, क्योकि वह समुद्रके बीचमे बसी हुई है ॥ ४३ ॥ तुम वही रहनेके लिये जाओ। उस पुरीपर इससे पहले और किसीका अधिकार नही हुआ।" तब धनपति कुबेरने पिताकी आज्ञासे जाकर उसी पुरीमे प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ वहाँ अपने पिताकी सम्मतिसे उन्होने बहुत समयतक निवास किया।

किसी समय सुमाली नामक एक मास-भोजी राक्षस साक्षात् लक्ष्मीदेवीके समान रूपवती अपनी क्वारी पुत्रीको साथ लिये रसातलसे आकर मर्त्यलोकमे घूम रहा था ॥ ४५-४६ ॥ उसने भगवान् कुबेरको पुष्पक विमानपर चढकर विचरते देखा। तब महामति सुमाली राक्षसोके हितका उपाय सोचने लगा ॥ ४७ ॥ वह केकसी नामवाली अपनी कन्यासे बोला—"बेटी! तेरे विवाहका समय और यौवनकाल बीता जा रहा है ॥ ४८ ॥ किन्तु हे सुन्दरि! 'तू छोड देगी' इस भयसे तुझे कोई वर वरण नही करता। अत तेरा कल्याण हो, तू स्वय ही जाकर ब्रह्माजीके वशमे उत्पन्न हुए मुनिवर विश्रवाको वरण कर। हे शुभे! उनसे तेरे इस कुबेरके समान सर्वशोभासम्पन्न महाबलवान् पुत्र उत्पन्न होगे" ॥ ४९-५० ॥

तब वह 'बहुत अच्छा कह मुनीश्वरके आश्रमपर जाकर खडी हो गयी और नीचेको मुख किये चरण-नखसे पृथिवी कुरेदने लगी ॥ ५१ ॥ मुनीश्वरने उससे पूछा—"हे सुन्दरवर्णवाली! तू कोन और किसकी कन्या है? (तथा किस लिये यहाँ आयी है?)" कैकसीने हाथ जोडकर कहा—"ब्रह्मन्! आप ध्यानद्वारा सभी कुछ

ततो ध्यात्वा मुनि सर्व ज्ञात्वा ता प्रत्यभाषत ।
ज्ञात तवाभिलषित मत्त पुत्रानभीप्ससि ॥ ५३ ॥

दारुणाया तु वेलायामागतासि सुमध्यमे ।
अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ सम्भविष्यत ॥ ५४ ॥

साब्रवीन्मुनिशार्दूल त्वत्तोऽप्येवविधौ सुतौ ।
तामाह पश्चिमो यस्ते भविष्यति महामति ॥ ५५ ॥

महाभागवत श्रीमान् रामभक्त्येकतत्पर ।
इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम् ॥ ५६ ॥

रावण विशतिभुज दशशीर्ष सुदारुणम् ।
तद्रक्षोजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा ॥ ५७ ॥

बभूवुर्नाशहेतूनि निमित्तान्यखिलान्यपि ।
कुम्भकर्णस्ततो जातो महापर्वतसन्निभ ॥ ५८ ॥

तत शूर्पणखा नाम जाता रावणसोदरी ।
तनो विभीषणो जात शान्तात्मा सौम्यदर्शन ॥ ५९ ॥

स्वाध्यायी नियताहारो नित्यकर्मपरायण ।
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा द्विजान् सन्तुष्टचेतस ॥ ६० ॥

भक्षयन्नृषिसङ्घाश्च विचचारातिदारुण ।
रावणोऽपि महासत्त्वो लोकाना भयदायक ।
ववृधे लोकनाशाय ह्यामयो देहिनामिव ॥ ६१ ॥

राम त्व सकलान्तरस्थमभितो
जानासि विज्ञानदृक्
साक्षी सर्वहृदि स्थितो हि परमो
नित्योदितो निर्मल ।
त्व लीलामनुजाकृति स्वमहिमन्
मायागुणैर्नाज्यसे
लीलार्थ प्रतिचोदितोऽद्य भवता
वक्ष्यामि रक्षोद्भवम् ॥ ६२ ॥

जानामि केवलमनन्तमचिन्त्यशक्ति
चिन्मात्रमक्षरमज विदितात्मतत्त्वम् ।
त्वा राम गूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो
मूढोऽप्यह भवदनुग्रहतश्चरामि ॥ ६३ ॥

जान सकते है" ॥ ५२ ॥ तब मुनिवरने ध्यानद्वारा सब बाते जानकर उससे कहा—"मै तेरी अभिलाषा जान गया, तू मुझसे पुत्रोकी इच्छा करती है ॥ ५३ ॥ किन्तु हे सुन्दरि ! तू इस दारुण समयमे आयी है इसलिये तेरे पुत्र भी दो महाभयङ्कर राक्षस होगे" ॥ ५४ ॥ उसने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ ! क्या आपके द्वारा भी ऐसे पुत्र होने चाहिये ?" तब मुनीश्वरने उससे कहा—"उनके पश्चात् तेरे जो पुत्र होगा वह महाबुद्धिमान्, परम भगवद्भक्त श्रीसम्पन्न और एकमात्र रामभक्तिमे ही तत्पर होगा ।"

मुनीश्वरके ऐसा कहनेपर उसने यथासमय दस सिर और बीस भुजाओवाले अति भयकर रावणको जन्म दिया। उस राक्षसके जन्म लेते ही पृथिवी काँपने लगी ॥ ५५—५७ ॥ और ससारके नाशके समस्त कारण उपस्थित हो गये। उसके पश्चात् महापर्वतके समान बडे डील-डौलवाला कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ ॥ ५८ ॥ फिर रावणकी बहिन शूर्पणखाका जन्म हुआ और उसके पीछे अति शान्तचित्त सौम्यमूर्ति विभीषण उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त स्वाध्यायशील मिताहारी और नित्यकर्मपरायण था। अत्यन्त दारुण दुष्टात्मा कुम्भकर्ण सन्तुष्टचित्त ब्राह्मण और ऋषियोके समूहोको भक्षण करता हुआ पृथिवीपर घूमने लगा। तथा सम्पूर्ण लोकोको भयभीत करनेवाला महाबली रावण भी प्राणियोका नाश करनेवाले रोगके समान त्रिलोकीको नष्ट करनेके लिये बढने लगा ॥ ५९—६१ ॥

हे राम ! आप सबके अन्त करणोमे विराजमान है और साक्षीरूपसे अपनी ज्ञानदृष्टिद्वारा सबके हृदयस्थित विचारोको भलीभाँति जानते है। आप परम श्रेष्ठ, नित्य-प्रबुद्ध और निर्मल है। हे अपनी महिमामे स्थित रहनेवाले परमेश्वर ! आपने लीलासे ही यह मनुष्यरूप धारण किया है, किन्तु आप मायाके गुणोसे लिप्त नही होते। आपने लीलावश मुझसे पूछा है, इसीलिये मै यह राक्षसोका जन्मवृत्तान्त सुना रहा हूँ ॥ ६२ ॥ हे राम ! मै आपको एकमात्र, अनन्त, अचिन्त्यशक्ति, चिन्मात्र, अक्षर, अजन्मा और आत्मबोधस्वरूप जानता हूँ तथा (मायाके द्वारा) अपने स्वरूपको गुप्त रखनेवाले आपमे (भजनद्वारा) परायण हो मै मूढ भी आपकी कृपासे स्वच्छन्द विचरता रहता हूँ ॥ ६३ ॥

ततो लब्धवर सोऽपि पितर द्रष्टुमागत ।
पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता ॥ ३९ ॥

नमस्कृत्याथ पितर निवेद्य तपस फलम् ।
प्राह मे भगवान् ब्रह्मा दत्त्वा वरमनिन्दितम् ॥ ४० ॥

निवासाय न मे स्थान दत्तवान्परमेश्वर ।
ब्रूहि मे नियत स्थान हिंसा यत्र न कस्यचित् ॥ ४१ ॥

विश्रवा अपि त प्राह लङ्कानाम पुरी शुभा ।
राक्षसाना निवासाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

त्यक्त्वा विष्णुभयाद्दैत्या विविशुस्ते रसातलम् ।
सा पुरी दुष्प्रधर्षान्यैर्मध्येसागरमास्थिता ॥ ४३ ॥

तत्र वासाय गच्छ त्व नान्यै साधिष्ठिता पुरा ।
पित्रादिष्टस्त्वसौ गत्वा ता पुरीं धनदोऽविशत् ॥ ४४ ॥

स तत्र सुचिर कालमुवास पितृसम्मत ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षस ॥ ४५ ॥

रसातलान्मर्त्यलोक चचार पिशिताशन ।
गृहीत्वा तनया कन्या साक्षाद्देवीमिव श्रियम् ॥ ४६ ॥

अपश्यद्धनद देव चरन्त पुष्पकेण स ।
हिताय चिन्तयामास राक्षसाना महामना ॥ ४७ ॥

उवाच तनया तत्र कैकसीं नाम नामत ।
वत्से विवाहकालस्ते यौवन चातिवर्तते ॥ ४८ ॥

प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्व न वरैर्गृह्यसे शुभे ।
सा त्व वरय भद्र ते मुनिं ब्रह्मकुलोद्भवम् ॥ ४९ ॥

स्वयमेव तत पुत्रा भविष्यन्ति महाबला ।
ईदृशा सर्वशोभाढ्या धनदेन समा शुभे ॥ ५० ॥

तथेति साश्रम गत्वा मुनेरग्रे व्यवस्थिता ।
लिखन्ती भुवमग्रेण पादेनाधोमुखी स्थिता ॥ ५१ ॥

तामपृच्छन्मुनि का त्व कन्यासि वरवर्णिनि ।
साब्रवीत्प्राञ्जलिर्ब्रह्मन् ध्यानेन ज्ञातुमर्हसि ॥ ५२ ॥

अखण्डित धनेश्वरता दी ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजीके वरदानसे धनाध्यक्ष होकर वह उन्हीके दिये हुए महातेजस्वी पुष्पक विमानपर चढकर अपने पितासे मिलनेके लिये आया ॥ ३९ ॥ और उन्हे अपने तपका फल निवदन कर प्रणाम करके बोला—"भगवान् ब्रह्माजीने मुझे यह अत्युत्तम वर दिया है ॥ ४० ॥ किन्तु उन परमेश्वरने मुझे रहनेके लिये कोई स्थान नही दिया । अत आप मुझे कोई ऐसा निश्चित स्थान बताइये जहाँ रहनेसे किसीकी हिंसा न हो" ॥ ४१ ॥ तब विश्रवाने उससे कहा—"(दानवोके) विश्वकर्माने लका नामकी एक सुन्दर पुरी राक्षसोके रहनेके लिये बनायी है ॥ ४२ ॥ किन्तु दैत्यलोग विष्णुभगवान्के भयसे उसे छोडकर रसातलको चले गये है । उस पुरीका किसी शत्रुसे आक्रान्त होना अत्यन्त कठिन है, क्योकि वह समुद्रके बीचमे बसी हुई है ॥ ४३ ॥ तुम वही रहनेके लिये जाओ । उस पुरीपर इससे पहले और किसीका अधिकार नही हुआ ।" तब धनपति कुबेरन पिताकी आज्ञासे जाकर उसी पुरीमे प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ वहाँ अपने पिताकी सम्मतिसे उन्होने बहुत समयतक निवास किया ।

किसी समय सुमाली नामक एक मास-भोजी राक्षस साक्षात् लक्ष्मीदेवीके समान रूपवती अपनी क्वारी पुत्रीको साथ लिये रसातलसे आकर मर्त्यलोकमे घूम रहा था ॥ ४५-४६ ॥ उसने भगवान् कुबेरको पुष्पक विमानपर चढकर विचरते देखा । तब महामति सुमाली राक्षसोके हितका उपाय सोचने लगा ॥ ४७ ॥ वह केकसी नामवाली अपनी कन्यासे बोला—"बेटी ! तेरे विवाहका समय और यौवनकाल बीता जा रहा है ॥ ४८ ॥ किन्तु हे सुन्दरि ! 'तू छोड देगी' इस भयसे तुझे कोई वर वरण नही करता । अत तेरा कल्याण हो, तू स्वय ही जाकर ब्रह्माजीके वशमे उत्पन्न हुए मुनिवर विश्रवाको वरण कर । हे शुभे ! उनसे तेरे इस कुबेरके समान सर्वशोभासम्पन्न महाबलवान् पुत्र उत्पन्न होगे" ॥ ४९-५० ॥

तब वह 'बहुत अच्छा' कह मुनीश्वरके आश्रमपर जाकर खडी हो गयी और नीचेको मुख किये चरण-नखसे पृथिवी कुरेदने लगी ॥ ५१ ॥ मुनीश्वरने उससे पूछा—"हे सुन्दरवर्णवाली ! तू कौन और किसकी कन्या है ? (तथा किस लिये यहाँ आयी है ?)" कैकसीने हाथ जोडकर कहा—"ब्रह्मन् ! आप ध्यानद्वारा सभी कुछ

ततो ध्यात्वा मुनि सर्व ज्ञात्वा ता प्रत्यभाषत ।
ज्ञात तवाभिलषित मत्त पुत्रानभीप्ससि ॥ ५३ ॥

दारुणाया तु वेलायामागतासि सुमध्यमे ।
अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ सम्भविष्यत ॥ ५४ ॥

साब्रवीन्मुनिशार्दूल त्वत्तोऽप्येवविधौ सुतौ ।
तामाह पश्चिमो यस्ते भविष्यति महामति ॥ ५५ ॥

महाभागवत श्रीमान् रामभक्त्येकतत्पर ।
इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम् ॥ ५६ ॥

रावण विशतिभुज दशशीर्ष सुदारुणम् ।
तद्रक्षोजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा ॥ ५७ ॥

बभूवुर्नाशहेतूनि निमित्तान्यखिलान्यपि ।
कुम्भकर्णस्ततो जातो महापर्वतसन्निभ ॥ ५८ ॥

तत शूर्पणखा नाम जाता रावणसोदरी ।
तनो विभीषणो जात शान्तात्मा सौम्यदर्शन ॥ ५९ ॥

स्वाध्यायी नियताहारो नित्यकर्मपरायण ।
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा द्विजान् सन्तुष्टचेतस ॥ ६० ॥

भक्षयन्नृषिसङ्घाश्च विचचारातिदारुण ।
रावणोऽपि महासत्त्वो लोकाना भयदायक ।
ववृधे लोकनाशाय ह्यामयो देहिनामिव ॥ ६१ ॥

राम त्व सकलान्तरस्थमभितो
जानासि विज्ञानदृक्
साक्षी सर्वहृदि स्थितो हि परमो
नित्योदितो निर्मल ।
त्व लीलामनुजाकृति स्वमहिमन्
मायागुणैर्नाज्यसे
लीलार्थ प्रतिचोदितोऽद्य भवता
वक्ष्यामि रक्षोद्भवम् ॥ ६२ ॥

जानामि केवलमनन्तमचिन्त्यशक्तिं
चिन्मात्रमक्षरमज विदितात्मतत्त्वम् ।
त्वा राम गूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो
मूढोऽप्यह भवदनुग्रहतश्चरामि ॥ ६३ ॥

जान सकते है'' ॥ ५२ ॥ तब मुनिवरने ध्यानद्वारा सब बाते जानकर उससे कहा—''मै तेरी अभिलाषा जान गया, तू मुझसे पुत्रोकी इच्छा करती है ॥ ५३ ॥ किन्तु हे सुन्दरि ! तू इस दारुण समयमे आयी है इसलिये तेरे पुत्र भी दो महाभयङ्कर राक्षस होगे'' ॥ ५४ ॥ उसने कहा—''हे मुनिश्रेष्ठ ! क्या आपके द्वारा भी ऐसे पुत्र होने चाहिये ?'' तब मुनीश्वरने उससे कहा—''उनके पश्चात् तेरे जो पुत्र होगा वह महाबुद्धिमान्, परम भगवद्भक्त श्रीसम्पन्न और एकमात्र रामभक्तिमे ही तत्पर होगा ।''

मुनीश्वरके ऐसा कहनेपर उसने यथासमय दस सिर और बीस भुजाओवाले अति भयकर रावणको जन्म दिया। उस राक्षसके जन्म लेते ही पृथिवी कॉपने लगी ॥ ५५—५७ ॥ और ससारके नाशके समस्त कारण उपस्थित हो गये। उसके पश्चात् महापर्वतके समान बडे डील-डौलवाला कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ ॥ ५८ ॥ फिर रावणकी बहिन शूर्पणखाका जन्म हुआ और उसके पीछे अति शान्तचित्त सौम्यमूर्ति विभीषण उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त स्वाध्यायशील मिताहारी और नित्यकर्मपरायण था। अत्यन्त दारुण दुष्टात्मा कुम्भकर्ण सन्तुष्टचित्त ब्राह्मण और ऋषियोके समूहोको भक्षण करता हुआ पृथिवीपर घूमने लगा। तथा सम्पूर्ण लोकोको भयभीत करनेवाला महाबली रावण भी प्राणियोका नाश करनेवाले रोगके समान त्रिलोकीको नष्ट करनेके लिये बढने लगा ॥ ५९—६१ ॥

हे राम ! आप सबके अन्त करणोमे विराजमान हैं और साक्षीरूपसे अपनी ज्ञानदृष्टिद्वारा सबके हृदयस्थित विचारोको भलीभॉति जानते है। आप परम श्रेष्ठ, नित्य-प्रबुद्ध और निर्मल है। हे अपनी महिमामे स्थित रहनेवाले परमेश्वर ! आपने लीलासे ही यह मनुष्यरूप धारण किया है, किन्तु आप मायाके गुणोसे लिप्त नही होते। आपने लीलावश मुझसे पूछा है, इसीलिये मै यह राक्षसोका जन्मवृत्तान्त सुना रहा हूँ ॥ ६२ ॥ हे राम ! मै आपको एकमात्र, अनन्त, अचिन्त्यशक्ति, चिन्मात्र, अक्षर, अजन्मा और आत्मबोधस्वरूप जानता हूँ तथा (मायाके द्वारा) अपने स्वरूपको गुप्त रखनेवाले आपमे (भजनद्वारा) परायण हो मै मूढ भी आपकी कृपासे स्वच्छन्द विचरता रहता हूँ ॥ ६३ ॥

एव वदन्तमिनवशपवित्रकीर्ति
कुम्भोद्भव रघुपति प्रहसन्बभाषे ।
मायाश्रित सकलमेतदनन्यकत्वा-
न्मत्कीर्तन जगति पापहर निबोध ॥ ६४ ॥

अगस्त्यजीके इस प्रकार कहनेपर सूर्यवशके सुयशस्वरूप श्रीरघुनाथजीने अगस्त्यजीसे हँसकर कहा—"यह सम्पूर्ण ससार मायामय है, क्योकि वास्तवमे यह मुझसे पृथक् नही है, हे मुने! तुम मेरे गुण-कीर्तनको ही इस ससारमे सम्पूर्ण पापोका नाश करनेवाला जानो" ॥ ६४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

राक्षसोके राज्यस्थापनका विवरण

श्रीमहादेव उवाच

श्रीरामवचन श्रुत्वा परमानन्दनिर्भर ।
मुनि प्रोवाच सदसि सर्वेषा तत्र शृण्वताम् ॥ १ ॥

अथ वित्तेश्वरो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आययौ पुष्पकारूढ पितर द्रष्टुमञ्जसा ॥ २ ॥

दृष्ट्वा त कैकसी तत्र भ्राजमान महौजसम् ।
राक्षसी पुत्रसामीप्य गत्वा रावणमब्रवीत् ॥ ३ ॥

पुत्र पश्य धनाध्यक्ष ज्वलन्त स्वेन तेजसा ।
त्वमप्येव यथा भूयास्तथा यत्न कुरु प्रभो ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा रावणो रोषात् प्रतिज्ञामकरोदद्भुतम् ।
धनदेन समो वापि ह्यधिको वाचिरेण तु ॥ ५ ॥

भविष्याम्यम्ब मा पश्य सन्ताप त्यज सुव्रते ।
इत्युक्त्वा दुष्कर कर्तु तप स दशकन्धर ॥ ६ ॥

अगमत्फलसिद्ध्यर्थ गोकर्ण तु सहानुज ।
स्व स्व नियममास्थाय भ्रातरस्ते तपो महत् ॥ ७ ॥

आस्थिता दुष्कर घोर सर्वलोकैकतापनम् ।
दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तप ॥ ८ ॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरायण ।
पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! रघुनाथजीके ये वचन सुनकर अगस्त्य मुनि अत्यन्त आनन्दसे भर गये और उस सभामे सबके सुनते हुए फिर कहने लगे— ॥ १ ॥

"हे राम! किसी समय धनपति कुबेरजी अकस्मात् अपने पितासे मिलनेके लिये पुष्पक विमानपर चढकर आये ॥ २ ॥ जब राक्षसी कैकसीने महातेजस्वी कुबेरको पिताके पास विराजमान देखा तो वह अपने पुत्र रावणके पास जाकर बोली ॥ ३ ॥

"बेटा! अपने तेजसे प्रकाशमान इस धनपतिको देखो और हे समर्थ! तुम भी वही प्रयत्न करो जिससे ऐसे हो जाओ" ॥ ४ ॥ यह सुनकर रावणने तुरत ही बडे रोषसे प्रतिज्ञा की—"हे शुभव्रतवाली! तुम खेद न करो, देखो, मात! मै शीघ्र ही कुबेरके समान अथवा इससे भी अधिक ऐश्वर्यशाली हो जाऊँगा।"

ऐसा कह भाइयोके सहित रावण इच्छित फल-प्राप्तिके लिये गोकर्ण-क्षेत्रमे दुष्कर तपस्या करने चला गया। वहाँ वे तीनो भाई अपने-अपने व्रतमे दृढ रहकर समस्त लोकोको तपानेवाला अति महान् तप करने लगे। उनमेसे कुम्भकर्णने दस हजार वर्ष तप किया ॥ ५—८ ॥ सत्य-धर्मपरायण धर्मात्मा विभीषण भी पाँच हजार वर्षतक एक

दिव्यवर्षसहस्र तु निराहारो दशानन ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शीर्षमग्नौ जुहाव स ।
एव वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमु ॥ १० ॥

अथ वर्षसहस्र तु दशमे दशम शिर ।
छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्राप्तश्चाथ प्रजापति ।
वत्स वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ ११ ॥

वर वरय दास्यामि यत्ते मनसि काङ्क्षितम् ।
दशग्रीवोऽपि तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १२ ॥

अमरत्व वृणोमीश वरदो यदि मे भवान् ।
सुपर्णनागयक्षाणा देवताना तथासुरै ।
अवध्यत्व तु मे देहि तृणभूता हि मानुषा ॥ १३ ॥

तथास्त्विति प्रजाध्यक्ष पुनराह दशाननम् ।
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि यानि तेऽसुरपुङ्गव ॥ १४ ॥

भविष्यन्ति यथापूर्वमक्षयाणि च सत्तम ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततो राम दशग्रीव प्रजापति ।
विभीषणमुवाचेद प्रणत भक्तवत्सल ॥ १६ ॥

विभीषण त्वया वत्स कृत धर्मार्थमुत्तमम् ।
तपस्ततो वर वत्स वृणीष्वाभिमत हितम् ॥ १७ ॥

विभीषणोऽपि त नत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
देव मे सर्वदा बुद्धिर्धर्मे तिष्ठतु शाश्वती ।
मा रोचयत्वधर्मे मे बुद्धि सर्वत्र सर्वदा ॥ १८ ॥

तत प्रजापति प्रीतो विभीषणमथाब्रवीत् ।
वत्स त्व धर्मशीलोऽसि तथैव च भविष्यसि ॥ १९ ॥

अयाचितोऽपि ते दास्ये ह्यमरत्व विभीषण ।
कुम्भकर्णमथोवाच वर वरय सुव्रत ॥ २० ॥

वाण्या व्याप्तोऽथ त प्राह कुम्भकर्ण पितामहम् ।
स्वप्स्यामि देव षण्मासान्दिनमेक तु भोजनम् ॥ २१ ॥

एवमस्त्विति त प्राह ब्रह्मा दृष्ट्वा दिवौकस ।
सरस्वती च तद्वक्त्रान्निर्गता प्रययौ दिवम् ॥ २२ ॥

ही पाँवसे खडे रहे ॥ ९ ॥ रावण एक हजार दिव्य वर्षतक निराहार रहा, फिर सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर उसने अपना एक मस्तक अग्निमे हवन कर दिया। इसी प्रकार उसे नौ हजार दिव्य वर्ष बीत गये ॥ १० ॥ जब दस हजार वर्ष बीतनेको हुए और जिस समय रावण अपना दसवाँ सिर भी काटनेको उद्यत हुआ तो धर्मात्मा ब्रह्माजी प्रकट हुए और बोले—"बेटा रावण ! मैं प्रसन्न हूँ॥ ११ ॥ तू वर माँग, मैं तेरी जो इच्छा होगी वही पूर्ण करूँगा।" यह सुन रावणने अति प्रसन्न होकर कहा— ॥ १२ ॥ 'हे ईश्वर ! यदि आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो मैं अमरता माँगता हूँ। मै गरुड, सर्प, यक्ष, देव और दानव आदि किसीसे भी न मारा जा सकूँ। (बस, मैं यही वर माँगता हूँ) बेचारे मनुष्य तो तिनकोके समान हैं—(उनसे मुझे भय नही है) ॥ १३ ॥ तब ब्रह्माजीने 'ऐसा ही हो' यह कहकर रावणसे फिर कहा—"हे असुरश्रेष्ठ ! तुमने अपने जो सिर अग्निमे होम दिये है वे पहलेके समान फिर हो जायँगे तथा हे साधुश्रेष्ठ ! उनका कभी नाश न होगा" ॥ १४-१५ ॥

हे राम ! रावणसे इस प्रकार कह फिर भक्तवत्सल ब्रह्माजीने अति विनीत विभीषणसे कहा— ॥ १६ ॥ "वत्स विभीषण ! तुमने यह श्रेष्ठ तप धर्मसम्पादनके लिये किया है, इसलिये बेटा ! तुम्हे जो हितकर वर अभीष्ट हो माँगो" ॥ १७ ॥ तब विभीषणने उन्हे नमस्कार कर उनसे हाथ जोडकर कहा—"भगवन् ! मेरी बुद्धि सर्वदा निश्चलरूपसे धर्ममे ही रहे, उसकी कभी किसी अवस्थामे भी अधर्ममे रुचि न हो" ॥ १८ ॥ इसपर ब्रह्माजीने अति प्रसन्न होकर विभीषणसे कहा—"बेटा ! तुम बडे धर्मनिष्ठ हो, जैसा चाहते हो वैसा ही होगा ॥ १९ ॥ हे विभीषण ! यद्यपि तुमने माँगा नहीं है, फिर भी मैं तुम्हे अमरत्वका वर और देता हूँ।" तदनन्तर वे कुम्भकर्णसे बोले—"हे सुव्रत ! तुम वर माँगो" ॥ २० ॥ तब कुम्भकर्णने (देवताओकी प्रेरणासे फैलायी हुई) सरस्वती देवीकी मायासे मोहित होकर ब्रह्माजीसे कहा—"हे देव ! मैं छ महीने सोऊँ और एक दिन भोजन करूँ" ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने उससे, देवताओकी ओर देखते हुए कहा—"ऐसा ही हो।" उनके ऐसा कहते ही सरस्वती तुरत ही उसके मुखसे निकलकर स्वर्गलोकको चली गयीं ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दु खित ।
अनभिप्रेतमेवास्यात्कि निर्गतमहो विधि ॥ २३ ॥

सुमाली वरलब्धास्तान् ज्ञात्वा पौत्रान् निशाचरान् ।
पातालान्निर्भय प्रायात् प्रहस्तादिभिरन्वित ॥ २४ ॥

दशग्रीव परिष्वज्य वचन चेदमब्रवीत् ।
दिष्ट्या ते पुत्र सवृत्तो वाञ्छितो मे मनोरथ ॥ २५ ॥

यद्भयाच्च वय लङ्का त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तद्गत नो महाबाहो महद्विष्णुकृत भयम् ॥ २६ ॥

अस्माभि पूर्वमुषिता लङ्केय धनदेन ते ।
भ्रात्राक्रान्तामिदानीं त्व प्रत्यानेतुमिहार्हसि ॥ २७ ॥

साम्ना वाथ बलेनापि राज्ञा बन्धु कुत सुहृत् ।
इत्युक्तो रावण प्राह नार्हस्येव प्रभाषितुम् ॥ २८ ॥

वित्तेशो गुरुरस्माकमेव श्रुत्वा तमब्रवीत् ।
प्रहस्त प्रश्रित वाक्य रावण दशकन्धरम् ॥ २९ ॥

शृणु रावण यत्नेन नैव त्व वक्तुमर्हसि ।
नाधीता राजधर्मास्ते नीतिशास्त्र तथैव च ॥ ३० ॥

शूराणा नहि सौभ्रात्र शृणु मे वदत प्रभो ।
कश्यपस्य सुता देवा राक्षसाश्च महाबला ॥ ३१ ॥

परस्परमयुध्यन्त त्यक्त्वा सौहृदमायुधै ।
नैवेदानीन्तन राजन् वैर देवैरनुष्ठितम् ॥ ३२ ॥

प्रहस्तस्य वच श्रुत्वा दशग्रीवो दुरात्मन ।
तथेति क्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात् ॥ ३३ ॥

दूत प्रहस्त सम्प्रेष्य निष्कास्य धनदेश्वरम् ।
लङ्कामाक्रम्य सचिवै राक्षसै सुखमास्थित ॥ ३४ ॥

धनद पितृवाक्येन त्यक्त्वा लङ्का महायशा ।
गत्वा कैलासशिखर तपसातोषयच्छिवम् ॥ ३५ ॥

तब दुष्टचित्त कुम्भकर्णने मन-ही-मन दु खित होकर सोचा—"अहो ! भाग्यका चक्र तो देखो, जिसकी मुझे इच्छा ही नही है ऐसी बात मेरे मुखसे क्यो निकल गयी ?" ॥ २३ ॥

अपने नाती तीनो राक्षसोको वर मिलनेका समाचार सुनकर सुमाली प्रहस्तादि राक्षसोको साथ लिये निर्भयतापूर्वक पातालसे आया ॥ २४ ॥ और रावणको हृदयसे लगाकर बोला—"बेटा ! बडे आनन्दकी बात है कि आज मेरा चाहा हुआ तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया ॥ २५ ॥ जिसके भयसे हम लङ्कापुरीको छोडकर पाताललोकको चले गये थे, हे महाबाहो ! आज हमारा वह विष्णुका भय जाता रहा ॥ २६ ॥ इस लकापुरीमे, जो अब तुम्हारे भाई कुबेरके अधिकारमे है, पहले हम रहा करते थे। अब तुम्हे इसे सामनीतिसे अथवा बलपूर्वक फिर लौटा लेना चाहिये, (बन्धुत्वका विचार न करना चाहिये) क्योकि राजाओके बन्धु उनके कब हितकारी हुए है ?

सुमालीके ऐसा कहनेपर रावणने कहा—"आपको ऐसी बात नही कहनी चाहिये ॥ २७-२८ ॥ धनपति कुबेर हमारे बडे है।" यह सुनकर प्रहस्तने रावणसे अति नम्रतापूर्वक कहा— ॥ २९ ॥ "हे रावण ! मै जो कुछ कहता हूँ सावधान होकर सुनो । तुम्हे ऐसी बात नही कहनी चाहिये । अभी तुमने राजधर्म और नीतिशास्त्रका अध्ययन नही किया है॥ ३० ॥ शूरवीरोमे भ्रातृत्व नही हुआ करता । हे समर्थ ! इस विषयमे मै जो कुछ निवेदन करता हूँ सुनिये । महर्षि कश्यपजीकी सन्तान देवता और राक्षस बडे शूरवीर थे ॥ ३१ ॥ इसलिये वे बन्धुत्वको तिलाञ्जलि देकर परस्पर अस्त्र-शस्त्रोसे लडने लगे। हे राजन् ! देवताओके साथ हमारा वैर कुछ हालहीका नही है (यह तो आरम्भसे ही चला आता है)" ॥ ३२ ॥

दुरात्मा प्रहस्तके ये वचन सुनकर रावणने कहा—'तो ठीक है ।' उस समय उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह तुरत ही त्रिकूट पर्वतपर पहुँचा ॥ ३३ ॥ उसने प्रहस्तको अपना दूत बनाकर भेजा और कुबेरको लकापुरीसे निकालकर उसपर अपना अधिकार किया तथा अपने राक्षस-मन्त्रियोके सहित वहाँ सुखपूर्वक रहने

तेन सख्यमनुप्राप्य तेनैव परिपालित ।
अलका नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मणा ॥ ३६ ॥

दिक्पालत्व चकारात्र शिवेन परिपालित ।
रावणो राक्षसै सार्धमभिषिक्त सहानुजै ॥ ३७ ॥

राज्य चकारासुराणा त्रिलोकीं बाधयन् खल ।
भगिनीं कालखञ्जाय ददौ विकटरूपिणीम् ॥ ३८ ॥

विद्युज्जिह्वाय नाम्नासौ महामायी निशाचर ।
ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसाना दिते सुत ॥ ३९ ॥

सुता मन्दोदरीं नाम्ना ददौ लोकैकसुन्दरीम् ।
रावणाय पुन शक्तिममोघा प्रीतमानस ॥ ४० ॥

वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् ।
स्वयदत्तामुदवहत्कुम्भकर्णाय रावण ॥ ४१ ॥

गन्धर्वराजस्य सुता शैलूषस्य महात्मन ।
विभीषणस्य भार्यार्थे धर्मज्ञा समुदावहत् ॥ ४२ ॥

सरमा नाम सुभगा सर्वलक्षणसयुताम् ।
ततो मन्दोदरी पुत्र मेघनादमजीजनत् ॥ ४३ ॥

जातमात्रस्तु यो नाद मेघवत्प्रमुमोच ह ।
तत सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमिति चासकृत् ॥ ४४ ॥

कुम्भकर्णस्तत प्राह निद्रा मा बाधते प्रभो ।
ततश्च कारयामास गुहा दीर्घा सुविस्तराम् ॥ ४५ ॥

तत्र सुष्वाप मूढात्मा कुम्भकर्णो विघूर्णित ।
निद्रिते कुम्भकर्णे तु रावणो लोकरावण ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणान् ऋषिमुख्याश्च देवदानवकिन्नरान् ।
देवश्रियो मनुष्याश्च निजघ्ने समहोरगान् ॥ ४७ ॥

धनदोऽपि तत श्रुत्वा रावणस्याक्रम प्रभु ।
अधर्म मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥ ४८ ॥

तत क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् ।
विनिर्जित्य धनाध्यक्ष जहारोत्तमपुष्पकम् ॥ ४९ ॥

लगा ॥ ३४ ॥ महायशस्वी कुबेरने लकापुरीको छोडकर पिताके कहनेसे कैलास-पर्वतपर जाकर तपस्याद्वारा श्रीमहादेवजीको प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ तथा उनसे मित्रता स्थापित कर उन्हींसे सुरक्षित हो वहाँ विश्वकर्मासे अलका नामकी नगरी बनवायी ॥ ३६ ॥ वहाँ वे भगवान् शङ्करकी रक्षामे रहकर दिक्पालत्व (एक दिशाका अधिकार) भोगने लगे ।

इधर, महादुष्ट रावण राक्षसोसे अभिषिक्त हो अपने भाइयोके सहित तीनो लोकोको कष्ट देता हुआ राक्षसोका राज्य करने लगा । उस महामायावी राक्षसने अपनी विकरालवदना बहिन कालखञ्जके वशमे उत्पन्न हुए विद्युज्जिह्व नामक राक्षसको विवाह दी । इसी समय, राक्षसोके विश्वकर्मा दितिपुत्र मयने अपनी त्रिलोकसुन्दरी कन्या मन्दोदरी रावणको दी और फिर उसे प्रसन्न-चित्तसे एक अमोघ शक्ति भी दी ॥ ३७—४० ॥ तदनन्तर रावणने, स्वय लाकर दी हुई वैरोचनकी धेवती वृत्रज्वालाके साथ कुम्भकर्णका विवाह किया ॥ ४१ ॥ तथा गन्धर्वराज महात्मा शैलूषकी पुत्री सरमाको, जो अति सुन्दरी सर्वसुलक्षणसम्पन्ना और समस्त धर्मोको जाननेवाली थी, उसने पत्नीरूपसे विभीषणको विवाह दिया । तत्पश्चात् मन्दोदरीने मेघनाद नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४२-४३ ॥ जिसने उत्पन्न होते ही मेघके समान शब्द किया । इसलिये सबने बारबार यही कहा कि 'यह मेघनाद है' ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कुम्भकर्ण बोला— "प्रभो ! मुझे निद्रा सता रही है ।" फिर उसने एक बडी लबी-चौडी गुहा बनवायी ॥ ४५ ॥ वहाँ मन्दमति कुम्भकर्ण खुर्राटे लेता हुआ सो गया । कुम्भकर्णके सो जानेपर समस्त लोकोको रुलानेवाले रावणने ब्राह्मण, मुख्य-मुख्य ऋषि, देवता, दानव, किन्नर, सर्प और मनुष्य सभीको मारा तथा देवताओकी सम्पत्ति नष्ट कर दी ॥ ४६-४७ ॥

भगवान् कुबेरने जब रावणकी उच्छृङ्खलताका समाचार सुना तो उन्होने दूतके मुखसे यह सन्देश भेजकर कि 'अधर्म मत करो' उसे रोका ॥ ४८ ॥ इसपर रावण क्रोधित होकर कुबेरकी पुरीपर चढ आया और उन्हे परास्त कर उनका अति उत्तम पुष्पक विमान छीन लाया ॥ ४९ ॥

ततो यम च वरुण निर्जित्य समरेऽसुर ।
स्वर्गलोकमगात्तूर्ण देवराजजिघासया ॥ ५० ॥

ततोऽभवन्महद्युद्धमिन्द्रेण सह दैवतै ।
ततो रावणमभ्येत्य बबन्ध त्रिदशेश्वर ॥ ५१ ॥

तच्छ्रुत्वा सहसागत्य मेघनाद प्रतापवान् ।
कृत्वा घोर महद्युद्ध जित्वा त्रिदशपुङ्गवान् ॥ ५२ ॥

इन्द्र गृहीत्वा बध्वासौ मेघनादो महाबल ।
मोचयित्वा तु पितर गृहीत्वेन्द्र ययौ पुरम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मा तु मोचयामास देवेन्द्र मेघनादत ।
दत्त्वा वरान्बहूस्तस्मै ब्रह्मा स्वभवन ययौ ॥ ५४ ॥

रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु ।
कैलास तोलयामास बाहुभि परिघोपमै ॥ ५५ ॥

तत्र नन्दीश्वरेणैव शप्तोऽय राक्षसेश्वर ।
वानरैर्मानुषैश्चैव नाश गच्छेति कोपिना ॥ ५६ ॥

शप्तोऽप्यगणयन् वाक्य ययौ हैहयपत्तनम् ।
तेन बद्धो दशग्रीव पुलस्त्येन विमोचित ॥ ५७ ॥

ततोऽतिबलमासाद्य जिघासुर्हरिपुङ्गवम् ।
धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धर ॥ ५८ ॥

भ्रामयित्वा तु चतुर समुद्रान् रावण हरि ।
विसर्जयामास ततस्तेन सख्य चकार स ॥ ५९ ॥

रावण परमप्रीत एव लोकान्महाबल ।
चकार स्ववशे राम बुभुजे स्वयमेव तान् ॥ ६० ॥

एवम्प्रभावो राजेन्द्र दशग्रीव सहेन्द्रजित् ।
त्वया विनिहत सङ्ख्ये रावणो लोकरावण ॥ ६१ ॥

मेघनादश्च निहतो लक्ष्मणेन महात्मना ।
कुम्भकर्णश्च निहतस्त्वया पर्वतसन्निभ ॥ ६२ ॥

भवान्नारायण साक्षाज्जगतामादिकृद्विभु ।
त्वत्स्वरूपमिद सर्व जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६३ ॥

त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामह ।
अग्निस्ते मुखतो जातो वाचा सह रघूत्तम ॥ ६४ ॥

तदनन्तर वह राक्षस युद्धमे यम और वरुणको भी जीतकर इन्द्रका वध करनेकी इच्छासे तुरत ही स्वर्गलोकपर चढ आया ॥ ५० ॥ वहाँ इन्द्र और अन्य देवताओके साथ उसका बडा घमासान युद्ध हुआ। इस समय देवराज इन्द्रने आगे बढकर रावणको बाँध लिया ॥ ५१ ॥ जब यह समाचार महाप्रतापी मेघनादने सुना तो उसने अकस्मात् आकर देवताओसे घोर युद्ध किया और उन्हे जीतकर इन्द्रको पकडकर बाँध लिया। फिर महाबली मेघनादने अपने पिताको छुडाया और इन्द्रको अपने साथ लेकर लकापुरीमे लौट आया ॥ ५२-५३ ॥ फिर ब्रह्माजीने जाकर इन्द्रको मेघनादसे छुडाया और उसे बहुत-से वर देकर वे अपने लोकको चले गये ॥ ५४ ॥

विजयी रावणने क्रमसे सब लोकोको जीतकर अपने परिघके समान बडी-बडी भुजाओसे कैलास पर्वतको उठा लिया ॥ ५५ ॥ वहाँ नन्दीश्वरने क्रोधित होकर राक्षसराज रावणको शाप दिया कि 'तू मनुष्य और वानरोके हाथसे मारा जायगा' ॥ ५६ ॥ किन्तु रावणने इस शापको कुछ भी न गिना और वह तुरत ही हैहयराज (सहस्रार्जुन) की राजधानीको चल दिया। वहाँ सहस्रार्जुनने रावणको बाँध लिया। तब उसे पुलस्त्यजीने छुडाया ॥ ५७ ॥ फिर वह अत्यन्त बली वानरराज वालीको मारनेके लिये उद्यत हुआ, किन्तु उलटे उन्होंने रावणको अपनी काँखमे दबा लिया ॥ ५८ ॥ और फिर चारो समुद्रोपर घुमाकर उसे छोड दिया। तब रावणने उनसे मित्रता कर ली ॥ ५९ ॥ हे राम! इस प्रकार महाबली रावण सम्पूर्ण लोकोको अपने अधीन कर उन्हे प्रसन्नतापूर्वक स्वय ही भोगने लगा ॥ ६० ॥

हे राजेन्द्र! ये दशानन और इन्द्रजित् ऐसे प्रभावशाली थे। (उनमेसे) लोकोको रुलानेवाले रावणको आपने मारा और मेघनादका वध महात्मा लक्ष्मणजीने किया तथा पर्वतके समान दीर्घकाय कुम्भकर्णका भी आपहीने सहार किया ॥ ६१-६२ ॥ आप सब लोकोके रचनेवाले साक्षात् सर्वव्यापक नारायणदेव है। यह सारा चराचर जगत् आपहीका स्वरूप है ॥ ६३ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजी आपकी नाभिसे प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न हुए है तथा हे रघुश्रेष्ठ! वाणीके सहित अग्निदेवने आपके मुखसे जन्म

बाहुभ्या लोकपालौघाश्चक्षुर्भ्या चन्द्रभास्करौ ।
दिशश्च विदिशश्चैव कर्णाभ्या ते समुत्थिता ॥ ६५ ॥

घ्राणात्प्राण समुत्पन्नश्चाश्विनौ देवसत्तमौ ।
जङ्घाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥ ६६ ॥

कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वार सागरा हरे ।
स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौ वालखिल्याश्च रेतस ॥ ६७ ॥

मेढ्राद्यमो गुदान्मृत्युर्मन्यो रुद्रस्त्रिलोचन ।
अस्थिभ्य पर्वता जाता केशेभ्यो मेघसहति ॥ ६८ ॥

ओषध्यस्तव रोमभ्यो नखेभ्यश्च खरादय ।
त्व विश्वरूप पुरुषो मायाशक्तिसमन्वित ॥ ६९ ॥

नानारूप इवाभासि गुणव्यतिकरे सति ।
त्वामाश्रित्यैव विबुधा पिबन्त्यमृतमध्वरे ॥ ७० ॥

त्वया सृष्टमिद सर्व विश्व स्थावरजङ्गमम् ।
त्वामाश्रित्यैव जीवन्ति सर्वे स्थावरजङ्गमा ॥ ७१ ॥

त्वद्युक्तमखिल वस्तु व्यवहारेऽपि राघव ।
क्षीरमध्यगत सर्पिर्यथा व्याप्याखिल पय ॥ ७२ ॥

त्वद्भासा भासतेऽर्कादि न त्व तेनावभाससे ।
सर्वग नित्यमेक त्वा ज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ॥ ७३ ॥

नाज्ञानचक्षुस्त्वा पश्येदन्धदृग् भास्कर यथा ।
योगिनस्त्वा विचिन्वन्ति स्वदेहे परमेश्वरम् ॥ ७४ ॥

अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् ।
त्वत्पादभक्तिलेशेन गृहीता यदि योगिन ॥ ७५ ॥

विचिन्वन्तो हि पश्यन्ति चिन्मात्र त्वा न चान्यथा ।
मया प्रलपित किञ्चित्सर्वज्ञस्य तवाग्रत ।
क्षन्तुमर्हसि देवेश तवानुग्रहभागहम् ॥ ७६ ॥

दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेक
चिन्मात्रमक्षरमज चलनादिहीनम् ।
सर्वज्ञमीश्वरमनन्तगुण व्युदस्त-
माय भजे रघुपतिं भजतामभिन्नम् ॥ ७७ ॥

लिया है ॥ ६४ ॥ आपकी भुजाओसे लोकपालोके समूह, नेत्रोसे चन्द्रमा और सूर्य तथा कानोसे दिशा-विदिशाएँ उत्पन्न हुई है ॥ ६५ ॥ इसी प्रकार आपकी घ्राणेन्द्रियसे प्राण और देवताओमे श्रेष्ठ अश्विनीकुमार प्रकट हुए है तथा जङ्घा, जानु, ऊरु और जघनादि अङ्गोसे भुवर्लोक आदि हुए है ॥ ६६ ॥ हे हरे ! आपकी कुक्षिसे चार समुद्र, स्तनोसे इन्द्र और वरुण तथा वीर्यसे वालखिल्यादि मुनीश्वर हुए हैं ॥ ६७ ॥ आपकी उपस्थेन्द्रियसे यम, गुदासे मृत्यु, क्रोधसे त्रिनयन महादेवजी, अस्थियोसे पर्वतसमूह, केशोसे मेघ, रोमोसे ओषधियाँ तथा नखोसे गधे आदि उत्पन्न हुए हैं। अपनी मायाशक्तिसे युक्त आप ही विश्वरूप परम पुरुष है ॥ ६८-६९ ॥ प्रकृतिके गुणोसे युक्त होनेपर आप ही नानारूप-से दिखायी देने लगते हैं, आपहीके आश्रयसे देवगण यज्ञोमे अमृतपान करते हैं ॥ ७० ॥ यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आपहीने रचा है और समस्त चराचर प्राणी आपहीके आश्रयसे जीवित रहते है ॥ ७१ ॥ हे रघुनाथजी ! जिस प्रकार दूधमे मिला हुआ घी उसमे सर्वत्र व्याप्त रहता है, उसी प्रकार व्यवहारकालमे भी सम्पूर्ण वस्तुएँ आपहीसे व्याप्त रहती हैं ॥ ७२ ॥ सूर्य-चन्द्रादि भी सब आपहीके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं किन्तु आप उनसे प्रकाशित नही होते। आप सर्वगत, नित्य और एक है, जिस पुरुषको ज्ञानदृष्टि प्राप्त हो जाती है वही आपको देख सकता है ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार अन्धेको सूर्य नही दिखायी दे सकता उसी प्रकार जो ज्ञाननेत्रसे रहित है वह आपका दर्शन नही कर सकता। योगिजन अनात्म-पदार्थोका बाध करनेवाले उपनिषद्वाक्योद्वारा अहर्निश आप परमात्माको अपने शरीरमे ही खोजते हैं। यदि उन योगियोपर आपके चरणोकी भक्तिका लेशमात्र भी प्रभाव होता है तभी वे खोजते-खोजते अन्तमे चिन्मात्रस्वरूप आपको देख पाते है, और किसी प्रकार नही। मैने आप सर्वज्ञके सामने कुछ प्रलाप (बकवाद) किया है, सो आप क्षमा करे, क्योकि हे देवेश्वर ! मै आपकी कृपाका पात्र हूँ ॥ ७४—७६ ॥ जो दिशा, देश और कालसे रहित तथा अनन्य, एक, चिन्मात्र, अविनाशी, अजन्मा और चलनादि क्रियासे रहित हैं उन सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनन्तगुणसम्पन्न, मायाहीन और अपने भक्तजनोसे सदा अभिन्न रहनेवाले रघुनाथजीको मै भजता हूँ ॥ ७७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे द्वितीय सर्ग ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

वाली और सुग्रीवका पूर्वचरित्र तथा रावण-सनत्कुमार-सवाद

श्रीराम उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ।
रवीन्द्रौ वानराकारौ जज्ञात इति न श्रुतम् ॥ १ ॥

अगस्त्य उवाच

मेरो स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृङ्गे मणिप्रभे ।
तस्मिन्सभास्ते विस्तीर्णा ब्रह्मण शतयोजना ॥ २ ॥

तस्या चतुर्मुख साक्षात्कदाचिद्योगमास्थित ।
नेत्राभ्या पतित दिव्यमानन्दसलिल बहु ॥ ३ ॥

तद्गृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किञ्चित्तदत्यजत् ।
भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपि ॥ ४ ॥

तमाह द्रुहिणो वत्स किञ्चित्काल वसात्र मे ।
समीपे सर्वशोभाढ्ये तत श्रेयो भविष्यति ॥ ५ ॥

इत्युक्तो न्यवसत्तत्र ब्रह्मणा वानरोत्तम ।
एव बहुतिथे काले गते ऋक्षाधिप सुधी ॥ ६ ॥

कदाचित्पर्यटन्नद्रौ फलमूलार्थमुद्यत ।
अपश्यद्दिव्यसलिला वापीं मणिशिलान्विताम् ॥ ७ ॥

पानीय पातुमागच्छत्तत्रच्छायामय कपिम् ।
दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे ॥ ८ ॥

तत्रादृष्ट्वा हरिं शीघ्र पुनरुत्प्लुत्य वानर ।
अपश्यत्सुन्दरीं रामामात्मान विस्मय गत ॥ ९ ॥

तत सुरेशो देवेश पूजयित्वा चतुर्मुखम् ।
गच्छन्मध्याह्नसमये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम् ॥ १० ॥

कन्दर्पशरविद्धाङ्गस्त्यक्तवान्वीर्यमुत्तमम् ।
तामप्राप्यैव तद्बीज वालदेशेऽपतद्भुवि ॥ ११ ॥

वाली समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रम ।
तस्य दत्त्वा सुरेशान स्वर्णमाला दिव गत ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुने ! मै वाली और सुग्रीवके जन्मका यथावत् वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। मैने सुना है कि ये इन्द्र और सूर्य ही वानररूपसे उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥

अगस्त्यजी बोले—हे राम ! मेरुपर्वतके मणिके समान प्रकाशमान सुवर्णमय मध्यशिखरपर ब्रह्माजीकी सौ योजन विस्तारवाली सभा है ॥ २ ॥ उसमे चतुर्मुख ब्रह्माजी किसी समय ध्यानस्थ हुए बैठे थे, उस समय उनके नेत्रोसे बहुत-से दिव्य आनन्दाश्रु गिरे ॥ ३ ॥ उन्हे अपने हाथमे लेकर ब्रह्माजीने कुछ चिन्तन कर पृथिवीपर डाल दिया। पृथिवीपर गिरते ही उनसे एक बहुत बडा वानर उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ उससे ब्रह्माजीने कहा, ''वत्स ! तू कुछ समय यहाँ मेरे पास इस सर्वशोभासम्पन्न स्थानमे रह, इससे तेरा कल्याण होगा'' ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर वह वानरश्रेष्ठ वही रहने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर एक दिन उस परम बुद्धिमान् ऋक्षराजने* फल-मूलादिके लिये घूमते-घूमते एक दिव्य जलपूर्ण और रत्नजटित शिलाओसे सुशोभित बावडी देखी ॥ ६-७ ॥ जब वह वहाँ पानी पीनेके लिये गया तो उसने जलमे एक छायामय वानर देखा। उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी वानर समझकर वह जलमे कूद पडा ॥ ८ ॥ किन्तु वहाँ कोई भी वानर न मिलनेपर वह तुरत ही उछलकर बाहर निकल आया और अपनेको एक अति सुन्दरी रमणीके रूपमे देखकर बडा ही चकित हुआ ॥ ९ ॥

उस समय देवराज इन्द्र मध्याह्न कालमे ब्रह्माजीकी पूजा करके लौट रहे थे। उस परमसुन्दरी स्त्रीको देखकर वे कामदेवके बाणोसे बिंध गये और उनका उत्तम वीर्य स्खलित हो गया। वह वीर्य उस स्त्रीको प्राप्त न होकर उसके बालोको छूता हुआ पृथिवीपर गिर पडा ॥ १०-११ ॥ उससे इन्द्रके समान पराक्रमी वालीका जन्म हुआ। देवराज इन्द्र उसे एक सुवर्णमयी माला देकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ १२ ॥

* यह उस वानरका नाम था।

भानुरप्यागतस्तत्र तदानीमेव भामिनीम्।
दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत्॥ १३ ॥

बीज तस्यास्तत सद्यो महाकायोऽभवद्धरि ।
तस्य दत्त्वा हनूमन्त सहायार्थ गतो रवि ॥ १४ ॥

पुत्रद्वय समादाय गत्वा सा निद्रिता क्वचित्।
प्रभातेऽपश्यदात्मान पूर्ववद्वानराकृतिम्॥ १५ ॥

फलमूलादिभि सार्ध पुत्राभ्या सहित कपि ।
नत्वा चतुर्मुखस्याग्रे ऋक्षराज स्थित सुधी ॥ १६ ॥

ततोऽब्रवीत्समाश्वास्य बहुश कपिकुञ्जरम्।
तत्रैक देवतादूतमाहूयामरसन्निभम्॥ १७ ॥

गच्छ दूत मयादिष्टो गृहीत्वा वानरोत्तमम्।
किष्किन्धा दिव्यनगरीं निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ १८ ॥

सर्वसौभाग्यवलिता देवैरपि दुरासदाम्।
तस्या सिहासने वीर राजानमभिषेचय ॥ १९ ॥

सप्तद्वीपगता ये ये वानरा सन्ति दुर्जया ।
सर्वे ते ऋक्षराजस्य भविष्यन्ति वशेऽनुगा ॥ २० ॥

यदा नारायण साक्षाद्रामो भूत्वा सनातन ।
भूभारासुरनाशाय सम्भविष्यति भूतले ॥ २१ ॥

तदा सर्वे सहायार्थे तस्य गच्छन्तु वानरा ।
इत्युक्तो ब्रह्मणा दूतो देवाना स महामति ॥ २२ ॥

यथाज्ञप्तस्तथा चक्रे ब्रह्मणा त हरीश्वरम्।
देवदूतस्ततो गत्वा ब्रह्मणे तन्न्यवेदयत्॥ २३ ॥

तदादि वानराणा सा किष्किन्धाभून्नृपाश्रय ॥ २४ ॥

सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानीं ब्रह्मणार्थित ।
भूमेर्भारो हत कृत्स्नस्त्वया लीलानृदेहिना।
सर्वभूतान्तरस्थस्य नित्यमुक्तचिदात्मन ॥ २५ ॥

अखण्डानन्तरूपस्य कियानेष पराक्रम ।
तथापि वर्ण्यते सद्भिर्लीलामानुषरूपिण ॥ २६ ॥

यशस्ते सर्वलोकाना पापहत्यै सुखाय च।
य इद कीर्तयेन्मर्त्यो वालिसुग्रीवयोर्महत्॥ २७ ॥

उसी समय वहाँ सूर्यदेव भी आये। उस सुन्दरीको देखकर वे कामवश हो गये तथा उसकी ग्रीवापर अपना उग्र वीर्य छोडा। उससे उसी समय एक बहुत बडे शरीरवाला वानर उत्पन्न हुआ। सूर्यदेव उसकी सहायताके लिये उसे हनुमान्‌जीको देकर चले गये ॥ १३-१४ ॥

उन दोनो पुत्रोको लेकर वह स्त्री कही जाकर सो गयी। दूसरे दिन सबेरे (उठनेपर) उसने पहलेके समान अपनेको फिर वानररूप ही देखा ॥ १५ ॥ फिर वह परम बुद्धिमान् ऋक्षराज फल-मूलादि लेकर अपने पुत्रोके सहित ब्रह्माजीकी सभामे आया और उन्हे नमस्कार कर उनके आगे खडा हो गया ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माजीने उस वानर-वीरको बहुत कुछ समझाया और एक देवतुल्य देवदूतको बुलाकर उससे कहा— ॥ १७ ॥ "हे दूत ! तू मेरी आज्ञासे इस वानरश्रेष्ठको लेकर विश्वकर्माकी बनायी हुई किष्किन्धा नामकी दिव्य पुरीको जा ॥ १८ ॥ वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और देवताओके लिये भी दुर्जय है। उसके सिहासनपर इस वीरका राज्याभिषेक कर दे ॥ १९ ॥ सातो द्वीपोमे जो-जो बडे दुर्जय वानर-वीर है वे सब ऋक्षराजके अधीन रहेगे ॥ २० ॥ जिस समय साक्षात् सनातन पुरुष नारायणदेव पृथिवीका भार उतारनेके लिये भूलोकमे रामरूपसे अवतीर्ण हो उस समय समस्त वानरगण उनकी सहायताके लिये जायँ।'' ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर उस महाबुद्धिमान् देवदूतने जिस प्रकार उनकी आज्ञा हुई थी उसी प्रकार उस वानरराजकी सब व्यवस्था कर दी और फिर ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हे सब समाचार सुना दिया। तबसे वह किष्किन्धापुरी वानरोकी राजधानी हो गयी ॥ २१—२४ ॥

हे राम ! आप सबके स्वामी है। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे अब माया-मानव-रूप धारण कर आपने पृथिवीका सब भार उतार दिया। जो सब भूतोके भीतर विराजमान नित्यमुक्त और चेतनस्वरूप है उन अखण्ड और अनन्तरूप आपके लिये यह ऐसा कौन बडा पराक्रम है ? तथापि सम्पूर्ण लोकोके पापोका नाश करनेके लिये और उन्हे सुख देनेके लिये साधुजन आप माया-मानुष-रूप भगवान्‌का सुयश वर्णन करते ही है। जो मनुष्य वाली और सुग्रीवके

जन्म त्वदाश्रयत्वात्स मुच्यते सर्वपातकै ॥ २८ ॥

अथान्या सम्प्रवक्ष्यामि कथा राम त्वदाश्रयाम् ।
सीता हृता यदर्थं सा रावणेन दुरात्मना ॥ २९ ॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुत विभुम् ।
सनत्कुमारमेकान्ते समासीन दशानन ।
विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३० ॥

को न्वस्मिन्प्रवरो लोके देवाना बलवत्तर ।
देवाश्च य समाश्रित्य युद्धे शत्रु जयन्ति हि ॥ ३१ ॥

क यजन्ति द्विजा नित्य क ध्यायन्ति च योगिन ।
एतन्मे शस भगवन् प्रश्न प्रश्नविदावर ॥ ३२ ॥

ज्ञात्वा तस्य हृदिस्थ यत्तदशेषेण योगदृक् ।
दशाननमुवाचेद शृणु वक्ष्यामि पुत्रक ॥ ३३ ॥

भर्ता यो जगता नित्य यस्य जन्मादिक न हि ।
सुरासुरैर्नुतो नित्य हरिर्नारायणोऽव्यय ॥ ३४ ॥

यन्नाभिपङ्कजाज्जातो ब्रह्मा विश्वसृजा पति ।
सृष्ट येनैव सकल जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३५ ॥

त समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून् ।
योगिनो ध्यानयोगेन तमेवानुजपन्ति हि ॥ ३६ ॥

महर्षेर्वचन श्रुत्वा प्रत्युवाच दशानन ।
दैत्यदानवरक्षासि विष्णुना निहतानि च ॥ ३७ ॥

का वा गतिं प्रपद्यन्ते प्रेत्य ते मुनिपुङ्गव ।
तमुवाच मुनिश्रेष्ठो रावण राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥

दैवतैर्निहता नित्य गत्वा स्वर्गमनुत्तमम् ।
भोगक्षये पुनस्तस्माद्भ्रष्टा भूमौ भवन्ति ते ॥ ३९ ॥

पूर्वार्जितै पुण्यपापैर्म्रियन्ते चोद्भवन्ति च ।
विष्णुना ये हतास्ते तु प्राप्नुवन्ति हरेर्गतिम् ॥ ४० ॥

श्रुत्वा मुनिमुखात्सर्व रावणो हृष्टमानस ।
योत्स्येऽह हरिणा सार्धमिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४१ ॥

इस महान् चरित्रका कीर्तन करेगा वह आपके आश्रित होनेके कारण सब पापोसे छूट जायगा ॥ २५—२८ ॥

हे राम ! अब आपसे सम्बन्ध रखनेवाली एक वह कथा और सुनाता हूँ जिस कारण कि दुरात्मा रावणने सीताजीको हरा था ॥ २९ ॥ पहले एक बार रावणने एकान्तमे बैठे हुए ब्रह्माजीके पुत्र श्रीसनत्कुमारजीसे अति नम्रतापूर्वक प्रणाम करके कहा— ॥ ३० ॥ ''जिसका आश्रय पाकर देवगण सग्राममे शत्रुको जीतते है इस ससारमे सब देवताओमे श्रेष्ठ और अधिक बलवान् वह कौन देव है ? ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणगण किसका पूजन करते हैं और योगीगण किसका ध्यान धरते है ? भगवन् ! आप सब प्रकारके प्रश्नोका उत्तर जाननेवालोमे श्रेष्ठ है, अत मेरे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये ' ॥ ३२ ॥ भगवान् सनत्कुमारने योगदृष्टिसे रावणके अन्त करणकी सब बात जानकर उससे कहा—''वत्स ! मै तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ, सुनो ॥ ३३ ॥ जो सर्वदा सम्पूर्ण ससारका पोषण करनेवाले है, जिनके जन्म-मृत्यु आदि नही होते, जो देवता और दैत्योसे सदा वन्दित अविनाशी नारायण श्रीहरि कहलाते है ॥ ३४ ॥ सृष्टि-कर्ताओके स्वामी श्रीब्रह्माजी भी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए है तथा जिन्होने यह स्थावर-जङ्गमरूप सारा ससार भी रचा है उन्हीके आश्रयसे देवगण सग्राममे शत्रुओको जीतते है तथा योगिजन भी ध्यानयोगके द्वारा उन्हीका जप करते है'' ॥ ३५-३६ ॥

महर्षि सनत्कुमारके ये वचन सुनकर रावणन फिर पूछा—''हे मुनिश्रेष्ठ ! उन विष्णुभगवान्‌द्वारा मारे हुए दैत्य, दानव और राक्षसगण मरकर किस गतिको प्राप्त होते है ?'' तब मुनिवर सनत्कुमारने राक्षसराज रावणसे कहा— ॥ ३७-३८ ॥ ''अन्य साधारण देवताओके हाथसे मरकर तो वे अति उत्तम स्वर्गलोकको ही जाते हे और अपना भोग क्षीण होनेपर वहाँसे गिरकर फिर भूर्लोकमे उत्पन्न होते है ॥ ३९ ॥ फिर पूर्वजन्मोमे किये हुए अपने पाप-पुण्योके अनुसार जन्मते-मरते रहते है, किन्तु जो भगवान् विष्णुके हाथसे मारे जाते है वे तो विष्णुपद ही प्राप्त कर लेते है'' ॥ ४० ॥

श्रीसनत्कुमारजीके मुखसे ये सब बाते सुनकर रावण मन-ही-मन अति प्रसन्न हुआ और वह सोचने लगा कि म

मन स्थित परिज्ञाय रावणस्य महामुनि ।
उवाच वत्स तेऽभीष्ट भविष्यति न सशय ॥ ४२ ॥

कञ्चित्काल प्रतीक्षस्व सुखी भव दशानन ।
एवमुक्त्वा महाबाहो मुनि पुनरुवाच तम् ॥ ४३ ॥

तस्य स्वरूप वक्ष्यामि ह्यरूपस्यापि मायिन ।
स्थावरेषु च सर्वेषु नदेषु च नदीषु च ॥ ४४ ॥

ओङ्कारश्चैव सत्य च सावित्री पृथिवी च स ।
समस्तजगदाधार शेषरूपधरो हि स ॥ ४५ ॥

सर्वे देवा समुद्राश्च काल सूर्यश्च चन्द्रमा ।
सूर्योदयो दिवारात्री यमश्चैव तथानिल ॥ ४६ ॥

अग्निरिन्द्रस्तथा मृत्यु पर्जन्यो वसवस्तथा ।
ब्रह्मा रुद्रादयश्चैव ये चान्ये देवदानवा ॥ ४७ ॥

विद्योतते ज्वलत्येष पाति चात्तीति विश्वकृत् ।
क्रीडा करोत्यव्ययात्मा सोऽय विष्णु सनातन ॥ ४८ ॥

तेन सर्वमिद व्याप्त त्रैलोक्य सचराचरम् ।
नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृत ॥ ४९ ॥

शुद्धजाम्बूनदप्रख्या श्रिय वामाङ्कसस्थिताम् ।
सदानपायिनीं देवीं पश्यन्नालिङ्ग्य तिष्ठति ॥ ५० ॥

द्रष्टु न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगै ।
यस्य प्रसाद कुरुते स चैन द्रष्टुमर्हति ॥ ५१ ॥

न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभि ।
शक्यते भगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ॥ ५२ ॥

तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषै ।
शक्यते भगवान्विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभि ॥ ५३ ॥

अथवा द्रष्टुमिच्छा ते शृणु त्व परमेश्वरम् ।
त्रेतायुगे स देवेशो भविता नृपविग्रह ॥ ५४ ॥

हितार्थ देवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणा कुले हरि ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा महासत्त्वपराक्रम ॥ ५५ ॥

श्रीहरिके साथ अवश्य युद्ध करूँगा ॥ ४१ ॥ मुनिवरने रावणके चित्तकी बात जानकर कहा—"वत्स ! इसमे सन्देह नही तेरी इच्छा अवश्य सफल होगी ॥ ४२ ॥ हे दशानन ! अभी चैनसे रह, कुछ काल और प्रतीक्षा कर ।"

हे महाबाहो रघुनाथजी ! रावणसे ऐसा कह मुनि उससे फिर बोले— ॥ ४३ ॥ "रावण ! वे रूपरहित है, तथापि मै तुझे उन मायावीके (मायासे धारण किये हुए) रूप बतलाता हूँ। वे नद और नदी आदि समस्त स्थावरोमे व्याप्त है ॥ ४४ ॥ ओकार, सत्य, सावित्री, पृथ्वी तथा सम्पूर्ण जगत्के आधार शेषनाग भी वे ही है ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण देवगण, समुद्र, काल, सूर्य, चन्द्रमा, सूर्योदय, दिन, रात्रि, यम, वायु, अग्नि, इन्द्र, मृत्यु, मेघ, वसुगण, ब्रह्मा और रुद्र आदि तथा और भी जितने देव या दानव है वे सब भी उन्हीके रूप है ॥ ४६-४७ ॥ सम्पूर्ण विश्वको रचनेवाले वे सनातन विष्णुभगवान् निर्विकार होकर भी (अपनी मायाके आश्रयसे) नाना प्रकारकी लीलाएँ करते है। वे (विद्युत् होकर) चमकते है, (अग्नि होकर) प्रज्वलित होते है, (विष्णुरूपसे) रक्षा करते है और (रुद्ररूपसे) सबको भक्षण कर जाते है ॥ ४८ ॥ यह स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण त्रिलोकी एकमात्र उन्हीसे व्याप्त है। वे नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण और बिजलीकी-सी आभावाला पीताम्बर धारण किये हुए हे ॥ ४९ ॥ तथा अपन वाम भागमे बैठी हुई शुद्ध सुवर्णकी-सी कान्तिवाली, कभी नष्ट न होनेवाली भगवती लक्ष्मीजीकी ओर निहारते हुए उन्हे आलिङ्गन किये विराजमान है ॥ ५० ॥ वे किसी भी देव, दानव या नागसे देखे नही जा सकते, जिसपर उनकी प्रसन्नता होती है वही उनका दर्शन कर सकता है ॥ ५१ ॥ यज्ञ, तप, दान, अध्ययन अथवा और किसी भी उपायसे भगवान् नही देखे जा सकते ॥ ५२ ॥ जो उनके भक्त है, जिनके प्राण और मन उन्हीमे लगे रहते है तथा वेदान्त-विचारसे जिनकी दृष्टि मलहीन हो गयी है उन निष्पाप महात्माओको ही भगवान् विष्णुके दर्शन हो सकते है ॥ ५३ ॥ अब यदि तुझे भी (बिना किसी उपायके ही) उन परमेश्वरके दर्शनोकी इच्छा है तो सुन—वे देवाधिदेव श्रीहरि त्रेतायुगमे देव और मनुष्योके कल्याणके लिये, राजवेषसे, इक्ष्वाकुके वशमे दशरथजीके पुत्र महावीर और पराक्रमी भगवान् राम होकर

पितुर्नियोगात्स भ्रात्रा भार्यया दण्डके वने ।
विचरिष्यति धर्मात्मा जगन्मात्रा स्वमायया ॥ ५६ ॥

एव ते सर्वमाख्यात मया रावण विस्तरात् ।
भजस्व भक्तिभावेन सदा राम श्रिया युतम् ॥ ५७ ॥

अगस्त्य उवाच

एव श्रुत्वासुराध्यक्षो ध्यात्वा किञ्चिद्विचार्य च ।
त्वया सह विरोधेप्सुर्मुमुदे रावणो महान् ॥ ५८ ॥

युद्धार्थी सर्वतो लोकान् पर्यटन् समवस्थित ।
एतदर्थं महाराज रावणोऽतीव बुद्धिमान् ।
हृतवान् जानकीं देवीं त्वयात्मवधकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥

इमा कथा य शृणुयात्पठेद्वा
सश्रावयेद्वा श्रवणार्थिना सदा ।
आयुष्यमारोग्यमनन्तसौख्य
प्राप्नोति लाभ धनमक्षय च ॥ ६० ॥

अवतीर्ण होगे ॥ ५४-५५ ॥ वे परम धार्मिक रघुनाथजी पिताकी आज्ञासे अपने भाई (लक्ष्मण) और अपनी स्त्री जगज्जननी मायाके सहित दण्डक वनमे विचरेगे ॥ ५६ ॥ हे रावण ! इस प्रकार यह सारा तत्त्व मैने तुझे विस्तारसे सुना दिया । अब तू लक्ष्मीजीसहित भगवान् रामका सदा भक्तिपूर्वक भजन कर'' ॥ ५७ ॥

अगस्त्यजी बोले—हे राम ! यह सुनकर राक्षसराज रावणने कुछ देर सोच-विचार करनेके अनन्तर आपके साथ विरोध करना निश्चित किया और ऐसा निश्चयकर वह मन-ही-मन बडा प्रसन्न हुआ ॥ ५८ ॥ वह युद्धकी इच्छासे सम्पूर्ण लोकोमे घूमने लगा । हे महाराज ! आपके हाथसे मारे जानेकी इच्छासे ही महाबुद्धिमान् रावणने देवी जानकीजीको चुरा लिया था ॥ ५९ ॥ जो पुरुष इस कथाको सुने या पढेगा अथवा सुननेकी इच्छावालोको सदा सुनावेगा वह दीर्घ-आयु, आरोग्य, अनन्तसुख, इच्छित लाभ और अक्षय धन प्राप्त करेगा ॥ ६० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे तृतीय सर्ग ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

रामराज्यका वर्णन तथा सीता-वनवास

श्रीमहादेव उवाच

एकदा ब्रह्मणो लोकादायान्त नारद मुनिम् ।
पर्यटन् रावणो लोकान्दृष्ट्वा नत्वाब्रवीद्वच ॥ १ ॥

भगवन्ब्रूहि मे योद्धु कुत्र सन्ति महाबला ।
योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्व ज्ञातासि जगत्त्रयम् ॥ २ ॥

मुनिर्ध्यात्वाह सुचिर श्वेतद्वीपनिवासिन ।
महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥ ३ ॥

विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये ।
त एव तत्र सञ्जाता अजेयाश्च सुरासुरै ॥ ४ ॥

श्रुत्वा तद्रावणो वेगान्मन्त्रिभि पुष्पकेण तान् ।
योद्धुकाम समागत्य श्वेतद्वीपसमीपत ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! लोकान्तरोमे घूमते हुए रावणने एक दिन श्रीनारदजीको ब्रह्मलोकसे आते हुए देखकर उनसे नमस्कार करके पूछा— ॥ १ ॥ ''भगवन् ! मै बलवानोके साथ युद्ध करना चाहता हूँ, आप तीनो लोकोसे परिचित है । कृपया बतलाइये मुझसे लडने योग्य महाबली पुरुष कहाँ है ?'' ॥ २ ॥

तब मुनीश्वरने बहुत देरतक सोचकर कहा—''हे महामते ! श्वेतद्वीपके रहनेवाले बडे बलवान् और विशाल शरीरवाले है, तुम वही जाओ ॥ ३ ॥ जो लोग भगवान् विष्णुकी पूजामे तत्पर रहते है अथवा जो स्वय विष्णुभगवान्के ही हाथसे मारे गये है वे ही वहाँ उत्पन्न हुए है । वे देवता या दानव आदि किसीसे भी नही जीते जा सकते'' ॥ ४ ॥

यह सुनकर रावण तुरत ही अपने मन्त्रियोके सहित

तत्प्रभाहततेजस्क पुष्पक नाचलत्तत ।
त्यक्त्वा विमान प्रययौ मन्त्रिणश्च दशानन ॥ ६ ॥

प्रविशन्नेव तद्द्वीप धृतो हस्तेन योषिता ।
पृष्टश्च त्व कुत कोऽसि प्रेषित केन वा वद ॥ ७ ॥

इत्युक्तो लीलया स्त्रीभिर्हसन्तीभि पुन पुन ।
कृच्छ्रश्चद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासा स्त्रीणा दशानन ॥ ८ ॥

आश्चर्यमतुल लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मति ।
विष्णुना निहतो यामि वैकुण्ठमिति निश्चित ॥ ९ ॥

मयि विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्य करोम्यहम् ।
इति निश्चित्य वैदेहीं जहार विपिनेऽसुर ॥ १० ॥

जानन्नेव परात्मान स जहारावनीसुताम् ।
मातृवत्पालयामास त्वत्त काङ्क्षन्वध स्वकम् ॥ ११ ॥

राम त्व परमेश्वरोऽसि सकल
जानासि विज्ञानदृग्
भूत भव्यमिद त्रिकालकलना-
साक्षी विकल्पोज्झित ।
भक्तानामनुवर्तनाय सकला
कुर्वन् क्रियासहतिं
त्व शृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचो
भासीश लोकार्चित ॥ १२ ॥

स्तुत्वैव राघव तेन पूजित कुम्भसम्भव ।
स्वाश्रम मुनिभि सार्ध प्रययौ हृष्टमानस ॥ १३ ॥

रामस्तु सीतया सार्ध भ्रातृभि सह मन्त्रिभि ।
ससारीव रमानाथो रममाणोऽवस द्गृहे ॥ १४ ॥

अनासक्तोऽपि विषयान्बुभुजे प्रियया सह ।
हनुमत्प्रमुखै सद्भिर्वानरै परिवेष्टित ॥ १५ ॥

पुष्पक चागमद्राममेकदा पूर्ववत्प्रभुम् ।
प्राह देव कुबेरेण प्रेषित त्वामह तत ॥ १६ ॥

पुष्पक विमानपर चढकर श्वेतद्वीपके निकट आया ॥ ५ ॥ उस द्वीपकी प्रभासे तेजोहीन हो जानेके कारण पुष् और आगे नही बढ सका। अत विमान और मन्त्रियोको छोडकर रावण स्वय ही चला ॥ ६ ॥ उस द्वीपमे घुसते ही एक स्त्रीने उसका हाथ पकडकर पूछा—"बता, तू कौन है ? कहाँसे आया है ? और यहाँ तुझे किसने भेजा है ?" ॥ ७ ॥ इसी प्रकार वहाँ बहुत-सी स्त्रियोने लीलापूर्वक हँसते-हँसते उससे वही बात कही और रावणको उन स्त्रियोके हाथसे बडी कठिनतासे छुटकारा मिला ॥ ८ ॥ यह देखकर उसे असीम आश्चर्य हुआ और वह दुर्बुद्धि सोचने लगा, 'मै विष्णुभगवान्के हाथसे मरकर नि सन्देह वैकुण्ठको जाऊँगा ॥ ९ ॥ अत मुझे ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे भगवान् विष्णु मुझपर कुपित हो, ऐसा सोचकर ही उस असुरने वनमे श्रीजानकीजीको हर लिया था ॥ १० ॥ हे राम ! आपके हाथसे अपना वध करानेकी इच्छासे ही रावणने आपको परमात्मा जानते हुए भी श्रीसीताजीको चुरा लिया और उनका माताके समान पालन किया ॥ ११ ॥ हे राम ! आप परमेश्वर है, आप त्रिकालदर्शी एव विकल्पसे रहित होकर अपनी ज्ञानदृष्टिसे भूत, भविष्य और वर्तमान—ये सब कुछ जानते है, हे स्वामिन् ! आप अपने भक्तोको मार्ग दिखानेके लिये ही सारी लीलाएँ रचते है तथा आप सम्पूर्ण लोकोसे पूजित होकर भी मनुष्यरूपसे हम-जैसे मुनियोके वचन सुनते हुए दिखलायी दे रहे है ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीरघुनाथजीकी स्तुति कर और उनसे सत्कार पा श्रीअगस्त्यजी अन्य मुनीश्वरोके साथ प्रसन्न-चित्तसे अपने आश्रमको चले गये ॥ १३ ॥

लक्ष्मीपति भगवान् राम सीताजी, भाइयो तथा मन्त्रियोके सहित ससारी पुरुषोके समान रमण (आचरण) करते हुए घरमे रहने लगे ॥ १४ ॥ उन्होने असग होते हुए भी अपनी प्रियाके साथ नाना प्रकारके भोगोको भोगा। वे सदा ही हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानरोसे घिरे रहते थे ॥ १५ ॥ एक बार पहलेहीके समान भगवान् रामके पास पुष्पक विमान आया और बोला—"भगवन् ! मुझे कुबेरजीने अपने यहाँसे फिर आपहीकी सेवामे भेजा है ॥ १६ ॥

जित त्व रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निर्जितम्।
अतस्त्व राघव नित्य वह यावद्वसेद्भुवि ॥ १७ ॥

यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठ याहि मा तदा।
तच्छ्रुत्वा राघव प्राह पुष्पक सूर्यसन्निभम्॥ १८ ॥

यदा स्मरामि भद्र ते तदागच्छ ममान्तिकम्।
तिष्ठान्तर्धाय सर्वत्र गच्छेदानीं ममाज्ञया ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा रामचन्द्रोऽपि पौरकार्याणि सर्वश ।
भ्रातृभिर्मन्त्रिभि सार्ध यथान्याय चकार स ॥ २० ॥

(वे कहते है कि) पहले तुझे रावणने जीता था और फिर उससे श्रीरामचन्द्रजीने जीता है। अत जबतक वे पृथिवीतलपर रहे तबतक तू उन्हीको धारण कर ॥ १७ ॥ जिस समय रघुनाथजी वैकुण्ठको चले जायँ उस समय तू मेरे पास आ जाना ?" यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने सूर्यके समान देदीप्यमान पुष्पकसे कहा— ॥ १८ ॥ "तेरा कल्याण हो, जिस समय मैं तेरा स्मरण करूँ उसी समय तू मेरे पास आ जाना, अब तू जा और मेरी आज्ञासे गुप्तरूपसे सर्वत्र रह" ॥ १९ ॥ पुष्पकको इस प्रकार आज्ञा दे श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयो और मन्त्रियोके साथ मिलकर पुरवासियोके सम्पूर्ण कार्य यथायोग्य रीतिसे करने लगे ॥ २० ॥

राघवे शासति भुव लोकनाथे रमापतौ।
वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहा ॥ २१ ॥

जना धर्मपरा सर्वे पतिभक्तिपरा स्त्रिय ।
नापश्यत्पुत्रमरण कश्चिद्राजनि राघवे ॥ २२ ॥

समारुह्य विमानाग्र्य राघव सीतया सह।
वानरैर्भ्रातृभि सार्ध सञ्चचारावनिं प्रभु ॥ २३ ॥

अमानुषाणि कार्याणि चकार बहुशो भुवि।
ब्राह्मणस्य सुत दृष्ट्वा बाल मृतमकालत ॥ २४ ॥

शोचन्त ब्राह्मण चापि ज्ञात्वा रामो महामति ।
तपस्यन्त वने शूद्र हत्वा ब्राह्मणबालकम्॥ २५ ॥

जीवयामास शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्।
लोकानामुपदेशार्थ परमात्मा रघूत्तम ॥ २६ ॥

कोटिश स्थापयामास शिवलिङ्गानि सर्वश ।
सीता च रमयामास सर्वभोगैरमानुषै ॥ २७ ॥

शशास रामो धर्मेण राज्य परमधर्मवित्।
कथा सस्थापयामास सर्वलोकमलापहाम्॥ २८ ॥

देशवर्षसहस्राणि मायामानुषविग्रह ।
चकार राज्य विधिवल्लोकवन्द्यपदाम्बुज ॥ २९ ॥

त्रिलोकीनाथ लक्ष्मीपति भगवान् रामके शासन-कालमे पृथिवी धनधान्यसे पूर्ण और वृक्ष फलादिसे सम्पन्न थे ॥ २१ ॥ श्रीरघुनाथजीके राज्यमे समस्त पुरुष धर्मपरायण थे, स्त्रियाँ पति-सेवामे तत्पर रहती थी और किसीको भी अपने पुत्रका मरण नही देखना पडता था ॥ २२ ॥ भगवान् राम सीताजी, भाइयो और वानरोके साथ विमानपर चढकर पृथिवीपर घूमा करते थे ॥ २३ ॥ उन्होने ससारमे बहुत-सी अमानवीय लीलाएँ की। एक बार एक ब्राह्मण-पुत्रको बाल्यावस्थाम ही असमय मरा देख और उस ब्राह्मणको बहुत शोक करते जान रघुश्रेष्ठ परमात्मा महामति रामने वनमे तपस्या करते हुए शूद्रको (उसका कारण मानकर) मारा और उस बालकको जीवित किया तथा शूद्रको अत्युत्तम स्वर्गलोक दिया। उन्होने लोगोको उपदेश देनेके लिये जगह-जगह करोडो शिवलिङ्ग स्थापित किये और सीताजीका सब प्रकारक अलौकिक भोगोसे अनुरञ्जन किया ॥ २४—२७ ॥ इस प्रकार परमधार्मिक भगवान् राम धर्मपूर्वक राज्यशासन करते रहे और उन्होने सम्पूर्ण लोकोके पाप दूर करनेवाली अपनी पवित्र कीर्ति-कथा ससारमे स्थापित की ॥ २८ ॥ तीनो लोक जिनके चरणकमलोकी वन्दना करते है उन माया-मानव-शरीरधारी श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक दस हजार वर्ष राज्य किया ॥ २९ ॥

एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षि सर्वदा शुचि ।
गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान्॥ ३० ॥

राजर्षि भगवान् राम एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले थे। वे पवित्र-चरित्र रामजी लोगोको शिक्षा देते हुए

सीता प्रेम्णानुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च।
भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया ॥ ३१ ॥

एकदाक्रीडविपिने सर्वभोगसमन्विते।
एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम् ॥ ३२ ॥

नीलमाणिक्यसंकाशं दिव्याभरणभूषितम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥ ३३ ॥

सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता।
राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे ॥ ३४ ॥

देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन।
चिदानन्दादिमध्यान्तरहिताशेषकारण ॥ ३५ ॥

देव देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन्वचः।
बहुशोऽर्थयमानास्ते वैकुण्ठागमनं प्रति ॥ ३६ ॥

त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले।
विसृज्यास्मींस्त्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम् ॥ ३७ ॥

आस्ते त्वया जगद्धात्रि रामः कमललोचनः।
अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद्रघूत्तमः ॥ ३८ ॥

आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथान्नः करिष्यति।
इति विज्ञापिताहं तैर्मया विज्ञापितो भवान् ॥ ३९ ॥

यद्युक्तं तत्कुरुष्वाद्य नाहमाज्ञापये प्रभो।
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाब्रवीत्क्षणम् ॥ ४० ॥

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते।
कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम् ॥ ४१ ॥

त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः।
भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥ ४२ ॥

इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम्।
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात् ॥ ४३ ॥

भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम्।
पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः ॥ ४४ ॥

गृहस्थाश्रमके समस्त धर्मोंका पालन करते रहे ॥ ३० ॥ साध्वी सीताजी भी उनके हृदयका रुख परखनेवाली थीं। उन्होंने अपने प्रेम, आज्ञापालन, नम्रता, इन्द्रियसंयम, लज्जा और भीरुता आदि गुणोंसे पतिका मन हर लिया था ॥ ३१ ॥ एक दिन श्रीरघुनाथजी अपने क्रीडावनके सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न भवनमें एकान्तमें सुखपूर्वक बैठे थे। उनके शरीरकी आभा नीलमणिके समान थी, वे दिव्य भूषणोंसे भूषित थे, उनका मुख प्रसन्न और भाव गम्भीर था तथा वे विद्युत्पुञ्जके समान देदीप्यमान पीताम्बर धारण किये थे। उस समय सर्वालङ्कारसुसज्जिता कमलदल-लोचना श्रीसीताजीने अपने करकमलोंसे रघुनाथजीकी चरणसेवा करते हुए उनसे कहा— ॥ ३२—३४ ॥ "हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे सनातन परमात्मन्! हे चिदानन्दस्वरूप! हे आदि, मध्य और अन्तसे रहित सबके कारण! हे देव! देवताओंने आकर मुझसे एकान्तमें बहुत कुछ प्रार्थना करते हुए आपके वैकुण्ठ पधारनेके विषयमें कहा है ॥ ३५-३६ ॥ वे कहते हैं कि 'तुझ चिच्छक्तिसे युक्त होकर ही राम हम सबको और अपने सनातन स्थान वैकुण्ठको छोड़कर पृथिवीतलमें ठहरे हुए हैं ॥ ३७ ॥ हे जगद्धात्रि! कमलनयन राम सदा तेरे साथ ही रहते हैं। यदि तू पहले वैकुण्ठको चली जाय तो श्रीरघुनाथजी भी वहाँ आकर हमें सनाथ कर देंगे।' मुझसे उन्होंने इस प्रकार कहा है सो मैंने आपको सुना दिया ॥ ३८-३९ ॥ हे प्रभो! मेरा कोई आदेश तो है नहीं, अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें।"

सीताजीके ये वचन सुनकर रघुनाथजीने कुछ देर सोचकर कहा ॥ ४० ॥ "देवि! मैं यह सब जानता हूँ। उसके लिये मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। मैं तुमसे सम्बन्ध रखनेवाले लोकापवादके मिषसे तुम्हें लोकनिन्दासे डरनेवाले अन्य पुरुषोंके समान वनमें त्याग दूँगा। वहाँ श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमके पास तुम्हारे दो बालक होंगे ॥ ४१-४२ ॥ इस समय तुम्हारे शरीरमें गर्भावस्थाके चिह्न दिखायी दे रहे हैं। (बालकोंके उत्पन्न होनेपर) तुम मेरे पास फिर आओगी और लोकोंकी प्रतीतिके लिये आदर-पूर्वक शपथ करके तुरत ही पृथिवीके (फटनेपर उसके) छिद्रद्वारा वैकुण्ठको चली जाओगी। पीछे मैं भी वहाँ आ जाऊँगा, बस अब यही निश्चय रहा" ॥ ४३-४४ ॥

इत्युक्त्वा ता विसृज्याथ रामो ज्ञानैकलक्षण ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्च सवृत ॥ ४५ ॥

तत्रोपविष्ट श्रीराम सुहृद पर्युपासत ।
हास्यप्रौढकथासुज्ञा हासयन्त स्थिता हरिम् ॥ ४६ ॥

कथाप्रसङ्गात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम् ।
पौरा जानपदा मे किं वदन्तीह शुभाशुभम् ॥ ४७ ॥

सीता वा मातर वा मे भ्रातृन्वा कैकयीमथ ।
न भेतव्य त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि ॥ ४८ ॥

इत्युक्त प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते ।
कृत सुदुष्कर सर्व रामेण विदितात्मना ॥ ४९ ॥

किन्तु हत्वा दशग्रीव सीतामाहृत्य राघव ।
अमर्ष पृष्ठत कृत्वा स्व वेश्म प्रत्यपादयत् ॥ ५० ॥

कीदृश हृदये तस्य सीतासम्भोगज सुखम् ।
या हृता विजनेऽरण्ये रावणेन दुरात्मना ॥ ५१ ॥

अस्माकमपि दुष्कर्म योषिता मर्षण भवेत् ।
यादृग्भवति वै राजा तादृश्यो नियत प्रजा ॥ ५२ ॥

श्रुत्वा तद्वचन राम स्वजनान्पर्यपृच्छत ।
तेऽपि नत्वाब्रुवन् राममेवमेतन्न सशय ॥ ५३ ॥

ततो विसृज्य सचिवान्विजय सुहृदस्तथा ।
आहूय लक्ष्मण रामो वचन चेदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् ।
सीता प्रात समानीय वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥ ५५ ॥

त्यक्त्वा शीघ्र रथेन त्व पुनरायाहि लक्ष्मण ।
वक्ष्यसे यदि वा किञ्चित्तदा मा हतवानसि ॥ ५६ ॥

इत्युक्तो लक्ष्मणो भीत्या प्रातरुत्थाय जानकीम् ।
सुमन्त्रेण रथे कृत्वा जगाम सहसा वनम् ॥ ५७ ॥

एकमात्र ज्ञानस्वरूप भगवान् रामने सीताजीसे ऐसा कह उन्हे अन्त पुरको भेज दिया और स्वय नीतिशास्त्रके जाननेवाले मन्त्रियो तथा मुख्य-मुख्य सेनापतियोसे घिरकर वहाँ विराजमान हुए। सुहृद्‌गण वहाँ बैठे हुए रामकी परिचर्यामे लगे हुए थे और हास्योक्तिमे कुशल विदूषकगण उन्हे हँसा रहे थे ॥ ४५-४६ ॥

तब भगवान् रामने प्रसगवश विजय नामक एक दूतसे पूछा—"मेरे, सीताके, मेरी माता और भाइयोके अथवा कैकेयीके विषयमे पुरवासी लोग क्या कहते है ? मै तुम्हे अपनी शपथ कराता हूँ, तुम भय न करके सच-सच कहना" ॥ ४७-४८ ॥

भगवान्‌के इस प्रकार पूछनेपर विजयने कहा—"देव ! सभी लोग कहते है कि आत्मज्ञानी महाराज रामने जो कार्य किये है वे सभी बडे दुष्कर है ॥ ४९ ॥ किन्तु उन्होने रावणको मारकर सीताको बिना किसी प्रकारका सन्देह किये ही अपने साथ लाकर घर रख लिया (यह ठीक नही किया) ॥ ५० ॥ भला, जिस सीताको दुरात्मा रावणने निर्जन वनमे हर लिया था न जाने उसके साथ भोग भोगते हुए उन्हे क्या सुख मिलता है ? ॥ ५१ ॥ अब हमे भी अपनी स्त्रियोके दुश्चरित्रको सहन करना पडेगा, क्योकि जैसा राजा होता है प्रजा भी निस्सन्देह वैसी ही होती है" ॥ ५२ ॥

उसके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने आत्मीयोसे पूछा। उन्होने भी रघुनाथजीको प्रणाम करके यही कहा कि नि सन्देह ऐसी ही बात है ॥ ५३ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने मन्त्रीगण, विजय और अपने सुहृदोको विदाकर श्रीलक्ष्मणजीको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहने लगे—"भैया लक्ष्मण ! सीताके कारण मेरी बडी लोकनिन्दा हो रही है। अत तुम कल सबेरे ही सीताको रथपर चढाकर वाल्मीकि मुनिके आश्रमके समीप छोड आओ। इस विषयमे यदि तुम कुछ कहोगे तो मानो मेरी हत्या ही करोगे" ॥ ५४—५६ ॥

भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी डर गये। उन्होने सबेरे उठते ही सुमन्त्रसे रथ जुडवाया और उसमे

वाल्मीकेराश्रमस्यान्ते त्यक्त्वा सीतामुवाच स ।
लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥ ५८ ॥

दोषो न कश्चिन्मे मातर्गच्छाश्रमपद मुने ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मण शीघ्र गतवान् रामसन्निधिम् ॥ ५९ ॥

सीतापि दु खसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत् ।
शिष्यै श्रुत्वा च वाल्मीकि सीता ज्ञात्वा स दिव्यदृक् ॥ ६० ॥

अर्घ्यादिभि पूजयित्वा समाश्वास्य च जानकीम् ।
ज्ञात्वा भविष्य सकलामर्पयन्मुनियोषिताम् ॥ ६१ ॥

तास्ता सम्पूजयन्ति स्म सीता भक्त्या दिने दिने ।
ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन योषित ।
सेवा चक्रु सदा तस्या विनयादिभिरादरात् ॥ ६२ ॥

रामोऽपि सीतारहित परात्मा
विज्ञानदृक्केवल आदिदेव ।
सन्त्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो
मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रि ॥ ६३ ॥

जानकीजीको चढाकर तुरत वनको चल दिये ॥ ५७ ॥ वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर पहुँचते ही उन्होने सीताको उतार दिया और उनसे कहा—"रघुनाथजीने लोकापवादसे डरकर तुम्हे त्याग दिया है ॥ ५८ ॥ हे मात । इसमे मेरा कोई दोष नही है, अब तुम मुनीश्वरके आश्रमपर चली जाओ।" सीताजीसे इस प्रकार कह लक्ष्मणजी तुरत श्रीरामचन्द्रजीके पास चले आये ॥ ५९ ॥

उस समय सीताजी अत्यन्त दु खातुरा होकर अति मूर्खा स्त्रियोके समान विलाप करने लगी। महर्षि वाल्मीकिने जब शिष्योके मुखसे यह बात सुनी (कि एक स्त्री रो रही है) तो उन्होने दिव्यदृष्टिसे जान लिया कि वह सीताजी ही है ॥ ६० ॥ मुनि भविष्यमे होनेवाली सब बाते जानते थे। अत उन्होने अर्घ्यादिसे सीताजीका पूजन किया और उन्हे समझा-बुझाकर मुनिपत्नियोको सौप दिया ॥ ६१ ॥ वे मुनिपत्नियाँ मुनीश्वरके कहनेसे उन्हे साक्षात् परमात्माकी भार्या लक्ष्मीजी जानकर नित्यप्रति भक्ति-भावसे उनकी पूजा करतीं और सदा ही अत्यन्त आदरसे नम्रतापूर्वक उनकी सेवा करती थी ॥ ६२ ॥ इधर, सीताजीको त्याग देनेपर जिनके चरणकमलोका मुनिजन सेवन करते हैं वे विज्ञानचक्षु, अद्वितीय, आदिदेव परमात्मा राम भी समस्त भोगोको छोडकर वैराग्यपूर्वक मुनियोके समान रहने लगे ॥ ६३ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे चतुर्थ सर्ग ॥ ४ ॥

★

पञ्चम सर्ग

रामगीता

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना
विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरित रघूत्तमो
राजर्षिवर्यैरभिसेवित यथा ॥ १ ॥
सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
राम कथा प्राह पुरातनी शुभा ।
राज्ञ प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो
द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघव ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति । तदनन्तर, रघुश्रेष्ठ भगवान् राम, ससारके मङ्गलके लिये धारण किये अपने दिव्यमङ्गल देहसे रामायणरूप अति उत्तमकीर्तिकी स्थापना कर पूर्वकालमे जैसा आचरण राजर्षिश्रेष्ठोने किया है वैसा ही स्वय भी करने लगे ॥ १ ॥ उदारबुद्धि लक्ष्मणजीके पूछनेपर वे प्राचीन उत्तम कथाएँ सुनाया करते थे। इसी प्रसङ्गमे श्रीरघुनाथजीने, राजा नृगको प्रमादवश ब्राह्मणके शापसे तिर्यग्योनि प्राप्त करनेका वृत्तान्त भी सुनाया ॥ २ ॥

कदाचिदेकान्त उपस्थित प्रभु
राम रमालालितपादपङ्कजम्।
सौमित्रिरासादितशुद्धभावन
प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत्॥ ३॥

त्व शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशोऽसि निराकृति स्वयम्।
प्रतीयसे ज्ञानदृशा महामते
पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम्॥ ४॥

अह प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुज प्रभो
भवापवर्ग तव योगिभावितम्।
यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधि
सुख तरिष्यामि तथानुशाधि माम्॥ ५॥

श्रुत्वाथ सौमित्रिवचोऽखिल तदा
प्राह प्रपन्नार्तिहर प्रसन्नधी।
विज्ञानमज्ञानतम प्रशान्तये
श्रुतिप्रपन्न क्षितिपालभूषण॥ ६॥

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्जिता क्रिया
कृत्वा समासादितशुद्धमानस।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधन
समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये॥ ७॥

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाप्रियौ तौ भवत सुरागिण।
धर्मेतरौ तत्र पुन शरीरक
पुन क्रिया चक्रवदीर्यते भव॥ ८॥

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारण
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म तज्ज सविरोधमीरितम्॥ ९॥

नाज्ञानहानिर्न च रागसक्षयो
भवेत्तत कर्म सदोषमुद्भवेत्।
तत पुन ससृतिरप्यवारिता
तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत्॥ १०॥

किसी दिन भगवान् राम, जिनके चरणकमलोकी सेवा साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी करती है, एकान्तमे बैठे हुए थे। उस समय शुद्ध विचारवाले लक्ष्मणजीने (उनके पास जा) उन्हे भक्तिपूर्वक प्रणाम कर अति विनीतभावसे कहा— ॥ ३॥ "हे महामते! आप शुद्धज्ञानस्वरूप, समस्त देहधारियोके आत्मा, सबके स्वामी और स्वरूपसे निराकार है। जो आपके चरणकमलोके लिये भ्रमररूप हैं उन परमभागवतोके सहवासके रसिकोको ही आप ज्ञानदृष्टिसे दिखलायी देते है॥ ४॥ हे प्रभो! योगिजन जिनका निरन्तर चिन्तन करते है, ससारसे छुडानेवाले उन आपके चरणकमलोकी मै शरण हूँ, आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मै सुगमतासे ही अज्ञानरूपी अपार समुद्रके पार हो जाऊँ'' ॥ ५॥

श्रीलक्ष्मणजीके ये सब वचन सुनकर शरणागत-वत्सल भूपालशिरोमणि भगवान् राम सुननेके लिये उत्सुक हुए लक्ष्मणको उनके अज्ञानान्धकारका नाश करनेके लिये प्रसन्नचित्तसे ज्ञानोपदेश करने लगे॥ ६॥ (वे बोले—) सबसे पहले अपने-अपने वर्ण और आश्रमके लिये (शास्त्रोमे) बतलायी हुई क्रियाओका यथावत् पालन कर, चित्त शुद्ध हो जानेपर उन कर्मोको छोड दे और शम-दमादि साधनोसे सम्पन्न हो आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये सद्गुरुकी शरणमे जाय॥ ७॥ कर्म देहान्तरकी प्राप्तिके लिये ही स्वीकार किये गये हैं, क्योकि उनमे प्रेम रखनेवाले पुरुषोसे इष्ट-अनिष्ट दोनो ही प्रकारकी क्रियाएँ होती है। उनसे धर्म और अधर्म दोनोहीकी प्राप्ति होती है और उनके कारण शरीर प्राप्त होता है जिससे फिर कर्म होते है। इसी प्रकार यह ससार चक्रके समान चलता रहता है॥ ८॥ ससारका मूल कारण अज्ञान ही है और इन (शास्त्रीय) विधिवाक्योमे उस (अज्ञान) का नाश ही (ससारसे मुक्त होनेका) उपाय बतलाया गया है? अज्ञानका नाश करनेमे ज्ञान ही समर्थ है, (सकाम) कर्म नही, क्योकि उस (अज्ञान) से उत्पन्न होनेवाला कर्म उसका विरोधी नही हो सकता॥ ९॥ सकाम कर्मद्वारा अज्ञानका नाश अथवा रागका क्षय नही हो सकता बल्कि उससे दूसरे सदोष कर्मकी उत्पत्ति होती है उससे पुन ससारकी प्राप्ति होना अनिवार्य है। इसलिये बुद्धिमान्को ज्ञान-विचारमे ही तत्पर होना चाहिये॥ १०॥

ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता
तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ।
कर्तव्यता प्राणभृत प्रचोदिता
विद्यासहायत्वमुपैति सा पुन ॥ ११ ॥

कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात्सदा कार्यमिद मुमुक्षुणा ।
ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी
विद्या न किञ्चिन्मनसाप्यपेक्षते ॥ १२ ॥

न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वर
प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधित प्रकाशितै-
र्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥ १३ ॥

केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन-
स्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ।
देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया
विद्या गताहङ्कृतित प्रसिद्ध्यति ॥ १४ ॥

विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता
विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।
उदेति कर्माखिलकारकादिभि-
र्निहन्ति विद्याखिलकारकादिकम् ॥ १५ ॥

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषत सुधी-
र्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ।
आत्मानुसन्धानपरायण सदा
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचर ॥ १६ ॥

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-
स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ।
नेतीति वाक्यैरखिल निषिध्य त-
ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रिया ॥ १७ ॥

यदा परात्मात्मविभेदभेदक
विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम् ।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा
सकारका कारणमात्मससृते ॥ १८ ॥

कुछ वितर्कवादी ऐसा कहते है कि जिस प्रकार वेदके कथनानुसार ज्ञान पुरुषार्थका साधक है वैसे ही कर्म वेदविहित है, और प्राणियोके लिये कर्मोकी अवश्य-कर्त्तव्यताका विधान भी है, इसलिये वे कर्म ज्ञानके सहकारी हो जाते है। साथ ही श्रुतिने कर्म न करनेमे दोष भी बतलाया है, इसलिये मुमुक्षुको उन्हे सर्वदा करते रहना चाहिये, और यदि कोई कहे कि ज्ञान स्वतन्त्र है एव निश्चय ही अपना फल देनेवाला है, उसे मनसे भी किसी औरकी सहायताकी आवश्यकता नही है, तो उसका यह कहना ठीक नही, क्योकि जिस प्रकार (वेदोक्त) यज्ञ सत्य कर्म होनेपर भी अन्य कारकादिकी अपेक्षा करता ही है, उसी प्रकार विधिसे प्रकाशित कर्मोके द्वारा ही ज्ञान मुक्तिका साधक हो सकता है (अत कर्मोका त्याग उचित नही है) ॥ ११—१३ ॥

(सिद्धान्ती-) ऐसा जो कोई कुतर्की कहते है उनके कथनमे प्रत्यक्ष विरोध होनेके कारण वह ठीक नही है, क्योकि कर्म देहाभिमानसे होता है और ज्ञान अहकारके नाश होनेपर सिद्ध होता है ॥ १४ ॥ (वेदान्तवाक्योका विचार करते-करते) विशुद्ध विज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित जो चरम आत्मवृत्ति होती है उसीको विद्या (आत्मज्ञान) कहते है। इसके अतिरिक्त कर्म सम्पूर्ण कारकादिकी सहायतासे होता है किन्तु विद्या समस्त कारकादिका (अनित्यत्वकी भावनाद्वारा) नाश कर देती है ॥ १५ ॥ इसलिये समस्त इन्द्रियोके विषयोसे निवृत्त होकर निरन्तर आत्मानुसन्धानमे लगा हुआ बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण कर्मोका सर्वथा त्याग कर दे। क्योकि विद्याका विरोधी होनेके कारण कर्मका उसके साथ समुच्चय नही हो सकता ॥ १६ ॥ जबतक मायासे मोहित रहनेके कारण मनुष्यका शरीरादिमे आत्मभाव है तभीतक उसे वैदिक कर्मानुष्ठान कर्तव्य है। 'नेति-नेति' आदि वाक्योसे सम्पूर्ण अनात्म-वस्तुओका निषेध करके अपने परमात्मस्वरूपको जान लेनेपर फिर उसे समस्त कर्मोंको छोड देना चाहिये ॥ १७ ॥ जिस समय परमात्मा और जीवात्माके भेदको दूर करनेवाला प्रकाशमय विज्ञान अन्त करणमे स्पष्टतया भासित होने लगता है उसी समय आत्माके लिये ससार-प्राप्तिकी कारण माया अनायास ही कारकादिके सहित लीन हो जाती है ॥ १८ ॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा
कथ भविष्यत्यपि कार्यकारिणी।
विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयत-
स्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥ १९ ॥

यदि स्म नष्टा न पुन प्रसूयते
कर्ताहमस्येति मति कथ भवेत्।
तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते
विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ॥ २० ॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादर
न्यास प्रशस्ताखिलकर्मणा स्फुटम्।
एतावदित्याह च वाजिना श्रुति-
र्ज्ञान विमोक्षाय न कर्म साधनम् ॥ २१ ॥

विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया
क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृत सम ।
फलै पृथक्त्वाद्बहुकारकै क्रतु
ससाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥ २२ ॥

सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी-
रज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्वदर्शिन ।
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभि-
र्विधानत कर्म विधिप्रकाशितम् ॥ २३ ॥

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो
गुरो प्रसादादपि शुद्धमानस ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयो
सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पन ॥ २४ ॥

आदौ पदार्थावगतिर्हि कारण
वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानत ।
तत्त्वम्पदार्थौ परमात्मजीवका-
वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥ २५ ॥

श्रुति प्रमाणसे उसके नष्ट कर दिये जानेपर फिर वह अपना कार्य करनेमे समर्थ भी किस प्रकार हो सकेगी ? क्योकि परमार्थतत्त्व एकमात्र ज्ञानस्वरूप, निर्मल और अद्वितीय है। अत (बोध हो जानेपर) फिर अविद्या उत्पन्न नही होगी ॥ १९ ॥ जब एक बार नष्ट हो जानेपर अविद्याका फिर जन्म ही नही होता तो बोधवान्को 'मैं इस कर्मका कर्ता हूँ' ऐसी बुद्धि कैसे हो सकती है ? इसलिये ज्ञान स्वतन्त्र है, उसे जीवके मोक्षके लिये किसी और (कर्मादि) की अपेक्षा नही है, वह स्वय अकेला ही उसके लिये समर्थ है ॥ २० ॥ इसके सिवा तैत्तिरीय शाखाकी प्रसिद्ध श्रुति* भी आग्रहपूर्वक स्पष्ट कहती है कि समस्त कर्मोका त्याग करना ही अच्छा है तथा 'एतावत्' इत्यादि वाजसनेयी शाखाकी श्रुति† भी कहती है कि मोक्षका साधन ज्ञान ही है कर्म नही ॥ २१ ॥ और तुमने जो ज्ञानकी समानतामे यज्ञादिका दृष्टान्त दिया सो ठीक नही है। क्योकि उन दोनोके फल अलग-अलग है। इसके अतिरिक्त यज्ञ तो (होता, ऋत्विक्, यजमान आदि) बहुत-से कारकोसे सिद्ध होता है और ज्ञान इससे विपरीत है (अर्थात् वह कारकादिसे साध्य नही है) ॥ २२ ॥ (कर्मके त्याग करनेसे) मै अवश्य प्रायश्चित्त-भागी होऊँगा—ऐसी अनात्म-बुद्धि अज्ञानियोको हुआ करती है, तत्त्वज्ञानीको नही। इसलिये विकाररहित चित्तवाले बोधवान् पुरुषको विहित कर्मोका भी विधिपूर्वक त्याग कर देना चाहिये ॥ २३ ॥

फिर शुद्ध-चित्त होकर श्रद्धापूर्वक गुरुकी कृपासे 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यके द्वारा परमात्मा और जीवात्माकी एकता जानकर सुमेरुके समान निश्चल एव सुखी हो जाय ॥ २४ ॥ यह नियम ही है कि प्रत्येक वाक्यका अर्थ जाननेमे पहले उसके पदोके अर्थका ज्ञान ही कारण है। (इस 'तत्त्वमसि' महावाक्यके) 'तत्' और 'त्वम्' पद क्रमसे परमात्मा और जीवात्माके वाचक है और 'असि' उन दोनोकी एकता करता है ॥ २५ ॥ इन दोनो

* न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु (तै० आ० १० । १०)
† 'एतावदर खल्वमतत्वम् (बृ० उ० ४ । ५ । १५)

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनो-
विहाय सङ्गृह्य तयोश्चिदात्मताम्।
सशोधिता लक्षणया च लक्षिता
ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत्॥ २६॥

(जीवात्मा और परमात्मा) मे जीवात्मा प्रत्यक् (अन्त करणका साक्षी) है और परमात्मा परोक्ष (इन्द्रियातीत) है, इस (वाच्यार्थरूप) विरोधको छोडकर और लक्षणावृत्तिसे लक्षित उनकी शुद्ध चेतनताको ग्रहणकर उसे ही अपना आत्मा जाने और इस प्रकार एकीभावसे स्थित हो॥ २६॥

एकात्मकत्वाजहती न सम्भवे-
त्तथाजहल्लक्षणता विरोधत ।
सोऽयम्पदार्थाविव भागलक्षणा
युज्येत तत्त्वम्पदयोरदोषत ॥ २७॥

इन 'तत्' और 'त्वम्' पदोमे एकरूप होनेके कारण जहतीलक्षणा नही हो सकती और परस्पर विरुद्ध होनेके कारण अजहल्लक्षणा भी नही हो सकती। इसलिये 'सोऽयम्' (यह वही है) इन दोनो पदोके अर्थकी भाँति इन 'तत्' और 'त्वम्' पदोमे भी भागत्यागलक्षणा ही निर्दोषतासे हो सकती है* ॥ २७॥

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भव
भोगालय दु खसुखादिकर्मणाम्।
शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मज
मायामय स्थूलमुपाधिमात्मन ॥ २८॥

सूक्ष्म मनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युत
प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।
भोक्तु सुखादेरनुसाधन भवे-
च्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधा ॥ २९॥

पृथिवी आदि पञ्चीकृत भूतोसे उत्पन्न हुए, सुख-दु खादि कर्म-भोगोके आश्रय और पूर्वोपार्जित कर्मफलसे प्राप्त होनेवाले इस मायामय आदि-अन्तवान् शरीरको विज्ञजन आत्माकी स्थूल उपाधि मानते है और मन, बुद्धि, दस इन्द्रियाँ तथा पाँच प्राण (इन सत्रह अङ्गो) से युक्त और अपञ्चीकृत भूतोसे उत्पन्न हुए सूक्ष्म शरीरको जो भोक्ताके सुख-दु खादि अनुभवका साधन है, आत्माका दूसरा देह मानते है॥ २८-२९॥

अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारण
मायाप्रधान तु पर शरीरकम्।
उपाधिभेदात्तु यत पृथक् स्थित
स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥ ३०॥

(इनके अतिरिक्त) अनादि और अनिर्वाच्य मायामय कारण-शरीर ही जीवका तीसरा देह है। इस प्रकार उपाधि-भेदसे सर्वथा पृथक् स्थित अपने आत्मस्वरूपको क्रमश (उपाधियोका बाध करते हुए) अपने हृदयमे निश्चय करे॥ ३०॥

* जहाँ शब्दोके वाच्यार्थ (अर्थात् उनकी शक्तिवृत्तिसे सिद्ध होनेवाले अर्थ) को छोडकर दूसरा अर्थ लिया जाता है वहाँ लक्षणा वृत्ति होती है। वह जहती अजहती और जहत्यजहती नामसे तीन प्रकारकी है। जहती-लक्षणामे शब्दके वाच्यार्थका सर्वथा त्याग करके उसका बिलकुल नया ही अर्थ किया जाता है। जैसे गङ्गाया घोष (गङ्गाजीपर पशुशाला है) इस वाक्यके वाच्यार्थसे गङ्गाजीके प्रवाहपर पशुशालाका होना सिद्ध होता है। परन्तु यह सर्वथा असम्भव है। इसलिये यहाँ गङ्गा शब्दका अर्थ गङ्गाप्रवाह न करके 'गङ्गा-तीर किया जाता है। परन्तु तत् ओर त्वम् पदके वाच्यार्थ 'ईश्वर' और 'जीव' का सर्वथा त्याग कर देनेसे उन दोनोकी चेतनताका भी त्याग हो जाता है और चेतनताकी एकता ही अभीष्ट है, इसलिये जहतीलक्षणामे इन पदोके अर्थकी एकता नही हो सकती। अजहतीलक्षणामे वाच्यार्थका त्याग न करके उसके साथ अन्य अर्थ भी ग्रहण किया जाता है। जेसे काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् (कौओसे दहीकी रक्षा करो) इस वाक्यका अभिप्राय केवल कौओसे दहीकी रक्षा कराना ही नही है बल्कि उसके साथ कुत्ता, बिल्ली आदि अन्य जीवोसे सुरक्षित रखना भी है। यहाँ 'तत्' और त्वम्' पदके वाच्यार्थमे विरोध है फिर अन्य अर्थको सम्मिलित करनेसे भी वह विरोध तो दूर होगा ही नहीं, इसलिये अजहल्लक्षणासे भी इनकी एकता सिद्ध नही हो सकती। इन दोनोके सिवा जहाँ कुछ अर्थ रखा जाता है और कुछ छोडा जाता है वह जहत्यजहती (भागत्याग) लक्षणा होती है। जैसे सोऽयम् (यह वही है) इस वाक्यमे 'अयम् पदसे कहे जानेवाले पदार्थकी अपरोक्षता और 'स ' पदके वाच्य पदार्थकी परोक्षताका त्याग करके इन दोनोसे रहित जो निर्विशेष पदार्थ है उसकी एकता कही जाती है। इसी प्रकार महावाक्यके तत् पदके वाच्य ईश्वर के गुण सर्वज्ञता, परोक्षता आदिका और त्वम् पदके वाच्य 'जीव' के गुण अल्पज्ञता प्रत्यक्ता आदिका त्याग करके केवल चेतनाशमे एकता बतलायी जाती है।

कोशेष्वय तेषु तु तत्तदाकृति-
विभाति सङ्गात्स्फटिकोपलो यथा ।
असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो
विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥ ३१ ॥

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते
स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मन ।
अन्योन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा
नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥ ३२ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मना
सङ्घादजस्त्र परिवर्तते धिय ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा
यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भव ॥ ३३ ॥

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो
हृदा समास्वादितचिद्घनामृत ।
त्यजेदशेष जगदात्तसद्रस
पीत्वा यथाम्भ प्रजहाति तत्फलम् ॥ ३४ ॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते
न क्षीयते नापि विवर्धतेऽनव ।
निरस्तसर्वातिशय सुखात्मक
स्वयम्प्रभ सर्वगतोऽयमद्वय ॥ ३५ ॥

एवविधे ज्ञानमये सुखात्मके
कथ भवो दु खमय प्रतीयते ।
अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते
ज्ञाने विलीयेत विरोधत क्षणात् ॥ ३६ ॥

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा-
दध्यासमित्याहुरमु विपश्चित ।
असर्पभूतेऽहिविभावन यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥ ३७ ॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मके-
ऽहङ्कार एष प्रथम प्रकल्पित ।
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे
निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥ ३८ ॥

स्फटिकमणिके समान यह आत्मा भी (अन्नमयादि) भिन्न-भिन्न कोशोमे उनके सङ्गसे उन्हीके आकारका भासने लगता है। किन्तु इसका भली प्रकार विचार करनेसे यह अद्वितीय होनेके कारण असङ्गरूप और अजन्मा निश्चित होता है ॥ ३१ ॥ त्रिगुणात्मिका बुद्धिकी ही स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति-भेदसे तीन प्रकारकी वृत्तियाँ दिखायी देती है, किन्तु इन तीनो वृत्तियोमेसे प्रत्येकका एक-दूसरीमे व्यभिचार होनेके कारण, ये (तीनो ही) एकमात्र कल्याणस्वरूप नित्य परब्रह्ममे मिथ्या है (अर्थात् उसमे इन वृत्तियोका सर्वथा अभाव है) ॥ ३२ ॥ बुद्धिकी वृत्ति ही देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और चेतन आत्माके सघातरूपसे निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। यह वृत्ति तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाली होनेके कारण अज्ञानरूपा है और जबतक यह रहती है तबतक ही ससारमे जन्म होता रहता है ॥ ३३ ॥ 'नेति-नेति' आदि श्रुतिप्रमाणसे निखिल ससारका बाध करके और हृदयमे चिद्घनामृतका आस्वादन करके सम्पूर्ण जगत्को, उसके साररूप सत् (ब्रह्म) को ग्रहण करके त्याग दे, जैसे नारियलके जलको पीकर मनुष्य उसे फेक देते है ॥ ३४ ॥ आत्मा न कभी मरता है, न जन्मता है, वह न कभी क्षीण होता है और न बढता ही है। वह पुरातन, सम्पूर्ण विशेषणोसे रहित, सुखस्वरूप, स्वयप्रकाश, सर्वगत और अद्वितीय है ॥ ३५ ॥

जो इस प्रकार ज्ञानमय और सुखस्वरूप है उसमे यह दु खमय ससारकी प्रतीति कैसे हो सकती है ? यह तो अध्यासके कारण अज्ञानसे ही दिखायी दे रहा है, ज्ञानसे तो यह एक क्षणमे ही लीन हो जाता है, क्योकि ज्ञान और अज्ञानका परस्पर विरोध है ॥ ३६ ॥ भ्रमसे जो अन्यमे अन्यकी प्रतीति होती है उसीको विद्वानोने अध्यास कहा है। जिस प्रकार असर्परूप रज्जु आदिमे सर्पकी प्रतीति होती है उसी प्रकार ईश्वरमे ससारकी प्रतीति हो रही है ॥ ३७ ॥ जो विकल्प और मायासे रहित है उस सबके कारण निरामय, अद्वितीय और चित्स्वरूप परमात्मा ब्रह्ममे पहले इस 'अहकार' रूप अध्यासकी ही कल्पना होती

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिका
सदा धियः संसृतिहेतवः परे ।
यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः
सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥ ३९ ॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो
जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः ।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितो
बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरः स एव हि ॥ ४० ॥

चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गत-
स्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते
जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥ ४१ ॥

गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः
सञ्जातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं
त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥ ४२ ॥

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयो-
ऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः
सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥ ४३ ॥

सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमा-
नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधै-
र्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥ ४४ ॥

एवं सदात्मानमखण्डितात्मना
विचारमाणस्य विशुद्धभावना ।
हन्यादविद्यामचिरेण कारकै
रसायनं यद्वदुपासितं रुजः ॥ ४५ ॥

विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो
विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।
विभावयेदेकमनन्यसाधनो
विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥

है ॥ ३८ ॥ सबके साक्षी आत्मामे इच्छा, अनिच्छा, राग-द्वेष और सुख-दुःखादिरूप बुद्धिकी वृत्तियाँ ही जन्म-मरणरूप संसारकी कारण है, क्योंकि सुषुप्तिमे इनका अभाव हो जानेपर हमे आत्माका सुखरूपसे भान होता है ॥ ३९ ॥ अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुई बुद्धिमे प्रतिबिम्बित यह चेतनका प्रकाश ही 'जीव' कहलाता है। बुद्धिके साक्षीरूपसे आत्मा उससे पृथक् है, वह परात्मा तो बुद्धिसे अपरिच्छिन्न है ॥ ४० ॥ अग्निसे तपे हुए लोहेके समान चिदाभास, साक्षी आत्मा तथा बुद्धिके एकत्र रहनेसे परस्पर अन्योन्याध्यास होनेके कारण क्रमशः उनकी चेतनता, और जडता प्रतीत होती है। (अर्थात् जिस प्रकार अग्निसे तपे हुए लोहपिण्डमे अग्नि और लोहेका तादात्म्य हो जानेसे लोहेका आकार अग्निमे और अग्निकी उष्णता लोहेमे दिखायी देने लगती है। उसी प्रकार बुद्धि और आत्माका तादात्म्य हो जानेसे आत्माकी चेतनता बुद्धि आदिमे और बुद्धि आदिकी जडता आत्मामे प्रतीत होने लगती है। इसलिये अध्यासवश बुद्धिसे लेकर शरीरपर्यन्त अनात्म-वस्तुओको ही आत्मा मानने लगते है) ॥ ४१ ॥ गुरुके समीप रहनेसे और वेदवाक्योसे आत्मज्ञानका अनुभव होनेपर अपने हृदयस्थ उपाधिरहित आत्माका साक्षात्कार करके आत्मारूपसे प्रतीत होनेवाले देहादि सम्पूर्ण जडपदार्थोका त्याग कर देना चाहिये ॥ ४२ ॥ मै प्रकाशस्वरूप, अजन्मा, अद्वितीय, निरन्तर, भासमान, अत्यन्त निर्मल, विशुद्ध विज्ञानघन, निरामय, क्रियारहित और एकमात्र आनन्दस्वरूप हूँ ॥ ४३ ॥ मै सदा ही मुक्त, अचिन्त्यशक्ति, अतीन्द्रिय, ज्ञानस्वरूप, अविकृतरूप और अनन्तपार हूँ। वेदवादी पण्डितजन अहर्निश मेरा हृदयमे चिन्तन करते है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सदा आत्माका अखण्ड-वृत्तिसे चिन्तन करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणमे उत्पन्न हुई विशुद्ध भावना तुरत ही कारकादिके सहित अविद्याका नाश कर देती है, जिस प्रकार नियमानुसार सेवन की हुई ओषधि रोगको नष्ट कर डालती है ॥ ४५ ॥

(आत्मचिन्तन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि) एकान्त देशमे इन्द्रियोको उनके विषयोसे हटाकर और अन्तःकरणको अपने अधीन करके बैठे तथा आत्मामे स्थित होकर और किसी साधनका आश्रय न लेकर शुद्धचित्त हुआ केवल ज्ञानदृष्टिद्वारा एक आत्माकी ही

विश्व यदेतत्परमात्मदर्शन
विलापयेदात्मनि सर्वकारणे।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते
न वेद बाह्य न च किञ्चिदान्तरम्॥ ४७ ॥

पूर्व समाधेरखिल विचिन्तये-
दोङ्कारमात्र सचराचर जगत्।
तदेव वाच्य प्रणवो हि वाचको
विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधत ॥ ४८ ॥

अकारसज्ञ पुरुषो हि विश्वको
ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात्।
प्राज्ञो मकार परिपठ्यतेऽखिलै
समाधिपूर्व न तु तत्त्वतो भवेत्॥ ४९ ॥

विश्व त्वकार पुरुष विलापये-
दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम्।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजस
द्वितीयवर्ण प्रणवस्य चान्तिमे॥ ५० ॥

मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे
विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम्।
सोऽह पर ब्रह्म सदा विमुक्तिम-
द्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमल ॥ ५१ ॥

एव सदा जातपरात्मभावन
स्वानन्दतुष्ट परिविस्मृताखिल ।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशक
साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥ ५२ ॥

एव सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो
निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि।
विनिर्जिताशेषरिपोरह सदा
दृश्यो भवेय जितषड्गुणात्मन ॥ ५३ ॥

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निश मुनि-
स्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धन ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो
मय्येव साक्षात्प्रविलीयते तत ॥ ५४ ॥

भावना करे॥ ४६ ॥ यह विश्व परमात्मस्वरूप है ऐसा समझकर इसे सबके कारणरूप आत्मामे लीन करे, इस प्रकार जो पूर्ण चिदानन्दस्वरूपसे स्थित हो जाता है उसे बाह्य अथवा आन्तरिक किसी भी वस्तुका ज्ञान नही रहता॥ ४७ ॥ समाधि प्राप्त होनेके पूर्व ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ओकारमात्र है। यह ससार वाच्य है और ओकार इसका वाचक है। अज्ञानके कारण ही इसकी प्रतीति होती है। ज्ञान होनेपर इसका कुछ भी नही रहता॥ ४८ ॥ (ओकारमे अ, उ और म—ये तीन वर्ण है, इनमेसे) अकार विश्व (जागृतिके अभिमानी) का वाचक है, उकार तैजस (स्वप्नका अभिमानी) कहलाता है और मकार प्राज्ञ (सुषुप्तिके अभिमानी) को कहते है, यह व्यवस्था समाधिलाभसे पहलेकी है, तत्त्वदृष्टिसे ऐसा कोई भेद नही है॥ ४९ ॥ नाना प्रकारसे स्थित अकाररूप विश्व पुरुषको उकारमे लीन करे और ओकारके द्वितीय वर्ण तैजसरूप उकारको उसके अन्तिम वर्ण मकारमे लीन करें॥ ५० ॥ फिर कारणात्मा प्राज्ञरूप मकारको भी चिद्घनरूप परमात्मामे लीन करे, (और ऐसी भावना करे कि) वह नित्यमुक्त विज्ञानस्वरूप उपाधिहीन निर्मल परब्रह्म मै ही हूँ॥ ५१ ॥

इस प्रकार निरन्तर परमात्मभावना करते-करते जो आत्मानन्दमे मग्न हो गया है तथा जिसे सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च विस्मृत हो गया है वह नित्य आत्मानन्दका अनुभव करनेवाला जीवन्मुक्त योगी निस्तरङ्ग समुद्रके समान साक्षात् मुक्तस्वरूप हो जाता है॥ ५२ ॥ इस प्रकार जो निरन्तर समाधियोगका अभ्यास करता है, जिसके सम्पूर्ण इन्द्रियगोचर विषय निवृत्त हो गये है तथा जिसने काम-क्रोधादि सम्पूर्ण शत्रुओको परास्त कर दिया है, उस छहो इन्द्रियो (मन और पॉचो ज्ञानेन्द्रियो) को जीतनेवाले महात्माको मेरा निरन्तर साक्षात्कार होता है॥ ५३ ॥ इस प्रकार अहर्निश आत्माका ही चिन्तन करता हुआ मुनि सर्वदा समस्त बन्धनोसे मुक्त होकर रहे तथा (कर्ता-भोक्तापनके) अभिमानको छोडकर प्रारब्ध-फल भोगता रहे। इससे वह अन्तमे साक्षात् मुझहीमे लीन हो जाता

आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो
भव विदित्वा भयशोककारणम्।
हित्वा समस्त विधिवादचोदित
भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥ ५५ ॥
आत्मन्यभेदेन विभावयन्निद
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा।
यथा जल वारिनिधौ यथा पय
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिल ॥ ५६ ॥
इत्थ यदीक्षेत हि लोकसस्थितो
जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनि ।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो
यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादय ॥ ५७ ॥
यावन्न पश्येदखिल मदात्मक
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत्।
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो
यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निश हृदि ॥ ५८ ॥
रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसङ्ग्रह
मया विनिश्चित्य तवोदित प्रिय।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्
स मुच्यते पातकराशिभि क्षणात् ॥ ५९ ॥
भ्रातर्यदीद परिदृश्यते जग-
न्मायैव सर्व परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावितशुद्धमानस
सुखी भवानन्दमयो निरामय ॥ ६० ॥
य सेवते मामगुण गुणात्पर
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्।
सोऽह स्वपादाञ्चितरेणुभि स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितय यथा रवि ॥ ६१ ॥
विज्ञानमेतदखिल श्रुतिसारमेक
वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम्।
य श्रद्धया परिपठेद् गुरुभक्तियुक्तो
मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्ति ॥ ६२ ॥

है ॥ ५४ ॥ ससारको आदि, अन्त और मध्यमे सब प्रकार भय और शोकका ही कारण जानकर समस्त वेदविहित कर्मोको त्याग दे तथा सम्पूर्ण प्राणियोके अन्तरात्मारूप अपने आत्माका भजन करे ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार समुद्रमे जल, दूधमे दूध, महाकाशमे घटाकाशादि और वायुमे वायु मिलकर एक हो जाते है, उसी प्रकार इस सम्पूर्ण प्रपञ्चको अपने आत्माके साथ अभिन्नरूपसे चिन्तन करनेसे जीव मुझ परमात्माके साथ अभिन्न भावसे स्थित हो जाता है ॥ ५६ ॥ यह जो जगत् है वह श्रुति, युक्ति और प्रमाणसे बाधित होनेके कारण चन्द्रभेद और दिशाओमे होनेवाले दिग्भ्रमके समान मिथ्या ही है—ऐसी भावना करता हुआ लोक (व्यवहार) मे स्थित मुनि इसे देखे ॥ ५७ ॥ जबतक सारा ससार मेरा ही रूप दिखलायी न दे तबतक निरन्तर मेरी आराधना करता रहे। जो श्रद्धालु और उत्कट भक्त होता है, उसे अपने हृदयमे सर्वदा मेरा ही साक्षात्कार होता है ॥ ५८ ॥

हे प्रिय! सम्पूर्ण श्रुतियोके साररूप इस गुप्त रहस्यको मैने निश्चय करके तुमसे कहा है। जो बुद्धिमान् इसका मनन करेगा वह तत्काल समस्त पापोसे मुक्त हो जायगा ॥ ५९ ॥ भाई! यह जो कुछ जगत् दिखायी देता है वह सब माया है। इसे अपने चित्तसे निकालकर मेरी भावनासे शुद्धचित्त और सुखी होकर आनन्दपूर्ण और क्लेशशून्य हो जाओ ॥ ६० ॥ जो पुरुष अपने चित्तसे मुझ गुणातीत निर्गुणका अथवा कभी-कभी मेरे सगुण स्वरूपका भी सेवन करता है वह मेरा ही रूप है। वह अपनी चरणरजके स्पर्शसे सूर्यके समान सम्पूर्ण त्रिलोकीको पवित्र कर देता है ॥ ६१ ॥ यह अद्वितीय ज्ञान समस्त श्रुतियोका एकमात्र सार है। इसे वेदान्तवेद्य भगवत्पाद मैने ही कहा है। जो गुरुभक्तिसम्पन्न पुरुष इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा उसकी यदि मेरे वचनोमे प्रीति होगी तो वह मेरा ही रूप हो जायगा ॥ ६२ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे पञ्चम सर्ग ॥ ५ ॥

★

षष्ठ सर्ग

लवण-वध, भगवान् रामके यज्ञमे कुश-लवके सहित महर्षि वाल्मीकिका पधारना और कुशको परमार्थोपदेश करना

श्रीमहादेव उवाच

एकदा मुनय सर्वे यमुनातीरवासिन ।
आजग्मू राघव द्रष्टु भयाल्लवणरक्षस ॥ १ ॥

कृत्वाग्रे तु मुनिश्रेष्ठ भार्गव च्यवन द्विजा ।
असङ्ख्याता समायाता रामादभयकाङ्क्षिण ॥ २ ॥

तान्पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोत्तम ।
उवाच मधुर वाक्य हर्षयन्मुनिमण्डलम् ॥ ३ ॥

करवाणि मुनिश्रेष्ठा किमागमनकारणम् ।
धन्योऽस्मि यदि यूय मा प्रीत्या द्रष्टुमिहागता ॥ ४ ॥

दुष्कर चापि यत्कार्य भवता तत्करोम्यहम् ।
आज्ञापयन्तु मा भृत्य ब्राह्मणा दैवत हि मे ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ।
मधुनामा महादैत्य पुरा कृतयुगे प्रभो ॥ ६ ॥

आसीदतीव धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजक ।
तस्य तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् ॥ ७ ॥

प्राह चानेन य हसि स तु भस्मीभविष्यति ।
रावणस्यानुजा भार्या तस्य कुम्भीनसी श्रुता ॥ ८ ॥

तस्या तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रम ।
आसीदुरात्मा दुर्धर्षो देवब्राह्मणहिंसक ॥ ९ ॥

पीडितास्तेन राजेन्द्र वय त्वा शरण गता ।
तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भीर्वो मुनिपुङ्गवा ॥ १० ॥

लवण नाशयिष्यामि गच्छन्तु विगतज्वरा ।
इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि भ्रातॄन् को वा हनिष्यति ॥ ११ ॥

लवण राक्षस दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽभय महत् ।
तच्छ्रुत्वा प्राञ्जलि प्राह भरतो राघवाय वै ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति। एक दिन यमुनातटपर रहनेवाले समस्त मुनिजन लवणराक्षससे भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये आये ॥ १ ॥ वे अगणित मुनिगण भृगुपुत्र मुनिश्रेष्ठ च्यवनको आगे कर भगवान् रामसे अभय-लाभ करनेकी इच्छासे आये ॥ २ ॥ रघुकुलश्रेष्ठ रामजीने उन मुनीश्वरोका अत्यन्त भक्तिभावसे पूजन कर उन्हे प्रसन्न करते हुए मधुर वाणीसे कहा— ॥ ३ ॥ "हे मुनिश्रेष्ठगण। आपके यहाँ पधारनेका क्या कारण है ? (मुझे जो आज्ञा होगी) मै वैसा ही करूँगा। यदि आपलोग मुझे प्रीतिपूर्वक देखनेके लिये ही यहाँ आये है, तो मै धन्य हूँ ॥ ४ ॥ आपका जो अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा वह भी मै अवश्य करूँगा। आप मुझ सेवकको आज्ञा दीजिये, ब्राह्मण ही मेरे इष्टदेव है" ॥ ५ ॥

भगवान् रामके ये वचन सुनकर महर्षि च्यवनने सहसा प्रसन्न होकर कहा—"प्रभो। पहले सत्ययुगमे मधु नामक एक बडा ही धर्मात्मा और देवता तथा ब्राह्मणोका भक्त महादैत्य था। उससे प्रसन्न होकर श्रीमहादेवजीने उसे एक अत्युत्तम त्रिशूल दिया ॥ ६-७ ॥ और कहा कि इससे तू जिसपर प्रहार करेगा वही भस्मीभूत हो जायगा। सुना जाता है, रावणकी छोटी बहिन कुम्भीनसी उसकी भार्या थी ॥ ८ ॥ उससे उसके लवण नामक एक महापराक्रमी दुष्ट-चित्त, दुर्जय और देवता-ब्राह्मणोको दु ख देनेवाला राक्षस उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र। उससे अत्यन्त पीडित होकर हम आपकी शरण आये है।" यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ। आपलोग किसी प्रकारका भय न करे ॥ १० ॥ आप निश्चिन्त होकर पधारे, मै लवणको अवश्य मार डालूँगा।" मुनीश्वरोसे ऐसा कह भगवान् रामने अपने भाइयोसे पूछा—"तुममेसे कौन लवण राक्षसको मारेगा और ब्राह्मणोको महान् अभय देगा ?" यह सुनकर भरतजीने श्रीरघुनाथजीसे हाथ

अहमेव हनिष्यामि देवाज्ञापय मा प्रभो ।
ततो राम नमस्कृत्य शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

लक्ष्मणेन महत्कार्य कृत राघव सयुगे ।
नन्दिग्रामे महाबुद्धिर्भरतो दु खमन्वभूत् ॥ १४ ॥

अहमेव गमिष्यामि लवणस्य वधाय च ।
त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हन्या त राक्षस युधि ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा स्वाङ्कमारोप्य शत्रुघ्न शत्रुसूदन ।
प्राहाद्यैवाभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् ॥ १६ ॥

आनाय्य च सुसम्भारॉल्लक्ष्मणेनाभिषेचने ।
अनिच्छन्तमपि स्नेहादभिषेकमकारयत् ॥ १७ ॥

दत्त्वा तस्मै शर दिव्य राम शत्रुघ्नमब्रवीत् ।
अनेन जहि बाणेन लवण लोककण्टकम् ॥ १८ ॥

स तु सम्पूज्य तच्छूल गेहे गच्छति काननम् ।
भक्षणार्थ तु जन्तूना नानाप्राणिवधाय च ॥ १९ ॥

स तु नायाति सदन यावद्वनचरो भवेत् ।
तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्व धृतकार्मुक ॥ २० ॥

योत्स्यते स त्वया क्रुद्धस्तदा वध्यो भविष्यति ।
त हत्वा लवण क्रूर तद्वन मधुसञ्ज्ञितम् ॥ २१ ॥

निवेश्य नगर तत्र तिष्ठ त्व मेऽनुशासनात् ।
अश्वाना पञ्चसाहस्र रथाना च तदर्धकम् ॥ २२ ॥

गजाना षट् शतानीह पत्तीनामयुतत्रयम् ।
आगमिष्यति पश्चात्त्वमग्रे साधय राक्षसम् ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा मूर्ध्न्यवघ्राय प्रेषयामास राघव ।
शत्रुघ्न मुनिभि सार्धमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ २४ ॥

शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण चोदित ।
हत्वा मधुसुत युद्धे मथुरामकरोत्पुरीम् ॥ २५ ॥

स्फीता जनपदा चक्रे मथुरा दानमानत ।
सीतापि सुषुवे पुत्रौ द्वौ वाल्मीकेरथाश्रमे ॥ २६ ॥

जोडकर कहा— ॥ ११-१२ ॥ "देव ! लवणको मै ही मारूँगा। प्रभो ! इसके लिये मुझे ही आज्ञा दीजिये।" फिर शत्रुघ्नजीने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके कहा— ॥ १३ ॥ "हे राघव ! श्रीलक्ष्मणजी युद्धमे बडा भारी कार्य कर चुके है, महामति भरतजीने भी नन्दिग्राममे रहकर बहुत कष्ट सहा है ॥ १४ ॥ अब लवणका वध करनेके लिये तो मै ही जाऊँगा। हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी कृपासे मै उस राक्षसको युद्धमे अवश्य मार डालूँगा" ॥ १५ ॥

शत्रुघ्नके ये वचन सुनकर शत्रुदमन रघुनाथजीने उन्हे अपनी गोदमे उठा लिया और कहा—"मै आज ही तुम्हारा (लवणकी राजधानी) मथुराके राज्यपर अभिषेक करूँगा" ॥ १६ ॥ ऐसा कह लक्ष्मणजीसे अभिषेककी सामग्री मँगा शत्रुघ्नजीकी इच्छा न होनेपर भी श्रीरामचन्द्रजीने उनका प्रीतिपूर्वक अभिषेक कर दिया ॥ १७ ॥ फिर उन्हे दिव्य बाण देकर कहा— "तुम ससारके कण्टकरूप लवणको इस बाणसे मार डालना ॥ १८ ॥ राक्षस लवण अपने घरमे ही उस त्रिशूलकी पूजाकर नाना प्रकारके जीवोको खाने और मारनेके लिये वनको जाया करता है ॥ १९ ॥ अत जबतक वह लौटकर घर न आवे, वनहीमे रहे, उससे पूर्व ही तुम नगरके द्वारपर धनुष धारण कर खडे हो जाना ॥ २० ॥ लौटनेपर वह क्रोधपूर्वक तुमसे लडेगा और उसी समय मारा जायगा। इस प्रकार महाक्रूर लवणासुरको मारकर उसके मधुवनमे नगर बसाकर मेरी आज्ञासे वही रहो। तुम पहले जाकर उस राक्षसको ठीक करो, फिर तुम्हारे पीछे वहाँ पाँच हजार घोडे, उनसे आधे (ढाई हजार) रथ, छ सौ हाथी और तीस हजार पैदल भी पहुँचेगे" ॥ २१—२३ ॥

ऐसा कह श्रीरघुनाथजीने शत्रुघ्नका सिर सूँघकर तथा मुनियोके सहित आशीर्वादसे उनका अभिनन्दन कर उन्हे विदा किया ॥ २४ ॥ शत्रुघ्नजीने भी, भगवान् रामने जैसी आज्ञा दी थी वैसा ही किया। उन्होने मधुपुत्र लवणासुरको मारकर मथुरापुरी बसायी ॥ २५ ॥ और दान-मानसे (लोगोको सन्तुष्ट कर) उन्होने मथुराको एक समृद्धिशाली नगर बना दिया।

इस बीचमे श्रीसीताजीके वाल्मीकि मुनिके आश्रममे दो

मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लव ।
क्रमेण विद्यासम्पन्नौ सीतापुत्रौ बभूवतु ॥ २७ ॥

उपनीतौ च मुनिना वेदाध्ययनतत्परौ ।
कृत्स्न रामायण प्राह काव्य बालकयोर्मुनि ॥ २८ ॥

शङ्करेण पुरा प्रोक्त पार्वत्यै पुरहारिणा ।
वेदोपबृहणार्थाय तावग्राहयत प्रभु ॥ २९ ॥

कुमारौ स्वरसम्पन्नौ सुन्दरावश्विनाविव ।
तन्त्रीतालसमायुक्तौ गायन्तौ चेरतुर्वने ॥ ३० ॥

तत्र तत्र मुनीना तौ समाजे सुररूपिणौ ।
गायन्तावभितो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ॥ ३१ ॥

गन्धर्वेष्विव किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च ।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतर दृष्टा दिश सर्वतो
नाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च ॥ ३२ ॥

एव स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभि प्रतिवासरम् ।
आसाते सुखमेकान्ते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥ ३३ ॥

पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २६ ॥ मुनिने उनमेसे बडेका नाम कुश और छोटेका लव रखा। धीरे-धीरे सीताजीके वे दोनो पुत्र विद्यासम्पन्न हो गये ॥ २७ ॥ मुनिके उपनयन-सस्कार करनेपर वे वेदाध्ययनमे तत्पर हुए। श्रीवाल्मीकिजीने उन दोनो बालकोको सम्पूर्ण रामायणकाव्य पढा दिया ॥ २८ ॥ पूर्वकालमे इसे त्रिपुरविनाशक भगवान् शकरने पार्वतीजीको सुनाया था। उसी आख्यानको समर्थ मुनि वाल्मीकिने वेदोका विस्तृत ज्ञान करानेके लिये उन बालकोको पढाया ॥ २९ ॥ वे अश्विनीकुमारके समान अति सुन्दर कुमार उसे वीणा बजाकर स्वरसहित गाते हुए वनमे विचरा करते थे ॥ ३० ॥ उन देवस्वरूप बालकोको जहाँ-तहाँ मुनियोके समाजमे गाते देख वे मुनिगण अत्यन्त विस्मित हो आपसमे कहने लगते थे ॥ ३१ ॥ "हम चिरजीवियोने बहुत दिनोसे सभी दिशाएँ देखी, किन्तु गन्धर्व, किन्नर, भूर्लोक, देवलोक, देवालय, पाताल अथवा ब्रह्मलोक आदि किसी भी लोकमे गान-बजानेकी ऐसी कुशलता न कभी जानी न देखी और न सुनी ही है" ॥ ३२ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन प्रशसा करनेवाले समस्त मुनियोके साथ वे दोनो बालक बहुत समयतक श्रीवाल्मीकिजीके एकान्त आश्रममे सुखपूर्वक रहे ॥ ३३ ॥

अथ रामोऽश्वमेधादीश्चकार बहुदक्षिणान् ।
यज्ञान् स्वर्णमयीं सीता विधाय विपुलद्युति ॥ ३४ ॥

तस्मिन्विताने ऋषय सर्वे राजर्षयस्तथा ।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या समाजग्मुर्दिदृक्षव ॥ ३५ ॥

वाल्मीकिरपि सङ्गृह्य गायन्तौ तौ कुशीलवौ ।
जगाम ऋषिवाटस्य समीप मुनिपुङ्गव ॥ ३६ ॥

तत्रैकान्ते स्थित शान्त समाधिविरमे मुनिम् ।
कुश पप्रच्छ वाल्मीकिं ज्ञानशास्त्र कथान्तरे ॥ ३७ ॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि सङ्क्षेपाद्भवतोऽखिलम् ।
देहिन ससृतिर्बन्ध कथमुत्पद्यते दृढ ॥ ३८ ॥

कथ विमुच्यते देही दृढबन्धाद्भवाभिधात् ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मह्य शिष्याय ते मुने ॥ ३९ ॥

इधर परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णकी सीता बनाकर अश्वमेध आदि बहुत-से बडी-बडी दक्षिणाओवाले यज्ञ किये ॥ ३४ ॥ उस यज्ञशालामे यज्ञोत्सव देखनेके लिये उत्सुक होकर सभी ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि आये थे ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी भी गान करते हुए कुश और लवको साथ ले वहाँ आये और जहाँ मुनियोके ठहरनेका स्थान था वहाँ उतरे ॥ ३६ ॥ वहाँ एक दिन एकान्तमे शान्तभावसे बैठे हुए वाल्मीकि मुनिसे उनकी समाधि खुलनेपर कुशने कथाके बीचमे ही ज्ञानशास्त्रके विषयमे पूछा ॥ ३७ ॥ (वह बोला)— "भगवन्! मै आपके मुखारविन्दसे सक्षेपमे यह बात सुनना चाहता हूँ कि जीवको यह सुदृढ ससारबन्धन किस प्रकार प्राप्त होता है? ॥ ३८ ॥ और फिर इस ससार नामक दृढ बन्धनसे उसे छुटकारा कैसे मिलता है? हे मुने! आप सर्वज्ञ है, मुझ प्रणत शिष्यसे आप यह सम्पूर्ण रहस्य कहिये" ॥ ३९ ॥

वाल्मीकिरुवाच

शृणु वक्ष्यामि ते सर्व सङ्क्षेपाद्बन्धमोक्षयो ।
स्वरूप साधन चापि मत्त श्रुत्वा यथोदितम् ॥ ४० ॥

तथैवाचर भद्र ते जीवन्मुक्तो भविष्यसि ।
देह एव महागेहमदेहस्य चिदात्मन ॥ ४१ ॥

तस्याहङ्कार एवास्मिन्मन्त्री तेनैव कल्पित ।
देहगेहाभिमान स्व समारोप्य चिदात्मनि ॥ ४२ ॥

तेन तादात्म्यमापन्न स्वचेष्टितमशेषत ।
विदधाति चिदानन्दे तद्वासितवपु स्वयम् ॥ ४३ ॥

तेन सङ्कल्पितो देही सङ्कल्पनिगडावृत ।
पुत्रदारगृहादीनि सङ्कल्पयति चानिशम् ॥ ४४ ॥

सङ्कल्पयन्स्वय देही परिशोचति सर्वदा ।
त्रयस्तस्याहमो देहा अधमोत्तममध्यमा ॥ ४५ ॥

तम सत्त्वरज सज्ञा जगत कारण स्थिते ।
तमोरूपाद्धि सङ्कल्पान्नित्य तामसचेष्टया ॥ ४६ ॥

अत्यन्त तामसो भूत्वा कृमिकीटत्वमाप्नुयात् ।
सत्त्वरूपो हि सङ्कल्पो धर्मज्ञानपरायण ॥ ४७ ॥

अदूरमोक्षसाम्राज्य सुखरूपो हि तिष्ठति ।
रजोरूपो हि सङ्कल्पो लोके स व्यवहारवान् ॥ ४८ ॥

परितिष्ठति ससारे पुत्रदारानुरञ्जित ।
त्रिविध तु परित्यज्य रूपमेतन्महामते ॥ ४९ ॥

सङ्कल्प परमाप्नोति पदमात्मपरिक्षये ।
दृष्टी सर्वा परित्यज्य नियम्य मनसा मन ॥ ५० ॥

सबाह्याभ्यन्तरार्थस्य सङ्कल्पस्य क्षय कुरु ।
यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि दारुणम् ॥ ५१ ॥

पातालस्थस्य भूस्थस्य स्वर्गस्थस्यापि तेऽनघ ।
नान्य कश्चिदुपायोऽस्ति सङ्कल्पोपशमादृते ॥ ५२ ॥

अनाबाधेऽविकारे स्वे सुखे परमपावने ।
सङ्कल्पोपशमे यत्न पौरुषेण पर कुरु ॥ ५३ ॥

वाल्मीकिजी बोले—सुन, मै तुझे सक्षेपसे साधनके सहित बन्ध और मोक्षका सम्पूर्ण स्वरूप सुनाता हूँ। मैं जैसा कहूँ वह सब सुनकर तू उसी प्रकार आचरण कर। इससे तेरा कल्याण होगा और तू जीवन्मुक्त हो जायगा। देहहीन चेतन आत्माका यह देह ही बडा भारी घर है ॥ ४०-४१ ॥ इसमे उसने अहकारको ही अपना मन्त्री बना रखा है। यह अहकाररूप मन्त्री देहगेहाभिमानरूप अपने-आपको चेतन आत्मामे आरोपितकर उससे एकरूप होकर अपनी सारी चेष्टाओका आरोप उस चिदानन्दरूप आत्मामे ही करता है। उस अहकारसे व्याप्त हुआ देही (जीव) उसीके सकल्पसे प्रेरित होकर सकल्परूपी बेडियोसे बँधता है और फिर रात-दिन पुत्र, स्त्री और गृह आदिके लिये सकल्प-विकल्प करता रहता है ॥ ४२—४४ ॥ सकल्प करनेसे जीव स्वय ही सदा शोक करता है।

इस अहकारके सत्त्व रज, तम नामक उत्तम, अधम और मध्यम तीन प्रकारके देह है। ये ही तीनो ससारकी स्थितिके कारण है। इनमेसे तामस सकल्पसे नित्यप्रति तामसिक चेष्टाएँ करनेसे ही जीव अत्यन्त तमोगुणी होकर कीडे-मकोडे आदि योनियोको प्राप्त होता है। जो सात्त्विक सकल्पवाला होता है वह धर्म और ज्ञानमे ही तत्पर रहनेके कारण मोक्ष-साम्राज्यके पास ही सुखपूर्वक रहता है। तथा राजस सकल्प होनेसे लोकव्यवहार करता हुआ ससारमे पुत्र, स्त्री आदिमे अनुरक्त रहता है। हे महामते ! जो पुरुष इन तीनो प्रकारके सकल्पोको छोड देता है वह चित्तके लीन होनेपर परमपद प्राप्त कर लेता है। इसलिये तू समस्त विचारोको छोडकर और अपने मनसे ही मनका सयम कर बाहर-भीतरके सम्पूर्ण सकल्पोका क्षय कर दे। हे अनघ ! यदि तू पाताल, पृथिवी अथवा स्वर्ग आदिमे कही भी रहकर हजारों वर्ष कठोर तपस्या भी करे तो भी (ससार-बन्धनसे मुक्त होनेका तो) तेरे लिये सकल्पनाशके अतिरिक्त और कोई उपाय है ही नही ॥ ४५—५२ ॥ इसलिये जो दु खहीन, विकारहीन, स्वानन्दस्वरूप और परम पवित्र है उस सकल्पशान्तिके लिये तू पुरुषार्थपूर्वक

सङ्कल्पतन्तौ निखिला भावा प्रोता किलानघ ।
छिन्ने तन्तौ न जानीम क्व यान्ति विभवा परा ॥ ५४ ॥

नि सङ्कल्पो यथाप्राप्तव्यवहारपरो भव ।
क्षये सङ्कल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥

अधिगतपरमार्थतामुपेत्य
प्रसभमपास्य विकल्पजालमुच्चै ।
अधिगमय पद तदद्वितीय
विततसुखाय सुषुप्तचित्तवृत्ति ॥ ५६ ॥

पूर्ण प्रयत्न कर ॥ ५३ ॥ हे अनघ । ये जितने भाव पदार्थ है वे सब सकल्पके तागेमे पिरोये हुए है, जिस समय वह तागा टूट जाता है उस समय पता भी नही चलता कि ससारके ये परम वैभव कहाँ चले जाते है ? ॥ ५४ ॥ अत सकल्प-विकल्पको छोडकर प्रारब्ध-प्रवाहसे प्राप्त हुए व्यवहारमे तत्पर रह । सकल्पजालके क्षीण हो जानेपर जीवको ब्रह्मत्व प्राप्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ परमार्थज्ञानसे सम्पन्न होकर तू हठपूर्वक सम्पूर्ण विकल्पजालको त्याग दे और पूर्ण आनन्दकी प्राप्तिके लिये चित्तवृत्तिको लीन करके उस अद्वितीय पदको प्राप्त कर ले ॥ ५६ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ ६ ॥

★

सप्तम सर्ग

भगवान् रामके यज्ञमे कुश और लवका गान, सीताजीका पृथिवी-प्रवेश, रामचन्द्रजीका माताको उपदेश

श्रीमहादेव उवाच

वाल्मीकिना बोधितोऽसौ कुश सद्योगतभ्रम ।
अन्तर्मुक्तो बहि सर्वमनुकुर्वश्चचार स ॥ १ ॥

वाल्मीकिरपि तौ प्राह सीतापुत्रौ महाधियौ ।
तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वत ॥ २ ॥

रामस्याग्रे प्रगायेत शुश्रूषुर्यदि राघव ।
न ग्राह्यं वै युवाभ्या तद्यदि किञ्चित्प्रदास्यति ॥ ३ ॥

इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतु ।
यथोक्तमृषिणा पूर्व तत्र तत्राभ्यगायताम् ॥ ४ ॥

ता स शुश्राव काकुत्स्थ पूर्वचर्या ततस्तत ।
अपूर्वपाठजातिं च गेयेन समभिप्लुताम् ॥ ५ ॥

बालयो राघव श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् ।
अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ॥ ६ ॥

राज्ञश्चैव नरव्याघ्र पण्डिताश्चैव नैगमान् ।
पौराणिकान् शब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातय ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति । वाल्मीकि मुनिके इस प्रकार समझानेपर तुरत ही कुशका सारा भ्रम जाता रहा और वह अपने अन्त करणसे मुक्त होकर बाहरसे सम्पूर्ण क्रियाएँ करते हुए विचरने लगा ॥ १ ॥ तब वाल्मीकिजीने उन दोनो महाबुद्धिमान् सीता-पुत्रोसे कहा—"तुम दोनो जहाँ-तहाँ नगरकी गालियोमे सब ओर गाते हुए विचरो और यदि महाराज रामकी सुननेकी इच्छा हो तो उनके सामने भी गाओ, परन्तु वे कुछ देने लगे तो लेना मत ॥ २-३ ॥

मुनिकी ऐसी आज्ञा होनेपर वे गाते हुए विचरने लगे। ऋषिने जहाँ-जहाँ गान करनेको पहले कहा था उन्ही-उन्ही स्थानोपर उन्होने गान किया। तब ककुत्स्थनन्दन रघुनाथजीने जहाँ-तहाँ अपने पूर्व-चरित्रके गाये जानेका समाचार सुना। भगवान् रामको यह सुनकर कि, उन बालकोकी गान-विधि निराले ही ढगकी और स्वर-ताल-सम्पन्न है बडा ही कुतूहल हुआ। अत नरशार्दूल महाराज रामने यज्ञकर्मके विश्राम-समयमे सम्पूर्ण मुनीश्वरो, राजाओ, पण्डितो, शास्त्रज्ञो, पौराणिको, शब्दशास्त्रियो, बडे-बूढो और द्विजातियोको

एतान्सर्वान्समाहूय गायकौ समवेशयत्।
ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादय ॥ ८ ॥
रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता ह्यनिमेषणा ।
अवोचन् सर्व एवैते परस्परमथागता ॥ ९ ॥
इमौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्बिम्बमिवोदितौ ।
जटिलौ यदि न स्याता न च वल्कलधारिणौ ॥ १० ॥
विशेष नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा ।
एव सवदता तेषा विस्मिताना परस्परम् ॥ ११ ॥
उपचक्रमतुर्गातु तावुभौ मुनिदारकौ ।
तत प्रवृत्तं मधुर गान्धर्वमतिमानुषम् ॥ १२ ॥
श्रुत्वा तन्मधुर गीतमपराह्णे रघूत्तम ।
उवाच भरत चाभ्या दीयतामयुत वसु ॥ १३ ॥
दीयमान सुवर्ण तु न तज्जगृहतुस्तदा ।
किमनेन सुवर्णेन राजन्नो वन्यभोजनौ ॥ १४ ॥
इति सन्त्यज्य सन्दत्त जग्मतुर्मुनिसन्निधिम् ।
एव श्रुत्वा तु चरित राम स्वस्यैव विस्मित ॥ १५ ॥
ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ शत्रुघ्न चेदमब्रवीत् ।
हनूमन्त सुषेण च विभीषणमथाङ्गदम् ॥ १६ ॥
भगवन्त महात्मान वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ।
आनयध्व मुनिवर ससीत देवसम्मितम् ॥ १७ ॥
अस्यास्तु पर्षदो मध्ये प्रत्यय जनकात्मजा ।
करोतु शपथ सर्वे जानन्तु गतकल्मषाम् ॥ १८ ॥
सीतां तद्वचन श्रुत्वा गता सर्वेऽतिविस्मिता ।
ऊचुर्यथोक्त रामेण वाल्मीकिं रामपार्षदा ॥ १९ ॥
रामस्य हृद्गत सर्व ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् ।
श्व करिष्यति वै सीता शपथ जनसंसदि ॥ २० ॥
योषिता परम दैव पतिरेव न सशय ।
तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा सर्वे प्रोचुर्मुनेर्वच ॥ २१ ॥
राघवस्यापि रामोऽपि श्रुत्वा मुनिवचस्तथा ।
राजानो मुनय सर्वे शृणुध्वमिति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

बुलाया ॥ ४—७ ॥ इन सबको बुला चुकनेपर उन्होने गानेवाले बालकोको बुलाया । वे सब राजा और ब्राह्मण आदि प्रसन्न-चित्तसे महाराज राम और उन दोनो बालकोको देखकर आश्चर्यचकित हो गये और उनकी टकटकी बँध गयी । तब वहाँ एकत्रित हुए वे सब लोग आपसमे कहने लगे ॥ ८-९ ॥ "ये दोनो तो, बिम्बसे प्रकट हुए प्रतिबिम्बके समान, श्रीरामचन्द्रजीके समान ही दिखायी देते है । यदि ये जटाजूट और वल्कल धारण किये न होते तो इनमे और रघुनाथजीमे कोई अन्तर ही न जान पडता ।" इस प्रकार जब वे सब लोग आश्चर्यचकित होकर आपसमे विवाद कर रहे थे, उन दोनो मुनिकुमारोने गानेकी तैयारी की और (कुछ ही देरमे) वहाँ अत्यन्त मधुर एव अलौकिक गान होने लगा ॥ १०—१२ ॥

वह मधुर गान सुनकर श्रीरघुनाथजीने दिन ढलनेपर भरतजीसे कहा—"इन्हे दस सहस्र सुवर्ण-मुद्रा दो" ॥ १३ ॥ किन्तु उन बालकोने उस दिये हुए सुवर्णको ग्रहण न किया । वे ऐसा कहकर कि 'हे राजन् ! हम तो वनके कन्द-मूल-फलादि खानेवाले है, हम यह द्रव्य लेकर क्या करेगे' उस दिये हुए सुवर्णको वही छोडकर मुनिके निकट चले आये । इस प्रकार भगवान् राम अपना ही चरित्र सुनकर विस्मित हो गये ॥ १४-१५ ॥ और उन्हे सीताजीके पुत्र जानकर शत्रुघ्न, हनुमान्, सुषेण, विभीषण और अगदादिसे कहा— ॥ १६ ॥ "देवतुल्य महानुभाव मुनिश्रेष्ठ भगवान् श्रीवाल्मीकि मुनिको सीताजीके सहित लाओ ॥ १७ ॥ इस सभामे जानकीजी सबको विश्वास करानेके लिये शपथ करे, जिससे सब लोग सीताको निष्कलक जान जायँ ।" भगवान् रामके ये वचन सुनकर उनके वे सब दूत अति आश्चर्यचकित हो वाल्मीकिजीके पास गये और जैसा श्रीरामचन्द्रजीने कहा था वह सब उनसे कह दिया ॥ १८-१९ ॥ इससे भगवान् रामका आशय जानकर श्रीवाल्मीकिजीने कहा—"सीताजी कल जनसाधारणमे शपथ करेगी ॥ २० ॥ इसमे सन्देह नही, स्त्रियोके लिये सबसे बडा देव पति ही है ।" मुनिके ये वचन सुनकर उन सबने सहसा जाकर वे सब बाते

सीताया शपथ लोका विजानन्तु शुभाशुभम् ।
इत्युक्ता राघवेणाथ लोका सर्वे दिदृक्षव ॥ २३ ॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैव महर्षय ।
वानराश्च समाजग्मु कौतूहलसमन्विता ॥ २४ ॥

ततो मुनिवरस्तूर्ण ससीत समुपागमत् ।
अग्रतस्तमृषिं कृत्वायान्ती किञ्चिदवाङ्मुखी ॥ २५ ॥

कृताञ्जलिर्बाष्पकण्ठा सीता यज्ञ विवेश तम् ।
दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुयायिनीम् ॥ २६ ॥

वाल्मीके पृष्ठत सीता साधुवादो महानभूत् ।
तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

सीतासहायो वाल्मीकिरिति प्राह च राघवम् ।
इय दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ॥ २८ ॥

अपापा ते पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपत ।
लोकापवादभीतेन त्वया राम महावने ॥ २९ ॥

प्रत्यय दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हसि ।
इमौ तु सीतातनयाविमौ यमलजातकौ ॥ ३० ॥

सुतौ तु तव दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
प्रचेतसोऽह दशम पुत्रो रघुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥

अनृत न स्मराम्युक्त तथेमौ तव पुत्रकौ ।
बहून्वर्षगणान् सम्यक्तपश्चर्या मया कृता ॥ ३२ ॥

नोपाश्नीया फल तस्या दुष्टेय यदि मैथिली ।
वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघव प्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि सुव्रत ।
प्रत्ययो जनितो मह्य तव वाक्यैरकिल्बिषै ॥ ३४ ॥

लङ्कायामपि दत्तो मे वैदेह्या प्रत्ययो महान् ।
देवाना पुरतस्तेन मन्दिरे सम्प्रवेशिता ॥ ३५ ॥

सेय लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापापि सती पुरा ।
सीता मया परित्यक्ता भवास्तत्क्षन्तुमर्हति ॥ ३६ ॥

रघुनाथजीसे कह दी । तब श्रीरामचन्द्रजीने मुनिका सन्दश सुनकर कहा—"हे नृपतिगण और मुनिजन ! अब आप सब लोग सीताजीकी शपथ सुने, और उससे उनका शुभाशुभ जान ले ।"

भगवान् रामके इस प्रकार कहनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, महर्षि और वानर आदि सभी लोग कुतूहलवश सीताजीकी शपथ देखनेके लिये आये ॥ २१—२४ ॥ तब तुरत ही सीताजीके सहित मुनीश्वर भी आये। श्रीसीताजीने वाल्मीकि मुनिको आगे कर (उनके पीछे-पीछे) मुख कुछ नीचेको किये हाथ जोडे गद्गद-कण्ठसे यज्ञशालामे प्रवेश किया। ब्रह्माजीके पीछे आती हुई लक्ष्मीजीके समान सीताजीको वाल्मीकि मुनिके पीछे आती देख उस जन-समाजमे बडा भारी साधुवाद (धन्य है, धन्य है—ऐसा शब्द) होने लगा। तब सीताजीके सहित मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिने उस जनसमूहमे घुसकर श्रीरघुनाथजीसे कहा—"हे दशरथनन्दन ! इस पतिव्रता धर्मपरायणा निष्कलका सीताको तुमने कुछ समय हुआ लोकापवादसे डरकर भयकर वनमे मेरे आश्रमके पास छोड दिया था ॥ २५—२९ ॥ अब वह अपना विश्वास देना चाहती है, आप उसे आज्ञा दीजिये। ये दोनो (कुश और लव) सीताके एक साथ उत्पन्न हुए पुत्र है ॥ ३० ॥ मै सच कहता हूँ, ये दोनो दुर्जय वीर आपहीकी सन्तान है। हे राघव ! मै प्रजापति प्रचेताका दसवाँ पुत्र हूँ ॥ ३१ ॥ मैने कभी मिथ्या भाषण किया हो—ऐसा मुझे स्मरण नही है, वही मै आपसे कहता हूँ कि ये बालक आपहीके पुत्र है। मैने अनेको वर्षतक खूब तपस्या की है ॥ ३२ ॥ यदि इस मिथिलेशकुमारीमे कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका कोई फल न मिले।"

वाल्मीकिजीके इस प्रकार कहनेपर श्रीरघुनाथजी बोले— ॥ ३३ ॥ "हे महाप्राज्ञ ! हे सुव्रत ! आप जैसा कहते है, बात ऐसी ही है। मुझे तो आपके निर्दोष वाक्योसे ही विश्वास हो गया ॥ ३४ ॥ जानकीजीने लकामे भी देवताओके सामने बडी विकट परीक्षा दी थी, इसीलिये मैने उन्हे अपने घरमे रख लिया था ॥ ३५ ॥ किन्तु हे ब्रह्मन् ! उन्ही सती सीताजीको सर्वथा निर्दोष होते हुए भी मैने लोकनिन्दाके भयसे कुछ दिन हुए छोड दिया, सो आप

ममैव जातौ जानामि पुत्रावेतौ कुशीलवौ ।
शुद्धाया जगतीमध्ये सीताया प्रीतिरस्तु मे ॥ ३७ ॥

देवा सर्वे परिज्ञाय रामाभिप्रायमुत्सुका ।
ब्रह्माणमग्रत कृत्वा समाजग्मु सहस्रश ॥ ३८ ॥

प्रजा समागमन्हृष्टा सीता कौशेयवासिनी ।
उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टि प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

रामादन्य यथाह वै मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे धरणी देवी विवर दातुमर्हति ॥ ४० ॥

तथा शपन्त्या सीताया प्रादुरासीन्महाद्भुतम् ।
भूतलाद्दिव्यमत्यर्थ सिहासनमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

नागेन्द्रैर्ध्रियमाण च दिव्यदेहै रविप्रभम् ।
भूदेवी जानकीं दोर्भ्या गृहीत्वा स्नेहसयुता ॥ ४२ ॥

स्वागत तामुवाचैनामासने सन्यवेशयत् ।
सिहासनस्था वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥ ४३ ॥

निरन्तरा पुष्पवृष्टिर्दिव्या सीतामवाकिरत् ।
साधुवादश्च सुमहान् देवाना परमाद्भुत ॥ ४४ ॥

ऊचुश्च बहुधा वाचो ह्यन्तरिक्षगता सुरा ।
अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमा ॥ ४५ ॥

वानराश्च महाकाया सीताशपथकारणात् ।
केचिच्चिन्तापरास्तस्य केचिद्ध्यानपरायणा ॥ ४६ ॥

केचिद्राम निरीक्षन्त केचित्सीतामचेतस ।
मुहूर्तमात्र तत्सर्व तूष्णीभूतमचेतनम् ॥ ४७ ॥

सीताप्रवेशन दृष्ट्वा सर्व सम्मोहित जगत् ।
रामस्तु सर्व ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम् ॥ ४८ ॥

अजानन्निव दु खेन शुशोच जनकात्मजाम् ।
ब्रह्मणा ऋषिभि सार्ध बोधितो रघुनन्दन ॥ ४९ ॥

प्रतिबुद्ध इव स्वप्नाद्यकारानन्तरा क्रिया ।
विससर्ज ऋषीन् सर्वानृत्विजो ये समागता ॥ ५० ॥

मेरा यह अपराध क्षमा करे ॥ ३६ ॥ मै यह भी जानता हूँ कि ये दोनो पुत्र कुश और लव मुझहीसे उत्पन्न हुए है, ससारमे परम साध्वी सीतामे मेरी प्रीति हो'' ॥ ३७ ॥

उस समय, रामजीका अभिप्राय जानकर समस्त देवगण अति उत्सुक हो ब्रह्माजीको आगे कर सहस्रोकी सख्यामे वहाँ आये ॥ ३८ ॥ तथा बहुत-से प्रजाजन भी प्रसन्नचित्तसे वहाँ एकत्रित हो गये। तब रेशमी वस्त्र धारण किये उत्तरकी ओर मुख और नीचेको नेत्र किये खडी हुई श्रीसीताजीने हाथ जोडकर कहा— ॥ ३९ ॥ ''यदि मै भगवान् रामके अतिरिक्त अन्य पुरुषका मनसे भी चिन्तन नही करती तो पृथिवीदेवी मुझे आश्रय दे'' ॥ ४० ॥

श्रीसीताजीके इस प्रकार शपथ करते ही भूमितलसे एक अति अद्भुत परम दिव्य और अत्यन्त श्रेष्ठ सिहासन प्रकट हुआ ॥ ४१ ॥ वह सूर्यके समान तेजस्वी सिहासन दिव्यशरीरधारी नागराजोद्वारा धारण किया हुआ था। तब पृथिवीदेवीने जानकीजीको अपनी दोनो भुजाओसे प्रेम-पूर्वक ग्रहण कर उनका स्वागत किया और उन्ह आसनपर बिठा लिया। जब श्रीसीताजी सिहासनपर बैठकर रसातलको जाने लगी तो उनपर दिव्य पुष्पोकी निरन्तर वर्षा होने लगी और देवताओके मुखसे साधुवादका अति अद्भुत और महान् घोष होने लगा ॥ ४२—४४ ॥ आकाशमे स्थित देवगण नाना प्रकारके वचन बोलने लगे। सीताजीके शपथ करनेसे आकाश और पृथिवी-तलके समस्त स्थावर-जगम प्राणियो और बडे-बडे डीलवाले वानरोमेसे कोई चिन्ता करने लगे, कोई ध्यानस्थ हो गये ॥ ४५-४६ ॥ तथा कोई रामजीकी और कोई सीताजीकी ओर देखकर अचेत हो गये। एक मुहूर्तके लिये वह सारा समाज स्तब्ध और चेतनाशून्य हो गया ॥ ४७ ॥

सीताजीका पृथिवी-प्रवेश देखकर सारा ससार मोहित हो गया। भगवान् राम आगामी कार्यका सम्पूर्ण महत्त्व जानते थे तथापि अनजानके समान सीताजीके लिये शोक करने लगे। तब ऋषियोके सहित ब्रह्माजीने रघुनाथजीको समझाया ॥ ४८-४९ ॥ तदनन्तर उन्होने सोकर उठे हुएके समान यज्ञका अवशेष कर्म समाप्त किया और यज्ञके ऋत्विक् होकर जो ऋषिगण आये थे उन

तान् सर्वान् धनरत्नाद्यैस्तोषयामास भूरिश ।
उपादाय कुमारौ तावयोध्यामगमत्प्रभु ॥ ५१ ॥

तदादि नि स्पृहो राम सर्वभोगेषु सर्वदा ।
आत्मचिन्तापरो नित्यमेकान्ते समुपस्थित ॥ ५२ ॥

एकान्ते ध्याननिरते एकदा राघवे सति ।
ज्ञात्वा नारायण साक्षात्कौसल्या प्रियवादिनी ॥ ५३ ॥

भक्त्यागत्य प्रसन्न त प्रणता प्राह हृष्टधी ।
राम त्व जगतामादिरादिमध्यान्तवर्जित ॥ ५४ ॥

परमात्मा परानन्द पूर्ण पुरुष ईश्वर ।
जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकत ॥ ५५ ॥

अवसाने ममाप्यद्य समयोऽभूद्रघूत्तम ।
नाद्याप्यबोधज कृत्स्नो भवबन्धो निवर्तते ॥ ५६ ॥

इदानीमपि मे ज्ञान भवबन्धनिवर्तकम् ।
यथा सङ्क्षेपतो भूयात्तथा बोधय मा विभो ॥ ५७ ॥

निर्वेदवादिनीमेव मातर मातृवत्सल ।
दयालु प्राह धर्मात्मा जराजर्जरिता शुभाम् ॥ ५८ ॥

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ता पुरा मोक्षाप्तिसाधका ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वत ॥ ५९ ॥

भक्तिर्विभिद्यते मातस्त्रिविधा गुणभेदत ।
स्वभावो यस्य यस्तेन तस्य भक्तिर्विभिद्यते ॥ ६० ॥

यस्तु हिंसा समुद्दिश्य दम्भ मात्सर्यमेव वा ।
भेददृष्टिश्च सरम्भी भक्तो मे तामस स्मृत ॥ ६१ ॥

फलाभिसन्धिर्भोगार्थी धनकामो यशस्तथा ।
अर्चादौ भेदबुद्ध्या मा पूजयेत्स तु राजस ॥ ६२ ॥

परस्मिन्नर्पित यस्तु कर्म निर्हरणाय वा ।
कर्तव्यमिति वा कुर्याद्भेदबुद्ध्या स सात्त्विक ॥ ६३ ॥

मद्गुणाश्रयणादेव मय्यनन्तगुणालये ।
अविच्छिन्ना मनोवृत्तिर्यथा गङ्गाम्बुनोऽम्बुधौ ॥ ६४ ॥

सबको रत्न और धन आदिसे भली प्रकार सन्तुष्ट कर विदा किया। फिर प्रभु राम उन दोनो कुमारोको साथ लेकर अयोध्यापुरीमे आये ॥ ५०-५१ ॥ तबसे श्रीरामचन्द्रजी सब भोगोसे विरक्त होकर निरन्तर आत्मचिन्तन करते हुए एकान्तमे रहने लगे ॥ ५२ ॥

एक दिन जब श्रीरघुनाथजी एकान्तमे ध्यानमग्न थे, प्रियभाषिणी श्रीकौसल्याजीने उन्हे साक्षात् नारायण जानकर अति भक्तिभावसे उनके पास आ उन्हे प्रसन्न जान अति हर्षसे विनयपूर्वक कहा—"हे राम! तुम ससारके आदिकारण हो तथा स्वय आदि, अन्त और मध्यसे रहित हो ॥ ५३-५४ ॥ तुम परमात्मा, परानन्दस्वरूप, सर्वत्र पूर्ण, जीवरूपसे शरीररूप पुरमे शयन करनेवाले और सबके स्वामी हो, मेरे प्रबल पुण्यके उदय होनेसे ही तुमने मेरे गर्भसे जन्म लिया है ॥ ५५ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! अब अन्त समयमे मुझे आज ही (आपसे कुछ पूछनेका) समय मिला है, अभीतक मेरा अज्ञानजन्य ससार-बन्धन पूर्णतया नही टूटा ॥ ५६ ॥ हे विभो! मुझे सक्षेपमे कोई ऐसा उपदेश दीजिये जिससे अब भी मुझे भवबन्धन काटनेवाला ज्ञान हो जाय" ॥ ५७ ॥

तब मातृभक्त, दयामय, धर्मपरायण भगवान् रामने इस प्रकार वैराग्यपूर्ण वचन कहनेवाली अपनी जराजर्जरित शुभलक्षणा मातासे कहा— ॥ ५८ ॥ "मैने पूर्वकालमे मोक्षप्राप्तिके साधनरूप तीन मार्ग बतलाये है—कर्मयोग, ज्ञानयोग और सनातन भक्तियोग ॥ ५९ ॥ हे मात! (साधकके) गुणानुसार भक्तिके तीन भेद है। जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी भक्ति भी वैसे ही भेदवाली होती है ॥ ६० ॥ जो पुरुष हिंसा, दम्भ या मात्सर्यके उद्देश्यसे भक्ति करता है, तथा जो भेददृष्टिवाला और क्रोधी होता है वह तामस भक्त माना गया है ॥ ६१ ॥ जो फलकी इच्छावाला, भोग चाहनेवाला तथा धन और यशकी कामनावाला होता है और भेदबुद्धिसे अर्चा आदिमे मेरी पूजा करता है वह रजोगुणी होता है ॥ ६२ ॥ तथा जो पुरुष परमात्माको अर्पण किये हुए कर्म-सम्पादन करनेके लिये अथवा 'करना चाहिये' इसलिये भेदबुद्धिसे कर्म करता है वह सात्त्विक है ॥ ६३ ॥ जिस प्रकार गङ्गाजीका जल समुद्रमे लीन हो जाता है उसी प्रकार जब मनोवृत्ति मेरे गुणोके आश्रयसे मुझ अनन्त गुणधाममे

तदेव भक्तियोगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मयि जायते ॥ ६५ ॥

सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा ।
ददात्यपि न गृह्णन्ति भक्ता मत्सेवनं विना ॥ ६६ ॥

स एवात्यन्तिको योगो भक्तिमार्गस्य भामिनि ।
मद्भावं प्राप्नुयात्तेन अतिक्रम्य गुणत्रयम् ॥ ६७ ॥

महता कामहीनेन स्वधर्माचरणेन च ।
कर्मयोगेन शस्तेन वर्जितेन विहिंसनात् ॥ ६८ ॥

मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया सङ्गेनासत्यवर्जनैः ॥ ६९ ॥

बहुमानेन महतां दुःखिनामनुकम्पया ।
स्वसमानेषु मैत्र्या च यमादीनां निषेवया ॥ ७० ॥

वेदान्तवाक्यश्रवणान्मम नामानुकीर्तनात् ।
सत्सङ्गेनार्जवेनैव ह्यहमः परिवर्जनात् ॥ ७१ ॥

काङ्क्षया मम धर्मस्य परिशुद्धान्तरो जनः ।
मद्गुणश्रवणादेव याति मामञ्जसा जनः ॥ ७२ ॥

यथा वायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत् ।
योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥ ७३ ॥

सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः ।
तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः ॥ ७४ ॥

क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मे नाम्ब तोषणम् ।
भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहं न पूजितः ॥ ७५ ॥

तावन्मामर्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः ।
यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ॥ ७६ ॥

यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च ।
भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः ॥ ७७ ॥

निरन्तर लगी रहे, तो वही मेरे निर्गुण भक्तियोगका लक्षण है। मेरे प्रति जो निष्काम और अखण्ड भक्ति उत्पन्न होती है वह साधकको सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य* चार प्रकारकी मुक्ति देती है, किन्तु उसके देनेपर भी वे भक्तजन मेरी सेवाके अतिरिक्त और कुछ ग्रहण नहीं करते ॥ ६४—६६ ॥ हे मातः ! भक्तिमार्गका आत्यन्तिक योग यही है। इसके द्वारा भक्त तीनों गुणोंको पारकर मेरा ही रूप हो जाता है ॥ ६७ ॥

(अब इस निर्गुण भक्तिका साधन बतलाता हूँ—) अपने धर्मका अत्यन्त निष्काम भावसे आचरण करनेसे, अत्युत्तम हिंसाहीन कर्म-योगसे ॥ ६८ ॥ मेरे दर्शन, स्तुति, महापूजा, स्मरण और वन्दनसे, प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे, असत्यके त्याग और सत्सङ्गसे ॥ ६९ ॥ महापुरुषोंका अत्यन्त मान करनेसे, दुःखियोंपर दया करनेसे, अपने समान पुरुषोंसे मैत्री करनेसे, यम-नियमादिका सेवन करनेसे ॥ ७० ॥ वेदान्त-वाक्योंका श्रवण करनेसे, मेरा नाम-संकीर्तन करनेसे, सत्सङ्ग और कोमलतासे, अहङ्कारका त्याग करनेसे ॥ ७१ ॥ और मेरे भागवत-धर्मोंकी इच्छा करनेसे जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वह पुरुष मेरे गुणोंका श्रवण करनेसे ही अति सुगमतासे मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार वायुके द्वारा गन्ध अपने आश्रयको छोड़कर घ्राणेन्द्रियमें प्रविष्ट होता है उसी प्रकार योगाभ्यासमें लगा हुआ चित्त आत्मामें लीन हो जाता है ॥ ७३ ॥ समस्त प्राणियोंमें आत्मरूपसे मैं ही स्थित हूँ, हे मातः ! उसे न जानकर मूढ पुरुष केवल बाह्य भावना करता है ॥ ७४ ॥ किन्तु क्रियासे उत्पन्न हुए अनेक पदार्थोंसे भी मेरा सन्तोष नहीं होता। अन्य जीवोंका तिरस्कार करनेवाले प्राणियोंसे प्रतिमामें पूजित होकर भी मैं वास्तवमें पूजित नहीं होता ॥ ७५ ॥ मुझ परमात्मदेवका अपने कर्मोंद्वारा प्रतिमा आदिमें तभीतक पूजन करना चाहिये जबतक कि समस्त प्राणियोंमें और अपने-आपमें मुझे स्थित न जाने ॥ ७६ ॥ जो अपने आत्मा और परमात्मामें भेदबुद्धि करता है उस भेददर्शीको मृत्यु अवश्य भय उत्पन्न करती है, इसमें सन्देह

* वैकुण्ठादि भगवान्‌के लोकोंको प्राप्त करना 'सालोक्य' मुक्ति है। हर समय भगवान्‌हीके निकट रहना 'सामीप्य' है, भगवान्‌के समान ऐश्वर्य लाभ करना 'सार्ष्टि' है और भगवान्‌में लीन हो जाना 'सायुज्य' है।

मामत सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु सस्थितम् ।
एक ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चार्चेदभिन्नधी ॥ ७८ ॥

चेतसैवानिश सर्वभूतानि प्रणमेत्सुधी ।
ज्ञात्वा मा चेतन शुद्ध जीवरूपेण सस्थितम् ॥ ७९ ॥

तस्मात्कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयो ।
भक्तियोगो ज्ञानयोगो मया मातरुदीरित ॥ ८० ॥

आलम्ब्यैकतर वापि पुरुष शुभमृच्छति ।
ततो मा भक्तियोगेन मात सर्वहृदि स्थितम् ॥ ८१ ॥

पुत्ररूपेण वा नित्य स्मृत्वा शान्तिमवाप्स्यसि ।
श्रुत्वा रामस्य वचन कौसल्यानन्दसयुता ॥ ८२ ॥

राम सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा ससारबन्धनम् ।
अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमा गतिम् ॥ ८३ ॥

कैकेयी चापि योग रघुपतिगदित
पूर्वमेवाधिगम्य
श्रद्धाभक्तिप्रशान्ता हृदि रघुतिलक
भावयन्ती गतासु ।

गत्वा स्वर्ग स्फुरन्ती दशरथसहिता
मोदमानावतस्थे
माता श्रीलक्ष्मणस्याप्यतिविमलमति
प्राप भर्तु समीपम् ॥ ८४ ॥

नही ॥ ७७ ॥ इसलिये अभेददर्शी भक्त समस्त परिच्छिन्न प्राणियोमे स्थित मुझ एकमात्र परमात्माका ज्ञान, मान और मैत्री आदिसे पूजन करे ॥ ७८ ॥ इस प्रकार मुझ शुद्ध चेतनको ही जीवरूपसे स्थित जानकर बुद्धिमान् पुरुष अहर्निश सब प्राणियोको चित्तसे ही प्रणाम करे ॥ ७९ ॥ इसलिये जीव और ईश्वरका भेद कभी न देखे। हे मात ! मैने तुमसे यह भक्तियोग और ज्ञानयोगका वर्णन किया ॥ ८० ॥ इनमेसे एकका भी अवलम्बन करनेसे पुरुष आत्यन्तिक शुभ प्राप्त कर लेता है। अत हे मात ! मुझे सब प्राणियोके अन्त करणमे स्थित जानते हुए अथवा पुत्ररूपसे भक्तियोगके द्वारा नित्यप्रति स्मरण करते रहनेसे तुम शान्ति प्राप्त करोगी।''

भगवान् रामके ये वचन सुनकर कौसल्याजी आनन्दसे भर गयी ॥ ८१-८२ ॥ और हृदयमे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई ससार-बन्धनको काटकर तीनो प्रकारकी गतियोको पारकर परम गतिको प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ कैकेयीने भी रघुनाथजीद्वारा पहले (चित्रकूट-पर्वतपर) कहे हुए योगको हृदयगम कर श्रद्धा और भक्तिभावसे शान्तिपूर्वक हृदयमे रघुकुलतिलक भगवान् रामका ध्यान करते हुए प्राणत्याग किया और स्वर्गलोकमे जाकर दशरथजीके साथ सुशोभित हो आनन्दपूर्वक रहने लगी। इसी प्रकार श्रीलक्ष्मणजीकी माता अत्यन्त विमल बुद्धिवाली सुमित्राने भी अपने पतिका सामीप्य प्राप्त किया ॥ ८४ ॥

★

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

★

अष्टम सर्ग

कालका आगमन, लक्ष्मणजीका परित्याग और उनका स्वर्गगमन

श्रीमहादेव उवाच

अथ काले गते कस्मिन् भरतो भीमविक्रम ।
युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽगात्ससैनिक ॥ १ ॥

रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गन्धर्वनायकान् ।
तिस्र कोटी पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दन ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! कुछ काल बीतनेपर उग्रपराक्रमी भरतजी अपने मामा युधाजित्द्वारा बुलाये जानेपर भगवान् रामकी आज्ञा लेकर सेनासहित उनके यहाँ गये। वहाँ पहुँचकर रघुकुलनन्दन भरतजीने तीन करोड प्रमुख गन्धर्वोंको मार कर दो नगर

पुष्कर पुष्करावत्या तक्ष तक्षशिलाह्वये ।
अभिषिच्य सुतौ तत्र धनधान्यसुहृद्वृतौ ॥ ३ ॥

पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् ।
तत प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मण प्राह सादरम् ॥ ४ ॥

उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमा दिशम् ।
तत्र भिल्लान्विनिर्जित्य दुष्टान् सर्वापकारिण ॥ ५ ॥

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च महासत्त्वपराक्रमौ ।
द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नकै ॥ ६ ॥

अभिषिच्य सुतौ तत्र शीघ्रमागच्छ मा पुन ।
रामस्याज्ञा पुरस्कृत्य गजाश्वबलवाहन ॥ ७ ॥

गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् स्थापयित्वा कुमारकौ ।
सौमित्रि पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् ॥ ८ ॥

ततस्तु काले महति प्रयाते
राम सदा धर्मपथे स्थित हरिम् ।
द्रष्टु समागादृषिवेषधारी
कालस्ततो लक्ष्मणमित्युवाच ॥ ९ ॥

निवेदयस्वातिबलस्य दूत
मा द्रष्टुकाम पुरुषोत्तमाय ।
रामाय विज्ञापनमस्ति तस्य
महर्षिमुख्यस्य चिराय धीमन् ॥ १० ॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वित ।
आचचक्षेऽथ रामाय स सम्प्राप्त तपोधनम् ॥ ११ ॥

एव ब्रुवन्त प्रोवाच लक्ष्मण राघवो वच ।
शीघ्र प्रवेश्यता तात मुनि सत्कारपूर्वकम् ॥ १२ ॥

लक्ष्मणस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तापसम् ।
स्वतेजसा ज्वलन्त त घृतसिक्त यथानलम् ॥ १३ ॥

सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठ दीप्यमान स्वतेजसा ।
मुनिर्मधुरवाक्येन वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥ १४ ॥

तस्मै स मुनये राम पूजा कृत्वा यथाविधि ।
पृष्टवानामयमव्यग्रो राम पृष्टोऽथ तेन स ॥ १५ ॥

बसाये ॥ १-२ ॥ उनमेसे पुष्करावतीमे पुष्कर और तक्षशिलामे तक्ष नामक अपने दोनो पुत्रोको अभिषिक्त कर और उन्हे धन-धान्य तथा मित्र-मण्डलसे सम्पन्न कर वे लौट आये और भगवान् रामकी सेवामे तत्पर हो गये। तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर आदरपूर्वक लक्ष्मणजीसे कहा— ॥ ३-४ ॥ "हे सुमित्रानन्दन! तुम अपने दोनो कुमारोको लेकर पश्चिम दिशामे जाओ और वहाँ सबका अपकार करनेवाले दुष्ट भीलोको जीतकर दोनोके लिये दो नगर बसाओ और उनमे महाबलवान् और पराक्रमी अङ्गद तथा चित्रकेतुका हाथी, घोडे, धन और रत्नादि उपकरणोसे राजतिलक कर फिर तुरत ही मेरे पास लौट आओ।" भगवान् रामकी इस आज्ञाको शिरोधार्य कर लक्ष्मणजी हाथी-घोडे आदि दल-बलके सहित गये और समस्त शत्रुओको मारकर दोनो कुमारोको राजपदपर नियुक्त कर लौट आये तथा फिर राम-सेवामे तत्पर हो गये ॥ ५-८ ॥

तदनन्तर बहुत-सा काल व्यतीत होनेपर सर्वदा धर्म-मार्गका अवलम्बन करनेवाले भगवान् रामका दर्शन करनेके लिये ऋषिवेष धारण कर काल आया और लक्ष्मणजीसे यो बोला ॥ ९ ॥ "हे बुद्धिमन्! तुम पुरुषोत्तम महाराज रामसे निवेदन करो कि महर्षि अतिबलका दूत आपके दर्शनकी इच्छासे आया है। मुझे उन्हे बहुत देरतक उन महर्षिश्रेष्ठका सन्देश सुनाना है" ॥ १० ॥ उसके ये वचन सुनकर लक्ष्मणजीने बडी शीघ्रतासे श्रीरघुनाथजीको उन तपोधनके आनेकी सूचना दी ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने उनसे कहा—"भैया! मुनिराजको तुरत ही बडे सत्कारपूर्वक भीतर ले आओ" ॥ १२ ॥

तब लक्ष्मणजी 'बहुत अच्छा' कह घृताहुतिसे प्रज्वलित हुए अग्निके समान अपने तेजसे देदीप्यमान उस तपस्वीको भीतर ले आये ॥ १३ ॥ अपनी कान्तिसे प्रकाशमान उस मुनिने श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचनेपर उनसे अति मधुर वाणीमे 'आपका अभ्युदय हो' इस प्रकार कहा ॥ १४ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने उस मुनिकी विधिपूर्वक पूजा की और फिर शान्तभावसे रामचन्द्रजीने मुनिसे और मुनिने रामचन्द्रजीसे कुशल पूछी ॥ १५ ॥

दिव्यासने समासीनो राम प्रोवाच तापसम् ।
यदर्थमागतोऽसि त्वमिह तत्प्रापयस्व मे ॥ १६ ॥

वाक्येन चोदितस्तेन रामेणाह मुनिर्वच ।
द्वन्द्वमेव प्रयोक्तव्यमनालक्ष्य तु तद्वच ॥ १७ ॥

नान्येन चैतच्छ्रोतव्य नाख्यातव्य च कस्यचित् ।
शृणुयाद्वा निरीक्षेद्वा य स वध्यस्त्वया प्रभो ॥ १८ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
तिष्ठ त्व द्वारि सौमित्रे नायात्वत्र जनो रह ॥ १९ ॥

यथागच्छति को वापि स वध्यो मे न सशय ।
तत प्राह मुनिं रामो येन वा त्व विसर्जित ॥ २० ॥

यत्ते मनीषित वाक्य तद्वदस्व ममाग्रत ।
तत प्राह मुनिर्वाक्य शृणु राम यथातथम् ॥ २१ ॥

ब्रह्मणा प्रेषितोऽस्मीश कार्यार्थे तेऽन्तिक प्रभो ।
अह हि पूर्वजो देव तव पुत्र परन्तप ॥ २२ ॥

मायासङ्गमजो वीर काल सर्वहर स्मृत ।
ब्रह्मा त्वामाह भगवान् सर्वदेवर्षिपूजित ॥ २३ ॥

रक्षितु स्वर्गलोकस्य समयस्ते महामते ।
पुरा त्वमेक एवासीर्लोकान् सहृत्य मायया ॥ २४ ॥

भार्यया सहितस्त्व मामादौ पुत्रमजीजन ।
तथा भोगवत नागमनन्तमुदकेशयम् ॥ २५ ॥

मायया जनयित्वा त्व द्वौ ससत्त्वौ महाबलौ ।
मधुकैटभकौ दैत्यौ हत्वा मेदोऽस्थिसञ्चयम् ॥ २६ ॥

इमा पर्वतसम्बद्धा मेदिनीं पुरुषर्षभ ।
पद्मे दिव्यार्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥ २७ ॥

मा विधाय प्रजाध्यक्ष मयि सर्व न्यवेदयत् ।
सोऽह सयुक्तसम्भारस्त्वामवोच जगत्पते ॥ २८ ॥

रक्षा विधत्स्व भूतेभ्यो ये मे वीर्यापहारिण ।
ततस्त्व कश्यपाज्जातो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ २९ ॥

तदनन्तर दिव्यासनपर विराजमान महाराज रामने मुनिसे कहा—"आप जिस लिये यहाँ पधारे है वह (सन्देश) मुझसे कहिये" ॥ १६ ॥ भगवान् रामके इस वाक्यसे प्रेरित होकर मुनिने कहा—"वह बात किसी दूसरेको प्रकट न करते हुए हम दोनोके बीच ही कही जा सकती है ॥ १७ ॥ उसे न तो कोई सुने और न वह किसीके प्रति कही जाय। यदि उसे कोई सुने अथवा देखे तो हे प्रभो! आपको उसे मारना होगा" ॥ १८ ॥ तब रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कह लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण! तुम द्वारपर रहो, इस एकान्त स्थानमे मेरे पास कोई न आवे ॥ १९ ॥ यदि यहाँ कोई भी आया तो इसमे सन्देह नही, वह अवश्य मेरे हाथसे मारा जायगा।" फिर उन्होने मुनिसे कहा—"तुम्हे जिसने भेजा है और तुम्हारे मनमे जो बात है वह सब मुझसे कहो।"

तब मुनिने कहा—"हे राम! जो वास्तविक बात है सो सुनिये। हे ईश! हे प्रभो! मुझे एक कार्यके लिये ब्रह्माजीने आपके पास भेजा है। हे देव! हे शत्रुदमन! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ॥ २०—२२ ॥ हे वीर! मायाके साथ आपका सङ्गम होनेपर मै प्रकट हुआ था। मै सबका नाश करनेवाला हूँ और काल नामसे प्रसिद्ध हूँ। समस्त देवर्षियोसे पूजित भगवान् ब्रह्माजीने आपके लिये कहा है कि हे महामते! अब आपका स्वर्गलोककी रक्षा करनेका समय है। पूर्वकालमे समस्त लोकोका सहार कर एकमात्र आप ही रह गये थे ॥ २३-२४ ॥ फिर आपने अपनी भार्या मायाके सयोगसे सबसे पहले अपने पुत्र मुझको तथा जलमे शयन करनेवाले अनन्त नामक फणधारी शेषनागको रचा ॥ २५ ॥ इस प्रकार मायासे हमे उत्पन्न कर आपने महाबली और बडे शूरवीर दो मधु-कैटभ नामक दैत्योको मारा तथा उनके मेद और अस्थियोके समूहरूप इस पर्वतादिसे युक्त पृथिवीको रचा। हे पुरुषश्रेष्ठ! फिर अपनी नाभिसे प्रकट हुए दिव्य सूर्यके समान तेजस्वी कमलसे मुझे उत्पन्न कर और मुझे ही प्रजापति बनाकर सृष्टि-रचनाका सारा भार मुझे ही सौंप दिया। हे जगत्पते! इस प्रकार भार ग्रहण करनेपर मैं आपसे बोला ॥ २६—२८ ॥ "जो प्राणी मेरे वीर्य (प्रजा) का नाश करनेवाले हैं उनसे रक्षा कीजिये।" तब आप कश्यपजीके यहाँ वामनरूपधारी विष्णुभगवान् होकर

हृतवानसि भूभारं वधाद्रक्षोगणस्य च ।
सर्वासूत्सार्यमाणासु प्रजासु धरणीधर ॥ ३० ॥
रावणस्य वधाकाङ्क्षी मर्त्यलोकमुपागतः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ ३१ ॥
कृत्वा वासस्य समयं त्रिदशेष्वात्मनः पुरा ।
स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृषु ॥ ३२ ॥
कालस्तापसरूपेण त्वत्समीपमुपागमत् ।
ततो भूयश्च ते बुद्धिर्यदि राज्यमुपासितुम् ॥ ३३ ॥
तत्तथा भव भद्रं ते एवमाह पितामहः ।
यदि ते गमने बुद्धिर्देवलोकं जितेन्द्रिय ॥ ३४ ॥
सनाथा विष्णुना देवा भजन्तु विगतज्वराः ।
चतुर्मुखस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा कालेन भाषितम् ॥ ३५ ॥
हसन् रामस्तदा वाक्यं कृत्स्नस्यान्तकमब्रवीत् ।
श्रुतं तव वचो मेऽद्य ममापीष्टतरं तु तत् ॥ ३६ ॥
सन्तोषः परमो ज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ।
त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ॥ ३७ ॥
भद्रं तेऽस्त्वागमिष्यामि यत एवाहमागतः ।
मनोरथस्तु सम्प्राप्तो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ३८ ॥
मत्सेवकानां देवानां सर्वकार्येषु वै मया ।
स्थातव्यं मायया पुत्र यथा चाह प्रजापतिः ॥ ३९ ॥
एवं तयोः कथयतोर्दुर्वासा मुनिरभ्यगात् ।
राजद्वारं राघवस्य दर्शनापेक्षया द्रुतम् ॥ ४० ॥
मुनिर्लक्ष्मणमासाद्य दुर्वासा वाक्यमब्रवीत् ।
शीघ्रं दर्शय रामं मे कार्यं मेऽत्यन्तमाहितम् ॥ ४१ ॥
तच्छ्रुत्वा प्राह सौमित्रिर्मुनिं ज्वलनतेजसम् ।
रामेण कार्यं किं तेऽद्य किं तेऽभीष्टं करोम्यहम् ॥ ४२ ॥
राजा कार्यान्तरे व्यग्रो मुहूर्तं सम्प्रतीक्ष्यताम् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधसन्तप्तो मुनिः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४३ ॥
अस्मिन् क्षणे तु सौमित्रे न दर्शयसि चेद्विभुम् ।
रामं सविषयं वंशं भस्मीकुर्यां न संशयः ॥ ४४ ॥

प्रकट हुए ॥ २९ ॥ और राक्षसोका नाश करके आपने पृथिवीका भार उतारा। हे धरणीधर! (इस समय भी) सारी प्रजाको उच्छिन्न होते देख आप रावणका वध करनेके लिये मर्त्यलोकमे पधारे थे। यहाँ रहनेके लिये आपने पूर्वकालमे देवताओमे ग्यारह सहस्र वर्ष समय निश्चित किया था, सो आपकी मानव-शरीरकी आयु पूर्ण होनेके साथ ही आपका वह मनोरथ पूर्ण हो चुका है ॥ ३०—३२ ॥ अब, तापसरूपसे काल आपके पास आया है। यदि अभी आपका विचार कुछ दिन और राज्य करनेका हो तो आपका शुभ हो, वैसा ही कीजिये—ऐसा पितामह ब्रह्माजीने कहा है। हे जितेन्द्रिय! यदि आपका विचार देवलोक चलनेका हो तो (आप) विष्णुभगवान्से सनाथ होकर देवगण निश्चिन्त हो जायँ।"

कालके मुखसे ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर रामजी हँसे और सबका अन्त करनेवाले कालसे बोले—"मैने तुम्हारी सब बाते सुन ली। वे मुझे भी अत्यन्त इष्ट है ॥ ३३—३६ ॥ तुम्हारे आनेके कारण मुझे बडा सन्तोष हुआ है। मेरा अवतार तीनो लोकोका कार्य करनेके लिये ही हुआ करता है ॥ ३७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब मै जहाँसे आया था वही फिर चला जाऊँगा, मेरा सारा मनोरथ पूर्ण हो गया, इसमे मुझे कुछ विचारना नही है ॥ ३८ ॥ हे पुत्र! देवगण मेरे सेवक है, मुझे जैसा कि ब्रह्माजीने कहा है, मायासे उनके सब कार्योमे अवश्य तत्पर रहना चाहिये" ॥ ३९ ॥

उनके इस प्रकार वार्तालाप करते समय मुनिवर दुर्वासाजी रघुनाथजीका दर्शन करनेकी इच्छासे शीघ्रताके साथ राजद्वारपर पहुँचे ॥ ४० ॥ वहाँ दुर्वासा मुनिने लक्ष्मणजीके पास आकर कहा—"मुझे तुरत ही महाराज रामसे मिलाओ, मेरा उनसे एक अत्यन्त आवश्यक कार्य आ पडा है" ॥ ४१ ॥ यह सुन श्रीलक्ष्मणजीने उन अग्निके समान तेजस्वी मुनिसे कहा—"इस समय महाराज रामसे आपको क्या काम है? आपकी क्या इच्छा है? उसे मै ही पूरा करूँगा ॥ ४२ ॥ इस समय महाराज एक और कार्यमे सलग्न है, कुछ देर ठहरिये।" यह सुनते ही मुनिने क्रोधसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीसे कहा— ॥ ४३ ॥ "लक्ष्मण! यदि इसी क्षण तुमने मुझे भगवान् रामसे न मिलाया, तो इसमे सन्देह नही, मै देशके सहित तुम्हारे वशको अभी भस्म कर डालूँगा" ॥ ४४ ॥

दिव्यासने समासीनो राम प्रोवाच तापसम्।
यदर्थमागतोऽसि त्वमिह तत्प्रापयस्व मे ॥ १६ ॥

वाक्येन चोदितस्तेन रामेणाह मुनिर्वच ।
द्वन्द्वमेव प्रयोक्तव्यमनालक्ष्य तु तद्वच ॥ १७ ॥

नान्येन चैतच्छ्रोतव्य नाख्यातव्य च कस्यचित्।
शृणुयाद्वा निरीक्षेद्वा य स वध्यस्त्वया प्रभो ॥ १८ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
तिष्ठ त्व द्वारि सौमित्रे नायात्वत्र जनो रह ॥ १९ ॥

यथागच्छति को वापि स वध्यो मे न सशय ।
तत प्राह मुनिं रामो येन वा त्व विसर्जित ॥ २० ॥

यत्ते मनीषित वाक्य तद्वदस्व ममाग्रत ।
तत प्राह मुनिर्वाक्य शृणु राम यथातथम्॥ २१ ॥

ब्रह्मणा प्रेषितोऽस्मीश कार्यार्थे तेऽन्तिक प्रभो ।
अह हि पूर्वजो देव तव पुत्र परन्तप ॥ २२ ॥

मायासङ्गमजो वीर काल सर्वहर स्मृत ।
ब्रह्मा त्वामाह भगवान् सर्वदेवर्षिपूजित ॥ २३ ॥

रक्षितु स्वर्गलोकस्य समयस्ते महामते।
पुरा त्वमेक एवासीर्लोकान् सहृत्य मायया ॥ २४ ॥

भार्यया सहितस्त्व मामादौ पुत्रमजीजन ।
तथा भोगवत नागमनन्तमुदकेशयम्॥ २५ ॥

मायया जनयित्वा त्व द्वौ ससत्त्वौ महाबलौ ।
मधुकैटभकौ दैत्यौ हत्वा मेदोऽस्थिसञ्चयम्॥ २६ ॥

इमा पर्वतसम्बद्धा मेदिनीं पुरुषर्षभ।
पद्मे दिव्यार्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥ २७ ॥

मा विधाय प्रजाध्यक्ष मयि सर्व न्यवेदयत्।
सोऽह सयुक्तसम्भारस्त्वामवोच जगत्पते ॥ २८ ॥

रक्षा विधत्स्व भूतेभ्यो ये मे वीर्यापहारिण ।
ततस्त्व कश्यपाज्जातो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ २९ ॥

तदनन्तर दिव्यासनपर विराजमान महाराज रामने मुनिसे कहा—"आप जिस लिये यहाँ पधारे है वह (सन्देश) मुझसे कहिये" ॥ १६ ॥ भगवान् रामके इस वाक्यसे प्रेरित होकर मुनिने कहा—"वह बात किसी दूसरेको प्रकट न करते हुए हम दोनोके बीच ही कही जा सकती है ॥ १७ ॥ उसे न तो कोई सुने और न वह किसीके प्रति कही जाय। यदि उसे कोई सुने अथवा देखे तो हे प्रभो! आपको उसे मारना होगा" ॥ १८ ॥ तब रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कह लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण! तुम द्वारपर रहो, इस एकान्त स्थानमें मेरे पास कोई न आवे ॥ १९ ॥ यदि यहाँ कोई भी आया तो इसमे सन्देह नही, वह अवश्य मेरे हाथसे मारा जायगा।" फिर उन्होने मुनिसे कहा—"तुम्हे जिसने भेजा है और तुम्हारे मनमे जो बात है वह सब मुझसे कहो।"

तब मुनिने कहा—"हे राम! जो वास्तविक बात है सो सुनिये। हे ईश! हे प्रभो! मुझे एक कार्यके लिये ब्रह्माजीने आपके पास भेजा है। हे देव! हे शत्रुदमन! मै आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ॥ २०—२२ ॥ हे वीर! मायाके साथ आपका सङ्गम होनेपर मै प्रकट हुआ था। मै सबका नाश करनेवाला हूँ और काल नामसे प्रसिद्ध हूँ। समस्त देवर्षियोसे पूजित भगवान् ब्रह्माजीने आपके लिये कहा है कि हे महामते! अब आपका स्वर्गलोककी रक्षा करनेका समय है। पूर्वकालमे समस्त लोकोका सहार कर एकमात्र आप ही रह गये थे ॥ २३-२४ ॥ फिर आपने अपनी भार्या मायाके सयोगसे सबसे पहले अपने पुत्र मुझको तथा जलमे शयन करनेवाले अनन्त नामक फणधारी शेष नागको रचा ॥ २५ ॥ इस प्रकार मायासे हमे उत्पन्न कर आपने महाबली और बडे शूरवीर दो मधु-कैटभ नामक दैत्योको मारा तथा उनके मेद और अस्थियोके समूहरूप इस पर्वतादिसे युक्त पृथिवीको रचा। हे पुरुषश्रेष्ठ! फिर अपनी नाभिसे प्रकट हुए दिव्य सूर्यके समान तेजस्वी कमलसे मुझे उत्पन्न कर और मुझे ही प्रजापति बनाकर सृष्टि-रचनाका सारा भार मुझे ही सौंप दिया। हे जगत्पते! इस प्रकार भार ग्रहण करनेपर मैं आपसे बोला ॥ २६—२८ ॥ "जो प्राणी मेरे वीर्य (प्रजा) का नाश करनेवाले हैं उनसे रक्षा कीजिये।" तब आप कश्यपजीके यहाँ वामनरूपधारी विष्णुभगवान् होकर

हृतवानसि भूभारं वधाद्रक्षोगणस्य च ।
सर्वासूत्सार्यमाणासु प्रजासु धरणीधर ॥ ३० ॥

रावणस्य वधाकाङ्क्षी मर्त्यलोकमुपागतः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ ३१ ॥

कृत्वा वासस्य समयं त्रिदशेष्वात्मनः पुरा ।
स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृषु ॥ ३२ ॥

कालस्तापसरूपेण त्वत्समीपमुपागमत् ।
ततो भूयश्च ते बुद्धिर्यदि राज्यमुपासितुम् ॥ ३३ ॥

तत्तथा भव भद्रं ते एवमाह पितामहः ।
यदि ते गमने बुद्धिर्देवलोकं जितेन्द्रिय ॥ ३४ ॥

सनाथा विष्णुना देवा भजन्तु विगतज्वराः ।
चतुर्मुखस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा कालेन भाषितम् ॥ ३५ ॥

हसन् रामस्तदा वाक्यं कृत्स्नस्यान्तकमब्रवीत् ।
श्रुतं तव वचो मेऽद्य ममापीष्टतरं तु तत् ॥ ३६ ॥

सन्तोषः परमो ज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ।
त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ॥ ३७ ॥

भद्रं तेऽस्त्वागमिष्यामि यत एवाहमागतः ।
मनोरथस्तु सम्प्राप्तो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ३८ ॥

मत्सेवकानां देवानां सर्वकार्येषु वै मया ।
स्थातव्यं मायया पुत्र यथा चाह प्रजापतिः ॥ ३९ ॥

एवं तयोः कथयतोर्दुर्वासा मुनिरभ्यगात् ।
राजद्वारं राघवस्य दर्शनापेक्षया द्रुतम् ॥ ४० ॥

मुनिर्लक्ष्मणमासाद्य दुर्वासा वाक्यमब्रवीत् ।
शीघ्रं दर्शय रामं मे कार्यं मेऽत्यन्तमाहितम् ॥ ४१ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राह सौमित्रिर्मुनिं ज्वलनतेजसम् ।
रामेण कार्यं किं तेऽद्य किं तेऽभीष्टं करोम्यहम् ॥ ४२ ॥

राजा कार्यान्तरे व्यग्रो मुहूर्तं सम्प्रतीक्ष्यताम् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधसन्तप्तो मुनिः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४३ ॥

अस्मिन् क्षणे तु सौमित्रे न दर्शयसि चेद्विभुम् ।
रामं सविषयं वंशं भस्मीकुर्यां न संशयः ॥ ४४ ॥

प्रकट हुए ॥ २९ ॥ और राक्षसोका नाश करके आपने पृथिवीका भार उतारा । हे धरणीधर ! (इस समय भी) सारी प्रजाको उच्छिन्न होते देख आप रावणका वध करनेके लिये मर्त्यलोकमे पधारे थे । यहाँ रहनेके लिये आपने पूर्वकालमे देवताओमे ग्यारह सहस्र वर्ष समय निश्चित किया था, सो आपकी मानव-शरीरकी आयु पूर्ण होनेके साथ ही आपका वह मनोरथ पूर्ण हो चुका है ॥ ३०—३२ ॥ अब, तापसरूपसे काल आपके पास आया है ! यदि अभी आपका विचार कुछ दिन और राज्य करनेका हो तो आपका शुभ हो, वैसा ही कीजिये—ऐसा पितामह ब्रह्माजीने कहा है । हे जितेन्द्रिय ! यदि आपका विचार देवलोक चलनेका हो तो (आप) विष्णुभगवान्‌से सनाथ होकर देवगण निश्चिन्त हो जायँ ।''

कालके मुखसे ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर रामजी हँसे और सबका अन्त करनेवाले कालसे बोले—''मैने तुम्हारी सब बाते सुन ली । वे मुझे भी अत्यन्त इष्ट है ॥ ३३—३६ ॥ तुम्हारे आनेके कारण मुझे बडा सन्तोष हुआ है । मेरा अवतार तीनो लोकोका कार्य करनेके लिये ही हुआ करता है ॥ ३७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब मै जहाँसे आया था वही फिर चला जाऊँगा, मेरा सारा मनोरथ पूर्ण हो गया, इसमे मुझे कुछ विचारना नही है ॥ ३८ ॥ हे पुत्र ! देवगण मेरे सेवक है, मुझे जैसा कि ब्रह्माजीने कहा है, मायासे उनके सब कार्योमे अवश्य तत्पर रहना चाहिये'' ॥ ३९ ॥

उनके इस प्रकार वार्तालाप करते समय मुनिवर दुर्वासाजी रघुनाथजीका दर्शन करनेकी इच्छासे शीघ्रताके साथ राजद्वारपर पहुँचे ॥ ४० ॥ वहाँ दुर्वासा मुनिने लक्ष्मणजीके पास आकर कहा—''मुझे तुरत ही महाराज रामसे मिलाओ, मेरा उनसे एक अत्यन्त आवश्यक कार्य आ पडा है'' ॥ ४१ ॥ यह सुन श्रीलक्ष्मणजीने उन अग्निके समान तेजस्वी मुनिसे कहा—''इस समय महाराज रामसे आपको क्या काम है ? आपकी क्या इच्छा है ? उसे मै ही पूरा करूँगा ॥ ४२ ॥ इस समय महाराज एक और कार्यमे सलग्न है, कुछ देर ठहरिये ।'' यह सुनते ही मुनिने क्रोधसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीसे कहा— ॥ ४३ ॥ ''लक्ष्मण ! यदि इसी क्षण तुमने मुझे भगवान् रामसे न मिलाया, तो इसमे सन्देह नही, मै देशके सहित तुम्हारे वंशको अभी भस्म कर डालूँगा'' ॥ ४४ ॥

श्रुत्वा तद्वचन घोरमृषेर्दुर्वाससो भृशम्।
स्वरूप तस्य वाक्यस्य चिन्तयित्वा स लक्ष्मण ॥ ४५ ॥

सर्वनाशाद्वर मेऽद्य नाशो ह्येकस्य कारणात्।
निश्चित्यैव ततो गत्वा रामाय प्राह लक्ष्मण ॥ ४६ ॥

सौमित्रेर्वचन श्रुत्वा राम काल व्यसर्जयत्।
शीघ्र निर्गम्य रामोऽपि ददर्शात्रि सुत मुनिम्॥ ४७ ॥

रामोऽभिवाद्य सम्प्रीतो मुनिं पप्रच्छ सादरम्।
किं कार्य ते करोमीति मुनिमाह रघूत्तम ॥ ४८ ॥

तच्छ्रुत्वा रामवचन दुर्वासा राममब्रवीत्।
अद्य वर्ष सहस्राणामुपवाससमापनम्॥ ४९ ॥

अतो भोजनमिच्छामि सिद्ध यत्ते रघूत्तम।
रामो मुनिवच श्रुत्वा सन्तोषेण समन्वित ॥ ५० ॥

स सिद्धमन्न मुनये यथावत्समुपाहरत्।
मुनिर्भुक्त्वान्नममृत सन्तुष्ट पुनरभ्यगात्॥ ५१ ॥

स्वमाश्रम गते तस्मिन् राम सस्मार भाषितम्।
कालेन शोकदु खार्तो विमनाश्चाति विह्वल ॥ ५२ ॥

अवाङ्मुखो दीनमना न शशाकाभिभाषितुम्।
मनसा लक्ष्मण ज्ञात्वा हतप्राय रघूद्वह ॥ ५३ ॥

अवाङ्मुखो बभूवाथ तूष्णीमेवाखिलेश्वर ।
ततो राम विलोक्याह सौमित्रिर्दु खसम्प्लुतम्॥ ५४ ॥

तूष्णीम्भूत चिन्तयन्त गर्हन्त स्नेहबन्धनम्।
मत्कृते त्यज सन्ताप जहि मा रघुनन्दन॥ ५५ ॥

गति कालस्य कलिता पूर्वमेवेदृशी प्रभो।
त्वयि हीनप्रतिज्ञे तु नरको मे ध्रुव भवेत्॥ ५६ ॥

मयि प्रीतिर्यदि भवेद्यद्यनुग्राह्यता तव।
त्यक्त्वा शङ्का जहि प्राज्ञ मा मा धर्म त्यज प्रभो ॥ ५७ ॥

सौमित्रिणोक्त तच्छ्रुत्वा रामश्चलितमानस ।
आहूय मन्त्रिण सर्वान् वसिष्ठ चेदमब्रवीत्॥ ५८ ॥

दुर्वासा ऋषिका यह भयङ्कर वाक्य सुनकर लक्ष्मणजीने उसके स्वरूपका भलीभाँति विचार किया और यह निश्चय कर कि एकके कारण सबके नाशसे तो (अकेले) मेरा नष्ट होना ही अच्छा है, उन्होंने रामचन्द्रजीके पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४५-४६ ॥ लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचन्द्रजीने कालको विदा किया और शीघ्र ही बाहर आ अत्रिनन्दन दुर्वासाजीसे मिले ॥ ४७ ॥ रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने मुनिको प्रणामकर चित्तमे प्रसन्न हो उनसे आदरपूर्वक पूछा। रामने मुनिसे कहा—"हे मुने! मै आपका क्या कार्य करूँ ?" ॥ ४८ ॥ श्रीरामके ये वचन सुनकर दुर्वासाजीने कहा—"आज मेरा एक हजार वर्षका उपवास समाप्त हुआ है ॥ ४९ ॥ इसलिये हे रघुश्रेष्ठ! आपके यहाँ जो भोजन तैयार हो मुझे उसीकी इच्छा है।" मुनिके ये वचन सुन रामचन्द्रजीने सन्तुष्ट हो उन्हे विधिपूर्वक सिद्ध (पकाया हुआ) अन्न दिया और मुनि उस अमृततुल्य अन्नको खाकर तृप्त होकर चले गये ॥ ५०-५१ ॥

जब दुर्वासा मुनि अपने आश्रमको चले गये तो रघुनाथजीको कालके कहे हुए वचनोका स्मरण हुआ। इससे वे शोक और दु खसे आर्त्त तथा अति उदास और व्याकुल हो गये ॥ ५२ ॥ रघुकुलभूषण रामने मन-ही-मन लक्ष्मणको मरा हुआ-सा मान लिया, किन्तु वे दीन चित्तसे नीचेको मुख किये बैठे रहे, उनसे कुछ कह न सके ॥ ५३ ॥ सर्वेश्वर भगवान् राम नीचा मुख किये चुपचाप रह गये। तब रघुनाथजीको अत्यन्त दु खातुर, मौन, चिन्तित और स्नेहबन्धनकी निन्दा करते देख लक्ष्मणजीने कहा—"हे रघुनन्दन! मेरे लिये सन्ताप न कीजिये, मुझे शीघ्र ही मार डालिये ॥ ५४-५५ ॥ प्रभो! मैने पहले ही निश्चय कर लिया था, कालकी गति ऐसी ही है। आपके प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेसे तो मुझे भी अवश्य नरक भोगना पडेगा ॥ ५६ ॥ अत यदि आपकी मुझपर प्रीति है और यदि मै अनुग्रह करनेयोग्य हूँ तो हे मतिमान् रामजी! शङ्का छोडकर मुझे मार डालिये। प्रभो! धर्मका त्याग न कीजिये ॥ ५७ ॥

लक्ष्मणजीका यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीका चित्त चञ्चल हो गया। उन्होने सब मन्त्रियोको बुलाकर यह

मुनेरागमन यत्तु कालस्यापि हि भाषितम्।
प्रतिज्ञामात्मनश्चैव सर्वमावेदयत्प्रभु ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचन मन्त्रिण सपुरोहिता ।
ऊचु प्राञ्जलय सर्वे राममक्लिष्टकारिणम् ॥ ६० ॥

पूर्वमेव हि निर्दिष्ट तव भूभारहारिण ।
लक्ष्मणेन वियोगस्ते ज्ञातो विज्ञानचक्षुषा ॥ ६१ ॥

त्यजाशु लक्ष्मण राम मा प्रतिज्ञा त्यज प्रभो ।
प्रतिज्ञाते परित्यक्ते धर्मो भवति निष्फल ॥ ६२ ॥

धर्मे नष्टेऽखिले राम त्रैलोक्य नश्यति ध्रुवम्।
त्व तु सर्वस्य लोकस्य पालकोऽसि रघूत्तम ॥ ६३ ॥

त्यक्त्वा लक्ष्मणमेवैक त्रैलोक्य त्रातुमर्हसि ।
रामो धर्मार्थसहित वाक्य तेषामनिन्दितम् ॥ ६४ ॥

सभामध्ये समाश्रुत्य प्राह सौमित्रिमञ्जसा ।
यथेष्ट गच्छ सौमित्रे मा भूद्धर्मस्य सशय ॥ ६५ ॥

परित्यागो वधो वापि सतामेवोभय समम्।
एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे दु खव्याकुलितेक्षण ॥ ६६ ॥

राम प्रणम्य सौमित्रि शीघ्र गृहमगात्स्वकम्।
ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्य स कृताञ्जलि ॥ ६७ ॥

नव द्वाराणि सयम्य मूर्ध्नि प्राणमधारयत्।
यदक्षर पर ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥ ६८ ॥

पद तत्परम धाम चेतसा सोऽभ्यचिन्तयत्।
वायुरोधेन सयुक्त सर्वे देवा सहर्षय ॥ ६९ ॥

साग्नयो लक्ष्मण पुष्पैस्तुष्टुवुश्च समाकिरन्।
अदृश्य विबुधै कैश्चित्सशरीर च वासव ॥ ७० ॥

गृहीत्वा लक्ष्मण शक्र स्वर्गलोकमथागमत्।
ततो विष्णोश्चतुर्भाग त देव सुरसत्तमा ।
सर्वे देवर्षयो दृष्ट्वा लक्ष्मण समपूजयन् ॥ ७१ ॥

सब वृत्तान्त वसिष्ठजीको सुनाया ॥ ५८ ॥ प्रभु रामने दुर्वासा मुनिका आगमन, कालका भाषण और अपनी प्रतिज्ञा—ये सब बाते उनसे कह दी ॥ ५९ ॥ रामचन्द्रजीका कथन सुन पुरोहित वसिष्ठजीके सहित समस्त मन्त्रियोने अनायास ही सब कार्य करनेवाले भगवान् रामसे हाथ जोडकर कहा— ॥ ६० ॥ "प्रभो ! पृथ्वीका भार उतारनेवाले आपका लक्ष्मणजीसे पहले ही वियोग होना निश्चित है—यह बात हमने ज्ञान-दृष्टिसे जान ली है ॥ ६१ ॥ अत हे राम ! तुरत ही लक्ष्मणजीको त्याग दीजिये, प्रभो ! अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग न कीजिये, क्योकि प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेसे सारा धर्म निष्फल हो जाता है ॥ ६२ ॥ और हे राम ! सम्पूर्ण धर्मका नाश हो जानेपर निश्चय ही त्रिलोकीका नाश हो जाता है। हे रघुश्रेष्ठ ! आप तो सम्पूर्ण लोकोके रक्षक है ॥ ६३ ॥ अत अकेले लक्ष्मणजीको ही त्याग कर आपको त्रिलोकीकी रक्षा करनी चाहिये।"

रघुनाथजीने सभामे उनके धर्मार्थयुक्त और निर्दोष वचन सुनकर तुरत ही लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ, जिससे धर्ममे सशय उपस्थित न हो ॥ ६४-६५ ॥ सत्पुरुषोके लिये त्याग और वध दोनो समान ही है।" रघुश्रेष्ठ भगवान् रामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजीकी आँखे दु खसे डबडबा आयी और वे शीघ्र ही उन्हे प्रणामकर अपने घर आये। वहाँसे वे सरयूतटपर पहुँचे और आचमन करनेके अनन्तर उन्होने हाथ जोड अपने नवो इन्द्रियगोलकोको रोककर प्राणोको ब्रह्मरन्ध्रमे स्थिर किया। फिर जो वासुदेव नामक अव्यय और अविनाशी परब्रह्म पद है उस परमधामका चित्तमे ध्यान किया। इस प्रकार प्राणनिरोध करनेपर ऋषियो तथा अग्निके सहित समस्त देवताओने लक्ष्मणजीपर पुष्प बरसाये और उनकी स्तुति की। इसी समय इन्द्र किसी भी देवताको दिखायी न देते हुए उन्हे सशरीर लेकर स्वर्गलोकमे चले आये। तब विष्णुभगवान्के चतुर्थांशरूप उन लक्ष्मणदेवको देखकर समस्त देवताओ और देवर्षियोने उनका पूजन किया ॥ ६६—७१ ॥

लक्ष्मणे हि दिवमागते हरौ
सिद्धलोकगतयोगिनस्तदा ।
ब्रह्मणा सह समागमन्मुदा
द्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम् ॥ ७२ ॥

भगवान् लक्ष्मणजीके स्वर्ग पधारनेपर ब्रह्माजीके सहित सिद्धलोकनिवासी समस्त योगीजन अति प्रसन्न होकर महासर्प (शेष) रूपधारी श्रीलक्ष्मणजीका दर्शन करनेके लिये आये ॥ ७२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डेऽष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

महाप्रयाण

श्रीमहादेव उवाच

लक्ष्मण तु परित्यज्य रामो दु खसमन्वित ।
मन्त्रिणो नैगमाश्चैव वसिष्ठ चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अभिषेक्ष्यामि भरतमधिराज्ये महामतिम् ।
अद्य चाह गमिष्यामि लक्ष्मणस्य पदानुग ॥ २ ॥

एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे पौरजानपदास्तदा ।
द्रुमा इवच्छिन्नमूला दु खार्ता पतिता भुवि ॥ ३ ॥

मूर्च्छितो भरतो वापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् ।
गर्हयामास राज्य स प्राहेद रामसन्निधौ ॥ ४ ॥

सत्येन च शपे नाह त्वा विना दिवि वा भुवि ।
काङ्क्षे राज्य रघुश्रेष्ठ शपे त्वत्पादयो प्रभो ॥ ५ ॥

इमौ कुशलवौ राजन्नभिषिञ्चस्व राघव ।
कोशलेषु कुश वीरमुत्तरेषु लव तथा ॥ ६ ॥

गच्छन्तु दूतास्त्वरित शत्रुघ्नानयनाय हि ।
अस्माकमेतद्गमन स्वर्वासाय शृणोतु स ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! लक्ष्मणजीको त्याग देनेपर रघुनाथजीने अत्यन्त दु खातुर हो मन्त्रियों, वेदवेत्ताओ और वसिष्ठजीसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥ "आज महामति भरतको राजतिलककर मै भी लक्ष्मणके मार्गका अनुसरण करूँगा" ॥ २ ॥ रघुनाथजीके इस प्रकार कहनेपर पुरवासी तथा देशवासी लोग दु खातुर होकर जडसे कटे हुए वृक्षके समान पृथिवीपर गिर पडे ॥ ३ ॥ रामजीका कथन सुनकर भरतजीको भी मूर्च्छा आ गयी । उन्होने रघुनाथजीके निकट राज्यकी निन्दा करते हुए इस प्रकार कहा— ॥ ४ ॥ "हे रघुश्रेष्ठ ! मै सत्यकी शपथ करके कहता हूँ, हे प्रभो ! मुझे आपके चरणोकी सौगन्ध है, मै आपके बिना स्वर्गलोक या भूर्लोक कहीके भी राज्यकी इच्छा नही करता ॥ ५ ॥ हे महाराज राम ! इन कुश और लवको ही राजतिलक कीजिये—अवधमें वीरवर कुशको और उत्तरमे लवको राजा बनाइये ॥ ६ ॥ शीघ्र ही शत्रुघ्नको लानेके लिये दूत जाने चाहिये, जिससे वह भी हमारे स्वर्गवासके लिये जानेका वृत्तान्त सुन ले" ॥ ७ ॥

भरतेनोदित श्रुत्वा पतितास्ता समीक्ष्य तम् ।
प्रजाश्च भयसविग्ना रामविश्लेषकातरा ॥ ८ ॥

वसिष्ठो भगवान् राममुवाच सदय वच ।
पश्य तातादरात्सर्वा पतिता भूतले प्रजा ॥ ९ ॥

तासा भावानुग राम प्रसाद कर्तुमर्हसि ।
श्रुत्वा वसिष्ठवचन ता समुत्थाप्य पूज्य च ॥ १० ॥

भरतजीका कथन सुन उनकी ओर देखकर सम्पूर्ण प्रजा भयभीत तथा रामजीके वियोगसे व्याकुल हो पृथिवीपर गिर पडी ॥ ८ ॥ तब भगवान् वसिष्ठजीने रघुनाथजीसे करुणायुक्त वचन कहा—"हे तात ! सारी प्रजा पृथिवीपर पडी हुई है उसे कृपा-दृष्टिसे देखो ॥ ९ ॥ हे राम ! इनके प्रेम-भावानुसार तुम्हे भी इनपर कृपा करनी चाहिये ।" वसिष्ठजीके ये वचन सुनकर रघुनाथजीने उन

सस्नेहो रघुनाथस्ता किं करोमीति चाब्रवीत्।
तत प्राञ्जलय प्रोचु प्रजा भक्त्या रघूद्वहम्॥ ११ ॥

गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनुगच्छामहे वयम्।
अस्माकमेषा परमा प्रीतिर्धर्मोऽयमक्षय ॥ १२ ॥

तवानुगमने राम हृद्गता नो दृढा मति ।
पुत्रदारादिभि सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥ १३ ॥

तपोवन वा स्वर्ग वा पुर वा रघुनन्दन।
ज्ञात्वा तेषा मनोदार्ढ्य कालस्य वचन तथा ॥ १४ ॥

भक्त पौरजन चैव बाढमित्याह राघव ।
कृत्वैव निश्चय रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभु ॥ १५ ॥

प्रस्थापयामास च तौ रामभद्र कुशीलवौ।
अष्टौ रथसहस्राणि सहस्र चैव दन्तिनाम्॥ १६ ॥

षष्टिं चाश्वसहस्राणामेकैकस्मै ददौ बलम्।
बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ ॥ १७ ॥

अभिवाद्य गतौ राम कृच्छ्रेण तु कुशीलवौ।
शत्रुघ्नानयने दूतान्प्रेषयामास राघव ॥ १८ ॥

ते दूतास्त्वरित गत्वा शत्रुघ्नाय न्यवेदयन्।
कालस्यागमन पश्चादत्रिपुत्रस्य चेष्टितम्॥ १९ ॥

लक्ष्मणस्य च निर्याण प्रतिज्ञा राघवस्य च।
पुत्राभिषेचन चैव सर्व रामचिकीर्षितम्॥ २० ॥

श्रुत्वा तद् दूतवचन शत्रुघ्न कुलनाशनम्।
व्यथितोऽपि धृतिं लब्ध्वा पुत्रावाहूय सत्वर ।
अभिषिच्य सुबाहु वै मथुराया महाबल ॥ २१ ॥

यूपकेतु च विदिशानगरे शत्रुसूदन ।
अयोध्या त्वरित प्रागात्स्वय रामदिदृक्षया ॥ २२ ॥

ददर्श च महात्मान तेजसा ज्वलनप्रभम्।
दुकूलयुगसवीत ऋषिभिश्चाक्षयैर्वृतम्॥ २३ ॥

अभिवाद्य रमानाथ शत्रुघ्नो रघुपुङ्गवम्।
प्राञ्जलिर्धर्मसहित वाक्य प्राह महामति ॥ २४ ॥

सबोको उठाया और उनका सत्कार कर उनसे प्रेमपूर्वक पूछा—"कहो, मै तुम्हारे लिये क्या करूँ ?" तब प्रजाजन हाथ जोडकर रघुनाथजीसे भक्तिपूर्वक बोले— ॥ १०-११ ॥ "आप जहाँ जाना चाहते है हम भी वही आपका अनुगमन करेगे। यही हमारी सबसे बडी प्रसन्नता और अक्षय धर्म है॥ १२ ॥ हे राम! हमारे हृदयमे आपका अनुगमन करनेका ही दृढ विचार है। अत हे रघुनन्दन! आप तपोवन, नगर, स्वर्ग आदि कही भी जायँ अब हम स्त्री-पुत्रादिके सहित सर्वथा आपका ही अनुसरण करेगे।" तब रघुनाथजीने उनके मनकी दृढता और कालका वचन समझकर उन भक्त पुरवासियोसे 'बहुत अच्छा, (ऐसा ही करो)' यह कह दिया। फिर, ऐसा निश्चयकर प्रभु रामने उसी दिन कुश और लवको (अपने-अपने राज्यपर) भेजा। उनमेसे प्रत्येकको आठ हजार रथ, एक हजार हाथी और साठ हजार घोडे दिये तथा बहुत-से रत्न, धन और हृष्ट-पुष्ट मनुष्योको साथ कर दिया॥ १३—१७ ॥ कुश और लव रामजीको प्रणाम करके बडी कठिनतासे चले। इसी समय रघुनाथजीने शत्रुघ्नजीको लानेके लिये दूत भेजे॥ १८ ॥

उन दूतोने तुरत ही जाकर कालका आगमन, दुर्वासाजीकी करतूत, लक्ष्मणजीका महाप्रयाण, रघुनाथजीकी प्रतिज्ञा, पुत्रोका अभिषेक और अब राम क्या करना चाहते हैं—ये सब समाचार शत्रुघ्नजीसे निवेदन कर दिये॥ १९-२० ॥ इस प्रकार दूतोके मुखसे अपने कुलके नाशका समाचार सुनकर शत्रुघ्नजी अति व्याकुल हुए, किन्तु फिर धैर्य धारण कर तुरत ही अपने दोनो पुत्रोको बुलाया, और उनमेसे महाबली सुबाहुको मथुराके और यूपकेतुको विदिशा नगरीके राज्यपर अभिषिक्त कर स्वय बडी शीघ्रतासे रघुनाथजीके दर्शनके लिये अयोध्याको चले॥ २१-२२ ॥

वहाँ पहुँचनेपर उन्होने अपने तेजसे अग्निके समान देदीप्यमान महात्मा रामको दो वस्त्र धारण किये और चिरजीवी ऋषियोसे घिरे हुए देखा॥ २३ ॥ महामति शत्रुघ्नजीने लक्ष्मीपति श्रीरघुनाथजीको प्रणाम किया और फिर हाथ जोडकर ये धर्मयुक्त वाक्य कहे— ॥ २४ ॥

अभिषिच्य सुतौ तत्र राज्ये राजीवलोचन ।
तवानुगमने राजन्विद्धि मा कृतनिश्चयम् ॥ २५ ॥

त्यक्तुं नार्हसि मा वीर भक्तं तव विशेषत ।
शत्रुघ्नस्य दृढा बुद्धि विज्ञाय रघुनन्दन ॥ २६ ॥

सज्जीभवतु मध्याह्ने भवानित्यब्रवीद्वच ।
अथ क्षणात्समुत्पेतुर्वानरा कामरूपिण ॥ २७ ॥

ऋक्षाश्च राक्षसाश्चैव गोपुच्छाश्च सहस्रश ।
ऋषीणा देवताना च पुत्रा रामस्य निर्गमम् ॥ २८ ॥

श्रुत्वा प्रोचू रघुश्रेष्ठ सर्वे वानरराक्षसा ।
तवानुगमने विद्धि निश्चितार्थान्हि न प्रभो ॥ २९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम सुग्रीवोऽपि महाबल ।
यथावदभिवाद्याह राघव भक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥

अभिषिच्याङ्गद राज्ये आगतोऽस्मि महाबलम् ।
तवानुगमने राम विद्धि मा कृतनिश्चयम् ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा तेषा दृढ वाक्य ऋक्षवानररक्षसाम् ।
विभीषणमुवाचेद वचन मृदु सादरम् ॥ ३२ ॥

धरिष्यति धरा यावत्प्रजास्तावत्प्रशाधि मे ।
वचनाद्राक्षस राज्य शापितोऽसि ममोपरि ॥ ३३ ॥

न किञ्चिदुत्तर वाच्य त्वया मत्कृतकारणात् ।
एव विभीषण तूक्त्वा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥

मारुते त्व चिरञ्जीव ममाज्ञा मा मृषा कृथा ।
जाम्बवन्तमथ प्राह तिष्ठ त्व द्वापरान्तरे ॥ ३५ ॥

मया सार्ध भवेद्युद्ध यत्किञ्चित्कारणान्तरे ।
ततस्तान् राघव प्राह ऋक्षराक्षसवानरान् ।
सर्वानेव मया सार्ध प्रयातेति दयान्वित ॥ ३६ ॥

तत प्रभाते रघुवशनाथो
विशालवक्षा सितकञ्जनेत्र ।
पुरोधस प्राह वसिष्ठमार्य
यान्त्वग्निहोत्राणि पुरो गुणो मे ॥ ३७ ॥

ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्व
प्रास्थानिक कर्म महद्विधानात् ।

'हे कमलनयन । मै अपने राज्यपर दोनो पुत्रोका अभिषेक कर आया हूँ, हे राजन् । अब मैने भी आपहीका अनुगमन करनेका निश्चय कर लिया है—ऐसा आप जाने ॥ २५ ॥ हे वीर । मे आपका भक्त हूँ, अत आपको मुझे छोडना न चाहिये।' शत्रुघ्नका दृढ निश्चय जान श्रीरघुनाथजीने कहा—'तुम आज दोपहरके समय तैयार रहो।'

इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर, रीछ, राक्षस और गोपुच्छ वानर हजारोकी सख्यामे आ कूदे तथा ऋषि और देवताओके पुत्ररूप वे समस्त वानर और राक्षसगण रघुनाथजीका निर्याण सुनकर उनसे कहने लगे—'प्रभो । आप हमे भी अपने पीछे चलनेके लिये कटिबद्ध समझे ॥ २६—२९ ॥ इतनेहीमे महाबला सुग्रीवने भी यथावत् प्रणाम करके भक्तवत्सल रघुनाथजीसे कहा— ॥ ३० ॥ 'हे राम । मै महाबली अङ्गदको राजतिलक कर आपके साथ चलनेका निश्चय करके आया हूँ—ऐसा आप जाने ॥ ३१ ॥

तब उन रीछ, वानर और राक्षसोके ऐसे दृढ वाक्य सुनकर श्रीरघुनाथजीने विभीषणसे आदरपूर्वक इस प्रकार मधुर वचन कहा— ॥ ३२ ॥ 'मै तुम्हे अपनी शपथ कराता हूँ, जबतक पृथ्वी प्रजा धारण करे तबतक मेरे कहनेसे तुम राक्षसोका राज्य करो ॥ ३३ ॥ अब तुम मेरी की हुई इस व्यवस्थाके विषयमे कुछ और उत्तर न देना।' विभीषणसे इस प्रकार कह फिर वे हनुमान्जीसे बोले— ॥ ३४ ॥ 'हे मारुते । तुम चिरकालतक जीवित रहो, मेरी (पूर्व) आज्ञाको मिथ्या मत करो।' फिर जाम्बवान्से कहा—'तुम द्वापरके अन्ततक रहो ॥ ३५ ॥ किसी कारणवश मेरे साथ तुम्हारा युद्ध होगा।' फिर श्रीरघुनाथजीने शेष सब रीछ, वानर और राक्षसोसे दयापूर्वक कहा—'तुम सब लोग मेरे साथ चलो' ॥ ३६ ॥

दूसरे दिन सबेरे ही विशालहृदय कमलनयन भगवान् रामने पूज्य पुरोहित वसिष्ठजीसे कहा—'हे गुरो । मेरे आगे अग्निहोत्रकी आहवनीयादि अग्नियाँ चले' ॥ ३७ ॥ तब वसिष्ठजीने बडे विधिपूर्वक समस्त प्रास्थानिक कर्म किये। उस समय करोडो चन्द्रमाओके

क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणि-
महाप्रयाणाय गृहीतबुद्धि ॥ ३८ ॥
निष्क्रम्य रामो नगरात्सिताभ्रा-
च्छशीव यात शशिकोटिकान्ति ।
रामस्य सव्ये सितपद्महस्ता
पद्मा गता पद्मविशालनेत्रा ॥ ३९ ॥
पार्श्वेऽथ दक्षेऽरुणकञ्जहस्ता
श्यामा ययौ भूरपि दीप्यमाना ।
शास्त्राणि शस्त्राणि धनुश्च बाणा
जग्मु पुरस्ताद् धृतविग्रहास्ते ॥ ४० ॥
वेदाश्च सर्वे धृतविग्रहाश्च
ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्या ।
माता श्रुतीना प्रणवेन साध्वी
ययौ हरि व्याहृतिभि समेता ॥ ४१ ॥
गच्छन्तमेवानुगता जनास्ते
सपुत्रदारा सह बन्धुवर्गै ।
अनावृतद्वारमिवापवर्ग
राम व्रजन्त ययुराप्तकामा ।
सान्त पुर सानुचर सभार्य
शत्रुघ्नयुक्तो भरतोऽनुयात ॥ ४२ ॥
गच्छन्तमालोक्य रमासमेत
श्रीराघव पौरजना समस्ता ।
सबालवृद्धाश्च ययुर्द्विजाग्र्या
सामात्यवर्गाश्च समन्त्रिणो ययु ॥ ४३ ॥
सर्वे गता क्षत्रमुखा प्रहृष्टा
वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च ।
सुग्रीवमुख्या हरिपुङ्गवाश्च
स्नाता विशुद्धा शुभशब्दयुक्ता ॥ ४४ ॥
न कश्चिदासीद्भवदु खयुक्तो
दीनोऽथवा बाह्यसुखेषु सक्त ।
आनन्दरूपानुगता विरक्ता
ययुश्च राम पशुभृत्यवर्गै ॥ ४५ ॥
भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र
ये प्राणिन स्थावरजङ्गमाश्च ।

समान कान्तिमान् भगवान् राम रेशमी वस्त्र धारण किये, कुशाकी पवित्री हाथमे पहने तथा महाप्रयाणमे चित्त लगाये नगरसे इस प्रकार निकले जैसे श्वेत बादलोमेसे चन्द्रमा निकलता हो। उनके बायी ओर हाथमे श्वेत कमल लिये कमलके समान विशाल नेत्रवाली लक्ष्मीजी चली ॥ ३८-३९ ॥ तथा दायी ओर हाथमे लाल कमल लिये अत्यन्त दीप्तिशालिनी श्यामवर्णा पृथ्वी चली। भगवान्के आगे सम्पूर्ण शास्त्र, शस्त्र और उनके धनुष-बाण मूर्तिमान् होकर चले ॥ ४० ॥ इसी प्रकार समस्त वेद, समस्त दिव्य मुनिजन तथा ॐकार और व्याहृतियोके सहित वेदमाता गायत्री—ये सब भी शरीर धारणकर श्रीहरिके साथ चले ॥ ४१ ॥

इस प्रकार रघुनाथजीके चलनेपर अपने बन्धु-बान्धव और स्त्री-पुत्रादिके सहित समस्त पुरजन इस प्रकार चले मानो सफलमनोरथ हो मोक्षके खुले द्वारको जाते हो। फिर रनिवास, सेवकगण, स्त्री और शत्रुघ्नके सहित भरतजी भी चले ॥ ४२ ॥ रघुनाथजीको लक्ष्मीजीके सहित जाते देख बालक और वृद्धोके सहित समस्त पुरजन तथा अमात्य और मन्त्रियोके सहित समस्त ब्राह्मणगण चले ॥ ४३ ॥ उनके पश्चात् मुख्य-मुख्य क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य अन्त्यजादि सभी लोग अति हर्षपूर्वक चले। फिर सुग्रीवादि श्रेष्ठ वानरगण स्नानादिसे शुद्ध हो ('श्रीरामचन्द्रजीकी जय' आदि) मङ्गलमय शब्द करते हुए चले ॥ ४४ ॥ (उनमेसे) कोई भी ससार-दु खसे दु खी, दीन अथवा बाह्य विषयोमे आसक्त नही था। वे सभी परमानन्दस्वरूप भगवान् रामके अनुगामी ससारसे उपराम होकर अपने पशु और नौकर-चाकरोके सहित रघुनाथजीके साथ चले गये ॥ ४५ ॥ जो प्राणी कभी दिखलायी नही पडते थे तथा जितने स्थावर और जङ्गम जीव थे—वे सभी ससारसे विरक्त होकर एकमात्र

अभिषिच्य सुतौ तत्र राज्ये राजीवलोचन ।
तवानुगमने राजन्विद्धि मा कृतनिश्चयम् ॥ २५ ॥
त्यक्तु नार्हसि मा वीर भक्त तव विशेषत ।
शत्रुघ्नस्य दृढा बुद्धि विज्ञाय रघुनन्दन ॥ २६ ॥
सज्जीभवतु मध्याह्ने भवानित्यब्रवीद्वच ।
अथ क्षणात्समुत्पेतुर्वानरा कामरूपिण ॥ २७ ॥
ऋक्षाश्च राक्षसाश्चैव गोपुच्छाश्च सहस्रश ।
ऋषीणा देवताना च पुत्रा रामस्य निर्गमम् ॥ २८ ॥
श्रुत्वा प्रोचू रघुश्रेष्ठ सर्वे वानरराक्षसा ।
तवानुगमने विद्धि निश्चितार्थान्हि न प्रभो ॥ २९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राम सुग्रीवोऽपि महाबल ।
यथावदभिवाद्याह राघव भक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥
अभिषिच्याङ्गद राज्ये आगतोऽस्मि महाबलम् ।
तवानुगमने राम विद्धि मा कृतनिश्चयम् ॥ ३१ ॥
श्रुत्वा तेषा दृढ वाक्य ऋक्षवानररक्षसाम् ।
विभीषणमुवाचेद वचन मृदु सादरम् ॥ ३२ ॥
धरिष्यति धरा यावत्प्रजास्तावत्प्रशाधि मे ।
वचनाद्राक्षस राज्य शापितोऽसि ममोपरि ॥ ३३ ॥
न किञ्चिदुत्तर वाच्य त्वया मत्कृतकारणात् ।
एव विभीषण तूक्त्वा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥
मारुते त्व चिरञ्जीव ममाज्ञा मा मृषा कृथा ।
जाम्बवन्तमथ प्राह तिष्ठ त्व द्वापरान्तरे ॥ ३५ ॥
मया सार्ध भवेद्युद्ध यत्किञ्चित्कारणान्तरे ।
ततस्तान् राघव प्राह ऋक्षराक्षसवानरान् ।
सर्वानेव मया सार्ध प्रयातेति दयान्वित ॥ ३६ ॥
तत प्रभाते रघुवशनाथो
विशालवक्षा सितकञ्जनेत्र ।
पुरोधस प्राह वसिष्ठमार्य
यान्त्वग्निहोत्राणि पुरो गुणो मे ॥ ३७ ॥
ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्व
प्रास्थानिक कर्म महद्विधानात् ।

'हे कमलनयन ! मै अपने राज्यपर दोनो पुत्रोका अभिषेक कर आया हूँ, हे राजन् ! अब मैने भी आपहीका अनुगमन करनेका निश्चय कर लिया है—ऐसा आप जाने ॥ २५ ॥ हे वीर ! मे आपका भक्त हूँ, अत आपको मुझे छोडना न चाहिये।' शत्रुघ्नका दृढ निश्चय जान श्रीरघुनाथजीने कहा—'तुम आज दोपहरके समय तैयार रहो।'

इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर, रीछ, राक्षस और गोपुच्छ वानर हजारोकी सख्यामे आ कूदे तथा ऋषि और देवताओके पुत्ररूप वे समस्त वानर और राक्षसगण रघुनाथजीका निर्याण सुनकर उनसे कहने लगे—'प्रभो ! आप हमे भी अपने पीछे चलनेके लिये कटिबद्ध समझे ॥ २६—२९ ॥ इतनेहीमे महाबला सुग्रीवने भी यथावत् प्रणाम करके भक्तवत्सल रघुनाथजीसे कहा— ॥ ३० ॥ 'हे राम ! मै महाबली अङ्गदको राजतिलक कर आपके साथ चलनेका निश्चय करके आया हूँ—ऐसा आप जाने ॥ ३१ ॥

तब उन रीछ, वानर और राक्षसोके ऐसे दृढ वाक्य सुनकर श्रीरघुनाथजीने विभीषणसे आदरपूर्वक इस प्रकार मधुर वचन कहा— ॥ ३२ ॥ 'मै तुम्हे अपनी शपथ कराता हूँ, जबतक पृथ्वी प्रजा धारण करे तबतक मेरे कहनेसे तुम राक्षसोका राज्य करो ॥ ३३ ॥ अब तुम मेरी की हुई इस व्यवस्थाके विषयमे कुछ और उत्तर न देना।' विभीषणसे इस प्रकार कह फिर वे हनुमान्जीसे बोले— ॥ ३४ ॥ 'हे मारुते ! तुम चिरकालतक जीवित रहो, मेरी (पूर्व) आज्ञाको मिथ्या मत करो।' फिर जाम्बवान्से कहा—'तुम द्वापरके अन्ततक रहो ॥ ३५ ॥ किसी कारणवश मेरे साथ तुम्हारा युद्ध होगा।' फिर श्रीरघुनाथजीने शेष सब रीछ, वानर और राक्षसोसे दयापूर्वक कहा—'तुम सब लोग मेरे साथ चलो' ॥ ३६ ॥

दूसरे दिन सबेरे ही विशालहृदय कमलनयन भगवान् रामने पूज्य पुरोहित वसिष्ठजीसे कहा—'हे गुरो ! मेरे आगे अग्निहोत्रकी आहवनीयादि अग्नियाँ चले' ॥ ३७ ॥ तब वसिष्ठजीने बडे विधिपूर्वक समस्त प्रास्थानिक कर्म किये। उस समय करोडो चन्द्रमाओके

क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणि-
महाप्रयाणाय गृहीतबुद्धि ॥ ३८ ॥
निष्क्रम्य रामो नगरात्सिताभ्रा-
च्छशीव यात शशिकोटिकान्ति ।
रामस्य सव्ये सितपद्महस्ता
पद्मा गता पद्मविशालनेत्रा ॥ ३९ ॥
पार्श्वेऽथ दक्षेऽरुणकञ्जहस्ता
श्यामा ययौ भूरपि दीप्यमाना ।
शास्त्राणि शस्त्राणि धनुश्च बाणा
जग्मु पुरस्ताद् धृतविग्रहास्ते ॥ ४० ॥
वेदाश्च सर्वे धृतविग्रहाश्च
ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्या ।
माता श्रुतीना प्रणवेन साध्वी
ययौ हरि व्याहृतिभि समेता ॥ ४१ ॥
गच्छन्तमेवानुगता जनास्ते
सपुत्रदारा सह बन्धुवर्गै ।
अनावृतद्वारमिवापवर्ग
राम व्रजन्त ययुराप्तकामा ।
सान्त पुर सानुचर सभार्य
शत्रुघ्नयुक्तो भरतोऽनुयात ॥ ४२ ॥
गच्छन्तमालोक्य रमासमेत
श्रीराघव पौरजना समस्ता ।
सबालवृद्धाश्च ययुर्द्विजाग्र्या
सामात्यवर्गाश्च समन्त्रिणो ययु ॥ ४३ ॥
सर्वे गता क्षत्रमुखा प्रहृष्टा
वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च ।
सुग्रीवमुख्या हरिपुङ्गवाश्च
स्नाता विशुद्धा शुभशब्दयुक्ता ॥ ४४ ॥
न कश्चिदासीद्भवदु खयुक्तो
दीनोऽथवा बाह्यसुखेषु सक्त ।
आनन्दरूपानुगता विरक्ता
ययुश्च राम पशुभृत्यवर्गै ॥ ४५ ॥
भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र
ये प्राणिन स्थावरजङ्गमाश्च ।

समान कान्तिमान् भगवान् राम रेशमी वस्त्र धारण किये, कुशाकी पवित्री हाथमे पहने तथा महाप्रयाणमे चित्त लगाये नगरसे इस प्रकार निकले जैसे श्वेत बादलोमेसे चन्द्रमा निकलता हो। उनके बायी ओर हाथमे श्वेत कमल लिये कमलके समान विशाल नेत्रवाली लक्ष्मीजी चली ॥ ३८-३९ ॥ तथा दायी ओर हाथमे लाल कमल लिये अत्यन्त दीप्तिशालिनी श्यामवर्णा पृथ्वी चली। भगवान्के आगे सम्पूर्ण शास्त्र, शस्त्र और उनके धनुष-बाण मूर्तिमान् होकर चले ॥ ४० ॥ इसी प्रकार समस्त वेद, समस्त दिव्य मुनिजन तथा ॐकार और व्याहृतियोके सहित वेदमाता गायत्री—ये सब भी शरीर धारणकर श्रीहरिके साथ चले ॥ ४१ ॥

इस प्रकार रघुनाथजीके चलनेपर अपने बन्धु-बान्धव और स्त्री-पुत्रादिके सहित समस्त पुरजन इस प्रकार चले मानो सफलमनोरथ हो मोक्षके खुले द्वारको जाते हो। फिर रनिवास, सेवकगण, स्त्री और शत्रुघ्नके सहित भरतजी भी चले ॥ ४२ ॥ रघुनाथजीको लक्ष्मीजीके सहित जाते देख बालक और वृद्धोके सहित समस्त पुरजन तथा अमात्य और मन्त्रियोके सहित समस्त ब्राह्मणगण चले ॥ ४३ ॥ उनके पश्चात् मुख्य-मुख्य क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य अन्त्यजादि सभी लोग अति हर्षपूर्वक चले। फिर सुग्रीवादि श्रेष्ठ वानरगण स्नानादिसे शुद्ध हो ('श्रीरामचन्द्रजीकी जय' आदि) मङ्गलमय शब्द करते हुए चले ॥ ४४ ॥ (उनमेंसे) कोई भी ससार-दु खसे दु खी, दीन अथवा बाह्य विषयोमे आसक्त नहीं था। वे सभी परमानन्दस्वरूप भगवान् रामके अनुगामी ससारसे उपराम होकर अपने पशु और नौकर-चाकरोके सहित रघुनाथजीके साथ चले गये ॥ ४५ ॥ जो प्राणी कभी दिखलायी नही पडते थे तथा जितने स्थावर और जङ्गम जीव थे—वे सभी ससारसे विरक्त होकर एकमात्र

साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिं
जग्मुर्विरक्ता परमेकमीशम् ॥ ४६ ॥
नासीदयोध्यानगरे तु जन्तु
कश्चित्तदा राममना न यातः ।
शून्यं बभूवाखिलमेव तत्र
पुरं गते राजनि रामचन्द्रे ॥ ४७ ॥
ततोऽतिदूरं नगरात्स गत्वा
दृष्ट्वा नदीं तां हरिनेत्रजाताम् ।
ननन्द रामः स्मृतपावनोऽतो
ददर्श चाशेषमिदं हृदिस्थम् ॥ ४८ ॥
अथागतस्तत्र पितामहो महान्
देवाश्च सर्वे ऋषयश्च सिद्धाः ।
विमानकोटीभिरपारपारं
समावृतं खं सुरसेविताभिः ॥ ४९ ॥
रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्व
ज्योतिर्मयं तत्र नभो बभूव ।
स्वयम्प्रकाशैर्महतां महद्भिः
समावृतं पुण्यकृतां वरिष्ठैः ॥ ५० ॥
ववुश्च वाताश्च सुगन्धवन्तो
ववर्ष वृष्टिः कुसुमावलीनाम् ।
उपस्थिते देवमृदङ्गनादे
गायत्सु विद्याधरकिन्नरेषु ॥ ५१ ॥
रामस्तु पद्भ्यां सरयूजलं सकृत्
स्पृष्ट्वा परिक्रामदनन्तशक्तिः ।
ब्रह्मा तदा प्राह कृताञ्जलिस्तं
राम परात्मन् परमेश्वरस्त्वम् ॥ ५२ ॥
विष्णुः सदानन्दमयोऽसि पूर्णो
जानासि तत्त्वं निजमैशमेकम् ।
तथापि दासस्य ममाखिलेश
कृतं वचो भक्तपरोऽसि विद्वन् ॥ ५३ ॥
त्वं भ्रातृभिर्वैष्णवमेवमाद्यं
प्रविश्य देहं परिपाहि देवान् ।
यद्वा परो वा यदि रोचते तं
प्रविश्य देहं परिपाहि नस्त्वम् ॥ ५४ ॥

परमेश्वर अनन्तशक्ति साक्षात् परमात्मा रामके साथ चले ॥ ४६ ॥ उस समय अयोध्यामें ऐसा कोई जीव नहीं था जो भगवान् राममें चित्त लगाकर उनका अनुगामी न हुआ हो। महाराज रामचन्द्रके कूच करते ही वह सारा नगर सूना हो गया ॥ ४७ ॥ नगरसे बहुत दूर निकल जानेपर श्रीरघुनाथजीने विष्णुभगवान्के नेत्रसे प्रकट हुई (सरयू) नदी देखी। स्मरण करते ही पवित्र करनेवाले भगवान् रामचन्द्रजी उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और फिर इस सम्पूर्ण जगत्को अपने हृदयमें देखने लगे ॥ ४८ ॥

इसी समय, वहाँ पितामह ब्रह्माजी तथा अन्य समस्त देवता, ऋषि और सिद्धगण आये। उस समय जिनमें देवगण विराजमान थे ऐसे सूर्यके समान तेजस्वी करोड़ों विमानोंसे अनन्तपार आकाश खचाखच भर गया। (उनके प्रकाशसे) प्रज्वलित होकर वह स्वयं भी देदीप्यमान हो उठा। (इनके अतिरिक्त पुण्यलोकोंसे आये हुए) पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ तथा महात्माओंमें महान् स्वयंप्रकाशमय दिव्य पुरुषोंसे भी आकाश मानो ढक गया ॥ ४९-५० ॥ उस समय सुगन्धमय वायु चलने लगा और कुसुमसमूहोंकी (निरन्तर) वर्षा होने लगी। तब देवताओंका मृदङ्गनाद और विद्याधर तथा किन्नरोंका गान होते समय अनन्तशक्ति भगवान् रामने एक बार सरयूजलका स्पर्श (आचमन) कर चरणोंसे उसकी परिक्रमा की।

उस समय, ब्रह्माजी हाथ जोड़कर भगवान् रामसे कहने लगे—"हे परमात्मन्! आप सबके स्वामी, नित्यानन्दमय, सर्वत्र परिपूर्ण और साक्षात् विष्णुभगवान् हैं। अपने एकमात्र ईश्वरीय तत्त्वको आप ही जानते हैं। तथापि हे अखिलेश्वर! आपने मुझ दासका निवेदन पूर्ण कर दिया, (सो ठीक ही है, क्योंकि) हे विद्वन्! आप भक्तवत्सल हैं ॥ ५१—५३ ॥ हे प्रभो! अब आप भाइयोंसहित अपने आदिविग्रह विष्णुदेहमें प्रविष्ट होकर देवताओंकी रक्षा कीजिये, अथवा यदि आपको कोई और शरीर प्रिय हो तो उसीमें प्रवेश करके हम सबका पालन

त्वमेव देवाधिपतिश्च विष्णु-
जानन्ति न त्वा पुरुषा विना माम्।
सहस्रकृत्वस्तु नमो नमस्ते
प्रसीद देवेश पुनर्नमस्ते ॥ ५५ ॥

पितामहप्रार्थनया स राम
पश्यत्सु देवेषु महाप्रकाश।
मुष्णश्च चक्षूषि दिवौकसा तदा
बभूव चक्रादियुतश्चतुर्भुज ॥ ५६ ॥

शेषो बभूवेश्वरतल्पभूत
सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी।
बभूवतुश्चक्रदरौ च दिव्यौ
कैकेयिसूनूर्लवणान्तकश्च ॥ ५७ ॥

सीता च लक्ष्मीरभवत्पुरेव
रामो हि विष्णु पुरुष पुराण।
सहानुज पूर्वशरीरकेण
बभूव तेजोमयदिव्यमूर्ति ॥ ५८ ॥

विष्णु समासाद्य सुरेन्द्रमुख्या
देवाश्च सिद्धा मुनयश्च दक्षा।
पितामहाद्या परित परेश
स्तवैर्गृणन्त परिपूजयन्त ॥ ५९ ॥

आनन्दसम्प्लावितपूर्णचित्ता
बभूविरे प्राप्तमनोरथास्ते।
तदाह विष्णुर्द्रुहिण महात्मा
एते हि भक्ता मयि चानुरक्ता ॥ ६० ॥

यान्त दिव मामनुयान्ति सर्वे
तिर्यक्शरीरा अपि पुण्ययुक्ता।
वैकुण्ठसाम्य परम प्रयान्तु
समाविशस्वाशु ममाज्ञया त्वम् ॥ ६१ ॥

श्रुत्वा हरेर्वाक्यमथाब्रवीत्क
सान्तानिकान्यान्तु विचित्रभोगान्।
लोकान्मदीयोपरि दीप्यमाना-
स्त्वद्भावयुक्ता कृतपुण्यपुञ्जा ॥ ६२ ॥

ये चापि ते राम पवित्रनाम
गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव।

कीजिये ॥ ५४ ॥ आप ही देवाधिपति विष्णुभगवान् है। इस बातको मेरे सिवा और कोई पुरुष नही जानता। हे देवेश! आपको हजारो बार नमस्कार है, आप प्रसन्न होइये, आपको पुन -पुन नमस्कार है" ॥ ५५ ॥

तब पितामह ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे महातेजोमय भगवान् राम सब देवताओके देखते-देखते उनकी दृष्टिको चुराते हुए चक्रादि आयुधोसे युक्त चतुर्भुजरूप हो गये ॥ ५६ ॥ लक्ष्मणजी अद्भुत फण धारण कर भगवान्‌की शय्यारूप शेषनाग हो गये तथा कैकेयीपुत्र भरत और लवणान्तक शत्रुघ्न दिव्य चक्र और शख हो गये ॥ ५७ ॥ सीताजी तो पहले ही लक्ष्मीजी हो गयी थी। भगवान् राम पुराणपुरुष विष्णुभगवान् ही है। वे भाइयोके सहित अपने पूर्व-शरीरसे तेजोमय दिव्य-स्वरूपवाले हो गये ॥ ५८ ॥

फिर उन विष्णुभगवान्‌के पास चारो ओरसे इन्द्रादि देवता, सिद्ध, मुनि, यक्ष और ब्रह्मा आदि प्रजापतिगण आकर उन परमेश्वरकी स्तोत्रोद्वारा स्तुति करते हुए पूजा करने लगे और अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेसे मन-ही-मन आनन्दमग्न हो गये। तब महात्मा विष्णुभगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा—"ये सब मेरे भक्त और मुझमे प्रीति रखनेवाले है ॥ ५९-६० ॥ मेर साथ ये सब भी स्वर्ग-लोकको जाना चाहते हैं। इनमे जो तिर्यक्शरीरधारी है वे भी बडे पुण्यात्मा है। ये सब वैकुण्ठके समान उत्तम लोकोको प्राप्त हो, मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र वहाँ इनका प्रवेश करा दो" ॥ ६१ ॥

भगवान्‌के ये वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा—"भगवन्! आपकी भक्तिसे युक्त ये महापुण्यशाली लोग मेरे लोकसे भी ऊपर अत्यन्त दीप्तिशाली और विचित्र भोगोसे सम्पन्न सान्तानिक लोकोको प्राप्त हो ॥ ६२ ॥ हे राम! और भी जो लोग मरनेके समय ही आपका पवित्र

अज्ञानतो वापि भजन्तु लोका-
स्तानेव योगैरपि चाधिगम्यान् ॥ ६३ ॥
ततोऽतिहृष्टा हरिराक्षसाद्या
स्पृष्ट्वा जल त्यक्तकलेवरास्ते ।
प्रपेदिरे प्राक्तनमेव रूप
यदशजा ऋक्षहरीश्वरास्ते ॥ ६४ ॥
प्रभाकर प्राप हरिप्रवीर
सुग्रीव आदित्यजवीर्यवत्त्वात् ।
ततो विमग्ना सरयूजलेषु
नरा परित्यज्य मनुष्यदेहम् ॥ ६५ ॥
आरुह्य दिव्याभरणा विमान
प्रापुश्च ते सान्तनिकाख्यलोकान् ।
निर्यक्प्रजाता अपि रामदृष्टा
जल प्रविष्टा दिवमेव याता ॥ ६६ ॥
दिदृक्षवो जानपदाश्च लोका
राम समालोक्य विमुक्तसङ्गा ।
स्मृत्वा हरि लोकगुरु परेश
स्पृष्ट्वा जल स्वर्गमवापुरञ्ज ॥ ६७ ॥
एतावदेवोत्तरमाह शम्भु
श्रीरामचन्द्रस्य कथावशेषम् ।
य पादमप्यत्र पठेत्स पापा-
द्विमुच्यते जन्मसहस्रजातात् ॥ ६८ ॥
दिने दिने पापचय प्रकुर्वन्
पठेन्नर श्लोकमपीह भक्त्या ।
विमुक्तसर्वाघचय प्रयाति
रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥ ६९ ॥
आख्यानमेतद्रघुनायकस्य
कृत पुरा राघवचोदितेन ।
महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थ
श्रुत्वा तु राम परितोषमेति ॥ ७० ॥
रामायण काव्यमनन्तपुण्य
श्रीशङ्करेणाभिहित भवान्यै ।
भक्त्या पठेद्य शृणुयात्स पापै-
र्विमुच्यते जन्मशतोद्भवैश्च ॥ ७१ ॥

नाम लेगे अथवा जो भूलकर भी आपका भजन करेग वे भी योगियोको प्राप्त होनेयोग्य उन्ही लोकोका जायँगे'' ॥ ६३ ॥

यह सुनकर समस्त वानर और राक्षसादि अति प्रसन्न हुए और जलस्पर्श करक शरीर छोडने लगे। वे रीछ और वानर आदि जिस-जिसके अशसे उत्पन्न हुए थे उस-उस देवताके पूर्वरूपको ही प्राप्त हो गये ॥ ६४ ॥ वानरराज सुग्रीव सूर्यके वीर्यसे उत्पन्न हुए थे, अत वे सूर्यमे लीन हो गये, तदनन्तर अयोध्या-निवासी लोग सरयूके जलमे डूब-डूबकर मनुष्य-देहको त्याग दिव्य आभूषणोसे विभूषित हो विमानोपर चढकर सान्तनिक नामक लोकोम पहुँच गये। जो निर्यक् योनियोमे उत्पन्न हुए थे वे (कूकर-शूकर आदि) भी भगवान् रामकी दृष्टि पडनेस जलमे डूबकर स्वर्गलोकको ही चले गये ॥ ६५-६६ ॥ जो देशवासी लोग यह सब कौतुक देखनेके लिये आये थे व भी श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कर ससारकी आसक्तिको छोड लोकगुरु परमेश्वर भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए जलस्पर्श कर अनायास स्वर्गको चले गये ॥ ६७ ॥

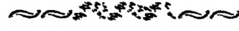
श्रीमहादेवजीने भगवान् रामकी कथाका परिशिष्टरूप यह इतना ही उत्तरकाण्ड कहा है। जो पुरुष इसका एक पाद (चौथाई श्लोक) भी पढता है वह अपने हजारो जन्मोके पापोसे मुक्त हो जाता है ॥ ६८ ॥ नित्यप्रति अनेको पाप करनेवाला पुरुष यदि भक्तिपूर्वक इसका एक श्लोक भी पढे तो सम्पूर्ण पापराशिसे छूटकर श्रीरामके सालोक्यपदको प्राप्त हो जाता है, जो दूसरोके लिये अलभ्य है ॥ ६९ ॥ श्रीरघुनाथजीकी प्रेरणासे उनकी इस कथाको, जिसमे भविष्य चरित्रोका ही वर्णन किया गया है, पहले श्रीमहादेवजीने रचा था। इसको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बडे प्रसन्न होते है ॥ ७० ॥ रामायण नामक यह अनन्त पुण्यप्रद काव्य श्रीशकरभगवान्ने पार्वतीजीसे कहा है। जो पुरुष इसे भक्तिपूर्वक पढता अथवा सुनता है वह अपने सैकडो जन्मोके पापपुञ्जसे मुक्त हो जाता

अध्यात्मराम पठतश्च नित्य
श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च राम ।
अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे
सीतासमेत श्रियमातनोति ॥ ७२ ॥
रामायण जनमनोहरमादिकाव्य
ब्रह्मादिभि सुरवैररपि सस्तुत च ।
श्रद्धान्वित पठति य शृणुयात्तु नित्य
विष्णो प्रयाति सदन स विशुद्धदेह ॥ ७३ ॥

है ॥ ७१ ॥ इस अध्यात्मरामायणको नित्यप्रति पढने, सुनने अथवा भक्तिपूर्वक लिखनेवालेसे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् राम सीताजीके सहित उसके पास रहकर उसकी श्रीवृद्धि करते है ॥ ७२ ॥ ब्रह्मा आदि सुरश्रेष्ठोसे प्रशसित और मनुष्योके मनको हरनेवाले इस आदिकाव्य रामायणको जो पुरुष नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक पढता या सुनता है, वह विशुद्ध शरीर धारणकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त होता हे ॥ ७३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसवादे उत्तरकाण्डे नवम सर्ग ॥ ९ ॥

समाप्तमिदमुत्तरकाण्डम्



पार्वत्यै परमेश्वरेण गदिते ह्यध्यात्मरामायणे
काण्डै सप्तभिरन्वितेऽतिशुभदे सर्गाश्चतु षष्टिका ।
श्लोकाना तु शतद्वयेन सहितान्युक्तानि चत्वारि वै
साहस्राणि समाप्तित श्रुतिशतान्युक्तानि तत्त्वार्थत ॥

साक्षात् परमेश्वर (श्रीमहादेवजी) द्वारा पार्वतीजीके प्रति कहे हुए सात काण्डोसे युक्त इस शुभप्रद अध्यात्मरामायणमे चौंसठ सर्ग है। इसकी समाप्तिपर्यन्त कुल चार हजार दो सौ श्लोक कहे गये है तथा तत्त्वार्थका विवेचन करते हुए सैकडों श्रुतियॉं कही गयी है।

श्रीरामाय नम

श्रीजानकीजीवनाष्टकम्

आलोक्य यस्यातिललामलीला सद्भाग्यभाजौ पितरौ कृतार्थौ।
तमर्भक दर्पकदर्पचौर श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ १ ॥
श्रुत्वैव यो भूपतिमात्तवाच वन गतस्तेन न नोदितोऽपि।
त लीलयाह्लादविषादशून्य श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ २ ॥
जटायुषो दीनदशा विलोक्य प्रियावियोगप्रभव च शोकम्।
यो वै विसस्मार तमार्द्रचित्त श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ३ ॥
यो वालिना ध्वस्तबल सुकण्ठ न्ययोजयद्राजपदे कपीनाम्।
त स्वीयसन्तापसुतप्तचित्त श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ४ ॥
यद्ध्याननिर्धूतवियोगवह्निर्विदेहबाला विबुधारिवन्याम्।
प्राणान्दधे प्राणमय प्रभु त श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ५ ॥
यस्यातिवीर्याम्बुधिवीचिराजौ वश्यैरहो वैश्रवणो विलीन ।
त वैरिविध्वसनशीललील श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ६ ॥
यद्रूपराकेशमयूखमालानुरञ्जिता राजरमापि रेजे।
त राघवेन्द्र विबुधेन्द्रवन्द्य श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ७ ॥
एव कृता येन विचित्रलीला मायामनुष्येण नृपच्छलेन।
त वै मराल मुनिमानसाना श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ८ ॥

